अभिज्ञानशाकुन्तलम्
'विमला'-'चन्द्रकला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्
हिन्दीव्याख्याकारः
श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी

# चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

५३

महाकविकालिदासप्रणीतम्

# अभिज्ञानशाकुन्तलम्

'विमला'-'चन्द्रकला'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः—

**डॉ० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी**

भू० पू० प्राध्यापक एवं अध्यक्ष

पुराणेतिहास, संस्कृति, भूगोल विभाग

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशक

**चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन**

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542)2335263



प्रथम संस्करण 2007 ई॰
मूल्य : 130.00

अन्य प्राप्तिस्थान

**चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस**

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011)32996391 फैक्स: (011)23286537
ई-मेल : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

**चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान**

38 यू.ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : (011)23856391

**चौखम्बा विद्याभवन**

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542)2420404

**मुद्रक**

ए. के. लिथोग्राफर
दिल्ली

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

53
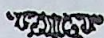
# ABHIJNANASAKUNTALA

OF

## MAHAKAVI KALIDASA

*Edited with*

THE 'VIMLA'-'CHANDRAKALA' SANSKRIT & HINDI COMMENTARIES

By


Dr. Shrikrishnamani Tripathi

*Former Professor & Head of the Deptt. of Puranetihas.*

**Sri Sampurnananda Sanskrit Vishwavidyalaya, Varanasi.**


CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
*(Oriental Publishers & Distributors)*
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001
Tel. : 2335263

*Also can be had from :*

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road
Daryaganj, New Delhi 110002
Tel. : 32996391
e-mail : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007
Tel. : 23856391

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind to Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001
Tel. : 2420404

# भूमिका

स विश्ववन्द्यो महतां कवीनां गुरुर्मनीषी कविकालिदासः।
यत्काव्य-पीयूष रस-प्रवाह-स्वादामितानन्दमयो हि लोकः॥

कविकलाधर कविवर कालिदास भारतीय साहित्य की सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं तथा प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रतिनिधि कवि हैं। इनकी कृतियों में हमारी संस्कृति के प्राणतत्त्व सुरक्षित है। वस्तुतः भारतीय दार्शनिक मनीषियों ने **सत्यं शिवं सुन्दरं** के अनुसन्धान में जो बहुमूल्य माणिरत्न प्राप्त किये हैं वे सभी कालिदास की रचनाओं में सन्निविष्ट हैं। भारतीय संस्कृति ने जिन मूल्यों को अपनी साधना एवं अनुभव के आलोक में प्रतिष्ठित किया है उनकी मन्जुल व्यञ्जना इनके काव्यों में रक्षित है।

संस्कृत साहित्य से परिचित कौन-सा ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने इसका नाम न सुना हो। जिस कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक ने उनकी कीर्तिकौमुदी को विश्वव्यापी एवं अमर बना दिया है और जिनकी कविताकामिनी की माधुरी पर मुग्ध होकर विदेशी विद्वान् भी आश्चर्यचकित हैं, उस कालिदास का नाम कौन नहीं जानता है।

## कालिदास की महत्ता

न केवल भारतवर्ष में ही अपितु सारे संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों में कालिदास का सर्वोच्च एवं प्रमुख स्थान माना गया है। विश्व की किसी भी भाषा का कोई भी कवि अभी तक कालिदास की बराबरी नहीं कर पाया है।

इनके अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक की नाट्यकला पर मुग्ध होकर एक जर्मन आलोचक ने ठीक ही कहा है कि "अंग्रेजी नाटककार शेक्सपोयर की तुलना कालिदास से करना अपनी अज्ञता का परिचय देना है, क्योंकि यदि शेक्सपीयर के सारे नाटक एक तरफ रख दिये जाँय और कालिदास का एक ही नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल दूसरे तरफ रख दिया जाय तब भी शेक्सपीयर के सारे नाटक कालिदास के एक नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल की बराबरी नहीं कर सकते हैं।" जर्मन भाषा में शकुन्तला का अनुवाद देखकर महाकवि गेटे ने आनन्दविभोर होकर इसकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि यदि स्वर्ग एवं मर्त्यलोक को एक ही स्थान पर देखना हो तो शकुन्तला को देखो।

इनकी सर्वातिशायिनी अद्‌भुत विलक्षण प्रतिभा ने सारे विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया है। आपके काव्यों में नाट्यकला की सुन्दरता, महाकाव्य की वर्णनशैली, गीतिकाव्य के सरस हृदयोद्‌गार को पढ़कर किस सहृदय का हृदय गद्‌गद नहीं हो उठता है। काव्य, नाटक, गीति जिस दिशा में देखा जाय उसी दिशा में इनकी अद्‌भुत प्रतिभा ने एक नयी कल्पना को प्रश्रय देकर संस्कृत साहित्य के स्तर को ऊँचा कर दिया है। इनके काव्यों में सरलता, प्रसादगुणसम्पन्नता, उपदेशप्रदता, धार्मिकता एवं भारतीयता का भाव कूट-कूट कर भरा हुआ है। इसीलिए संस्कृत साहित्य में इनकी बहुत बड़ी प्रतिष्ठा है।

यद्यपि संस्कृत साहित्य के काव्यसंसार में माघ, भारवि, श्रीहर्ष, सुबन्धु, दण्डी, बाण भट्ट, भास, भवभूति आदि बहुत से विद्वान् हुए हैं, जिनकी कीर्तिकौमुदी दिग्-दिगन्तर में

व्याप्त है एवं जिनकी विलक्षणा कविता प्रलयपर्यन्त सहृदयों के सरस हृदय को नवीन ज्योति प्रदान करती रहेगी तथापि इनमें जैसी अद्‌भुत कल्पना की छटा तथा काव्यकला दीख पड़ती है वैसी अन्य कवियों में नहीं। कालिदास के ग्रन्थों को देखकर निःसंकोच कहना पड़ता है कि ये सभी कवियों में शिरोमणि हैं। इनकी कविता की प्रशंसा करते हुए एक आलोचक ने ठीक ही कहा है—

**महिषं दधि सशर्करं पयः कालिदासकविता नवं वयः।**
**शारदेन्दुरबला च कोमला स्वर्गशेषमुपभुञ्जते जनाः॥**

सोड्ढल कवि ने अवन्तिसुन्दरी कथा में कहा है कि धन्य है कालिदास जिनकी कीर्ति कविता के समान दोष रहित अमृत तुल्य और मधुर है। इनकी वाणी जैसे सूर्य वंश का वर्णन कर सकी है वैसे ही उनकी कीर्ति भी समुद्र के पार पहुँच चुकी है—

**ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः शुद्धा सुधा स्वादुमती च यस्य।**
**वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्र सिन्धोः परं पारमवाप कीर्तिः॥**

महाकवि बाणभट्ट ने ( जिनके विषय में कहा जाता है कि "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्" ) अपने हर्षचरित में कालिदास की कविता पर इस प्रकार सद्भावना व्यक्त की है—

**निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।**
**प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥**

संस्कृत साहित्य में कालिदास के काव्यों में रस, माधुर्य, कोमलभाव और साभिप्राय वर्णन अद्वितीय है। इनको अद्वितीयता के सम्बन्ध में किसी मर्मज्ञ आलोचक ने बड़े ही सुन्दर कल्पना की है।

**पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः।**
**अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥**

किसी समय जब श्रेष्ठ कवियों की गणना होने लगी तब सबसे पहले कालिदास को सर्वप्रथम स्थान देकर उनका नाम कनिष्ठ अंगुलि पर रखा गया। बाद यह विचार उपस्थित हुआ कि द्वितीय स्थान किस कवि को दिया जाय? पर कालिदास जैसे विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न कवि के न रहने के कारण दूसरी अङ्गुलि अनामिका पर किसी कवि का नाम पड़ा-ही नहीं। इसलिए अमानिका ( जिस पर किसी का नाम न पड़े ) का नाम सार्थक हो गया। अर्थात् यह बिना नाम की ही रह गयी। गणना की सर्वानुभूत पद्धति यह है कि कुछ गिनते समय सबसे पहले कनिष्ठ ( छोटा ) अङ्गुलि पर ही अङ्गुष्ठ को रखते हैं। बाद अनामिका, मध्यमा तथा तर्जनी पर।

विश्वविख्यात गीतिकाव्य के रचयिता पीयूषवर्षी कवि जयदेव ने तो कालिदास को कविताकामिनी का विलास मानते हुए इन्हें कविकुलगुरु की उपाधि से विभूषित किया है।

कालिदास की कमनीयकलेवर कविता विश्व के किस सहृदय हृदय को आनन्दमग्न नहीं कर देती? महाकवि कालिदास हमारे राष्ट्रीय कवि थे तथा भारतीय संस्कृति के प्रमुख परिपोषक थे। भारत की संस्कृति इनकी काव्यवाणी में बोलती है और इनके नाटकों में अपना मनोरम रूप दिखाकर मानवमात्र के हृदय का मनोरञ्जन करती है। कालिदास ने अपने काव्य चमत्कार से समस्त संसार में ख्याति प्राप्त की है। इनके काव्यों में पदला-लित्य, रचनाचातुर्य, कल्पनाशक्ति, प्रकृतिवर्णन, एवं चरित्र-चित्रण पढ़कर विश्व का प्रत्येक

पाठक प्रफुल्ल हो उठता है, इनमें विचारगाम्भीर्य है, संसार का अनुभव है, बहुमूल्य सिद्धान्त हैं, इनके पदों से उपदेश भी मिलता है और इनकी उक्तियाँ आज भी हमारा पथप्रदर्शन करती हैं। इनकी कविता में प्रसाद गुण की अगाधता, माधुर्य का मधुर सन्निवेश, कोमलकान्तपदावली का प्राचुर्य, उपमा की अपूर्वता, अलङ्कारों की रमणीयता, छन्दों की छटा और भावसौष्ठव पर्याप्तमात्रा में विद्यमान है। इनके काव्यों को जिस दृष्टि से देखा जाय उसी से काव्यकला की कमनीयता प्रगट होती है। इनकी कविता में सरस, सरल, सुबोध तथा सुन्दर शब्द एवं भावों का साम्राज्य, सहृदयों की तो बात हो क्या है, साधारण मनुष्यों के मन को भी मुग्ध कर देता है। व्यंग्यार्थप्रतिपादन की विलक्षण शैली, रसप्रकर्ष का प्रकाशन, विस्तृत विषय का थोड़े में वर्णन, वर्ण्य विषय को सुन्दर क्रम में रखकर रोचक बनाना, स्वाभाविक भाव के द्वारा लोकोत्तरानन्दप्रदान का ढंग आदि कालिदास की कविता के विशेष गुण हैं।

कालिदास संस्कृत साहित्य के अद्वितीय महाकवि हैं। इनकी कविता की मधुरिमा के सामने अन्य कवियों की कविता फीकी पड़ जाती है। आपने जैसा मानवहृदय के सूक्ष्म भावों का निरीक्षण किया है वैसा अन्य कवियों ने नहीं। कालिदास अन्तर तथा बाह्य दोनों जगत् के सूक्ष्म निरीक्षक महाकवि हैं।

## कालिदास का जीवनवृत्त

कालिदास ने अपने जीवन के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है। किन्तु प्राचीन विचार परम्परा के अनुयायी विद्वत्समाज में यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि कालिदास उज्जयिनी के राजा महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे। ये ब्राह्मण बालक हैं। जब पांच-छ मास के थे तब मां बाप चल बसे और बालक अनाथ हो गया। संयोगवश उस पर एक ग्वाले की दृष्टि पड़ी वह उस मातृपितृविहीन बालक को अपने घर ले जाकर पाल पोसकर बढ़ाया। बचपन में इन्होंने कुछ भी नहीं पढ़ा-लिखा था। एक स्त्री के कारण इन्होंने अनमोल विद्यारत्न प्राप्त हुआ। इसकी कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है—महाराज सदानन्द की पुत्री विद्योत्तमा बड़ी विदुषी और सुन्दरी थी। उसको अपनी विद्या का बहुत बड़ा गर्व था। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि शास्त्रार्थ में मुझे जो हरा देगा उसी से मैं अपना विवाह करूँगी। उस राजकुमारी के रूप, यौवन और विद्या की प्रशंसा सुनकर दूर दूर से विद्वान् आते थे पर शास्त्रार्थ में उससे पराजित होकर चले जाते थे। जब विद्वानों ने देखा कि यह राजकुमारी किसी प्रकार भी वश में नहीं आती है, सबको हरा देती है। तब उसकी विद्वत्ता से लज्जित होकर सभी ने राय की कि किसी ढंग से इसका विवाह ऐसे महामूर्ख से साथ करा दिया जाय जिससे यह जीवन भर अपने अहंकार पर पश्चात्ताप करती रहे। परिणामस्वरूप वे लोग एक मूर्ख की खोज से पड़ गये। एक दिन कहीं रास्ते में जाते हुए देखा कि भेड़ चरानेवाला एक आदमी पेड़ के ऊपर जिस डाल पर बैठा है उसी को जड़ से काट रहा है। विद्वानों ने उसे देखकर समझा कि बहुत बड़ा मूर्ख है, इसी से विद्योत्तमा का विवाह हो जाय तो अच्छा है। बाद बड़े प्रेम से उसे नीचे बुलाया और कहा कि चलो हम लोग तुम्हारा विवाह एक राजकुमारी के साथ करा देंगे। पर देखना राजसभा में मुँह से कुछ भी नहीं बोलना जो कुछ कहना वह इशारे से कहना। लो यह धोती चादर, जामा और पगड़ी पहन लो पण्डित बन कर हम लोगों के साथ चलो'

तो तुम्हारा विवाह जरूर कर दिया जायेगा। इस प्रकार पण्डितों की बात पर विश्वास कर वह मूर्ख पण्डित बनकर राजसभा में पहुँच गया। पहले से ही उपस्थित विद्वानों ने उसका खूब सत्कार किया और उसे सबसे ऊँचा आसन पर बैठा दिया। बाद में विद्योत्तमा से कहा कि ये बृहस्पति के समान काशी के दिग्गज विद्वान् हैं। आपके साथ शास्त्रार्थ करने के लिए आये हुए हैं। किन्तु इस समय ये तपस्या करने के कारण मौन व्रत लिये हुए हैं। शास्त्रार्थ में आपको जो कुछ कहना हो संकेत से कहिये। यह सुनकर राजकुमारी ने अपने मन से यह सोचकर कि ईश्वर एक है एक अंगुली उठाई। इधर मूर्ख ने समझा कि यह अंगुली दिखाकर मेरी एक आँख फोड़ने का संकेत कर रही है। इसलिए उसकी दोनों आँखों को फोड़ने के अभिप्राय से अपनी दो अंगुलियों को उठाया। इस पर विद्योत्तमा के विरोधी उपस्थित विद्वानों ने इसका यह अर्थ लगाया कि ये यह सङ्केत कर रहे हैं कि आत्मा एक नहीं है, किन्तु दो हैं, एक जीवात्मा तथा दूसरा परमात्मा। विद्वानों के इस कुचक्र के परिणाम स्वरूप उस राजकुमारी को उससे हार मानकर पूर्व में की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार अपना विवाह उस महामूर्ख ब्राह्मणकुमार के साथ कर लेना पड़ा।

रात के समय एकान्त में जब दोनों का मिलन हुआ तब तक किसी तरफ से एक ऊँट चिल्ला उठा। राजकुमारी ने पूछा कि कौन शोर मचा रहा है? इस पर उस मूर्ख ने उत्तर दिया कि 'उट्र चिल्लाता है'। राजकुमारी ने चौंककर फिर पूछा कि कैसा शोर है? तब वह उष्ट्र के बदले 'उट्र बोलता है' ऐसा कहने लगा। क्योंकि वह जन्म से महामूर्ख था उष्ट्र का शुद्ध उच्चारण कैसे कर सकता था। बाद विद्योत्तमा को पण्डितों की धूर्तता का पता चल गया, इस पर वह पश्चात्ताप करती हुई फूट-फूट कर रोने लगीं। बाद अत्यन्त दुखी होकर उस मूर्ख को घर से बाहर निकाल दिया और कहा कि यदि तुम विद्वान् होकर आओगे तो मेरे साथ तुम्हारा सम्बन्ध हो सकता है, अन्यथा नहीं। इस प्रकार भर्त्सना देकर विद्योपार्जन के लिए अनुप्रेरित किया। इधर वह मूर्ख भी इस व्यवहार से बड़ा ही लज्जित हुआ, पहले तो सोचा कि अपना प्राण दे दूँ फिर सोच-समझकर विद्योपार्जन में परिश्रम करने लगा। भगवती काली की उसने बड़ी उपासना की, फलस्वरूप देवी की कृपा से थोड़े दिनों से वह एक ऐसा प्रभावशाली विलक्षण विद्वान हो गया कि जिसका नाम संस्कृत साहित्य तथा विश्व के इतिहास में अजर-अमर हो गया। सच है सच्ची लगन से क्या नहीं हो सकता है। ये ही हैं हमारे चरितनायक कविवर कालिदास जो उपासना द्वारा भगवती काली की कृपा से अब प्रतिभासम्पन्न महाकवि कालिदास के नाम से नाम से प्रसिद्ध हो गये।

जब वे कवि होकर अपने घर राजकन्या के पास लौटे तब घर का दरवाजा बन्द था। उसे खोलवाने के अभिप्राय से इन्होंने संस्कृत में कहा कि **"अनावृतकपाटं द्वारं देहि"** तब विदुषी पत्नी ने प्रश्न किया कि **"अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः?"** (आपकी वाणी में कुछ विशेषता आई?) कालिदास की वाणी देवी के प्रसाद से निर्मल हो चुकी थी। इसलिए कवि ने अपनी पत्नी विद्योत्तमा के प्रश्नभूत वाक्य के अन्दर वर्तमान अस्ति—कश्चित् और वाग् इन तीन शब्दों से आरम्भ करके तीन काव्य बना डाले।

अस्ति शब्द से आरम्भ करके—**अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा।**

(कुमारसम्भव महाकाव्य)

कश्चित् शब्द से आरम्भ करके—**कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा।**

(मेघदूत खण्डकाव्य)

वाग् शब्द से आरम्भ करके—**वागर्थाविव संपृक्तौ**

( रघुवश महाकाव्य )

बाद विद्योत्तमा को इस प्रकार पति को एक प्रतिभासम्पन्न महाकवि के रूप में पाकर जैसा आनन्द का अनुभव हुआ होगा वह लिखने के बाहर है। सुन्दरी नारी मनुष्य के जीवन प्रवाह में मोड़ देकर सुधार सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं। तुलसीदास नारी की भर्त्सना से हो भक्तशिरोमणि बन गये।

इसी प्रकार कालिदास और विक्रमादित्य तथा कालिदास और भोज के सम्बन्ध में भी कई किम्वदन्तियाँ विद्वत्समाज में प्रसिद्ध हैं जिन्हें यहाँ लिखकर भूमिका का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं।

कालिदास कब हुए, कहाँ हुए किस वंश में हुए और उन्होंने कितने ग्रन्थ बनाये इत्यादि प्रश्नों का अभी तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो पाया है। क्योंकि उन्होंने अपने सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों के अन्दर कहीं कुछ भी नहीं लिखा है। फिर भी विद्वानों ने उनके ग्रन्थों के आधार पर अब तक जो कल्पनाएँ की हैं उसी के आधार पर बराबर ही विचार होता आ रहा है।

## कालिदास के ग्रन्थ

किस कालिदास ने कौन से ग्रन्थ बनाये हैं? इसका निर्णय करना एक प्रकार से असम्भव-सा है, फिर भी अधिक आलोचकों तथा विद्वानों के मत में उज्जयिनी नरेश महाराजा विक्रमादित्य की अभिरूपभूयिष्ठा सभा को अलंकृत करने वाले कालिदास के ८ ग्रन्थ माने जाते हैं। दो महाकाव्य-एक कुमारसम्भव, दूसरा रघुवंश, एक खण्डकाव्य-मेघदूत, दो स्फुट काव्य-ऋतुसंहार और शृंगारतिलक और तीन नाटक—१—अभिज्ञानशाकुन्तल, २—मालविकाग्निमित्र, ३—विक्रमोर्वशीय। कुछ लोग नलोदय और श्रुतबोध को भी इन्हीं की कृति मानते हैं।

राजसभा में रहते समय कालिदास ने अपनी प्रतिभा तथा समस्यापूर्ति से बड़े बड़े विद्वानों एवं अपने आश्रयदाता विक्रमादित्य को भी अनेकों बार चकित कर दिया था।

कालिदास के ग्रन्थों के अध्ययन से मालूम पड़ता है कि ये बड़े विनोदी थे। इनके सभी ग्रन्थों में शृङ्गार रस की प्रधानता है। इसलिए राजशेखर ने कहा है—शृंगार रस के वर्णन में और मधुर शैली में एक कालिदास की बराबरी करने वाला आज तक कोई नहीं हुआ, फिर तीन कालिदास को भिन्न भिन्न विषयों में परास्त करने वाला कहाँ मिलेगा।

**एको न जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।**
**शृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी नु किम्॥**

विद्वानों की परम्परा में अनेक कालिदास होने की बात प्रसिद्ध है। दशम शताब्दी में वर्तमान राजशेखर कवि ने अपनी काव्यमीमांसा के उक्त छन्द में तीन कालिदासों का स्पष्ट उल्लेख किया है।

इसके अतिरिक्त एकादश शताब्दी में राजा भोज के दरबार में भी एक कालिदास थे, इसका पता वल्लाल कविप्रणीत भोजप्रबन्ध से लगता है।

अनेक कालिदासों को देखकर कुछ आलोचकों ने यह भी माना है कि जैसे आद्य स्वामी शङ्कराचार्य की परम्परा पर चलने वाले आगे के संन्यासियों को शङ्कराचार्य कह दिया जाता

है वैसे ही आदि कालिदास के समान कविता करने वाले कवि को भी कालिदास कहने लग गये थे। इसीलिए संस्कृत में अनेक कालिदासों की उपलब्धि विभिन्न समयों में होती है। जो कुछ हो विद्वान् लोग इस कल्पना को स्वयं समझ लें।

## कालिदास की प्रसिद्धि का कारण

अन्य ग्रन्थों के रहते हुए भी प्राच्य और पाश्चात्य देशों में कालिदास की इतनी महती प्रतिष्ठा का कारण उनका अभिज्ञानशाकुन्तल है। जब कलकत्ता हाईकोर्ट के चीफजस्टिस सर विलियम जोन्स ने शकुन्तला का अंग्रेजी में अनुवाद किया। तब उसे पढ़कर पाश्चात्य विद्वानों की आँखें खुलीं और कालिदास की कवि-कल्पना पर मुग्ध होकर उन्होंने बड़े हर्ष के साथ कालिदास को "भारतीय शेक्सपीयर" की उपाधि से विभूषित किया। और संस्कृत की तरफ उनकी रुचि बढ़ी यहाँ तक कि वेदों तक भी छान-बीन शुरू हो गयी।

देखिए—पाश्चात्य विद्वानों की कैसी श्लाघनीय गुणग्राहिता है? इसी से वे इतनी शीघ्रता से अपनी इतनी उन्नति कर गये हैं। एक तरफ पाश्चात्य विद्वान् हैं जिन्होंने अपने देश के कवियों की तो बात ही क्या है कहीं के भी विद्वानों के गुण प्रकाश करने के लिए सदा उद्यत रहते हैं। दूसरे तरफ भारतीय विद्वान् हैं जिन्हें इस दिशा में थोड़ी भी अभिरुचि नहीं है। खेद का विषय है कि पाश्चात्य अनुकरण करने में प्रवीण भारतीय विद्वानों में भी विशेष अभिरुचि नहीं। कालिदास ही क्या महाराजाधिराज विक्रमादित्य भोज, भास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, बाणभट्ट और प्रातःस्मरणीय स्वामी शङ्कराचार्य आदि विद्वानों का वास्तविक स्वरूप ही भारतीय विद्वानों ने अभी तक नहीं समझा है। पाश्चात्य विद्वान् इनका जो कुछ मूल्यांकन कर देते हैं उन्हीं के बल पर ये भी कुछ कहने लग जाते हैं। जहाँ विदेशों में एक शेक्सपीयर की कृतियों की आलोचना की असंख्य पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और बराबर लिखी भी जा रही हैं वहां भारतीय विद्वान् मौनावलम्बन में मस्त हैं। यह बड़े खेद का विषय है।

## कालिदास की जन्मभूमि

इसी प्रकार कालिदास की जन्मभूमि तथा समय के सम्बन्ध में भी विद्वानों का बहुत बड़ा मतभेद है। वंगदेशीय विद्वान इन्हें बंगाली मानते हैं और नवद्वीप को इनकी जन्मभूमि बतलाते हैं। बहुत विद्वान् कहते हैं कि इनकी जन्मभूमि कश्मीर है, क्योंकि इन्होंने हिमालय का जैसा सुन्दर वर्णन किया है वैसा दूसरे का नहीं। कुछ लोग इन्हें पंजाबी, कुछ लोग मालवीय मानते हैं। किन्तु विशिष्ट विद्वान् इन्हें उज्जयिनीनिवासी कहते हैं, क्योंकि इन्होंने अपने काव्यों में उज्जयिनी के लिये विशेष पक्षपात दिखलाया है जिससे इनकी जन्मभूमि उज्जयिनी मालूम पड़ती है।

इनके मेघदूत में कान्ताविरही यक्ष रामगिरि से सीधे उत्तर अलकापुरी जाने वाले मेघ के लिए रास्ता टेढ़ा होने पर भी सकलसम्पत्सम्पन्न उज्जयिनी को देखने के लिए मेघ से आग्रह करते हुए कहा है कि यदि तुम उज्जयिनी के विशाल महलों और मृगाक्षी रमणियों के कुटिल कटाक्षों को देखने से वञ्चित रह गये, तो तुम्हारा जीवन ही निष्फल है।

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मास्मभूरुज्जयिन्याः।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैः यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि॥ (पूर्वमेघ २९)

मेघदूत में कालिदास ने उज्जयिनी प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का जैसा सूक्ष्म वर्णन करते हुए छोटी से छोटी नदियों का भी नाम निर्देश किया है और उनका जमकर वर्णन किया है वैसा अन्यत्र नहीं।

इस प्रकार उज्जयिनी के प्रति विशेष पक्षपात पूर्ण वर्णन तथा भौगोलिक परिचय के आधार पर यही कहा जा सकता है कि कालिदास उज्जयिनी के ही निवासी थे। पर्वतों में हिमालय, नगरियों में उज्जयिनी, देवताओं में शिव, अलंकारों में उपमा और छन्दों में मन्दाक्रान्ता कालिदास को परमप्रिय थे। इनका भौगोलिक ज्ञान बहुत ही समुन्नत है जिसका पता मेघदूत, रघुवंश में रघु का दिग्विजय और इन्दुमती के स्वयम्वर में देश देश के राजाओं के वर्णन से स्पष्ट मालूम पड़ता है। कुमारसम्भव, मेघदूत और शकुन्तला के वर्णन से स्पष्ट है कि इन्हें हिमालय तथा उत्तर भारत जितना प्रिय था उतना विन्ध्य तथा दक्षिण भारत नहीं।

## कालिदास का समय

कालिदास के समय के सम्बन्ध में प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों में बहुत बड़ा मतभेद है। विभिन्न विद्वानों ने आन्तरिक प्रमाणों के आधार पर कालिदास की सत्ता ई० पू० प्रथम से लेकर छठी शताब्दी तक मानी है। इस सम्बन्ध में प्रधान रूप से दो मत हैं। एक प्राचीन और दूसरा अर्वाचीन। प्राचीन मत के पोषक संस्कृत के भारतीय विद्वान् हैं और अर्वाचीन मत के अनुयायी अंग्रेजी के पाश्चात्य विद्वान् तथा उनका अनुकरण करनेवाले कुछ भारतीय विद्वान् हैं।

**धन्वन्तरि-क्षपणकामरसिंह-शङ्कु-**
**वेतालभट्ट-घट-खर्पर-कालिदासाः ।**
**ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां**
**रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य ॥**

इस **'ज्योतिर्विदाभरण'** जनश्रुति के आधार पर भारतीय संस्कृत के विद्वान् मानते हैं कि कविवर कालिदास विद्वत्प्रिय विक्रमसंवत् के प्रवर्तक उज्जयिनी के राजा महाराजाधिराज वीर विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक प्रमुख रत्न थे जिनके बिना महाराज को एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता था। इनकी अद्भुत कवि कल्पना पर महाराज सदा मुग्ध रहते थे। कालिदास के ग्रन्थों से भी विक्रमादित्य के दरबार में रहने का संकेत मिलता है। शकुन्तला की प्रस्तावना में विक्रम की अभिरूपभूयिष्ठा परिषद् में विश्व-विख्यात शकुन्तला नाटक का अभिनय करने का संकेत है। विक्रमोर्वशीय नाटक में यद्यपि राजा पुरूरवा नायक है तथापि विक्रम का स्पष्ट नामोल्लेख है। **"अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः"** इत्यादि वचनों से भी इसकी पुष्टि होती है कि कालिदास का विक्रम से सम्बन्ध अवश्य था। रामचन्द्र महाकाव्य में तो स्पष्ट उल्लेख है कि शकाराति वीर विक्रमादित्य ने कालिदास की बहुत बड़ी ख्याति की थी। देखिए—**ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना** और सुभाषित में तो कहा गया है कि—

**वाल्मीकिप्रभवेण रामनृपतिर्व्यासेन धर्मात्मजः ।**
**व्याख्यातः किल कालिदास श्रीविक्रमार्को नृपः ॥**

इसलिए जब तक परम्परागत इन जनश्रुतियों के खण्डन करने के लिए इसके विरुद्ध

कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता तब तक **"नह्यमूला जनश्रुतिः"** के आधार पर यह मानना सर्वथा न्यायसंगत है कि महाकवि कालिदास विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों ने एक महारत्न थे। पाश्चात्त्य विद्वानों में से केवल सर विलियम जोन्स महोदय ने भारतीय प्राचीन मत को ही प्रमाणित माना है। और अंग्रेजी में शकुन्तला का अनुवाद किया है।

## कालिदास के समय के सम्बन्ध में विभिन्न मत

हमारा संस्कृत साहित्य विश्वसाहित्य में सर्वसम्पन्न और अगाध है। वेद वेदाङ्ग, ब्राह्मण वाङ्मय, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, काव्य, नाटक विविध विषयों के अनेकों ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और अनेकों हस्तलिखित रूप वर्तमान हैं। इसके अतिरिक्त अनेकों ग्रन्थ अकाल में ही काल कवलित हो चुके हैं। आदि काल से ही अनेक विद्वान् लेखकों ने अपना बुद्धि वैभव व्यय करके इस विशाल ग्रन्थ भण्डार को भरा है, परन्तु ऐतिहासिक ग्रन्थों की कमी के कारण उन लेखकों का पूर्णपरिचय नहीं प्राप्त होता है। बाण, बिल्हण, राजशेखर आदि कवियों ने अपने ग्रन्थों में अपने वंश, पाण्डित्य और आश्रयदाताओं के थोड़ा बहुत उल्लेख अवश्य किया है। पर उससे आधुनिक युग के पुरातत्त्व प्रेमी पाठकों को सन्तोष नहीं होता। फिर भी जिन्होंने अपने विषय में एक अक्षर तक नहीं लिखा है उनकी अपेक्षा इनका दिया हुआ अल्प परिचय भी ऐतिहासिक आधार के लिए सहायक ही है।

देखिए विश्व के प्रायः समस्त प्राचीन और अर्वाचीन देशी एवं विदेशी विद्वानों ने सरस्वती के वरदपुत्र कविवर कालिदास की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है और इनको कविकुल-गुरु की उपाधि से सम्मानित कर संस्कृत के कवियों में सर्वोच्च स्थान दिया है, किन्तु इनके वंश, जन्म, चरित, स्वभाव, योग्यता आदि के बारे में जानने लायक विश्वसनीय सामग्री, कहाँ उपलब्ध होती है। उनके शरीर त्याग के अनन्तर ही उनके चरित्र की ऐतिहासिक सामग्री लुप्त हो गई उनकी ऐतिहासिकता का स्थान बेसिरपैर की दन्तकथाओं ने ले लिया। संस्कृत में बल्लाल कवि का भोज प्रबन्ध ऐसे ही मनगढ़न्त कथाओं का गट्ठर है। काव्यकला की दृष्टि से इसकी शब्द योजना में भले ही माधुर्य हो, अर्थ वैशद्य में सौन्दर्य हो, परन्तु इतिहास की कसौटी पर वह खरा नहीं उतरता। भोजप्रबन्ध सोलहवीं शताब्दी की रचना है यह कालिदास के बहुत वर्षों बाद लिखा गया था। अतः इसका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत कम है। इसमें सबसे आश्चर्यजनक तो यह है कि भिन्नकालीन कवियों को एक समय में तथा एक ही कतार में लाकर बल्लाल कवि ने खड़ा कर दिया है। भोज के दरबार में कालिदास, भवभूति, भारवि, दण्डी, बाण इन सबको समस्यापूर्ति करते पायेंगे। इन कवियों को आश्रयदाता धाराधीश भोज भी उक्त कवियों के कई सौ वर्ष बाद ग्यारहवीं शताब्दी में हुए हैं। जो उनके ताम्रपत्रों से सिद्ध हो चुका है। अतः पाठक स्वयं निर्णय कर लें कि कवियों के काल निर्णय करने में भोजप्रबन्ध कितना विश्वसनीय है। इस प्रकार परम्परागत विश्वसनीय सामग्री के अभाव में कालिदास के जन्मस्थान, स्थितिकाल तथा चरित्र के सम्बन्ध में अनेकानेक कल्पनाएँ की जाती हैं। विभिन्न विद्वानों ने कालिदास के काल की दो सीमाएँ मानी हैं। इन्होंने अपने मालविकाग्निमित्र नाटक का कथानक शुंग-वंशीय राजा अग्निमित्र के चरित्र से लिया है। यह अग्निमित्र मौर्यवंश का उच्छेद कर मगध साम्राज्य को स्वायत्त करने वाले सेनापति पुष्यमित्र का सुयोग्य पुत्र था। जिसका समय ईसा से लगभग १५० वर्ष पूर्व ऐतिहासिक विद्वानों ने निर्धारित किया है। अतः कालिदास का समय इसके पूर्व नहीं हो सकता है। छठी शताब्दी में वर्तमान कन्नौज के

सम्राट् हर्षवर्द्धन ( ६०६–६४७ ई० ) के दरबार के महाकवि बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित की प्रस्तावना में कालिदास की कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और पुलकेशी द्वितीय ( ६३४ ई० ) के ऐहोल नामक ग्राम में प्राप्त शिला पर खुदी हुई प्रशस्ति में भी कालिदास को स्पष्ट उल्लेख है। इससे इसके बाद भी कालिदास नहीं हो सकते। अतः कालिदास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी के बीच कहीं न कहीं होना चाहिए। इन दो सीमाओं के आधार पर कालिदास की स्थिति के सम्बन्ध में विभिन्न ऐतिहासिक विद्वानों ने तीन मत प्रस्तुत किये हैं, क्योंकि कालिदास ने तो अपने सम्बन्ध में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है और अपनी प्रतिभा के प्रकाश से विश्व को आलोकित करने वाले इस महाकवि ने अपना उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा। अपने स्थान और समय की बात को लिखना वे अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझते थे। अतिरिक्त इससे दूसरी बात यह है कि उन्हें यह आशा न थी कि मेरी कृतियों को लेकर कभी इतिहास के भव्य भवन का निर्माण होगा। यही कारण है कि अन्य मनीषियों के समान कालिदास ने भी अपने निवास स्थान, समय तथा अपने आश्रयदाता के विवरण को नहीं प्रस्तुत किया।

कालिदास के समय के सम्बन्ध में प्रधानरूप से तीन मत उपस्थित होते हैं :—

१—कालिदास षष्ठ शताब्दी के महाकवि हैं।

२—कालिदास गुप्त नरेशों के स्वर्णयुग में हुए थे।

३—कालिदास की सत्ता ई० पू० प्रथम शताब्दी मानना आवश्यक है।

**( १ ) प्रथम मत**—इतिहास में विक्रम उपाधिधारी चार राजाओं का उल्लेख पाया जाता है जिनके समसामयिक होने के कारण कालिदास का समय विभिन्न शताब्दियों में मानना पड़ता है।

डॉ० हार्नली मानते हैं कि यशोधर्मन ने बलादित्य नरसिंह गुप्त की सहायता से कारूर के युद्ध में हूणवंश के प्रतापी राजा मिहिरकुल को हराकर विक्रमादित्य की उपाधि प्राप्त की और अपने इस बड़े विजय के उपलक्ष्य में विक्रम नाम का एक नया संवत चलाया। इसे प्राचीन सिद्ध करने की इच्छा से उसने इसे ६०० छः सौ वर्ष पहले से ही प्रचारित किया। कालिदास इन्हीं के सभापण्डित थे। अतः कालिदास का समय छठी शताब्दी है। यह नई कल्पना डॉ० फर्गुसन साहब के मस्तिष्क की उपज है। कालिदास के समय निरूपण के लिए डॉ० हार्नली ने भी इसका उपयोग करते हुए यह दिखलाया है कि यशोधर्मन की राज्य सीमा रघु के दिग्विजय-प्रसंग में वर्णित राज्यसीमा से बिल्कुल मिलती-जुलती है। और एक आलोचक ने कुमारसम्भव की देवस्तुति के सांख्यसिद्धान्त को छठी शताब्दी में लिखी गई ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका के आधार पर अवलम्बित मानकर उसके आशय ग्रहण करनेवाले कालिदास का समय भी छठी शताब्दी माना है। म० म० हरिप्रसाद शास्त्री ने कौतुकपूर्ण अनेक युक्तियों से यह सिद्ध करने प्रयास किया है कि कालिदास भारवि के बाद छठी शताब्दी में हुए थे। मैक्समूलर का भी यही मत है कि कालिदास छठी शताब्दी में उत्पन्न हुए थे क्योंकि उसी समय भारतवर्ष में संस्कृत विद्या का पुनरुज्जीवन हुआ था। साहित्य, कला, विज्ञान आदि की दृष्टि से उत्तम युग था इसमें पुराणों का अन्तिम संस्करण और वैदिक धर्म का प्रचार हुआ था ऐसे समय पर इनका होना ज्यादा संभव है।

**समीक्षा**—हूणों को पराजित करनेवाले यशोधर्मन हूणारि कहे जा सकते हैं शकारि नहीं। छठीं शताब्दी में शकों का कहीं नाम तक नहीं मिलता और न उनके शिलालेखों में

कहीं विक्रम सम्वत् स्थापना की चर्चा है। ६ सौ वर्ष पहले से यशोधर्मन द्वारा विक्रम की स्थापना भी इतिहास प्रसिद्ध है कि मालव सम्वत् के नाम से यह सम्वत् चला आता था, विक्रमादित्य ने शकों की विजय के उपलक्ष्य में इसका नाम विक्रम सम्वत् रख दिया। दूसरी बात यह है कि मन्दसौर ( मध्यभारत ) के ई० ४७३ के शिलालेख में कुमारगुप्त की प्रशस्ति के लेखक वत्सभट्टि कवि ने कालिदास के मेघदूत और ऋतुसंहार के बहुत से पद्यों का अनुकरण किया है। इसलिए कालिदास को पञ्चम शताब्दी के बाद मानना अप्रमाणिक और इतिहास विरुद्ध है।

**( २ ) दूसरा मत**—बहुत से विद्वानों ने सर्वतः समृद्ध शान्तिमय गुप्त नरेशों के स्वर्णयुग में कालिदास की सत्ता मानी है। इनमें भी पूना के प्रोफेसर के० पी० पाठक का मत है कालिदास स्कन्दगुप्त के समकालीन थे। क्योंकि रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित महाराज रघु के दिग्विजय से स्कन्दगुप्त की विजय में अधिक समानता है। किन्तु डॉ० स्मिथ, कील, मैकडोनल डॉ० रामकृष्ण भण्डारकर, पं० रामावतार शर्मा और बहुसंख्यक पाश्चात्य विद्वान् मानते हैं कि कालिदास के आश्रयदाता गुप्तनरेशों में सबसे अधिक प्रभावशाली चन्द्रगुप्त द्वितीय थे। क्योंकि शकों को भारत से बाहर निकाल देने वाले विक्रमादित्य पदवीधारी चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल में सब तरह से शान्ति थी और भारतीय कला कौशल की उन्नति परम सीमा तक पहुँच गई थी। कालिदास के ग्रन्थों के समान गम्भीर विचार के ग्रन्थ ऐसे ही शान्तिमय समय में स्थिर चित्त से लिखे जा सकते हैं एवं रघुवंश के छठे सर्ग में वर्णित शान्ति का समुचित समय चन्द्रगुप्त द्वितीय का ही समय था—

**यस्मिन् महीं शासति वाणिनीनां निद्रां विहारार्ध पथे गतानाम्।**

इसके अतिरिक्त इन्दुमती के स्वयम्वर में सम्मिलित मगधराज के लिए चन्द्रमा की जो उपमा दी गई उसमें चन्द्रगुप्त नाम का ही संकेत है।

**कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्।**
**नक्षत्र-तारा-ग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः॥ ६।२२**

**समीक्षा**—मेघदूत का भूगोल गुप्तकाल के भूगोल से समता रखता है। गुप्तकाल के स्वर्णयुग में कालिदास की सत्ता मानना भी ठीक नहीं क्योंकि केवल चन्द्रगुप्त द्वितीय ही विक्रमादित्य नहीं थे, किन्तु इनसे पूर्व मालवा में राज्य करने वाले विक्रमादित्य का पता इतिहास को मालूम है। दूसरी बात यह है कि यदि कालिदास गुप्तकाल में होते तो प्रयाग के स्कन्दगुप्त के स्तम्भ पर कालिदास की रचना न होकर साधारण पण्डित हरिसेन से क्यों लिखवाया जाता। इसलिए कालिदास को गुप्तकाल में मानना सर्वथा असंगत है।

**( ३ ) तीसरा मत**—उपर्युक्त कल्पनाओं से असन्तुष्ट होकर कुछ विद्वानों ने ६८ इसवी की गाथासप्तशती के पद्य में दानशील राजा विक्रमादित्य के स्पष्ट उल्लेख मिलने के आधार पर ईसा के **पूर्व** विक्रमादित्य की सत्ता प्रामाणिक रूप से स्थिर मानी है। इसके शकारि होने में भी किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है क्योंकि ईसा से १५० वर्ष पूर्व भारत में आने वाले शकों का पता इतिहास में मिलता है। अतः इन्हीं की सभा में कालिदास की सत्ता मानना युक्तियुक्त एवं प्रामाणिक प्रतीत होता है। रघुवंश के षष्ठ सर्ग के ५९ वें श्लोक—**'अथोरगाख्यस्य पुरस्य नाथं'** में पाण्डयनरेश का वर्णन करते हुए कालिदास ने उरगपुर को उनकी राजधानी बतलाया है। उरियापुर का ही संस्कृत रूप उरगपुर जान

पड़ता है। इतिहास के अनुसार प्रथम शताब्दी में उरियापुर पाण्ड्य नरेशों की राजधानी थी। इसलिए कालिदास को प्रथम शताब्दी में मानना ठीक ही है।

दूसरी बात यह है कि अभिज्ञान शाकुन्तल के मङ्गलाचरण—**'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या'** में सूचित धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं से भी मालूम पड़ता है कि कालिदास ऐसे समय में हुए थे कि जब लोग बौद्धधर्म के प्रभाव से हिन्दू देवी-देवताओं के विषय में श्रद्धा-विहीन होते जा रहे थे।

ऊर्ध्वाङ्कित पद्य में 'प्रत्यक्षाभिः' इस पद का प्रयोग करके कालिदास ने देवता विषयक अविश्वास को दूर करने का प्रयास किया है। जिस भूतभावन भगवान् शिव की जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी और वायु इन आठ मूर्तियों का हमें सर्वदा प्रत्यक्ष दर्शन होता है उसके विषय में अश्रद्धा कैसे हो सकती है। इसी प्रकार शकुन्तला के षष्ठ अङ्क में दुष्यन्त की अँगूठी को बेचने के समय राजपुरुषों द्वारा पकड़े जाने पर मछली मारना अपनी जाति का कर्तव्य बतलाता हुआ धीवर कहता है कि—भगवान् ने जिस जाति को जो भला-बुरा काम दे दिया है वह छोड़ा नहीं जा सकता। देखिए—पशुओं को मारना तो बुरा काम है, पर बड़े-बड़े दयावान् और वेद जानने वाले ब्राह्मण भी यज्ञ में पशुओं को मारते ही हैं। इस वर्णन से मालूम पड़ता है कि कालिदास ने बौद्धधर्म के प्राबल्य के कारण यज्ञों के विषय में होनेवाली हिंसाजन्य निन्दा और अश्रद्धा को दूर करने का प्रयास करते हुए आवश्यक कर्तव्य होने के कारण हिंसा होने पर भी ब्राह्मणों को यज्ञ करना जातीय धर्म बतलाया है। अतः कुलपरम्परा जाति धर्म का त्याग करना उचित नहीं, यज्ञों का अनुष्ठान करना ब्राह्मणों के लिए सर्वथा श्रेयस्कर है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि कालिदास उस समय में थे जब वर्ण व्यवस्था और यज्ञादि-खण्डन करने के कारण बौद्धधर्म के प्रति अश्रद्धा बढ़ती जा रही थी और ब्राह्मण धर्म का अभ्युदय हो रहा था। यह समय ई० पू० द्वितीय शताब्दी के बाद सुङ्गवंशीय नरेशों के बाद का है। इसलिये कालिदास का जन्म प्रथम शताब्दी में मानना न्यायसंगत है।

पुष्यमित्र शुंग ने बौद्धों को हटाकर वैदिक धर्म की स्थापना की थी। वैदिक संस्कृति की जो महिमा कालिदास को रचनाओं में दीखती है वह उस समय ही हो सकती थी। उस समय संस्कृत एवं काव्य का इतना प्रचार था कि अश्वघोष को भी संस्कृत में रचना करने के लिए विवश होना पड़ा। जब कि स्वयं बुद्ध ने पालि में उपदेश दिये और बौद्ध-ग्रन्थ पालि में ही लिपिबद्ध किये जाते थे।

प्रथम शताब्दी में वर्तमान कनिष्क की सभा के महापण्डित बौद्ध कवि अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित में कालिदास के बहुत से पद्यों का अनुकरण किया है। दोनों के काव्यों में अत्यधिक साम्य है। कथानक की सृष्टि और विकास, वर्णन-शैली, अलंकारों का प्रयोग, छन्दो का चयन एवं शब्दों का विन्यास दोनों कलाकारों में से एक-दूसरे से प्रभावित हैं।

जैसे—रघुवंश में—**अलं महीपाल तव श्रमेण।**

बुद्धचरित में—**मोघं श्रम नार्हसि मार कर्तुम्।**

इसी प्रकार कालिदास ने रघुवंश के सप्तम सर्ग में इन्दुमती के स्वयम्वर ले लौटे हुए अज को देखने के लिए उत्सुक स्त्रियों का जैसा सुन्दर वर्णन किया है। ठीक वैसा ही वर्णन अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित के तृतीय सर्ग में शुद्धोदन की समृद्ध नगरी में प्रथम बार

प्रवेश करते हुए राजकुमार सिद्धार्थ को देखने के लिए अत्युत्कण्ठा पूर्वक दौड़ती हुई नारियों का किया है ।

इन दोनों महाकवियों के वर्णन में बहुत बड़ी समानता है । अश्वघोष द्वारा कालिदास का अनुकरण करने के बल पर यह सिद्ध किया जाता है कि कालिदास अश्वघोष के पहले ई० पूर्व प्रथम शताब्दी ये उत्पन्न महाकवि हैं ।

## कालिदास की कविताकला

कविकुलकलाधर कविवर कालिदास की कोमल कमनीय कलेवर कविता विश्व के किस सहृदय के हृदय को आनन्द मग्न नहीं कर देती है ।

इनकी कविता में प्रसाद गुण की, अगाधता, माधुर्यका मधुर सन्निवेश, कोमलकान्त पदावली, उपमा की अपूर्वता, अलंकारों की रमणीयता, छन्दों की छटा और भावसौष्ठव आदि पर्याप्त मात्रा में रहने के कारण उनकी कविता विश्वविख्यात बन गई है । इनके काव्यों को जिस दृष्टि से देखा जाय उसी से काव्य कला की कमनीयता प्रकट होती है । इनकी कविता में सरस, सरल सुबोध तथा सुन्दर-सुन्दर शब्दों एवं भावों का साम्राज्य मन को मुग्ध कर देता है ।

वास्तव में कालिदास की कविता में सहृदयों की तो बात ही क्या है, साधारण व्यक्ति को भी जैसा प्रसाद गुण का रसास्वाद शब्द और अर्थ की निर्दोषता, गुण और अलंकारों का चमत्कार मिलता है। वैसा दूसरे किसी कवि में नहीं मिलता है। व्यङ्गार्थ प्रतिपादन की विलक्षण शैली, रसप्रकर्ष का प्रकाशन, विस्तृत विषय का थोड़े में वर्णन, वर्ण्य विषय को सुन्दर क्रम से रखकर रोचक बनाना, स्वाभाविक भाव के द्वारा लोकोत्तर प्रदान का ढंग आदि कालिदास की कविता का स्वाभाविक गुण हैं । ध्वनिकाव्य का उत्तम गुण व्यञ्जना-व्यापार कालिदास के सभी ग्रन्थों में अनुस्यूत है ।

कालिदास संस्कृत साहित्य के अद्वितीय महाकवि माने जाते हैं । इनकी कविता की मधुरिमा के सामने अन्य कवियों की कविता फीकी पड़ जाती है । मानव हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का आपने जैसा निरीक्षण किया है वैसा अन्य कवियों ने नहीं ? कालिदास अन्तर्जगत् तथा बाह्यजगत् दोनों के सूक्ष्म निरीक्षक एवं पारखी कवि हैं। समष्टि दृष्टि से इनकी कविता में प्रसाद गुण तो सर्वत्र प्राप्त ही है पर अन्य कवियों की अपेक्षा इनका उपमा अलंकार स्वभाव सुन्दर होता है और वे उपमा के तो बेजोड़ कवि माने जाते हैं ।

वाल्मीकि और व्यास के बाद विद्वत्समाज में सर्वप्रथम महाकवि के नाम से कालिदास ही प्रसिद्ध हैं । कवि में जितने गुण होने चाहिए वे सभी कालिदास में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं । इनकी नैसर्गिक रचना में भाषानुकूल भाव रखने की अद्भुत कला है । प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण और मानव हृदय के अन्तर्निहित भावों को व्यक्त करने में कालिदास को स्वतः सिद्धि प्राप्त है, इसीलिए विदेश के समीक्षक विद्वान् भी मुक्त कण्ठ से कालिदास की कविता कला की प्रशंसा करते हुए इनके काव्यों का आदर करते हैं । मल्लिनाथ ने तो स्पष्ट कहा है कि कालिदास की वाणी का वास्तविक रहस्य हमारे जैसे लोग तो नहीं समझ पाते केवल तीन व्यक्ति ही समझते हैं, एक तो विधाता=ब्रह्मा, दूसरी वाग्देवी सरस्वती तथा तीसरे स्वयं कालिदास ।

कालिदासगिरां सारं कालिदाससरस्वती ।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशाः ।।

कवि ने शकुन्तला के चतुर्थ अंक में निसर्गसुन्दरी शकुन्तला की बिदाई के समय केवल आश्रमवासी मनुष्यों को ही नहीं, किन्तु मृग, मयूर, चक्रवाक और निर्जीव वृक्ष लताओं को भी रुला दिया है। यह अद्भुत कला कवि की अपनी विशिष्टता है। शकुन्तला के प्रति महर्षि कण्व का उपदेश और दुष्यन्त के प्रति सन्देश तो प्रत्येक गृहस्थ के लिए आदरणीय, अनुकरणीय और आचरणीय हैं। तपोवन के पावन वातावरण में पली हुई शकुन्तला मानो साक्षात् प्रकृति की कन्या है। यहाँ के निवासी सजीवों एवं निर्जीवों के प्रति उसका हृदय बान्धव स्नेह से आप्लुत है।

## रसपरिपाक

यों तो कालिदास ने अपनी रचना में स्थान-स्थानपर सभी रसों का सन्निवेश किया है, पर ये प्रधान रूप से शृङ्गार-रस के रसिक कवि हैं। इनकी रचनाओं में शृङ्गार रस ओत-प्रोत है। इनके काव्यों में सम्भोग शृंगार का प्रकाशमान रूप तथा विप्रलम्भ शृङ्गार का करुणामय रूप पाठक एवं श्रोताओं के हृदय को चमत्कृत कर देते हैं। मेघदूत में विप्रलम्भ और कुमारसम्भव में सम्भोग शृङ्गार का प्राचुर्य है। सम्भोग शृंगार की अपेक्षा इनका विप्रलम्भ शृंगार उच्चकोटि का होता है। उत्तर मेघदूत का उदाहरण देखिए—

**त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-**
**मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।**
**अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे**
**क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः॥ ४७॥**

पर्वत के चट्टानों पर गैरिकादि धातुओं से प्रणयकुपिता अपनी प्रियतमा की मूर्ति बनाकर क्षमा के लिए उसके चरणों पर गिरने का प्रयत्न करते समय अश्रुप्रवाह के उमड़ आने से कल्पित सम्भोग में भी बाधा पड़ने के कारण क्षुब्धहृदय यक्ष का क्रूर कृतान्त-विषयक उपालम्भ पढ़कर किस सहृदय का हृदय व्यथित नहीं हो उठता है? निर्जीव मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रियतमा के पास प्रेममय सन्देश भेजनेवाले यक्ष के प्रेमोन्माद को पढ़कर कालिदास की काव्यकला की प्रशंसा किये बिना कौन रह सकता है?

कालिदास के करुण रस का वर्णन भी स्वाभाविक होता है। कुमारसम्भव के चतुर्थ सर्ग में शङ्कर की क्रोधाग्नि से कामदेव के भस्मसात् हो जाने पर रति का विलाप तथा रघुवंश के अष्टम सर्ग में आकाश से गिरी हुई पुष्पमाला के आघात से इन्दुमती के मर जाने पर अज का विलाप करुण रस के मर्मस्पर्शी उदाहरण हैं। इन्दुमती के मर जाने पर अज विलाप करते हुए कहते हैं—

**स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।**
**विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया॥ ८।४६**

कुमारसम्भव में भगवान् शङ्कर के ललाटस्थ तृतीय नेत्र से निर्गत अग्नि से भस्मसात् हुए अपने पति के शरीर को देखकर रति विलाप करती हुई कहती है—

**शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित् प्रलीयते।**
**प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि॥ ४।३३**

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के चतुर्थ अङ्क में शकुन्तला को अपने पति के घर जाते समय का कवि ने ऐसा मर्मस्पर्शी करुण रस का चित्रण अङ्कित किया है कि विषयसुख से

विमुख कण्व जैसे धीर महर्षि भी रोये बिना नहीं रहे। कण्व मुनि कहते हैं—आज शकुन्तला अपने पति के घर जायेगी। इस विचार में मेरा हृदय दुःख से भर गया है, कण्ठ गद्गद हो रहा है। चिन्ता से दृष्टि जड़ हो रही है। मैं अरण्यवासी होकर भी कन्या के प्रेम से इतना व्याकुल हो रहा हूँ, तो गृहस्थ लोगों की कन्या के विरह में क्या दशा होती होगी ?

**यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया**
**कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।**
**वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः**
**पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ ४।९**

कालिदास की कविता में हास्य रस भी ऊँचे दर्जे का है। इनकी कविता पढ़कर पाठक मुस्करा देता है, ठहाके की हँसी नहीं हँसता। कुमारसम्भव महाकाव्य के पञ्चमसर्ग में पार्वती के आश्रम पर आकर भगवान् शङ्कर की निन्दा करता हुआ कपटवटु पार्वती का उपहास करता हुआ कहता है—

**इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना यदूढया वारणराजहार्यया।**
**विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति ॥ ५।७**

साहित्य जगत् के समालोचक शेक्सपियर को अन्तर्जगत् का तथा कालिदास को वाह्य-जगत् का कलाकार कवि कहते हैं। प्रकृति के मनोरम चित्रण में कालिदास अद्वितीय हैं। इनके प्रकृति-चित्रण में रमणीयता, भव्यता, सजीवता तथा स्वाभाविकता ओत-प्रोत है।

प्रकृति के साथ कालिदास की अपूर्व सहानुभूति है। प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन जैसा इन्होंने किया है वैसा संस्कृत-जगत् का कोई अन्य कवि नहीं कर पाया है। इन्होंने प्रकृति के अनुपम दृश्यों का सच्चा चित्र खींचा है। ये कोमल रूप के उपासक हैं, भवभूति के समान उग्र रूप से इनका प्रेम नहीं है। ये प्रायः शान्त तपोवन, नदी-तट, उपवन, प्रासाद, भ्रमर, मृग तथा कोकिल आदि का वर्णन करने में अपना सौभाग्य समझते हैं। इन्हें विन्ध्याचल पर्वत की अपेक्षा हिमालय से अधिक प्रेम है। इन्होंने अपने कुमार-सम्भव में हिमालय का सजीव वर्णन किया है। इन्हें ६ ऋतुओं में ग्रीष्म और वसन्त ऋतु बहुत ही प्रिय हैं।

जहाँ पाश्चात्य कवियों के प्रकृतिवर्णन नग्न होते हैं, वहाँ भारतीय कवियों का प्रकृति-वर्णन अलंकृत होता है। पाश्चात्य कवि बिना किसी आवरण के प्रकृति को उसके असली रूप में उपस्थित कर देते हैं, परन्तु भारतीय कवि प्रकृति को मनोरम मुग्धकारी विविध आभूषणों से सुसज्जित कर पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं। महाकवि कालिदास में इस अलंकृत वर्णनशैली की ही निपुणता है। इतना ही नहीं, इनके प्रकृति-वर्णन में वैज्ञानिक ज्ञान का पर्याप्त परिचय मिलता है।

रघुवंश के नवम सर्ग में वायु से हिलाई गई लता को लक्ष्य कर बसन्त ऋतु का कैसा मनोरंजक वर्णन है—

**श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः।**
**उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः ॥ ९।३५**

स्त्री और पुरुषों के विविध मनोभावों का इन्हें पूर्ण ज्ञान है, उसे व्यक्त करने के लिए

इन्होंने अभिधा शक्ति का प्रयोग न कर व्यंजना शक्ति से ही काम लिया है। इससे इनको कविता में और भी चमत्कार आ जाता है।

जब अङ्गिरा ऋषि हिमालय के पास आकर कहने लगे कि अपनी पुत्री पार्वती का विवाह भगवान् सदाशिव के साथ कर दीजिए। उस समय पार्वती का वर्णन करते हुए अन्तर्जगत् के पारखी कालिदास कहते हैं कि—अङ्गिरा ऋषिके इस प्रकार कहने समय अपने पिता हिमालय के पास खड़ी हुई पार्वती लज्जावश मुँह नीचे करके हाथ में लिए लीलाकमल के पत्रों को गिनने लगी—

**एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।**
**लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती॥ ६।८४**

इस श्लोक में कवि ने लज्जा शब्द का प्रयोग नहीं किया है; किन्तु लज्जा के उदय होने पर पार्वती ने जो कार्य किया है, उसी का वर्णन किया है, वही कार्य हृदयगत लज्जाभाव को व्यक्त कर देता है।

## कालिदास की प्रियवस्तुयें

पर्वतों में हिमालय, नगरियों में उज्जयिनी, देवताओं में शिव, छन्दों में मन्दक्रान्ता, अलङ्कारों में उपमा, रसों में श्रृङ्गार और ऋतुओं में वसन्त कालिदास को परम प्रिय थे।

संस्कृत साहित्य के लक्षणकार आचार्यों ने गौडी पाञ्चाली, वैदर्भी और लाटी नाम की चार रीतियाँ तथा माधुर्य, ओज और प्रसाद ये ३ गुण माने हैं गौडी रीति में बड़े-बड़े समास तथा पाञ्चाली में छोटे-छोटे समास होते हैं। वैदर्भी रीति में समास प्रायः नहीं के बराबर होते हैं। गौडी में ओज गुण, पाञ्चाली में माधुर्य गुण और वैदर्भी में प्रसाद गुण की प्रधानता होती है।

कालिदास की कविता में वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण ओत-प्रोत है। प्रसाद गुण का प्राधान्य होने के कारण कालिदास की कविता शीघ्र ही समझ में आ जाती है।

कालिदास का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। इनकी भाषा व्याकरण से परिष्कृत सरल, सरस एवं सुबोध होती है। ये—'च, तु, हि, वै, किल, खलु' आदि का प्रयोग केवल पाद की पूर्ति के लिए नहीं करते हैं; किन्तु उनका जहाँ प्रयोग करते हैं वहाँ वे सार्थक होते हैं। इनके शब्द नपे-तुले होते हैं, और इनके वाक्यों में क्रियापद प्रायः स्पष्ट होते हैं। ये किसी बात को घुमा-फिरा कर कहने की अपेक्षा सीधे कह देना अधिक पसन्द करते हैं। थोड़े शब्दों में अधिक अर्थ व्यक्त करने की प्रवृत्ति इनमें विशेषरूप से दीख पड़ती है।

जैसे भिन्न-भिन्न वर्णों के उच्चारण के लिए भिन्न-भिन्न कण्ठ-ताल्वादि के आघातों के भेद हैं और भिन्न-भिन्न वर्ण, भिन्न-भिन्न रस, भाव एवं अलङ्कारों के व्यञ्जक हैं वैसे ही विभिन्न रसों को व्यक्त करने के लिए विभिन्न छन्द भी हैं। श्रृङ्गार रस के व्यञ्जक वर्णों के द्वारा ही श्रृङ्गार रस की पुष्टि तथा वीर रस के व्यञ्जक वर्णों से बीर रस की पुष्टि हो सकती है, अन्य वर्णों से नहीं। तथापि केवल शब्द योजना ही काव्य में रस सिद्धि के लिए पर्याप्त नहीं है उसके लिये छन्द की योजना भी अपेक्षित है। क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक में कहा है कि काव्य में रस तथा वर्णनीय वस्तु के अनुसार छन्दों का विनियोग करना चाहिये—

**काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।**
**कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभाववित्॥**

कालिदास का छन्द-विषयक ज्ञान भी गम्भीर और पूर्ण है। इन्होंने अपने काव्यों में प्रायः सभी प्रमुख छन्दों का प्रयोग किया है। ये छन्दों का चुनाव रस और वर्ण्य वस्तु के अनुकूल ही करते हैं। कालिदास मन्दाक्रान्ता छन्द के सिद्धहस्त कवि माने जाते हैं।

इन्होंने अपने खण्ड काव्य मेघदूत को केवल मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा है—

**सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति।**
**सदश्वस्य दमस्येव कम्बोजतुरगाङ्गना ॥**

## कालिदास की विशेषता

प्रत्येक कवि में किसी न किसी विषय की खास एक विशेषता रहती है। कविवर कालिदास उपमा अलंकार के आचार्य माने जाते हैं। तत्तत् कवियों की विशेषता व्यक्त करते हुए एक आलोचक ने बहुत ठीक कहा है—

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**दण्डिनः पदलालित्यं त्रयोऽप्येकैकतोऽधिकाः ॥**

## उपमा की छटा

कालिदास की उपमायें एक से एक बढ़कर हैं। इन्होंने नई-नई उपमाओं की उद्भावना की है। इनकी उपमाओं के विशेष चमत्कार का कारण यह है कि प्रायः इनकी उपमायें अन्तर्जगत् और बाह्य जगत् दोनों से ली गई हैं। इन्होंने उपमाओं में उपमान तथा उपमेय के वचन और लिंग तक का भी विचार किया है। रघुवंश के षष्ठ सर्ग में इन्दुमती के स्वयंवर में उपस्थित राजाओं की दशा का वर्णन करते हुए कालिदास लिखते हैं—स्वयम्बर में उपस्थित जिन-जिन राजाओं को छोड़कर जब इन्दुमती आगे बढ़ जाती थी तब वे राजे दीपशिखा के द्वारा छोड़े गये महलों के समान प्रतीत होते थे। यहाँ निराश राजाओं की विषण्णता तथा खिन्नता की अभिव्यक्ति इस उपमा के द्वारा बड़ी सुन्दरता से दी गई है।

**सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रियं यं व्यतीयाय पतिम्वरा सा।**
**नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे निवर्णभावं स स भूमिपालः ॥ ६।६७**

इस श्लोकमें इन्दुमती की उपमा स्त्रीवाची दीपशिखा शब्द से दी गई है और राजा की उपमा पुंलिङ्ग अट्ट शब्द से दी गई है। लिंग की समता के साथ-साथ वचन की समता भी दर्शनीय है। इसी उपमासौष्ठव पर मुग्ध होकर साहित्यिक विद्वत्समुदाय ने इस महाकवि-को दीपशिखा कालिदास कहना आरम्भ कर दिया।

रघुवंश के द्वितीय सर्ग में सायंकाल के समय जब दिलीप वसिष्टजी की गाय नन्दिनीको चराकर आश्रम की ओर लौटते हैं और लाल रंग की गाय आगे आगे है, शुभ्रवस्त्रधारी दिलीप पीछे पीछे हैं हरितवस्त्र धारिणी सुदक्षिणा उनकी प्रतीक्षा करती हुई स्वागत करने के लिए खड़ी है, दोनों के बीच में स्थित नन्दिनी की शोभा जैसी प्रतीत हो रही है जैसे दिन और रात के मध्य रक्तवर्णा सन्ध्या।

**पुरष्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।**
**तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥ २।२०**

यहाँ राजा की उपमा दिनसे, सुदक्षिणा की उपमा रात्रि से और गाय नन्दिनी की उपमा लाल सन्ध्या से दी गई है। और भी देखिए—

**शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना।**
**तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ॥ ३।२**

शरीर को दुर्बलता के कारण कुछ ही आभूषण पहनी हुई उस सुदक्षिणा की लोध्रपुष्प सदृश पीले मुख से ऐसी शोभा हुई जैसे प्रातःकाल टिमटिमाते हुए ताराओं से युक्त रात की शोभा पीले वर्ण के चन्द्रमा से होती है। यह भाव व्यक्त करने के लिए कवि ने लोध्रपाण्डु मुख से चन्द्रमा की एवं एकाध तारायुक्त प्रभातकल्पशर्वरी से सुदक्षिणा की उपमा देते हुए कितने सुन्दर ढङ्ग से पूर्णोपमा व्यक्त की है। इस प्रकार कालिदास की कविता में स्थल-स्थल पर अनूठी उपमा का चमत्कार मिलता है। इनकी उपमाओं में स्वाभाविकता का उत्कर्ष है जिससे पाठक का हृदय सहसा चमत्कृत हो उठता है।

कुमारसंभव में तपस्या के लिए आभूषणों का परित्याग कर केवल वल्कल वस्त्र धारण करने वाली पार्वती चन्द्रमा तथा ताराओं में मण्डित अरुणोदय युक्त रजनी के समान बतलाई गई है। स्तनों के भार से कुछ झुकी हुई आतप सदृश लालवस्त्र धारण की हुई पार्वती फूलों के गुच्छों से झुकी हुई नवीन लाल पल्लवों से सुशोभित संचारिणी लता के समान प्रतीत होती थी—

**पर्याप्तपुष्पस्तनभारनम्रा सञ्चारिणी पल्लविनी लतेव।**

रघुवंश के प्रथम सर्ग में कवि की उपमा देखने योग्य है। वशिष्ठ की नन्दिनी गौ का शरीर नये पत्तों के समान कोमल एवं लाल है, उसके मस्तक पर भूरे वालों की वक्र रेखा बनी हुई है जिससे वह ऐसी शोभा पा रही है जैसे लाल सन्ध्या के भाल पर द्वितीया का चन्द्रमा चढ़ आया हो—

**ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला।**
**बिभ्रती श्वेतरोमाङ्कं सन्ध्येव शशिनं नवम् ॥ १।८३**
**श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् २।२, जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम्। २।३**

नादसौन्दर्य की प्रसूतिके लिए अनुप्रास अलङ्कार की योजना उनकी रचनाओं में नितान्त मनोरम बन गई है। जैसे रघुवंश में—

**जीवन् पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ ! पितेव पासि ॥ २।४८**

अर्थान्तरन्यास का उदाहरण शकुन्तला में देखिए—

**इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी।**
**किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ १।१६**

रघुवंश में इन्दुमती स्वयंम्वर में—

**नासौ न काम्यो न च वेद सम्यग्द्रष्टुं न सा भिन्नरुचिर्हि लोकः। ६।३०**

पूर्वमेघ में—

**इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे।**
**कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥**

उत्तरमेघ में—

**कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।**
**नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ ५२ ॥**

शकुन्तला के प्रथम अंक में हरिण भाग रहा है। राजा दुष्यन्त उसका पीछा कर रहा है। उसके धनुष पर बाण चढ़ा हुआ है। तपस्वी राजा को रोकते हुए कहता है—राजन्! पुष्पराशि की तरह सुकोमल शरीर वाला यह हरिण आपके अग्नितुल्य बाणों को क्या बर्दाश्त कर सकेगा। अहह, कहाँ बेचारों हरिणों का अति चंचल प्राण और कहाँ तीक्ष्ण प्रहार करने वाले वज्र के समान कठोर आपके बाण। अतः आप इस पर बाण प्रहार न करें—

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते ॥ १०

इसी प्रकार शकुन्तला को पुष्पित लता के समान बतलाकर कालिदास ने उसके सौन्दर्य में कितनी मादकता भर दी है। राजा दुष्यन्त की दृष्टि में शकुन्तला लता से जरा भी कम नहीं है। उसके अनुपम सौन्दर्य की छटा अत्यन्त लोभनीय है। शकुन्तला का अधरोष्ठ नव पल्लव के समान लाल है, दोनों भुजायें कोमल शाखाओं के सदृश हैं। इसके अङ्गों में फूल की तरह लुभावना यौवन व्याप्त है।

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥ १।२१

इस प्रकार प्रायः कालिदास सभी प्रचलित अलङ्कारों के प्रयोग में दक्ष हैं किन्तु उपमा अलंकार पर इनका चमत्कारिक अधिकार है। केवल संस्कृत के ही नहीं, अपितु विश्व का भी कोई ऐसा कवि नहीं है। जो इनकी उपमा कला की समता कर सके। इनकी रचनाओं में उपमा की प्रचुरता के साथ ही उसका सौष्ठव भी देखते ही बनता है। इनकी उपमाओं की रसपेशलता अत्यन्त हृदयावर्जक है। सन्दर्भ को सुन्दर बनाने की कला में वे पारङ्गत हैं।

## कालिदास के अध्ययन-स्थल की कल्पना

प्राचीन काल में विविध विद्याओं के गम्भीर अध्ययन के लिए भारत में अनेक विद्यापीठ थे पंजाब में तक्षशिला, मगध में नालन्दा, सौराष्ट्र में वलभी और मालवा में उज्जैन। इनके अतिरिक्त जगह-जगह विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा स्थापित अनेक गुरुकुल थे, जिनमें वेद, वेदाङ्ग, व्याकरण, ज्योतिष, धर्मशास्त्र दर्शन आदि का अध्ययन ही नहीं होता था बल्कि सुधामधुर काव्यों के निर्माण के लिए भी प्रोत्साहन मिलता था। कालिदास के ग्रन्थों के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि उनकी शिक्षा भी ऐसे ही किसी गुरुकुल में हुई होगी। क्योंकि वे आश्रमों का वर्णन साङ्गोपाङ्ग करते हैं। कालिदास ने एक स्थल पर कहा है कि ऐसे गुरुकुलों में चौदह विद्याओं का अभ्यास कराया जाता है। याज्ञवल्क्यस्मृति में चार वेद, शिक्षा, व्याकरण आदि छः अङ्ग, पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र ये मिलकर धर्म के मूलभूत चौदह विद्याएँ हैं—

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

## कालिदास के विचार

कालिदास को वैदिक धर्म पर पूर्ण विश्वास है और ये वर्णाश्रम व्यवस्था को पूर्णरूप

से मानते हैं। इन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पर अपार श्रद्धा है। ये सभी को त्याग और तपस्या की शिक्षा देते हैं। इनको नगर निवास की अपेक्षा तपोवन का जीवन बहुत अच्छा लगता है।

ये आशुतोष भगवान् सदाशिव के परम उपासक महाकवि हैं। इन्होंने अपने तीनों नाटकों में भगवान् शङ्कर का ही स्मरण किया है और रघुवंश के मङ्गलाचरण में शिव पार्वती की वन्दना की है इनके सभी ग्रन्थों में शिव की महिमा विशेष रूप से वर्णित पाई जाती है। इनके नाटकों के भरतवाक्य से मालूम होता है कि ये भगवान् सदाशिव से विश्व कल्याण की कामना रखते थे। ये व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्त्व देते हैं और सभी को लोककल्याणार्थ कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। ये आशावादी कवि हैं, निराशावादी नहीं। ये सत्कार्यों के सम्पादन द्वारा परलोक मार्ग को सुगम बनाना मानव जीवन का वास्तविक सदुपयोग और अन्तिम लक्ष्य समझते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल के भरत वाक्य में भगवान् सदाशिव से पुनर्जन्म को दूर करने के लिए प्रार्थना करते हुऐ कहते हैं—

"ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः।"

कवि ने कुमारसंभव के द्वितीय सर्ग में देवताओं की प्रार्थना का उत्तर देते समय स्वयं ब्रह्मा जी से कहवाया है मुझे और विष्णु को भी शिवजी के प्रभाव का ज्ञान नहीं होता—

स हि देवः परं ज्योतिस्तमः पारे व्यवस्थितम्।
परिच्छिन्नप्रभावर्द्धि न मया न च विष्णुना ॥ २।५८

अतः कालिदास के शिवोपासक होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

कालिदास भारतीय संस्कृति के सच्चे उपासक महाकवि थे। इसका आभास उनके काव्यों में स्थान-स्थान पर मिलता है। जैसे रघुवंश महाकाव्य में कालिदास ने रघुवंशी राजाओं को निमित्त वनाकर उदारचरित पुरुषों का स्वभाव पाठकों के समक्ष रखा है और उनकी योग्यता का वर्णन करने के बहाने कितने ही प्रकार के रमणीय उपदेश प्राणिमात्र के लिए दिये हैं। चक्रवर्ती राजा दिलीप द्वारा २२ दिन महर्षि वशिष्ठ की नन्दिनी गौ की सेवा कराकर वरदान के रूप में पुत्रप्राप्तिरूप मनोरथ सिद्धि एवं इन्द्र द्वारा दिलीप के आश्वमेधिक अश्वहरण के बाद गोमूत्र को नेत्र में लगाते ही रघुको दिव्य दृष्टि प्राप्त करना आदि से गोसेवा का अलौकिक फल दिखाकर संसार को गो-सेवा से अपने-अपने मनोरथ को पूर्ण करने का निर्देश किया है, और गो-सेवा की अपूर्व महिमा बतलाई है। इसी प्रकार महर्षि वरतन्तु के शिष्य कौत्स को अपार धनराशि देकर अज को पुत्र रूप में प्राप्त करना ब्राह्मणभक्ति एवं दानशक्ति का अनुपम उदाहरण है। श्रीराम के चरित्र के समान भारतीय संस्कृति के आदर्श का दिग्दर्शन तो कहीं अन्यत्र उपलब्ध ही नहीं हो सकता है। महाराजा रघु द्वारा कौत्सको सत्कार तथा अपार धनराशि देकर भारतीयों का अनुपम आदर्श अतिथि-सत्कार और विद्यादान के प्रति अटल श्रद्धा व्यक्त की है। कुमारसम्भव में दिव्य नायक का दिव्य चरित्र वर्णित है, किन्तु लौकिक काम और शृङ्गार रस की सूक्ष्म भावनाओं का वर्णन करने के लिए उन्होंने खण्डकाव्य मेघदूत लिखा है।

अपने अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में तो इन्होंने आदर्श राजा दुष्यन्त तथा आदर्श नारी शकुन्तला का मार्मिक चित्र खींचकर यह दिखा दिया है कि भारतीय नारी किसी कारणवश पति द्वारा अपमानित होने पर भी उसका अपमान नहीं करती अपितु संयमद्वारा पुनः

उसे अनुकूल कर लेती है। शकुन्तला में कुलपति कण्व के उपदेश-सन्देश में लोक कल्याण की कामना का भाव तो सार्वभौम ही है।

यद्‌दुष्करं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुस्तरम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमः॥

कुमारसम्भव में तीव्र तपस्या के द्वारा पार्वती के शिव विषयक मनोरथ की सफलता का वर्णन करते हुए कविवर कालिदास ने तपस्या में अपना अटल विश्वास व्यक्त किया है। इनका मत है कि जो वस्तु किसी प्रकार से भी प्राप्त नहीं हो सकती, वह तपस्या द्वारा ही प्राप्त की जा सकतो है।

उग्र तपस्या द्वारा प्राप्त शक्ति से उद्दण्ड होकर संसार को दुःख देनेवाले वज्रनाभ के पुत्र दुर्दान्त तारकासुर को मारने के लिए देवताओं का प्रयास विश्व-कल्याण की भावना की ओर संकेत करता है।

कालिदास के ग्रन्थों का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि उन्होंने धर्म, दर्शन, पुराण, ज्योतिष समाजशास्त्र, राजनीति, शिक्षा आदि विविध शास्त्रों का गम्भीर मनन किया था जिसके प्रभाव से पाठक चमत्कृत हो उठता है। अन्त में यही कहना पड़ता है कि लोकोत्तर महापुरुषों के हृदय को कौन जान सकता है—

लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति।

## शकुन्तलानाटक में रसविमर्श

रसव्यञ्जना की दृष्टि से अभिज्ञानशाकुन्तल का महत्त्व सर्वोपरि है। शकुन्तला में संभोग तथा विप्रलम्भ दोनों तरह का शृङ्गार है। दोनों शृंगारों की ऐसी ललित एवं हृदयस्पर्शी मन्दाकिनी इसमें प्रवाहित हुई है कि सहृदय भावुक उसमें अवगाहन करते नहीं अघाता। फिर भी संभोग शृङ्गार अङ्गी और विप्रलम्भ शृंगार, वीर, अद्‌भुत, करुण, हास्य, भयानक, रौद्र, वत्सल और शान्तरस अङ्ग हैं। कुछ लोगों का कहना है कि इसमें विप्रलम्भ शृंगार अधिक व्याप्त होने के कारण उसे हो अङ्गी रस मानना चाहिए। पर यह मत ठीक नहीं है, क्योंकि संस्कृत के नाटक दुःखान्त नहीं होते, वे सुखान्त ही होते है।

तृतीय और सप्तम अङ्क में सम्भोग शृंगार है। शृङ्गार-रस के नाटक विप्रलम्भपूर्वक अवश्य होते हैं क्योंकि विप्रलम्भ के बाद आने वाला सम्भोग अधिक आनन्ददायक होता है। नाटक की समाप्ति पर जिस रस का मन पर प्रभाव हो उसे ही प्रधान रस मानना सम्प्रदाय सिद्ध है। अन्तिम सप्तम अङ्क में होने वाले नायक-नायिका के स्थायी मिलन के सुख का प्रभाव प्रेक्षकों के मन पर अधिक काल तक स्थायी रहता है। अतः अभिज्ञानशाकुन्तल को सम्भोग शृङ्गार-रस प्रधान ही मानना तर्कसंगत और न्यायोचित प्रतीत होता है। पहले के तीन अङ्कों में शृंगार का साम्राज्य है फिर भी प्रसङ्ग से अनेक रसों का उसमें मिश्रण है। जैसे—

प्रथम अङ्क के आरम्भ में दुष्यन्त के सामने अपनी जान बचाने के निमित्त भगाते हुए मृग के तथा अन्त में सैनिक गज द्वारा किये गये उपद्रव में भयानक रस, द्वितीय अङ्क में विदूषक के विनोदी भाषण एवं अङ्गभङ्ग में हास्य रस, पुनः तृतीय अङ्क के अन्त में राक्षसों के विघ्नवर्णन में भयानक रस का शृंगार में मिश्रण हुआ है। चतुर्थ अङ्क में आकाशवाणी तथा वनदेवता द्वारा दिये गये वस्त्र और आभूषणों के वर्णन में अद्‌भुतरस की छटा है।

किन्तु उस अंक का प्रधान रस करुण ही है। पाचवें अंक में दुष्यन्त तथा शकुन्तला के वाक्कलह के मनोरम प्रसङ्ग के साथ-साथ राजा के निराकरण से सन्तप्त शकुन्तला के भाषण में रौद्र रस, आगे उसके असहाय स्थिति में करुण तथा अन्त में अप्सरातीर्थ के पास उसके अदृश्य हो जाने से अद्‌भुतरस है। छठे अंक में करुण तथा विप्रलम्भ शृंगार का परिपोष उत्तम हुआ है। राजा के करुण शृंगार को विदूषक के हास्य रस में जोड़ दिया गया है। अन्त के सप्तम अङ्क में सर्वदमन एवं राजा दुष्यन्त की भेंट के प्रसंग में अद्भुत और वत्सल तथा अन्त में कश्यप ऋषि के सान्निध्य में अनेक रसों का अनुभव करने पर भी शान्त रस में पर्यवसान हो जाता है।

## कालिदास का प्रकृति प्रेम

कालिदास के काव्यों में प्रकृति की छवियों के मनोरम एवं प्रभावशाली चित्रण उपलब्ध होते हैं।

कालिदास प्रकृति को सजीव एवं सचेतन मानते हैं। मेघदूत में अचेतन मेघ दौत्य कर्म ही नहीं करता, बल्कि बहिः प्रकृति विरही यक्ष विरहिणी यक्षप्रिया की समस्त मर्मद्रावक वेदना को परस्पर बाँट देता है। कालिदास की पार्वती और शकुन्तला प्रकृति सुकुमारियां हैं। प्रकृति और मनुष्य का आत्मीयता बोध कालिदास के अनेक सन्दर्भों में व्यक्त हुआ है।

कालिदास प्रकृति को मनुष्य जीवन से भिन्न वस्तु नहीं समझते। उनके विचार में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। उन्हें मनुष्य जीवन में प्रकृति का तथा प्रकृति में मनुष्य जीवन का दर्शन मिलता है। कालिदास की कुमारियां लता-पादपों को स्नेह से सींचती हैं, और विनोदपूर्ण संलाप भी करती रहती हैं। निसर्गसुन्दरी शकुन्तला के सान्निध्य में उन्हें आम्रवृक्ष लता-युक्त दिखाई पड़ता है। अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम अङ्क में प्रियम्बदा कहती है— सखि शकुन्तले! थोड़ी देर यहाँ ही ठहरो तुम्हारे पास रहने से यह आम्र का वृक्ष लता-सनाथ सा दीखता है—**त्वया समीपस्थितया लतासनाथ इव अयं चूतवृक्षः प्रतिभाति।** वे नवमल्लिका तथा सहकार वृक्ष में वरवधू का सम्बन्ध बताते हैं—अनसूया शकुन्तला से कहती है—सखि शकुन्तले! यह नवमल्लिका आम्र वृक्ष की स्वयम्बरवधू है। तुम्हींने तो इसका नाम वनज्योत्स्ना रखा है, क्या तू इसे भूल गई? **हला शकुन्तले इयं स्वयम्बरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमल्लिका एनां विस्मृतासि?**

पुनः अनसूया कहती है—अरी शकुन्तले! मैं समझती हूँ कि पिताजी इन आश्रम के पौधों को तुमसे अधिक प्यार करते हैं, नहीं तो चमेली कली जैसे कोमल अङ्गवाली तुम्हें इनके थालों में पानी भरने का काम नहीं देते। इस पर शकुन्तला कहती है—मैं केवल पिताजी को आज्ञा से ही इन्हें नहीं सींचती हूँ, किन्तु मैं भी इन्हें सहोदर जैसा प्यार करती हूँ—**न केवलं ताननियोग एव ममापि एतेषु सहोदरस्नेहः।**

शकुन्तला केसर के वृक्ष को देखकर पुनः कहती है—सखि! यह केसर का वृक्ष पवन के झोंके से हिलती हुई पत्ती रूपी अङ्गुलियों से मुझे बुला रहा है। जाऊँ, इसका भी मन रख दूँ—**एष वातेरित पल्लवाभिरङ्गुलिभिः किमपि व्याहरतीव मां चूतवृक्षः।** शकुन्तला के चतुर्थ अंश में तो प्रकृति और मनुष्य दोनों एकदम समीप आ गये हैं। महर्षि कण्व ने तपोवन के वृक्षों से शकुन्तला के उनके प्रति मधुर स्नेह का स्मरण करते हुए

अनुरोध किया है कि वे उसे पतिगृह जाने की अनुमति प्रदान करें–**सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।** अनन्तर शकुन्तला वनज्योत्स्ना लता को याद कर उनके निकट जाकर कहती है—वनज्योत्स्ने ! आम्रसंगता होने पर भी आज तुम अपनी शाखा रूपी भुजाओं को इधर फैलाकर एक बार मेरा प्रत्यालिङ्गन करो। आज मैं तुमसे बहुत दूर जा रही हूँ। शकुन्तला जाते समय वनज्योत्स्ना को अपनी दोनों सहेलियों के हाथ सौंपती है—**हला ! एषा द्वयोर्युवयो हस्ते निक्षेपः।**

कालिदास के मत से प्रकृति की गोद में विहार करते समय मनुष्य के जीवन का पूरा आनन्द मिलता है और प्रकृति के सच्चे सौन्दर्य का दर्शन होता है। शकुन्तला के प्रथम दर्शन के समय राजा दुष्यन्त के मुख से सहसा निकल पड़ता है कि यदि महलों के लिए दुर्लभ यह स्वरूप आश्रमवासिनी बालिकाओं में दीख रहा है तो मानो वनलताओं ने अपने गुणों से उद्यान की लताओं को जीत कर लिया है—

**शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य।**
**दूरीकृता खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः॥**

इनके मत से कृत्रिम वातावरण की अपेक्षा वन के प्राकृतिक वातावरण में अधिक सौन्दर्य है। कालिदास के विचार से प्रकृति जड़ पदार्थ नहीं है उन्हें वह भी चेतनों सा व्यवहार करती दिखाई पड़ती है। जैसे चेतन प्राणी दूसरे के सुख-दुःख में सहायता करते हैं वैसे ही प्रकृति भी करती है। शकुन्तला की बिदाई के समय तपोवन के वृक्ष विविध प्रकार के वस्त्र एवं आभूषण देकर कण्व का सहयोग करते हैं। पर्वतों के वर्णन में कालिदास अधिक सावधान हैं। मेघदूत में रामगिरि और अलका के मध्यमार्ग में पड़ने वाले पर्वतों का रम्य वर्णन है। कुमारसम्भव में भी हिमालय के वर्णन में उन्होंने कमाल कर दिया है। इसी प्रकार नदी वन आश्रमों के वर्णन में वे तन्मय दिखाई पड़ते हैं। गंगानुराग उन्हें उल्लसित कर देता है। वृक्षों के वर्णन में इन्हें आनन्द मिलता है। कुसुमों की सुषमा से वे अभिभूत हैं। कालिदास का प्रकृतिज्ञान केवल सहानुभूति मूलक ही नहीं है, अपितु सूक्ष्मतया सटीक है। हिमालय की हिमराशि, पवन का सङ्गीत, एवं गंगा की शक्तिशालिनी धारा ही नहीं, किन्तु छोटी-छोटी सरिताएँ विटप पुष्प भ्रमर आदि भी उनकी सृष्टिव्यापिनी दृष्टि से ओझल नहीं हैं। कालिदास के आराध्यदेव भगवान् सदाशिव हैं उन्हें उनका दर्शन भी प्रकृति के आठ रूपों में ही होता है। इसीलिए उन्होंने शकुन्तला के मङ्गलाचरणमें अष्टमूर्ति भगवान् शङ्कर से ही विश्वकल्याण की कामना के साथ-साथ अपना भी कल्याण चाहा है—

**प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।**

इन्होंने रघुवंश में समुद्र से नदियों के मिलने का दृश्य अत्यन्त सरस चित्रित किया है। जैसे दूसरे लोग केवल स्त्रियों का अधर पान करते हैं, अपना अधर उन्हें नहीं पिलाते, किन्तु समुद्र का ढंग निराला है, क्योंकि जब नदियाँ ढीठ होकर अपना मुँह इसके सामने बढ़ाती हैं तब यह बड़ी चतुरता से अपना तरङ्गरूपी अधर उन्हें पिलाता है उनका अधर स्वयं पीता है—

**मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरङ्गाधरदानदक्षः।**
**अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धुः॥**

## कालिदास का शास्त्रीय ज्ञान

महाकवि कालिदास की रचनाओं के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उन्हें संस्कृत साहित्य के मौलिक ग्रन्थों का पर्याप्त ज्ञान था। उनकी कृतियों में यत्र-तत्र प्रसंगवश उपनिषद्, पुराण, महाभारत, दर्शन, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण, साहित्यशास्त्र आदि के सिद्धान्तों के स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध होते हैं। महाकाव्य रघुवंश के मङ्गलाचरण—

**वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।**
**जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥**

में उन्होंने काव्य का लक्षण **"शब्दार्थौ काव्यम्"** निर्दिष्ट किया है। इसी प्रकार वे अपने व्याकरण ज्ञान की प्रौढता को भी व्यक्त करते चलते हैं। **वागार्थाविव** इस अंश में **'इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च'** इस वार्तिक का तथा **'पितरौ'** में "पिता मात्रा १।२।७०" इस पाणिनीय सूत्र का स्मरण दिलाते हुए वे अपनी व्याकरण विदग्धता को प्रदर्शित करते हैं। इसी प्रकार पन्द्रहवें सर्ग में बालिवध के प्रसङ्ग पर व्याकरण में उपमा की हृदयाकर्षक छटा दिखाते हैं—

**स हत्वा बालिनं वीरस्तत्पदे चिरकाङ्क्षिते।**
**धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं सन्न्यवेशयत् ॥ १२।५८**

अर्थात् उस राम ने बालि को मारकर धातु के स्थान पर आदेश के समान ( अस् धातु के स्थान पर 'अस्तेर्भूः' सूत्र से विहित भू आदेश के समान तथा पा धातु से पाघ्राध्मा सूत्र से विहित आदेश के समान ) सुग्रीव को चिरकाल से अभिलषित उस बालि के स्थान पर रखा। रघुवंश के तृतीय सर्ग में उनका ज्योतिष विषयक परिपक्व ज्ञान परिलक्षित होता है—

**ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयैरसूर्यगैः सूचितभाग्यसम्पदम्।**
**असूत पुत्रं समये शचीसमा त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम् ॥ ३।१३**

अर्थात् अनन्तर इन्द्राणी के समान रानी सुदक्षिणा ने प्रसव का समय (दसवा महीना) होने पर उच्च स्थान में स्थित सूर्य के सान्निध्य से अस्त को नहीं प्राप्त हुए पांच ग्रहों के द्वारा जिसकी भाग्य सम्पत्ति सूचित हो रही है। ऐसे पुत्र को प्रभाव, उत्साह एवं मन्त्र इन तीन उपायों से सम्पन्न होने वाली शक्ति जैसे अक्षय अर्थ को उत्पन्न करती है वैसे ही उत्पन्न किया।

शकुन्तला के पञ्चम अङ्क में रानी हंसपदिका के सस्वर गीत को सुनकर राजा दुष्यन्त उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि **'अहो रागपरिवाहिणी गीतिः'** रघुवंश के प्रथम सर्ग में रानी सुदक्षिणा और राजा दिलीप को अपने कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में जाते समय कवि ने अपनी संगीत विदग्धता का परिचय देते हुए कहा है—

**मनोऽभिरामाः श्रृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः।**
**षड्जसंवादिनीः केका द्विधाभिन्ना शिखण्डिभिः ॥ १ ३९**

अर्थात्—रथ के चक्रप्राप्ति के शब्द को सुनकर ऊपर मुख किये हुए मयूरों द्वारा दो प्रकार की हुई षड्ज स्वर का अनुसरण करने वाली तथा मन को प्रसन्न करने वाली वाणी को सुनते हुए वे दोनों सुदक्षिणा और दिलीप चले।

कुमार संभव के द्वितीय सर्ग में ब्रह्म और जगत् की एकात्मकता, ब्रह्म की जगत् रूप

कार्य के रूप में परिणत आदि बातें बड़ी चारुता के साथ काव्यात्मक सरल शैली में वर्णित की गई हैं। जैसे—

**नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक् सृष्टेः केवलात्मने ।**
**गुणत्रयविभागाय पश्चात् भेदमुपेयुषे ।। २।४**

अर्थात् हे भगवन् ! संसार को रचने के पहले एक ही रूप में रहने वाले पर, जब संसार रचने लगते थे उस समय सत्त्व, रज एवं तम तीन गुण उत्पन्न करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम से तीन रूप के बन जाने वाले आपको प्रणाम हैं।

इसी प्रकार रघुवंश के प्रथम सर्ग में—

**वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम् ।**
**आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव ।। १।११**

आदि श्लोकों से वे यज्ञ आदि-कर्मकलाप के ज्ञान के साथ ही वेदोच्चारणविधि का प्रचार भी सूचित करते हैं तथा उनकी कृतियों में नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा पुराणों की प्रधान प्रधान बातें यथावसर व्यक्त होती रहती हैं। रघुवंश में रघु और इन्द्र के साथ युद्ध से तथा अभिज्ञानशाकुन्तल के सप्तम अङ्क में विदूषक पर आक्रमण के समय दुष्यन्त के शब्दवेधी बाण चलाने की कला से कविवर कालिदास के युद्धविषयक ज्ञान की सूचना मिलती है। तथा शकुन्तला के षष्ठ अङ्क में तूलिका से दुष्यन्त द्वारा चित्रित शकुन्तला विषयक चित्रकला और मूर्तिकला अनुशीलन करने पर कालिदास की चित्रकला का पर्याप्त ज्ञान प्रतीत होता है। इस प्रकार रघुवंश कुमारसम्भव शकुन्तला आदि में विभिन्न शास्त्रों के ज्ञान के पर्याप्त उदाहरण भरे पड़े हैं।

## संस्कृत नाटकों के उद्भव तथा विशेषता का विवेचन

संस्कृत साहित्य में नाटकों की एक बिशिष्ट परम्परा रही है। लोकप्रियता के कारण भारत में नाट्यकला का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से होता चला आया है। ऋग्वेद के सूक्तों में सोमविक्रय के समय मनोरञ्जनात्मक अभिनय का संकेत प्राप्त होता है। पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी, इन्द्र-इन्द्राणी, वृषाकपी आदि के संवाद सूक्तों में नाटकीय कथनोपकथन उपलब्ध होते हैं। यजुर्वेद में शैलूष शब्द का स्पष्ट उल्लेख है, जो नट अथवा अभिनेता का समानार्थी है। वाल्मीकीय रामायण में नट, नर्तक तथा शैलूष शब्दों का उल्लेख है।

इस प्रकार तत्कालीन जन जीवन में धार्मिक अवसर, संगीत समारोह तथा नृत्योत्सवों से नाटक का विशेष सम्बन्ध था।

उत्तरवर्ती साहित्य में नाट्यकला की शिल्पविधियों का पूरा इतिहास दिखाई देता है। रामायण के एक प्रसंग में कहा गया कि नटों, नर्तकों और गायकों की मण्डलियों की कर्ण सुखद वाणियों को जनता पूरी तन्मयता से सुनती थी—

**नटनर्तकसंघानां गायकानां च गायताम् ।**
**यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः ।।**

महाभारत में नट, नर्तक, गायक, सूत्रधार आदि का निर्देश है। हरिवंश पुराण में रामचरित नाटक प्रदर्शित किये जाने का संकेत है। महाभारत के अनुसार प्रद्युम्नविवाह के प्रसंग में वसुदेव जी के यज्ञ के अवसर पर भद्रनामक नट ने अपने आकर्षक नाट्य-प्रदर्शन से उपस्थित ऋषि-महर्षियों को प्रसन्न किया था जिसके फलस्वरूप उसने आकाश-

विचरण तथा स्वेच्छया रूप धारण करने का वरदान प्राप्त किया था। महर्षि पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में शिलालि तथा कृशाश्व के द्वारा रचित नाट्य सूत्रों का उल्लेख किया है। भगवान् पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में कंसवध तथा बालिवध नामक नाटकों के अभिनय का वर्णन किया है। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में नागरिकों के मनोवर्णन करते हुए नटों के द्वारा अभिनीत नाटकों के प्रदर्शन का उल्लेख किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अध्ययन से पता चलता है कि ललित कला की शिक्षा के लिए उस समय राज्य की ओर से पूर्ण प्रबन्ध था। इन बातों से प्रमाणित होता है कि वैदिक काल से ईसा की प्रथम शताब्दी तक हमारे देश में नाटकों का अभिनय क्रमशः चला आ रहा था।

इसलिए यह निर्विवाद सत्य है कि संस्कृत साहित्य में नाटकों के निर्माण की परम्परा बहुत पुरानी है और आदि काल से ही भारतीय जन जीवन के मनोरंजन के लिए नाटकों को श्रेष्ठ माध्यम के रूप में अपनाया जाता था।

भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में जो नाटकीय कला की उत्पत्ति का विवरण उपस्थित किया है उसके अनुसार इन्द्रादि-देवताओं के अनुरोध पर स्वयं ब्रह्माजी ने ऋग्वेद से पाठ, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गान, और अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यवेद नामक पञ्चम वेद की रचना की तथा धर्म, क्रीडा, हास्य, युद्ध आदि भावों का प्रदर्शन इसका विषय कह कर इसे देवता और दैत्य दोनों के लिए ग्राह्य बताया और नाट्यशास्त्र में अभिनय के लिए वर्ग, आयत, या त्रिभुज के आकार वाले प्रेक्षागृहों के निर्माण की नियमविधि का उल्लेख किया है। इस प्रकार नाट्यकला का मूल सम्बन्ध धर्म से था, आगे चलकर इसने स्वतन्त्र साहित्यिक रूप ग्रहण कर लिया। संस्कृत के नाटककारों ने अपने नाटकों की कथावस्तु धर्म ग्रन्थों से लेकर जनता की रुचि में ढालकर देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार जनरञ्जन की दृष्टि से नाटकों की योजना की। भरत मुनि के मतानुसार नाट्य तीनों लोकों के भावों का अनुकरण है **त्रैलोक्यस्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।** भरतमुनि का सिद्धान्त है कि नाटक में सभी प्रकार का ज्ञान, शिल्प, विद्याएं और शास्त्र समन्वित रहते हैं। वह वेदविद्या है इतिहास है और उसमें योग सदाचार एवं समाज को विनोद प्रदान करने के साधन विद्यमान हैं। इस मत का अनुमोदन महाभाष्य के कंसवध और बालिवध के अभिनय के वर्णन में किया गया है—

**न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।**
**न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥ १।१०६**

पाश्चात्य विद्वानों ने इस परम्परानुमोदित मान्यता को अस्वीकार करते हुए अन्यान्य मूल कारणों की उद्भावना की। डा० कीथ के मतानुसार प्राकृतिक परिवर्तनों को जनसाधारण के सामने मूर्तरूप दिखाने की अभिलाषा से ही नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ।

जर्मनी के विद्वान् पिशेल ने नाटकों की उत्पत्ति पुत्तलिका नृत्य से बताई है। उसके कथनानुसार उस नृत्य की उत्पत्ति भारतवर्ष में हुई और यहां से इसका प्रचार एवं प्रसार अन्य देशों में हुआ। सूत्रधार एवं स्थापक जैसे शब्दों से इस मत की पुष्टि की गई है। डा० लूडर्स के मत से नाटकों की उत्पत्ति छाया-नाटकों से हुई। इसका समर्थन दूताङ्गद नाम छाया-नाटक से किया गया। नेपाल आदि देशों में प्रचलित इन्द्रध्वज महोत्सव से नाटकों की उत्पत्ति मानी। अनेकों ने सम्वाद सूत्रों से नाट्य का उद्गम प्रतिपादित किया है।

वस्तुतः संस्कृत नाटक भारतीय प्रतिभा की स्वतन्त्र सूझ है और अभिनय की कला में

भी वह स्वतन्त्र उद्भावना के आश्रित रहा है। संस्कृत के प्राचीन नाटकों के रंगमञ्च पर बालकों के द्वारा नियोजन किये जाने के उदाहरण उपलब्ध हैं। जैसे शकुन्तला का सर्वदमन शेर के बच्चे से खेलते हुए दिखाया गया है। संस्कृत नाटकों में विभिन्न पात्रों के लिए विभिन्न प्रकार की भाषाओं का उपयोग है। नायक तथा प्रमुख पात्र संस्कृत बोलते हैं लेकिन स्त्रियां एवं निम्नकोटि के पात्र प्राकृत के भिन्न-भिन्न रूपों का व्यवहार करते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था विश्व के किसी अन्य नाटक परम्परा में प्राप्त नहीं होती।

समीक्षकों ने महाकाव्यों के अनन्तर संस्कृत नाटकों का प्रादुर्भाव भास कवि के स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण नामक नाटकों से माना है। जिनके कथानक रामायण और महाभारत से लिये गये हैं। नाटकों की निर्माण परम्परा में भास कवि के अनन्तर कालिदास का नाम आता है। कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि प्राग्वर्ती नाटककारों की चर्चा की है।

संस्कृत साहित्य के उपवन में कालिदास का आगमन एक वसन्त दूत के रूप में माना गया है जिसके कारण उपवन का कोना-कोना पुष्पित हो उठा है। इन्होंने नई साज सज्जाएँ, नई दिशाएँ नये विचार अभिनव भाव, नई-नई पद्धतियाँ प्रस्तुत की हैं ये संस्कृत में सबसे बड़े कवि और सर्वश्रेष्ठ नाटककार हुए हैं।

नाटकों के क्षेत्र में कालिदास ने तीन नाटकों का प्रणयन किया है—मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तल। इनमें मालविकाग्निमित्र कवि की आरम्भिक कृति है, जिसमें नाटक नियमों की दृष्टि से कथानिर्वाह, घटनाक्रम, पात्रयोजना आदि सभी नाटककार के असाधारण कौशल की छाप है। अभिज्ञानशाकुन्तल उनकी अन्तिम कृति है, किन्तु उसकी गणना आज विश्व साहित्य की पहली कृति के रूप में की जाती है। प्रेम और सौन्दर्य का ऐसा सरस, हृदयग्राही एवं गर्भस्पर्शी चित्रण अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। उसमें ओज के साथ मनोज्ञता और लघुत्व के साथ प्राञ्जलता का अद्भुत समन्वय हैं। शकुन्तला की सरलता अपराध में, दुःख में, अज्ञानता में, धैर्य में और क्षमा में परिपक्व है गम्भीर तथा स्थायी है। गेटे की आलोचना के अनुसार शकुन्तला के आरम्भिक तरुण सौन्दर्य ने मंगलमय परम परिणत सफलता लाभ करके मर्त्य को स्वर्ग के साथ संमिलित कर दिया है।

गणदास ने कहा है कि यह नाट्य देवताओं के नेत्रों का प्रसाधन करने वाला यज्ञ है। स्वयं शिवजी ने उमा से विवाह करके अपने शरीर में इसके अपने शरीर दो भाग कर दिये एक ताण्डव और दूसरा लास्य। इनमें सत्त्व, रज और तम तीनों गुण भी दिखाई पड़ते हैं। और अनेक रसों में लोकचरित लक्षित होते हैं। इसलिए भिन्न भिन्न रुचि वालों के लिए प्रायः नाटक ही एक ऐसा उत्सव है, जिससे सबको समान आनन्द मिलता है—

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतु चाक्षुषं
रौद्रेणैतदुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम्॥

## अभिज्ञानशाकुन्तल का उत्कर्ष

कालिदास का काव्य सरस्वती का सर्वोत्कृष्ट प्रसाद अभिज्ञान शाकुन्तल है। सौन्दर्य

की मादकता, प्रेम की निश्चलता, प्रकृतिजन्य सरलता, ऋषिकुल की उदारता, महर्षि कण्व का आदर्श वात्सल्य, दुर्वासा का निर्ममदण्ड, वासना का प्रक्षालन, आत्मा का निर्मलीकरण तथा संस्कृति के पीयूष संमिलन, श्रेयस् एवं प्रेयस् मनोग्राही ग्रन्थिबन्ध इन सभी उपादानों को एक साथ मिश्रित कर कविवर कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में जो प्रपाणक रस तैयार किया है वह भारतीय जीवन के निमित्त नितान्त मूल्यवान है। इस नाटक के प्रथम चार अंकों को भोग-भूमि पाँच एवं छः दो अंकों को दण्डभूमि और अन्तिम सप्तम अंक को सिद्धभूमि माना गया है। इस प्रकार यह नाटक कवि की प्रतिभा का अनुपम फल है।

अभिज्ञानशाकुन्तल में कवि की निपुणकला भारतीय संस्कृति के सौरभ में सनकर अधिक अभिराम तथा प्रभविष्णु बन गई है। महाभारत की चालाक तथा बिना शील वाली युवती शकुन्तला नाटक में लजीली सम्मानपूर्ण करुणोत्पादक नायिका में रूपान्तरित हो गई है। इसी प्रकार स्वार्थपरायण राजा दुष्यन्त जो महाभारत में नीति के अनुरोध से उसे न पहचानने का व्याज करता है वही यहां नाटक में ऐसी विस्मृति से अभिभूत चित्रित किया गया है, जिसके लिए उसकी भर्त्सना नहीं की जा सकती, उसका नैतिक चरित्र ऊँचा उठ गया है और वह पराई स्त्री सम्पर्क से विमुख एक आदर्श राजा बन गया है।

अपनी काव्यात्मक प्रतिभा के सहारे कालिदास को दो रूपों सफलता मिली है। प्रथमतः वे काव्योचित भावों के धनी हैं, जिन्हें वे बड़ी निपुणता से चरित्र के साथ मिला देते हैं तथा द्वितीयतः उनमें संयम एवं सन्तुलन की काव्यात्मक भावना है जो किसी नाटककार के लिए सफलता की आवश्यक हेतु हैं। विद्वानों का कथन है कि कालिदास ने अपने नाटकों में नाट्य शास्त्रों के विधानों का प्रायः अनुसरण किया है उनकी रचनाओं में अधिकांश नियमों का प्रतिबिम्ब झलकता है।

यद्यपि कालिदास ने संस्कृत में तीन नाटक लिखे हैं ( १ ) मालविकाग्निमित्र ( २ ) विक्रमोर्वशीय तथा ( ३ ) अभिज्ञानशाकुन्तल, किन्तु नाटककार के रूप में उनकी कीर्ति सर्वाङ्गसुन्दर अभिज्ञानशकुन्तल से स्थिर हो सकी है।

समालोचकों ने चरित्रचित्रण, रसपरिपाक भाषासौष्ठव, संविधान के चातुर्य की दृष्टि से अभिज्ञानशाकुन्तल को संस्कृत नाटकों में सर्वश्रेष्ठ माना है। कलकत्ता हाईकोर्ट के चीफ जस्टिश सर विलियम जोंस ने एक संस्कृत के पण्डित की सहायता से १७८६ ई० में अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक का अंग्रेजी में अनुवाद किया। जिसने यूरोपीय विद्वानों की मनोदृष्टि भारतीय नाट्य प्रतिभा की प्रतीति से चकित एवं मुग्ध कर दिया। उसके अनन्तर कई यूरोपीय भाषाओं में उसके अनुवाद भी हुए। इस समय तो विश्व की कोई भी ऐसी भाषा नहीं है, जिसमें अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक का अनुवाद न हुआ हो।

'इस नाटक के सप्तम अंक में सर्वदमन का अकृत्रिम हास्य, तोतली बोली का वर्णन तथा शेर के बच्चों के साथ बालक्रीड़ा पढ़कर शेजी नाम के एक फ्रेञ्च विद्वान् को इतना आनन्द आया कि वह नाचने लगा। विश्वविख्यात जर्मनकवि गेटे ने इस नाटक का अनुवाद पढ़कर आनन्द विभोर होकर कहा था कि यदि स्वर्ग और पृथ्वी को बातें एक जगह देखना हो तो अभिज्ञान शाकुन्तल का अध्ययन करो। इस प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तल को लोकप्रिय होने के कारण समीक्षकों का यह कहना सर्वथा संगत प्रतीत होता है कि कालिदास के ग्रन्थों में अभिज्ञान शाकुन्तल सर्वोत्कृष्ट है—**कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्।**

अनन्त कथारत्नों के सागर महाभारत के आधार पर कालिदास ने इस नाटक की रचना की है। कालिदास के अनुपम रचनाकौशल से यह नाटक लोकोत्तर बन गया है। इस नाटक की भाषा अत्यन्त प्रसाद युक्त और रमणीय है। इसमें उपमा अलंकार, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिङ्ग आदि अलङ्कारों की बहुलता है। इसमें कहीं भी क्लिष्टता, कल्पना की खींचातानी, दूरान्वय आदि दोष नहीं हैं। प्रत्येक पात्र के अनुरूप भाषा रखने में कवि ने पर्याप्त सावधानी रखी है। शकुन्तला तथा उसकी सखियां हमेशा लता वृक्ष आदिकों के सहवास में खेलने और रहने वाली हैं। इसलिए उनकी उक्तियों में आम्र, अतिमुक्तलता, नवमल्लिका आदि वृक्ष एवं लता का उल्लेख है। **'क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते'** **'को नामोष्णोदकेन नवमल्लिकां सिञ्चति।'** महर्षि कण्व हमेशा यज्ञ-याग से निरत और अध्यनाध्यापन में निमग्न रहते हैं। अतः वे ऐसे दृष्टान्तों का प्रयोग करते हैं जिनका सम्बन्ध यज्ञ एवं अध्ययन से है—**'दृष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेः यजमानस्य पावके एवाहुतिः पतिता'; 'वत्से! सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाऽशोचनीया संवृत्ता।'** हमेशा खाद्यलोलुप और विनोदी विदूषक के स्वभाव का प्रतिबिम्ब उसके कथन में पड़ा है—**'यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत् तथैव स्त्रीरत्नपरिभोगिणो भवत इयमभ्यर्थना।'** किसी पात्र के भाषण में छोटे-छोटे चटकीले होने से उनको पढ़ते हुए पाठक के मन प्रसन्न हो जाता है।

## तत्र श्लोकचतुष्टयम्

अभिज्ञानशाकुन्तल की विशेषता में समालोचकों का कहना है कि संस्कृत के काव्यों में नाटकों की उत्तमता है। उन सबों में अभिज्ञान शाकुन्तल अत्यन्त रमणीय है। उसमें उसका चतुर्थ अङ्क अत्युत्तम है, उसमें भी चार श्लोक आदर्श पूर्ण हैं—

**काव्येषु नाटकं रम्यं तत्रापि च शकुन्तला।**
**तत्राप्यङ्कस्तुरीयस्तु तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥**

ये चारों श्लोक इस प्रकार हैं—

( १ )

**यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया**
**कण्ठस्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।**
**वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः**
**पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥ ४।२**

( २ )

**पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या**
**नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।**
**आद्ये वः कुसुमप्रसूतसमये यस्या भवत्युत्सवः**
**सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ ४।८**

( ३ )

**अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मनः**
**त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।**

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु तद्दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ ४।१६

( ४ )

शुश्रूषस्व गुरून् कुरुप्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामा कुलस्याधयः ॥ ४।१७

कुछ लोग चार श्लोक इस प्रकार मानते हैं :—

( १ ) यास्यत्यद्य शकुन्तला० ( ४।५ )
( २ ) अस्मान् साधु विचिन्त्य० ( ४।१६ )
( ३ ) शुश्रूषस्व गुरून् ( ४।१७ )
( ४ ) अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला ।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से ! शुचं गणयिष्यसि ॥ ४।१८

अथवा—

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य ।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥ ४।१९

## अभिज्ञानशाकुन्तल नामकरण का कारण

हस्तिनापुर के चक्रवर्ती राजा दुष्यन्त ने कुलपति कण्व की पोष्यपुत्री शकुन्तला से उनके आश्रम में ही गान्धर्वविधि से विवाह करके अपनी राजधानी को लौटते समय शकुन्तला को अपने नामाक्षरों से अङ्कित एक अंगूठी देकर कहा था कि प्रिये ! इसमें प्रति-दिन एक-एक अक्षर गिनना, जिस दिन अन्तिम अक्षर आयेगा उसी दिन तुमको लेने के लिए मेरा कोई विश्वासी व्यक्ति आयेगा, तब तुम मेरे पास आ जाना ।

उस समय महर्षि कण्व आश्रम पर उपस्थित नहीं थे । शकुन्तला के निमित्त शान्ति के लिए सोमतीर्थ गये हुए थे । आने पर जब उन्हें शकुन्तला के विवाह का समाचार मिला तब उन्होंने शकुन्तला को राजा के पास भेजवा दिया, किन्तु महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण राजा उसे पहचान न सका । शकुन्तला ने राजा की दी हुई अंगूठी दिखाकर उसे बीते हुए वृत्तान्त का स्मरण दिलाना चाहा, किन्तु वह अंगूठी उसकी अंगुलि में नहीं थी, दैवात् मार्ग में शक्रावतार या शचीतीर्थ का वन्दन करते समय जल में गिर चुकी थी । निराश होकर शकुन्तला जब राजमहल से बाहर निकली तो, उसकी माँ मेनका अप्सरा ने, एक तेजोमयमूर्ति बनाकर उसे लेकर किंपुरुषवर्ष में, वर्तमान हेमकूट पर्वत पर महर्षि कश्यप के आश्रम पर रख दिया । बाद वहीं उसे सर्वदमन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पीछे भरत नाम पड़ा ।

इसके अनन्तर राजपुरुषों को एक धीवर के पास वह अंगूठी मिली, उसे चोर समझकर कोतवाल ने उस घटना को राजा के पास उपस्थित किया। उस अंगूठी को देखते ही राजा दुष्यन्त को शकुन्तला के साथ गान्धर्व-विवाह का स्मरण हो आया। उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप होने लगा तथा तब से वह शकुन्तला के विरह में दुःखी रहने लगा। इस प्रकार इस नाटक के पञ्चम अंक में अंगूठी रूपी अभिज्ञान से शकुन्तला के पहचाने जाने के वृत्तान्त होने के कारण इस नाटक को अभिज्ञान शाकुन्तल कहते हैं।

इसमें दो अंश हैं—एक अभिज्ञान और दूसरा शाकुन्तल। अभिज्ञान का अर्थ है पहचानने का साधन—**अभिज्ञायतेऽनेनेति अभिज्ञानम्।** शाकुन्तलं का अर्थ है शकुन्तला विषयक या शकुन्तला सम्बन्धी—**शकुन्तलाया इदं शाकुन्तलम्।** अभिज्ञानशाकुन्तल की व्युत्पत्ति कई प्रकार से की जाती है (१) **अभिज्ञानं=अभिज्ञानभूतं तत् शाकुन्तलम् इति अभिज्ञान शाकुन्तम्।** अर्थात् शकुन्तलाविषयक वह नाटक जो अभिज्ञान स्वरूप हो (२) **अभिज्ञानेन स्मृतं शाकुन्तलं=शकुन्तलाविषयकं वृत्तान्तं यस्मिन् तत् अभिज्ञानशाकुन्तलम्**–अर्थात् शकुन्तलाविषयक विवाह का वृत्तान्त में जिसमें निशानी के रूप में स्मृत हो आया हो। (३) **अभिज्ञानं=परिचयस्वरूपं शाकुन्तलं=शकुन्तलासम्बन्धिचरितं यत्र=नाटके तत् अभिज्ञानशाकुन्तलम्।** अर्थात्, जिस नाटक में शकुन्तला का परिचयमय वैवाहिक वर्णन हो। (४) **अभिज्ञानप्रधानं शाकुन्तलं यस्मिन् नाटके तत् अभिज्ञानशाकुन्तलम्।** अर्थात् जिस नाटक में शकुन्तला का विवाह आदि वृत्तान्त अभिज्ञान प्रधान हो (५) **अभिज्ञानं च शकुन्तला च अभिज्ञानशकुन्तले ते अधिकृत्य कृतं नाटकमिति अभिज्ञानशाकुन्तलम्।** अर्थात् शकुन्तला के विषय में निशानी या परिचय जिस नाटक में निबद्ध हो उसे अभिज्ञानशाकुन्तल कहते हैं। (६) **अभिज्ञानेन स्मृता शकुन्तला अभिज्ञानशकुन्तला तामधिकृत्य कृतं नाटकमिति अभिज्ञान शाकुन्तलम्।** अर्थात्—जिस नाटक में अभिज्ञान से स्मृत शकुन्तला को विषय बनाकर वर्णन किया गया हो उस नाटक को अभिज्ञानशाकुन्तल कहते हैं। (७) कुछ प्राचीन प्रतियों में **'अभिज्ञानशकुन्तलम्'** इस प्रकार का पाठ मिलता है जिसके अनुसार व्युत्पत्ति होगी **अभिज्ञानेन स्मृता=स्मृतिपथमानीता शकुन्तला अभिज्ञानशकुन्तला यस्मिन् तत् अभिज्ञानशकुन्तलम्।** अर्थात् जिस नाटक में शकुन्तला निशानी अंगूठी के रूप में स्मृत की गई हो वह नाटक अभिज्ञानशकुन्तलम् है।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण में भी अभिज्ञान शब्द पहचान के साधन अर्थ में प्रयुक्त है। सम्भवतः कालिदास ने वहीं से अभिज्ञान पद लेकर इस नाटक में भी प्रयुक्त किया है। सुन्दर काण्ड में हनुमान् जी ने सीता जी से कहा था—देवि! यदि मेरे साथ आपको चलने की इच्छा नहीं है तो कृपया आप कोई अपनी पहचान ही दे दीजिए जिससे श्रीरामजी यह जान लें कि मैंने आपका दर्शन किया है—

**अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद् राघवो यतः। ३८।१०**

इसके उत्तर में सीताजी ने कहा—

**इदं श्रेष्ठमभिज्ञानं ब्रूयास्त्वं तु मम प्रियम्। ३८।१२**

इस प्रकार चित्रकूट पर्वतपर शक्रसुत जयन्त की कथा का स्मरण कराकर मणि देने के पश्चात् सीताजी हनुमानजी से बोलीं: मेरे इस चिह्न को श्रीराम भलीभांति जानते हैं। इसे

देख कर वे एक ही साथ तीन व्यक्तियों का स्मरण करेंगे—मेरा, माता कौशल्या का तथा महाराज दशरथ का—

मणिं दत्त्वा ततः सीता हनूमन्तमथाब्रवीत्।
अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद् रामस्य तत्त्वतः॥
मणिं दृष्ट्वा तु रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति।
वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च॥ ६६।१-२॥

## अभिज्ञानशाकुन्तल की कथा का मूल आधार

कविवर कालिदास ने अपने अभिज्ञान शाकुन्तल का कथानक महाभारत के आदिपर्व में वर्णित शकुन्तलोपाख्यान से ग्रहण किया है। अभिज्ञानशाकुन्तल के कथानक का मूल आधार महाभारत है। महाभारत के आदिपर्व ६९ वे अध्याय से ७४ वे अध्याय तक ६ अध्यायों के शकुन्तलोपाख्यान में राजा दुष्यन्त तथा महर्षि कण्व की पुत्री शकुन्तला के कथानक का वर्णन है। पद्मपुराण के स्वर्ग खण्ड में भी दुष्यन्त और शकुन्तला की कथा लिखी गई है, किन्तु पद्मपुराण की कथा की अपेक्षा महाभारत का कथानक प्राचीन सीधा-सादा तथा स्वाभाविक प्रतीत होता है। कविवर कालिदास ने महाभारत के सीधे-सीधे आख्यान को अपनी कला से परिष्कृत कर के एक नया सा रूप दे दिया है। उन्होंने अपनी उद्भावनाओं नाटकीय तत्त्वों से उसमें मनोहरता ला दी है।

पद्मपुराण की कथा में महाभारत तथा अभिज्ञानशाकुन्तल का मिश्रण है। समालोचकों का कहना है कि अभिज्ञानशाकुन्तल के अंशों को जोड़-जोड़कर पद्मपुराण की कथा बनाई गई है। इसके अन्त का भाग कालिदास के शाकुन्तल का सार-मात्र है। यह कथा अभिज्ञान शाकुन्तल से लेकर अपनी शैली में लिख ली गई है। अतः पद्मपुराण का अधिक हिस्सा बाद का रचा प्रतीत होता है। इस प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल के कथानक का आधार महाभारत मानना अधिक संगत है।

**महाभारत के आख्यान का संक्षेप—**

महाभारत के आदिपर्व में वर्णित शकुन्तलोपाख्यान का सारांश इस प्रकार है। एक बार चन्द्रवंशी राजा दुष्यन्त शिकार खेलते-खेलते कुलपति कण्व के आश्रम में जा पहुँचे, परन्तु उस समय महर्षि कण्व आश्रम में उपस्थित नहीं थे, वे फल लाने के लिए वन में गये हुए थे। उनकी अनुपस्थिति में उनकी पोष्यपुत्री शकुन्तला राजा का स्वागत करती है। उसके अपूर्व सौन्दर्य का अवलोकन कर राजा दुष्यन्त के मन में काम की भावना अङ्कुरित हो उठती है। उनके पूछने पर उसने विश्वामित्र से अपना उत्पत्ति-वृत्तान्त कह सुनाया। जब राजा को यह मालूम हो गया कि वह क्षत्रिय की कन्या है तब उन्होंने उसके प्रति अपना प्रेम व्यक्त किया और प्रलोभनों के साथ विवाह का प्रस्ताव रखा। इस पर शकुन्तला ने शर्त रखी कि आपके बाद मेरे पुत्र को ही राजसिंहासन मिलना चाहिए। राजा यह शर्त स्वीकार कर लेता है कि तुम्हारा पुत्र ही मेरे राज्य का उत्तराधिकारी होगा। परिणामतः दोनों गान्धर्व-विधि से प्रणय-सूत्र में आबद्ध हो जाते हैं। राजा ने उसका पाणिग्रहण कर उसके साथ सहवास किया जिससे वह गर्भवती हो गई। राजा उसके साथ कुछ देर तक रहा, बाद उसे आश्वासन देकर कि मैं नगर पहुँच कर तुम्हें ले जाने के लिए किसी विश्वास-पात्र व्यक्ति को भेजूँगा हस्तिनापुर वापस लौट आता है। मार्ग में वह सोचता जाता है कि ऋषि

की आज्ञा के बिना ही मैंने उनकी कन्या का पाणिग्रहण कर लिया है, जब यह समाचार उन्हें मालूम होगा, न जाने वे क्या करेंगे ?

राजा के चले जाने के बाद महर्षि कण्व आश्रम पर आये और उन्होंने अपने तपोबल से दुष्यन्त के साथ शकुन्तला के गान्धर्व-विवाह का वृत्तान्त जान लिया और उस पर अपनी स्वीकृति दे दी। इस घटना के तीन वर्ष बाद शकुन्तला को एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका विधिवत् जातकर्म आदि संस्कार कण्व जी ने किया और शिशु का पालन पोषण किया। ६ वर्ष की अवस्था में ही उस बालक में बल और पराक्रम स्पष्ट दिखाई देने लगा। वह शेर के बच्चों को पकड़-पकड़कर उनके साथ खेलता था उनका दाँत गिनता था और बलपूर्वक वन्यपशुओं को पकड़कर उन्हें पेड़ों में बाँध देता था। इस अद्भुत पराक्रम को देखकर ऋषि ने उसका नाम सर्वदमन रख दिया। इस प्रकार नौ वर्ष के काल तक शकुन्तला तपोवन में रही। उसे तपोवन में रखना ऋषि को उचित नहीं प्रतीत हुआ। अतः वे पुत्र सहित शकुन्तला को तपस्वियों के साथ राजा के पास हस्तिनापुर भेज देते हैं।

जब शकुन्तला राजा के पास सामने पहुँचती है तब राजा पहचानते हुए भी कह देता है कि मैं तुम्हें नहीं पहचानता; यह पुत्र मेरा नहीं है; तुम स्वतन्त्र हो जहाँ जी चाहे जाओ। राजा की बात सुनकर शकुन्तला अवाक् हो गई उसने सत्य और धर्म की दुहाई दी, किन्तु राजा ने एक भी न मानी। अन्त में निराश होकर वह लौटने लगती है। इतने में आकाशवाणी होती है—राजन् ! शकुन्तला सत्य कहती है यह तुम्हारी भार्या है और यह सर्वदमन् तुम्हारा ही पुत्र है तुम इन्हें रख लो और धर्मपूर्वक इनका भरण-पोषण करो—**'भरस्व पुत्रं दौष्यन्तिं सत्यमाह शकुन्तला'**। इस आकाशवाणी को सुनकर पुरोहित तथा मन्त्रियों से सवाल कर राजा उन दोनों को अपना लिया। इस प्रकार आकाशवाणी के द्वारा देवताओं की स्वीकृति मिल जाने पर शकुन्तला निर्दोष सिद्ध हो गई। बाद में राजा शकुन्तला को पटरानी पद पर प्रतिष्ठित करता है। सर्वदमन का भरत नाम रखकर युवराज पद पर आसीन कर देता है।

**पद्मपुराण के कथानक का सारांश—**

पद्मपुराण में भी राजा दुष्यन्त के द्वारा गान्धर्व-विवाह तक की कथा वैसी ही है जैसी महाभारत में। अन्तर केवल इतना ही है कि महाभारत के अनुसार शकुन्तला ने अपने जन्म की कथा को राजा के पूछने पर स्वयं बताया है किन्तु पद्मपुराण के अनुसार शकुन्तला के जन्म की उत्पत्ति उसकी सखी प्रियम्वदा ने बतलाई है। महाभारत के अनुसार राजा ने शकुन्तला को कोई अभिज्ञान नहीं दिया है, पर पद्मपुराण के अनुसार जाते समय राजा ने शकुन्तला को अपनी अंगूठी दे दी है। पुनः पद्मपुराण के अनुसार सात मास का गर्भ होने तक शकुन्तला महर्षि कण्व के तपोवन में ही रही जबकि अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के अनुसार कुलपति कण्व को दुष्यन्त के साथ शकुन्तला का प्रेम-सम्बन्ध और गान्धर्व-विवाह एवं गर्भवती हो जाने का पता लगते ही उन्होंने तत्काल उसे राजा के पास भेज दिया।

पद्मपुराण के अनुसार जब शकुन्तला हस्तिनापुर राजा के पास जाने लगी तो उसके साथ शार्ङ्गरव, शारद्वत तथा गौतमी के साथ प्रियम्वदा भी जाती है। मार्ग में सरस्वती नदी में स्नान करते समय अंगूठी को शकुन्तला ने प्रियम्वदा को दे दिया, यह अंगूठी प्रियम्वदा

के हाथ से गिर गई। उसने भय के कारण यह बात शकुन्तला से नहीं जनाया और शकुन्तला भी उससे पूछना भूल गई। राजा के पास पहुँचने पर जब उनको विश्वास दिलाने के निमित्त आवश्यकता पड़ी तब शकुन्तला ने प्रियम्वदा से माँगी, पर प्रियम्वदा ने धीरे से उसके कान में कहा कि वह अंगूठी तो नदी में गिर गई है। यह सुनकर शकुन्तला बेहोश हो गई। इसके अतिरिक्त पद्मपुराण का कथानक अभिज्ञानशाकुन्तल के समान ही है। इस प्रकार महाभारत तथा पद्मपुराण के कथानक में अन्तर दिखाई पड़ता है, किन्तु पद्मपुराण की कथा में महाभारत तथा अभिज्ञानशाकुन्तल का मिश्रण है। इस आधार पर कहा जाता है कि यह कथा शकुन्तला से लेकर उसे अपनी शैली में लिख ली गई है।

## मूल कथा में परिवर्तन

कालिदास ने मूलकथा महाभारत से ही ली है पर महाभारत के नीरस कथानक में उन्होंने यत्र-पत्र चमत्कारी परिवर्तन करके उसे सरस बनाकर नया रूप दिया है। मूल कथानक के अनुसार राजा दुष्यन्त शिकार खेलते हुए अपनी सेना के साथ महर्षि कण्व के आश्रम के पास पहुँचने पर अपनी सेना बाहर खड़ी करवाके आश्रम में प्रवेश करते हैं, किन्तु अभिज्ञान शाकुन्तल के अनुसार शिकार खेलते समय राजा की सेना पीछे छूट गई, राजा सूत के साथ आश्रम पर पहुँचते हैं फिर भी सहसा प्रवेश नहीं करते। उन्होंने ऐसे समय पर प्रवेश किया जब तपस्विकन्याओं द्वारा उनसे सहायता प्राप्त करने की चर्चा चल रही थी। यह घटना बड़े स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत की गई है। पीछे सेना का भी उपयोग कवि ने अच्छे ढंग से किया है। राजा को न पाकर सेना उसे खोजती हुई आश्रम के पास आगई वहाँ उसने भगदड़ मचाना शुरू कर दिया। उस समय राजा शकुन्तलासहित सखियों के साथ बातें करने में संलग्न था। सेना द्वारा मचाई भगदड़ समाचार सुनकर वे तपस्विकन्यायें कुटी में चली जाती हैं और राजा इन्हें सान्त्वना देकर व्यवस्था करने के लिए बाहर जाता है।

इस प्रकार कवि ने बड़ी सफाई के साथ शकुन्तला के शील, स्वभाव, लज्जा और मुग्धता की रक्षा की योजना कर शकुन्तला-दुष्यन्त के प्रथम मिलन को प्रस्तुत कर प्रथम अङ्क की समाप्ति कर दी है।

मूलकथा के अनुसार जब राजा दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम पर पहुँचे तो उस समय महर्षि फल लाने के लिए वन में गये हुए थे। इसलिए उनकी पोष्यपुत्री शकुन्तला ने उनका आतिथ्यसत्कार किया। राजा पूछने पर उसने स्वयं अपनी उत्पत्ति की कथा राजर्षि विश्वामित्र से मेनका में बतायी। राजा के द्वारा विवाह का प्रस्ताव करने पर उसने उनको महर्षि कण्व के वन से लौटने तक रुकने को कहा, किन्तु राजा के जल्दी करने पर उसने एक प्रगल्भा, व्यवहारनिपुणा, स्पष्टवादिनी महिला के समान इस शर्त के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया कि आपके बाद मेरा ही पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा। एक अपरिचित व्यक्ति के साथ भोली-भाली तपस्विकन्या का खुल कर इस प्रकार बातचीत करना अस्वाभाविक एवं नीरस प्रतीत होता है। इसके विपरीत अभिज्ञानशाकुन्तल की शकुन्तला लजालु एवं सुकुमारता का प्रतीत है।

इस प्रकार कालिदास की शकुन्तला में हृदय पक्ष की प्रबलता है, तो महाभारत की शकुन्तला में मस्तिष्क पक्ष प्रबल प्रतीत होता है जिसमें व्यापार की प्रवणता-प्रतीत होती है। इसलिए कालिदास ने इस घटना को बदल दिया है। महाभारत में महर्षि फल-फूल

लाने के लिए वन में गये हुए हैं जहाँ से वे शीघ्र ही ३-४ घण्टे में लौट आये होंगे। इतने अल्प समय में राजा दुष्यन्त और शकुन्तला का उस प्रकार का प्रणयपूर्ण मिलन सम्भव नहीं प्रतीत होता। कालिदास के नाटक में महर्षि कण्व शकुन्तला के अनिष्ट शान्ति के लिए प्रवास पर सोमतीर्थ गये हुए हैं। इस अन्तराल में घटित होने वाली आश्रम की घटनाओं के लिए पर्याप्त समय दिया गया है, जो स्वाभाविक सा प्रतीत होता है जिससे कथा में सरसता आ जाती है। यज्ञ के रक्षार्थ तपस्वियों का राजा से ठहरने की प्रार्थना करना, दुष्यन्त शकुन्तला के प्रणय का उद्भव विकास तथा दुर्वासा मुनि के शाप की कल्पना, ये सारी बातें महर्षि कण्व के दीर्घकालीन प्रवास में संभव हो सकती हैं।

सुलभकोप महर्षि दुर्वासा के शाप की चर्चा महाभारत में नहीं है, किन्तु कविवर कालिदास ने शाप की योजना कर दुष्यन्त के साधारण चरित को उठाकर एक आदर्शमय सत्पुरुष के समान समुज्ज्वल बना दिया है। महाभारत के कपटी दुष्यन्त तथा उसके चरित को शाप की सहायता से कालिदास ने स्पृहणीय एवं अनुकरणीय बना दिया है।

महाभारत की कथा के अनुसार शकुन्तला महर्षि कण्व के आश्रम पर ही तीन वर्ष के बाद पुत्र को उत्पन्न करती हैं, उसके ६ वर्ष के बाद कण्व को स्मरण हुआ कि विवाहिता लड़की को अधिक दिनों तक पिता के घर नहीं रहना चाहिए तब उन्होंने पुत्रसहित शकुन्तला को दुष्यन्त के पास हस्तिनापुर भेज दिया। इस कथा को बेतुकी समझ कर कालिदास ने आपने नाटक में बदल दिया है और विश्वसनीय भारतीय परम्परा का अनुवर्तन किया है। नाटक के अनुसार सोमतीर्थ की यात्रा से लौटने के बाद ही अग्निशाला ने आकाशवाणी के द्वारा दुष्यन्त के साथ शकुन्तला के शरीर के सम्बन्ध की बात ज्ञात होते ही महर्षि कण्व ने तत्काल उसी दिन उसे गौतमी तथा शिष्यों के साथ उसके पति के पास भेज दिया। शकुन्तला गर्भिणी अवस्था में ही दुष्यन्त के पास उपस्थित हुई, उसके इनकार कर देने पर उसकी माँ मेनका ने उसे किंपुरुषवर्ष के हेमकूट पर्वत पर महर्षि कश्यप के आश्रम पहुँचा दिया जहाँ ठीक समय पर शकुन्तला ने सर्वदमन को जन्म दिया। इस परिवर्तन से भी कथा में स्वाभाविकता आ गई है महाभारत के अनुसार ९ वर्ष के बाद कण्व का यह कहना कि विवाहिता लड़की को अधिक दिनों तक पिता के घर में न रहना चाहिए—हास्यास्पद हो जाता है।

कालिदास ने अपने कथानक में शाप तथा उसकी निवृत्ति के निमित्त मुद्रिका की योजना की अभिनव उद्भावना की है। महाभारत का दुष्यन्त कामुक तथा स्वार्थी प्रतीत होता है किन्तु नाटक में शापवाली घटना की योजना से उसका चरित्र उज्ज्वल एवं उदात्त हो जाता है। शाप के कारण शकुन्तला का पति के द्वारा तिरस्कृत होना स्वाभाविक है। इस अवस्था में पाठक दुष्यन्त को दोषी नहीं ठहरा पाते, बल्कि, आश्रम की मर्यादा तोड़ने के लिए शकुन्तला को ही दण्डनीय बताते हैं। वस्तुतः नाटक में विप्रलम्भ शृंगार तथा अन्तिम मिलन का जो हृदयस्पर्शी दृश्य का चित्रण हो गया है वह इसी शापवाली घटना का प्रतिफल है। नाटक में शाप के कारण दुष्यन्त को शकुन्तला का भूल जाना तथा शाप की परिसमाप्ति पर स्मृति जागृत होने कि लिए कवि ने अंगूठी वाली घटना को योजित किया है। दुष्यन्त के दरबार में पहुँचने के पहले अंगूठी का गिरना और पुनः प्रत्याख्यान के बाद उसका मिल जाना बाद में उसे देखकर कण्वाश्रम की सारी घटना का स्मरण हो आना ये बातें बड़ी निपुणता एवं स्वाभाविकता के साथ संयोजित की गई है।

महाभारत के अनुसार शकुन्तला पुत्र के सहित दुष्यन्त के पास राजमहल में उपस्थित हुई। दुष्यन्त ने सारा वृत्त जानते हुए भी जब उसे अस्वीकार कर दिया तब निराश होकर वह जाने लगी, ठीक इसी समय आकाशवाणी **हुई—भरस्व पुत्रं दौष्यन्ति सत्यमाह शकुन्तला।** शकुन्तला सत्य कह रही है दुष्यन्त! यह तुम्हारी ही पुत्र है, इसका भरण पोषण करो। देवताओं ने समर्थन किया, पुरोहित ने उसका अनुमोदन किया। इस प्रकार सर्वसम्मति से दुष्यन्त ने शकुन्तला को अपनाया। इससे दुष्यन्त के हृदय की कमजोरी प्रगट होती है। अतः कवि ने इसे बदल दिया। नाटक के अनुसार शकुन्तला गर्भिणी अवस्था में ही राजा के पास गई। दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण उसे उसके साथ हुए गान्धर्व विवाह आदि का वृत्त विस्मृत हो गया। अतः उसने उसे परस्त्री समझकर धर्मतः अपने यहाँ रखना उचित नहीं समझा। अनन्तर शार्ङ्गरव, शारद्वत और गौतमी उसको वहाँ छोड़कर वन में लौट जाने के बाद विवश हो अपने भाग्य को कोश कर रोती हुई पुरोहित के पीछे-पीछे उसके घर जाती हुई शकुन्तला को एक स्त्री स्वरूपवाली अदृश्य ज्योति उठा ले गई। उसके बाद धीवर से प्राप्त अंगूठी को देखकर राजा को सारी बातें याद आ गई। वह अपनी गलती पर पश्चात्ताप करने लगा और पुनः उसका चित्त शकुन्तला की ओर आकृष्ट हो गया। इसी बीच दुर्जय दानवों के आक्रमण को विफल करने के निमित्त इन्द्र के आह्वान पर मातलि द्वारा उपस्थापित उनके रथ पर सवार हो स्वर्ग जाकर दानवों के पराजय के बाद सत्कृत हो लौटते समय मरीचिनन्दन महर्षि कश्यप के आश्रम जाता है। वहाँ उसने पहले शेर के बच्चों से खेलते हुए सर्वदमन को देखा बाद शकुन्तला से उसका मिलन हुआ। पति-पत्नी के मिलन के पूर्व पुत्र के दर्शन ने उसे दृढ कर दिया। पुत्र, पिता और माता के बीच जो प्रेम की ग्रन्थि होता है उसे कवि ने नाटक में बड़ी कुशलता से दर्शाया है। जिसकी चर्चा मूल महाभारत में नहीं है। उसे कवि ने अपनी कल्पना के बल से बहुत ही रोचक उपादेय, ग्राह्य एवं बुद्धिगम्य बना दिया है। और भी, वृद्धा गौतमी, राजपुरोहित, विदूषक, वैखानस। सेनापति आदि की चर्चा महाभारत में नहीं है, किन्तु कवि ने नाटक में इनकी उद्भावना कर इस नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल को संसार में अनूठा बना दिया है। मूलकथा को रोचक बनाने के लिए कविर कालिदास ने अपनी अद्भुत मौलिक कल्पना से और कई बातें उसमें जोड़ दी हैं।

षष्ठ अङ्क में धीवर तथा राष्ट्रिय के दृश्य सन्निवेश में अंगूठी वाला प्रसंग अत्यन्त निपुणता के साथ प्रस्तुत किया गया है। शाप तथा अंगूठी की घटनाओं से वह मानो-वैज्ञानिक कड़ी उपस्थित की गई है, जो वर्तमान को अतीत से जोड़ती है एवं मानवीय जीवन को सफल बनाने का एक स्तुत्य साधन है।

दुर्वासा का शाप राजा दुष्यन्त को कलङ्क से बचाता है। प्रियम्वदा और अनसूया की उपस्थिति दुष्यन्त शकुन्तला के प्रथम मिलन के समय बातचीत के प्रसंग को सरस बनाती है। अंगूठी का वृत्तान्त इस कथा की जान है। विदूषक बीच-बीच में हास्य रस का पुट देकर प्रसंगों को ताजा बना देता है। मातलि का विदूषक पर आक्रमण राजा की चित्तवृत्ति को बदलता है। तिरस्कृत शकुन्तला के विरह में राजा उद्विग्न एवं उदासीन था, शायद उस अवस्था में वह इन्द्र का मनोरथ पूरा न कर पाता। अतः उसे क्रोध उत्पन्न करना आवश्यक था। जिसे अन्त में मातलि ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार नाटक के निर्माता कविकालिदास ने अपनी अद्भुत कल्पना की उद्भावना से इसे लोकोत्तर चमत्कृत

बनाकर इस नाटक के अपूर्ण अङ्ग को पूरा कर दिया है। और नई-नई उद्भावनाओं और नाटकीय तत्त्वों से अपने नाटक में असीम चारुता ला दी है। महाभारत और अभिज्ञान-शाकुन्तल इन दोनों की कथाओं में मुख्य अन्तर इस प्रकार है—

| महाभारत में | नाटक में |
|---|---|
| १. महर्षि कण्व उस समय फल लेने वन में गये हुए थे जब दुष्यन्त उनके आश्रम मे प्रविष्ट होते हैं। | १. वे शकुन्तला के प्रतिकूल ग्रहों की शान्ति करने के निमित्त सोमतीर्थ गये हुए थे। |
| २. उक्त सूचना स्वयं शकुन्तला राजा को देती है। | २. उक्त सूचना राजा को वैखानस देता है। |
| ३. शकुन्तला अपना जन्मवृत्तान्त स्वयं बताती है। | ३. सखी अनसूया शकुन्तला का जन्म वृत्तान्त राजा दुष्यन्त से बताती है। |
| ४. शकुन्तला शर्त के साथ विवाह के लिए राजी हो जाती है। | ४. शर्त को निकृष्ट समझकर सखियों के वार्तालाप, परस्पर दर्शन, पारस्परिक अनुराग पत्रलेखन के अनन्तर गान्धर्व विवाह होता है। |
| ५. कण्व के डर से राजा राजधानी चल देते हैं। | ५. राजधानी जाने का कारण नहीं निर्दिष्ट है। |
| ६. कण्व के आश्रम पर ही शकुन्तला पुत्र को जन्म देती है। | ६. मरीचिनन्दन कश्यप के आश्रम में पुत्र पैदा होता है। |
| ७. ९ वर्ष के बाद सर्वदमन को लेकर शकुन्तला राजा के दरबार में जाती है। | ७. गर्भवती अवस्था में ही राजा के पास पहुँचती है। |
| ८. वह राजा से अनुनय विनय करती है कि आप बालक को युवराज बना लें। | ८. युवराज बनाने की प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि अभी पुत्र हुआ भी नहीं है वह अभी गर्भवती है। |
| ९. लोकापवाद के भय से राजा शकुन्तला को नहीं पहचानता। | ९. दुर्वासा के शाप के कारण ब्याह का स्मरण न होने से राजा शकुन्तला को त्याग कर देता है, धीवर द्वारा अंगूठी प्राप्त होने पर पत्नी के परित्याग के कारण पश्चात्ताप करता है। |
| १०. शकुन्तला कण्वाश्रम की ओर लौटती है। | १०. शार्ङ्गरव, शारद्वत तथा गौतमी के चले जाने पर जब पुरोहित के पीछे-पीछे शकुन्तला रोती हुई जाती है, तो दिव्य ज्योति बनकर मेनका उसे लेकर कश्यप के आश्रम पर पहुँचा देती है। |
| ११. आकाशवाणी पर विश्वास करके नागरिकों के समक्ष राजा शकुन्तला को स्वीकार करता है। | ११. इन्द्र के बुलाने पर राजा असुरों को मारने के लिए स्वर्ग जाता है वहाँ से लौटते समय कश्यप के आश्रम पर पुत्र और पत्नी को प्राप्त कर वह प्रसन्नता से राजधानी में आता है। |

इस प्रकार अनुराग का विकास, नये नये पात्रों की सृष्टि, शाप की कल्पना अंगूठी की उद्भावना आदि कालिदास की बुद्धि का चमत्कार हैं। कण्व, दुष्यन्त, शकुन्तला और सर्व दमन ये महाभारत के पात्र हैं। शिकार खेलते समय कण्वाश्रम पर पहुँचना, गान्धर्व विवाह का कण्व द्वारा अनुमोदन, पहचानने से इनकार और फिर स्वीकार महाभारत के कथानक से संगृहीत है।

## नाटक में कथा का वर्गीकरण

समालोचक वर्ग के अनुसार अभिज्ञानशाकुन्तल की कथा तीन अंशों में विभक्त है। ( १ ) प्रथम अंश में शिकारी राजा दुष्यन्त और प्रकृति सुकुमारी भोली-भाली शकुन्तला का कण्वाश्रम में अस्थायी मिलन ( २ ) दूसरे अंश में इन दोनों का किञ्चित्कालिक विरह ( ३ ) और तीसरे अंश में पुनः दोनों का स्थायी मिलन। प्रथम अंक में अस्थायी प्रथम मिलन के बाद चार अङ्कों तक तो प्रयाण को तैयारी की गई है। पञ्चम और षष्ठ दो अङ्कों में वियोग घटनाएँ अङ्कित हैं। अन्त के सप्तम अङ्क में पुत्रसहित शकुन्तला और दुष्यन्त इन दोनों का पुनः स्थायी मिलन वर्णित है।

प्रथम अस्थायी मिलन के घटनाचक्र तथा चार अंकों तक के कथानक का स्थान तपोवन में महर्षि कण्व का पुनीत आश्रम है। पञ्चम तथा षष्ठ अङ्क में वर्णित वियोग दशा का वर्णन-स्थान नगर में राजा का महल तथा उद्यान हैं। अन्त के स्वामी मिलन का स्थान किंपुरुष वर्ष के हेमकूट पर्वतपर मरीचिनन्दन महर्षि कश्यप का आश्रम है। इस प्रकार की घटनाओं को तीन भागों में विभक्त कर प्रकृति के उपासक कविवर कालिदास ने संकेत किया है कि वस्तुतः तपोवन ही सुखशान्ति के सदन हैं तथा अनेक चाक्यचिक्यों से परिपूर्ण नगर अनेक कष्टकर तथा सन्तोषों की भूमि है। प्रकृति प्रेमी कालिदास की प्रगाढ़ धारणा है कि नगरों के कृत्रिम जीवन से ऊबे हुए प्राणियों के लिए ऋषि-महर्षियों के तपोवन और आश्रम ही शाश्वत शान्तिदायक हैं तथा वहीं जीवन की सफलता है इस प्रकार की धारणा से प्राचीन काल के राजे महाराजे अपने उत्तरधिकारियों को राज्य भार देकर अपनी धर्म-भार्या के साथ तपोवन में जाकर अपने जीवन के अन्तिम क्षण व्यतीत करते थे।

## नाटकों की उत्पत्ति समीक्षा

किसी कलाकार की मानसिक अभिव्यक्ति को दो भागों में विभक्त किया गया है। उपयोगी कला और ललितकला। पुनः ललितकला का वर्गीकरण पांच भागों में विभक्त है। ( १ ) वास्तुकला ( २ ) मूर्तिकला ( ३ ) चित्रकला ( ४ ) सङ्गीतकला और ( ५ ) काव्य कला। इनमें काव्यकला के प्रमुख दो भेद हैं, एक गद्यकाव्य दूसरा पद्यकाव्य। नाटक इन दोनों भेदों के अन्तर्गत आता है। नाटक ही काव्य का एक ऐसा अङ्ग है जो श्रवणेन्द्रिय एवं नेत्रेन्द्रिय दोनों से सम्बद्ध मन को आनन्दित करता है। अतः नाटक को सर्वाधिक श्रेष्ठ काव्यकला कहा गया है—'काव्येषु नाटकं श्रेष्ठम्' संस्कृत के काव्यशास्त्र में रूपक के दश भेद हैं नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क, वीथि और प्रहसन[१], इस प्रकार नाटक रूपक का ही एक भेद है।

---

१. नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥ [illegible] ६।३।

**भारतीय विद्वान् तथा पाश्चात्य जगत् के विद्वानों का मतभेद**

भारतीय विद्वान् भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटकों की उत्पत्ति त्रेतायुग में ब्रह्मा के द्वारा की गई मानते हैं। सत्ययुग में सभी प्राणी सुखी थे, उन्हें किसी तरह के मनोविनोद के साधनों की आवश्यकता नहीं थी, किन्तु त्रेतायुग में सांसारिक दुःखों का प्रादुर्भाव हो गया। इसलिये देव-दानव दोनों ने मिलकर लोकपितामह ब्रह्मा जी के पास जाकर प्रार्थना की कि भगवन् ! सांसारिक दुःखों से क्षणिक मुक्ति के लिए या मनोविनोद के निमित्त हमें कोई ऐसी वस्तु प्रदान करें जिससे हमारा मनोरंजन हो और हम कुछ देर के लिए दुःखों को भूल जाँय। तदनुसार ब्रह्मा जी उनकी प्रार्थना से सन्तुष्ट होकर उठ बैठे और ध्यानावस्थित हो गये। अनन्तर उन्होंने सांसारिक जीवों के मनोरञ्जनार्थ चारों वेदों के सहायता से नाट्य वेद को प्रगट किया है। ऋग्वेद से पाठ्य यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से सङ्गीत तथा अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यकला की सृष्टि की[1] और इसे पञ्चम वेद कह कर प्रसिद्ध किया। इसमें भगवान् शिव ने ताण्डवनृत्य, पार्वतीजीने लास्य-नृत्य, और भगवान् विष्णु से चार वृत्तियों का समावेश कर इसमें पूर्ण कलात्मकता उत्पन्न कर दी। बाद स्वर्गलोक के शिल्पी विश्वकर्मा ने एक रमणीय रंगमञ्च का निर्माण किया। सर्वप्रथम इन्द्रध्वज पर्वपर त्रिपुरदाह तथा समुद्रमन्थन नाटक अभिनीत हुए। ब्रह्मा जी ने नाटक खेलने के लिए भरत मुनिको एक सौ अप्सरायें भी इसलिए सौंप दी कि मुनि उन्हें नाट्यकला की व्यावहारिक शिक्षा दें। अनन्तर इस कला को मर्त्यलोक तक पहुँचाने का भार भरत मुनि को सौंप दिया गया। इस प्रकार द्युलोक से यह नाट्यकला मर्त्यलोक में पहुँच गई। इस प्रकार भारतीय परम्परा नाटकों को उत्पत्ति दैवी मानती है।

पाश्चात्य जगत् के विद्वान् भारतीयों का पूर्वोक्त मत मानने को तैयार नहीं। अतः वे नाटकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक अटकलबाजियाँ किया करते हैं :—

( १ ) विदेशी विद्वान् डा० रिजवे सारे संसार में नाटकों की उत्पत्ति मृतात्माओं के प्रति व्यक्त की गई श्रद्धा से मानते हैं। उनका मत है कि पहले मृत व्यक्तियों के शव सुरक्षित रखे जाते थे तथा उनके श्राद्ध के दिन उनके पूर्व जीवन का प्रदर्शन किया जाता था। अतः उसी परम्परा को रामलीला एवं कृष्णलीला के सम्बद्ध कर भारत में नाटक खेलने की प्रथा चलाई गई।

( २ ) डा० हिलब्रैण्ड और स्टेन कानो का कहना है कि पूर्व भारत में पहले लोकप्रिय स्वांग अधिक प्रचलित थे, उन्हीं से नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ। इन स्वागों में रामायण महाभारत और पुरुषों के आख्यान-उपाख्यानों को मिलाकर ही नाटकों की कथावस्तु का चयन किया गया होगा।

( ३ ) डा० कीथ ने ऋतु परिवर्तन के साथ-साथ होने वाले उत्सवों तथा नृत्यगानों से नाटकों की उत्पत्ति माना है। उनका विचार है कि पाश्चात्य जगत् में मई मास अत्यन्त आनन्दप्रद होता है। इसी समय से वहाँ अधिक उत्सव मनाये जाते हैं। एक लम्बा बांस गाड़कर उसके नीचे एकठ्ठे होकर स्त्री-पुरुष मिलकर नाचते हैं, गाते हैं, और आनन्द मनाते हैं। भारतवर्ष में भी वर्षाकालीन इन्द्रध्वज रथयात्रा महोत्सव भी इसी ढंग का

---

१. जग्राह नाट्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥ भ. ना. ७।

होता है। इससे सिद्ध होता है कि नाटकों की उत्पत्ति विभिन्न ऋतुओं में मनाये जाने वाले त्यौहारों के आधार पर हुई होगी।

( ४ ) जर्मनी के लोकप्रिय विद्वान पिशेल साहब ने नाटकों की उत्पत्ति कठपुतली के नाच से मान ली है। कठपुतली के नाच में उसका व्यवस्थापक नचाने वाला डोरी ( सूत्र ) पकड़कर पुतलियों को नचाता है। अतः इसे सूत्रधार कहते हैं। इस आधार पर सूत्रधार शब्द नाटकों में ज्यों का त्यों ले लिया गया है। अतः नाटकों की उत्पत्ति कठपुतली के नाच से हुई मानना सर्वथा संगत है।

( ५ ) इनके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने नाटकों की उत्पत्ति का स्रोत यूनानी नाट्य कला को माना है। इसके लिए वे प्रमाण में यवन शब्द से उत्पन्न यवनिका शब्द उपस्थित करते हैं। इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि संस्कृत नाटकों में जवनिका शब्द का व्यवहार होता है जिसका अर्थ है ढकने वाला पर्दा। अमरसिंह अपने अमरकोश में स्पष्ट लिखते हैं कि—**जवनिका पटमण्डपम्**।

प्रोफेसर मैक्समूलर की खोज है कि संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति का बीज ऋग्वेदों के सम्पाद सूक्तों में मिलते हैं। इसके अनन्तर अनेक पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वान् भी ऋग्वेद के संवादों में नाटकोत्पत्ति की मूल सामग्री खोजने की चेष्टा किया करते हैं।

जर्मनी विद्वान् श्रोडर साहब भी मानते हैं कि पहले संवाद सूक्त गायन तथा नर्तन के साथ अभिनीत किये जाते थे। यज्ञ के कुछ विशिष्ट अवसरों पर नृत्य गीत आदि के साथ याज्ञिकों द्वारा इनका अभिनय किया जाता है। वस्तुतः संवाद सूक्तों को गायन में एक से अधिक व्यक्ति सम्मिलित होते थे, क्योंकि संवाद का कार्य एक व्यक्ति से संभव नहीं है। अतः संवाद सूक्तों में नाटकों के बीज निहित हैं। इस प्रकार नाट्य के बीज वेद ही में जो अङ्कुरित, पल्लवित तथा पुष्पित होकर हमारे सामने प्रतिफलित हैं। यह बात दूसरी है कि नाट्य को पूर्णता प्रदान करने में अन्य कई बातों ने भी सहयोग प्रदान किया होगा।

**नाटकों के विकास का समय—**

नाट्यशास्त्र के काल के विषय ने विद्वानों ने विभिन्न मत व्यक्त किये हैं। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने नाटकों का समय दूसरी शताब्दी माना है। डा० कीथ का विचार है कि इसका समय तीसरी से पूर्व नहीं हो सकता है। डी० डी० सरकारने नाट्यशास्त्र का समय दूसरी के बाद माना है। मनमोहन घोष ने नाट्यशास्त्र का समय १००० और २००० के मध्य में निर्धारित किया है। वी० पी० काणे ने नाट्यशास्त्र का समय तीसरी शताब्दी के बाद संभव नहीं माना है।

## शेक्सपीयर और कालिदास

कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल की तुलना प्रायः शेक्सपीयर के सुखान्त नाटक टेम्पेस्ट ( तूफान ) से की जाती है तथा शकुन्तला की समता उसकी नायिका मिराण्डा से की जाती है। दोनों नाटक उत्कृष्टकोटि की रचनाएँ हैं। किन्तु दोनों की कल्पना में मौलिक अन्तर है।

वस्तुतः शाकुन्तल के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाला शेक्सपीयर का कोई नाटक नहीं है। शाकुन्तल का शिल्पसौन्दर्य अनिन्द्य है। इसकी ख्याति में इसके कलात्मक सौष्ठव का यथेष्ट योगदान है। जिस प्रकार पुष्प से किसी छोटी से छोटी पंखुड़ी को अलग कर देने

से उसका सौन्दर्य क्षतिग्रस्त हो जाता है उसी प्रकार शाकुन्तल में से किसी पंक्ति या किसी शब्द को हटा देना उसके सौन्दर्य शरीर को आघात पहुँचाने के अतिरिक्त कुछ नहीं है। कवि ने एक एक शब्द एवं एक-एक वाक्य बड़ी सावधानी से सजाया है। फिर भी शाकुन्तला की विश्वव्यापी ख्याति का मूल कारण उसका जीवन दर्शन है। उसमें संशय-संघर्ष का तूफान नहीं है, प्रत्युत परमशान्ति का प्रकाश है। शकुन्तला तथा दुष्यन्त दोनों ने प्रमाद किया है तथा परिणामतः पश्चात्ताप तथा तपस्या अग्नि में तपकर निर्मल हो गये हैं। प्रेम एवं नैतिक दायित्व का ह्रास नहीं है और दोनों परस्पर मिल कर समरस बन गये हैं विषाद एवं निराशा के बाद दोनों जिस मङ्गलमय परिपक्व जीवन में प्रवेश कर गये हैं वहीं आध्यत्मिक शान्ति है जो संस्कृत नाटकों की विशेषता है।

वस्तुतः कालिदास की काव्यात्मक)प्रतिभा जितनी पटभूमि को आच्छन्न करती है उतनी शेक्सपीयर की प्रतिभा की पहुँच के बाहर है। कालिदास ने महाकाव्य तथा नाटकों का प्रणयन किया है जब कि शेक्सपीयर की प्रतिभा केवल नाट्य कला के सजाने में ही सीमित है। कालिदास के काव्यों में भारतीय संस्कृति के चिन्तन आदर्श अनवद्य रूप में ध्वनित हुए हैं और वे सच्चे अर्थों ये भारतवर्ष के राष्ट्रीय कवि हैं।

जहाँ तक नाटकीय उपलब्धियों का प्रश्न है शेक्सपीयर सफल हैं। जीवन की विपन्नता एवं विशदता को चित्रित करने में तथा इतिहास के अतीत को सजीवता के साथ नाटकीय अभिव्यक्ति देने में शेक्सपीयर अद्वितीय हैं। किन्तु अन्य दिशाओं में कालिदास शेक्सपीयर से आगे बढ़ गये हैं। प्रकृति का चित्रण तथा मानव जीवन के सामरस्य का निदर्शन जैसा कालिदास की कृतियों में दृष्टिगोचर होता है वैसा शेक्सपीयर की रचनाओं में खोजने पर भी नहीं मिलेगा। इसी प्रकार जीवन के जो आध्यात्मिक तत्त्व कालिदास कृत्तियों में हैं वह शेक्सपीयर की कृतियों में नहीं हैं। कालिदास सच्चाई एवं सहानुभूति के दरवाजे से विश्व के हृदय में प्रवेश करते हैं। मानव मन की शाश्वत अभिलाषाओं का चित्रण सटीक तथा सर्वाङ्गपूर्ण कालिदास की कृतियों में उद्वेलित है तथा सभी के हृदयों को आवर्जित करती रहती है।

## कालिदास की शैली

कालिदास वैदर्भीरीति के कुशल कवि हैं। उनकी रचनाओं में व्यञ्जनाशक्ति की चारुता, प्रसादगुण की प्रचुरता पाठकों के हृदय को चमत्कृत कर देती है। जिस प्रकार स्वच्छ जल में पड़ी हुई वस्तु स्पष्ट दिखाई पड़ती है उसी प्रकार उनके ग्रन्थों में अर्थ निर्मल एवं स्पष्ट प्रतीत होते हैं। इनकी कृतियों में प्रसादगुण के साथ-साथ सरसता के दर्शन होते हैं। यमक अलंकार के प्रति रघुवंश के नवम सर्ग में उनकी रुचि दिखलाई पड़ती है और द्रुतविलम्बित छन्द का अन्तिम चरण यमकमय किया गया है, पर वह भी सीमित स्थान में। उससे प्रसादगुण की कोई क्षति नहीं पहुँचती। उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का प्रयोग भी उन्होंने बड़ी सफलता के साथ किया है, पर इन सबसे बढ़कर उनकी प्रसिद्धि उपमाओं के लिए है। अनुरूपता तथा कमनीयता उनमें कूट-कूट कर भरी पड़ी है। कवि की सबसे सुन्दर उपमा कुमारसंभव के पञ्चम सर्ग के अन्त में आई है। भगवान शङ्कर. अपने निमित्त तप कर रही उमा को अपनी ही निन्दा करके उसे क्रुद्ध कर देते हैं। उन्हें न पहचान कर जब वह अन्यत्र जाने लगती है तब वे अपने वास्तविकरूप में प्रगट होकर उसे चौंका देते हैं। वह स्तब्ध रह जाती है, शरीर काँपने लगता है, आगे

बढ़ा हुआ पैर उधर में ही रह जाता है। उस समय वह उस नदी की तरह न तो आगे बढ़ पाती है और न ही रुक पाती है जो अपने सम्मुख उपस्थित पर्वत की बाधा पाकर न बढ़ पाती है और न रुक पाती है—

**तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिः निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।**
**मार्गाचलव्यतिकराऽऽकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥**

छन्दों के प्रयोग में कालिदास की दक्षता है। वे इन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, और अनुष्टुप् छन्दों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। जहाँ मेघदूत में उन्होंने केवल मन्दाक्रान्ता छन्द से ही कमाल दिखा दिया है वहाँ रघुवंश में छन्दों की विविधता की निपुणता दिखाई पड़ती है।

संस्कृत साहित्य में नाटकों की सजीव तथा मूर्त परम्परा का अनुवर्तन महाकवि भास से होता है। नाटकों की निर्माणपरम्परा में भास के बाद महाकवि कालिदास का क्रम आता है। संस्कृत साहित्य के उपवन में कालिदास का समागम एक वसन्तदूत के रूप में माना गया है जिसके कारण उस उपवन का कोना-कोना पुष्पित हो उठता है। उन्होंने संस्कृत भाषा को वाणी दी, नये साज सजाए, नये भाव, नयी दिशाएँ, नये विचार और नयी-नयी पद्धतियाँ दीं। इसी प्रकार कविवर कालिदास सबसे बड़े नाटककार और सबसे बड़े महाकवि हैं। कालिदास के सम्बन्ध में विश्वकवि गेटे ने कहा है कि स्वर्ग एवं मर्त्य का जो मिलन है उसे कालिदास ने सहज ही सम्पादित कर दिया है तथा उन्होंने फूल को सहज भाव से फल के रूप से परिणत कर दिया है। मर्त्य की सीमा को उन्होंने इस प्रकार स्वर्ग से मिला दिया है कि बीच का व्यवहार किसी को दृष्टिगोचर नहीं होता।

नाटकों के क्षेत्र में महाकवि ने 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय' और 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' इन कृतियों का प्रणयन किया है। नाटकीय नियमों की दृष्टि से कथानिर्वाह, घटनाक्रम, पात्र-योजना आदि सभी में उनके असाधारण कौशल की छाप है। शाकुन्तल उनकी अन्तिम कृति है, किन्तु उसकी गणना आज विश्व-साहित्य की पहली कृतियों में की जाती है। प्रेम और सौन्दर्य का ऐसा सरस, हृदयग्राही एवं मर्मस्पर्शी चित्रण अन्यत्र देखने का नहीं मिलता है। उनमें ओज के साथ मनोज्ञता और लघुत्व के साथ ही भावप्राञ्जलता का अद्‌भुत समन्वय विद्यमान है।

**जन्माष्टमी, सं० २०३७ वि०**
**भारतीय साहित्य शोध संस्थान**
**वाराणसी**

विनीत
**डा० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी**

# संस्कृते कथासारसंग्रहः

## प्रथमेऽङ्के कथासारांशः

अथ नाटकस्यादौ पूर्वरङ्गाङ्गभूतामाशीरूपां 'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या' इत्यात्मिकामष्टपदीं नान्दीं विघ्नव्यूह निरासाय पठति सूत्रधारः। ततः सूत्रधारो नटीं ब्रूते आर्ये! कालिदास-ग्रथितवस्तुनोऽभिनयेनाभिज्ञानशाकुन्तलनामकेन नाटकेनोपस्थातव्यमिति तदनु चिरप्रवृत्त-मुपभोगक्षमं ग्रीष्मकालमधिकृत्य नटी गायति। मनोहारिणा तेन गीतेन मृगेण राजा दुष्यन्त इवाहमपि हठात् मनोहारिणा गीतेन हृतोऽस्मीति प्रस्तौति प्रस्तावनायां सूत्रधारः—

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।
एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा॥ ५॥

तदनन्तरं मृगवधाय यावदसौ राजा धनुषि शरं संधत्ते तावदेव द्वौ वैखानसौ 'आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्य' इति निषेधयन्तौ दुष्यन्तं निवारयतः।

सोऽपि तदादेशानुसारं सद्यः सायकं प्रतिसंगृहीतवान्। ततः ताभ्यां स्वात्मानुगुणं चक्र-वर्तिनं तनयं प्राप्नुहीति शुभाशिषं प्रदाय कण्वाश्रमे प्रवेशायानुरोधं कृत्वा समिदाहरणाय प्रस्थितौ। ततो राजा तपोवनोपरोधो मा भूदिति रथादिकं बहिः संस्थाप्य दक्षिणबाहुस्पन्दन-पूर्वकं विनीतवेषेणाश्रमं प्रविश्य तत्र सखीभ्यां समेतामाम्रान् सिञ्चन्तीं शकुन्तलामालोक्य। आत्मगतं चिन्तयति—

इदं किल ब्याज मनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पल पत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति॥ १८॥

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥ २०॥

अत्रान्तरे भ्रमरपीडिता शकुन्तला आत्मानं परित्रातुं सख्यौ प्रार्थितवती। ततस्तयोः सपरिहासं भणति—के आवां परित्रातुं। राजरक्षितव्यानि तपोवनानि। अतो दुष्यन्तमाक्रन्द। स एवागत्य त्वां परित्रास्यति। अवसरं ज्ञात्वा दुष्यन्तस्य स्वात्मप्रकाशनम्, ससंभ्रमां शकुन्तलां वीक्ष्यानसूयाप्रियंवदयोः—राज्ञ आतिथ्यसामग्रीसञ्चयार्थं शकुन्तलायै आदेश-दानम्। ततो राजा—भवतीनां सूनृतया गिरा एव कृतमातिथ्यम्। ततः सखीसकाशात् तन्नामजन्माद्यवगम्य तदीयरूपलावण्याकृष्टो राजा ब्रवीति—

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्॥ २५॥

इदं श्रुत्वा शकुन्तलाऽधोमुखी तिष्ठति।

ततो नेपथ्ये—भो भोः तपस्विनः मृगयाविहारी राजा दुष्यन्तः प्रत्यासन्नो वरीवर्ति। अतः तपोवनसत्त्वरक्षायै सज्जीभवन्तु भवन्त इति श्रवणम्। किमस्मदन्वेषिणः पौराः तपोवनमुप-रुन्धन्ति। अतः आश्रमपीडा यथा न भवेत्तथा प्रयतिष्यामहे। दुष्यन्तरथदर्शनसंभ्रान्तस्य कस्यचिद्वन्यगजस्य तपोवनप्रवेशं श्रुत्वा संभ्रान्ता मुनिकुमार्यः उत्तस्थुः कथयामासतुश्च

आर्ये वन्यगजवृत्तान्तेनानेन पर्याकुलाः स्मः। अतोऽनुजानीहि उटजगमनाय। असंभाविता-तिथिसत्कारं भूयोऽपि प्रेक्षणनिमित्तं लज्जामहे आर्यं विज्ञापयितुम्। राजापि मा मैवं दर्शनेनैव भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि। शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सव्याजं विलम्ब्य निर्गता। राजापि नगरगमनं प्रति मन्दौत्सुक्यः सन् यथा आश्रमबाधा न भवेत्तथा यतिष्ये इत्युक्त्वा निष्क्रान्तः।

**द्वितीयेऽङ्के कथासारांशः**

अयं मृगः, एषः वाराहः, असौ शार्दूल इति मध्याह्नेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजिषु अटवीतोऽटवीं भ्रममाणस्य मृगयाशीलस्यास्य राज्ञो दुष्यन्तस्य स्नेहपरवशेन माधव्य-नाम्ना विदूषकेन दुःखानुभवो वर्णितः। ततो मृगवाराहादीननुसरता कण्वाश्रमप्रविष्टेन नृपेण दुष्यतेन तपस्विदुहिता शकुन्तलावलोकिता। तल्लावण्यलुब्धः तामेवानिशं चिन्तयन् कथमपि निशामतिवाहितवान्। ततो राजा सेनापतिमाहूय प्रोवाच सेनापते! वनग्राहिणो निवर्तस्व यथा तपोवनोपरोधो न भवेत्तथा सैनिकाः निरोधव्याः। यतो हि—

**शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।**
**स्पर्शानुकूला इव चन्द्रकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति ॥ ७ ॥**

ततो रहसि स्वसुहृदे माधव्याय कण्वसुताशकुन्तलादर्शनेन जातमात्मनोऽवस्थां न्यवेदयत् दुष्यन्तः। अपि च शकुन्तलाया देवाङ्गनासंभवत्वम्, आत्मनस्तया सह सम्बन्धयोग्यताम् तस्या सखीभ्यां सह संवेदावसरे विविधभावप्रकाशनानन्दकं सर्वमवर्णयत्।

अत्रावसरे मुनिकुमारावागत्योचतुः—राजन्! तपस्विभिर्ज्ञातमस्ति यद्भवानत्रैव तिष्ठति। अतस्ते भवन्तं प्रार्थयन्ते यदस्माभिः क्रियमाणे यज्ञे राक्षसा बाधां कुर्वन्ति ततः तन्निवारणाय भवता कतिपयदिवसमात्रं सनाथीक्रियतामयमाश्रमः। तस्मिन्नेवान्तरे राजधानीतोऽम्बाया सन्देशहरः करभकः उपस्थापयाम्बासन्देशं दुष्यन्ताय-न्यवेदयत्-आयुष्मन्! मातृभिः सन्दिष्टो भवान् यत् आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणा मे उपवासो भविष्यति तत्र दीर्घायुषाऽवश्य-मुपस्थायाहं संभावनीया। ततः समकालं तपस्विसहितशकुन्तलानुराग—पुत्रकर्तव्याभ्यामा-कुलीकृतचित्तः दुष्यन्तो विदूषकमाह—वयस्य! त्वमम्बया पुत्रत्वेन परिगृहीतोऽसीत्यतस्तत्र गत्वा तत्पुत्रकार्यं सम्पादय, अहं तु ऋषीणां गौरवादत्रैव तिष्ठामि। न खलु त्वया शकुन्त-लायां ममाभिलाषः तत्र प्रकटनीयः, मया तु तद्वच उपहासेन तुभ्यमवोचि।

वयस्य पश्य!

**क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः।**
**परिहासविजल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः ॥ १८ ॥**

एवमाभाष्य राजा सकलानुयात्रिकैः सह विदूषकं स्वराजधान्यां विसृज्य कण्वश्रमे प्रविष्टः।

**तृतीयेऽङ्के कथासारांशः**

अथ कुशहस्तो यजमानः शिष्यः प्रविश्य राज्ञो दुष्यन्तस्य तपोवनप्रवेशात् निरुपप्लवं निखिलं यज्ञकर्म संवृत्तमिति सगौरवं तस्य शौर्यं प्रतापातिशयं च वर्णयति विष्कम्भके—

**का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः।**
**हुंकारेणैव धनुषः स हि विघ्नानपोहति ॥ १ ॥**

ततो मुनिभिरनुज्ञातो दुष्यन्तः दूरीकरणाय श्रमक्लममनोविनोदाय च क्व गच्छामि? अथ शशाङ्कमदनावुद्दिश्य कामव्यथां वर्णयन् सखीपरिवृता शकुन्तला मालिनी नदीतटे इमामुष्मां वेलामतिवाहयतीति तामन्विष्यन् मालिनीतीरमाययौ तत्र लतामण्डपे कुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयानां सखीभ्यां नलिनीदलादिभिरुपचर्यमाणां शकुन्तलामक्षिलक्ष्यी चकार। बलवदस्वस्थशरीरायाः शकुन्तलायाः सखीभ्यां सह विश्रम्भालापांश्च संश्रोतुकामो नृपः शाखान्तरितो भूत्वाऽतिष्ठत्। ततः सखीभ्यां तदवस्थां ज्ञातुं पृष्टा सा ब्रवीति—सख्यौ तपोवनेऽस्मिन् राजर्षेः दुष्यन्तस्यागमनादेवाहमिमां दशां गतास्मि। स एव मम शरणमिति निशम्य प्रियम्वदा मदनलेखात्मकं प्रयोगं रुचिरं विचार्य देवताप्रसादोपदेशेन राजानं प्रति तत्प्रापणकार्यं स्वयं स्वीकरोति। ततो मदनलेखं विरच्य शकुन्तलया वाच्यमानं निशम्य सन्तुष्टान्तरात्मा दुष्यन्तः तमेवावसरं प्रकटयितुं मत्वा सहसोपसृत्य स्वीयां चानिर्वर्णनीयां दशां ताः प्रख्यापयति। ततः सख्यौ आहतुः-महाभाग! एषा नौ प्रियसखी शकुन्तलां भवन्तमेवोद्दिश्य मदनेनेदं दशान्तरं नीता। तदर्हस्यभ्युपपत्या जीवितमस्या अवलम्बितुं। यथा नेयं बन्धुजनशोच्या भवति तथा करोतु महाराज-इत्युक्त्वा मृगपोतकं तन्मात्रा सह मेलयितुं व्याजीकृत्य लतामण्डपाद् बहिर्निर्ययतुः। अथ सख्योरनुसरणपरा शकुन्तला राज्ञा बलान्निवारिता। ततः किञ्चित्कालं चिरप्रार्थितवाञ्छासाफल्येन सुखितयोः परमानन्दमनुभवतोः तयोः स्वस्थोपलम्भनार्थं शान्त्युदकहस्ता गौतमी शकुन्तलामाह्वयन्ती तमेव प्रदेशमनुसृत्य। प्रोक्तवती वत्से! अनेन दर्भोदकेन ते शरीरं निर्बाधं भविष्यति। ततो जाते! परिणतो दिवसः सायंकालः संजातः, उटजं गच्छामः इति सर्वाः प्रस्थिताः। अथ दुःखेन तामनुसरन्ती।

सा लतावलयव्याजेन राजानमवोचत्-लतावलय! सन्तापहारक! आमन्त्रये त्वां पुनः परिभोगाय। एवं सापदेशं राजानमुक्त्वा निर्ययौ। तेनातिखिन्नमना राजा तत्रैव प्रेयसीविहृतस्थलादि स्मारं स्मारं कथंचिदतिवाह्य प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतामण्डपे मुहूर्तं स्थित्वा विषण्णः सन् सवनकर्मव्यापृतानामृषीणां निशाचरभयवारणायागात्—

> **सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते**
> **वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रयस्ताः।**
> **छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः**
> **सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम्॥ २४॥**

सत्यवसरे दुष्यन्तो गान्धर्वविवाहविधिना शकुन्तलामुद्वाह्य तया साकं किञ्चित्कालमतिवाह्य ऋषिभिरनुज्ञातः स्वां राजधानीं जिगमिषन् तस्यै स्वनामाङ्कितमङ्गुलीयकं प्रदाय प्रावोचत् प्रिये! अत्र प्रत्यहमेकमेकं मदीयं नामाक्षरं गणनीयं यावदन्तं गच्छति तावद् ममान्तःपुरप्रापकः कश्चन विश्वस्तो जनः तव समीपमुपैष्यतीत्येवमाश्वास्य हस्तिनापुरं चचाल।

## चतुर्थेऽङ्के कथासारांशः

अस्मिन् चतुर्थेऽङ्के कुसुमावचयव्यग्रयोः प्रियम्वदाऽनसूययोः सख्योः मिथः संवादेन ज्ञायते यत्तपोवने समारब्धस्य यज्ञस्य निर्विघ्नं समाप्तौ मुनिभिर्विसर्जितः राजा दुष्यन्तः स्वां राजधानीं प्रतिष्ठाय स्वान्तःपुरजनेन गान्धर्वविधिना परिणीतां सखीं शकुन्तलां संस्मरिष्यन् वेति। तमेव राजानं ध्यायन्ती शकुन्तला खिन्नमना उटजेऽवतस्थे सन्निधावेव वर्तते।

एतस्मिन्नेवावसरे—आः अतिथिपरिभाविनि। यं त्वं प्रियमनन्यमनस्कतया विचिन्तयन्ती-

आतिथ्येन द्वारदेशे समुपस्थितं मां तपोधनं न वेत्सीत्यतो बोधितोऽपि स ते प्रियः विवाहवृत्तं न स्मरिष्यतीति शप्त्वा सुलभकोपो महर्षिः दुर्वासा प्रतिनिवृत्तः ।

**विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा**
**तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।**
**स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्**
**कथां प्रमत्तः प्रथमां कृतामिव ॥ १ ॥**

इमं व्यतिकरं निशम्य अनसूया सपदि मुनिप्रसादनाय प्रियम्वदां प्राहिणोत् । तया च मुनिचरणयोः प्रणिपत्य भूयो भूयोऽनुनीतो महर्षिरवादीत्–मम शापोऽन्यथा न भावी, किन्त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन स शापो निवर्तयिष्यते इत्यभिधायान्तर्हितो जातः । सख्यौ च नगरगमनसमये राज्ञा शकुन्तलायै प्रदत्ताङ्गुलीयकं स्मृत्वा शकुन्तलाचित्तोद्वेगभिया तच्छापवृत्तं तस्यै न निवेदितवत्यौ ।

अथ सोमतीर्थयात्रातः प्रतिनिवृत्तेन महर्षिणा कण्वेनाग्निगृहे प्रवेशे कृतेऽशरीरिण्या व्योमवाचा शकुन्तलाया दुष्यन्तेन साकं संवृत्तं वृत्तमवोचि । ततो महर्षिः व्रीडावनम्रां शकुन्तलामाश्लिष्य तत्कर्माभिनन्द । पतिगृहं प्रेषयितुकामः तदीय प्रस्थानमङ्गलविधिमादिदेश च । गौतम्यादिभिः जरतीभिः तापसीभिराशीर्वचनपूर्वकं निर्वतितप्रस्थानकौतुका, सखीकृतमङ्गलसमारम्भे च शकुन्तला मालिन्यां स्नानादिकृत्यं कृत्वाऽऽगतं तातकण्वं प्रणनाम । स च प्रेमगद्गदया वाचा—जाते ! शाकुन्तले ! आत्मसदृशेन भर्त्रा त्वं संगतेति प्रसीदतितमां मे चेतः । पतिगृहं समुपस्थाय मर्यादापालनपूर्वकं पति-सपत्नी-श्वसुर-श्वश्रू-परिजनादीनां सन्तोषकरकार्यं कार्यमित्यादिश्य, ययातेः शर्मिष्ठेव भर्तुः बहुमता भवेत्याशिषमदात् । ततः शकुन्तला तातानुरोधेन हुताग्नीन् प्रदक्षिणीकृत्य वनदेवताश्च प्रणम्य विभिन्नैर्वृक्षादिभिर्दत्तानि दिव्यानि आभरणवस्त्रादीनि परिधाय स्नेहविक्लवेन कण्वेन, वयस्याभ्यां चानुगम्यमाना पदे पदे स्खलन्ती प्रतस्थे । उदकान्तं प्रियजनोऽनुगन्तव्य इति शास्त्रनियमेनोदकान्तं गत्वा महर्षिः कण्वो दुष्यन्ताय समुचितं सन्दिश्य शकुन्तलामपि प्रसङ्गोचितमुपदिशत् । सख्यावपि प्रियम्वदानसूये—प्रियसखि ! शकुन्तले ! यदि स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्तदा नगरगमनसमये तुभ्यमर्पितं तदङ्गुलीयकं तस्मै दर्शयितव्यमिति संदिदिशतुः ।

ततो गौतमी-शार्ङ्गरवशारद्वतैः सह शकुन्तला हस्तिनापुरं प्रतस्थे, कण्वश्च प्रियम्वदानुसूयाभ्यां साकं शकुन्तलाशून्यं स्वाश्रमं प्रति परावृत्तः स्नेहप्रवाहाविमर्शपूर्वकं प्रावोचत्—

**अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः ।**
**जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ २१ ॥**

**पञ्चमेऽङ्के कथासारांशः**

अथास्मिन्नङ्के वयस्येन माधव्येन सह राजधान्यां नागरिकवृत्या लयतालबद्धं हंसपदिकागीतं निशम्य तदर्थं स्मारं स्मारं कामप्यन्तर्व्यथामानुभवति राजा दुष्यन्तः । अत्रैवान्तरे कुलपतेः कण्वस्यादेशमादाय तपोवनात् सस्त्रीकाः तपस्विनः समायाता इति कञ्चुकी निवेदयति । ते श्रौतेन विधिना सत्कृत्य यज्ञशालायां प्रवेशयितव्या इत्यादिश्य राजापि तान् प्रतिपालयितुं तत्रोपतिष्ठते । ततः सोमरातः पुरोहितो राजाज्ञया श्रौतेन विधिना तान् सत्कृत्य यज्ञशालामुपस्थापयत् । तत्र प्रविष्टास्ते आशीर्वचनपूर्वकं राज्ञे अवगुण्ठनवती शकुन्तलामधिकृत्य कण्वस्य सन्देशं न्यवेदयन्—

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां
जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते
प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ।। १७ ।।

परं महर्षेः दुर्वाससः शापप्रभावेण स शकुन्तलायाः परिणयविधिं विसस्मार अकथयच्च-भो भोः तपस्विनः ! निपुणं विचारयन्नपि न स्मरामि अस्या देव्या पाणिग्रहणम् । तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां प्रति आत्मानं क्षत्रिणं मन्यमानः प्रतिपत्स्ये । तत्कण्वस्यान्तेवासिभ्यां साधिक्षेपमुक्तोऽपि शकुन्तलाया अवगुण्ठनापनयनानन्तरं प्रत्यक्षीकृत्यापि यदा नाङ्गीचकार तदाऽभिज्ञानेन तस्य शङ्कामपनेतुं शकुन्तला प्रववृते, परमङ्गुलीयकशून्यामङ्गुलीं दृष्ट्वा परमं विषण्णा सती तस्मै दीर्घापाङ्गमृगशावक जलपानप्रत्ययवचनं दत्तवती । तथापि वैफल्ये सति राजाऽवोचत्—आत्मकार्य निर्वर्तनीनामनृतवाङ्माधुरीभिः विषयिण आकृष्यन्ते । उड्डयनशक्तेः पूर्वं परभृतः स्वानि अपत्यानि काकैः परिपोषयन्ति । अशिक्षितास्वपि स्त्रीषु परवञ्चनकौशलं प्रसिद्धमेव । अतो वनवासवर्धितापीयं शकुन्तला स्त्रीभावसुलभं वञ्चनकौशलं जानात्येव । यदि स्त्रीजातौ समुत्पन्नासु शिक्षणं विनैव नैसर्गिकं वञ्चनपटुत्वं दृश्यते । तर्हि वाग्व्यवहारकुशलासु मानुषीषु किं वक्तव्यम् ?

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत या प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः परभृतः खलु पोषयन्ति ।। २२ ।।

त्वं जनयित्वा जङ्के उत्सृष्टा कोकिलेवपरैः भृतासि । अतः कामं गच्छ, तिष्ठ वा यदेच्छं कुरु । एवं स्वजनन्युपमर्देन सन्तप्ता शकुन्तला दुष्यन्तं प्रति—अनार्य ! आत्मनोऽनुमानेन सर्वान् प्रेक्षसे इति । तृणैराच्छन्नकूपस्य इव धर्मकञ्चुकिनः त्वत्तोऽन्य संसारे कः पापबुद्धिः । ततो राजा सुभगे ! प्रथितं दुष्यन्तस्य चरितं । न मे प्रजासु त्वत्समं छलकपटादिकं दृश्यते । ततो गौतमी—जाते ! पुरुवंशप्रत्ययेन मधुरभाषिणो हृदयनिहितविषस्य दुष्यन्तस्य हस्ते त्वमुपगता । ततः शकुन्तला पटान्तरेण मुखमाच्छाद्य रोदिति । ततः शारद्वतोऽब्रवीत् शार्ङ्गरव ! किमुत्तर-प्रत्युत्तरेण । अस्माभिः गुरोर्नियोगोऽनुष्ठितः प्रतिनिवर्तामहे । राजानं प्रति इयं ते पत्नी त्यजैनां गृहाण वा । गौतमि ! गच्छाग्रतः । शकुन्तले ! पतिकुले ते दास्यमपि शुचिव्रतमित्यादिश्य सर्वे प्रस्थिताः ।

राजा समयोचिते कर्तव्यं पृष्टः पुरोधा प्रोक्तवान्—इयं देवी तावत् मम गेहे एवाप्रसवं तिष्ठतु । त्वं प्रथमं चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति सिद्धैरादिष्टम् । तत् यदि मुनिदौहित्रः तल्लक्षणोपपन्नः स्यात्तर्हि इमामभिनन्द्यान्तःपुरे प्रवेशयिष्यसि, विपर्ययेऽस्याः पितुः समीपे गमनमुचितम् । राज्ञानुमतोऽसौ यदा स्वगृहं गन्तुं प्रववृते तदैव 'भगवति वसुधे ! देहि मे विवरमि'त्यभिदधाना स्वानि भाग्यानि च निन्दन्तीं क्रन्दमानां च तां शकुन्तलां स्त्रीसदृशमेकं ज्योतिरुत्क्षिप्याप्सरस्तीर्थं जगामेति पुरोहितो निवेदयति । तस्मिन्नुदन्ते साश्चर्यः पर्याकुलो राजा शयनागारं प्रविष्टश्चिन्तयति—

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम् ।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्याययतीव मे हृदयम् ।। ३१ ।।

**षष्ठेऽङ्के कथासारांशः**

अथ गच्छति किञ्चित्काले शक्रावतारतीरवर्ती कश्चिद् धीवरी रत्नजटितं राजनामोत्कीर्णं बहुमूल्यमेकं स्वर्णमयमङ्गुलीयकं विक्रेतुमापणे गच्छन् राजपुरुषाभ्यां बद्धहस्तो

नगररक्षकराजश्यालकसमीपमानीतः। अङ्गुलीयकागमनकारणं पृष्टः स ब्रूते—स्वामिन्! जालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणपोषणं करोमि। एकदा मया जाले एको रोहितो मत्स्य आसादितः। खण्डशः कल्पितस्य तस्य मत्स्यस्योदरे रत्नभास्वरमिदमङ्गुलीयकं मया लब्धा विक्रेतुमापणे आगतः, आभ्यां गृहीतः आनीतश्च। तदाकर्ण्य नगरपालः तदङ्गुलीयकमादाय राजकुलं गत्वा राजशासनं प्रतीक्ष्य प्रत्यागतो रक्षिणावुवाच—मुच्यतामेष जालोपजीवी धीवरः। विदितोऽस्याङ्गुलीयकस्यागमवृत्तान्तः, एषोऽङ्गुलीयकमूल्यसम्मितः प्रसादोऽपि सन्तुष्टेन राज्ञाऽस्मै प्रदत्त, इत्युक्त्वा तस्मै धीवराय स्वर्णकङ्कणं दत्तवान् चकार च तेन साकं कादम्बरी-मैत्रीम्।

अथ मेनकासहचरी सानुमती नामाप्सराः पर्यायनिवर्तनीयमप्सरस्तीर्थसान्निध्यं सम्पाद्य राज्ञो दुष्यन्तस्य प्रमदवने प्रविष्टा तिरस्करिणी प्रतिच्छन्ना राज्ञः पार्श्ववर्तिनी भूत्वा तस्थौ। अङ्गुलीयकदर्शनेन स्मृतशकुन्तलो राजा क्वापि शान्तिं न लेभे, वसन्तोत्सवं प्रतिषिध्य माधव्याद्वितीयः शकुन्तलावृत्तान्तं भूयो भूयः स्मरन् निन्दंश्चात्मनश्चेष्टितं शकुन्तला-चित्रलेखनादिना तद्विषयकालापैश्च कथं कथमपि निनाय दिवसान्। प्रत्यादेश-विमानितायाः शकुन्तलाया विरहेण दुःखमनुभवन्, रात्रौ जागरणात् न मया धर्मासनमध्यासितुं सम्भावितमतो यत् प्रत्यवेक्षितममात्येन तत् पत्रमारोप्यतामिति पौरकार्यपर्यवेक्षणे नियुक्तममात्यमादिशति।

ततः समुद्रव्यापारव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नौव्यसने विपन्नः। अतोऽनपत्यस्य तस्यार्थसंचयो राजगामी भवेदित्यमात्येन लिखितं विचार्यात्मनोऽनपत्यतां स्मरन् मदवसाने पुरुवंशश्रिय एष एव विपाको भवितेति भावयन्, बहुपत्नीकस्य तस्य धनिकस्य काचिद्भार्या आपन्नसत्वा स्यात्तर्हि तद्भार्यागर्भस्थ एव शिशुः पित्र्यं रिक्थमर्हतीत्यादिशति धर्मात्मा राजा दुष्यन्तः। इमं निखिलं वृत्तान्तं मेनकानियुक्ता सा सानुमती प्रत्यक्षीकृत्य स्वसख्यै मेनकायै प्रियमिदं निवेदयितुं कामा ततो दिवं निर्जगाम।

अत्रान्तरे केनापि अलक्षितेन सत्त्वेनाक्रान्तो माधव्योऽब्राह्मण्यमुद्घोषितवान्। ततो भूयः तस्मिन् मेघप्रच्छन्ने प्रासादे आर्तस्वरं निशम्य स्ववयस्यस्य संरक्षणाय स्वधनुषि अमोघं स्वं वाणं सन्दधे। तदा माधव्यमुन्मुच्येन्द्रसारथिर्मातलिराविर्भूय 'हरिणा असुरास्ते शरण्यं कृताः, तेष्वेवेदं धनुः विकृष्यतां न मयि' इत्युवाच। तदनु राज्ञाभिनन्दितोऽसौ तस्मै स्वागमनकारणमाख्यत्—राजन्! कालनेमिप्रसूतो दुर्जयो नाम दानवगणः ते सख्युरिन्द्रस्याजेयो जातः। तस्य त्वं निहन्ता स्थितः। अत आत्तशस्त्रं इममिन्द्ररथमारुह्य विजयाय प्रतिष्ठिताम्। तदाकर्ण्य राजा दुष्यन्तः 'अनुगृहीतोऽस्मि अनया मघोनः संभावनया' इत्युक्त्वा माधव्यस्याक्रमणकारणं पृष्ट्वा ज्ञाततथ्यः स्वगमनवृत्तान्तममात्याय निवेदयितुमादिश्य तस्मिन् राजभारं च नियोजितवान् प्रहृष्टमना—

> त्वन्मतिः केवला तावत् परिपालयतु प्रजाः।
> अधिज्यमिदमन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतं धनुः॥ ३२॥

तदनन्तरं स वासवीयं रथमारुह्य दिवं प्रस्थितवान्।

**सप्तमेऽङ्के कथासारांशः**

अस्मिन्नङ्के कालनेमिप्रसूतं दुर्जयदानवगणं निहत्य देवकार्य-सम्पादनानन्तरं देवराजस्य सत्क्रियया संभावितो राजा दुष्यन्तो व्योमयानेनावतरद् मातलि-परिचायिता देवभूमीरवलोक-

यन् मध्ये मार्गे हेमकूटं किंपुरुषवर्षपर्वतं दृष्ट्वा तत्र तपश्चरतः सपत्नीकस्य मरीचिनन्दनस्य देवपितुः कश्यपस्य दर्शनलालसया तदाश्रममवतरति। तत्र प्रजापतिः कश्यपः स्वभार्यया दक्षकन्ययाऽऽदित्या पतिधर्ममधिकृत्य पृष्टो महर्षिपत्नीभिः सहितायै तस्यै उपदिशतीति ज्ञात्वाऽशोकवृक्षमूले राजा समुपविशति, मातलिश्च राजागमनं निवेदयितुमवसरं ज्ञातुं च महर्षिसमीपे प्रस्थितः।

तत्र नरपतिः शुभसूचकचिह्नमनुभवन् तापसीभ्यां निषिध्यमानेनाबालसत्वेन बालेन संक्रीडितुं सिंहशिशुं बलादाकृष्य जृम्भस्व सिंह ! दन्तांस्ते गणयिष्ये इति वीरोचितैः कृत्यैः औरससुतानुरागेण चाकृष्टो भवति। कस्य कृतिनो बीजमयं बाल इति विमृशन् स सिंहशावका-दन्यत् क्रीडनकं ग्रहीतुं प्रसारितकरस्य तस्य बालकस्य हस्ते चक्रवर्तिलक्षणं दृष्ट्वा हृष्टः। ततो वाग्व्यापारेणायं विरमयितुमशक्य इति मत्वा एका तापसी तं प्रलोभयितुं मृत्तिकामयूर-मानेतुं स्वकुटीरे जगाम। ततो द्वितीया इतस्ततोऽवलोक्य राजानमवोचत्—भद्रमुख ! मोचया-नेन दुर्मोकहस्तेन बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम्। ततस्तावत्तद्वचनमनुतिष्ठन् बालस्पर्शसुखमुप-लभ्य काममपि अपूर्वां निर्वृतिमेतः स तां तद्बालकवंशपरिचयादिकं पप्रच्छ। सा च तस्य पुरुवंशप्रभवत्वम् अप्सरसः संभवत्वं चावोचत्।

यदा च केसरिकिशोरकविमर्दात्तन्मणिबन्धात् परिभ्रष्टं रक्षाकरण्डकं दुष्यन्तो यावद् गृह्णाति, तावत्तापसी निवेदयते–एषा अपराजिता नामौषधिरस्य शिशोः जातकर्मसमये भगवता कश्यपेन बद्धा। यदि जननी जनकं बालकं वा विहायान्यः कश्चिद्, भूमिपतितामेनां गृह्णाति तदा सर्पो भूत्वा तं दशतीत्यनेकशो दृष्टचरम्। ततः स्वपुत्र एवायमिति जातनिश्चयो बालं प्रेम्णापरिसवाजे। ततस्तापसीभ्यां तदुदन्तमुपलभ्य तत्रागतां शकुन्तलां समीक्ष्य राजा तामभि-ननन्द। ततो मातरमालोक्य सर्वदमनः–मातः ! क एषः पुत्र इति कथयित्वा मामालिंगति। ततः सा—आयुष्मन्ः स्वं भाग्यं पृच्छेत्युत्तरयति। ततः प्रणिपातादिना शकुन्तलाया विषादशल्यमुद्धरन्नुवाच राजा—प्रिये ! मया त्वं मोहात्स्वयमुपस्थितापि उपेक्षिता। एवं पश्चात्तापदूनहृदयो नृपोऽङ्गुलीयकोपालम्भात् स्मृतिरूपलब्धेत्युक्त्वा तस्यै तदङ्गुलीयकं दर्शयति। विषमं कृतमनेन यत्तदाऽऽर्यपुत्रस्य प्रत्ययकाले दुर्लभमासीत्। नास्य विश्वसिमि। आर्यपुत्र एवैतद् धारयतु।

तत्र च तादृशं भूपं वीक्ष्य मातलिसौभाग्येनायुष्मान् धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन च वर्द्धसे इत्युक्त्वा तं संभावयामास। ततो राजा—मातले ! वृत्तान्तेनानेनाखण्डलोऽत्रबोद्धव्य इति विचारे मातलिः विहस्याह—किमीश्वराणामविदितं, सर्वं जानाति स सहस्राक्षो देवराजः। एतु आयुष्मान् सपत्नीको मरीचिनन्दनो महर्षिः कश्यपः ते दर्शनं वितरति। अनन्तरं सकलत्रपुत्रो राजा भगवन्तं कश्यपमदिति च द्रष्टुमुपस्थितः। ततो महर्षिः कश्यपोऽपि स्नेहदृष्ट्या शुभाशिषा तावनुगृह्य आयुष्मन् ! दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी शकुन्तला त्वया प्रत्यादिष्टा नान्यथा, वत्से ! चरितार्थासि सहधर्मचारिणं दुष्यन्तं प्रति त्वया मन्युर्न कार्य इत्याभाष्य प्रत्यादेशविषये उभावपि निर्वृत्तचित्तौ कृत्वा शुभाशिषा संयोजयति—

**आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः।**
**आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव ॥ २८ ॥**

मेनकापि तत्र भर्तृपुत्रसहितां दुहितरं दृष्ट्वाऽतिमुमुदे। ततो दुष्यन्तो भगवता मारीचेन विसृष्टः पुत्रकलत्राभ्यां सहिते दिव्यमैन्द्रं रथमारुह्य पौरैरभिनन्द्यमान स्वं नगरं प्रविवेश।

# हिन्दी में कथासार

**प्रथम अङ्क**

नाटक के आरम्भ में मङ्गलाचरण के बाद सूत्रधार अपनी पत्नी नटी से कहता है—आर्ये! कविवर कालिदास द्वारा रचित अभिनव अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नाटक का अभिनय करना है। यह महाराज विक्रमादित्य की सभा है, जिसमें बड़े-बड़े विशिष्ट विद्वान् उपस्थित हैं और ग्रीष्म ऋतु का आरम्भिक समय है। अतः इनके मनोविनोद के निमित्त कोई उत्तम गाना गाओ। यह सुन नटी एक गीत गाती है, जिस पर सूत्रधार कहता है—प्रिये! तुम्हारे गीत ने मेरे हृदय को इस प्रकार आकृष्ट कर लिया है जैसे शिकारी राजा दुष्यन्त को मृग ने महर्षि कण्व के आश्रम की ओर खींच लिया है। इसके बाद दो वैखानस ब्रह्मचारियों ने आकर राजा को रोकते हुए कहा कि—राजन्! यह आश्रम का मृग अवध्य है, आप इसे न मारें। इसपर राजा धनुष से बाण उतार लेते हैं। तब ब्रह्मचारियों ने आशीर्वाद दिया कि—महाराज! आप विजयी बनें और आपको चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति हो। यह सामने कुलपति कण्व का पुनीत आश्रम है। यदि आपके किसी कार्य में बाधा न हो तो आप कृपया यहाँ पधारें। और आतिथ्य सत्कार स्वीकार करें। अतिथि-सत्कार का भार शकुन्तला को सौंप कर वे सोमतीर्थ की यात्रा में गये हुए हैं। हम लोग समित् और कुश लाने के लिए पास के जगल में जा रहे हैं। तदनुसार राजा ने विनीत भाव से आश्रम में प्रवेश किया। प्रवेश करते समय शकुन की सूचना पर राजा कहते हैं—यह तो आश्रम का स्थान है, पर मेरी दाहिनी भुजा फड़क रही है। यहाँ इसका फल कैसे संभव होगा, या हो भी सकता है, क्योंकि होनी के द्वार सर्वत्र होते हैं। बाद राजा ने सखियों के साथ वृक्षों में जल देती हुई सुन्दरी शकुन्तला को देखा। बातचीत के प्रसंग में उन्हें सखियों से पता चला कि यह शकुन्तला कुलपति कण्व की पोष्य पुत्री है। उसकी माँ मेनका अप्सरा और पिता राजर्षि विश्वामित्र हैं। अब राजा को आशा हो चली कि शकुन्तला का पाणिग्रहण मेरे साथ हो सकता है क्योंकि यह वस्तुतः क्षत्रिय-कन्या है। इसके पहले ऋषिकुमारी होने के कारण आग के समान समझा था। अनन्तर दोनों एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं। हँसमुखी सखी प्रियम्वदा शकुन्तला को छेड़ती है जिससे वह नाराज होती है। इस बीच एक जङ्गली हाथी के उत्पात से भयभीत होकर वे मुनिकन्याएँ अपने आश्रम में जाने को उद्यत हो जाती हैं और सखियाँ कहती हैं—राजन् आपके स्वागत किये बिना पुनः दर्शन देने को कहने में हमलोग संकुचित होती हैं इस पर राजा कहते हैं कि आप लोगों की मधुरवाणी से ही मैं सत्कृत हो गया। अनन्तर वे अपने निवास पर चली जाती हैं, शकुन्तला घूम-घूमकर राजा को देखती हुई रुकती जाती है तथा राजा दुष्यन्त आश्रम की रक्षा के लिए बढ़ते हैं और शकुन्तला के प्रति आकृष्ट होकर अपनी राजधानी में जाना स्थगित कर देते हैं।

**द्वितीय अङ्क**

आलसी विदूषक आखेटक से परेशान होकर उससे अपने को बचाना चाहता है और उसके दोषों का उद्घाटन करते हुए कहता है—दोपहर के समय भी कड़ी धूप में वृक्षों की विरल छाया में इस वन से उस वन में यह मृग, यह सूकर, यह शार्दूल कह कर दौड़ना

पड़ता है। मृगयाविहारी राजा दुष्यन्त के स्नेहवश पहाड़ी झरनों का कसैला और गर्म पानी पीना पड़ता है। असमय पर पक्का या कच्चा मांस का भोजन घोड़े हाथियों की आवाज से रात में नींद नहीं आती। इतने पर भी दुःख का अन्त नहीं, सुना है कि दुष्यन्त ने दुर्भाग्य से शकुन्तला नामक किसी सुन्दरी तापसकुमारी को देख लिया. उस पर आकृष्ट होकर वे अब नगर जाने की चर्चा ही नहीं करते। यह देखो, प्यारे मित्र हाथ में धनुष लिए जंगली फूलों की माला पहने इधर ही आ रहे हैं, अब अंग भङ्ग करके रहूँगा। इससे शायद छुटकारा मिल जाय। राजा से—हे मित्र! मेरे हाथ-पैर नहीं चल रहे हैं। अतः केवल वाणी से हो जयजयकार करता हूँ—कहता है। राजा के हँसकर मित्र! यह अंग जकड़ना कैसे हो गया? यह पूछने पर विदूषक कहता है मित्र! खुद आँख दुखाकर आँसू का कारण पूछते हो। अतः अब मुझे आखेट से विश्राम दो। इधर राजा भी शकुन्तला के रूप-लावण्यपर मुग्ध होकर आखेट से बचना ही चाहते थे। अतः वे सेनापति को आदेश देते हैं कि अब आखेट बन्द कर दिया जाय। आश्रम के यज्ञ में राक्षस उपद्रव करते हैं। तपस्वियों की प्रार्थना पर राजा यज्ञ-रक्षा के निमित्त वहीं रुक जाते हैं। इसलिए प्रवृत्तपारण उपवास व्रत की समाप्ति पर माँ के बुलाने पर भी राजधानी न जाकर पुत्र के समान माने गये अपने मित्र विदूषक को ही सेना के साथ वापस भेज देते हैं। राजा को भय था कि कहीं यह बातूनी विदूषक शकुन्तला विषयक मेरे अनुराग को अन्तःपुर की रानियों से कह न दे। यह सोचकर राजा ने विदूषक से कहा—मित्र! यहाँ मैंने तुम से पहले जो शकुन्तला की चर्चा की थी वह परिहास में की थी वास्तविक बात नहीं है **'परिहास विजल्पितं सखे! परमार्थेन न गृह्यतां वचः'**। कहाँ मैं नागरिक वैदग्ध्य प्रिय व्यक्ति और कहाँ मृगों के बच्चों के साथ पली हुई भोली-भाली तपस्वियों की कन्यायें। भला हमारा इनका क्या जोड़ा? यह तो एक विनोद मात्र ( हँसी मजाक ) था। इसमें सच्चाई कुछ भी नहीं है। मित्र माढव्य! मेरे कथनानुसार तुम नगर में जाकर माँ के उपवास व्रत में पुत्र का कार्य सम्पादन करो और मैं भी तपोवन की रक्षा के निमित्त आश्रम जाता हूँ।

**तृतीय अङ्क**

हाथ में कुश लिए हुए यजमान का एक शिष्य कहता है, वाह, राजा दुष्यन्त के तपोवन में प्रवेश करने मात्र से ही सब यज्ञ कर्म सम्पन्न हो गये, क्योंकि इनके धनुष के टंकार से सारे विघ्न दूर हो जाते हैं। इधर राजा दुष्यन्त यज्ञ-रक्षा कार्य से निवृत्त होकर मुनियों की अनुमति से मनोविनोदपूर्वक विश्राम करने के लिए मालिनी नदी के किनारे वेतसलता-मण्डप की ओर जाते हैं। वह कण्वपुत्री शकुन्तला का भी प्रिय स्थान है. जहाँ वह अपनी दोनों सखियों—प्रियम्वदा तथा अनसुया के साथ पहले से ही उपस्थित थी। राजा दुष्यन्त तथा शकुन्तला दोनों परस्परावलोकनजन्य कामपीड़ा से व्यथित होकर दुर्बल हो गये थे। सखियाँ शकुन्तला को रोगी समझकर नलिनीदल आदि से उपचार करती हुई रोग का कारण पूछती हैं। जब उन्हें मालूम होता है कि राजा दुष्यन्त से प्रेम करने के कारण इसकी यह दशा हुई है तब उन्होंने उसके उस कार्य का अनुमोदन किया और नलनीदल पर प्रेम-पत्र लिखवाती हैं। उस मदनलेख में शकुन्तला अपनी विरहव्यथा का वर्णन करती हुई कहती है कि सुभग! आपका हाल तो मैं नहीं जानती, पर मैं रातदिन विरह की अग्नि में जलती जा रही हूँ। लताओं की ओट में छिपे हुए राजा दुष्यन्त यह सब सुनकर प्रगट हो जाने का उचित अवसर समझकर प्रगट हो जाते हैं।

इन्हें देखकर सखियाँ उनका स्वागत करती हुई कहती हैं—राजन् ! हम लोगों की यह प्रियसखी आप को देखकर मदन द्वारा इस अवस्था को पहुँचा दी गई है। अब आपही इसके जीवन के आधार रहे हैं। अतः आप ऐसा करें कि यह बन्धुजनों के लिए शोचनीय न हो। इस प्रकार कह करके एक मृग के बच्चे को उसकी माँ ने मिलाने के बहाने लता मण्डप से बाहर चली जाती हैं। सखियों के साथ बाहर जाने की चेष्टा करती हुई शकुन्तला को रोककर राजा अपने अभिलषित मनोरथ को सफल करते हुए आनन्द का अनुभव करने लगे।

इतने में ही शकुन्तला को पुकारती हुई गौतमी स्वास्थ्य लाभ के लिए दर्भोदक लेकर वहाँ उपस्थित होकर कहती है वत्से ! इस दर्भोदक से तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो जायगा। अब साम हो चली कुटी पर चलें। बड़े दुःख से उसके पीछे-पीछे जाती हुई शकुन्तला ने कहा—लतावलय ! सन्तापहारक ! पुनः मिलने के लिए आज से अनुरोध करती हूँ इस प्रकार लतावलय के व्याज से राजा को संकेत कर गौतमी के साथ वहाँ से चली जाती है। इसके बाद राजा प्रिया-परिभुक्त लतामण्डप में बड़ी खिन्नता से कुछ देर बिताकर यज्ञ कर्म में संलग्न ऋषियों के सन्ध्याकालीन निशाचरों के भय को दूर करने के लिए प्रस्थित हो जाते हैं।

चतुर्थ अङ्क

पुष्प तोड़ती हुई प्रियम्वदा और अनसूया की आपसी बातचीत से मालूम पड़ता है कि शकुन्तला के साथ गान्धर्वविवाह और निर्विघ्न यज्ञ रक्षा का कार्य समाप्त हो जाने के कारण ऋषियों से आज्ञा लेकर राजा दुष्यन्त अपनी राजधानी को चला गया। वहाँ जाकर वह शकुन्तला का स्मरण करेगा या नहीं ? इधर शकुन्तला भी उसके विरह में रात-दिन उनका चिन्तन करती हुई कुटी के पास ही रहती है। राजा के बुलाने वाले दूत की प्रतीक्षा कर थक जाती है और सोच में पड़ी रहती है।

एकदिन प्रसिद्ध क्रोधी दुर्वासा मुनि भिक्षा के लिए आश्रम में आये। उस समय वहाँ शकुन्तला के अतिरिक्त कोई नहीं था। वे आवाज देते हैं दुष्यन्त के सोच में डूबी हुई शकुन्तला कुछ नहीं सुन पाती। इससे ऋषि आग-बबूला होकर शाप देते हुए क्रोध में कह कर चल देते हैं कि तू जिस पुरुष की चिन्ता में इस तरह मग्न है कि मेरी बात तक नहीं सुनती, वह पुरुष स्मरण दिलाने पर भी तुझे स्मरण नहीं कर सकेगा। इस हृदयविदारक शाप को सुन अनसूया ने अनुनय-विनय कर उन्हें मनाने के निमित्त प्रियम्वदा को भेजकर उनके आतिथ्यसत्कार के लिए आश्रम में आ जाती है। जब प्रियम्वदा ने चरण पकड़कर बड़ा अनुनय-विनय किया तो ऋषि ने कहा—मेरा शाप तो व्यर्थ नहीं होगा, पर कोई आभरण दिखाने पर यह शाप निवृत्त हो जायेगा। ( उस समय सखियों ने इस दुःखद घटना को शकुन्तला से नहीं कहा, केवल अपने ही तक सीमित रखा। )

सखियाँ परेशान थीं कि शकुन्तला ने जो अपने मन से राजा दुष्यन्त के साथ अपना गान्धर्व-विवाह कर लिया है, उससे कुलपति को कैसे अवगत कराया जाय ? सौभाग्य से जब महर्षि कण्व ने सोमतीर्थ की यात्रा से लौटकर यज्ञशाला में प्रवेश किया तब आकाश वाणी ने उनको दुष्यन्त के साथ शकुन्तला के गान्धर्वविवाह की घटना से अवगत करा

दिया। सत्पात्र के चुनाव पर कण्व जी प्रसन्न हुए और शकुन्तला का अभिनन्दन करते हुए उन्होंने उस योग्य वर की प्राप्ति का अनुमोदन किया। बाद वे शार्ङ्गरव-शारद्वत इन दो शिष्यों तथा वृद्धा तापसी गौतमी के साथ शकुन्तला को दुष्यन्त के पास हस्तिनापुर भेजने का आदेश देते हैं। शकुन्तला की बिदाई के अवसर पर वहाँ के वृक्षों ने दिव्य आभूषण तथा वस्त्र दिये। विदाई के समय कण्व के आश्रम में करुणा की अति हो गई। वीतराग तपस्वी कण्व तक रो पड़े। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि से संयुक्त वह सारा तपोवन जीवित प्राणी के समान विकल हो उठा। वृक्षों ने पत्ते गिरने के बहाने अश्रुधारा बहाई मृग मुख में तृण लिए ही रह गये। इस प्रकार समस्त आश्रमवासी स्तब्ध हो गये।

महर्षि कण्व गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने की दृष्टि से शकुन्तला को अनेक समयोचित उपदेश देते हैं और राजा दुष्यन्त को शिष्यों द्वारा उत्तम कर्तव्योचित सन्देश देकर जलाशय के पास से अनसूया और प्रियम्वदा के साथ शकुन्तला से शून्य आश्रम पर आकर कहते हैं कि कन्या के जन्म से पिता को चिन्ता बनी रहती है कि इसे किस योग्य वर को दिया जाय। कन्यारूपी अमानत उसके योग्य अधिकारी को सौंपकर पिताओं का हृदय हलका हो जाता है। आज शकुन्तला को योग्य पति राजा दुष्यन्त के पास भेज कर मेरा भी हृदय निर्मल हो गया।

**पञ्चम अङ्क**

राजा दुष्यन्त विदूषक से कहता है कि मित्र! सुनो, गीत का स्वर सुनाई पड़ रहा है मालूम पड़ता है कि सङ्गीतशाला में रानी हंसपदिका गाना सीख रही है जिसे सुनकर मेरा हृदय अन्तर्व्यथा का अनुभव कर रहा है। इतने में ही कञ्चुकी आकर कहता है—महाराज! हिमालय की तराई के जङ्गल से महर्षि कण्व का सन्देश लेकर स्त्रियों के साथ तपस्वी लोग द्वार पर उपस्थित हैं। यह सुन राजा ने आदेश दिया कि पुरोहित सोमरातजी से कहो कि वे वैदिक रीति से उन तपस्वियों का सत्कार कर यज्ञशाला में लायें। मैं भी वहाँ जाकर उनसे भेंट करूँगा। बाद घूँघट काढी हुई शकुन्तला गौतमी तथा कण्व के शिष्यों के साथ दुष्यन्त के दरबार में पहुँचती है। राजा शाप के कारण शकुन्तला के साथ गान्धर्वविवाह की बात भूल जाता है। सौन्दर्य की छटा देखकर वह शकुन्तला पर आकृष्ट होता है किन्तु धर्मनिष्ठा के कारण पराई स्त्री समझकर अस्वीकार कर देता है। गौतमी शकुन्तला का मुख देखती है। बाद शकुन्तला पहचान के लिए अंगूठी दिखाना चाहती है, पर वह अंगुली में नहीं मिलती, बाद कण्वाश्रम में साथ बिताए दिनों का मधुर प्रसङ्ग सुनाती है, फिर भी राजा को कुछ याद नहीं आता। अंगूठी का प्रसङ्ग उठाकर न दिखा पाने से राजा को और आशंका हो जाती है कि ये लोग मुझे धर्म से गिराना चाहते हैं।

स्त्री जाति परवञ्चना में बड़ी प्रवीण होती है मनुष्यों की कौन कहे पक्षी भी इससे बाज नहीं आते, कोयल उड़ने के पहले अपने बच्चों को कौए से पालन कराती हैं। इसी प्रकार शकुन्तला की माँ मेनका ने इसे जन्म देकर कण्व से पालन पोषण कराया है। जब अशिक्षित पक्षियों की यह हालत है तो शिक्षित मनुष्यों की क्या स्थिति होगी। अतः मैं इस वञ्चना में न फसूँगा। इसके बाद शकुन्तला और शार्ङ्गरव राजा को भला बुरा भी सुनाते हैं, पर वह नहीं बदलता है। अन्त में शकुन्तला को छोड़ यह कहकर कि 'बिना बड़ों से पूछे जो तूने ऐसा कार्य किया है, उसका फल भोगो। विवाहिता लड़की के लिए पिता

के घर की अपेक्षा पति के घर में दासता करते रहना भी अच्छा है। यह कहकर चल देते हैं और शकुन्तला रोती रह जाती है। बाद राजा उचित सलाह के लिए पुरोहित से कहता है, वे सुझाव देते हैं कि महाराज ! बच्चा होने तक यह देवी मेरे घर रहे, सिद्ध पुरुषों ने भविष्यवाणी की है कि आप को पहले चक्रवर्ती पुत्र होगा; यदि कण्व का दौहित्र चक्रवर्ती लक्षण से सम्पन्न होगा तो शकुन्तला की बात सत्य समझकर इसे निवास में स्थान दीजियेगा, अन्यथा इन दोनों को कण्व के आश्रम पर पहुँचा दिया जायेगा। राजा यह सुझाव मान लेते हैं। अपना भाग्य कोसती हुई शकुन्तला पुरोहित के पीछे-पीछे रोती हुई जा रही थी कि स्त्री के आकार की एक दिव्य ज्योति आकाश से आकर उसे उठा ले जाती है। जब पुरोहित जी आकर राजा से यह घटना बताते हैं तो वे आश्चर्य से व्याकुल होकर शयनागार में चले जाते हैं।

षष्ठ अङ्क

शक्रावतारतीर्थ का निवासी एक धीवर रत्नजटित एवं राजनामाङ्कित एक सोने की अंगूठी बेचने के लिए बाजार में जाता है, सिपाही उसे पकड़कर नगररक्षक कोतवाल के पास लाते हैं। अंगूठी की प्राप्ति का कारण पूछने पर वह बताता है कि 'स्वामिन् ! मैं जाल से मछलियों को मारकर अपने परिवार का पालन-पोषण करता हूँ। एक दिन शक्रावतारतीर्थ में जाल से फसाई गई रोहू मछली के पेट से यह अंगूठी मिली है। मैं इसे बेचने के लिए बाजार में आया तब इनके द्वारा पकड़कर आपके पास लाया गया हूँ। यह सुन वह नगर-रक्षक उस अंगूठी को लेकर राजा के पास जाता है, उसे देखते ही दुर्वासा के शाप का अन्त हो जाता है और राजा को शकुन्तला की स्मृति हो जाती है। उस अंगूठी के बदले धीवरको अपना स्वर्ण-कंकण पुरस्कार में दे डालता है। बाद राजा शकुन्तला के परित्याग के कारण बियोग से विकल हो जाता है। विदूषक को साथ लेकर अपने दुःख को दूर करने के लिए प्रमदवन में जाता है और वसन्तोत्सव न मनाने का आदेश दे देता है। इधर मेनका की सखी सानुमती नाम की एक अप्सरा शचीतीर्थ में अपनी पारी पूरी कर राजा के प्रमदवन में आकर तिरस्करिणी विद्या के प्रभाव से छिपकर राजा के पास खड़ी हो जाती है। राजा शकुन्तला के चित्र फलक को देखकर दुःखी हो जाता है, और उसमें कुछ परिवर्तन करने का संकेत करता है। बाद राजा नगरकार्य निरीक्षक अपने अमात्य को सन्देश देता है कि मैं रात में देर तक जग जाने के कारण आज धर्मासन पर नहीं जाऊँगा। आपने जो राजकार्य देखा हो उसे पत्र में लिखकर मेरे पास भेज दें। तदनुसार मन्त्री ने लिखा कि समुद्रमार्ग से व्यापार करनेवाला धनमित्र नाम का व्यापारी नौका दुर्घटना से मर गया है। वह सन्तानहीन था। अतः उसकी सम्पत्ति राजखजाने में जमा होनी चाहिए। सन्तानहीन की बात पढ़कर राजा दुःखी हो जाता है और अपने बाद पुरुवंश के विच्छेद हो जाने की आशंका से व्याकुल हो उठता है। अपने पितरों की भावी दशा का स्मरण कर अत्यन्त दुःखी हो जाता है। बाद आदेश देता है कि धनिकों की अनेक स्त्रियां होती हैं। पता लगाया जाय—यदि उसकी कोई स्त्री गर्भवती हो तो वह गर्भस्थ बालक ही इस सम्पत्ति का अधिकारी होगा। इस प्रकार अंगूठी देखने के बाद राजा का शकुन्तला में निश्चल प्रेम राजा की विरह व्यथा, और पुन मिलन की आशा बताने के लिए मेनका द्वारा भेजी हुई वह सानुमती अप्सरा चली जाती है।

इसी समय मेघप्रच्छन्न प्रासाद के ऊपर इन्द्र का सारथी मातलि विदूषक को पकड़कर तङ्ग करना शुरू कर देता है। शोर करके अपनी रक्षा के लिए राजा को बुलाने पर वह धनुष-बाण लेकर उस ब्राह्मण मित्र को बचाने के लिए दौड़ पड़ता है। शरसन्धान करने पर मातलि विदूषक को छोड़कर प्रगट हो जाता है और बताता है कि राजन्! कालनेमि की सन्तान दुर्जय नामक राक्षसगण इन्द्र के लिए अजेय हैं। अतः इन्द्र ने अपने शत्रु राक्षसों को मारने के लिए आपको आमन्त्रित किया है। ये बाण आप उन्हीं पर छोड़िए, मुझ पर नहीं। विदूषक को पकड़ने का कारण पूछने पर मातलि ने जवाब दिया कि किसी कार्य से आपको दुःखी देखकर वीरोचित कार्य के निमित्त उत्तेजित करने के लिए मैंने आपके मित्र विदूषक को इस प्रकार तङ्ग कर रक्खा था।) अनन्तर राजा मन्त्री को राज्य-भार सँभालने का सन्देश विदूषक द्वारा भेजकर इन्द्र के रथ पर सवार होकर स्वर्ग को प्रस्थान कर देता है।

**सप्तम अङ्क**

राजा दुष्यन्त स्वर्ग जाकर उन कालनेमि प्रसूत दुर्जय राक्षसों को पराजित कर इन्द्र की आज्ञा पूरी करते हैं। बाद उनसे विशेष सत्कृत होकर उन्हीं के रथ से पुनः भारत के लिए लौट पड़ते हैं। रास्ते में किंपुरुषवर्ष का हेमकूट नामक पर्वत दीख पड़ता है, जहाँ देवताओं के पिता ब्रह्माजी के पौत्र, मरीचिनन्दन महर्षि कश्यप अपनी पत्नी दक्षकन्या अदिति के साथ तपस्या में संलग्न हैं। उनके दर्शन की लालसा से राजा रथ से उतर कर एक पेड़ के नीचे रुक जाते हैं और मातलि कश्यप की आज्ञा लेने के लिए चला जाता है, जहाँ कश्यपजी ऋषि पत्नियों के साथ अदिति को पातिव्रत्य धर्म का उपदेश दे रहे थे।

इधर एक बालक शेर के बच्चे के साथ खेलता हुआ दिखाई देता है सिंहशावक को माँ का दूध नहीं पीने देता, जबरदस्ती खींच कर कहता है—मुँह खोलो तुम्हारे दांत गिनूँगा, तथा दो तापसियाँ उसे मना कर रही हैं उस बालक को देखकर राजा का पुत्र-वात्सल्य उमड़ पड़ता है, वे उसे अपनी गोद में खेलाने वाले को धन्य समझते हैं। शेर के बच्चे को छोड़ दूसरे खिलौने के लिए हाथ पसारने वाले उस बालक के हथेली में चक्रवर्ती राजा का चिन्ह देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। एक तापसी ने यह कहकर कि यह बात से नहीं माननेवाला है उसे खेलने के लिए बनाया गया खिलौना देना ही होगा, यह कहकर मिट्टी के मयूर को लेने के लिए अपनी कुटी में चली जाती है। तब तक दूसरी तापसी इधर-उधर देखकर राजा से निवेदन करती है कि भद्रमुख! इस बालक ने शेर के बच्चे को जोर से पकड़ रखा है। अतः कृपया इसे छुड़ा दीजिए। तदनुसार राजा शेर के बच्चे से छुड़ाकर उस बालक को अपनी गोद में लेकर स्पर्श सुख का अनुभव करने लगते हैं। दोनों का चेहरा मिलता देखकर वह तापसी आश्चर्यचकित हो जाती है। वह आश्चर्य चरमसीमा पर तब पहुँच जाता है जब वह देखती है कि बालक की कलाई से जमीन में गिरी ताबीज को उठा लेने पर भी उसका कुछ नहीं होता। उस अपराजिता नामक औषधि को कश्यपजी ने बालक के जातकर्म संस्कार के समय बांध दिया था जो माता, पिता और बालक के अतिरिक्त कोई अन्य उठा ले तो वह साँप बनकर उसे डँस देती थी। अब राजा को पूर्ण विश्वास हो गया कि यह मेरा ही औरसपुत्र है। इसके पूर्व तापसियों द्वारा राजा को मालूम हो गया था कि यह पुरुवंश का क्षत्रिय बालक है और एक अप्सरा की पुत्री में उत्पन्न हुआ है, उसके पति ने उसका परित्याग कर रखा है। ये सभी बातें उन्हीं में घटती थीं।

यह सुखद समाचार तत्काल तापसियों ने शकुन्तला के पास पहुँचाया, जो पति-प्राप्ति के लिए नियमव्रत में थी, वह उसी वेग में वहाँ आती है, दोनों का मिलन होता है और राजा उसके चरणों पर गिरकर क्षमा माँगते हैं। इतने में मातलि आकर पुत्र और पत्नी के मिलन के सौभाग्य पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए राजा को धन्यवाद देता है और कहता है कि राजन् आपको दर्शन देने के लिए देवमाता के सहित महर्षि कश्यप प्रतीक्षा कर रहे हैं। तब पुत्र, पत्नी और मातलि के साथ राजा ऋषि के पास उपस्थित होकर साष्टाङ्गप्रणाम कर उनकी आज्ञा से सामने बैठ जाते हैं। बाद महर्षि स्नेहभरी दृष्टि से शुभाशोर्वाद देते हुए दोनों से कहते हैं कि आयुष्मन् ! मैंने अपने योगबल से जाना है कि तुमने दुर्वासा के शाप से मोहित होकर इस तपस्विनी का परित्याग कर दिया था। वत्से शकुन्तले ! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो गया, अब तुम दुष्यन्त के प्रति क्रोध नहीं करना। बेटी ! यह तेरा पति इन्द्र के समान, यशस्वी और तुम्हारा यह पुत्र सर्वदमन जयन्त के समान बलवान् तथा तुम इन्द्राणी के समान चिर सौभाग्यवती होओ। तुम तीनों श्रद्धा, धन और विधि के प्रतीक हो, तुम तीनों का यह योग विश्व के कल्याण के लिए हो। इस प्रकार प्रत्यादेश विषय में दोनों को समझा बुझाकर निर्मल हृदय कर देते हैं और अन्त में उन्हें हस्तिनापुर जाने के लिए विदा कर देते हैं।

# प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

## राजा दुष्यन्त

राजा दुष्यन्त अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के नायक हैं। जाति से ये चन्द्रवंशी क्षत्रिय हैं और इनमें धीरोदात्त नायक के सभी गुण वर्तमान हैं। इनकी चाल ढाल व्यवहार आदि आकर्षक हैं। इनका शरीर लम्बा चौड़ा तथा सुडौल है। इनके सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों पर इनके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता है। ये शूरवीर धार्मिक राजा हैं। शिकार खेलने में इनका मन खूब लगता है। इनकी वीरता की इतनी ख्याति है कि देवराज इन्द्र भी अपनी सहायता के निमित्त इन्हें बुलाते हैं। ये बड़े मधुरभाषी हैं, प्रियंवदा इनके मधुर भाषण की प्रशंसा करती है। ये अपने कुल की प्रतिष्ठा का हमेशा ध्यान रखते हैं तथा अपने पूर्वज महाराज पुरु के पावन आचरण से सदा प्रेरणा लेते रहते हैं। ये कोई ऐसा कार्य नहीं कर बैठते हैं जिससे इनके कुल की मर्यादा पर धब्बा लगे। इस प्रकार दुष्यन्त सर्वश्रेष्ठ गुणों के प्रतीक एवं आदर्श राजा हैं।

जिस समय राजा दुष्यन्त तपोवन में प्रवेश करते हैं उस समय उनके दक्षिण बाहु फड़कने से शुभ शकुन होता है। जैसे ही वे आगे बढ़ते हैं वैसे ही कलश लेकर वृक्षों में पानी डालने के लिए आती हुई तीन तापस कन्याओं को देखते हैं। उनमें वल्कल पहने हुए शकुन्तला को देखकर वे मन में सोचते हैं कि इस कृशाङ्गी का सुन्दर शरीर वल्कल के योग्य नहीं, फिर भी वल्कल से इसकी शोभा बढ़ गई है। सहज सुन्दरों को क्या अच्छा नहीं लगता? क्योंकि सेवार से आवृत रहता हुआ भी कमल सुन्दर मालूम पड़ता है और चन्द्रमा में पड़ा कलंक भी उसकी शोभा बढ़ाता है—

**सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं**
**मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।**
**इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी**
**किमिह मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥ १।२०**

राजा दुष्यन्त को नैतिक चरित्र के विषय में बड़ा आत्मविश्वास था। जब राजा की दृष्टि शकुन्तला के अङ्गों पर पड़ती है। इसके लाल-लाल ओठ अभिनय किसलयों की दीप्ति से स्पर्धा कर रहे हैं। दोनों भुजाएँ कोमल शाखाओं जैसी मनोहर प्रतीत हो रही हैं और नया यौवन लुभावने कुसुम के समान उसके अङ्गों में व्याप्त हो गया है इस रूपसौन्दर्य से राजा का मन चंचल हो जाता है।

महर्षि कण्व के आश्रम में प्रवेश के समय अनुपम सौन्दर्य से मण्डित शकुन्तला को देखकर उसके लावण्य-कान्ति पर मुग्ध होकर प्रशंसा करते हैं और उसे पाने के लिए लालायित हो जाते हैं, फिर भी उनका विवेक ब्राह्मण कन्या के प्रति आकृष्ट होने से रोकता है। उनके मन से विचार उठता है कि क्या यह सम्भव है कि यह महर्षि कण्व की ब्राह्मणेतर भार्या में उत्पन्न हुई हो! शीघ्र ही निर्णय कर लेते हैं कि अथवा सन्देह करना व्यर्थ है, निश्चय ही यह क्षत्रियों के ग्रहण योग्य है, क्योंकि मेरा पवित्र मन इसे चाहता है। सन्देहास्पद विषयों में सदाचारियों के अन्तःकरण के विचार ही प्रमाण हुआ करते हैं। इस प्रकार दुष्यन्त का आत्मसंयम पर पूर्ण विश्वास था—

**अशंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।**
**सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।। १।२२**

फिर भी सही-सही पता लगाते हैं। दुष्यन्त विवेकहीन कामी पुरुषों के समान अन्धे नहीं बनते, अवसर मिलने पर शकुन्तला की सखियों से पूछ ही बैठते हैं—कुलपति कण्व तो आबाल ब्रह्मचारी हैं, आप लोगों की यह सखी उनकी कन्या कैसे ? जब उन्हें शकुन्तला विषयक सारा रहस्य ज्ञात हो जाता है। अर्थात् यह शकुन्तला अविवाहित है, इसके विवाह का किसी के साथ निश्चय नहीं हुआ है, यह क्षत्रिय की कन्या होने के कारण विवाह के योग्य है, और यह भी मुझे चाहती है। इत्यादि निश्चय हो जाने के अनन्तर ही वे शकुन्तला से गान्धर्व विवाह करते हैं। तपोवन से हस्तिनापुर लौटते समय शीघ्र ही बुलाने का वचन देकर अभिज्ञान के रूप में प्रेम से उसे अपनी अंगूठी दे देते हैं, पर दुर्भाग्यवश दुर्वासा के शाप के प्रभाव से उसकी स्मृति धूमिल हो गई उसे कुछ स्मरण ही नहीं रहा। वे परस्त्री समझकर दरबार में उपस्थित शकुन्तला को ठुकरा देते हैं, फिर भी पाठक उन्हें दोषी नहीं समझते। अंगूठी की प्राप्ति के पश्चात् जब सारी बातें स्मृतिपटल पर आ जाती हैं तब वे पश्चात्ताप की तीव्रता से व्यग्र हो उठते हैं। अतिशय दुःख का अनुभव करते हुए सामयिक उत्सवों से विरत होकर समय बिताते हैं। अन्त में इन्द्रपुरी से लौटते समय महर्षि कश्यप के आश्रम पर शकुन्तला का साक्षात्कार कर उसके पैरों पर गिर कर क्षमा माँगते हुए कहते हैं—

**सुतनु हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते ।**
**किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत् ।। ७।२४**

राजा दुष्यन्त समदर्शी आदर्श पति हैं। अनेक स्त्रियों से सम्बन्ध रहने पर भी इन्हें नैतिकताका सदा ध्यान बना रहता है। नई स्त्री से प्रेम हो जाने पर भी ये पहली स्त्रियों को भूल नहीं जाते। ये अपनी रानियों की भावनाओं को पूरा-पूरा सम्मान करते हैं। पञ्चम अङ्क के आरम्भ में रानी हंसपदिका के उपालम्भ पूर्ण गीत को सुनकर वे उसे सान्त्वना देने के निमित्त माधव्य को भेजते हैं—**गच्छ नागरिकवृत्त्या संज्ञापयैनाम्।** षष्ठ अंक में प्रमद वन में चित्र पट पर शकुन्तला की छवि देखने में मग्न राजा दुष्यन्त चतुरिका चेटीमें महारानी वासुमती के आने का समाचार सुनकर मानगर्विता महारानी अप्रसन्न होगी, यह सोचकर शकुन्तला के चित्रपट को विदूषक से अन्यत्र भेज देते हैं—**वयस्य ! उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता च। भवानिमा प्रतिकृतिं रक्षतु।** वह वसुमती के सम्मान एवं आदर में कमी नहीं आने देना चाहते हैं। इस प्रकार समदर्शी नायक दुष्यन्त के चरित्र को देखकर सानुमती अप्सरा उसकी प्रशंसा करती है।

दुष्यन्त एक धर्मपरायण राजा हैं। आदि से अन्त तक उन्होंने धर्मनिष्ठा का पालन किया है। ऋषियों की प्रार्थना पर ही महर्षि कण्व के आश्रम में यज्ञ की रक्षा में संलग्न हैं। उन्हें हस्तिनापुर से आदरणीय मां का सन्देश मिलता है—आगामी चौथे दिन मेरे उपवास की पारणा है उस अवसर पर आपका उपस्थित होना आवश्यक है। माता का यह सन्देश सुनकर वे द्विविधा में पड़ जाते हैं। एक ओर तपस्वियों के यज्ञ का रक्षाकार्य जिसके लिए पहले ही वचन दे चुके हैं दूसरी ओर पूज्या माता का आदेश, क्या हो, कैसे हो। वे बड़ी बुद्धिमानी से दोनों कार्यों को सम्पन्न करने का मार्ग निकालते हैं, विदूषक को मां की सेवा में भेज देते हैं क्योंकि माता ने उसे भी तो पुत्र की भांति ही माना है। दुष्यन्त

के हृदय में ऋषियों के प्रति अपार आदरभाव है, वे उनकी रक्षा तथा सेवा से प्राप्त पुण्य को अमूल्य निधि समझते हैं वे विदूषक से स्पष्ट कहते हैं—

**यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत्फलम्।**
**तपः षड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः॥ २।१३**

अतः वे ऋषियों के आदेश पालन में अपने को कृतकृत्य समझते हैं। मृगया के शिकारी होते हुए भी वैखानसों के कहने से वे मृग को छोड़ देते हैं उस पर बाण नहीं चलाते। तपोवन की मर्यादा अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए वे विनीतभाव से आश्रम में प्रवेश करते हैं और अपने सैनिकों को आश्रम की मर्यादा का बोध कराते हैं। जब सेना का हाथी तपोवन में गड़बड़ मचाता है तब वे अपने मन में सोचते हैं कि क्या मैं तपस्वियों की दृष्टि में अपराधी ठहराया गया हूँ—**कथमपराद्धः तपस्विनामस्मि**। द्वितीय अंक में जब तपस्वियों की तरफ से तपोवन की रक्षा के निमित्त निवेदन आता है तब वे कहते हैं कि तपस्वियों की क्या आज्ञा है? **किमाज्ञापयन्ति?** पञ्चम अंक में जब शकुन्तला के निराकरण से शार्ङ्गरव बड़ी बातें कहता है तब वे क्रुद्ध नहीं होते केवल इतना ही कहकर चुप हो जाते हैं कि **विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि**। सप्तम अंक में मारीच (मरीचिन्दन कश्यप) ऋषि के आश्रम में ऋषियों के प्रति उनका व्यवहार अपार श्रद्धा को व्यक्त करता है।

उनके आशीर्वाद को अपने भविष्य का मूल-मन्त्र समझते हैं। (देखिए सप्तम अंक का अन्तिम अंश।) दुष्यन्त एक उच्चकोटि के शासक हैं। उनमें तीन गुण प्रमुख हैं (१) कर्तव्य-परायणता (२) प्रजा-प्रेम और (३) लोभ का अभाव। प्रथम अङ्क में जब राजा दुष्यन्त गज के उपद्रव को सुनते हैं तो तत्काल संभ्रान्त होकर कुटी में जाने के लिए उद्यत ऋषि-कुमारियों को सान्त्वना देकर रक्षा के लिए चल देते हैं। द्वितीय अंक में जब दो ब्रह्मचारी तपोवन की रक्षा के निमित्त बुलाने आते हैं तब वे कहते हैं कि आप दोनों आगे-आगे चलें, मैं भी पीछे-पीछे आ ही गया—**गच्छतां पुरो भवन्तौ। अहमप्यनुपदमागत एव।** पञ्चम अंक में कञ्चुकी के वाक्य से प्रतीत होता है कि वे प्रतिदिन दरबार में बैठते हैं एवं प्रजाओं के मुकदमों को सुनते हैं। उन्हें शासन तथा राज्य व्यवस्था से फुरसत नहीं मिलती। वे प्रतिदिन मन्त्रियों के कार्यों का स्वयं निरीक्षण किये बिना कोई भी आदेश प्रसारित नहीं होने देते, वे बड़े ही प्रजावत्सल हैं। अपनी प्रजाओं को स्वजनों के समान समझते हैं। षष्ठ अङ्क में वे एक प्रजारञ्जक राजा के समान प्रतिहारी से कहते हैं कि मेरे राज्य में यह घोषणा करा दो कि जिसका जो सम्बन्धी मर गया हो वह राजा दुष्यन्त को अपना वह सम्बन्धी समझे। अर्थात् यदि किसी स्त्री का पति मर गया हो तो मैं उसका पति तो नहीं हो सकता किन्तु यदि किसी का पुत्र, पिता या भाई आदि मर जाय तो मुझे ही उस जगह पर समझे।

**येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।**
**स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम्॥ ६।२३**

दुष्यन्त बड़े ही आदर्शमय निर्लोभी राजा हैं। वे अनुचित मार्ग से अपना कोष बढ़ाना नहीं चाहते। जब वे निःसन्तान समुद्रव्यापारी धनमित्र नाम के बनिये के नौका दुर्घटना से मरने का समाचार सुनते हैं तो वे उसके धन को अपने कोष में नहीं मिला लेते, वे इस बात की खोज करते हैं कि उसकी स्त्रियों में से कोई गर्भवती है या नहीं जब उन्हें यह

पता लगता है कि मृत बनिये की एक स्त्री—अयोध्या के सेठ की कन्या—गर्भवती है तब वे कहते हैं कि वह गर्भस्थ बालक अपने पिता के धन का मालिक है। प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार राजा दुष्यन्त संगीत और चित्रकला के अनुपम उपासक हैं। पञ्चम अंक के आरम्भ में वे रानी हंसपदिका के मधुर स्वर-संयोग को सुनकर विदूषक से भूरि-भूरि उसकी प्रशंसा करते हैं। उनकी चित्र निर्माण कला का निदर्शन षष्ठ अङ्क में है। उन्होंने शकुन्तला का चित्र स्वयं बनाया था, जिसकी चित्रकारी पर विदूषक तथा सानुमती अप्सरा दोनों मुग्ध हैं—

**अहो, एषा राजर्षेर्निपुणता। जाने सख्यग्रतो मे वर्तते।**

राजा दुष्यन्त अपने मुँह अपनी तारीफ नहीं करते। जब वे दुर्जयदानवों को पराजित कर तथा इन्द्र से सत्कृत हो लौटते समय मातलि मार्ग में उनको तारीफ करता है तब वे कहते हैं कि जो कुछ मैंने किया उसका श्रेय मुझको मत दीजिए, वह सब देवराज इन्द्र के प्रभाव का फल है।

दुष्यन्त लम्पट नायक नहीं हैं। यदि वे लम्पट होते तो पञ्चम अङ्क में आत्मसमर्पण करने के निमित्त स्वयं उपस्थित शकुन्तला को राजमहल में दाखिल कर लेते, किन्तु उनकी मनोवृत्ति यह है कि परस्त्री को ध्यान से देखना उचित नहीं है—**'अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्।' 'अनार्यः परदारव्यवहारः।'** इस अवसर पर उनकी दृढता उनसे नैतिक चरित्र को बहुत ऊँचा उठा देती है।

जब गौतमी राजा को याद दिलाने के लिए शकुन्तला का अवगुण्ठन हटाती है तब उसका सौन्दर्य देखकर राजा चकित हो जाता है। तो भी अधर्म के भय से वह उसे स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं होता।

इनकी दृष्टि बड़ी सूक्ष्म है जब ये शिकार खेलते हुए कुलपति कण्व के तपोवन के पास पहुचते हैं तो झट समझ जाते हैं कि यह तपोवन का भूभाग है। भय से भगाते हुए मृग-का वर्णन, तथा तपोवन के आभोग का वर्णन आदि इनकी सूक्ष्म दृष्टि के परिचायक है।

इस प्रकार दुष्यन्त प्रजा संरक्षण में सदा सन्नद्ध रहने वाला अपने समय का एक अप्रतिम धनुर्धर, धार्मिक, तेजस्वी एवं महाप्रतापी राजा हैं—

**का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः।**
**हुङ्कारेणैव धनुषः स हि विघ्नानपोहति॥ ३।१**

वस्तुतः कविताकामिनी के विलास कविवर कालिदास ने अपने इस धीरोदात्त नायक राजा दुष्यन्त को बहुत सोच विचार कर प्रस्तुत किया है, इनको सफल शासक के सभी गुणों से अलङ्कृत किया है। ये कर्तव्यनिष्ठ, प्रजावत्सल, निर्लोभी, निर्भय, सहृदय, पराक्रमी, विनीत एवं आत्मप्रशंसा से रहित परमोत्साही व्यक्ति के रूप में अङ्कित किये गये हैं। इनकी जितनी महिमा गाई जाय थोड़ी है।

## शकुन्तला

निसर्गसुन्दरी शकुन्तला अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक की मुग्धा नायिका है और कुलपति कण्व की पालिता पुत्री है। इसकी माता मेनका अप्सरा है तथा पिता राजर्षि विश्वा-मित्र हैं इसका प्रसंग इस प्रकार है। एक बार विश्वामित्र मुनि तप में रम रहे थे। उनके उग्रतप से इन्द्र घबड़ा उठे। उन्होंने उनकी तपस्या को भंग करने के लिए देवसुन्दरी

मेनका अप्सरा को भेजा। एक तो मेनका का त्रिलोकविलक्षण सौन्दर्य पर्याप्त था ही, दूसरी ओर बसन्त का आविर्भाव और मादक बन गया। मेनका के अनुपम हाव-भाव, नृत्य-गीत, चाल ढाल आदि से सम्बलित बसन्त के झोंके से विश्वामित्र जी अपने को बचा न सके। उसे देखते ही वे मुग्ध हो गये उनका मन विचलित हो उठा, तप की गाढ़ी कमाई धूल में मिल गई। परिणामतः मेनका के मिलन से शकुन्तला का जन्म हुआ। मेनका उसे वही छोड़ कर स्वर्ग चली गई और विश्वामित्र आँख मूँद कर पुनः तपस्या में लीन हो गये किन्तु दयालु शकुन्त ( पक्षियों ) ने उस नवजात शिशु का पालन-पोषण करना प्रारम्भ किया। मालिनी नदी में स्नान करने के लिए जाते हुए महर्षि कण्व की उस पर दृष्टि पड़ी। उसे वे आश्रम में लाये और लालन पालन करने लगे। इस प्रकार शकुन्तला विश्वामित्र-मेनका की कन्या तथा महर्षि कण्व की पोष्य पुत्री है।

शकुन्तला कुलपति कण्व के पावन आश्रम में पलती और बढ़ती है। आश्रम का वातावरण शान्त है अवस्था के साथ-साथ शकुन्तला का शारीरिक सौन्दर्य भी निखर जाता है। वह शैशव, एवं किशोरावस्था को पार कर प्रौढा हो गयी है उसका अनुपम सौन्दर्य बनावटी नहीं स्वाभाविक है। एक दिन हस्तिनापुर का चक्रवर्ती राजा दुष्यन्त शिकार खेलते-खेलते कण्व के तपोवन में जा पहुँचते हैं जहाँ वह अनुपम सुन्दरी एवं सुकुमारी शकुन्तला को देखकर मुग्ध हो जाते हैं समान रूप और अवस्था वाली दो सखियों के साथ छोटे बड़े से वृक्षों को सींचते हुए देखकर राजा अपने मन में सोचते हैं—आश्रम के कार्यों में इसे लगाना ऋषि की विवेकहीनता है।

**इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः तपक्षमं साधयितुं य इच्छति।**
**ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया समीलतां छेत्तमृषिर्व्यवस्यति॥ १।१८**

वस्तुतः शकुन्तला का शरीर सुकुमारलता की भाँति कोमल है, उसका अधर किसलय के समान लाल है, उसकी बाहें लता शाखा के तुल्य मृदु हैं और उसके शरीर पर लुभावना यौवन प्रस्फुटित हो गया है, जिसका संकेत हँसाती हुई प्रियम्वदा उस समय करती है—जब शकुन्तला अनसूया से कहती है कि सखि! प्रियम्वदा के द्वारा कसकर बाँधी हुई मेरी चोली को जरा ढीली कर दो। तब प्रियम्बदा उपालम्भपूर्वक कहती है—

इसके लिए तुम अपने स्तनों को विशाल बना देने वाली युवावस्था को उलाहना दो मुझे क्यों दोषी बना रही हो—**अत्र पयोधरविस्तारयितृ आत्मनो यौवनमुपालभस्व, मां किमुपालभसे?** इससे प्रतीत होता है कि उसके अवयव व्यक्त हो गये हैं। संभवतः वह श्याम वर्ण की है। तृतीय अङ्क में राजा कहता है—हे सुन्दरी! तुम्हारे श्याम वर्ण के सुन्दर हाथ में सौन्दर्य पाने के लिए चन्द्रमा मृणाल रूप से विद्यमान प्रतीत होता है—**अयं स ते श्यामलतामनोहरम्।** वह स्त्री रूप से विधाता की विलक्षण सृष्टि है—**स्त्रीरत्न-सृष्टिरपरा प्रीतिभाति सा मे।** उसका रूप न सूँघा गया प्रसून है, नखक्षतविहीन कोमल किसलय है, न विंधा हुआ रत्न है, अनास्वादित अभिनव मधु है और अखण्डित पुण्यों का फल है। इसीसे दुष्यन्त जैसा चक्रवर्ती राजा कण्वाश्रम की ललामभूता शकुन्तला का दर्शन नेत्र का फल मानता है, उसे ही भूमण्डल की दर्शनीय वस्तु समझता है और विदूषक से स्पष्ट कहता है—**माधव्य! अनवाप्तचक्षुः फलोऽसि, येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्।** शकुन्तला का पालन-पोषण तपस्वियों के बीच में हुआ है। अतः उसका जीवन तापसकन्या जैसा हो गया है। वह वल्कल पहनती है और शृङ्गार चेष्टाओं से अनभिज्ञ है।

द्वितीय अङ्क में दुष्यन्त शकुन्तला के रूप सौन्दर्य पर रीझकर विदूषक से कहता है कि ब्रह्मा ने सर्वप्रथम इसकी मूर्त्ति का चित में रूपायित किया होगा, बिना मन के सक्रिय सहयोग से इस प्रकार का अद्वितीय स्त्रीरत्न उत्पन्न ही नहीं हो सकता है—

**चित्ते निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगात्**
**रूपोच्चयेन विधिना मनसा कृता नु।**
**स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे**
**धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥ २।६**

प्रथम अंक में शकुन्तला की रूपलक्ष्मी से चमत्कृत होकर दुष्यन्त कहता है कि मानवी स्त्रियों में भला ऐसा रूप कहाँ से उत्पन्न हो सकता है। चञ्चल चमक वाली बिजली पृथ्वीतल से थोड़े ही निकल सकती है?

**मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।**
**न प्रभा तरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥ १।२५**

तपोवन में रहते-रहते शकुन्तला का प्रकृति से घनिष्ठतम सम्बन्ध हो गया है। वह आश्रम के वृक्ष, लता, एवं पशु-पक्षियों को भी अपने सगे सम्बन्धी समझती है और स्पष्ट कहती है—**न केवलं तातनियोग एव, अस्ति मे एतेषु सोदरस्नेहः।** उसके हृदय में तपोवन के जड़-चेतन सभी पदार्थों के लिए सहानुभूति है। वह पहले आश्रम के पौधों को जल से सींच लेती है तब स्वयं जल पीती है। यद्यपि उसे मण्डन अतिप्रिय हैं तथापि वह वृक्षों को कष्ट होने के भय से उनके पल्लव-पुष्प आदि नहीं तोड़ती—

**पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या।**
**नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ॥ ४।८**

यदि चरते समय आश्रम के मृगों के मुख कुश से कट जाते थे तो उन्हें इंगुदी का तेल लगाकर उनके घावों को अच्छा करती थीं। चतुर्थ अङ्क में आश्रम से विदा होने के समय वह सखियों के समान आश्रमस्थ लता, वृक्ष और मृगों से भी मिलती है। प्रकृति प्रेम की उपासिका शकुन्तला की विदाई के अवसर पर वृक्ष एवं वनदेवताओं ने विविध प्रकार के वस्त्र और आभूषण दिये थे, वृक्षों ने पक्षियों के द्वारा स्वागत गान किये और लताओं ने अपने पुष्पों को बिखेरते हुए अभिनन्दन किया। अनन्तर शकुन्तला के जाते समय सारा तपोवन स्तब्ध-सा हो गया।

शकुन्तला में शालीनता कूट-कूट कर भरी है। वह सुशील तथा लज्जाशील नायिका है। प्रथम अङ्क में राजा दुष्यन्त को देखकर उसके मन में काम-विकार उत्पन्न होता है, परन्तु वह अपनी कामवेदना किसी से नहीं कहती, अपनी सखियों से भी छिपाती है उसके कामजनित हाव-भाव बड़े ही मर्यादित ढङ्ग से होते हैं। जब उसकी कामपीडा अति उग्र हो गई, तब सखियाँ व्यग्र हुईं। उन्होंने बार-बार उस वेदना का कारण जानकर प्रतिकार करने का आग्रह किया। तब कहीं शकुन्तला ने अपनी जबान खोली—**सखि! यतः प्रभृति तपोवनरक्षिता स राजर्षिः मम दर्शनपथमागतः।** तपोवन के रक्षक वे राजर्षि जब से मेरी दृष्टि के विषय बने—बस इतना कहकर लज्जा के मारे चुप हो जाती है। प्रथम अक में जब राजा उसके रूप की सराहना करते हैं तब वह लज्जा से शिर झुका लेती है। आगे जब प्रियम्बदा उसके विवाह की चर्चा चलाती है तब वह वहाँ से हट जाना चाहती है।

तृतीय अङ्क में मलिनी नदी के पास एकान्त स्थान लता मण्डप में जब राजा उसका अंचल पकड़ना चाहता है तब वह कहती है—पौरव ! चंचलता न कीजिए, अपने विनय की रक्षा कीजिए। कामपीडित होने पर भी मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। **पौरव ! रक्ष, रक्ष विनयम्। कामपीडिताऽपि न खल्वात्मनः प्रभवामि।**

राजा दुष्यन्त के साथ शकुन्तला का गान्धर्व विवाह हो जाने के अनन्तर वह गर्भवती हो जाती है। राजा हस्तिनापुर जा चुके हैं, कुलपति कण्व सोमतीर्थ से वापस आ गये हैं, उनसे कैसे कहा जाय यह शकुन्तला के सामने एक समस्या उपस्थित थी, किन्तु अग्नि-शाला में आकाशवाणी ने इस समस्या का समाधान शकुन्तला के सामने प्रस्तुत कर दिया।

शकुन्तला का हृदय मनुष्यों से ही नहीं आश्रमस्थ लता, पादप और पशुपक्षियों से भी प्रेमसूत्र में निबद्ध है। वह सचमुच प्रकृति कन्या तथा निःसर्ग सुन्दरी है। ऐसी द्रवणशील हृदयवाली नारी, कठिनाई से मिलती है। वन की लताओं, वृक्षों, कुसुमों, पशुओं और पक्षियों सभी से उसकी आत्मीयता है। वह उनकी भाषा समझती है और वे भी उसकी भाषा समझते हैं। वह उनकी परिचर्या करती है और वे उसकी मंगल कमना करते हैं। उसकी बिदाई के अवसर पर हरिणों ने मुख में चलती हुई कुशा के कौर उगल दिये। मोरों ने नाचना बन्द कर दिया। लताओं ने अपने पीले पत्तों के रूप में आँसू गिराना आरम्भ कर दिया। शकुन्तला सबसे मिलती है और सबसे बिदा लेती है। अपनी बहन वनज्योत्स्ना की भुजाओं से लिपटती है, पुत्र के समान पालित मृग को जो मार्ग रोककर खड़ा हो जाता है समझा बुझाकर लौटाती है गर्भ मन्थरा मृगवधू के लिए पिताजी से यह निवेदन करती है जब इसे बच्छा हो जाय तब यह प्रिय सन्देश मेरे पास भेजवा दीजियेगा।

शकुन्तला पतिव्रता पत्नी है अपने पति को अत्यन्त प्रेम करती है। गान्धर्व विधि से विवाह हो जाने पर राजा दुष्यन्त के प्रति उसका प्रेम और बढ़ जाता है। राजा के हस्तिना-पुर चले जाने पर उसका मन उन्हीं में निरन्तर लगा रहता है। उनकी तन्मयता में वह अपनी सुधबुध खो बैठती है। सुलभकोप महर्षि दुर्वासा के आने और भिक्षा न पाकर क्रोध से शाप देकर चले जाने का उसको कुछ भी पता नहीं है। वत्सल पिता महर्षि कण्व के आदेश से हस्तिनापुर जाते समय उसके मन में एक प्रकार का उत्साह दिखाई पड़ता है। वहाँ जब राजा शापवस न पहचानने के कारण उसका परित्याग कर देते हैं तब कुछ क्षणों के लिए क्रुद्ध हो जाती है, किन्तु उसका क्रोध अधिक काल तक नहीं रहता। वह दुष्यन्त को दोष न देकर अपने भाग्य को ही कोसती है—**नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामसुखमासीत्।** महर्षि कश्यप के आश्रम में वह विरहिणी के वेश में रहती है। पतिदेव को हृदय में रखकर अपने चरित्र की रक्षा करते हुए वह समय बिताती है—

**वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।**
**अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति॥** ७।२१

इस नाटक के सप्तम अङ्क का उत्तरार्ध शकुन्तला के सुचरित से भरा हुआ है। उसकी तपस्या का ही परिणाम है कि उसका पति उससे मिलता है, पैरों पड़ता है, क्षमा माँगता है और अनुपम सुख भोग के निमित्त पुत्र सहित उसे सादर अपनी राजधानी हस्तिनापुर में ले आता है।

शकुन्तला का स्वभाव बड़ा ही सरल है। जब उसकी सखियाँ उसका मजाक उड़ाती हैं

तब वह केवल इतना ही कह कर चुप हो जाती है कि यह तुम्हारे मन बात है—**एष ते आत्मनश्चित्तगतो मनोरथः**। उसकी सखियाँ उसे आज्ञा देती हैं, वह अपने को कुलपति की कन्या होने का घमण्ड नहीं करती। जब राजा दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम में प्रवेश करते हैं तब प्रियम्वदा कहती है—सखि शकुन्तले! जाओ, कुटिया से फलयुक्त अर्घ्यपात्र लाओ, और यह घड़े का जल पैर धोने के लिए काम में आयेगा—**हला, शकुन्तले! गच्छोटज फलमिश्रमर्घ्यभाजनमुपहर, इदमपि पादोदकं भविष्यति**। चतुर्थ अंक में बिदाई के समय उसकी सखियाँ उससे कहती हैं यदि राजा तुम्हें न पहचाने तो उसको अंगूठी दिखा देना।—**सखि! यदि नाम स राजर्षिः प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्तदा अस्येदमात्मनो नामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शयिष्यसि**। यह सुनकर शकुन्तला का हृदय काँप उठता है। उस समय सखियाँ कहती हैं—**सखि! मा बिभेहि स्नेहः पापमाशङ्कते**। सखियों का इतना कहना ही उसकी घबराहट से दूर करने के लिए पर्याप्त है। उसने उस पर पुनः कोई प्रश्न नहीं किया। शकुन्तला काव्यकला में भी निपुण है। प्रणय पत्रिका में लिखने के निमित्त वह स्वयं पद्य बनाती है।

शकुन्तला के मन में पूजनीय गुरुजनों के प्रति अत्यन्त श्रद्धा है। वह जानती है कि स्वतन्त्रता पूर्वक कोई काम करने पर गुरुजनों का अनादर होता है। तृतीय अंक में लतामण्डप के अन्दर जब राजा उससे कहता है कि बताओ, इस समय तुम्हारी क्या सेवा करूँ—नलिनीदल से पंखा करूँ या पैर दबाऊँ? इस पर शकुन्तला कहती है—मैं आप जैसे माननीय पुरुष के निकट अपने को अपराधिनी नहीं बनाऊँगी—**न माननीयेषु जनेषु आत्मानमपराधयिष्यामि**। अपने धर्मपिता महर्षि कण्व के प्रतिविशेष आदर एवं प्रेम करती है। चतुर्थ अङ्क में तपोवन से हस्तिनापुर को प्रस्थान करते समय वह कण्व के चरणों पर गिर पड़ती है। उसे उन्हें छोड़कर आगे जाते नहीं बनता पर—जाओ, तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो—यह कह कर कण्व जी उसे भेजते हैं। जब शार्ङ्गरव आदि उसे दुष्यन्त के दरबार में छोड़कर जाने लगते हैं तब वह भी उनके पीछे-पीछे जाने लग जाती है, पर शार्ङ्गरव घूमकर डांटते हुए उसे कहता है कि अयि दोषकारिणि! यह क्या तू स्वतन्त्रता का अवलम्बन करना चाहती है—**आ पुरोभागे! किमिदं स्वातन्त्र्यमवलम्बसे**। इसपर वह डर के मारे कापने लगती है, आगे नहीं बढ़ती। सप्तम अङ्क में दुष्यन्त से पुनः मिलने पर वह उनके साथ महर्षि कश्यप और अदिति के सामने जाने में लजाती है। जब दुष्यन्त कहते हैं कि प्रिये! बच्चे को संभालो तुम्हें आगेकर मैं देवपिता का दर्शन करना चाहता हूँ, तब शकुन्तला कहती है। आर्यपुत्र के साथ गुरुजन के समीप जाने में मुझे शरम मालूम पड़ती है—**लज्जे खलु आर्यपुत्रेण सार्द्धं गुरुजनसमीपं गन्तुम्**।

कालिदास ने उपेक्षिता कलंकिता शकुन्तला को कण्व के आश्रम में न भेजकर गहरी काव्यात्मक सहृदयता का परिचय दिया है। वह अब पहले जैसी नहीं थी विश्व के साथ उसका सम्बन्ध बदल गया था। इस प्रकार शकुन्तला का चरित्र न केवल संस्कृत जगत में ही आदर्श माना जाता है अपितु विश्वसाहित्य में आदर्श के रूप में देखा जाता है जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा पाश्चात्य विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से की है। मधुरभाषिणी, कोकिलकण्ठी शकुन्तला ने यदि अभिनव यौवन की उमंग में राजा दुष्यन्त के साथ गान्धर्वविधि से विवाह न किया होता तो कोई भी विचारवान व्यक्ति उनके चारित्रिक दुर्बलता पर अंगुली नहीं उठा सकता था। धन्य है वह दुर्जय मदनलीला, जो देव-

दानव, ऋषि-महर्षि, ज्ञानवान् मानव और पशु-पक्षी कीट पतङ्ग आदि को भी व्यग्र बना देती है।

## कण्व ऋषि

महर्षि कण्व आश्रम के कुलपति हैं। कुलपति उसे कहते हैं जो प्रतिदिन दश हजार विद्यार्थियों को अपने आश्रम में रखकर पढ़ाता है और उनके भरण पोषण एवं रहने का प्रबन्ध करता है।

**मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात्।**
**अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः॥**

उनका दूसरा नाम काश्यप भी है। क्योंकि वे महर्षि मरीचिनन्दन कश्यप के पुत्र हैं। वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। उनका पुनीत आश्रम मालिनी नदी के तट पर तथा यज्ञशाला से अलंकृत है। वे श्रौतविधि से प्रतिदिन अग्निहोत्र करने वाले ब्रह्मर्षि हैं उन्हें शकुन्तला को राजा दुष्यन्त द्वारा गान्धर्व विवाह के बाद गर्भवती होने का समाचार सर्वप्रथम अग्निशाला में आकाशवाणी बतलाती है वे अपने अनुपम तपोबल से त्रिकाल का रहस्य हस्तामलकवत् जान लेते हैं। वे स्नान, सन्ध्या कर्मानुष्ठान में निरत धार्मिक भावना से ओतप्रोत उदार हृदय वाले एवं तेजस्वी ब्राह्मण हैं उनके तपोबल का प्रभाव चतुर्थ अङ्क में शकुन्तला के विदाई के समय देखते बनता है, जिससे प्रभावित होकर वृक्ष एवं वन देवताओं ने विविध प्रकार के दिव्य वस्त्र आभूषण आदि प्रस्तुत किये हैं।

शकुन्तला महर्षि कण्व की पोष्यपुत्री है। वे जननी-जनक विहीन शकुन्तला का अपनी औरस पुत्री के समान लालन-पालन करते हैं। शकुन्तला के प्रतिकूल दैव को शान्त करने के निमित्त वे सोमतीर्थ की यात्रा करते हैं। वे शकुन्तला की शालीनता से अत्यन्त सन्तुष्ट हैं। अपनी अनुपस्थिति में वे अतिथिसत्कार का भार व्यवहारकुशल शकुन्तला को सौंपते हैं। शकुन्तला के पतिगृहगमन के समय उनकी सारी ममता उमड़ पड़ती है। सगे पिता के समान शोक उन्हें व्याकुल कर देता है आंखों में आंसू आ जाते हैं उनका गला रुँधने लगता है, दृष्टि जड़ हो जाती है, हृदय घबड़ाने लगता है, तपस्वी होने पर भी वे अपने दुःख के वेग को रोक नहीं पाते। वे अपने मन में विचार करते हैं जब मेरे सदृश अरण्य-वासी मनुष्य की कन्या के प्रेम से ऐसी दशा हो जाती है तो सांसारिक जनों की क्या दशा होती होगी। **'वत्से! मामेव जड़ीकरोषि।' 'अपयास्यति मे शोकः कथं नु वत्से।' 'वत्से! किमेवं कातरासि।' 'वत्से! एहि परिष्वजस्व मां सखीजनं च।' 'वत्से! त्वमिदानीमनुशासनीयासि।' 'वत्से! अलं रुदितेन' 'स्थिरा भव वत्से!' 'नेदं विस्मरिष्यामि।' 'अनसूये! प्रियंवदे! गता वां सहचरी।'** इत्यादि महर्षि कण्व की उक्तियाँ वात्सल्य से भरी हुई हैं। वस्तुतः शकुन्तला के प्रति उनका वात्सल्य निःस्वार्थ, आदर्श तथा अनुकरणीय तथा स्पृहणीय है।

कण्व का तपोबल अपार है जिससे प्रभावित होकर राजा दुष्यन्त तृतीय अङ्क में कहते हैं—**'जाने तपसो वीर्यम्।'** महर्षि कण्व की उपस्थिति में राक्षस उनके तपोवन के पास नहीं पहुँच पाते, उनकी अनुपस्थिति में ही वे उपद्रव मचाते रहते हैं। तपोबल के प्रभाव से उन्हें त्रिकाल की बातें ज्ञात हो जाती हैं। सप्तम अंक में जब दुष्यन्त से शकुन्तला के मिलन का समाचार शिष्य द्वारा सुना देने के लिए अदिति महर्षि कश्यप से कहती हैं तब वे

कहते हैं कि तपस्या के प्रभाव से कण्व को शकुन्तला के दुष्यन्त से पुनर्मिलन का वृत्तान्त अवगत हो गया है—**तपः प्रभावात् प्रत्यक्षं सर्वमेव तत्र भवतः कण्वस्य।**

चतुर्थ अङ्क में महर्षि कण्व के तपोबल का प्रभाव अद्भुत एवं आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। शकुन्तला की बिदाई के समय वृक्षों ने माङ्गलिक वस्त्र एवं चरण-रञ्जन के लिए महावर दिये। वनदेवियों ने आभूषण दिये तथा प्यारी सखियों ने उसे पहनाकर चित्र के समान शकुन्तला को अलङ्कृत किया।

## मुनित्रय

शाकुन्तल में तीन ऋषि अङ्कित हैं और तीनों का स्वभाव भिन्न-भिन्न है। एक तो महर्षि दुर्वासा हैं जिनको थोड़े में ही क्रोध आ जाता है और दारुण शाप दे बैठते हैं। इन्हीं के शाप के परिणाम-स्वरूप शकुन्तला को कुछ दिनों तक दुःख भोगना पड़ा था। दूसरे महर्षि हैं कुलपति कण्व। ये दुर्वासा की तरह ही तपोनिष्ठ, महाप्रभावशाली और अन्तर्यामी हैं किन्तु कण्व और दुर्वासा में अत्यन्तवैषम्य है। दुर्वासा जी अत्यन्त क्रोधी हैं तो कुलपति कण्व अतिशान्त। वे निष्ठुर हैं तो ये कोमलहृदय और अत्यन्त दयालु। उन्हें शकुन्तला अकस्मात् वन में माता-पिता से परित्यक्त मिली तो उन्होंने दया से अपनी पुत्री के समान पालन-पोषण किया, विविध प्रकार से शिक्षित किया उसके प्रतिकूलदैव को शान्त करने के लिए सोमतीर्थ की यात्रा की। शकुन्तला मानो कुलपति का प्राण है—**सा कुलपतेरुच्छ्वसितमिव।** उनकी अनुपस्थिति में उसने राजा दुष्यन्त के साथ अपना गान्धर्व-विवाह कर लिया। इससे वे नाराज नहीं हुए, प्रत्युत उन्होंने उसका समर्थन करके उसको तत्काल पतिगृह भेज दिया। और उन्होंने अपना आशय इस प्रकार व्यक्त किया—**दृष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावके एवाहुतिः पतिता।** तीसरे ऋषि हैं—मरीचिनन्दन कश्यप। उनके आश्रम में सब स्वर्गीय सुखसाधन हैं परन्तु उसमें आसक्त न होकर वे तपस्या करते रहते हैं। वे इन्द्र आदि देवताओं के पिता हैं, भगवान् विष्णु वामनावतार में उनके पुत्र हुए थे। वे आप्तकाम हैं, फिर भी लोककल्याण के निमित्त तपश्चर्या में लग्न रहते हैं। इनके पुनीत आश्रम में दुष्यन्त द्वारा परित्यक्ता शकुन्तला को आश्रय मिला। इनके पातिव्रतधर्म के उपदेश से उसे मानसिक शान्ति मिली। जब उसे पुत्र पैदा हुआ तब उन्होंने उस बालक के जातकर्मादि संस्कार किये। इन्हीं के आश्रम पर पुत्र सहित शकुन्तला पुनः पति से मिलकर सुखी हुई। ऐसे ज्ञाननिष्ठ, लोकहितैषी एवं सर्वसम्मान्य महात्मा के आशीर्वाद के द्वारा इस नाटक की समाप्ति करने में कवि ने अत्यन्त औचित्य प्रदर्शित किया है।

तपस्वी होते हुए भी महर्षि कण्व बड़े व्यावहारिक हैं। उनका हृदय सहानुभूतिपूर्ण है। जब उन्हें आकाशवाणी द्वारा राजा दुष्यन्त के साथ शकुन्तला के सम्बन्ध का पता चलता है तब वे धर्मतः विचार कर अपनी अनुमति दे देते हैं। उनके मत में क्षत्रियों के लिए गान्धर्व-विवाह उत्तम प्रकार का विवाह है। वे शकुन्तला को विदा करते समय राजा दुष्यन्त को जो सन्देश भेजते हैं, वे सरल, स्वाभाविक सारगर्भित एवं ध्यान देने योग्य हैं। वे अपनी कन्या शकुन्तला के लिए राजा की अन्य पत्नियों के समान पद चाहते हैं, उनके अनुसार अन्य सब पदार्थ तो भाग्य के आधीन होते हैं। शकुन्तला के लिए दिया गया उपदेश तो स्वर्णाक्षरों में अङ्कित करने लायक है। उसका मूल्य निर्धन महिला से लेकर महारानी तक के लिए समान है। उस आदर्श उपदेश में भारतीयता भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। वे

बिलखती हुई शकुन्तला को गृहिणी के कर्तव्य का उपदेश देते हैं कि श्वसुरगृह में जो लोग बड़े हों उनकी यथाविधि सेवा करना, सौतों के साथ सहेलियों जैसा व्यवहार करना, कभी किसी कारणवश पति अपमान करे तो उससे झगड़ना मत, सेवकों के साथ उदारता का व्यवहार करना, और सम्पत्ति के समय भोगों में आसक्त होकर अहंकार नहीं करना, इस प्रकार का व्यवहार करने वाली कुल-वधुएँ अनायास ही गृहिणीपद प्राप्त कर लेती हैं तथा प्रतिकूल चलने वाली स्त्रियाँ कुल के दुःख का कारण बनती हैं। शकुन्तला अपने साथ सखियों से चलने का आग्रह करती है पर महर्षि कण्व अनसूया और प्रियवदा को शकुन्तला के साथ नहीं भेजते, क्योंकि उनका भी विवाह करना है। वे युवती कुमारी कन्याओं को विवाहिता कन्या के साथ उसके ससुराल भेजना उचित नहीं समझते, क्योंकि यह भारतीय परम्परा एवं मर्यादा के प्रतिकूल अव्यावहारिक कार्य है—**वत्से! इमे अपि प्रदेये, न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्, त्वया सह गौतमी यास्यति।** यह कह कर बड़ी बुद्धिमानी से शकुन्तला के आग्रह को टाल देते हैं।

वे कन्या को धरोहर समझते हैं। और उसके भार का सँभालना वे बड़ी सतर्कता तथा योग्यता का काम मानते हैं। कण्व जी शकुन्तला को अपने पति के घर भेजकर अपनी अन्तरात्मा में विशदता का अनुभव करते हैं।

**अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।**
**जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा॥ ४।२२**

पति के घर जाने को उद्यत शकुन्तला जब महर्षि कण्व के गले में लिपट कर कहती है कि पिता जी! आपकी गोद से बिछुड़ी हुई मैं मलय पर्वत से उखाड़ी गई चन्दनलता की भाँति दूसरे देश में कैसे जीवन को धारण कर सकूँगी? तब कण्व जी बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से उसकी व्यग्रता को दूर करते हुए समझाते हैं बेटी! तुम अतिकुलीन पति के प्रशंसनीय गृहिणी पद पर स्थित होकर उसके ऐश्वर्य कार्यों में हमेशा व्यस्त रहोगी और शीघ्र ही जिस प्रकार पूर्व दिशा पावन सूर्य को जन्म देती है उसी प्रकार पवित्र चक्रवर्ती पुत्र को पैदा कर मेरे विरहजन्य शोक को भूल जाओगी। अतः घबड़ाओ मत, स्वस्थ चित्त से पति के घर जाओ। कण्व जी के मतानुसार दुःख का सबसे उत्तम औषध समय-यापन है। कुछ समय बीतने पर दुःख अपने आप कम हो जाता है।

परिवार के किसी व्यक्ति के परदेश चले जाने पर घर के लोगों को अपना घर सूना लगने लगता है। इसका कारण प्रेम होता है। कुछ दिनों के बाद विरह भूल जाता है और मन धीरे-धीरे स्वस्थ हो जाता है। इस रहस्य से कण्व खूब परिचित हैं। शकुन्तला के चले जाने से बाद प्रियम्बदा और अनसूया महर्षि कण्व से कहती हैं—तात! हमलोग शकुन्तला से शून्य इस तपोवन में कैसे प्रवेश करें—**तात! शकुन्तला विरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः।** इस पर महर्षि कण्व कहते हैं—प्रेम के कारण ऐसा अनुभव हो रहा है, चलो कुछ दिनों के बाद सब ठीक हो जायेगा। इस प्रकार महर्षि कण्व का विशुद्ध जीवन गंगा के प्रवाह के समान परम पवित्र है, हिमालय की भांति उज्ज्वल है, समुद्र के समान गम्भीर तथा त्रिवेणी की तरह तरल है। इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी ही है।

कण्व की शिक्षा में भारतीय धर्म की मर्यादा बोल उठी है। कवि की वर्णाश्रम धर्म के प्रति आस्था तथा कौटुम्बिक कर्तव्यों के प्रति जागरूकता का सुन्दर प्रतिपादन इस प्रसंग में

सम्पन्न हुआ है। सम्पूर्ण अङ्क में स्नेह और सौहार्द की जो पवित्र मन्दाकिनी प्रवाहित हुई है उससे वस्तुतः हमारी संस्कृति के सनातन सन्देश प्रतिध्वनित होते हैं।

## विदूषक

अभिज्ञानशाकुन्तल के विदूषक का नाम माधव्य है। विदूषक हास्यरस का पात्र है वह वेश, वाणी आदि के द्वारा राजा का मनोविनोद करता है। यह जाति का बकवादी ब्राह्मण है और खूब खब्बू है, क्योंकि बीच-बीच में इसे लड्डू खाने की याद आती रहती है। यह हाथ में हमेशा टेढ़ा ठण्डा लिए रहता है। यह स्वभाव से डरपोक है, राक्षसों के भय से यह शकुन्तला को देखने के लिए नहीं जाता। यह उम्र में राजा से छोटा प्रतीत होता है क्योंकि यह अपने को राजा का अनुज तथा युवराज कहता है। जिस समय राजा दुष्यन्त माताओं के उपवास व्रत का सन्देश सुनकर पुत्रकृत्य सम्पादन के लिए विदूषक को राजधानी भेजते हुए कहते हैं कि मित्र! मेरी माँ तुझे भी पुत्र की तरह मानती है। अतः तुम जाकर मां के पुत्र के कार्य का सम्पादन करो, मैं तपोवन की रक्षा कार्य में लगा हूँ। उस समय विदूषक कहता है तब तो जिस प्रकार राजा के छोटे भाई को जाना चाहिए उस प्रकार मैं जाऊँगा—**यथा राजानुजेन गन्तव्यं तथा गच्छामि। तेन हि युवराजोऽस्मीदानीं संवृत्तः।**

विदूषक राजा का अन्तरङ्ग मित्र होता है। अतः राजा उससे रहस्य की गुप्त बातें भी बताते रहते हैं। अतः द्वितीय अङ्क में राजा दुष्यन्त शकुन्तला के साथ चल रहे प्रेम प्रसंग को एकमात्र विदूषक से ही कहते हैं। यह परिवार का विश्वसनीय व्यक्ति है। पञ्चम अङ्क में रानी हंसपदिका को समझाने के लिए राजा इसी को भेजते हैं यद्यपि प्रेम के सभी कार्यों में यह राजा का आन्तर सहायक है फिर भी राजा इसे चपल ही समझते हैं। वे इसे राजधानी भेजते समय मन में विचारते हैं कि यह ब्राह्मण बालक बड़ा चञ्चल है, कहीं शकुन्तला विषयक मेरे अनुराग को अन्तःपुर की स्त्रियों से न कह दे। अतः अब मैं इस प्रकार कहता हूँ। (विदूषक का हाथ पकड़कर) मित्र! ऋषियों के गौरव के कारण में आश्रम में जा रहा हूँ। वस्तुतः तापसकन्या शकुन्तला पर मेरी आसक्ति नहीं है—**वयस्य! ऋषिगौरवादाश्रमं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायां ममाभिलाषः।**

**क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः।**
**परिहासविजल्पितं सखे! परमार्थेन न गृह्यतां वचः॥ २।१८**

मित्र! देखो, भोगविलास में आसक्त कहाँ हम लोग तथा कहाँ मृग के बच्चों के साथ पली हुई कामवासना से विरत मुनिकन्या शकुन्तला। इसलिए हँसी में कही गई इस बात को तुम सही मत समझना। राजा की कही हुई इस बात को माधव्य सच्चा समझकर अपने मुख में ताला लगा लेता है। विदूषक राजा का मुंहलगा व्यक्ति है।

यह समय समय पर उससे खूब हँसी करता है। कभी कभी राजा की कमजोरी का लाभ उठाकर यह उसे बेवकूफ भी बनाता है जैसे षष्ठ अंक में चित्रपट पर अङ्कित शकुन्तला के चित्र को देखते समय यह भौंरे की बात इस प्रकार उठाता है कि राजा उसे सच्चा भौंरा समझ कर बहुत कुछ कह जाते हैं। अन्त यह उसे याद दिलाता है कि यह तो चित्र का भौंरा है—**भो चित्रं खलु एतत्।**

राजा के साथ माधव्य की मैत्री का अन्यलोग भी लाभ उठा लेते हैं, वे जानते हैं कि राजा के सामने भेद नहीं खोलेगा। द्वितीय अङ्क में राजा के साथ मृगया सम्बन्धी बातें करने

के पूर्व सेनापति इसे अपनी तरफ मिला लेता है। वह समझता है कि राजा इसका कहना नहीं टालेगा। वस्तुतः हुआ भी वही, विदूषक ने अपने विकृत अंग-भंग का प्रदर्शन कर मृगया से विश्राम ले ही लिया। विदूषक को बोलने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। वह जिसे जो चाहे कह सकता है। हँसी में कही हुई इसकी बातों को कोई बुरा नहीं मानता। यह सेनापति को कहता है—**त्वं तावत् दास्याः पुत्रः जीर्णऋक्षस्य मुखे निपतितो भविष्यसि।** तू दासी का बेटा एक वन से दूसरे वन में घूमता हुआ मनुष्य के नाक के लालची किसी बूढ़े भालू के मुँह में पड़ जायेगा—यह राजा को भी एकवचन से ही सम्बोधित करता है। यह ऊपर से तो बेवकूफ मालूम पड़ता है, किन्तु अन्दर से अत्यन्त चतुर है। जब द्वितीय अङ्क में इससे एकान्त में बातें करने के अभिप्राय से राजा रैवतक आदि सेवकों को अपने कार्यों पर भेज देते हैं तब यह उनका आशय ताड़ जाता है और कहता है—आपने तो इस समय इस स्थान को मक्षिका से शून्य कर दिया—**कृतं भवता साम्प्रतं निर्मक्षिकम्।**

यह अपने वचनों के द्वारा राजा का मनोविनोद करता रहता है। द्वितीय अंक में जब शकुन्तला को लक्ष्य कर राजा कहता है कि मित्र! तू नेत्र-फल से वंचित है, क्योंकि तूने देखने योग्य वस्तु नहीं देखी—**अनवाप्तचक्षुः फलोऽसि। येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्।** इस पर वह कहता है, अजी आप तो मेरे सामने हैं ही—**ननु भवानग्रतो मे वर्तते।** पुनः आगे राजा शकुन्तला की चर्चा करता है तब वह हँस कर कहता है कि जैसे पिण्डखजूर से ऊबे हुए व्यक्ति की इमली खाने की इच्छा होती है वैसे ही स्त्रीरत्नों का उपभोग करने वाले यह वनचरी शकुन्तला विषयक आपकी इच्छा है। **यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत् तथा स्त्रीरत्नपरिभोगिणो भवत इयमभ्यर्थना।** फिर भी राजा कहता है वयस्य! अभी तुमने उसे देखा नहीं जिससे ऐसा कह रहे हो। मित्र! अधिक क्या कहूँ मुझे तो वह ब्रह्मा की विलक्षणा सृष्टि प्रतीत हो रही है। इस पर वह पुनः कहता है कि यदि वह ऐसी स्त्रीरत्न है तो आप इसे शीघ्र बचाइए, कहीं इंगुदी के तेल से चिकने शिरवाले दढ़ीवाले किसी तपस्वी के हाथ न पड़ जाय—**तेन हि लघु परित्रायतामेनां भवान्। मा कस्यापि तपस्विन इङ्गुदीतैलचिक्कण शीर्षस्य हस्ते पतिष्यति।** पुनः विदूषक राजा से पूछता है कि वयस्य आपके प्रति उसका अनुराग कैसा है? तब राजा कहता है—मेरे सामने पड़ने पर उसने अपनी आंखें हटा लीं, दूसरे बातचीत के प्रसंग में हँस दिया। शील के कारण काम भाव न तो प्रकट किया, न छिपाया ही। इस पर विदूषक कहता है तो क्या देखते ही वह आकर आपकी गोद में बैठ जाती है?—**न खलु दृष्टमात्रस्य तवाङ्कं समारोहति।** राजा पुनः कहता है—मित्र! सखियों के साथ जाने के समय शकुन्तला ने शालीनता के साथ मेरे प्रति प्रेम-भाव प्रगट किया। वह कुछ कदम जाकर कुश के अंकुर से मेरे पैर बींध गये हैं ऐसा कहकर रुक गई और वृक्षों की टहनियों में न फँसे हुए भी वस्त्र को छुपाती हुई मेरी तरफ मुख कर खड़ी हो गई। यह सुनकर अन्त में विदूषक कहता है कि तब तो आपने इस तपोवन को क्रीडावन ही बना लिया है—**तेन हि कृतं त्वयोपवनमिति पश्यामि।**

इस प्रकार विदूषक केलि-कलह प्रिय, हास्यकारी राजा का सहचर माना गया है और वह अपने वेश-अङ्ग और वचनों के द्वारा हास्य करता रहता है—**विकृताङ्गवचोवेशैर्हास्यकारो विदूषकः।**

## शार्ङ्गरव-शारद्वत

शार्ङ्गरव तथा शारद्वत ये दोनों महर्षि कण्व के व्यवहारज्ञ एवं आज्ञाकारी शिष्य हैं। महर्षि इनका विश्वास करते हैं और इनके नाम के आगे सम्मान सूचक मिश्र शब्द का प्रयोग करते हैं। **क्व नु ते शार्ङ्गरव-शारद्वतमिश्राः।** इससे इनकी विद्या, अवस्था और व्यवहार-कुशलता सिद्ध होती है। ये दोनों करीब २५ वर्ष के प्रौढ युवक हैं। इन दोनों में शारद्वत की अपेक्षा शार्ङ्गरव बड़ा प्रतीत होता है, और दल का नेता है क्योंकि कुलपति कण्व दुष्यन्त के लिए उसी से सन्देश भेजते हैं—**शार्ङ्गरव! त्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः।** दोनों परस्पर एक दूसरे का आदर करते हैं और दोनों के मन में गुरुभक्ति है। वे दोनों केवल तपस्वी ही नहीं हैं, व्यवहारज्ञ भी हैं। शकुन्तला की विदाई के समय आश्रम से कुछ दूर जाकर दोनों महर्षि से कहते हैं कि—भगवन! हमने सुना है कि सरोवर तक ही प्रियजनों को पहुँचाने जाना चाहिए। अतः यह सरोवर का तट है। हमको सन्देश बताकर यहाँ वट वृक्ष के नीचे बैठकर आप वापस जा सकते हैं—**भगवन्! ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगत स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते।**

महर्षि कण्व के दोनों शिष्य राज दरबार के शिष्टाचार को भलीभाँति जानते हैं। राजा दुष्यन्त के समक्ष जाते ही दोनों हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद देते हैं। हस्तिनापुर में दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला का तिरस्कार करने पर जब शार्ङ्गरव राजा दुष्यन्त से उत्तेजना पूर्ण बातें कर रहा था तब शारद्वत उसे शान्त करते हुए कहता है—शार्ङ्गरव! उत्तर प्रत्युत्तर से क्या लाभ है? हमने गुरुजी का सन्देश कह दिया गया है, अब हम लोग लौट चलें—**शार्ङ्गरव! किमुत्तरेण, अनुष्ठितो गुरोः सन्देशः प्रतिनिवर्तामहे वयम्।** दोनों मिल-जुलकर परस्पर परामर्श से काम करते हैं। दोनों को तपोवन से प्रेम तथा नगर से नफरत है। राजमहल में पहुँचकर दोनों एक दूसरे से अपना-अपना अनुभव बताते हैं।

दोनों के चरित्रों में अन्तर भी है। शार्ङ्गरव भावना की धारा में बहता है, वह वन में रहने का अभ्यस्त है, उसे एकान्त प्रिय लगता है। उसको राजमहल ऐसे लग रहा है जैसे उसमें से आग की लपट निकल रही हो—**जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव।** इसके विपरीत शारद्वत के विचार दार्शनिक हैं; उसमें दूसरों के प्रति सहानुभूति है। शार्ङ्गरव दुर्वासा के सदृश अपने तप एवं ब्रह्मतेज के सामने किसी को नहीं समझता। राजा दुष्यन्त जिस समय आश्रम में पधारे थे उस समय गुरुपुत्री शकुन्तला की सहमति के कारण शार्ङ्गरव शान्त ही बना रहा किन्तु आज कुलपिता ने चोरी करने वाले राजा दुष्यन्त को जब वही सम्पत्ति समर्पित कर दी और वह लेने से इनकार कर रहा है, आज उसे पहचान भी नहीं रहा है, गुरुपुत्री विलख रही है, सब समझा रहे हैं, अभिमानी राजा मान ही नहीं रहा है। ऐसी परिस्थिति में शार्ङ्गरव ने जो कुछ कहा वह मानवोचित एवं समयोचित कर्तव्य है।

शारद्वत मितभाषी अक्रोधी, सहिष्णु तथा शान्त प्रकृति का व्यक्ति है, किन्तु शार्ङ्गरव बहुत बोलता है और क्रोधी भी है। शार्ङ्गरव और राजा के विवाद के उग्र रूप धारण करने पर शारद्वत उसे शान्त करता हुआ कहता है—**शार्ङ्गरव! विरम त्वमिदानीम्।** शकुन्तला से कहता है कि अब तुम राजा को विश्वास दिलाओ—**शकुन्तले! दीयतामस्यै प्रत्यय-प्रतिवचनम्।** अन्त में वह राजा से कहता है शकुन्तला आपकी पत्नी है, आप इसे रखें या छोड़ें, इस पर आपका अधिकार है। अब हम लोग जाते हैं—**तदेषा भवतः पत्नी त्यज वैनां ग्रहाण वा।** इस प्रकार कालिदास ने शारद्वत की अपेक्षा शार्ङ्गरव का चरित्र अधिक

विकसित किया है। वह अपने गुरु को सर्वज्ञ एवं सर्वसिद्धिसम्पन्न समझता है—**न खलु कश्चिद्विषयो नाम धीमताम्।** पञ्चम अङ्क में राजा दुष्यन्त से बातें करते समय कहता है कि राजन्! सिद्ध पुरुषों का मंगल सदैव उनके अधीन रहता है—**राजन्! स्वाधीन-कुशला सिद्धिमन्तः।** शार्ङ्गरव तपोवन निवासियों को सत्यभाषी तथा राजनीतिज्ञों को असत्य बोलने वाला एवं दगाबाज समझता है। पञ्चमअंक में वह कहता है कि—**आजन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यः तस्या प्रमाणं वचनं जनस्य।** उसकी इस उक्ति का तात्पर्य है कि राजनीतिज्ञों से सत्य और न्याय की आशा करना भूल है। शार्ङ्गरव स्त्री स्वातन्त्र्य का समर्थक नहीं है। जब वह शकुन्तला को राजा के पास छोड़कर अपने दल से साथ जाने लगता है तो शकुन्तला भी उसके पीछे-पीछे चलने लगती है। जब गौतमी इस तरफ उसका ध्यान दिलाती है तो वह शकुन्तला को डाँट कर कहता—अयि दोषकारिणि! अब क्या तू स्वतन्त्रता का अवलम्बन करती है!—**आ पुरोभागिनि! किमिदं स्वातन्त्र्यमवलम्बसे?** शार्ङ्गरव चापलूसी नहीं पसन्द करता। पञ्चम अङ्क में जब पुरोहित राजा दुष्यन्त के विनय की तारीफ करता है तब शार्ङ्गरव कहता है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सत्पुरुषों को समृद्धि के समय अनुद्धत होना ही चाहिए।

> **भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमे**
> **नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।**
> **अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः**
> **स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।। ५।१२**

## अनसूया और प्रियम्वदा

अनसूया तथा प्रियम्वदा ये दोनों शकुन्तला की प्रिय सखियाँ हैं। ये तीनों ही अति सुन्दरी हैं और इन तीनों की उम्र में विशेष अन्तर नहीं है। प्रथम अङ्क में जब राजा दुष्यन्त इनको देखते हैं तो कहते हैं—कि समान अवस्था तथा समान रूप होने के कारण आप तीनों की मित्रता बड़ी सुन्दर प्रतीत हो रही है—**अहो! समानवयोरूपरमणीयं सौहार्दमत्र-भवतीनाम्।** संभवतः इन तीनों में अनसूया सबसे बड़ी है, उससे प्रियम्वदा छोटी है और शकुन्तला इससे भी छोटी है। चतुर्थ अङ्क में शकुन्तला के विदा होते समय जब दोनों सखियाँ रोने लगती हैं तब महर्षि कण्व पहले अनसूया को बाद प्रियम्वदा को सम्बोधन कर कहते हैं—अनसूये! प्रियम्वदे! रोओ मत, तुम दोनों को चाहिए कि शकुन्तला को ढाढ़स बँधाओ—**अनसूये! प्रियम्वदे! अलं रुदितेन। भवतीभ्यामेव शकुन्तला स्थिरा कर्तव्या।** जिस समय राजा दुष्यन्त तपोवन में प्रवेश करते हैं उस समय अनसूया ही आगे बढ़कर उनसे बातें करती है और वही शकुन्तला के जन्म का रहस्य बताती है, बाद प्रियम्वदा शकुन्तला को उटज से फलमिश्र अर्घ्यभाजन लाने के लिये कहती है। इससे प्रतीत होता है कि शकुन्तला प्रियम्वदा से भी छोटी है। सौन्दर्य में प्रायः तीनों समान हैं फिर भी दोनों की अपेक्षा शकुन्तला रूपवती है और उसका लावण्य उत्कृष्ट है। षष्ठ अंक में चित्र देखते समय जब माधव्य राजा दुष्यन्त से पूछता है कि मित्र! इस चित्र में तो तीन मूर्तियाँ दिखाई पड़ती हैं और वे तीनों सुन्दरी हैं इन तीनों में शकुन्तला कौन सी है! तब सानुमती अप्सरा अपने मन में कहती है कि इसने मेरी सखी शकुन्तला का रूप नहीं देखा है। अतः इसकी आँखें निष्फल हैं—**अनभिज्ञः खल्वेषः सखीरूपस्य मोघचक्षुः।** इससे शकुन्तला

अधिक रूपवती प्रतीत होती है। अन्त में विदूषक भी सौन्दर्य के आधार पर ही शकुन्तला को पहचानता है। तीनों में घनिष्टतम प्रेम है। वे सभी एक दूसरे को सुखी देखना चाहती हैं।

अनसूया और प्रियम्वदा दोनों शकुन्तला से निःस्वार्थ प्रेम करती हैं तथा उसे सगी बहिन-सी मानती हैं। तृतीय अङ्क में कामव्यथित शकुन्तला को अस्वस्थ देखकर दोनों ही चिन्तित होती हैं। रहस्य ज्ञात हो जाने पर दोनों राजा और शकुन्तला का संगम कराने का प्रयास करती हैं। मालिनी के तट पर लता मण्डप में शकुन्तला और राजा दोनों का मिलन हो जाने पर मृगशावक को माता से मिलाने का व्याज बनाकर वे दोनों वहाँ से निकलकर बाहर खड़ी होकर देखती हैं कि कोई वहाँ जाकर उन्हें देख न ले। जब गौतमी आती है तब वे चक्रवाक वधू को कुछ कहने के बहाने शकुन्तला को सूचित कर देती हैं। दोनों ही शिष्ट, विनीत वाक्पटु एवं मधुरभाषिणी हैं। दोनों कर्मठ और बुद्धिमती हैं। आश्रम के कार्यों में दोनों का समान उत्साह है।

दुर्वासा का शाप सुनकर दोनों चिन्तित होती है उनसे अनुनय-विनय कर शापनिवृत्ति करा लेती हैं। शकुन्तला की बिदाई के समय दोनों व्याकुल हो जाती हैं। उसके विना उन्हें आश्रम सुना-सा प्रतीत होता है उसमें प्रवेश करने से कष्ट होता है, वे महर्षि कण्व से कहती हैं—**तात ! शकुन्तला विरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः।**

इस प्रकार दोनों के चरित्रों मे साम्य होते हुए भी कुछ वैषम्य भी है। जहाँ अनसूया गम्भीर स्वभाव की है उसमें परिपक्व-बुद्धिता अधिक है। वहाँ प्रियम्वदा विनोदशीला एवं चुलबुली है। उसमें परिपक्वता की मात्रा कम है। राजा दुष्यन्त के आश्रम में आने पर अनसूया उनकी अगवानी करती है तथा विश्वामित्र और मेनका से शकुन्तला की उत्पत्ति बतला कर उनकी जिज्ञासा शान्त करती है। उसको किसी के प्रति असूया नहीं होती हमेशा सबको खुशी करने की बात सोचती है। अतः उसका नाम अनसूया सार्थक है—न विद्यते असूया यस्यां सा अनसूया = डाहरहित। प्रियम्बदा मधुरभाषिणी अपने नाम के अनुसार और विनोदप्रिया है। उसका विनोद अपमानजनक न होने से कष्टदायक नहीं होता उसमें एक प्रकार की मिठास रहती है। यही कारण है कि जब वह शकुन्तला से मजाक करती हुई पूछती है कि अनसूये ! जानती हो कि शकुन्तला वनज्योत्स्ना को क्यों प्रेम से देख रही है ! इस पर अनसूया कहती है कि नहीं समझ पा रही हूँ, तुम्हीं बतलाओ। इस पर प्रियम्वदा कहती है—सखि ! यह सोच रही है कि जिस प्रकार वनज्योत्स्ना योग्य वृक्ष से मिल गई वैसे ही मैं भी अपने अनुरूप वर को प्राप्त करूँगी। तब वह गद्गद होकर कहती है—**अत एव प्रियम्वदेति भण्यसे। एष ते आत्मनश्चित्तगतो मनोरथः।** प्रियम्वदा इधर-उधर की बातों में अधिक भाग लेती है। जब राजा कहता है कि आपकी सखी के विषय में हमें और भी कुछ पूछना है तब प्रियम्वदा झट कह बैठती है कि विचार करने की आवश्यकता नहीं, तपस्वियों से कोई भी बात निःसंकोच पूछी जा सकती है—**अलं विचारेण, अनियन्त्रणानुयोगः तपस्विजनो नाम।** जब राजा पूछता है कि आपकी प्रियसखी क्या विवाह-पर्यन्त तपस्विनी बनी रहेगी या विवाह न करके मृगियों के साथ जीवन पर्यन्त निवास करेगी ? तब वह उत्तर देते हुए कहती है कि महानुभाव, धर्माचरण में भी यह शकुन्तला पराधीन है, फिर भी पिता जी का इसे योग्य वर को देने का विचार है। जब शकुन्तला रुष्ट होकर बकवाद करने वाली प्रियम्बदा की

शिकायत करने के लिए आर्या गौतमी के पास जाना चाहती है तब वह यह कह कर उसे रोकती है कि—तुम मेरे दो वृक्षों के सींचने की ऋणी हो, मैंने तेरी क्यारी के दो वृक्षों को जल से सींचा है। अतः तेरे ऊपर मेरे दो वृक्ष का ऋण बाकी है। पहले उनसे छुटकारा लो, तब जा—**द्वे मे वृक्ष सेचनके धारयसि ताभ्यां तावदात्मानं मोचय ततो गमिष्यसि।** प्रियम्बदा दुष्यन्त-शकुन्तला के परस्पर आकर्षण को भांपकर शकुन्तला से विवाह विषयक हँसी करती हुई चुटकी लेती है—सखी शकुन्तले। यदि यहाँ आज पिता जी होते तो—**हला शकुन्तले! यद्यत्राद्य तातः सन्निहितो भवेत्।** इसलिए प्रियम्बदा विनोदी है अनसूया स्वल्पभाषिणी और गम्भीर है। वह किसी बात पर सहसा विश्वास नहीं करती, सभी पहलुओं पर सोचती है। हानि-लाभ का विचार करती है ऊहापोह करने के बाद ही वह निर्णय करती है तृतीय अंक में दुष्यन्त-शकुन्तला के वैवाहिक सम्बन्ध के पूर्व राजा दुष्यन्त से कहती है कि राजाओं की कई पत्नियाँ होती हैं अतः जिस प्रकार मेरी प्रियसखी शकुन्तला शोक का कारण न बने ऐसा उपाय कीजिएगा—**बहुवल्लभाः खलु राजानः श्रूयन्ते। तद् यथा इयं नः प्रियसखी बन्धुजनशोच्या न भवति तथा करिष्यसि।** प्रियम्बदा का स्वभाव ठीक इससे विपरीत है। वह शीघ्र विश्वास कर लेती है। सभी कार्यों से होने वाली भलाई को सोचती है बुराई की तरफ उसका ध्यान ही नहीं जाता। चतुर्थ अंक में अनसूया दुष्यन्त के हस्तिनापुर चले जाने पर अनसूया चिन्तित है कि निवास में मग्न होकर राजा शकुन्तला का स्मरण करेगा या नहीं। इसपर प्रियम्बदा कहती है कि-अनसूये! तुम विश्वास रखो क्योंकि दुष्यन्त के समान आकार वाले लोग गुणहीन नहीं होते--**तत्र तावद् विश्वस्ता भव, नहि तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरहिणो भवन्ति।** अनसूया दूरदर्शिनी है, वह भविष्य की चिन्ता करती है। प्रियम्बदा सरल है वह भविष्य के झंझट में नहीं पड़ती, वतमान से ही सन्तुष्ट रहती है। अनसूया धीर प्रकृति की है और प्रियम्बदा शीघ्र घबड़ा जाती है। वह दुर्वासा के शाप को सुनकर घबड़ा उठती है और किंकर्तव्यविमूढ हो जाती है, किन्तु अनसूया धीरता रखकर महर्षि को मनाने के लिए उसे भेजती है और जब प्रियम्वदा घबड़ाती है कि तीर्थयात्रा से लौटने पर राजा के साथ शकुन्तला का विवाह सुनकर पिता जी न जाने क्या कहेंगे। तब अनसूया समझाती हुई कहती है कि कन्या को अनुरूप वर के हाथ सौंपना चाहिए यह पहला विचार है। यदि देव यह कार्य स्वयं बना दे तो गुरुजन कृतकृत्य ही होंगे—**अनुरूपस्य वरस्य हस्ते कन्यका प्रतिपादनीया अयं तावत् प्रथमः कल्पः। तं यदि दैवं संपादयति ननु कृतार्थो गुरुजनः।** अतः पिता जी के अप्रसन्न होने की कोई बात ही नहीं। प्रियम्बदा भावावेश में बहती है, वह कोई काम करते समय तो बिना सोचे विचारे कर देती है। बाद में उसे घबड़ाहट होती है। दुष्यन्त को शकुन्तला से मिलाने के समय तो उसने पिताजी को नहीं सोचा अनन्तर वह उनसे भयभीत हो उठी अनसूया से कहने लगी—कि मुझे तो यह चिन्ता है कि पिताजी तीर्थयात्रा से वापस आकर और राजा दुष्यन्त के साथ शकुन्तला का गान्धर्व विवाह सुनकर क्या प्रतिक्रिया व्यक्त करेंगे?—**एतावत् पुनश्चिन्तनीयम्। तातस्तीर्थयात्रातः प्रतिनिवृत्तः इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यते।**

इस प्रकार शकुन्तला की दोनों सखियों अनसूया तथा प्रियम्बदा के चारित्रिक समता एवं विषमता पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि दोनों भिन्न प्रकृति की आदर्श महिला हैं। इन दोनों के साथ शकुन्तला का घनिष्टतम सम्बन्ध है। अभी दोनों कुमारी हैं।

## गौतमी

गौतमी महर्षि कण्व की धमभगिनी हैं और तपस्या की प्रतिमूर्ति है। वह अत्यन्त सीधी सादी तपस्विनी है। उसके प्रभाव से आश्रम की व्यवस्था ठीक चलती है। सभी आश्रमवासी उसका आदर करते हैं। वह शकुन्तला को बड़ा प्यार करती है। शकुन्तला जब राजा दुष्यन्त के दर्शन से कामपीड़ित होकर मालिनी नदी के तट के समीपवर्ती एक लतामण्डप में शिलाफलक पर विराजमान होकर समय बिताती है तब उस बेचारी तपस्विनी गौतमी को क्या मालूम कि शकुन्तला किस खेल में अलमस्त है। वह शकुन्तला के शारीरिक ताप का समाचार सुनकर स्वस्थता के लिए तत्काल मन्त्रपूत दर्भोदक हाथ में लेकर उसके पास पहुँचती है उससे उसके शरीर पर सींच कर प्यार से पूछती है—बिटया, तुम्हारे शरीर का सन्ताप क्या कुछ कम हुआ? शकुन्तला कुछ लाभ होने का उत्तर देती है। उस वृद्धा तापसी के आने के पूर्व ही शकुन्तला की बीमारी की वास्तविक दवा राजा दुष्यन्त तो मिल ही गये हैं, किन्तु उस बेचारी को क्या पता। वह अपने उपचार से आराम का अनुभव करके शकुन्तला को साथ लेकर कुटी पर चली जाती है। उस वृद्धा तपस्विनी गौतमी के सदाचार और सद्व्यवहार का ही परिणाम है कि कुलपति कण्व जैसे महर्षि भी उसका समादर करते हुए शकुन्तला की बिदाई के अवसर पर शार्ङ्गरव द्वारा दुष्यन्त को सन्देश देकर पूछते हैं कि इस विषय में गौतमी का क्या मत है ?—**कथं वा मन्यते गौतमी।** इस पर गौतमी कहती है कि वधूजनों के लिए इतना ही उपदेश पर्याप्त है—बेटी! इस अमृतोपदेश को स्मरण रखना—**एतावानेव वधूजनस्योपदेशः। जाते एतद् खलु सर्वमवधारय।** शार्ङ्गरव, शारद्वत तथा शकुन्तला के साथ हस्तिनापुर में दुष्यन्त के दरबार में उपस्थित हो राजा के समक्ष गौतमी जिस धैर्य एवं सरलता से अपना कर्तव्य निभाती है उससे पाठकों का हृदय प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। राजा दुष्यन्त शकुन्तला के साथ उसका भी अपमान करते हुए स्त्री समूह की निन्दा करते हैं, उन्हें धूर्त बतलाते हैं—

**स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः।**
**प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः परभृताः खलुपोषयन्ति ॥ ५।२२**

किन्तु तपस्विनी गौतमी शान्त और निर्विकार बनी रहती है। इससे इसकी समुद्र जैसी गम्भीरता पृथ्वी की भाँति सहनशीलता तथा मुनियों जैसी क्षमाशीलता व्यक्त होती है गौतमी के समान विशुद्ध पावनचरित भारतीय महिलाओं के लिए आदर्श का निदर्शन है।

## सर्वदमन ( भरत )

अभिज्ञानशाकुन्तल के अनुसार देवताओं की माता अदिति तथा पिता महर्षि कश्यप के आश्रम हेमकूटपर्वत पर शकुन्तला के गर्भ से उसकी माता मेनका अप्सरा के पास सर्वदमन का जन्म हुआ था और वहाँ ही उसके जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न हुए। यह बचपन से ही बड़ा तेजस्वी एवं चञ्चल बालक था। शेर के बच्चों के साथ खेलता और जबरदस्ती उनका मुख दबा कर उनके दांत गिनता था।

जिस समय राजा दुष्यन्त इन्द्र के शत्रु दुर्जय नामक दैत्यगण को युद्ध में परास्त कर इन्द्र के रथ से अपनी राजधानी हस्तिनापुर लौट रहे थे उस समय वे मरीचिनन्दन महर्षि कश्यप के दर्शनार्थ रथ से उतर पड़े तथा इन्द्रसारथी मातलि दर्शन का अवसर जानने

के निमित्त उनके पास चला जाता है। राजा दुष्यन्त एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने लग जाते हैं। वहीं खेलते हुए शेर के बच्चे का दांत गिनते सर्वदमन को देखकर दुष्यन्त अपने मन में सोचते हैं यह किसका बालक है? जिसकी गोद में धूलधूसरित यह बालक खेलता होगा, वह व्यक्ति धन्य है। इतने में एक तापसी दूसरी से कहती है कि यह बालक बड़ा चपल हो गया है, शेर के बच्चे को तंग कर रहा है. कुटी में जाकर शकुन्त (खेलने के लिए बना हुआ मिट्टी का मयूर) ला। इस पर सर्वदमन कहता है कि मेरी माँ शकुन्तला कहाँ है? तब राजा दुष्यन्त तापसी से पूछ बैठते हैं कि यह किसका बालक है? इस पर वह कहती है—यह बालक पुरुवंश के एक राजर्षि का औरस पुत्र है। इस पर वे पुनः पूछते हैं कि उसका क्या नाम है? तब वह कहती है कि अपनी पत्नी का त्याग कर देने वाले का नाम कौन ले? इस पर दुष्यन्त पुनः अपने मन ही मन सोचते हैं कि यह सारी बातें तो मुझ में ही घटती हैं और इस बालक को देखकर मुझे औरस पुत्र के समान स्नेह भी हो रहा है। इतने में दूसरी तापसी मिट्टी का मयूर लेकर आ जाती है। उसे लेने के लिए जब बालक हाथ पसारता है तो उसमें चक्रवर्ती के चिह्न देखकर राजा और प्रसन्न हो जाते हैं। तबतक तापसी बोल बैठती है—हाय, जन्म के समय रक्षार्थ महर्षि द्वारा इसके हाथ में बँधा हुआ रक्षा-सूत्र कहाँ गिर गया? इस पर दुष्यन्त तत्काल जमीन से उठाकर कहते हैं कि यह है। इसपर वे आश्चर्य करने लगती हैं। तब दुष्यन्त पूछते हैं कि आप लोग क्यों आश्चर्य करती हैं? तब वे कहती हैं कि इस बालक के माता-पिता के अतिरिक्त अन्य के उठा लेने पर यह साँप बनकर काट लेता है। इतने में ही शकुन्तला वहाँ आ जाती है जिसे देखकर राजा दुष्यन्त उससे अपनी भूल पर क्षमा माँगने लगते हैं। तब तक मातलि आकर कहता है—राजन्! कश्यपजी दर्शन देने के लिए तैयार बैठे हैं। कृपया आप अपनी पत्नी और पुत्र के साथ चलकर उनका दर्शन करें। तदनुसार वे सभी जाकर उनका दर्शन कर प्रणाम करते हैं। आशीर्वाद देते हुए महर्षि कहते हैं—दुष्यन्त! मैंने पहले ही जान लिया था कि दुर्वासा के शापवश आपने कण्व पुत्री का त्याग कर दिया था। यह सर्वदमन जयन्त जैसा प्रतापी है और यह साध्वी शकुन्तला इन्द्राणी के समान सौभाग्यवती है इनके साथ राजधानी में जाकर सुखपूर्वक रहो। इन्द्र तुम्हारे राज्य में प्रचुर वृष्टि करें और तुम प्रजाओं का पालन करो। इसके अनन्तर राजा दुष्यन्त सपत्नीक कश्यपजी को प्रणाम कर अपनी राजधानी में आकर सर्वदमन को युवराज बना देते हैं और उसका नाम भरत रख देते हैं। बाद इसी के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा।

इस प्रकार शकुन्तला की मातृस्थानीया वृद्धा गौतमी, शेर के बच्चे को उसकी माता के पास से उसके दांत गिनने वाला निर्भीक शिशु सर्वदमन मालिक की मर्जी देखकर चलने वाला सेनापति, गरीब किन्तु अपनी जाति का स्वाभिमानी शक्रतीर्थ निवासी जालोपजीवी धीवर, सिद्ध साधक बनकर अपराधी पर अत्याचार करने का विचार करने वाले परन्तु उसके पास पुरस्कार के पैसे देखते ही मद्य की आशा से क्षणभर में बदल जाने वाले पुलिस के सिपाही और उनका अफसर राजा का साला, नगर रक्षक इन सबके चित्र भी बड़े मनोरञ्जक और सटीक उतारे गये हैं। इन सभी पात्रों के चरित्र चित्रण को देखकर कालिदास की मार्मिक सूक्ष्म-निरीक्षण शक्ति पर अत्यन्त आश्चर्य होता है।

कण्व, दुर्वासा, मारीच, सर्वदमन

# पात्र-परिचय

## पुरुष-पात्र

| | |
|---|---|
| सूत्रधार | नाटका प्रधान पात्र तथा रंगमंच का अध्यक्ष। |
| दुष्यन्त | नाटक का नायक, हस्तिनापुर का राजा। |
| सूत | राजा दुष्यन्त का सारथि। |
| वैखानस | कण्व के आश्रम का ब्रह्मचारी। |
| विदूषक ( माधव्य ) | वेश-भूशा, आकार एवं वाणी द्वारा दुष्यन्त का हास्यकार मित्र एवं नर्म सचिव। |
| भद्रसेन | राजा दुष्यन्त का सेनापति। |
| रैवतक | दौवारिक, द्वारपाल, राजा का द्वाररक्षक। |
| ऋषिकुमार | महर्षि कण्व के आश्रम में रहने वाले दो मुनि बालक। |
| वैतालिक | राजा दुष्यन्त के दरबार के स्तुतिपाठक, दो भाट। |
| कण्व | आश्रम के कुलपति, शकुन्तला के पालक पिता। |
| हारित | कुलपति कण्व का एक शिष्य। |
| शिष्य | " |
| शार्ङ्गरव | कुलपति का व्यावहारिक शिष्य। |
| शारद्वत | कुलपति का गम्भीर शिष्य। |
| कञ्चुकी | राजा दुष्यन्त का नौकर, रनिवास की देख-भाल करने वाला। |
| करभक | हस्तिनापुर निवासी माताओं का सन्देशवाहक दूत, वातायन। |
| पुरुष ( धीवर ) | एक मछुवा। |
| श्याल | राजा का शाला, नगररक्षक, नगर का कोतवाल। |
| सूचक, जानुक | नगर के सिपाही। |
| सोमरात | राजा का पुरोहित। |
| मातलि | इन्द्र का सारथि। |
| मारीच | ब्रह्माजी के पौत्र, मरीचि के पुत्र, प्रजापति कश्यप। |
| सर्वदमन ( भरत ) | शकुन्तला से उत्पन्न राजा दुष्यन्त का औरस पुत्र। |
| गालव | महर्षि कश्यप का शिष्य। |

## स्त्री-पात्र

**नटी** — सूत्रधार की पत्नी ।

**शकुन्तला** — नाटक की नायिका, महर्षि कण्व की पोष्यपुत्री, मेनका से विश्वामित्र द्वारा उत्पन्न कन्या ।

**अनसूया, प्रियम्वदा** — शकुन्तला की प्रिय सखियाँ ।

**गौतमी** — कुलपति कण्व की धर्मभगिनी ।

**प्रतिहारी** — राजा दुष्यन्त की परिचायिका ।

**सानुमती या मिश्रकेशी** } मेनका की प्रिय सखी, एक अप्सरा ।

**परभृतिका, मधुकरिका** } राजा दुष्यन्त के प्रमदवन की परिपालिका दासियाँ ।

**चतुरिका** — चेटी, राजा दुष्यन्त की दासी ।

**प्रथमा तापसी** — महर्षि कश्यप के आश्रम में रहनेवाली सर्वदमन की रक्षिका दासी ।

**द्वितीया तापसी** — ,, ,, ,, ।

**अदिति** — महर्षि कश्यप की धर्मपत्नी, देवताओं की माता, दक्ष की कन्या ।

### प्रसङ्गवश वर्णित अन्य पात्र

**मघवा** — देवताओं के राजा इन्द्र, हरि, आखण्डल, शतक्रतु, सहस्राक्ष आदि ।

**दुर्वासा** — एक ऋषि, महर्षि अत्रि तथा अनसूया जी के पुत्र ।

**कौशिक** — कुशिक के पुत्र तथा शकुन्तला के जन्मदाता पिता राजर्षि विश्वामित्र ।

**मेनका** — इन्द्रपुरी की एक अप्सरा, शकुन्तला की माँ ।

**जयन्त** — जयन्ती = शची, इन्द्राणी से उत्पन्न इन्द्र का पुत्र ।

**नारद** — देवर्षिनारद, ब्रह्माजी के अङ्गज पुत्र ( उत्सङ्गान्नारदो यज्ञे ) ।

**हंसपदिका** — राजादुष्यन्त की अन्यतमा भार्या ।

**सुमती** — दुष्यन्त की अवसरज्ञा धर्मपत्नी ।
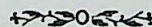
जय माता दी

॥ श्रीः ॥

महाकविकालिदासप्रणीतम्

# अभिज्ञानशाकुन्तलम्

(१)

## ( मङ्गलाचरणम् )

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥ १ ॥

---

नत्वा गुरुपदाम्भोजं स्मृत्वा सारस्वतं महः ।
छात्राणां सुखबोधाय विदुषां मोदहेतवे ॥
कालिदासस्य सर्वस्वे ह्यभिज्ञानशकुन्तले ।
श्रीश्रीकृष्णमणिर्व्याख्यां प्रकुरुते च सुधाभिधाम् ॥

अथ तत्रभवान् कविकुलकलाधरः कालिदासः अभिनेयार्थं दृश्यकाव्यविशेषं व्याचिकीर्षुः समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेदित्यनुमितशिष्टाचारानुसारं निर्विघ्नपरिसमाप्तये स्वेष्टदेवता-स्मरणात्मकं मङ्गलमाचरन्—

'आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः ।
नान्दीति कथ्यते' इति ॥

भरतादिभिर्व्याकृताम् अवान्तरवाक्यात्मकाष्टपदभूषितां सर्वानन्दिनीं पूर्वरङ्गाङ्गभूतां नान्दीं नाटकादौ पठति स्थापकनामा सूत्रधारः—या सृष्टिरिति ।

**अन्वयः**—या स्रष्टुः आद्या सृष्टिः, या विधिहुतं हविः वहति, या च होत्री, ये द्वे कालं विधत्तः, या श्रुतिविषयगुणा विश्वं व्याप्य स्थिता, या सर्वबीजप्रकृतिः इति आहुः, यया प्राणिनः प्राणवन्तः, ताभिः प्रत्यक्षाभिः अष्टाभिः तनुभिः प्रपन्नः वः अवतु ॥ १ ॥

या = तनुः स्रष्टुः = ब्रह्मणः आद्या = प्राथमिको सृष्टिः = सर्गः जलमयीमूर्ति-

---

जो मूर्ति ब्रह्माजी की प्रथम सृष्टि है। ( जलमयी मूर्ति ) जो विधिपूर्वक हवन किये गये हवि= घृतादि हवनीयद्रव्य को देवताओं तक पहुँचाती है ( अग्निमयीमूर्ति ) और जो मूर्ति हवन करने वाली है ( यजमानरूपा मूर्ति ) जो दो मूर्तियां समय=दिन रात का विभाजन करती हैं। ( सूर्य और चन्द्रमारूपी मूर्ति ) जो मूर्ति शब्द गुणवाली है और विश्व को व्याप्त करके अवस्थित है ( आकाश

रित्यर्थः[१] । या = तनुः विधिहुतं = विधिना = श्रुतिस्मृत्युक्तविधानेन, विधिपूर्वकं हुतं = अग्नौ समर्पितं हविः = होमद्रव्यं घृतादिकं वहति = धारयति, देवान् प्रापयति, वह्निमयोमूर्तिरित्यर्थः[२] । या च = अपरा तनुः होत्री = जुहोतीति होत्री = हवनकर्त्री यजमानरूपा[३] । ये = द्वे = द्विसंख्याके तनू कालं = समयं, रात्रिन्दिनम् विधत्तः = कुरुतः, व्यवस्थापयतः । तथा च चन्द्रात्मकं सूर्यात्मकं चेति तनुद्वयमित्यर्थः । या = तनुः श्रुतेर्विषयगुणा—श्रुतेः = श्रवणेन्द्रियस्य विषयः = गोचरः इति श्रुतिविषयः, श्रुतिविषयो गुणो यस्याः सा श्रुतिविषयगुणा = श्रवणेन्द्रियग्राह्यशब्दाख्यविशेषगुण-शालिनी, विश्वं = समस्तं जगत् व्याप्य = व्याप्तं कृत्वा स्थिता = वर्तते, आकाशाख्या भगवतो मूर्तिरित्यर्थः[४] । यां = तनुं सर्वबीजप्रकृतिं = सर्वेषां = समस्तानां बीजानां = सस्यादीनां प्रकृतिः = प्रधानकारणमिति सर्वबीजप्रकृतिः = सर्वविधसस्याद्यङ्कुरयोनिः, इति = एवम् आहुः = कथयन्ति विद्वांसः । सर्वाङ्कुरकारणभूता पृथ्वीरूपा तनुरित्यर्थः[५] । यया = वायुरूपया तन्वा प्राणिनः = शरीरिणः, प्राणवन्तः = चैतन्यभाजो भवन्ति, वायुरूपा भगवतो मूर्तिरित्यर्थः । ताभिः = एताभिः पूर्वोक्ताभिः प्रत्यक्षाभिः = स्थूलबुद्धिभिरपि प्रत्यक्षमुपलभ्यमानाभिः अष्टाभिः = अष्टसंख्याभिः जल-वह्नि-यजमान-चन्द्र-सूर्यगगन-धरणी-वायुरूपाभिः तनुभिः मूर्तिभिः, प्रपन्नः = युक्तः, ईष्टे इति ईशः = चराचर-नियन्ता शक्तिविशिष्टो भगवान् शिवः, वः = युष्मान् सभ्यान्, अस्मान् नटादींश्च, अवतु = रक्षतु, शुभोदयेन योजयतु इत्यर्थः । एवं विश्वस्मिन्नष्टमूर्तेर्भवति समेषां प्रत्यक्षम् ।

---

रूपी मूर्ति ) जो मूर्ति समस्त बीजों को उत्पन्न करने वाली है ( पृथ्वीरूपी मूर्ति ) और जिस मूर्ति से प्राणिमात्र अनुप्राणित हैं ( वायु रूपी मूर्ति ) इस प्रकार प्रत्यक्षसिद्ध इन आठों मूर्तियों से युक्त भगवान् सदाशिव आपलोगों की रक्षा करें ॥ १ ॥

**विशेष**—भगवान् शिवजी का एक नाम अष्टमूर्ति भी है। इसका अभिप्राय यह है कि इनका शरीर आठ भागो में विभक्त होकर विश्व का कल्याण करता है जिनके नाम हैं जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी, और वायु। ये शिवजी की आठों मूर्तियाँ जगत्प्रसिद्ध हैं और प्राणिमात्र को इनका अनुभव प्रतिदिन प्रत्यक्ष होता रहता है। इन आठों मूर्तियों से विराजमान श्री शिवजी सृष्टिमात्र का संचालन करते हुए जीवमात्र का सर्वदा हित करते हैं।

---

१. सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ म० स्मृ० १।१८

२. अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ मं० स्मृ० ३।७६

३. दीक्षितं ब्राह्मणं प्राहुरात्मानं च मुनीश्वराः ।
यजमानाह्वया मूर्तिविश्वस्य शिवदायिनः ॥

४. आकाशस्य च विज्ञेयः शब्दो वैशेषिको गुणः । सि० मु०
श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यो गुणः शब्द इत्यन्नंभट्टस्तर्कसंग्रहे ।

५. इयं हि भूमिर्भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते ।

६. भूमिरापोऽनलो वायुरात्मा व्योम रविश्शशी ।
इत्यष्टौ सर्वलोकानां प्रत्यक्षा हरमूर्तयः ॥

उभयोः जल-वाय्वोः त्वगिन्द्रियेण स्पार्शं प्रत्यक्षं भवति, यजमान-चन्द्र-सूर्य-पृथिवीनां चक्षुरिन्द्रियेण चाक्षुषं प्रत्यक्षं जायते, शब्दस्य श्रोत्रेन्द्रियेण श्रावणम् आकाशस्य चौपचारिकं चाक्षुषं प्रत्यक्षं सर्वैरेव सर्वदाऽनुभूयते। तथाच जल-वह्नि-यजमान-चन्द्र-सूर्य-आकाश-पृथ्वीरूपया च मूर्त्या युक्तोऽष्टमूर्तिः सर्वप्रसिद्धः प्रत्यक्षमनुभूयमानमाहात्म्यातिशयो भगवान् सदाशिवः, सर्वेभ्यो भद्रं वितरत्विति भावः।

यद्वा केचन पद्येनानेनाभिज्ञानशाकुन्तलप्रतिपाद्योऽपि विषयः सूच्यते इति ब्रुवते तथाहि या = शकुन्तला स्रष्टुः = ब्रह्मणः आद्या = श्रेष्ठा सृष्टिः = कृतिः, सौन्दर्यातिशयशालित्वात् तादृशसृष्टेरजातत्वाद्वा। या च विधिहुतं विधिना = गर्भाधानविधानेन हुतं = निषिक्तमिति विधिहुतं हविः = बीजं दुष्यन्तेनाहितं = वीर्यं वहति=धत्ते। एतेन शकुन्तलाया गर्भावस्था सूच्यते। या च होत्री = उपकुलपतिः कण्वो मुनिः। ये द्वे = सख्यौ = अनुसूया-प्रियंवदे कालं = महर्षेर्दुर्वाससः शापावसानसमयं विधत्तः = धारयतः = जानीतः, एतेन ते द्वे सख्यौ सूचिते। श्रुतिविषयगुणाया = श्रुतिविषयो गुणानाम् अयः = शुभावहो विधिः यस्याः सा श्रुतिविषयगुणाया यद्वा विषयो देशः-श्रुतो विषयैः = विषयवास्तव्यैर्लोकैः गुणानामयः = शुभावहो विधिः यस्याः सा श्रुतविषयगुणाया। एतेन दुष्यन्तराष्ट्रगमनं तत्तिरोधानं च सूचितं भवति। या पातिव्रत्यादिगुणैः विश्वं व्याप्य = सकलं लोकं व्याप्य स्थिता। एतेन-सूदूरकश्यपाश्रमनिवासः सूचितः। यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिः, इत्यनेन नामग्रहणान्नामैकदेश-ग्रहणमितिरीत्या सर्वदमनाख्यबीजस्य योनिरुत्पत्तिकारणमित्यर्थलाभात् सर्वदमनकुमारस्त-दुत्पत्तिश्च सूच्यते। यया प्राणिनः प्रजाः प्राणवन्तः = प्रहृष्टाः इत्यनेन शकुन्तला-दुष्यन्त-सर्वदमनानां पुनः स्वराज्ये प्रत्यागमनं सूचितम्। ईशः = राजा दुष्यन्तः, इति = इत्थमष्टाभिः तनुभिः = प्रकृत्यादिभिः विभूतिभिः = अष्टानां लोकपालानां कलाभिः वा[1] प्रपन्नः = युक्तः समवेतो वा, स्वं राज्यम् अवतु = पालयतु। एतेन नाटकोक्तोऽर्थः सूचितो भवति।

अत्र सर्वरीतीनां मुख्या रीतिः वैदर्भी। गुणेषु प्रधानः प्रसादगुणः। सृष्टिः स्रष्टुः, वहति हुत, प्राणि प्राण, भिर्भीः इत्यनुप्रासालङ्कारः। अग्नेर्हविःस्वभाववहनादिवर्णनात्

मनु आदि शास्त्रकारों का मत है कि ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम जल की ही सृष्टि की थी। शास्त्रविधि के अनुसार हवन करने पर अग्निदेवता इस हवि को देवताओं के पास पहुँचा देते हैं। यद्यपि शास्त्रों के अनुसार काल अखण्ड और अनादि है, फिर भी सूर्य और चन्द्रमा के द्वारा दिन, रात, तिथि वर्ष आदि के रूप में उसका विभाजन होता है। इसलिए शास्त्रों में सूर्य और चन्द्रमा को काल का कर्ता बताया गया है।

यद्यपि यहां प्राणी और प्राणवान् शब्द समानार्थक है, फिर भी यहाँ पुनरुक्ति दोष नहीं, क्योंकि प्रथम प्राणीशब्द जीव के अर्थ में रूढ है और दूसरा विशेषण है।

यहां प्रत्यक्ष का अर्थ केवल नेत्रगोचर न होकर इन्द्रिय गोचर हैं, क्योंकि वायु का प्रत्यक्ष=स्पर्श त्वगिन्द्रिय गोचर है। साधारण मनुष्य आकाश को नीला समझते हैं। इसका प्रत्यक्ष औपचारिक माना जाता है। न्यायशास्त्र वायु और आकाश को प्रत्यक्ष नहीं मानता, किन्तु वेदान्त मानता है।

१. भूतार्कचन्द्रयज्वानो मूर्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः।
अष्टानां लोकपालानां मात्राभिर्जायते नृपः॥

( नान्द्यते—ततः[1] प्रविशति सूत्रधारः )

---

स्वभावोक्तिः, या हविर्या च होत्रीति विरोधाभासः प्रत्यक्षाभिः ताभिः तनुभिः प्रपन्न इति समासोक्तिश्चालङ्कारः, स्रग्धराछन्दश्च विज्ञेयम् । नान्दीश्लोकत्वादस्य सर्वगुरुः क्षेमकरो मगणः । तथाचोक्तं भामहेन—क्षेमं सर्वगुरुर्दत्ते मगणो भूमिदैवतः । इति । या स्रष्टुः सृष्टिराद्येतिपदमष्टपदा नान्दी । नान्दी स्वरूपं च प्रोक्तं साहित्यदर्पणे—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।।
माङ्गल्यशंखचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ।।

पदानि चात्र वाक्योपलक्षकाणि । तथा चोक्तम्—

न पदं पदमित्याहुर्वाक्यं तु पदमुच्यते ।
पदैर्द्वादशभिः षड्भिरष्टभिर्वाप्यलङ्कृताम् ।।

यद्वा—

श्लोकपादं पदं केचित् सुप्तिङन्तमथापरे ।
परेऽवान्तरवाक्यैकस्वरूपपदमूचिरे ।। = नाट्यप्रदीपः

अत्र नाट्यशास्त्रमतम्—

सूत्रधारो पठेन्नान्दीं मध्यमं स्वरमाश्रितः ।। १ ।।
मध्यम स्वरसंयुक्तां ततो नान्दीमुदीरयेत् ।

इत्थं पूर्वरङ्गस्य मुख्याङ्गरूपनान्दीविधानानन्तरं नाटकस्यारम्भं सूचयितुमुपक्रमते—नान्द्यन्त इति । नान्द्यन्ते = नान्द्या अन्ते = अवसाने, समाप्तौ या सृष्टिः स्रष्टुराद्येति मङ्गलाचरणश्लोकरूपनान्दीपठनानन्तरं प्रविशति सूत्रधारः । इदमत्र रहस्यं नान्दी नाम मङ्गलाचरणं, तच्च प्रारब्धस्य नाटकस्य निर्विघ्नपरिसमाप्तये यथाभिमतं तदवश्यं विधाय रङ्गान्तः प्रविशति सूत्रधारः । एवं पूर्वं नान्दी ततः सूत्रधारस्य प्रवेश इत्यायाति । साम्प्रतं क्वचिदस्य विपर्ययोऽपि दृश्यते ।

नान्दीपदव्युत्पत्तिस्तु—नन्दयति = आनन्दयति जनानिति नान्दी, यद्वा नन्दन्ति देवता अस्यामनया वेति नान्दी । नाटकादौ प्रथमं विहितं मङ्गलार्थं पद्यम् । नान्दीलक्षणं यथा—

देवतादिनमस्कारमङ्गलारम्भपाठकैः ।
या क्रिया नन्द्यते नाट्यारम्भे नान्दी तु सा स्मृता ।। = साहित्यदर्पणे

---

**( अभिनय करने वाले सूत्रधार द्वारा किये गये नान्दी=मङ्गलाचरण श्लोक पाठ के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश । )**

**विशेष**—सबसे पहले विघ्नशान्ति के निमित्त जो ईशप्रार्थना की जाती है उसे या आशीर्वाद से युक्त देवता, ब्राह्मण, और राजा आदिकों की स्तुति को नान्दी कहते हैं ।

---

१. यह पाठान्तर कई प्रकाशनों में नहीं है केवल नान्द्यन्ते मात्र है ।

9419666702



सूत्रधारः—( [1]नेपथ्याभिमुखमवलोक्य ) आर्ये यदि नेपथ्यविधानमवसितं [2]तर्हीतस्तावदागम्यताम् ।

---

नाट्यप्रदीपे—नन्दन्ति काव्यानि कवीन्द्रवर्गाः कुशीलवाः पारिषदाश्च सन्तः ।
यस्मादलं सज्जनसिन्धुहंसी तस्मादियं सा कथितेह नान्दी ॥

नान्दी च नाटकस्य पूर्वरङ्गाङ्गभूता। पूर्वरङ्गलक्षणं यथा—

सभापतिः सभाः सभ्या गायका वादका अपि ।
नटी नटश्च मोदन्ते यत्रान्योन्यस्य रञ्जनात् ॥
अतो रङ्ग इति ज्ञेयं पूर्वं यस्मात् प्रकल्प्यते ।
तस्मादयं पूर्वरङ्ग इति विद्वद्भिरुच्यते ॥

नान्द्या अवश्यकर्तव्यत्वं प्राचीनैरप्युक्तम्—

यद्यप्यङ्गानि भूयांसि पूर्वरङ्गस्य नाटके ।
तथाप्यवश्यं कर्तव्यं नान्दी विघ्नप्रशान्तये ॥

सूत्रधारः—सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति सूत्रधारः यद्वा सूत्रं =नाटकीयसर्वपात्र प्रवर्तनाप्रयोजकं सर्वान्तःस्यूतं पुष्पमालामिव धारयतीति सूत्रधारः । नेपथ्यं = वेशविन्यासः तदर्थं यद्गृहं तदपि नेपथ्यम् । यत्र नाटकीयपात्राणि स्ववेशविन्यासान् प्रकुर्वते तन्नेपथ्य-मिति भावः । तस्याभिमुखं = तत्सामुख्यम् अवलोक्य = चक्षुर्विधाय कथयति—अलमति विस्तरेण = इतोऽधिकं मङ्गलाचरणमनावश्यकम् । आर्ये ! प्रिये ! नेपथ्यस्य विधानं = नववेषरचनाकरणम्, अवसितं = समाप्तं तर्हि = तदा तावत् = प्रथमम् इह रङ्गशालायाम आगम्यतां = उपगम्यतां त्वयेति, शेषः मत्समीपमेहीत्यर्थः ।

---

नाटक में आने वाली वस्तु का आभास जल्दी से मिलने के कारण इस नान्दी को पत्रावली नामक नान्दी कहते हैं। जैसे—

यस्यां बीजस्य विन्यासो ह्यविधेयस्य वस्तुनः ।
श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावलीति सा ॥=नाट्यप्रदीप

**सूत्रधार—( नेपथ्य=साज सज्जा कक्ष की ओर देखकर )** अत्यन्तविस्तार से क्या लाभ है ! प्रिये ! यदि तुम्हारा शृंगार समाप्त हो चुका हो तो जरा इधर आ जाओ।

**विशेष**—नाटकों की सामग्री सूत्र कहलाती है उसे धारण करनेवाला अथवा संभालने वाला व्यक्ति सूत्रधार कहलाता है—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

ब्राह्मण, गुरुजन, मन्त्री, और सूत्रधार नटी परस्पर आर्य ! या आर्ये संबोधन का प्रयोग किया करते हैं—

विप्रामात्याग्रजाः सर्वे नटीं सूत्रकृतो मिथः । = भरतानुशासन

और भी—वाच्यौ नटी सूत्राधारावार्य नाम्नेति सर्वदा ।

---

पाठा०—१. नेपथ्याभिधानम् । २. तदित आगम्यतां तावत्, इतस्तावदागम्यताम् ।

( प्रविश्य )

**नटी**—अज्जउत्त, इयं ह्मि । आणवे दु अज्जो को णिओओ अणुचिट्ठीअदुत्ति ।
[ आर्यपुत्र इयमस्मि । [1]आज्ञापयतु आर्यः को नियोगोऽनुष्ठीयतामिति । ]

**सूत्रधारः**—[2]आर्ये ! इयं हि रस-भाव-विशेषदीक्षागुरोर्विक्रमादित्यस्य अभिरूप-भूयिष्ठा परिषद् । [3]अद्य खलु कालिदासग्रथितवस्तुनाभिज्ञानश[4]ाकुन्तलनामधेयेन नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिस्तत् प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः ।

---

**प्रविश्य**—रङ्गभूमौ आविर्भूय नटी=सूत्रधारपत्नी कथयति—हे आर्य ! हे स्वामिन् ! इयमस्मि – इयमहं भवन्नियोगादुपस्थिताऽस्मि । आज्ञापयतु = निर्दिशतु, आर्यः = श्रीमान् को नियोगः = कः खल्वादेशो भवतः अनुष्ठीयताम् = सम्प्रति मया अनुष्ठेयः, कर्तव्यः ।

**सूत्रधारः**—सूत्रधारः = प्रधाननटः कथयति यत्—

रङ्गं प्रसाद्य मधुरैः श्लोकैः काव्यार्थसूचकैः ।
रूपकस्य कवेराख्यां गोत्राद्यपि स कीर्तयेत् ॥
ऋतुं कञ्चिदुपादाय भारतीं वृत्तिमाश्रितः ।
इति धनिकोक्तौ नाटकस्य कवेः नाम कर्म च निर्दिष्टम् ।
भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारे नटाश्रयः ।
अङ्गान्यथोन्मुखीकारः प्रशंसातः प्ररोचना ॥

इत्युक्तस्वरूपां भारतीवृत्यङ्गभूतां प्ररोचनात्मकमङ्गमुपन्यस्यति सूत्रधारमुखेन—
**आर्ये इति**—आर्ये = प्रिये ! इयं = एषा, हि परिषद् = सभा, रसभावविशेषदीक्षा-

---

**नटी**—( **रंगमंच पर आकर** ) आर्यपुत्र ! मैं आ गयी । श्रीमान् आज्ञा दें कि मैं क्या करूँ ?
**विशेष**—संस्कृत के नाटकों में सूत्रधार राजा आदि श्रेष्ठपात्र, सन्यासिनी, और कभी-कभी राजकुमारी, तथा वेश्या स्त्रियाँ संस्कृत में बोलती है और शेष स्त्रियाँ प्रायः प्राकृत में बोलती हैं—

पठ्यं तु संस्कृतं नृणामनीचानां कृतात्मनाम् ।
लिङ्गिनीनां महादेव्या मंत्रिजवेश्ययोः क्वचित् ॥
स्त्रीणां तु प्राकृत प्रायः………………………… । = दशरूपक २।४४, ६५

[1]यद्यपि साधारणतः प्रवेशका अर्थ होता है 'चलकर अन्दर आना', किन्तु नाटक में प्रवेश करने का अर्थ है—रंगमंच पर प्रकट हो जाना, क्योंकि कभी-कभी किसी पात्र का लेटे हुए या बैठे हुए भी प्रवेश करना दिखाया जाता है । यहाँ नटी सूत्रधार की पत्नी हैं जिसे उसने पहले बुलाया था। संस्कृत साहित्य से पति के लिए आर्य सम्बोधन अत्यन्त प्रचलित है । यहाँ आर्य का अर्थ सज्जन है न कि कोई जाति । संस्कृत में आर्य की परिभाषा है । सभी स्त्रियाँ अपने पति को आर्यपुत्र कहकर पुकारती हैं—

कर्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन् ।
तिष्ठति प्रकृताचारे स वै आर्य इति स्मृतः ॥
सर्वस्त्रीभिः पतिर्वाच्य आर्यपुत्रेति यौवने । = रत्नकोश

**सूत्रधार**—आर्ये ! यह श्रृङ्गारादि रस, भाव आदि के विशेष मर्मज्ञ महाराज विक्रमादित्य की

---

पाठा० १. क्वचिदयं पाठो नास्ति । २. आर्ये ! अभिरूप भूयिष्ठा परिषदियम् ।
३. अस्यां च । ४. शकुन्तल ।

**नटी**—सुविहिदप्पओअदाए अज्जस्स ण किं वि परिहाइस्सदि [ सुविहित-प्रयोगतयार्यस्य न किमपि परिहास्यते ] ।

**सूत्रधारः**—( सस्मितम् ) आर्ये कथयामि ते भूतार्थम्—

---

गुरोः—रसाः = शृङ्गारादयः भावाः—विभावानुभावसंचारिभावाः तेषां विशेषा रसभाव-विशेषाः तेषां दीक्षागुरुः=दीक्षादायको गुरुः तस्य=रसभावविशेषदीक्षागुरोः=शृङ्गारादिरस-देवादिविषयकरत्यादिभावप्रवर्तकस्य, विक्रमादित्यस्य = आदित्यपदलाञ्छनस्य राज्ञो विक्र-मस्य । अभिरूपभूयिष्ठा=अभिलक्ष्यं रूपं येषां ते अभिरूपाः=अभिरूपाः=विद्वांसः भूयिष्ठाः= बहुला यस्यां सा अभिरूपभूयिष्ठा यद्वा अभिरूपैः भूयिष्ठा, अभिरूपभूयिष्ठा अथवा अभि-रूपः भूयिष्ठः = भूयिष्ठभागो यस्यां सा अभिरूपभूयिष्ठा = विद्वद्वर्गबहुला । अद्य = अस्मिन् दिवसे, खलु = निश्चयेन, कालिदासग्रथितवस्तुना—कालिदासेन ग्रथितं वस्तु यस्मिन् तत् तेन कालिदासग्रथितवस्तुना अभिज्ञानशाकुन्तलेन—अभिज्ञायतेऽनेन यत्तद् अभिज्ञानं, शकुन्तलामधिकृत्य कृतं शाकुन्तलं अभिज्ञानं च तत् शाकुन्तलम् अभिज्ञानशाकुन्तलं तेन अभिज्ञानशाकुन्तलेन, अभिज्ञानशाकुन्तलनाम्ना नवेन = प्रत्यग्ररचितेन नाटकेन रूपका-वन्तर्भेदेन उपस्थातव्यं = अभिनेतव्यम्, तत् = तस्मात् करणात् = पात्रं पात्रं प्रतीति प्रति-पात्रम् = प्रतिनटम्; यत्नः = अध्यवसायः, आधीयताम् = क्रियताम् । एवंविधायाः विद्वद्वि-शिष्टायाः परिषदो रञ्जने प्रवृत्तैरस्माभिः सर्वथाऽवहितैर्भाव्यमिति भावः ।

**नटी**—सुविहितः = कृतः प्रयोगो येन स सुविहितप्रयोगः तस्य भावः तत्ता सुविहित-प्रयोगता तया सुविहितप्रयोगतया=बहुशः कृतनाटकाभिनयतया आर्यस्य=भवतः न किमपि परिहास्यते = नहि किमपि त्रुटितं भविष्यति । समेषां नटानां भवतश्च नाट्याद्यभ्यासनै-पुण्येन सर्वं शोभनमेवेदं भवेदिति नट्याः अभिप्रायः ।

**सूत्रधारः**—स्मितं=मन्दहास्यम्, तेन सह सस्मितं सूत्रधारो नटीं ब्रूते । आर्ये=प्रिये !

---

परिषद् हैं, इससे विद्वान् अधिक है । इस विद्वत्सभा के सामने आज हमें एक नये नाटक को प्रस्तुत करने के लिए उपस्थित होना है, जिसका विषयवस्तु प्रसिद्ध कविवर कालिदास द्वारा गुम्फित किया गया है और जिसका नाम अभिज्ञानशाकुन्तल है । अतः नाटक के खेलने वाले प्रत्येक पात्र को बड़ी सावधानी से कार्य करना होगा, कोई त्रुटि न होने पाये ।

**विशेष**—विशेष रूप से प्रयत्न करने का कारण विद्वानों की सभा बतायी गयी । दूसरा कारण कालिदास जैसे प्रसिद्ध महाकवि की रचना है जिसके प्रति विशेष सम्मान होने के कारण अभिनय अच्छा होना चाहिए । तीसरा कारण है—नाटक नया है, नयी चीज को जमाना कठिन होता है । अतः सावधानी के साथ प्रत्येक पात्र को तैयार रहना चाहिए ।

**नटी**—आपकी मण्डली नाटक के खेलने में अत्यन्त निपुण है । अतः पात्रों से किसी प्रकार त्रुटि होने का भय नहीं ।

**विशेष**—नटी के कहने का तात्पर्य यह है कि आपकी अभिनय कुशलता एवं बारंबार अभ्यास के कारण ऐसी कोई भी कमी नहीं रहेगी, जो विद्वानों को खले । अतः आप निर्भीक होकर इस नाटक के अभिनय की व्यवस्था करें ।

**सत्रधार**—( मुस्करा कर ) आर्ये मैं तुमसे सत्य कह रहा हूँ—
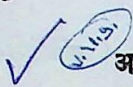
आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥ २ ॥

**नटी**—अज्ज ! एवं णेदं । अणन्तरकरणिज्जं दाव अज्जो आणवेदु । [ आर्य ! एवं न्विदम् । अनन्तरकरणीयं तावदार्य आज्ञापयतु । ]

**सूत्रधारः**—आर्य ! [२]किमन्यदस्याः परिषदः श्रुतिप्रमोदहेतोर्गीतात् करणीयमस्ति ?

---

श्रेष्ठे । प्रयोगस्यसाधुत्वे सुशिक्षितत्वं न प्रमाणम्, अपितु विदुषां सन्तोष एवेति कथयामि-निर्दिशामि, भूतार्थं = परमार्थम्, त्वं सत्यं न वेत्सि, इदानीमाकर्णयेति ।

**अन्वयः**—विदुषां आपरितोषात् प्रयोगविज्ञानं साधु न मन्ये बलवदपि शिक्षितानां चेतः आत्मनि अप्रत्ययम् ( भवति ) ।

**आपरितोषादिति**—विदुषां प्रयोगरहस्यवेदिनां सामाजिकानाम्, आपरितोषात् = सन्तुष्टिपर्यन्तम्, विशिष्टज्ञानं प्रयोगस्य विज्ञानं प्रयोगविज्ञानं=अभिनयकलाकौशलम्, साधु न मन्ये = अहं शोभनं न स्वीकरोमि त्वं साधु मन्यसे चेत् तन्न युक्तमिति भावः । साधुमननाभावे हेतुमाहुः—बलवदिति । बलवत् = दृढतरं शिक्षितानां = कृताभ्यासानामपि चेतः हृदयं आत्मनि = आत्मप्रयोगे अप्रत्ययं = अविश्वासं भवति । सामाजिकानां विदुषां परितोष एव प्रयोगस्य साधुत्वे विश्वासं जनयति । तथा च सुशिक्षितस्यापि नटस्यात्मनः प्रयोगे सामाजिकपरितोषमन्तरा विश्वासो न भवतीति भावः । तच्चोक्तमभियुक्तैः—**प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः** । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः, आर्याच्छन्दश्च ॥ २ ॥

**नटी**—नटी = सूत्रधारपत्नी, विनयः = नम्रत्वं तेन सह वर्तते इति सविनयम् । एवमेतत् = यथा भवानाह तथैव तत्, सत्यमिदम् । अनन्तरं करणीयम् अनन्तरकरणीयम् = अग्रे यद् विधेयं तदार्यः आदिशतु ।

**सूत्रधारः**—आर्ये ! अस्याः = प्रस्तुताः परिषदः = सभायाः, सामाजिकानां श्रुतिप्रमोदहेतोः = श्रुत्योः = कर्णयोः प्रमोदः तस्य हेतुः कारणमिति श्रुतिप्रमोदहेतुः तस्मात् श्रुतिप्रमोदहेतोः = कर्णानन्ददायिनः, गीतात् = गायनात् अन्यत् = अतिरिक्तं, किं = करणीयमस्ति न किमपि करणीयमस्तीति भावः ।

---

विद्वानों को जबतक सन्तोष न हो जाय, तबतक मैं अभिनय के प्रयोग की कुशलता ठीक नहीं समझता, क्योंकि सुशिक्षित पात्रों के भी चित्त में अपने विषय में सन्देह ही बना रहता है ॥ २ ॥

**विशेष**—विद्वानों के सन्तोष को अभिनय की कसौटी माना गया है । यों तो अपना काम सभी को अच्छा लगता है तथा प्रत्येक व्यक्ति अपने को योग्य समझता है । जब तक कार्य समुचित रूप से सम्पन्न न हो जाय, तब तक आत्मविश्वास नहीं होता ।

**नटी**—( **नम्रतापूर्वक** ) आर्य ! आप बिलकुल ठीक कहते हैं । अब आज्ञा दीजिए कि अब इसके बाद मुझे क्या करना चाहिए ।

**सूत्रधार**—प्रिये ! इस सभा के अनुरञ्जन=मनोविनोद के लिये श्रुतिमधुर गीत से बढ़कर इस समय क्या कार्य हो सकता है ? अतः तुम कोई मधुर गाना गाओ ।

---

पाठा०—१. एवमिदम्, एवमेव तत्, एवमेतत् । २. किमन्यदस्याः परिषदः श्रुतिप्रसादनतः ।

नटी—अध कदमं उण उदुं अधिकरिअ गायिस्सम् । [ अथ कतमं पुनऋ॑तुमधिकृत्य गास्यामि । ]

सूत्रधारः—नन्विममेव[1] तावदचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमधिकृत्य[2] गीयताम् । संप्रति हि—

सुभगसलिलावगाहाः [3]पाटलसंसर्गसुरभिवनावाताः ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः ॥ ३ ॥

---

नटी—अथ = अधुना कतमं = कम्, ऋतुं = समयम्, अधिकृत्य = विषयीकृत्य गास्यामि = गायामि । वसन्तादीनां षण्णामृतूनां मध्ये कतममृतुमधिकृत्य मया गानमाचरणीयमिति प्रश्नस्याशयः ।

सूत्रधारः—इममेव अचिरप्रवृत्तं=इदानीमेव प्रादुर्भूतममुम्, उपभोगक्षमं=उपभोगाय-चन्दनाद्युपभोगाय क्षमं = समर्थं ग्रीष्मस्य समयं = कालम् अधिकृत्य विषयीकृत्य, गीयताम् = गानं क्रियताम् । साम्प्रतं = इदानीं ग्रीष्मे, हि = यस्मात् ।

अन्वयः—दिवसाः सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः प्रच्छायसुलभनिद्राः परिणामरमणीयाः ।

सुभग इति । दिवसाः=दिनानि सुभगसलिलावगाहाः—सुभगः = ग्रीष्मसन्तापनिवर्तकत्वेन मनोहरःसलिले = जले अवगाहः = स्नानं जलक्रीडा येषु ते सुभगसलिलावगाहाः पाटलस्य = पाटलिपुष्पस्य संसर्गेण = सम्बन्धेन सुरभयः सुगन्धपूर्णाः वनस्य विपिनस्य वाता वायवः येषु ते पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः प्रच्छायसुलभनिद्राः प्रकृष्टा छाया येषु ते प्रच्छायाः प्रच्छायेषु घनच्छायायुक्तेषु स्थानेषु सुलभा सुखप्राप्या निद्रा येषु ते प्रच्छायसुलभनिद्राः परिणामरमणीयाः—परिणामे = अन्ते, दिवसावसाने सायंकाले रमणीयाः =

---

नटी—तो किस ऋतु के अनुरूप गीत गाऊँ !

विशेष—नाटक में कथोपकथन की श्रृङ्खला स्थिर रखने तथा वक्ता के वक्तव्य को बोझिल न होने देने के निमित्त छोटे-छोटे वाक्यों में बातें कही गयी हैं। नटी अपने मनसे गीत भी नहीं चुन रही है, क्योंकि सूत्रधार की इच्छा के अनुसार ही सब कार्य होने चाहिए ।

सूत्रधार—प्रिये ! अभी थोड़े ही समय से प्रवृत्त हुए उपभोग क्षम इस ग्रीष्म ऋतु के प्रसंग में तुम कोई गीत गाओ, क्योंकि ग्रीष्म काल बड़ा ही सुहावना होता है । इस समय तो—

सुन्दर-सुन्दर जलाशयों में स्नान एवं जलक्रीड़ा करने में बड़ा ही आनन्द आता हैं। वन एवं उपवनों में गुलाब आदि अच्छे-अच्छे फूलों के संसर्ग से सुरभित पवन बहता है। और दोपहर के समय कुञ्जों की ठण्डी ठण्डी छाया में नींद भी अच्छी लगती है ॥ ३ ॥

विशेष—ग्रीष्म ऋतु के समय स्नान, जल क्रीड़ा, सुरभित वायु दोपहर के समय शीतल छाया में आई नींद और सन्ध्याकाल की रमणीयता का विशेष महत्व है। इस पद्य में इन सभी का एक ही साथ वर्णन कर कवि ने एक उत्तम भाव व्यक्त किया है ।

इससे प्रतीत होता है कि नाटक का अभिनय गर्मी में हुआ था। गर्मी में प्रकृति का सेवन पूर्णरूप से होता है। लोग सुबह साम शीतल हवा का सेवन करते हैं। नदियों में तैरते हैं, चाँदनी रातों में भ्रमणकर आनन्द लूटते हैं इस प्रकार प्रत्येक ऋतु का अपना-अपना विशेष महत्व होता है।

---

पाठा०—१. तमिममेव। २. आश्रित्य। ३. पाटलि ।

नटी—तहं। [ तथा ] ( [1]गायति )

ईसीसिचुम्बिआइं भमरेहिं सुउमारकेसरसिहाई।
ओदंसयन्ति दअमाणा पमदाओ सिरिषकुसुमाई ॥ ४ ॥
[ [2]ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि ॥ ४ ॥ ]

सूत्रधारः—आर्ये ! साधुगीतम्। अहो [3]रागबद्धचित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रङ्गः। तदिदानीं [4]कतमत् प्रकरणमाश्रित्यैनमाराधयामः।

---

कमनीयाः परिणामरमणीयाः = सायंकालशोभनाः भवन्ति। अत्र शृङ्गार-परिकर-स्वभावोक्त्यलङ्काराः आर्यावृत्तञ्च ॥ ३ ॥

**नटी**—तथा गायति = आज्ञापयत्यार्यस्तथैवानुतिष्ठामि इत्यभिधाय गायति = गानं गानं करोति, ईषदिति।

**अन्वयः**—दयमानाः प्रमदाः भ्रमरैः ईषदीषत् चुम्बितानि सुकुमारकेसरशिखानि शिरीषकुसुमानि, अवतंसयन्ति।

**ईषदिति**—दयमाना दयन्ते इति दयमानाः = ग्लानिशङ्कया दयां कुर्वन्त्यः प्रमदाः-प्रकृष्टो मदो रूपसौभाग्यजनितो गर्वो यासां ताः प्रमदाः = वराङ्गनाः कामिन्यो युवतयः, भ्रमरैः = रोलम्बैः—ईषदीषद् = अल्पाल्पं, शनैः शनैः सरभसोपक्रममन्तरा चुम्बितानि = स्पृष्टानि, आस्वादितानि सुकुमारकेशरशिखानि—सुकुमाराः = मृदवः केशराणां = किंजल्कानां शिखा = अग्रभागः येषां तानि सुकुमारकेशरशिखानि शिरीषकुसुमानि—शिरीषस्य कुसुमानि शिरीषकुसुमानि शिरीषसुमनानि अवतंसयन्ति = कर्णभूषणे कुर्वन्ति। अत्र परिकरकाव्यालङ्कारौ, आर्याच्छन्दश्च ॥ ४ ॥

**सूत्रधारः**—आर्ये ! साधु = मधुरं लयतालादिललितं यथा स्यात् तथा गीतं = गानं

---

**नटी**—ठीक है : ( **गाती है** )

जिनपर गुनगुन करते हुए भौंरे रसपान कर रहे हैं और जिनकी पतली पंखुड़ियों के अग्रभाग बड़े ही सुकुमार हैं ऐसे इन कोमल शिरीष पुष्पों को दयालु स्त्रियाँ अपनी छोटी-छोटी अंगुलियों से पकड़कर शनैः शनैः अलंकार रूप से अपने शरीरों पर धारण कर रही है ॥ ४ ॥

**विशेष**—कविवर कालिदास ने अपने काव्यों में शिरीष पुष्प को अत्यन्त कोमल कहा है कुमारसंभव में वे कहते हैं कि शिरीषपुष्प भौरों के पैर सह सकता है ! किन्तु पक्षियों के नहीं '**पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः**'। शिरीष पुष्प अत्यन्त कोमल पंखुड़ियों वाला कर्णभूषण जैसा होता है। अतः उसका वर्णन कर्णभूषण के लिये उपयुक्त ही है।

शिरीष पुष्पों पर दया करने का अभिप्राय यह है कि भौरों ने पहले ही इसे थोड़ा-थोड़ा चूस लिया है सहसा स्पर्श करने पर शायद यह बिखर न जाय। इससे शकुन्तला का दुष्यन्त से प्रेम संकेत भी कवि ने माना है—शकुन्तला, भ्रमर और अप्सरा की पूर्व सूचना के निमित्त क्रमशः यहाँ शिरीष, भ्रमर और प्रमदा शब्द प्रयुक्त हैं। ईषद ईषद् दो बार प्रयुक्त होने से शिरीषपुष्पों की अत्यन्त कोमलता व्यक्त होती है। युवतियां शिरीष पुष्पों को तोड़कर अपने कानों का आभूषण बनाती है, किन्तु उन्हें तोड़ना नहीं चाहती, उन्हें तोड़ने में दया आती है।

**सूत्रधार**—वाह वाह आर्ये ! तुमने बड़ा ही सुन्दर गीत गाया। तुम्हारे राग-रागिणी युक्त इस

---

पाठा०—१. इति गायति। २. क्षणं चुम्बितानि। ३. रागापहृत, रागनिविष्ट। ४. कतमं प्रयोगम्।

**नटी**—णं अज्जमिस्सेहिं पढमं एव्व आणत्त अहिण्णाणसा उन्दलं णाम अपुब्वं णाडअं पओए अधिकरीअदुत्ति । [ **नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुन्तलं नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेऽधिक्रियतामिति ।** ]

**सूत्रधारः**—आर्ये सम्यगनुबोधितोऽस्मि । अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया । कुतः—

---

श्रावितम् । अहो = इत्याश्चर्यो रागबद्धचित्तवृत्तिः—रागेण = गीतरागेण बद्धा = आवर्जिता चित्तस्य = मनसः वृत्तिः = व्यापारो यस्य सः रागबद्धचित्तवृत्तिः, आलिखितः = चित्रित इव निश्चेष्टः इव सर्वतः = सर्वासु दिक्षु, रङ्गः = रङ्गवासी जनः, तत् = तस्मात् कतमं = कीदृशप्रयोगः = प्रयुज्यते इति प्रयोगः = नाट्यगतं प्रयोगमाश्रित्य एनं = रङ्ग स्थितं लोकम् आराधयामः = अनुरञ्जयामः ।

**नटी**—आर्यमिश्रैः = पूज्यैर्भवद्भिः, प्रथममेव = पूर्वमेव आज्ञप्तं = आदिष्टं, यत् अपूर्वं = अभिनवम् अभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकम् प्रयोगे = अभिनये अभिनीयताम् = उपस्थाप्यताम् ।

**सूत्रधारः**—आर्ये ! = देवि ! सम्यक् = सुष्ठु अनुबोधितः = स्मारितः, अस्मि = अहम् अस्मिन् = एतस्मिन् क्षणे = काले विस्मृतं खलु = निश्चयेन मया = सूत्रधारेण । कुतः = यतः ।

---

मनोहर गीत से आकृष्टचित्त होकर यह रङ्गस्थलवर्ती दर्शक समाज चित्रलिखित सा निस्तब्ध प्रतीत हो रहा हैं । अच्छा, तो बताओ, अब इस विद्वत्समाज के सामने कौन से नाटक का प्रयोग ( खेल दिखाकर इसे अनुरञ्जित ) करूँ !

**विशेष**—सूत्रधार कह चुका है कि कविवर कालिदास द्वारा रचित अभिनव नाटक खेलना है। यहां पुनः नटी से पूछता है किस प्रयोग से रङ्गशालावर्ती पुरुषों का मनोरञ्जन करूँ । इससे मालूम पड़ता है कि नटी के मधुर गान से सुध-बुध खोकर सूत्रधार प्रसंग ही भूल गया । और सूत्रधार ने रंगस्थलवर्ती लोगों को चित्रलिखित के समान स्थिर बताया । वस्तुतः मनोमोहक गीत का ऐसा ही प्रभाव होता है, जिससे चित्तवृत्तियाँ एकाग्र हो जाती हैं । वस्तुतः विद्वानों ने स्वरवर्ण से विभूषित ध्वनिविशेषको मनुष्यों के चित्तों का रञ्जक राग बताया है—

योऽसौ ध्वनिविशेषऽस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।
रञ्जको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः ॥

**नटी**—अभी कुछ समय पहले आपने आज्ञा दी है कि हमलोगों को आज अपूर्व अभिज्ञान-शाकुन्तल नामक नाटक का अभिनय करना है ।

**विशेष**—यहां ननु शब्द से स्मरण दिलाया गया है । आर्यमिश्र शब्द सम्मानसूचक है । इसलिए इसमें बहुवचन का प्रयोग किया जाता है । कहा भी है—**एकत्वं न प्रयुञ्जीत गुरा-वात्मनि चेश्वरे ।** अपने, श्रेष्ठपुरुष और गुरु के विषय में प्रायः बहुवचन का ही प्रयोग करना चाहिए ।

**सूत्रधार**—प्यारी, तुमने अच्छी सुधि दिलायी, इस समय मैं तो भूल ही गया था, क्योंकि—

(४) **तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।**
**एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा ॥ ५ ॥**

( इति निष्क्रान्तौ )

इति प्रस्तावना ।

---

**अन्वयः**—हारिणा तव गीतरागेण अतिरंहसा सारङ्गेण एष राजा दुष्यन्तः इव प्रसभं हृतः अस्मि ।

**तवास्मीति** । हारिणा—मनोहरेण, तव = भवत्याः गीतरागेण = गीतस्य = गानस्य रागेण गीतरागेण = गानरागेण अतिरंहसा = अतिवेगवता सारङ्गेण = चित्राङ्गेन हरिणेन एषः = पुरोदृश्यमानः राजा = नृपो दुष्यन्त इव = यथा प्रसभं = बलात् हृतः = विषयान्तरमानीतः अपहृतचित्तवृत्तिः जातः अस्मि । यथा राजा दुष्यन्तोऽतिवेगवता मृगेणाकृष्टः

---

तुम्हारे इस मनोहर गीत के राग से सहसा मुग्ध होकर मैं उस प्रकार भूल गया था जैसे अतिवेगवान् हरिण उस राजा दुष्यन्त को दूर खींच ले गया है ॥ ५ ॥

**( ऐसा कहकर दोनों बाहर चले जाते हैं )** । यह इस नाटक की प्रस्तावना हुई ।

**विशेष**—सूत्रधार के कहने का तात्पर्य है कि तुम्हारे संगीत जादू ने मुझे इस प्रकार अपनी ओर खींच लिया कि मैं अपने को भी भूल गया जिस प्रकार वेगशाली हरिण राजा दुष्यन्त को उसकी सेना से दूर भगा ले गया ।

सूत्रधार के साथ नटी या विदूषक आदि पात्र इधर-उधर की बातें करते हुए जहाँ किसी प्रकृत विषय की सूचना दें उसे आमुख कहते हैं । इसी का नाम नाटक में प्रस्तावना है—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥ ( साहित्यदर्पण )

दशरूपक में आमुख = प्रस्तावना का लक्षण यह लिखा हुआ है कि—

सूत्रधारो नटीमार्यं ब्रूते वापि विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥

साहित्यदर्पण के अनुसार प्रस्तावना के पाँच भेद माने गये हैं—( १ ) उद्घातक ( २ ) कथोद्घात ( ३ ) प्रयोगातिशय ( ४ ) प्रवर्तक तथा ( ५ ) अवगलितं इनमें यहां अवगलितं नाम की प्रस्तावना है, जिसका लक्षण निम्नाङ्कित है—

उद्घातकः कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा ।
प्रवर्तकावगलिते पञ्च प्रस्तावनाभिदः ॥
यत्रैकत्र समावेशात् कार्यमन्यत् प्रसाध्यते ।
प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नावगलितं बुधैः ॥

किन्तु दशरूपक में धनिक के अनुसार जहाँ सूत्रधार **'एषोऽयम्'** यह कहकर किसी पात्र का प्रवेश कराता है, वह प्रयोगातिशय नाम की प्रस्तावना है । तदनुसार यहाँ **एष राजेव दुष्यन्तः'** कहकर राजा का प्रवेश कराया गया है । अतः यहां प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना है । जैसे—

एषोऽयमित्युपक्षेपात् सूत्रधारप्रयोगतः ।
पात्रप्रवेशो येनैष प्रयोगातिशयो मतः ॥

( ततः प्रविशति रथाधिरुढः सशरचापहस्तो मृगमनुसरन् राजा सूतश्च[1] )

सूतः—( राजानं मृगं चावलोक्य ) आयुष्मन् !

**कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके ।**
**मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम् ॥ ६ ॥**

---

एतावतीं भूमिमायातः तथैवाहमपि मनोहारिणा तालयरागवता गीतेन अपहृतचितवृत्तिः अवधारितमपि नाटकं विस्मृतवानस्मीति भावः । निष्क्रान्तौ=रङ्गमञ्चाद् बहिर्गतौ इति = समाप्ता प्रस्तावना = आमुखम् । अत्र श्रौती उपमा, काव्यलिङ्गं च वृत्तं चानुष्टुबेव ॥ ५ ॥

तत इति । ततः = सूतनिर्गमनान्तरं प्रस्तावनाया अन्ते वा प्रविशति – रङ्गमञ्चे दृश्यते, रथाधिरूढः = रथे उपविष्टः, सशरचापहस्तः–शरेण बाणेन चापेन = धनुषा च सहितौ हस्तौ = करौ यस्य स सशरचापहस्तः = धनुर्बाणपाणिः मृगं = हरिणं, अनुसरन्– राजा = नृपतिः दुष्यन्तः, भरतपुत्रः सूतश्च । उभौ = सारथिश्च रङ्गे प्रविशत इत्यर्थः ।

सूतः—सूतः = सारथिः, राजानं = दुष्यन्तं मृगं हरिणं च अवलोक्य = दृष्ट्वा ब्रूते- आयुष्मन् = महाराज ! ।

अन्वयः— कृष्णसारे अधिज्यकार्मुके त्वयि च चक्षुः ददत् ( अहम् ) मृगानुसारिणं साक्षात् पिनाकिनं ( त्वां ) पश्यामि इव ।

कृष्णसारे इति । पुरो धावमाने कृष्णसारे = चित्राङ्गे हरिणे ज्यामधिगतमधिज्यम् अधिज्यं कार्मुकं = धनुर्यस्य स अधिज्यकार्मुकः तस्मिन् आधिज्यकार्मुके=अध्यारोपितधनुषि

---

एष पद के द्वारा अंगुलि से दिखाया गया है कि दुष्यन्त आदि सज्जाकक्ष से निकलकर अब रंगभूमि में पधार ही रहे हैं ।

**( प्रस्तावना के अनन्तर रथ पर बैठकर धनुर्बाण हाथ में लिए मृग का अनुसरण करते हुए राजा दुष्यन्त और सारथि का रंगमंच पर प्रवेश होता है । )**

**सारथी—( राजा तथा मृग की ओर देखकर )** आयुष्मन् !

इस कालेमृग को और चढ़े हुए धनुष को धारण किये हुए आपको देखकर मुझे यज्ञरूप मृग का पीछा करते हुए पिनाकपाणि भगवान् शङ्कर का स्मरण हो आता है । अर्थात् धनुषबाण हाथ में लेकर मृग का पीछा करते हुए आप मुझे साक्षात् शिव के समान मालूम पड़ रहे हैं ॥ ६ ॥

**विशेष**—भगवान् शिव का नाम यहां पिनाकी कहा गया है । जिसका तात्पर्य यह है कि महापुरुषों के शंख, वीणा और धनुष का विशेष नाम देखा जाता है । जैसे भगवान् विष्णु के धनुष का शार्ङ्ग, अर्जुन के धनुष का नाम गाण्डीव है और नारदजी की वीणा का नाम महती एवं सरस्वती की वीणा का नाम कच्छपी है । इसी प्रकार भगवान् शिव के धनुष का नाम पिनाक है ।

साधारण राजकर्मचारी राजा की चाटुकारिता का अवसर देखा करते हैं । यहाँ सारथि राजा की प्रशंसा करते हुए कह रहा है कि आप रुद्र के समान भीषण हैं और आपका धनुष पिनाक के समान लक्ष्यसाधक है । इस उपमा से उस कथा का स्मरण हो जाता है, जिसके अनुसार भगवान् शिवजी ने मृग का रूप धारण कर भय से भागते हुए यज्ञपुरुष का पीछा किया था अथवा पाशुपतास्त्र की प्राप्ति के लिए इन्द्रकील पर्वत पर भगवान् शिव की तपस्या करने वाले अर्जुन के साथ मृग = वाराह का पीछा किरातरूपधारी महादेव ने किया था ।

महाभारत के सौप्तिक पर्व में यह कथा आती है कि एक बार शिवजी के श्वसुर दक्ष प्रजापति ने

---

पाठा०—१. ततः प्रविशति मृगानुसारी सशरचापहस्तो राजा रथेन सूतश्च ।

**राजा**—दूरममुना सारङ्गेण वयमाकृष्टाः[1]। अयं[2] पुनरिदानीमपि—

**ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः**
**पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।**
**दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा**
**पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति॥ ७॥**

---

त्वयि = भवति च चक्षुः = लोचनं ददत् = निक्षिपन् अहं मृगानुसारिणं—मृगमनुसरति तच्छीलो मृगानुसारी तं मृगानुसारिणं = मृगरूपधरं दक्षप्रजापतियज्ञम् अनुसरन्तं साक्षात् पिनाकिनमिव = साक्षाद् धनुष्पाणिं भगवन्तं सदाशिवमिव पश्यामि = विभावयामि, तर्कयामि इव, इति प्रतीयते दक्षप्रजापतियज्ञविध्वंसवेलायां सतीदाहेन क्रुद्धं पिनाकपाणिं भगवन्तं शिवमवलोक्य यज्ञो मृगरूपमास्थाय पलायाञ्चक्रे। तञ्च महता वेगेन सदाशिवोऽनुससारेति पौराणिकी कथाऽत्रानुसन्धेया। अत्र विशेषालङ्कारो नोत्प्रेक्षा नवोपमा, अनुष्टुप् छन्दश्च।

**राजा**—राजा = नृपो दुष्यन्तः कथयति—सारथे! अमुना = पुरो धावमानेन अनेन सारङ्गेण = कृष्णमृगेण वयम् दूरं = दूरस्थानम् आकृष्टा = आकृष्य नीताः। अयं = असौ पुनः = तु इदानीम् = अधुनापि।

**अन्वयः**—(पश्य अयं पुनरिदानीमपि) अनुपतति स्यन्दने मुहुः ग्रीवाभङ्गाभिरामं बद्धदृष्टिः (सन्) शरपतनभयात् भूयसा पश्चार्द्धेन पूर्वकायं प्रविष्टः (सन्) अर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः दर्भैः कीर्णवर्त्मा (सन्) उदग्रप्लुतत्वात् वियति बहुतरम् उर्व्यां (च) स्तोकं प्रयाति।

**ग्रीवा इति।** पश्य=अवलोकय अयं पुरो दृश्यमानः मृगः अनुपतति=स्वस्य पृष्ठे धावति स्यन्दने = अस्माकं रथे मुहुः = पुनः पुनः ग्रीवाभङ्गाभिरामं—ग्रीवायाः = कन्धरायाः भङ्गेन वलितेन अभिरामं = कमनीयम्, यथास्यात्तथा बद्धा = एकाग्रीकृता दृष्टिः = चक्षुः

---

यज्ञ किया, किन्तु वे ब्रह्मसभा में अपना अभ्युत्थान न करने से शिवजी पर क्रुद्ध थे। अतः उन्होंने अपने उस यज्ञ में न तो शिवजी को आमन्त्रित किया, न उनका भाग ही निकाला। यह देखकर दक्ष की पुत्री सती ने अपने पति के अपमान से दुःखित होकर यज्ञाग्नि से अपने शरीर को भस्म कर दिया। यह सुनकर शिवजी को अत्यन्त क्रोध हो आया। फलतः शिवजी ने यज्ञ का विध्वंस करना प्रारम्भ कर दिया, यज्ञ हरिण का रूपधारण कर भाग चला। शिवजी ने अपना पिनाक नामक धनुष लेकर उसका पीछा किया।

**राजा**—हे सारथे! यह मृग हम लोगों को बहुत दूर खींच लाया है, फिर भी तो देखो—

यह हमारे रथ की ओर गर्दन घुमा-घुमाकर मनोहरतापूर्वक देखता हुआ बाण लगने की आशंका से अपने पीछे के भाग = पीठ को शरीर के पूर्वभाग = गर्दन की ओर समेट कर आधे चबाये हुए कुश के ग्रासों को परिश्रम के कारण खुले हुए अपने मुख से मार्ग में गिराता हुआ आकाश में छलांग मारता हुआ दौड़ ही रहा है। जमीन पर तो इसके पैर कभी-कभी पड़ते हैं॥ ७॥

**विशेष**—यह पद्य बड़े सूक्ष्मनिरीक्षण से प्रस्तुत किया गया है। इसके प्रत्येक चरण में हरिण का एक स्वरूप व्यक्त किया गया है। विशेषरूप से दूसरे चरण में कही गई शरीर के सिकोड़ने की

---

पाठा०—सूत! दूरममुना सारङ्गेण वयमाकृष्टाः। २. सोऽयमिदानीमपि।

( सविस्मयम् । ) तदेष कथमनुपतत एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयः संवृत्तः ।

**सूतः**—आयुष्मन्! [1]उद्घातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो वेगः । तेन मृग एष विप्रकृष्टान्तर संवृत्तः । संप्रति [2]समदेशवर्तिनस्ते न दुरासदो भविष्यति ।

---

येन स बद्धदृष्टिः सन् शरपतनभयात्—शरस्य=अस्माभिर्मोक्ष्यमाणस्य वाणस्य यत् पतनं=प्रहारः तस्य भयात् = भीतेः वाणपातशङ्कया भूयसा = अधिकतरेण अपरोऽर्धः पश्चार्धः तेन पश्चार्द्धेन = अपरेण अर्द्धेन शरीरस्य पूर्वकायस्येति पूर्वकायं = अग्रवर्ति शरीरम्, प्रविष्टः = आगतः सन् अर्द्धावलीढैः = अर्द्धम् अपूर्ण यथास्यात्तथा अवलीढैः=भुक्तैः श्रमेण=धावनजन्यया क्लान्त्या विवृतात् उद्घाटितात् मुखात् = वदनात् भ्रंशिभिः=पतद्भिः दर्भैः=कुशैः कीर्णं = व्याप्तं, वर्त्म=मार्गः येन सः कीर्णवर्त्मा सन् उदग्रम्=उत्कटं च तत् प्लुतं=लम्फः यस्य स उदग्रप्लुतः तस्य भावः तत्वं तस्मात् उदग्रप्लुतत्वात् वियति = आकाशे बहुतरं = अधिकम् उर्व्यां = पृथिव्यां च स्तोकम् = अल्पम्, प्रयाति = गच्छति । तेन तूर्णं चोदयाश्वानिति भावः । अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः स्रग्धरावृत्तं च ॥ ७ ॥

सविस्मयं = विस्मयसहितमाह—तदेषः = मृगः, अनुपतत एव = पश्चाद् धावत एव मे = मम प्रयत्नप्रेक्षणीयः-प्रयत्नेन=प्रयासेन प्रेक्षणीयः = दर्शनयोग्यः संवृत्तः = जातः । पूर्वं स्पष्टलक्ष्योऽपीदानीं कष्टलक्ष्यो जातः प्लवनचपलोऽयं मृगः कथमस्माभिर्व्यापादनीयः । मनागपि नास्य वेगोऽल्पीभवतीति राजाशयः ।

**सूतः**—आयुष्मन् ! = महाराज ! उद्घातिनी = उद्घातयति = पादस्खलनं जनयतीत्युद्घातिनी स्खलनप्रधाना निम्नोन्नता समविषमा, भूमिः = अत्रत्या भूः इति हेतोः मया=सारथिना रश्मिसंयमनात् = प्रग्रहस्याकर्षणात् रथस्य = स्यन्दनस्य वेगः = मन्दीकृतः = अल्पीकृतः तेन = कारणेन एष मृगो विप्रकृष्टं = सातिशयमन्तरम् = अवकाशो यस्य स विप्रकृष्टान्तरः = अतिदूरवर्ती संवृत्तः = सञ्जातः । सम्प्रति = इदानीम्, समे देशे वर्तते

---

क्रिया को चित्र की तरह प्रस्तुत किया गया है, बार-बार लम्बीकूद से इसका शरीर जमीन पर जरा सा आकाश में अधिक समय तक रहता है, जिससे चतुर्थचरण सार्थक प्रतीत होता है। पहले चरण में मृग का गर्दन मोड़ मोड़कर पीछे रथ को देखने का वर्णन स्वाभाविक है। भागता हुआ हरिण डर के मारे अपने पीछे-पीछे दौड़ने वाले रथ को घूम-घूम कर देख लेता है अतः यह पद्य स्वभावोक्ति अलंकार का उत्तम उदाहरण है।

**( आश्चर्य के साथ )** देखो-देखो इसके पीछे इतने वेग से दौड़ने पर भी यह मृग, आँखों से ओझल सा होता जा रहा है। अब तो यह बड़ी कठिनता से दीख रहा है। यह कैसे मारा जा सकता है ?

**सारथि**—महाराज ! ऊबड़ खाबड़ ( ऊँची नीची ) जमीन होने के कारण मैंने ही घोड़ों की लगाम खींचकर रथ का वेग कुछ कम कर दिया है। अतः यह मृग इतना दूर चला गया है, पर अब समतल भूमि आ गयी है। अब आपके लिए इसे पाना मुश्किल नहीं है।

**विशेष**—ऊँची-नीची जमीन पर रथ तेज नहीं चल सकता। ऐसी जगहों पर सारथि घोड़ों की लगाम खींचकर वेग को कम कर देते हैं। मन्दीकृत से यही बताया गया है कि रथ की गति स्वाभाविक रूप से कम नहीं हुई है, बल्कि जानबूझकर कम कर दी गयी है। इसका उद्देश्य रथ

---

पाठा०—१. उत्खातिनी । २. समदेशवर्तीं न ते ।

**राजा**—तेन हि मुच्यन्तामभीषवः।

**सूतः**—यथाऽऽज्ञापयत्यायुष्मान् ( रथवेगं निरूप्य ) आयुष्मन्! पश्य पश्य—

**मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया**
**[1]निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।**
**आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया**
**धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः॥ ८॥**

---

इति समदेशवर्ति तस्य समदेशवर्तिनः=समतलभूमिस्थस्य ते=तव दुरासदः=दुष्प्रापः न भवष्यति।

**राजा**—राजा कथयति यत् तेन=तस्मात् कारणात् हि=निश्चयेन अभीषवः=प्रग्रहाः मुच्यन्ताम्=शिथिलीक्रियन्ताम्। अश्वान् धावय मृगं हन्मीत्यर्थः।

**सूतः**—सूतः=सारथिः कथयति यत् यथा=उचितम्, आयुष्मान्=भवान् आज्ञापयति=आदिशति तथा करोमि, अश्वान् धावयामीत्यर्थः। रथस्य=स्यन्दनस्य वेगं=गतिं निरूप्य=नाटयित्वा, अभिनीय आयुष्मान्! पश्य पश्य=अवलोकय अवलोकय, सम्भ्रमे द्विरुक्तिः।

**अन्वयः**—रश्मिषु मुक्तेषु निरायतपूर्वकायाः निष्कम्पचामरशिखाः निभृतोर्ध्वकर्णाः आत्मोद्धतैः अपि रजोभिः अलङ्घनीयाः अमी रथ्याः मृगजवाक्षमया इव धावन्ति।

**मुक्तेषु इति**—रश्मिषु=प्रग्रहेषु मुक्तेषु=शिथिलीकृतेषु सत्सु निरायतपूर्वकायाः नितरामायतो विस्तृतं निरायतः पूर्वमग्रकायस्येति पूर्वकायः निरायतः रथाकर्षणवेगात् पूर्वकायो येषां ते निरायतपूर्वकायाः=विस्तारितस्कन्धमुखपादप्रदेशाः। निष्कम्पचामरशिखाः चामराः=कर्णयोः भूषणार्थं दत्तानां चमरीपुच्छानां शिखाः=अग्राणि इति चामरशिखाः

---

के उलटने और घोड़ों को गिरने से बचाना है। इस प्रकार घोड़ों की चाल मन्द करने से मृग और रथ का अन्तर अधिक हो गया है। ऊँची-नीची जमीन मृग के लिए उतनी बाधक नहीं जितनी रथ के लिए होती है।

**राजा**—तो अब घोड़ों की लगाम ढीली कर दो और रथ को तेज कर दो। ताकि मृग को मार सकूँ।

**सारथि**—जो महाराज की आज्ञा **( रथ के वेग को बढ़ाने का अभिनय करके )** महाराज! देखिए-देखिए—

लगाम ढीली करते ही रथ के घोड़े अपने शरीर के अग्रभाग को लम्बा करके और अपनी ग्रीवा के वालों को तभी कानों को निष्कम्प भाव से खड़ा करके, मानो दौड़ते हुए हरिण के वेग को नहीं सह सकने के कारण ही इतने वेग से भाग रहे हैं कि इनके पैरों से उड़ी हुई धूलि भी इन घोड़ों को नहीं पा सक रही है॥ ८॥

**विशेष**—घोड़े जब वेग से दौड़ते हैं तब अपने कानों को उठा लेते हैं और अपनी देह को आगे की ओर बढ़ा देते हैं जिससे उनके कन्धे के बाल भी खड़े हो जाते हैं। रंगमंच पर घोड़ों के

---

पाठ०—१. स्वेषामपि प्रसरतां रजसामलङ्घ्या निष्कम्पचामरशिखाश्च्युतकर्णभङ्गाः।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घ्यनीया धावन्ति वर्त्मनि तरन्ति नु वाजिनस्ते॥

**राजा**—(सहर्षम्) [1]सत्यमतीत्य हरितो हरींश्च वर्तन्ते वाजिनः। तथा हि—

(V)

**यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां**
**यदर्द्धा[2] विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।**
**प्रकृत्या यद् वक्रं तदपि समरेखं नयनयो**
**र्न मे दूरे किञ्चित्क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्॥ ९॥**

---

निष्कम्पाः = निश्चलाः चामरशिखा येषां ते निष्कम्पचामरशिखाः = निश्चलस्कन्धप्रदेशस्थकेशराग्रभागाः। निभृतोर्ध्वकर्णाः–निभृतौ = शान्तौ ऊर्ध्वौ = ऊर्ध्वगतौ कर्णौ = श्रवणे येषां ते निभृतोर्ध्वकर्णाः। आत्मोद्धतैः–आत्मना=स्वेन उद्धतैः=उत्थापितैः अपि रजोभिः=खुराग्रधूलिभिः, अलङ्घनीयाः = लङ्घयितुमशक्याः अमी = एते ते रथ्याः—रथं वहन्तीति रथ्याः = वाजिनः मृगजवाक्षमया—मृगस्य=हरिणस्य जवे=वेगे अक्षमया = असहनशीलतया धावमानहरिणवेगासहिष्णुतया इव = यथा धावन्ति = सत्वरं गच्छन्ति। इति पश्य गद्येन सह। किमिमेऽश्वा भूमौ चलन्ति, किं वा जलाशयसदृशे आकाशे प्लवन्ते इति वेगातिशयान्निर्णेतुं न शक्यते इत्यर्थाभिप्रायः। अत्र अद्भुतो रसः, स्वभावोक्तिः, उत्प्रेक्षा चालङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तश्चावगन्तव्यम्॥ ८॥

**राजा**—नृपो दुष्यन्तः कथयति सहर्षम् = प्रसन्नतां प्रकटयित्वा, सत्य = तथ्यम्, वाजिनः = मदीया अश्वाः अतीत्य = अतिक्रम्य, (उत्प्लुत्य), हरितः = सूर्यस्य अश्वान्, हरीन् = इन्द्रस्याश्वान् च वर्तन्ते सन्ति, तथाहि तत्र प्रमाणं वक्ष्यते—

**अन्वयः**—रथजवात् यत् आलोके सूक्ष्मं (दृश्यते) तत् सहसा विपुलतां व्रजति। यत् अर्द्धे विच्छिन्नं (भवति) तत् कृतसन्धानमिव भवति। यत् प्रकृत्या वक्रं (भवति) तत् अपि नयनयोः समरेखं भवति। क्षणमपि न किञ्चित् (वस्तु) मे दूरे, न (च) पार्श्वे (अस्ति)।

**यदालोके इति।** रथजवात् = स्यन्दनवेगात् यत्=किमपि वस्तु वृक्ष-गिरि-शृङ्गादिकम् आलोके = दर्शनसमये सूक्ष्मं = तनुतरम् दृश्यते तत् सहसा = द्रागेव विपुलतां = स्थूलतां व्रजति = प्राप्नोति। दूरेण यत् सूक्ष्मं वस्तु दृश्यते तदेव रथवेगात् तत्क्षणं समीपमागतं सत्

---

साथ रथ को दौड़ाना संभव न होने से लगाम ढीली कर अभिनयमात्र किया जाता है। पश्य-पश्य की आवृत्ति से कौतुक बताया जाता है। इस स्वभावोक्ति में अच्छे नस्ल के घोड़े बागडोर हिलाने पर किस तरह दौड़ते हैं यह दिखाया गया है। यहाँ घोड़ों ने हरिण को पराजित करने के निमित्त सारा जोर लगा दिया है, जिससे उनकी टापों से उड़ी धूलि पीछे रह गई और घोड़े आगे बढ़ गये।

**राजा—(प्रसन्नता से)** निश्चय ही इन घोड़ों का वेग मृग के वेग से बढ़ा हुआ है क्योंकि—

वृक्ष आदि जो वस्तु पहले छोटी दिखाई देती है, वही एकाएक बड़ी हो जाती है। जो वृक्ष-पंक्ति आदि वस्तु बीच में खण्डित है, वह भी रथ के वेग से मिली हुई सी दिखाई देती है और जो स्वभाव से टेढ़ी-मेढ़ी है, वह वस्तु भी आँखों को सीधी दिखाई पड़ती है। अधिक क्या कहूँ इस रथ के वेग के कारण कोई वस्तु मेरे से दूर नहीं तथा न कोई वस्तु मेरे पास ही ठहरती है। अर्थात् रथ के वेग के कारण जो वस्तु पास में है, वही क्षण भर में दूर चली जाती है॥ ९॥

**विशेष**—इस पद्य के द्वारा विलकुल स्वाभाविक वर्णन किया गया है, क्योंकि रथ के वेग से

---

पाठा०—१. (क) नूनमतीत्य हरिणं हरयो वर्तन्ते। (ख) कथमतीत्य। २. यदर्द्धे।

सूत ! पश्यैनं व्यापाद्यमानम्[1] ( [2]शरसन्धानं नाटयति ) ।

( नेपथ्ये ) भो भो राजन् आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः ।

**सूतः**—( आकर्ण्यावलोक्य च ) आयुष्मन् ! अस्य खलु ते [3]बाणपथवर्त्तिनः कृष्णसारस्यान्तरे [4]तपस्विन उपस्थिताः ।

---

स्थूलं लक्ष्यते इति भावः । यद् वस्तु नदीस्रोतःप्रभृति अर्द्धे = अर्द्धभागे विच्छिन्नं = त्रुटितं तत् सहसा कृतसन्धानमिव—कृतं सन्धानं = योजना यस्य तदिव भवति । यत् पूर्वं छिन्नं तत्तस्मिन्नेव क्षणे इति एकमिव दृश्यते इत्यर्थः । यत् वस्तु गिरितट-नदीकूलादि प्रकृत्या = स्वभावतः वक्रं = कुटिलं तदपि नयनयोः = नेत्रयोः सम्बन्धे समरेखं-समा = ऋज्वी रेखा यस्य तत् समरेखं = सरलं भवति क्षणमपि किञ्चिद्वस्तु न दूरे तिष्ठति नापि पार्श्वे = समीपे, तिष्ठति । अर्थात् रथवेगातिशयवशात् यद् वस्तु दूरतः सूक्ष्मं दृष्टं तदेव समीपमागतं स्थूलं दृश्यते । यत् मध्ये व्यवहितं तदेव कृतसन्धानं दृश्यते । एवं स्वभावतो वक्रं तदपि दूरतः समरेखं दृश्यते । तस्मात् किमपि वस्तु मम न दूरे, नापि समीपे क्षणमप्यवतिष्ठते, यदिदानीं दूरे तदेव क्षणान्तरेण समीपे, यच्चेदानीं समीपे तदेव निमेषमात्रेण दूरे भवतीत्यर्थः । अत्र काव्यलिङ्गपर्यायोक्त-विरोधाभासोत्प्रेक्षास्वभावोक्तयोऽलङ्काराः, शिखरणी नाम वृत्तं च ॥ ९ ॥

**सूत इति** । सूत !=सारथे ! एवं पलायमानं मृगं व्यापाद्यमानं=मया हन्यमानं, पश्य= वीक्षस्व, इत्युक्त्वा ( शरसन्धानं = बाणसन्धानं निरूपयति = नाटयति नृपः ) । नेपथ्ये = जवनिकान्तरे भो भो राजन् ! = हे हे नृप ! अयम् = एषः आश्रममृगः = कण्वर्षिणा पालितः तपोवनहरिणः अतस्त्वया न हन्तव्यः, न हन्तव्यः = न मारणयोग्यः, न मारणयोग्यः । अत्र द्विरुक्तिरावेगेन । अन्तरायसन्धिश्च, प्रकृतार्थसूचनात् । तदुक्तं मातृगुप्ताचार्यैः-

स्वप्नो दूतश्च लेखश्च नेपथ्योक्तिस्तथैव च । आकाशवचनं चेति ज्ञेया ह्यन्तरसन्धयः॥

**सूतः**—( आकर्ण्य अवलोक्य च = श्रुत्वा दृष्ट्वा च ) कथयति यद् आयुष्मन् !

---

जो वस्तु दूर से सूक्ष्म दिखाई देती है, वही पास से स्थूल के रूप में दीखती है तथा जो वस्तु वस्तुतः स्थूल है वही रथ के दूर चले जाने पर सूक्ष्म दीखती है। जो पास में पृथक्-पृथक् हैं, वही दूर से सटी दीखती है । जो वास्तविक टेढ़ी है वह दूर से सीधी दीखती है। इसी प्रकार जो वस्तु दूर है वह क्षण भर में समीप आ जाती हैं तथा जो पास है वह दूर चली जाती है।

सूत ! इस मृग को मेरे द्वारा मारा जाता हुआ देखो, **( धनुष पर बाण चढ़ाकर निशाना साधने का अभिनय करते हैं )** ।

**( नेपथ्य में )** अरे राजन् ! यह आश्रम का मृग है। अतः यह अवध्य है। आपके मारने योग्य नहीं है । आप इसे न मारें, न मारें ।

**विशेष**—राजा दुष्यन्त के शरसन्धानकर ज्योंही मृग को मारना चाहा कि नेपथ्य से आवाज आई कि राजन् ! आश्रम के मृग अवध्य होते हैं, अतः इसे न मारें । ऋषियों के द्वारा दुष्यन्त के लिए राजन् ! यह सम्बोधन भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार है, क्योंकि वहाँ निर्देश है— 'राजन्नित्यृषिभिर्वाच्यः' ।

**सारथि—( सुनकर और सामने देखकर )** महाराज ! आपके बाण मारने के मध्य में

---

पाठा०--१. व्यापाद्यम् । २. राजा शरसन्धानं नाटयति, इति शरसन्धानं नाटयति । ३. बाणपातपथवर्तिनः । ४. अन्तरायौ द्वौ तपस्विनौ संवृत्तौ ।

राजा—( ससंभ्रमम् । ) तेन हि प्रगृह्यन्तां वाजिनः[1] ।

सूतः—[2]तथा ( इति रथं स्थापयति ) ।

( ततः सशिष्यः प्रविशत्यात्मना तृतीयो वैखानसः )

वैखानसः—( हस्तमुद्यम्य ) राजन् ! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः ।

---

महाराज ! अस्य = एतस्य मृगस्य खलु = निश्चयेन ते = तव बाणपातवर्तिनः—पतन्त्यस्मिन्निति पातः = पतनोचितो देशः बाणस्य यः पातः तत्र वर्तते तच्छीलो बाणपातवर्ती तस्य बाणपातवर्तिनः यद्वा बाणपातपथवर्तिन इति पाठे तु बाणस्य यः पातः तस्य यः पन्थाः तस्मिन् वर्तते तच्छीलः बाणपातपथवर्ती तस्य बाणपातपथवर्तिनः = अतिनिकटवर्तिनः कृष्णसारस्य = कृष्णमृगस्यास्य अन्तरे = मृगस्य रथस्य च मध्ये तपस्विनः=तापसा उपस्थिताः = प्राप्ताः ।

विप्राग्न्योर्विप्रयोरग्न्योर्दम्पत्योरिषुलक्षयोः ।
नान्तरागमनं कुर्यान्न देवबलिपीठयोः ॥

इति निषेधे विद्यमानेऽपि यत्तपस्विनामिषुलक्षयोर्मध्ये समागमनं तन्मृगरक्षार्थमेव प्रतिभातीति ब्रह्महत्याभयात् सहसा शरमोक्षणं माकार्षीरिति भावः ।

राजा—राजा = दुष्यन्तः ( ससंभ्रमं = संभ्रमेण सहितं यथा स्यात्तथा = सत्वरम् ) सूतम् आदिशति यत् तेन = तस्मात् = कारणात् वाजिनः=अश्वाः प्रगृह्यन्तां = नियम्यन्तां, स्थिरीक्रियन्तां त्वया रथः स्थापनीय इत्यर्थः ।

सूतः—यथा आयुष्मान् भवान् आज्ञापयति = आदिशति तथैव स्यात् इति उक्त्वा = कथयित्वा तथा करोति = रथमवस्थापयति ।

( ततः = तदनन्तरं सशिष्यः-शिष्याभ्यां सहितः सशिष्यः आत्मना तृतीयः प्रविशति= रङ्गमञ्चे आविर्भवति वैखानसः—तापसविशेषः । ) तथाहि वैजयन्ती—'वैखानसो वनेवासी वानप्रस्थश्च तापसः ।' वैखानसस्यापि संस्कृतमेव पाठ्यम् । तदुक्तम्—

परिव्राण् मुनिशाक्येषु तापसश्रोत्रियेषु च ।
द्विजा ये चैव लिङ्गस्थाः संस्कृतं तेषु योजयेत् ॥

समिदाहरणाय प्रस्थितो वैखानसो मध्येमार्गं जिघांसया मृगमनुसरन्तं राजानमवलोक्य निषिद्धाचरणान्निवारयितुं हस्तं = करम् उद्यम्य = उत्थाप्य, ऊर्ध्वबाहुः सन् तमुवाच—

---

विघ्नरूप में तपस्वी आकर खड़े हो गये हैं । ( इन पर प्रहार करने से ब्रह्महत्या का दोष लगेगा अतः बाण न छोड़िए ) ।

**राजा—( घबराहट के साथ )** घोड़ों की लगाम कड़ी करो और रथ को रोक लो ।

**सारथी—**महाराज की जैसी आज्ञा **( घोड़ों की लगाम खींचकर रथ को रोकता है । )**

**( उसके बाद शिष्यों के सहित वैखानस=तपस्वी का प्रवेश )**

**तपस्वी—( हाथ उठाकर )** अरे राजन् ! यह आश्रम का मृग है, वन का नहीं । अतः यह अवध्य है, इसे आप मत मारिये ।

---

पाठा०—१. इषवः ।

२. यथा शरणमत्यायुष्मान् ( इति तथा करोति ), इति रथं स्थापयति ।

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः ।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाताः वज्रसाराः शरास्ते ॥ १० ॥

तत्साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम् ।
आर्त्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि ॥ ११ ॥

---

राजन् ! = नृप ! आश्रममृगोऽयं = एष हरिण आश्रमवासिमुनिजनपालितोऽस्ति, न वन्यो मृगोऽस्ति । तस्मादयं न हन्तव्यः = न मारणयोग्यः इति भावः ।

**अन्वयः**—मृदुनि अस्मिन् मृगशरीरे अयं बाणः पुष्पराशौ अग्निः इव न खलु न खलु सन्निपात्यः, बत क्व च अतिलोलं हरिणकानां जीवितं क्व च निशितनिपाताः वज्रसाराः ते शराः ।

**न खल्विति** । मृदुनि = कोमले अस्मिन् = पुरोदृश्यमाने मृगशरीरे = हरिणवपुषि अयं बाणः = एष तव शरः तूलराशौ = कार्पासपुञ्जे, किं वा पुष्पराशौ = कुसुमसमूहे अग्निः = वह्निः इव = यथा न खलु न खलु = नैव किल सन्निपात्यः = प्रहरणीयः, पातनीयः भवता, बत = हन्त क्व च = कुत्र च अतिलोलम् = अतिचञ्चलम् अनुकम्पिता हरिणा एव हरिणकाः तेषां हरिणकानां = अनुकम्पितानां मृगाणां जीवितं = जीवनम्, क्व = कुत्र च निशितनिपाताः—निशितः तीक्ष्णः निपातः प्रहारो येषां ते = तीक्ष्णप्रहाराः वज्रसाराः = वज्रस्य = कुलिशस्य सारः = काठिन्यमिव सारो येषां ते = वज्रकठोराः ते = तव शराः = बाणाश्चेत्युभयोर्महद्वैषम्यम् । उपमामूलको विषमोऽत्रालङ्कारः, मालिनी च वृत्तम् ॥१०॥

**अन्वयः**—तत् साधु कृतसन्धानं सायकं प्रतिसंहर वः शस्त्रम् आर्तत्राणाय अनागसि प्रहर्तुं न ।

**तत्साधु इति** । तत् = तस्मात् अनौचित्यात् साधु = सुष्ठु कृतं = विहितं सन्धानं = धनुषि

---

आप हरिण के कोमल शरीर पर वह बाण फूल को ढेर पर या रूई को पुञ्ज पर आग के समान मत छोड़िए, मत छोड़िए, क्योंकि कहाँ इन बेचारे हरिणों के अत्यन्त कोमल शरीर एवं प्राण और कहाँ वज्र के समान कठोर एवं तीक्ष्ण ये आपके बाण । अर्थात् आपके बाणों का लक्ष्य तो सिंह, व्याघ्र आदि होने चाहिए न कि कोमल प्राण ये मृग । अतः कृपया आप इसे मत मारिए ॥ १० ॥

**विशेष**—न के साथ खलु लगने पर निषेधार्थ निवेदन होता है । न खलु का दो बार प्रयोग आवेग व्यक्त करता है । इस पद्य में पुष्पराशि से आश्रम मृग को और अग्नि से बाण की तुलना की गई है । इसका तात्पर्य यह है जिस प्रकार कोमल फूल की ढेर पर आग छोड़ना अनुचित है उसी प्रकार आश्रममृग पर बाण प्रहार सर्वथा अनुचित है । मृग कोमल पशु है, जो साधारण प्रहार से मर सकता है । इसलिए इसके जीवन को चञ्चल बताया गया है । वज्रसार कहने का आशय है जैसे कुलिशधारी इन्द्र का साधारण पशु मारना अनुचित है वैसे ही राजा को कमजोर जानवर मृग को मारना उचित नहीं ।

इसलिए आप अनुसन्ध किये हुए अपने बाण को धनुष से उतार लें, क्योंकि आपका यह शस्त्र पीड़ित प्राणियों की रक्षा के लिए ही है, निरपराध जीवों को मारने के लिए नहीं ॥ ११ ॥

राजा—एष प्रतिसंहृतः ( इति यथोक्तं करोति )।

वैखानसः—( सहर्षम् ) सदृशमेतत् पुरुवंशप्रदीपस्य भवतः।

जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव।
पुत्रमेवं गुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि ॥ १२ ॥

---

स्थापनं यस्य तद् साधुकृतसन्धानम्, सायकं = बाणं आशु = त्वरितं प्रतिसंहर = तूणीरं प्रत्यानय वः = युष्माक क्षत्रियाणां शस्त्रम् = आयुधम् आर्तानां = पीडितानां त्राणाय = रक्षणाय विपन्नप्रतिपालनाय अस्ति, अनागसि=निरपराधे प्रहर्तुं = प्रहारकरणाय न=नहि ( अस्ति ) अतो निरपराधं मृगं मा प्रहर, मुञ्चैनमिति भावः। अत्र छेक-श्रुत्यनुप्रासौ अलङ्कारौ, अनुष्टुप् च छन्दः ॥ ११ ॥

राजा—सप्रणामं = सादरं प्रणामं कृत्वा नृपः कथयति—एषः = अयं बाणः प्रतिसंहृतः = धनुषोऽवतारितः। इति = एवं कथयित्वा यथोक्तं करोति = स्ववचनानुसारं शरं निषङ्गे निक्षिपति।

वैखानसः—वैखानसः = तापसः पुरुवंशप्रदीपस्य = पुरोः ययातिपुत्रस्य यो वंशः तस्य यः प्रदीपः = प्रदीपवदुद्भासकः तस्य = पुरुवंशभूषणस्य भवतः = आयुष्मतः एतद् = ब्राह्मणानुवर्तित्वं तापसवचनपालनं सदृशं योग्यम्। पौरवा हि राजानः सदैव ब्राह्मणानामनुकूला आज्ञाकराश्च। अथ राज्ञः उचितकारित्वेन तत्प्रशंसापुरःसरमभिलषितं वस्तु आशास्ते।

अन्वयः—यस्य पुरोः वंशे जन्म ( तस्य ) तव इदं युक्तरूपम्। एवं गुणोपेतं चक्रवर्तिनं पुत्रमवाप्नुहि।

जन्मेति। यस्य = भवतो दुष्यन्तस्य पुरोः = ययातिपुत्रस्य पितृभक्तशिरोमणेः राजर्षेः वंशे = अन्वये, कुले जन्म = उत्पत्तिरस्ति तस्य तव = भवतः कृते इदम् = एतद् तापसा-

---

विशेष—इस पद्य में सन्धान और प्रतिसंहार शब्दों का क्रमशः पारिभाषिक अर्थ है—धनुष पर बाण को चढ़ाना और उतारना। यहाँ तापस ने राजा को उपदेश दिया है कि आपका आयुध आर्तों की रक्षा करने के लिए है, न कि निरपराध पशुओं पर प्रहार करने के लिए। अतः बाण चढ़ा लेने पर उसे उतारना प्रतिष्ठा का प्रश्न न मानिए, निरपराधी जीवों पर दया करना आप जैसे कुलीन राजाओं का परमधर्म हैं। यहाँ अस्त्र उठाने का उद्देश्य अति सुन्दरता से बताया गया है कि अस्त्र उठाने का उद्देश्य पीड़ित प्राणियों की रक्षा करना है, न कि उन्हें मारना। इसीलिए कवि ने दुष्यन्त के लिए वः ( युष्माकम् ) का प्रयोग किया है।

राजा—मैंने अपना बाण वापस कर लिया ( बाण को धनुष पर से उतारते हैं। )

तपस्वी—( प्रसन्नतापूर्वक ) पुरवंश के प्रदीप स्वरूप आपके लिए यह आश्रम की मर्यादा का रक्षण करना आपके कुल की मर्यादा के अनुरूप ही है।

जिसका जन्म पितृभक्त शिरोमणि राजर्षि पुरु के वंश में हुआ है, ऐसे आपके लिए इस आश्रम को अभयदान देना तथा तपस्वियों की आज्ञा को मानना सर्वथा उचित ही है। इसलिये हे राजन्! आपको आपके ही सदृश सर्वगुणसम्पन्न चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त हो ॥ १२ ॥

विशेष—इस पद्य में पुरोर्वंशे के स्थान पर षष्ठी तत्पुरुष समास करके पुरुवंश का प्रयोग भी

**इतरौ**—( [1]बाहू उद्यम्य ) सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रम् आप्नुहि ।

**राजा**—( सप्रणामम् ) प्रतिगृहीतम् ।

**वैखानसः**—राजन् ! समिदाहरणाय [2]प्रस्थिता वयम् । [3]एषः खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते । न चेदन्यकार्यातिपातः प्रविश्य प्रतिगृह्यतामातिथेयः सत्कारः । अपि च—

---

नुरोधपालनरूपं कार्यं युक्तरूपं = उचितमेव, एवं गुणोपेतं = एवंविधैः गुणैः उपेतमेवं गुणोपेतम् = ईदृशगुणयुक्तं स्वानुरूपं सकलगुणगणोपेतं चक्रवर्तिनं चक्रे = राजसमूहे वर्तयितुं चालयितुं प्रशासितुं वा शीलमस्येति चक्रवर्ती, यद्वा चक्रं = सैन्यं वर्तयितुं सर्वभूमौ चालयितुं शीलमस्येति चक्रवर्ती, अथवा चक्रे = भूमण्डले वर्तते = विद्योतते इति चक्रवर्ती तं चक्रवर्तिनं = सार्वभौमं पुत्रं=पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रस्तं पुत्रं=तनयम् आप्नुहि = अस्मद्वचनमहिम्ना लभस्वेत्याशीः । अत्र काव्यलिङ्गालङ्कारोऽनुष्टुप्छन्दश्च ॥ १२ ॥

**इतराविति**—इतरौ = अन्यौ वैखानसेन सहागतौ शिष्यौ बाहू = हस्तौ उद्यम्य= सर्वथा = नूनं चक्रवर्तिनं = सार्वभौमं पुत्रं = तनयम् आप्नुहि = लभस्व ।

**राजा**—प्रणामेन = नत्या सह सप्रणामं = प्रणामपूर्वकम् कथयति—प्रतिगृहीतम् = अङ्गीकृतम्, भवतामाशीर्वचनं शिरोधार्यमस्ति ।

**वैखानसः**—वैखानसः = तपोधनः कथयति—राजन् ! = हे भूपते ! वयं = तापसाः

---

किया जा सकता था । इसका आशय यह है कि तत्पुरुष समास में उत्तरपद की प्रधानता होती है, किन्तु यहाँ कवि का तात्पर्य उत्तर पद वंश की प्रधानता में नहीं है, यह तो यहाँ पूर्वपद पुरु की विशेषता बताना चाहता है, क्योंकि समास न करने से पूर्व पद स्वतन्त्र होकर अपने गौरव को व्यक्त कर रहा है । पुरु की धार्मिकता और पितृभक्ति का प्रदर्शन कवि को यहाँ अभिप्रेत है। पुरु की पितृ भक्ति की कथा पुराणों से जाननी चाहिए । इन्होंने पिता राजा ययाति की आज्ञा में श्रद्धा रखकर उन्हें अपना यौवन दे दिया और उनको बुढ़ाई ले ली थी ।

यहाँ तपस्वियों के अनुरोध की रक्षा कर गुरुभक्ति का परिचय देने से पुरुवंश की परम्परा स्मरण हो आया है । चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति के आशीर्वाद से प्रतीति होता है कि अभी तक उन्हें कोई सन्तान न थी । तपस्वियों ने उन्हें पुत्र लाभ का आशीर्वाद देकर आगे की परम्परा चलाने में पूर्ण सहयोग किया । पिता के लिए पुत्र की प्राप्ति का आशीर्वाद सर्वोत्तम माना जाता है । इन तपस्वियों के आशीर्वाद स्वरूप दुष्यन्त को सवदमन भरत जैसा सर्वगुणसम्पन्न पुत्र प्राप्त हुआ ।

विशिष्ट राजाओं के लिए चक्रवर्ती शब्द पारिभाषिक है, जिसका अर्थ होता है भूमण्डल का सञ्चालक राजा या राज्यमण्डल का शासक शास्त्रों में चक्रवर्ती सम्राट् राजाओं का लक्षण इस प्रकार किया गया है—

> सर्वेभ्यः क्षितिपालेभ्यो नित्यं गृह्णाति वै करम् ।
> स सम्राडिति विज्ञेयश्चक्रवर्ती स एव हि ॥ १२ ॥

**दोनों**—राजन् ! आप अवश्य पुत्र प्राप्त करें ।

**राजा**—( **प्रणाम करते हुए** ) आपलोगों का आशीर्वाद शिरोधार्य है ।

**तपस्वी**—हे राजन् ! हमलोग तो हवन के उपकरण लकड़ी कुश आदि लाने के निमित्त

---

पाठा०—१. हस्तमुद्यम्य । २. प्रस्थितावावाम् । ३. एष चास्मद्गुरोः साधिदैवतं इव ( एष ) शकुन्तलया ।

[१]रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः [२]समवलोक्य ।
ज्ञास्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति ॥ १३ ॥

समिदाहरणाय = समिधामाहरणं तस्मै समिदाहरणाय = यज्ञोपकरणेन्धनकुशादिसंग्रहाय प्रस्थिताः = प्रचलिताः । एषः = समीपवर्ती पुरोदृश्यमानः खलु = निश्चयेन कण्वस्य = कण्वनाम्नः कुलपतेः = दशसहस्रच्छात्राध्यापकस्य मुनिकुलेश्वरस्य मालिन्या = मालिनी-नामिकाया नद्याः = तीरे तटे इति अनुमालिनीतीरम् आश्रमः = मुनिनिवासस्थलं दृश्यते= अवलोक्यते । न चेत् = यदि न अन्यकार्यातिपातः—अन्यस्य = अपरस्य कार्यस्य=कृत्यस्य अतिपातः = व्याघातः इति अन्यकार्यातिपातः=न इतरकार्यविलम्बः तर्हि प्रविश्य = आश्र-मान्तः गत्वा आतिथेयः—अतिथौ साधुः आतिथेयः सत्कारः = अतिथिपूजा, प्रतिगृह्यतां= स्वीक्रियताम् । अथ आश्रमं प्राप्य आतिथ्यपरिग्रहे न केवलं तापसप्रीत्या श्रेयः प्रत्युत अन्यथापि ते तत्र गमनमुपकरिष्यतीत्याह—अपि च = अन्यच्च ।

अन्वयः—रम्याः प्रतिहतविघ्नाः ( च ) तपोधनानां क्रियाः समवलोक्य ( त्वं ) ज्ञास्यसि मौर्वी किणाङ्कः मे भुजः कियत् रक्षति इति ज्ञास्यसि ।

रम्या इति । रम्याः = रमणीयाः प्रतिहतविघ्नाः–प्रतिहताः = निरस्ताः विघ्नाः = प्रत्यवायाः यासां तादृश्यः प्रतिहतविघ्नाः = निरस्तान्तरायाः तपोधनानां = तपः = तपस्या

वन में जा रहे हैं । देखिए, यह सामने ही हमारे गुरुवर कुलपति महर्षि कण्व का मालिनी नदी के तीर पर आश्रम दीख रहा है । यदि आपके किसी आवश्यक कार्य की हानि न हो तो, आप इस आश्रम में पधार कर अतिथि सत्कार ग्रहण करें । और भी--

तप ही जिनका धन है ऐसे तपस्वियों की रमणीय एवं निर्विघ्न क्रिया को देखकर आप स्वयं जान जायेंगे कि मेरी धनुष की डोरी के चिह्न से अङ्कित भुजा कितनी और कहां तक रक्षा करती है ॥ १३ ॥

**विशेष**—यहाँ तपस्वियों ने राजा दुष्यन्त के अनुकूल आचरण से प्रभावित होकर अपने कुलपति महर्षि कण्व के आश्रम पर अतिथि सत्कार स्वीकार का अनुरोध किया । कुलपति शब्द पारिभाषिक है । यहाँ इसका मुनिवंश के स्वामी से तात्पर्य है । जो विद्वान् १००० एक हजार मुनियों को अन्न-पान से पालन करता हुआ पढ़ाता है, उसे कुलपति कहते हैं—

मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नपानादिपोषणात् ।
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः ॥

पद्मपुराण में तो कुलपति को दश हजार शिष्यों का आचार्य, मुनिप्रमुख और प्रचुरव्रत, यज्ञ आदि कर्म करने वाला कहा गया है—

आचार्यो बहुशिष्याणां मुनीनामग्रणीस्तु यः ।
व्रतयज्ञादिकर्माढ्यः स वै कुलपतिः स्मृतः ॥

मनुस्मृति में मनुजी ने एक रात रहने वाले व्यक्ति को अस्थायी निवास के कारण अतिथि कहा है—

एकरात्रं तु निवसन्नितिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ।
अनित्यो हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ३।१०२

पाठा०—१. धर्म्याः । २. समभिवीक्ष्य ।

**राजा**—अपि [1]संनिहितोऽत्र कुलपतिः।

**वैखानसः**—इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय[2] नियुज्य[3] दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः।

**राजा**—भवतु। [4]तामेव द्रक्ष्यामि। सा खलु विदितभक्तिं मां महर्षेः कथयिष्यति।

---

धनं = वित्तं येषां तेषां तपोधनानां = तपस्विनां क्रियाः = यज्ञादि क्रियाः कृत्यानि समवलोक्य = दृष्ट्वा त्वं = भवान् ज्ञास्यसि = अवगमिष्यसि, मौर्वीकिणाङ्कः—मौर्व्याः = धनुर्गुणस्य किणः = चिह्नम् अङ्कः = भूषणम् यस्य स मौर्वीकिणाङ्कः ज्याघातव्रणभूषितः मे = मम भुजः = बाहुः कियत् = किं परिमाणं रक्षति = अवति इति = एतत् ज्ञास्यसि = अनुभविष्यसि। अत्र प्रस्तुताङ्कुरः, पर्यायोक्तम्, काव्यलिङ्गं विरोधाभासश्चालङ्काराः आर्या च वृत्तम्॥ १३॥

**राजा**—अथ तेषामनुरोधेन आश्रमगमनं विचिन्वन् कुलपतिदर्शनौत्सुक्येन तत्सान्निध्यं पृच्छन्नाह—अपि सन्निहितोऽत्र कुलपतिः = अत्र = आश्रमे कुलपतिः महर्षिः कण्वः सन्निहितः = आत्मना उपस्थितः किमिति प्रश्नः।

**वैखानसः**—इदानीम् = अधुना, एत्र दुहितरं = धर्मकन्यां शकुन्तलां = शकुन्तलाख्याम् अतिथिसत्काराय = अविद्यमाना = आगमनस्य तिथिः = दिवसः यस्य सोऽतिथिः तस्यातिथेः = अभ्यागतस्य सत्काराय = अतिथिसत्काराय = अतिथिसत्काररूपकार्यसम्पादनाय, आदिश्य = नियुज्य अस्याः = शकुन्तलायाः प्रतिकूलं=अशुभं, विवाहादि प्रतिबन्धकं दैवम् = अदृष्टं शमयितुं = शान्त्यादिना प्रतिविधातुं सोमतीर्थं=तदाख्यं तीर्थविशेषं चन्द्रकूपं गतः = यातोऽस्ति।

**राजा**—भवतु = अस्त्वेवम्, तामेव—पूर्ववर्णितां शकुन्तलामेव द्रक्ष्यामि = प्रेक्षिष्ये

---

इसकी टीका करते हुए कुल्लूकभट्ट ने कहा है कि अस्थायी निवास के कारण जिस व्यक्ति के रहने की दूसरी तिथि न आने पावे वह अतिथि कहलाता है—

'अनित्यावस्थानान्न विद्यते द्वितीया तिथिरस्येत्यतिथिरुच्यते'।

**राजा**—क्या कुलपति महर्षि कण्व इस समय आश्रम पर विराजमान हैं?

**तपस्वी**—अभी थोड़ा समय हुआ कि कुलपति जी अपनी कन्या शकुन्तला को अतिथि सत्कार का भार देकर इस कन्या के प्रतिकूल अदृष्ट शान्ति के लिए सोमतीर्थ में गये हुए हैं।

**विशेष**—प्रतिकूल अदृष्ट का तात्पर्य है कि शकुन्तला के विवाह तथा पतिसुख में विघ्न करने वाले ग्रहों से है। सोमतीर्थ काठियावाड में प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर के पास है। इसे वाराह पुराण में प्रभासतीर्थ भी कहा गया है, जहाँ दक्ष के शाप से चन्द्रमा को क्षयरोग से मुक्ति मिली थी। इस तीर्थ की महिमा अपूर्व है। किसी के मत से कुरुक्षेत्रान्तर्गत जींदराज्य में पाण्डुपिण्डरा नाम का महान् तीर्थ सोमतीर्थ है। कोई नारनौल पटियाला ढोसी पर्वत पर स्थित चन्द्रतीर्थ को सोमतीर्थ कहता है।

**राजा**—अच्छा तो मैं फिर कुलपति की कन्या शकुन्तला का ही दर्शन करूँ। वही मुनि के प्रति मेरी भक्ति और श्रद्धा की सूचना मुनि के आनेपर उन्हें दे देगी।

---

पाठा०—१. सन्निहितस्तत्र। २. अतिथिसत्कारार्थम्। ३. आदिश्य। ४. तां द्रक्ष्यामि।

**वैखानसः**—[1]साधयामस्तावत् । ( सशिष्यो निष्क्रान्तः । )

**राजा**—सूत ! नोदयाश्वान् । पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे ।

**सूतः**—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । ( [2]भूयो रथवेगं निरूपयति । )

**सूतः**—( समन्तादवलोक्य ) सूत ! अकथितोऽपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्येति ।

**सूतः**—कथमिव ।

**राजा**—किं न पश्यति भवान् । इह हि ।

---

सा खलु = निश्चयेन विदितभक्तिः = विदिता = स्फुटा भक्तिः = श्रद्धा यया सा विदितभक्तिः यद्वा विदिता भक्तिः यस्य सः तं विदितभक्तिं मां महर्षेः = कण्वस्य कुलपतेः समक्षं कथयिष्यति = निवेदयिष्यति ।

**वैखानसः**—साधयामस्तावत् = गच्छामस्तावत् ( इति एवमुक्त्वा सशिष्यः = शिष्याभ्यां साकं निष्क्रान्तः = रङ्गान्निःसृतः रङ्गमञ्चादपगत इत्यर्थः । )

**राजा**—सूत ! अश्वान् = रथ्यान् नोदय = प्रेरय । पुण्याश्रमदर्शनेन = पुण्यश्चासावाश्रमश्चेति पुण्याश्रमः तस्य दर्शनं तेन पुण्याश्रमदर्शनेन दर्शनेन = अवलोकनेन तावत् आत्मानं = स्वं मनो वा । तथाहि—

आत्मार्कचन्द्रवातादि जीवेषु परमात्मनि ।
देहे यत्ने धृतौ कीर्तौ बुद्धौ मनसि च श्रुतः ॥

पुनीमहे = पवित्रीकुर्महे ।

**सूतः**—आयुष्मान् यद् आज्ञापयति = तत् करोमि, अश्वान् नोदयामीत्यर्थः । ( इति भूयः = पुनरपि रथस्य वेग = सत्वरगमनं निरूपयति = नाटयति, हस्तसञ्चालनादिना वेगाभिनयं करोतीत्यर्थः । )

**राजा**—समन्तात् = सर्वतश्चतुर्दिक्षु अवलोक्य = दृष्ट्वा अवलोकनेन इदं तपोवनमिति निश्चित्य कथयति—सूत ! अकथितोऽपि = अन्येनावेदितोऽपि अयं = पुरोदृश्यमानः तपोवनस्य = आश्रमस्य आभोगः–आभुज्यते इत्याभोगः = परिसरप्रदेशः ज्ञायते = अवगम्यते ।

**सूतः**—सारथिः कथयति यत् कथमिव = केन प्रकारेण ज्ञायते यदयमाश्रमप्रदेशः ।

**राजा**—नृपः कथयति यत् किन्न पश्यसि भवान् = त्वम् इह = अत्र स्थाने हि = निश्चयेन ।

---

**तपस्वी**—अच्छा तो हमलोग जाते हैं ( **रंगमंच से शिष्य के साथ चला जाता है ।** )

**राजा**—सारथे ! घोड़ों को हाँकों, चलो, इस आश्रम में चलकर पुण्यतम आश्रम आदि के दर्शन से अपने को पवित्र करें ।

**सारथि**—महाराज की जो आज्ञा ( **रथ को तेजी से हाँकने का अभिनय करता है ।** )

**राजा**—( **चारों ओर देखकर** ) सारथे ! विना कहे हुए भी स्पष्ट ही मालूम पड़ता है कि यह आश्रम की समीपवर्ती प्रदेश है ।

**सारथि**—कैसे ?

**राजा**—क्या आप नहीं देख रहे हैं, यहाँ—

---

पाठा०—साधयावः । २. इति भूयः ।

नीवाराः [1]शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः ॥ १४ ॥

---

**अन्वयः**—( क्वचित् ) तरूणाम् अधः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टाः नीवाराः ( विद्यन्ते ) क्वचित् प्रस्निग्धाः उपला इङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्ते एव ( क्वचित् ) विश्वासोपगमात् अभिन्नगतयः मृगाः शब्दं सहन्ते ( क्वचित् ) तोयाधरपथाः च वल्कलशिखानिष्यन्द-रेखाङ्किताः ( दृश्यन्ते )।

**नीवारा इति**। इह हि क्वचित् = कस्मिंश्चिद्भूभागे तरूणां = वृक्षाणाम् अधः = तलेषु शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टाः शुकाः = कीराः गर्भे = मध्ये येषां तानि यानि कोटराणि तेषां मुखानि = अग्रभागाः तेभ्यः भ्रष्टाः = अधः पतिता इति शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टाः = यद्वा शुकानां कोटरेषु स्थिता ये अर्भका नीडस्था अजातपक्षाः शावकास्तेषां मुखेभ्यो भ्रष्टाः = कीरकुलायावस्थितशावकवदनच्युताः नीवाराः = मुनिधान्यकणाः विद्यन्ते।

क्वचित् = कुत्रापि इङ्गुदीनां = तापसतरूणां फलानि स्नेहोत्पादनार्थं भिद्यन्ते एभिरिति इङ्गुदीफलभिदः यद्वा इङ्गुदीफलानि = तापसफलानि भिन्दन्ति = छिन्दन्ति इतीङ्गुदीफल-भिदः तापसतरुफलभेदकाः अत एव प्रस्निग्धाः = प्रकर्षेण स्निग्धाः प्रस्निग्धाः चिक्कणाः इङ्गुदीतैलाक्ताः उपला = पाषाणखण्डाः सूच्यन्ते = ज्ञायन्ते एव। प्रस्निग्धत्वादिङ्गुदी-फलभेदका एते ज्ञायन्ते इत्यर्थः। तापसा उपलैरेव भित्वा इङ्गुदीफलेभ्यः तैलमाकर्षन्तीति प्रसिद्धम्, क्वचित् = कस्मिंश्चिद्भागे विश्वासोपगमात् = विश्वासस्योपगमो विश्वासोपगमः तस्माद् विश्वासोपगमात् = विश्वासलाभात् जातविश्वासाः अत एव अभिन्नगतयः—अभिन्ना गतिः येषां ते अभिन्नगतयः = निर्भयगमनाः मृगाः = हरिणाः, शब्दं = रथशब्दं, रथनेमि-ध्वनिं सहन्ते = सधैर्यं शृण्वन्ति। तमसहमानाः ततो न प्लवन्ते इति भावः।

क्वचित् प्रदेशे तोयाधारपथाः—तोयस्य = जलस्य आधाराः = अधिकरणभूताः जलाशयाः तेषां पन्थानः = मार्गाः इति तोयाधारपथाः = जलयानमार्गाः च वल्कलानां =

---

मुनियों का अन्न नीवार वृक्षों के नीचे इधर-उधर बिखरा हुआ दिखाई दे रहा है, जो घोसलों में बैठे हुए सुग्गों के बच्चों के मुख से गिरे हुए प्रतीत हो रहे हैं। यहाँ पर जगह-जगह इङ्गुदी के फल पीसने से चिकने हुए पत्थर के टुकड़े पड़े हुए हैं। यहाँ के मृग पक्षी आदि रथ की ध्वनि की आहट से भी डर कर भागते नहीं। और स्नान कर आने वाले मुनि गणों के वल्कलवस्त्रों से टपकते हुए जल की रेखाएँ जलाशयों के मार्गों पर दिखाई दे रही हैं। इससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि अब हमलोग आश्रम की सीमा में पहुँच गये हैं॥ १४ ॥

**विशेष**—मुन्यन्न नीवार, इङ्गुदीफल तैल से चिक्कन पत्थरों के टुकड़े निर्भय मृग-पक्षी तथा जलाशयों से आने-जाने के चिह्न तपोवन का सूचक हैं। नीवार धान्य मुनियों का भोज्य पदार्थ है। नीवार बिना जोते बोये होनेवाला अन्न है। आश्रमस्थ मुनि लोग इङ्गुदी के फलों को पीसकर उससे तेल निकाल कर लगाते हैं और कुश से हरिण के बच्चों की जीभ छिल जाने पर लगा देते हैं, तपोवन के आश्रमों में पशु-पक्षी निर्भय रहते हैं क्योंकि उनको किसी से हिंसा का भय नहीं। ऋषि लोग

---

पाठा०—१. शुककोटरार्भकमुख।

अपि च—

[1]कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः शाखिनो धौतमूला
भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन ।
एते चार्वागुपवनभुविच्छिन्नदर्भाङ्कुरायां
नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति ॥ १५ ॥

---

वृक्षत्वग्वस्त्राणां शिखाभ्यः = अगेभ्यः य। निष्यन्दः = जलस्रावः तस्य या रेखा पङ्क्तिः तया अङ्किताः चिह्निता इति वल्कलशिखा निष्यन्दरेखाङ्किताः = वल्कलाग्रपरिश्रुतजलाधाररेखाविभूषिताः दृश्यन्ते । वैखानसानां तापसानां च वस्त्रनिष्पीडननिषेधात् सद्यः स्नानेन त्वग्वस्त्रस्रुतवारिकणैः सैकतभूभागाः चिह्निता भवन्ति । तस्मादेभिर्लक्षणैरयमाश्रमस्यैवाभोग एवानुमीयते भावः । अत्र काव्यलिङ्गम्, अनुमानं-स्वभावोक्तिश्चालङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं च वृत्तम्, इति ॥ १४ ॥

अन्वयः—पवनचपलैः कुल्याम्भोभिः शाखिनः धौतमूलाः किसलयरुचां रागः आज्यधूमोद्गमेन भिन्नः अर्वाक् च एते नष्टशङ्काः हरिणशिशवः छिन्नदर्भाङ्कुरायां उपवनभुवि मन्दं मन्दं चरन्ति ।

कुल्याम्भोभिः इति । पवनचपलैः—पवनेन = वायुना चपलैः = वाताहतैः चञ्चलैः = कुल्याम्भोभिः = कुल्यायाः = कृत्रिमायाः खातायाः अम्भोभिः = जलैः आलवालवारिभिः = धौतानि = प्रक्षालितानि मूलानि = अधोभागा येषां ते धौतमूलाः = क्षालितमूलाः किसलयरुचां = किसलयानां=पल्लवानां रुचां=प्रभायाम् = पल्लवद्युतीनां रागः=लौहित्यं, आज्यधूमोद्गमेन = आज्यस्य = घृतस्य यो धूमः तस्य उद्गमेन = उद्भवेन = हविर्धूम-

---

हरिणों के बच्चों को बड़ा प्यार करते हैं। आश्रम के वृक्षों पर लटका कर सुखाने के लिए गीला-वल्कल वस्त्र ले जाते समय जलाशयों से पर्णकुटो तक जाने का मार्ग चिह्नित हो जाता है। तोते अपने बच्चों को चुगाने के निमित्त नीवार की बालें खेतों से लाते हैं, चुंगाते समय उनके मुख से दाने गिर जाते हैं तथा मुनियों के अतिरिक्त कोई नीवार खाता नहीं। ये सब पूर्वोक्त बातें मुनियों के आश्रम में ही संभव होने के कारण राजा दुष्यन्त ने आश्रम पर पहुँच जाने का अन्दाजा कर लिया।

और भी देखो—

वायु से चञ्चल कृत्रिम क्यारियों में जल से भरे हुए वृक्षों की जड़ें धुल गयी हैं। अग्निहोत्र के आज्यधूम से वृक्षों के कोमल पल्लवों का रंग भी धूमिल हो गये हैं और छोटे-छोटे हरिणों के बच्चे निर्भय होकर कुशाओं के उखाड़ लेने से निष्कण्टक हुए उपवन के भूभाग में घूम-फिर रहे हैं। इससे स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि यह आश्रम का हो प्रदेश है ॥ १५ ॥

**विशेष**—पूर्वश्लोक में वृक्षों के नीचे गिरे हुए नीवार, हिंगोट के तेल से सने पत्थर के टुकड़े मृगों के मन्द गमन और जलाशयों से आश्रम तक पानी को बूँदों से सिञ्चित भूमि से राजा ने आश्रमभूमि का अन्दाजा किया था, किन्तु अब इस श्लोक में वर्णित वायु से चंचल आलवालों के जल से वृक्षों की जड़ों के धुलने से, अग्निहोत्र के धुयें से पल्लवों के रंगपरिवर्तन से तथा कटे हुए कुशवाली समीपवर्ती भूमिपर मन्द गति से निर्भय चलने वाले हरिण शावकों से राजा को निश्चय हो गया कि यह आश्रम की पवित्रतम भूमि है।

---

पाठा०—१. अयं श्लोको हि क्वचिन्न वर्तते।

सूतः—सर्वमुपपन्नम् ।

राजा—(स्तोकमन्तरं गत्वा ।) [1]तपोवननिवासिनामुपरोधो मा भूत् । [2]एतावत्येव रथं स्थापय यावदवतरामि ।

सूतः—धृताः प्रग्रहाः । अवतरत्वायुष्मान् ।

राजा—(अवतीर्य[3]) सूत ! विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम । [4]इदं तावत् गृह्यताम् (सूतस्याभरणानि धनुश्चोपनीय) सूत यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्याहमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः ।

---

पटलोद्गमेन भिन्नः=परिवर्तितः अर्वाक्=समीपे च एते=इमे पुरोदृश्यमानाः नष्टा=दूरीभूता आशङ्का भयं येषां ते नष्टशङ्काः=निर्भयाः हरिणानां=मृगाणां शिशवः=शावकाः अर्भकाः छिन्नाः=लूनाः दर्भाणां=कुशानां, अङ्कुराः=अग्रभागा यस्याः सा तस्यां छिन्नदर्भाङ्कुरायां=लूनदर्भायां उपवनभुवि=उपवनस्य=उद्यानस्य भुवि=भूमौ आरामभूभागे मन्दमन्दं=शनैः शनैः चरन्ति=चलन्ति, खेलन्तीत्यर्थः । अतोऽयमाश्रमप्रदेश एवाशयः । अत्र काव्यलिङ्ग-अनुमान-समुच्चय-स्वभावोक्तिवृत्त्यनुप्रासा अलङ्काराः सन्ति वृत्तञ्च मन्दाक्रान्ताऽस्ति ॥ १५ ॥

सूतः—सारथिः कथयति यत् राजन् ! सर्वं=सकलम् उपपन्नं=युक्तमुक्तं भवता । नूनं तपोवनाभोग एवायमित्यर्थः ।

राजा—राजा=दुष्यन्तः स्तोकं=अलम् अन्तरम्=अभ्यन्तरं गत्वा=उपस्थाय, तपोवननिवासिनां=पुण्याश्रमवासिनाम्, उपरोधः=मर्यादाभङ्गः शान्तिभङ्गः मा भूत्=मा भवतु, एतावति=आश्रमावधिभूतेऽस्मिन्नेव प्रदेशे, आश्रमबहिर्भागे रथं=स्यन्दनं स्थापय=स्थिरीकुरु । अवतरामि=रथादवरोहामि अवतीर्य पद्भ्यामेव गच्छामि ।

सूतः—धृताः प्रग्रहाः=रश्मयः संचयिताः आकृष्टा रथोऽवस्थित इति भावः । आयुष्मान्=भवान् अवतरतु=रथात् नीचैः गच्छतु ।

राजा—राजा=नृपतिः दुष्यन्तः (अवतीर्य=रथात् अधः आगत्य) सूत !=सारथे ! विनीतवेषेण=विनीतश्चासौ वेषो विनीतवेषः तेन विनीतवेषेण=अनुद्धतेन वेषेण तपोवनानि=

---

**सारथि**—आपका तर्क सर्वथा युक्तिसंगत है अर्थात् यह आश्रम का ही प्रदेश है ।

**राजा—( कुछ दूर और चलकर )** सारथे ! इस आश्रम की मर्यादा भंग न हो इसलिए तुम रथ को यहीं रोक लो, जिससे मैं रथ से यहीं उतर जाऊँ। ( अब उतर कर पैदल ही चलूँगा )।

**सारथि**—महाराज ! घोड़ों की लगाम खींचकर मैंने रथ को खड़ा कर दिया है। श्रीमान् अब रथ से नीचे उतरें ।

**राजा—( रथ से उतरकर )** सारथे ! आश्रम में विनीत वेष से ही जाना चाहिए। अतः मेरे इन आभूषणों और धनुष को तुम यहीं रख लो **(आभूषण एवं धनुष सारथि को देकर)** सारथे ! जबतक मैं आश्रमवासियों के दर्शन करके आता हूँ तबतक तुम इन घोड़ों को रथ से खोलकर इनकी पीठ ठण्ढी कर लो और खरहरा कर घास-पानी देकर उन्हें ताजा कर लो ।

**विशेष**—मुनियों के आश्रम पर ठाट-बाट से जाना उचित नहीं, वहाँ तो बड़े सादगी वेश और

---

पाठा०—१. आश्रमोपरोधो मा भूदिति । २. तदिहैव । ३. अवतीर्य आत्मानं चावलोक्य । ४. तदिमानि तावद् गृह्यन्तामाभरणानि धनुश्च ( इति सूतायार्पयति ) ।

सूतः—यदाज्ञापयति देवः। ( निष्क्रान्तः )

राजा—( परिक्रम्यावलोक्य च ) इदमाश्रमद्वारम्। यावत् प्रविशामि। ( प्रविश्य निमित्तं सूचयन् )।

**शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।**
**अथवा भवितव्यतानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ॥ १६ ॥**

---

मुनीनां पवित्रा आश्रमाः प्रवेष्टव्यानि प्रवेशयोग्यानि नाम = निश्चयेन, इदम् = एतत् तावत् गृह्यन्तां = गृहीत्वा रक्ष्यन्ताम् इत्युक्त्वा सूतस्य = सूताय आभरणानि = आभूषणानि धनुः = कार्मुकं च उपनीय = उपहृत्य अर्पयति = ददाति, आदिशच्च। सूत ! = सारथे ! तावत् = यावत्पर्यन्तम्, आश्रमवासिनः—ऋषिजनान् प्रत्यवेक्ष्य = योगक्षेमपर्यालोचन-पूर्वकमवेक्षणं कृत्वा अहम् = दुष्यन्तः उपावर्ते = प्रत्यागच्छामि तावत् = तावत्पर्यन्तं वाजिनः = अश्वाः, आर्द्रपृष्ठाः—आर्द्राणि स्नानेन क्लिन्नानि पृष्ठानि पृष्ठभागाः ते आर्द्र-पृष्ठाः क्रियन्तां = विधीयन्ताम् ( अश्वानां पृष्ठप्रक्षालनं हि विशेषतः श्रमहरम् )।

सूतः—निष्क्रान्तः। सूतः सारथिः तथा एवम् इति कथयित्वा। निष्क्रान्तः = रङ्ग-मञ्चाद् बहिर्गतः।

राजा—राजा = दुष्यन्तः परिक्रम्य = रङ्गमञ्चे परितः कतिचित् पदानि गत्वा, अवलोक्य = दृष्ट्वा च इदम् = एतत् आश्रमद्वारं = आश्रमस्य = तपोवनस्य द्वारं = मुखम् इति आश्रमद्वार = आश्रमस्थानम् वर्तते यावत् = तत् प्रविशामि = अभ्यन्तरं गच्छामि प्रविश्य = आश्रमाभ्यन्तरं गत्वा निमित्तं = शकुनं सूचयन् = नाटयन्। पुरुषस्य दक्षिणाङ्ग-स्फुरणं शुभसूचकं निमित्तं दक्षिणबाहुस्पन्दनं, फलं चास्य कलत्रावाप्तिः।

**अन्वयः**—इदम् आश्रमपदं शान्तं, बाहुश्च स्फुरति, इह अस्य फल कुतः, अथवा भवितव्यतानां द्वाराणि सर्वत्र भवन्ति।

**शान्तमिदमिति।** इदं = पुरोदृश्यमानम्, आश्रमपदं = तपोवनस्थानम् शान्तं = शम-प्रधानम्, बाहुश्च = दक्षिणो बाहुः यथा विक्रमोर्वशीये—अयमास्पन्दितैः बाहुराश्वासयति दक्षिणः। स्फुरति = कान्तालाभार्थमवच्छिन्नं स्पन्दते, इह = शान्तेऽस्मिन्नाश्रमपदे अस्य

---

विनम्र भाव से जाना चाहिए। क्योंकि मनुस्मृति में मनुजी ने निरीक्षण के समय विनीतभाव और आभूषण रहित होकर आश्रमों में जाने का आदेश दिया है—

विनीतवेषाभरणः पश्येत् कार्यं कार्थिणाम्। = ८।२

इसी सिद्धान्त के अनुसार आजकल भी लोग पूजनीय व्यक्तियों के स्थानों पर टोपी जूता उतार-कर और छड़ी रखकर जाते-आते हैं।

**सारथि**—महाराज की जो आज्ञा **( निकल जाता है। )**

**राजा—( थोड़ा आगे चलकर और सामने देखकर )** यह आश्रम का प्रदेश है। अच्छा, अब मैं इसमें प्रवेश करता हूँ। **( आश्रम के द्वार में प्रवेश कर दाहिनी भुजा का फड़कना सूचित करते हुए। )**

यह आश्रम तो शान्तस्थान है, परन्तु मेरी दाहिनी भुजा फड़क रही है, भला इस तपोवन में इस शुभ शकुन का फल कैसे संभव हो सकता है? या हो भी सकता है, भावी के द्वार सर्वत्र हैं ॥ १६ ॥

**विशेष**—शकुन शास्त्र में पुरुष की दाहिनी भुजा का फड़कना शुभ तथा सुन्दरी स्त्री का लाभ बताया है—'वामेतरकरस्पन्दो वरस्त्रीलाभदायकः' इस शकुन के सम्बन्ध में राजा सोचता है

( नेपथ्ये ) इदो इदो सहीओ । [ इत इत सख्यौ । ]

**राजा**—( कर्णं दत्वा ) अये दक्षिणेन वृक्षवाटिकामालाप इव श्रूयते । यावदत्र गच्छामि । ( परिक्रम्यावलोक्य च ) अये एतास्तपस्विकन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटैर्बालपादपेभ्यः पयो दातुमित एवाभिवर्त्तन्ते ( निपुणं निरूप्य ) अहो मधुरमासां दर्शनम् ।

---

दक्षिणबाहुस्फुरणस्य फलं = कलत्रावाप्तिरूपं परिणामः कुतः = न सम्भवति । अथवा = यद्वा अलं चिन्तया भवितव्यतानां = अवश्यं भाविनामर्थानाम् द्वाराणि = उपायाः सर्वत्र = सर्वेषु स्थानेषु भवन्ति जायन्ते । बलवतो हि भवितव्यता देशकालमनवेक्ष्य प्रवर्तते इति भावः । तदुक्तं मालतीमाधवे-सर्वङ्कषा भगवती भवितव्यतैव । तथा च बलवत्या भवितव्यताया द्वाराणि सर्वथैव संभवन्ति । तस्मात् वरस्त्रीलाभरूपफलमिहापि संभवेदिति भावः, अत्रार्थान्तरन्यासः—अप्रस्तुतप्रशंसा-काव्यलिङ्गं चेत्यलङ्काराश्छन्दश्चार्या ॥ १६ ॥

नेपथ्ये = सज्जगृहे, जवनिकायाम्, इत इतः = अस्यामस्यां दिशि प्रियसख्यौ = अयि अनसूया-प्रियम्वदे अगच्छतां युवामिति शेषः ।

**राजा**—राजा = दुष्यन्तः कर्णं दत्वा = श्रोत्रं श्रवणार्थं प्रेरयित्वा अये = सभ्रमे वृक्षाणां = तरूणां वाटिका = उद्यानम् वृक्षवाटिकानां वृक्षवाटिकां दक्षिणेन = दक्षिणस्यां दिशि आलापः = परस्परभाषणं, वार्तालापशब्द इव श्रूयते = कर्णगोचरीक्रियते, यावत् = तर्हि अत्र आलापोद्गमस्थाने गच्छामि = यामि, ( परिक्रम्य = कतिचित् पदानि गत्वा अवलोक्य दृष्ट्वा च ) अये एता पुरोदृश्यमाना अल्पाः कन्याः कन्यकाः तपस्विनां कन्यकाः तपस्विकन्यकाः = तापसकुमार्यः, स्वप्रमाणानुरूपैः = स्वस्य = निजस्य प्रमाणस्य आकारस्य अनुरूपैः = उचितैः इति स्वप्रमाणानुरूपैः = स्वोद्वहनयोग्यैः, स्वशक्तियोग्यैः सेचनाय = उक्षणाय घटाः = कलशाः तैः सेचनघटैः = सेचनोपयोगिकलशैः, बालाश्च ते पादपाः बालपादपाः तेभ्यः बालपादपेभ्यः = बालतरुपोतेभ्यः, पयः = जलं दातुं = प्रदातुं अर्पयितुं इत एव = अस्यामेव दिशि अभिवर्तन्ते = अभिमुख आगच्छन्ति । निपुणं निरूप्य सावधानतया निर्वर्ण्य । अहो = आश्चर्यम् आसां = तपस्विकन्यकानां मधुरं = नेत्राह्लादकरं दर्शनम् = अवलोकनम् रूपमित्यर्थः ।

---

कि इस शान्त आश्रम में दक्षिण बाहु के फड़कने का फल सुन्दर स्त्री का लाभ सम्भव नहीं अथवा भवितव्यता बड़ी प्रबल होती है । उसके प्रभाव से सभी बातें सब जगह संभव हो सकती है ।

**( नेपथ्य में )** अरी प्रिय सखियों इधर आओ, इधर ।

**विशेष**—यहाँ शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग है, क्योंकि भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में नायिका और सखियों को शौरसेनी भाषा ही बोलने का आदेश है—'नायिकानां सखीनां च शौरसेनी प्रकीर्तिता' ।

**राजा**—**( कान देकर )** इस वाटिका की दाहिनी ओर कुछ परस्पर वार्तालाप का शब्द सुन पड़ रहा है । अच्छा, पहले यहाँ चलूँ, **( कुछ आगे जाकर और सामने देखकर )** ये तपस्वियों की कन्यायें अपने ही अनुरूप छोटे-छोटे सेचन-कलस लिए हुए पौधों में जल देने के लिए इधर ही आ रही हैं । **( अच्छी तरह देखकर )** अहो, इनका सुन्दर रूप और आकृति तो बड़ी ही मनोहारिणी है ।

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य ।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ॥ १७ ॥

यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि । ( विलोकयन् स्थितः )

( ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला )

**शकुन्तला**—इदो इदो सहीओ [ इत इतः सख्यौ । ]

---

**अन्वयः**—इदं शुद्धान्तदुर्लभं वपुः आश्रमवासिनो जनस्य यदि ( अस्ति तदा ) खलु उद्यानलता वनलताभिः दूरीकृताः ( सन्ति ) ।

**शुद्धान्तेति** । इदं = पुरो दृश्यमानम्, अस्मन्नयनामृतायमानम् शुद्धान्तदुर्लभं = शुद्धान्ते = अन्तःपुरे दुर्लभं = दुष्प्रापमिति शुद्धान्तदुर्लभं वपुः = शरीरं लावण्यं वा, यदि = चेत् आश्रमे वसति तच्छीलः आश्रमवासी तस्याश्रमवासिनः = वनवासिनोऽपि जनस्य = मुनिबालिकालोकस्य अस्ति तर्हि = तदा खलु = निश्चयेन वनलताभिः = अरण्यवल्लीभिः गुणैः = सौन्दर्यसौकुमार्यादिभिः उद्याने लताः = आरामवीरुधः दूरीकृताः = निराकृताः । अप्रस्तुतप्रशंसा-निदर्शनायां संकरोऽलङ्कारः छन्दश्चार्या ॥ १७ ॥

इत्थं तासां लावण्यदर्शनेन विस्मिते राजा स्वकर्तव्यं निश्चिनोति—**यावदिति** । यावत् = प्रथमं किञ्चित् कालं छायामाश्रित्य—सन्निहिततरुच्छायामिमामाश्रित्य एताः = इमा मुनिकुमारिकाः प्रतिपालयामि = प्रतीक्षे, एतासां प्रवृत्तीरवगम्यात्मानं प्रकाशयितुमवसरं प्रतिपालयिष्यामीत्यर्थः । इति मनस्येव विचिन्त्य विलोकयन् = पश्यन् स्थितः = तिष्ठति ।

( ततः = तदनन्तरं राजनि छायान्तरिते सति यथोक्तव्यापारा—उक्तमनतिक्रम्य यथोक्तं व्यापारो यस्याः सा यथोक्तव्यापारा = वृक्षानभिषिञ्चन्ती शकुन्तला = तन्नाम्नी बाला, महर्षेः कण्वस्य पोष्यपुत्री सखीभ्यां = आलिभ्यां सखीद्वयेन सह = साकं प्रविशति = रङ्गमञ्चप्रवेशं करोति । )

अथ शकुन्तला सख्यौ प्राह—इत इतः प्रियसख्यौ अयि प्रियसख्यौ = अनसूयाप्रियंवदे इत एव युवाभ्यामागन्तव्यम् ।

---

यदि राजमहल में भी कठिनता से मिल सकने वाला ऐसा सुन्दर स्वरूप इस तपोवनवासिनी बालिकाओं को हो सकता है तो यह कहना पड़ेगा कि जङ्गल की लताओं ने सौन्दर्य-सौकुमार्य आदि अपने गुणों से उद्यान की परिष्कृत लताओं को भी मात कर दिया है ॥ १७ ॥

**विशेष**—राजा दुष्यन्त की यह धारणा थी कि रनिवास की सुन्दरियों के समान सर्वाधिक उपभोग साधन सम्पन्न और विविध अलंकारों से अलंकृत सौंदर्य और सौकुमार्य अन्यत्र दुर्लभ हैं, किन्तु आभूषणों से हीन नैसर्गिक शोभा से सम्पन्न भोली भाली मुनिकुमारियों का अवलोकन कर उनकी धारणा फीकी पड़ गई । इसीलिए उन्होंने कहा है कि राजललनाओं के रूपलावण्य को भी तिरस्कृत करने वाला सौन्दर्य यदि वनवासी तापसकन्याओं का हो सकता है तो कहना पड़ेगा कि जङ्गली लताओं ने परिष्कृत उद्यान लताओं को मात कर दिया । यहाँ राजमहल की अङ्गनाओं का उद्यान-लता और तापस कन्यकाओं को जङ्गलीलता की उपमा दी गई है ।

अच्छा, इस वृक्ष की छाया में खड़े होकर तबतक मैं इनकी प्रतीक्षा करूँ । **( उनकी ओर देखते हुए रुक जाते हैं । )**

**( दो सखियों के साथ पौधों की जड़ को जल से सींचती हुई शकुन्तला का प्रवेश )**

**शकुन्तला**—अरी प्रियसखियों ! इधर आओ, इधर ।

**अनसूया**—हला सउन्दले तुवत्तो वि तादकस्सवस्स अस्समरुक्खआ पिअदरेत्ति तक्केमि। जं इमिणा णोमालिआकुसुमपेलवा तुमं वि एदाणं आलवालपूरणे णिउत्ता। [ **हला शकुन्तले त्वत्तोऽपि तातकाश्यपस्याश्रमवृक्षकाः प्रियतरा इति तर्कयामि यदनेन नवमालिकाकुसुमपेलवा त्वमप्येतेषामालवालपूरणे नियुक्ता।** ]

**शकुन्तला**—ण केअलं तादणिओओ एव्व। अत्थि मे सोदरसिणेहो एदेसु। [ **न केवलं तातनियोग एव अस्ति मे सोदरस्नेह एतेषु।** ] ( वृक्षसेचनं रूपयति )

**राजा**—( आत्मगतम् ) कथमिदं सा कण्वदुहिता। [1]असाधुदर्शी खलु तत्रभवान् [2]काश्यपः य इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते।

---

**अनसूया**—कथयति यत् हला शकुन्तले ! अयि सखि शकुन्तले ! त्वत्तोऽपि = त्वदपि, तातस्य = पितुः कण्वस्य आश्रमवृक्षकाः—अल्पा वृक्षा वृक्षकाः आश्रमस्य वृक्षका आश्रमवृक्षकाः = तपोवनपोतकाः प्रियतरा = अतिशयेन प्रियाः प्रियतराः = प्रेयांसः इति = एवं तर्कयामि = मन्ये यत् अनेन = अमुना पित्रा कण्वेन, नवमालिकाकुसुमपेलवा = नवमालिकायाः कुसुमं नवमालिकाकुसुमं तद्वत् पेलवा इति नवमालिकाकुसुमपेलवा = नवमालिकाख्यसुमनसुकुमारा त्वं = भवती अपि एषां = अमीषां वृक्षकाणां आलवालस्य = वृक्षमूलस्य जलाधारस्य पूरणे = पूर्तौ नियुक्ता = आदिष्टा असीति शेषः।

**शकुन्तला**—कथयति यत् न केवलं = पर तातस्य = पितुः नियोगः तातनियोगः—एव = कण्वादेश एव अस्ति = वर्तते मे = मम हृदये सोदरस्य = सहोदरस्य स्नेहः = प्रेम एतेषु = अमीषु वृक्षकेषु ( वृक्षसेचनं निरूपयति = तरोरुक्षणं नाटयति )।

**राजा**—राजा = नृपो दुष्यन्तः कथयति यत् कथं = किम् इयं = एषा पुरोवर्तमाना

---

**अनसूया**—सखि शकुन्तले ! मैं तो समझती हूँ कि तात कण्व को आश्रम के ये छोटे-छोटे पौधे तेरे से भी अधिक प्रिय हैं। इसीलिए तो नेवारी के फूलों के समान कोमल अङ्गवाली तुमको इनके थालों के जल देने के लिए उन्होंने लगा रखा है।

**विशेष**—भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में बताया है कि समान कोटिकी स्त्रियाँ परस्पर हला का सम्बोधन करती हैं—

'समानाभिस्तथा सख्यो हता भाष्याः परस्परम्' = १७।८९

अमरसिंह ने अमरकोश में भी कहा है—'हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति।'

तदनुसार अनसूया ने अपनी प्रिय सखो शकुन्तला को हला सम्बोधन करके कहा है।

**शकुन्तला**—अरी प्रिय सखि ! पिताजी की ही आज्ञा है ऐसी बात नहीं, अपितु इन वृक्षों में मेरा सहोदर भाई का स्नेह हैं। **( वृक्षों को सींचने का अभिनय करती है। )**

**विशेष**—यहाँ अनसूया की धारणा है कि इन वृक्षों को सींचना सुकुमारी शकुन्तला के योग्य नहीं फिर भी पिता महर्षि कण्व के आदेश से इसे सींचना पड़ रहा है। इस अनसूया की धारणा को गलत बताकर शकुन्तला कहती है—केवल पिताजी का आदेश नहीं, किन्तु इन वृक्षों में मेरा सहोदर भाई-सा स्नेह है। इसलिए मैं इन्हें सींचती हूँ।

**राजा—( मन ही मन )** क्या यही वह कण्व की कन्या शकुन्तला है। **( आश्चर्य के साथ )** अहो, महर्षि कण्व तो बड़ा ही अनुचित कार्य कर रहे हैं जो इस कोमलाङ्गी बाला को इस आश्रमोचित धर्म एवं वृक्षों को जल देना आदि कठिन कार्यों में लगा रहे हैं। क्योंकि—

---

**पाठा०—१. अहो, असाधुदर्शी।** २. भगवान् कण्वः।

**इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं[1] साधयितुं य इच्छति ।**
**ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ॥ १८ ॥**

भवतु [2]पादपान्तर्हित एव विस्रब्धां तावदेनां पश्यामि । ( तथा करोति । )

---

एवंविधरूपलावण्यातिशयवती सा = वैखानसमुखश्रुता कण्वदुहिता = कण्वस्य महर्षेः धर्मकन्या शकुन्तला नाम । अथ अलौकिकरूपवतीं तां दृष्ट्वा मुनेः अविमृश्यकारितां सकरुणमाह—असाधुदर्शीति । असाधुदर्शी = साधु = सम्यक् न पश्यतीति असाधुदर्शी अविमृश्यकारी खलु = निश्चयेन तत्रभवान् = पूज्यः महर्षिकण्वः य इमां = कामकलापरिशीलनयोग्यां शकुन्तलाम् आश्रमधर्मे = तपोवनकर्तव्ये वृक्षसेचनादौ नियुंक्ते-आदिशति, विनियोजयति ।

अन्वयः—यः अव्याजमनोहरं इदं वपुः तपःक्षमं साधयितुम् इच्छति सः ऋषिः ध्रुवं नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुं व्यवस्यति किल ।

इदमिति । यः = ऋषिः कण्वः इदं = पुरो दृश्यमानं, अव्याजमनोहरं = अव्याजेन = अकपटेन, भूषणादिकं विना निसर्गतः मनोहरं=सुन्दरं = रमणीयमिति अव्याजमनोहरं = स्वभावसुन्दरं इदं = एवंविधसौन्दर्यसौकुमार्यादिगुणगणशालिपुरोदृश्यमानं वपुः = शरीरं तपःक्षमं = तपश्चरणयोग्यं साधयितुं=सम्पादयितुं, इच्छति = वाञ्छति, सः ऋषिः ध्रुवं= नूनं नीलोत्पलपत्रधारया—नीलमुत्पलं नीलोत्पलं नीलोत्पलस्य पत्राणां धारया नीलोत्पलपत्रधारया = नीलकमलपत्राग्रभागेन शमीलतां = कठिनां शमीवृक्षस्य शाखां कण्टकितं कठोरं च शमीवृक्षं वा छेत्तुं = भेत्तुं = खण्डयितुं व्यवस्यति = यतते समीहते, उद्युङ्क्ते वा किल = न श्रदधे । अत्रोपमा-व्याजस्तुति-सन्देहसंकरालङ्काराः वंशस्थवृत्तं च ।

अयं भावः लोकातिगरूपसंभारं शकुन्तलामाश्रमोचितधर्माचरणेषु वृक्षसेचनादिषु नियुक्तामवलोक्य राजा दुष्यन्तश्चिन्तयति-अहो ! निसर्गसुन्दरेणानेन वपुषा य आश्रमधर्मान् विधातुं समीहते, सर्वथा अविमृश्यकारी सः ऋषिः नीलोत्पलपत्रधारया कठिनां शमीशाखाच्छेदनं चिकीर्षति । यदि नीलकमलधारया शमीलताच्छेदनप्रयासः क्रियते तर्हि शमीलता तु अंशतोऽपि न छिद्येत, नीलोत्पलपत्राणि तु विदलितानि एव भवेयुरेव तद्वत्प्रकृतेऽपि बोध्यम् ।

राजा—भवतु = अस्तु पादपान्तर्हितः = वृक्षतिरोहतः एव विस्रब्धां=विश्वस्तां एनां= इमां पुरोदृश्यमानां शकुन्तलां पश्यामि = अवलोकयामि, ( तथा करोति = उक्तानुसारमाचरति ) ।

---

स्वभाव से ही सुन्दर मनोहर शरीर वाली इस बाला को ये ऋषि तपस्या के योग्य बनाना चाहते हैं, वे तो मानो नीलकमल के कोमल पत्तों की धार से कठिन और कण्टकित शमी वृक्ष की शाखा को काटना चाहते हैं । तात्पर्य यह है कि शकुन्तला नीलोत्पल की कोमल पत्ती के समान है और तपस्या कण्टक युक्त कठोर शमी वृक्ष के समान । जिस प्रकार नीलकमल की पँखुड़ी के किनारे से कठोर शमी वृक्ष की शाखा नहीं काटी जा सकती वैसे ही शकुन्तला के कोमल शरीर से तपस्या नहीं कराई जा सकती है। यहाँ नील शब्द तलवार के लोहे के काले रंग की समता बताता है ॥ १८ ॥

अच्छा वृक्षों के पीछे छिपकर निर्भय होकर स्वच्छन्द विहार करती इस बाला शकुन्तला को देखता हूँ । ( वैसा करते हैं )

---

पाठा०—१. तनः क्लमम् । १. पादपान्तरितो विश्वस्तां तामेनाम् ।

शकुन्तला—सहि अणसूए अदिपिणद्धेण वक्कलेण पिअंवदाए णिअन्तिदम्हि। सिढिलेहि दावणं। [ सखि अनसूये ! अतिपिनद्धेन बल्कलेन प्रियंवदया नियन्त्रितास्मि[१]। शिथिलय तावदेतत्। ]

अनसूया—तह [ तथा ]। ( शिथिलयति )

प्रियंवदा—( सहासम् ) एत्थ पओहरवित्थारइत्तअं अत्तणो जोव्वणं उवालह। मं किं उवालम्भेसि। [ अत्र पयोधरविस्तारयितृकमात्मनो यौवनमुपालभस्व। मां किमुपालभसे। ]

राजा—सम्यगियमाह—

[२]इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे
स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन।

---

शकुन्तला—शकुन्तला कथयति—सखि = आलि ! अनसूये ! अतिपिनद्धेन=सुदृढबद्धेन बल्कलेन = वृक्षत्वग्वस्त्रेण प्रियम्बदया = तन्नामवत्या सख्या नियन्त्रिता = निबद्धा दृढं पीडिता अस्मि। अतः शिथिलय = श्लथीकुरु व्यपनय तावत् मम स्तनबन्धनम् एतत् = इदं बल्कलम्।

अनसूया—तथा शिथिलयति = शिथिली करोति।

प्रियंवदा—सहासं =हासेन सहितं सहासं = विहस्य जगाद, अत्र = नियन्त्रणे पयोधरयोः =स्वस्तनयोः विस्तारयितृ वर्द्धकं, परिणाहिजनकं पयोधरविस्तारकम् आत्मनः= स्वस्य यौवनं = तारुण्यं, एव उपालभस्व = निन्द, मां = इमं जनम्, किं = केन हेतुना उपालभसे = निन्दादिनाऽत्र न कश्चन दोषः। यौवनेन तव स्तनयुगं निरन्तरं वर्द्धते, अत्र नाम मम दोष इति परिहासः, नात्र मे कश्चन दोषः।

राजा—राजा दुष्यन्तः कथयति यत् सम्यक् = उचितं, इयं = असौ प्रियंवदा आह = वदति।

अन्वयः—स्कन्धदेशे उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना च वल्कलेन ( पिनद्धम् ) अभिनवम् इदम् अस्याः वपुः पाण्डुपत्रोदरेण पिनद्धं कुसुममिव स्वां शोभां न पुष्यति।

इदमुपहितेति। स्कन्धस्य = भुजशिखरस्य देशे = स्थाने इति स्कन्धदेशे = अंसप्रदेशे, उपहितः = निहितः सूक्ष्मः = ह्रस्वः ग्रन्थिः = बन्धं यस्य स तेन उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना,

---

शकुन्तला—अरी सखी अनसूये ! देख प्रियम्वदा ने मेरे इस वल्कल वस्त्र ( चोली ) को इतना कसकर बाँध दिया है कि मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है। इसे थोड़ा ढीला तो कर दो।

अनसूया—अच्छा। ( चोली को ढीला करती है )

प्रियम्वदा—( हँसती हुई ) इसमें तो तू अपने यौवन के आरम्भ को, जिससे तुम्हारे स्थान निरन्तर बढ़ते ही जा रहा है उलाहना दो, मुझे क्यों दोष देती हो। तात्पर्य यह है कि अभिनव यौवन के उभार के कारण ही तेरे कुचकलस निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं, भला, मैंने कहाँ इसे कस कर बाँधा है।

राजा—ठीक ही कह रही है।

अंसप्रदेश पर जिसमें सूक्ष्मग्रन्थि लगी हुई है ऐसे तथा विशाल स्तन युगल के फैलाव को

---

पाठा०—१. पीडितास्मि। २. क्वचिदयं श्लोको नास्ति।

वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां
कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण ॥ १९ ॥

अथवा काममननुरूपमस्या [1]वपुषो वल्कलं न पुनरलङ्कारश्रियं न [2]पुष्यति । कुतः—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्मलक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ २० ॥

---

स्तनयोः=वक्षोजयोः युगं=युगलं तस्य परिणाहम्=आभोगम् आच्छदयति=पिधत्ते तच्छीलः तेन स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन=वृक्षत्वङ्निर्मितेन कञ्चुकेन पिनद्धं=बद्धम्, अभिनवं=अपूर्वं प्रत्यग्रं, इदं=एतत्, चारुतरं दृश्यमानम् अस्याः=एतस्याः शकुन्तलायाः वपुः=शरीरं पत्रस्य उदरं पत्रोदरं पाण्डु च तत् पत्रोदरं चेति पाण्डुपत्रोदरं तेन पाण्डुपत्रोदरेण पाण्डोः=श्वेतस्य पत्रस्य=दलस्य उदरेण गर्भेण उदरवदावरणभूतेन पिनद्धं=संसक्तं कुसुमं=प्रसूतमिव स्वां=स्वकीयाम् शोभां=छविं, प्रभाम् न पुष्यति=न विकासयति, अपितु पुष्यत्येवेति काकुः । कुसुमस्य जठरपत्रच्छिन्नस्येव शकुन्तलावपुषः शोभां वल्कलकञ्चुकमिदं विद्यते । तस्मादियं न वल्कलयोग्येति भावः ॥ १९ ॥

अथवेति । अथवा=किं वा, पक्षान्तरे, कामं=अत्यन्तम्, अस्याः=शकुन्तलायाः वपुषः=शरीरस्य अननुरूपं=रूपमनुगतमनुरूपं न अनुरूपम् असदृशं वल्कलं=वृक्षत्वग्वस्त्रमिदम्, पुनः=किन्तु अलङ्कारश्रियं=अलङ्कारस्य श्रीः अलङ्कारश्रीः यद्वा अलङ्कारकृता श्रीः अलङ्कारश्रीः अलङ्कारेण=हारादिना या श्रीरित्यलङ्कारश्रीः नामालङ्कारश्रियं=भूषणशोभां न पुष्यति—न लभते इति न किन्तु पुष्यत्येव असमर्थंमुपपादयति—

अन्वयः—शैवलेन अपि अनुबिद्धं सरसिजं रम्यं लक्ष्म मलिनमपि हिमांशोः लक्ष्मीं तनोति, वल्कलेनापि इयं तन्वी अधिकमनोज्ञा मधुराणामाकृतीनां किमिव हि न मण्डनम् ।

सरसिजमिति । शैवलेन=शैवालेन अपि अनुविद्धं=सम्पृक्तम्, संश्लिष्टं, सर-

---

ढक लेने वाले इस वल्कल के वस्त्र से इस बाला शकुन्तला की स्वभाव सुन्दर शोभा उसी प्रकार छिप रही है जिस प्रकार कोमल-कोमल फूलों को पुराने पत्तों से ढक देने पर उसकी शोभा दब जाती है ॥ १९ ॥

अथवा माना, कि यह वल्कल इसके शरीर की शोभा के अनुरूप नहीं है, फिर भी यह बात नहीं कि अलङ्कार की तरह इसके शरीर की शोभा नहीं बढ़ा रहा है, क्योंकि—

कमल का पुष्प शैवाल से घिरा हुआ भी अधिक शोभादायक होता है। जैसे चन्द्रमा का कलङ्क मलिन होते हुए भी चन्द्रमा की शोभा बढ़ाता ही है। इसी प्रकार यह कोमलाङ्गी बाला शकुन्तला भी इस वल्कल वस्त्र से अधिक मनोहारिणी मालूम होती है। ठीक ही है, सुन्दर एवं मनोहर आकृति वालों के लिए कौन सी वस्तु शोभादायक नहीं होती ॥ २० ॥

**विशेष**—नीलकण्ठ भगवान् शङ्कर के गले में स्थित विष के समान कलंक से चन्द्रमा के समान शैवाल से कमल के समान पुराने पत्तों से आच्छादित पुष्प के समान वल्कलवस्त्र से सन्नद्ध

---

पाठा०—१. तापसः । २. पुष्णाति ।

**शकुन्तला**—( अग्रतोऽवलोक्य ) एसो वादेरिदपल्लवङ्गुलीहिं तुवरेदि विअ मं केसर रुक्खओ। जाव णं संभावेमि [ एष वातेरितपल्लवाङ्गुलीभिस्त्वरयतीव[1] मां [2]केसरवृक्षकः। [3]यावदेनं संभावयामि। ] ( परिक्रामति )।

**प्रियंवदा**—हला सउन्दले एत्थ एव्व दाव मुहुत्तअं चिट्ठ। [ हला शकुन्तले ! अवत्तं तावन्मुहूर्त्तकं तिष्ठ। ]

**शकुन्तला**—किंणिमित्तं। [ किं निमित्तम्। ]

**प्रियंवदा**—जाव तुये उवगदाए लदासणाहो विअ अअं केसररुक्खओ पडिभादि। [ यावत् स्वयोपगतया लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः प्रतिभाति। ]

---

सिजं = कमलं रम्यं = कमनीयं मनोहारि भवति मनोज्ञं भवति। यतः लक्ष्म = चिह्नं मलिनमपि = कृष्णमपि हिमांशोः = चन्द्रस्य लक्ष्मीं = शोभां तनोति = विस्तारयति। यतः इयम् = एषा पुरोदृश्यमाना तन्वी = कृशाङ्गी निसर्गसुन्दरी शकुन्तला वल्कलेन = वृक्षत्वग्वस्त्रेण अधिकं = कामं, बहुमनोज्ञा = मनोहारिणी हृद्या अस्ति किमिदं = कतमत् वस्तु हि = यतः मधुराणां = कमनीयानामाकृतीनां = वपुषां मण्डनं = भूषणं न भवति, अपितु भवत्येव। सर्वमपि वस्तु रम्याणां सुषमां वर्धयत्येव। नीलकण्ठस्य कण्ठे विषमिव, कलङ्केन चन्द्रस्येव, शैवलेन कमलस्येव, अनेन वृक्षत्वग्वस्त्रेण अस्याः शकुन्तलायाः शोभैवेत्याशयः। यथा सरसिजादीनि शैवलादिभिः अधिकमनोज्ञानि भवन्ति तथेयमपि। अत्रार्थान्तरन्यासोपमादिरलङ्कारो मालिनीछन्दश्च ॥ २० ॥

**शकुन्तला**—शकुन्तला (अग्रतोऽवलोक्य) कथयति—यत् एषः = पुरोवर्ती, वातेन = पवनेन ईरिताः = प्रेरिताः पल्लवाः = किसलयाः एव अङ्गुलयः = करशाखाः ताभिः वातेरितपल्लवाङ्गुलीभिः पल्लवाङ्गुलिरूपसंज्ञया त्वरयति = पयोदानाय शीघ्रमागच्छेति माम् आह्वयति इव = इदं प्रतीयते। यावत् एवं वकुलवृक्षं संभावयामि = संमानयामि जलसेचनेन वर्द्धयामि इत्युक्त्वा परिभ्रमति = केशरान्तिकगमनमभिनयति।

**प्रियंवदा**—केसरान्तिकगतां तां प्रियंवदा चाटु भाषते, हे सखि ! शकुन्तले ! अत्रैव = केसरकवृक्षसमीपे एव तावत् मुहूर्तकं = क्षणमात्रम् तिष्ठ = विरम, स्थिरा भव।

**शकुन्तला**—शकुन्तला पृच्छति किं = कतमत् निमित्तं = कारणम्, अस्ति।

**प्रियंवदा**—प्रियंवदा कथयति—यावत्—यथा त्वया = शकुन्तलया उपगतया = निकट-

---

शकुन्तला का शरीर अत्यन्त सुशोभित हो रहा है। प्रत्येक पदार्थ सुन्दर स्वरूप का अलङ्कार हो जाता है। खराब से खराब प्रसाधन भी सुन्दर शरीर पर आभूषण बनकर सुन्दर ही लगने लगता है। तन्वी पद प्रयोग से प्रतीत होता है कि दुबले शरीर वाली स्त्रियाँ अधिक सुन्दर होती हैं।

**शकुन्तला**—( **आगे की ओर देखकर** ) प्रिय सखियों, यह केशरक का वृक्ष हवा से हिलते हुए पत्तों रूपी अपनी कोमल-कोमल अँगुलियों से मानो, मुझको बुला रहा है। अतः इसके पास जाती हूँ। **घूमती है** )

**प्रियम्वदा**—सखि शकुन्तले ! कुछ देर तक तू इस केशरक वृक्ष के पास ही खड़ी रह।

**शकुन्तला**—क्या, क्या कारण है ?

**प्रियम्वदा**—क्योंकि तुम्हारे पास खड़े रहने से यह केशरक वृक्ष सुन्दर कोमल लता से युक्त सा सुशोभित प्रतीत होता है।

---

पाठा०—१. किमपि व्याहरतीव। २. चूतवृक्षः। ३. तद् यावदेनां।

शकुन्तला—अदो क्खु पिअंवदा सि तुमं। [ अतः खलु प्रियंवदासि त्वम्। ]

राजा—प्रियमपि तथ्यमाह[1] शकुन्तलां प्रियंवदा। अस्याः खलु—

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्॥ २१॥

---

वर्तिन्या लतया = वल्लर्या ( त्वद्रूपया ) सनाथः = युक्तः इव, अयं = एष पुरोवर्ती केसरकवृक्षकः = ह्रस्वो वकुलवृक्षः प्रतिभाति = प्रतीयते।

शकुन्तला—शकुन्तला कथयति—अतः = अनेन कारणेन खलु = एव, निश्चयेन त्वं = भवती प्रियंवदतीति अन्वर्थनामधेया = प्रियंवदा गीयसे = गण्यसे अन्वर्थनाम भवत्याः।

राजा—राजा = दुष्यन्तः कथयति—प्रियं = चाटु तथ्यं = सत्यम्, आह = वदति शकुन्तलां प्रति प्रियंवदा। नूनमियं शकुन्तला वकुलमूले स्थिता तदाश्रिता लतेव लक्ष्यते नायं प्रियंवदायाश्चाटुवाद इति भावः, अस्याः=एतस्याः शकुन्तलायाः खलु = निश्चयेन।

अन्वयः—अधरः किसलयरागः ( अस्ति ) बाहू कोमलविटपानुकारिणौ ( स्तः ) कुसुममिव लोभनीयं यौवनं च अङ्गेषु सन्नद्धम् ( अस्ति )।

अधर इति। अधरः = अधरोष्ठः किसलयरागः—किसलयस्य = प्रत्यग्रपल्लवस्य, रागः = लौहित्यमिव रागः = लौहित्यं यस्य सः किसलयरागः पल्लवताम्रबाहू = भुजौ, कोमलविटपानुकारिणौ, कोमलयोः = मृदुलयोः विटपयोः = शाखयोः अनुकारिणौ इति तादृशौ यद्वा कोमलं विटपमनुकुरुतस्तच्छीलाविति कोमलविटपानुकारिणौ = मृदुतरशाखासदृशौ कुसुममिव = पुष्पमिव लोभनीयं = हृदयावर्जकं यौवनं = तारुण्यम् अङ्गेषु = अवयवेषु सन्नद्धं = विजृम्भितं = सर्वतोभावेन प्रकटितम्। एवं चास्या लतासादृश्यं प्रियंवदोक्तं युज्यते एवेत्याशयः।

---

शकुन्तला—अरी सखि ! इसीलिए तो तू प्रियम्वदा कहलाती हो, तुम्हारा नाम अन्वर्थ है।

राजा—प्रियम्वदा तो सत्य कह रही है, क्योंकि—

इस शकुन्तला के अधरोष्ठ कोमल पत्तों के समान लाल और इसकी दोनों भुजायें कोमल-कोमल डालियों के समान मृदुल मालूम पड़ती हैं, इसके अङ्गों में लुभावना यौवन भी खिले हुए फूलों के समान प्रतीत हो रहा है ? अतः यह बाला लता के समान स्पष्ट ही मालूम होती है॥ २१॥

विशेष—मधुर एवं सत्य बोलने वाली प्रियम्वदा के वचन का समर्थन करते हुए दुष्यन्त कहते हैं—अहो, इस शकुन्तला का अधरोष्ठ नवीन पल्लव की लालिमा का स्मरण करा रहा है, ये इसकी भुजायें कोमल टहनियों से अधिक मृदुल मालूम होती हैं, जिस प्रकार अभिनव विकसित कुसुम नेत्रों को आनन्द देने वाले और मन को आकृष्ट करने वाले होते हैं वैसे ही इस शकुन्तला के प्रत्यङ्ग में समुल्लसित यौवन का उल्लास दर्शकों की दृष्टि को हठात् आकर्षित करता है। इस प्रकार प्रियंवदा के पूर्ववाक्य को सत्य बतलाते हुए राजा दुष्यन्त ने उसका समर्थन किया कि शकुन्तला का अधर, बाहु तथा यौवन, क्रमशः नवपल्लवकी लालिमा, कोमल डाल तथा कुसुम के समान हृदयावर्जक हैं, इनसे उस शकुन्तला का शरीर लता के समान सिद्ध हो जाता है।

कविकालिदास का प्रकृति प्रेम अद्वितीय है, वे प्रायः जङ्गल या उपवन में उपलब्ध पदार्थों को ही पसन्द करते हैं। इन्होंने यहाँ पत्ते, डाल, फूल को ही उपमान बनाया है॥ २१॥

---

पाठा०—१. अवितथमाह।

**अनसूया**—हला सउन्दले इअं सअंवरवहू सहआरस्स तुए किदणामहेआ वण-जोसिणित्ति णोमालिआ। णं विसुमरिदा सि। [ हला शकुन्तले ! इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमालिका। [1]एनां विस्मृतासि। ]

**शकुन्तला**—तदा अत्ताणं वि विसुमरिस्सं। ( लतामुपेत्यावलोक्य च ) हला,

---

अन्वर्थनामधेयया सख्या प्रियंवदया उक्तिभङ्ग्या प्रोक्तं लतासाम्यमाकर्ण्य राजा दुष्यन्तः तस्य तथ्यतामनुभवन् तदेव समर्थयन् कथयति—अहो ! अस्या शकुन्तलाया अधरोष्ठः प्रत्यग्रपल्लवताम्रतां स्मारयति, एतौ चास्या भुजौ कोमलविटपादधिकं सौकुमार्यं भजतः, यथाऽभिनवोद्भिन्नं कुसुमं नयनानन्ददायकमाकर्षकं च भवति तथैवास्याः प्रत्यङ्गं समुच्छलन् तरुणिमोल्लासो द्रष्टुर्दृशं समाकर्षतीति भावः। अत्रोपमालङ्कारः आर्या-वृत्तं च ॥ २१ ॥

**अनसूया**—अन्तिकस्थं सहकारं स्वयमेवोपसर्पन्तीं नवमल्लिकालतामुद्दिश्य शकुन्तला-माह—अनसूया—हलेति—हला शकुन्तले ! = प्रियसखि शकुन्तले ! इयं = असौ पुरोवर्तिनी बालसहकारस्य = सहकारपोतस्य स्वयंवरवधूः=स्वयं वृणीते वरमिति स्वयंवरा सा चासौ वधूरिति स्वयंवरवधूः = यद्वा स्वयं वरं प्राप्ता वधूरिति स्वयंवरवधूः अथवा स्वयंवरे वधूः इति स्वयंवरवधूः = पतिवरा या हि स्वयमेव सर्पन्ती सहकारं प्राप्ता सेत्यर्थः। त्वया= भवत्या कृतं नामधेयं यस्याः सा कृतनामधेया = विहितनामसंस्कारा वनज्योत्स्ना = वने ज्योत्स्नेव प्रकाशते इति वनज्योत्स्नेति नवमालिका = नवमालिका नाम कुसुमवल्ली ( अत्र नवमालिकायां वधूत्वारोपः सहकारे वरत्वं गमयत्येकदेशविवर्ति रूपकम् ) एनां= नवमालिकां विस्मृता असि, स्मरणपक्षात् आनीतवती असि, मन्ये, विस्मृतिवशात्त्वयैषा न सिक्ता किमित्यर्थः।

**शकुन्तला**—शकुन्तला कथयति यत् यदि वनज्योत्स्नां विस्मरिष्यामि तदा आत्मानमपि

---

**अनसूया**—सखि शकुन्तले ! इस आम के पौधों के नीचे स्वयम्बरवधू यह नवमालिका है जिसका नाम तूने ही वनज्योत्स्ना रखा है, क्या तू इसे भूल गई ? क्या तुम इसको नहीं सींचोगी !

**विशेष**—वनज्योत्स्ना नाम से प्रतीत होता है कि नवमल्लिका के पुष्प चाँदनी की तरह सफेद होते हैं, रात में खिलते हैं और हृदयाह्लादक होते हैं।

सहकार शब्द की व्युत्पत्ति है—'वियुक्तं द्वन्द्वं सहकारयतीति सहकारः' अमरकोश के अनुसार रस वाले आम को रसाल तथा एक प्रकार के सुगन्धित आम को सहकार कहते हैं—'आम्रश्चूतो रसालस्तु सहकारोऽतिसौरभः।

जैसे स्वयंवर में कन्याएँ अपने मन के अनुकूल स्वयंवर का वरण करती हैं। उसी प्रकार वनज्योत्स्ना नवमालिका लता ने आगे बढ़ती हुई सहकार से मिल गयी है। इसी अनसूया ने इसे स्वयंवरवधू कहा है। लताएँ अपने आप स्वयं ऊपर चढ़कर पेड़ों को अपना लेती हैं इसी को काव्यजगत् में स्वयंवर कहा गया है। यहाँ अनसूया ने सहकार और नवमालिका के उद्देश कर स्वयं वरणरूप श्रृङ्गारात्मक घटना की चर्चा की है, जो दुष्यन्त और शकुन्तला के हृदय में श्रृङ्गारिक भाव की पुष्टि करती हुई भावी स्वयंवर=गान्धर्व विवाह की सूचना है।

**शकुन्तला**—यदि इसे भी भूल जाऊँगी तो फिर मैं अपने को ही भूल जाऊँगी ( लता के

---

पाठा०—१, तातकण्वेन त्वमिव स्वहस्तेन संवर्द्धिता माधवीलता तत्कथमेनां विस्मृतवती।

रमणीए क्खुकाले इमस्स लदापाअवमिहुणस्स वइअरो संवुत्तो। णवकुसुमजोव्वणा वणजोसिणो सिणिद्धपल्लवदाए उवभोअक्खमो सहआरो। [ तदात्मानमपि विस्मरिष्यामि । ] ( लतामुपेत्यावलोक्य च ) [ हला ! [1]रमणीये खलु काल एतस्या लतापादपमिथुनस्य [2]व्यतिकरः संवृत्तः । यन्नवकुसुमयौवना वनज्योत्स्ना स्निग्धपल्लवतयोपभोगक्षमः सहकारः । ] ( पश्यन्ती तिष्ठन्ति )

---

विस्मरिष्यामि, अभिन्ना इयं मत्तः या हि वनज्योत्स्ना सैवाहमित्यर्थः । ( लतां = वनज्योत्स्नाम् उपेत्य = प्राप्य-लतासमीपं गत्वा अवलोक्य = दृष्ट्वा च आह ) नवमालिका-सहकारयोः सख्या अनुसूयया रोपितं वधूवरत्वमनुसृत्य सकौतुकमाह—शकुन्तला—हलेति । सखि अनसूये ! रमणीये = मनोहरे खलु = काले = समये ग्रीष्मकाले लतापादपमिथुनस्य लतायाः पादपस्य यन् मिथुनं=द्वयं तस्य लपापादपमिथुनस्य व्यतिकरः=समागमः, सश्लेषः रतिं करोति तच्छीलः व्यतिकरः = आनन्दप्रदः संवृत्तः = सञ्जातः । मिथुनस्य मिथो व्यतिकरयोग्यतां दर्शयति नवकुसुमेति । नवकुसुमानां यौवनं = विकासो यस्यां सा नवकुसुमयौवना यद्वा नवानि कुसुमानि यस्मिन् तादृशं यौवनं तत्तुल्यावस्था यस्याः सा नवकुसुमयौवना अथवा नवं कुसुमं = स्त्रीरजो यस्मिन् तादृशं यौवनं यस्याः सा नवकुसुमयौवना नवमल्लिका = पाटलाख्या त्वया बद्धानि फलानि यस्मिस्तस्य भावस्तत्ता तया बद्धफलतया = फलभरनम्रतया फलं कुसुमपरिणामो रेतश्च—'लाभनिष्पत्तिभोगेषु फले बीजे धने फलम्' इति यादवः । उपभोगक्षमः = सम्भोगयोग्यः, फलास्वादच्छायासेवनयोग्यः, तरुणीसमागमयोग्यः सहकारः = आम्रवृक्षः । यौवनेनेयं सहकारं प्रीणयति सोऽपि चैनां फलभरानतच्छायां सम्भावयति, इत्थं नयनमनोहरोऽयमनयोः समागम इति भावः । नायक-नायिकापक्षे कुसुममार्तवं, फलं बीजं, वीर्यं च सुखसन्तत्यादिहेतुत्वात् । ( इति = उक्त्वा पश्यन्ती अवलोकयन्ती तिष्ठति = स्थिता । )

---

पास जाकर और देखकर ) देख सखि ! यह रमणीय ग्रीष्मकाल इस पादपमिथुन ( नवमल्लिका और आम ) के लिए तो रतिकारक ( आनन्ददायक और मैथुन योग्य ) ही हो गया है, क्योंकि इधर तो नवीन पुष्पों के आ जाने से यह नवमल्लिका नवयौवनवती हो रही है और उधर सहकार भी फलों के भार से उपभोग के योग्य हो रहा है ।

**( देखती हुई ठहर जाती है )**

**विशेष**—यहाँ शकुन्तला ने नवमल्लिका लता और सहकार वृक्ष के मिलन के लिए लता को नवकुसुमयौवना तथा सहकार को उपभोगक्षम होना बताया है । इससे प्रतीत होता है कि जन्म से तपोवन में रहने वाली कुमारियाँ भी दाम्पत्य जीवन से परिचित थीं । विवाह के निमित्त कन्याओं का तरुण होना और पुरुष का उपभोगक्षम होना आवश्यक माना गया है । यहाँ कुसुम का अर्थ पुष्प और स्त्री का मासिकधर्म, ऋतु दोनों है । जिस प्रकार पुष्प आ जाने से लता पूर्ण जवानी पर आ जाती है उसी प्रकार ऋतुकाल आ जाने से स्त्री भी रति योग्य हो जाती है, पुरुष भी सबल एवं वीर्यवान् होने से उपभोगक्षम हो जाता है । इसीलिए कवि ने नये फूलों के आ जाने से नवमलिका को नवयौवनवती तथा फलों से लदे सहकार को उपभोगक्षम कहा है ।

---

पाठा०—१. रमणीयः खलु कालः ।
२. रतिकरः

**प्रियंवदा**—अणसूए जाणासि किंणिमित्तं सउन्दला वणजोसिणीं अदिमेत्तं पेक्खदित्ति । [ अनसूये ! जानासि किंनिमित्तं शकुन्तला वनज्योत्स्नामतिमात्रं पश्यतीति । ]

**अनसूया**—ण क्खु विभावेमि । कहेहि [ न खलु विभावयामि । कथय । ]

**प्रियंवदा**—जह वणजोसिणी अणुरूवेण पाअवेण संगदा । अविणाम एव्वं अहं वि अत्तणो अणुरूवं वरं लहेअत्ति । [ यथा [1]वनज्योत्स्नानुरूपेण पादपेन संगता अपि नामैवमहमप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभेयेति । ]

**शकुन्तला**—एसो णूणं तुह अत्तगदो मणोरहो । [ [2]एष नूनं तवात्मगतो मनोरथः । ]
( कलशमावर्जयति )

**राजा**—अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसंभवा स्यात् । अथवा कृतं सन्देहेन ।

---

**प्रियंवदा**—वनज्योत्स्नां सावधानतयाऽऽलोकयन्तीं शकुन्तलामुद्दिश्य परिहासप्रिया शकुन्तलासखी ( सस्मितं ) कथयति—अनसूये ! जानासि = बुध्यसे किं निमित्तं = कुतः शकुन्तला वनज्योत्स्नां नवमालिकालताम् अतिमात्रं = अतिगता मात्रा यस्मिन् तद् अतिमात्रं, सातिशयं, बहुकालम्, पश्यति = प्रेक्षते निरीक्षते ।

**अनसूया**—अत्र गमीरस्वभावा शकुन्तलायाः सखी अनसूया तन्निमित्तं जानन्त्यपि प्रियंवदया विवक्षितं तन्मुखेन श्रावयितुमाह—नेत्यादि । न खलु = निश्चयेन विभावयामि = तर्कयामि, वेद्मि, जानामि कथय = वद ।

**प्रियंवदा**—उत्तरयति यथा = यद्वत् वनज्योत्स्ना = नवमालिका अनुरूपेण = सदृशेन, पादपेन = सहकारवृक्षेण संगता = मिलिता, अपि नाम = किमिदं संभावितं भवेत् ? यद् अहमपि आत्मनोऽनुरूपं निजरूपादिगुणैः सदृशं वरं = भर्तारं लभेय = लब्धुं शक्नुयाम् इति एतन्मनसि कृत्वा इयं सहकारसंगतां वनज्योत्स्नां प्रेक्षमाणा तिष्ठतीत्यर्थः ।

शकुन्तला वरप्रसङ्गेन लज्जमाना तथ्यमपि तद्वचनमन्यथयति—एष इति । नूनं = निश्चितं एष = त्वया उक्तः तव आत्मगतः = मनसि स्थितः मनोरथः = अभिलाषः अयं तवान्तर्गतो मनोरथः, न ममेति भावः, मम तु मिथः संगतयोरनयोर्वनज्योत्स्नासहकारयोः शोभा विशेषदर्शने तात्पर्यम् । त्वया तु त्वन्मनसि स्थितोऽभिलाषः मयि आरोप्यते इत्यभिसन्धिः । ( इति कलशं = घटम् आवर्जयति = किञ्चिद् अधोमुखं कुरुते, पादपतले जलदानाय इति भावः । )

**राजा** = दुष्यन्तः क्रमशः शकुन्तलां प्रति अङ्कुरिताभिलाषः तस्या गम्यागताविचारे

---

**प्रियम्वदा**—( **मुसुकराती हुई** ) अनसूये ! क्या तू जानती है कि शकुन्तला क्यों इस नवमल्लिका को इस प्रकार चाव से बार-बार देख रही है ।

**अनसूया**—नहीं, मैं नहीं जानती हूँ, तू ही बता ।

**प्रियम्वदा**—जैसे यह नवमल्लिका अपने अनुरूप वृक्ष=पति से संगत= विवाहित हो गई है इसी प्रकार मैं भी शीघ्र ही अपने अनुरूप पति प्राप्त करूँ यही इसकी इच्छा है ।

**शकुन्तला**—यह बात तो मेरे मन में होगी ( **घड़ा नीचे झुकाती है** )

---

पाठा०—१. वनतोषिणी । २. एष ते आत्मनश्चित्तगतो मनोरथः तन्न ते वचनं श्रोष्यामि ।

**असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।**
**सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः ॥ २२ ॥**

---

मुनिकन्यकाया अपि पाक्षिकं गम्यत्वं संभवतीत्यवधार्य गम्येति पक्षं समर्थयन्नाह—**अपिनामेति** । अपिनाम = किन्नामेयं संभावितं कुलपतेः मुनिकुलगुरोः महर्षेः **कण्वस्य असवर्णं** क्षेत्रसंभवा—समानो वर्णः = जातिर्यस्य तन्न भवतीति असवर्णं क्षेत्रं = कलत्रं तस्मिन् संभवः = उत्पत्तिः जन्म यस्याः सा असवर्णक्षेत्रसंभवा = स्वजात्यतिरिक्तकलत्रजन्मा—'**क्षेत्रं पत्नी शरीरयोरि**'त्यमरः । ब्राह्मणस्य चातुर्वर्ण्ये विवाहस्य विहितत्वात् कुलपतेः असवर्णक्षेत्रस्य संभवात्तदुत्पन्नेत्यर्थः । तदुक्तं स्मृतौ—

शूद्रस्य भार्या शूद्रैव सा च स्वा च विशः स्मृते ।
ते च स्वा च क्षत्रियस्य ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥

ईदृशी इयं शकुन्तला स्यात् = भवेत्—एवं सति अस्या ममाभिलाष युक्त इति भावः । पुनरपि चिन्तयन्नाह अथवा सन्देहेन = संशयेन कृतं = अलं सन्देहोऽनावश्यकः । तदेव द्रढयति आत्मनो मनोवृत्ति सम्भावनया ।

**अन्वयः**—( इयम् ) असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा ( अस्ति ) यत् आर्यं मे मनः अस्यामभिलाषि ( भवति ) हि सन्देहपदेषु वस्तुषु सताम् अन्तःकरणप्रवृत्तयः प्रमाणं ( ज्ञायते ) ।

**असंशयमिति**—इयं = एषा शकुन्तला—असंशयं=संशयस्याभावः असंशयम्=निःसन्देहम् क्षत्रपरिग्रहक्षमा—क्षत्रस्य = क्षत्रियस्य परिग्रहः = स्वीकारः ( भार्या ) तस्मै क्षमा = योग्या क्षत्रपरिग्रहक्षमा—'**परिग्रहः परिजने पत्न्यां स्वीकारमूलयोरि**'ति विश्वः । इयं मत्परिग्रहयोग्या ध्रुवमिति भावः यत् = यस्मात् मे = मम महाकुलीनस्य आर्यं=पवित्रं निषिद्धाचरणविमुखं मनः = स्वान्तं अस्यां = शकुन्तलायाम् अभिलाषि—अभिलषति तच्छीलमभिलाषि= सस्पृहम् । हि = यस्मात् कारणात् सन्देहपदेषु = संशयास्पदेषु वस्तुषु = विषयेषु सतां = सज्जानानां अन्तःकरणप्रवृत्तयः-अन्तःकरणस्य = मनसः प्रवृत्तयः = व्यापाराः मनोव्यापाराः प्रमाणं = निर्णयहेतुः । सन्तो हि मनःप्रवृत्ति प्रमाणत्वेनाङ्गीकुर्वन्तीत्यर्थः । तदुक्तं—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
सम्यक् सङ्कल्पजः कामो धर्ममूलमिदं सताम् ॥

---

**राजा**—मैं समझता हूँ कि कदाचित् यह शकुन्तला महर्षि कण्व की असवर्ण भार्या=ब्राह्मणेतर स्त्री से ही उत्पन्न कन्या होगी । अथवा इसमें सन्देह करना व्यर्थ है, क्योंकि—

निश्चय ही यह मेरे विवाह योग्य हैं, क्योंकि मेरा आर्य मर्यादानुगामी मन इसमें अनुरक्त हो रहा है । यदि यह मुझ जैसे क्षत्रिय के विवाह योग्य न होती तो मेरा पवित्र मन कभी इस कन्या में आसक्त नहीं होता । अतः यह कण्व की असवर्ण पत्नी से उत्पन्न प्रतीत हो रही है, क्योंकि सन्देह स्थल में सज्जनों की अन्तःकरण की प्रवृत्ति ही निर्णायक होती है । अतः यह निश्चय ही कण्व की क्षत्रियादिभार्या में उत्पन्न कन्या है, ब्राह्मणी में नहीं, इस बात को मेरा मन ही कह रहा है । तो भी मैं इस बात का ठीक-ठीक निर्णय करूँगा कि यह किस वर्ण की कन्या है । और मेरे ग्रहण योग्य है या नहीं ॥ २२ ॥

**विशेष**—धर्मात्मा राजा दुष्यन्त को अपने निष्कलमष मन पर पूरा भरोसा है । उनका अन्तःकरण इतना पवित्र है कि वह असन्मार्ग पर प्रवृत्त नहीं हो सकता, अतः वे अनुचित वस्तु के लिए

तथापि तत्त्वत एनामुपलप्स्ये ।

**शकुन्तला**—( ससंभ्रमम् ) अम्मो सलिलसेअसंभमुग्गदो णोमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अहिवट्टइ [ अम्मो सलिलसेकसंभ्रमोद्गतो नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरोऽभिवर्त्तते ] ( भ्रमरबाधां रूपयति )

**राजा**—( सस्पृहं विलोक्य )

---

अत्र शकुन्तलानुरागरूपस्यार्थस्य निश्चयेनोपपत्तेः परिन्यासनामकमङ्गं निर्दिष्टं तदुक्तं विश्वनाथेन—तन्निष्पत्तिः परिन्यासः । अत्रार्थान्तरन्यासः काव्यलिङ्गं चालङ्कारौ, वंशस्थं वृत्तम् ॥ २२ ॥

एवं मनःप्रवृत्त्या गम्यत्वे निश्चितेऽपि तत्त्वज्ञानादपरितुष्यन् अत्यन्तधार्मिको राजा तत्प्रकारं जिज्ञासुराह—**तथापीति**—युक्त्या मनःप्रवृत्त्या च मत्परिग्रहयोग्येति निर्धारणे कृतेऽपि तत्त्वतः = याथार्थ्येन एनां = शकुन्तलाम् उपलप्स्ये = ज्ञास्यामि यदियं क्षमा वा नवेति भावः ।

**अयमभिप्रायः**—इयं हि शकुन्तला ध्रुवं मम ग्रहणयोग्या, यतो जितेन्द्रियस्यापि पुरुवंशोत्पन्नस्य दुष्यन्तस्य मे निषिद्धाचरणपराङ्मुखं श्रेष्ठं मानसमस्यामनुरक्तं, नहि अद्यावधि मन्मनसा अगम्येऽभिलाषः कृतः । तस्मादियं मत्स्वीकारयोग्यैव । सन्दिग्धेषु विषयेषु वयमन्तःकरणप्रवृत्त्यैव याथार्थ्यं निश्चुन्मः, इदमेवात्मतुष्टिप्रमाणमिति भावः ।

**शकुन्तला**—( ससंभ्रमं—संभ्रमेण = त्रासेन सहितं ससंभ्रमम् = ससाध्वसम् ) अम्मः आवेगे सलिलस्य = जलस्य सेकेन सेचनेन य संभ्रमः = संक्षोभः तस्मात् उद्गतः = सहसा उत्पतितः इति सलिलसेकसंभ्रमोद्गतः मधुकरः = भ्रमरः नवमालिकां = वनज्योत्स्नाम् = उज्झित्वा = परित्यज्य मे = मम वदनं = पद्मगन्धि मुखम् अभिवर्तते = लोभात् अनुधावति समागच्छति । ( इति = इत्युक्त्वा भ्रमरबाधां = भ्रमराक्रमणं रूपयति = अभिनयति )।

**राजा**—( सस्पृहम्-स्पृहया सहितं सस्पृहम् औत्सुक्यसहितम् आह । )

---

अभिलाषा नहीं कर सकते । मनु जी ने भी अपनी मनुस्मृति में आत्मतुष्टि को धर्म का मूल माना है—'आत्मनस्तुष्टिरेव च' ( १ ) ६ ) इसकी टीका ने गोविन्दराज ने गर्ग का भी एक वचन उद्धृत किया है—'वैकल्पिके आत्मतुष्टिः प्रमाणम्' जिसका तात्पर्य है कि विकल्प विषय में आत्मतुष्टि ही प्रमाण है ॥ २२ ॥

इस प्रकार राजा दुष्यन्त को अपने मन पर पूरा विश्वास था, फिर भी उन्होंने यत्नपूर्वक पता लगाने का निश्चय कर लिया ।

**शकुन्तला—( घबड़ाकर शीघ्रता से )** ओह ! जल के सींचने से घबड़ाकर उड़ा हुआ यह भौंरा नवमालिका को छोड़कर मेरे मुख की ओर आ रहा है । ( भ्रमर के आक्रमण और उससे बचने का अभिनय करती है )।

**राजा—( उत्सुकतापूर्वक देखकर )**

[1]चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः ।
करं व्याधुन्वन्त्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ॥ २३ ॥

---

**अन्वयः**—मधुकर ! चलापाङ्गां वेपथुमतीं दृष्टिं बहुशः स्पृशसि, रहस्याख्यायीव कर्णान्तिकचरः ( सन् ) मृदु स्वनसि, करं व्याधुन्वन्त्या रतिसर्वस्वमधरं पिबसि त्वं खलु कृती वयं तत्त्वान्वेषात् हताः ।

**चलापाङ्गामिति**—हे मधुकर !=हे भ्रमर ! चलः=चञ्चलःअपाङ्गः–कटाक्षः यस्यां सा तां चलापाङ्गां चञ्चललोचनान्तां यद्वा चलापाङ्गामिति क्रिया विशेषणम् (सन्) वेपथुमतीं–वेपथुरस्त्यस्या इति इति वेपथुमती तां वेपथुमतीं भयेन कम्पातिशयवतीं दृष्टिं=चक्षुः बहुशः–अनेकवारं, पौनःपुन्यम्, स्पृशसि=आलिङ्गसि, रहस्यं–गोपनीयं किञ्चिद् आचष्टे–वदतीति रहस्याख्यायी=गुप्तवार्ताकर्ता कर्णान्तिकचरः–कर्णयोः=श्रवणयोः अन्तिके=समीपे चरतीति कर्णान्तिकचरः मृदु=मधुरं मन्दाक्षरं स्वनसि=शब्दायसे, मन्त्रयसे, करौ=हस्तपल्लवौ व्याधुन्वन्त्याः=निवारणाय कम्पयन्त्याः अस्या रतिसर्वस्वं–रतेः=प्रीतेः सर्वस्वं प्रधान-हेतुर्यद्वा रतेः=सुरतस्य सर्वस्वं=प्रधानाङ्गभूतमधरामृतं पिबसि=आस्वादयसि । एवं मधुकरस्य वृत्तिं परामृश्य तत एव तस्य धन्यतां प्रतिपादयिष्यन् आत्मनश्चाधन्यतां कथयन्नाह—वयमिति । त्वं=भवान् खलु=निश्चयेन कृती=भाग्यशाली वयं=सकल-कलासौभाग्यशालिनः नानाविधमनोरथाः कमनीयाकृतयोऽपि तत्त्वान्वेषात्=वास्तविक-वृत्तान्तजिज्ञासया किमियं क्षत्रिययोग्या वा नवेत्यादि तत्त्वं गवेषयन्तः हताः=वञ्चिता

---

हे भ्रमर ! तू चञ्चल कटाक्ष वाली और काँपती हुई इस मनोहारिणी बाला के नेत्रों का बार-बार चुम्बन करता इसके कानों के पास जाकर मानों कोई रहस्य की कहने के लिए तू बार-बार मधुर गुंजान भी करता है और हाथ हिलाती हुई बाला शकुन्तला के रति सर्वस्व स्वरूप अधरोष्ठ का भी तू पान करता है । अतः सच्चा आनन्द तो तू ही प्राप्त कर रहा है तू धन्य है । मैं तो, यह मेरे योग्य है या नहीं, कहीं ब्राह्मण की कन्या न हो इत्यादि विचार करता हुआ इस सुख से वञ्चित ही रह गया ॥ २३ ॥

**विशेष**—इस पद्य में भ्रमर बाधा से व्याकुल शकुन्तला का वर्णन ही मनोरञ्जक प्रतीत होता है । आँख, कान तथा अधरोष्ठ के पास भ्रमर का भ्रमण और गुनगुनाना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है । भ्रमर-बाधा का निवारण करती हुई शकुन्तला का चित्रण अपूर्व है । कामशास्त्र में अधर पान का निर्देश देखकर कवियों ने भी उसका खूब वर्णन किया है । कालिदास द्वारा अधरामृत पान का वर्णन कलापूर्ण है ।

'नैकवचनं प्रयुञ्जीत गुरावात्मनि चेश्वरे' के अनुसार इस पद्य में अहं के साथ पर वयं का प्रयोग आ है । कहीं-कहीं तृतीय चरण के करं व्याधुन्वन्त्या के स्थान पर भी पाठ मिलता है, पर यह उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि शकुन्तला के एक हाथ में घड़ा है । अतः एक ही हाथ हिलाने का वर्णन स्वाभाविक प्रतीत होता है । घड़ा रखकर ही दोनों हाथ हिलाए जा सकते हैं, जिसका कहीं जिक्र नहीं है ॥ २३ ॥

---

पाठा०—१. चलापाङ्गं ।

**शकुन्तला**—ण एसो धिट्ठो विरमदि। अण्णदो गमिस्सं। ( पदान्तरे स्थित्वा। सदृष्टिक्षेपम् ) कहं इदो वि आअच्छदि। हलापरित्ताअह म इमिणा दुव्विणीदेण दुट्ठमहुअरेण पडिहूअमाणं। [ **न एष धृष्टो विरमति। अन्यतो गमिष्यामि। ( पदान्तरे स्थित्वा। सदृष्टिक्षेपम् ) कथमितोऽप्यागच्छति। हला परित्रायेथां मामनेन दुर्विनीतेन दुष्टमधुकरेण परिभूयमानाम्** ]।

**उभे**—( सस्मितम् ) का वअं परित्तादुं। दुस्सन्दं अक्कन्द। राअरक्खिदव्वाइं तवोवणाइं णाम। [ **का वयं परित्रातुम्। दुष्यन्तमाक्रन्द। राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम।** ]

**राजा**—अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्। न भेतव्यम्, न भेतव्यम् ( इत्यर्धोक्ते स्वगतम् )। [1]राजभावस्त्वभिज्ञातो भवेत्। भवतु। एवं तावदभिधास्ये।

---

एव। अत्र व्यतिरेक–भ्रान्तिमत्–स्वभावोक्ति–काव्यलिङ्ग–समासोक्ति–श्रुत्यनुप्रासालङ्काराः शिखरिणी वृत्तं च ॥ २३ ॥

**शकुन्तला**—अथ भ्रमरानुधावनपर्याकुला शकुन्तला कथयति—न एष इति। एष दुष्टः भ्रमरो न विरमति = न निवर्तते, अन्यतः = स्थानान्तरे गमिष्यामि = यास्यामि। ( पदान्तरे = अन्यत् पदं पदान्तरं तस्मिन् पदान्तरे–स्थानान्तरे स्थित्वा–गमनात् विरता भूत्वा सदृष्टिक्षेपं—दृष्टेः क्षेपः = पातः तेन सह वर्तते सदृष्टिक्षेपं भ्रमराभिमुखं दृष्ट्वा ) कथमितोऽप्यागच्छति कथं = किमेतत् इतोऽपि = अमुष्मात् स्थानात् अपि आगच्छति। हला = अये सख्यौ ! अनेन मामनुसरता एतेन दुर्विनीतेन = उद्दण्डेन भ्रमरेण परिभूयमानाम् = आक्रम्यमाणाम् आकुलीक्रियमाणाम् मां परित्रायेथां = युवां रक्षतम्।

**उभ इति**—उभे = द्वे अनसूयाप्रियंवदे ( सस्मितं स्मितेन = ईषद्धास्येन सह यथास्यात्तथा सस्मितं शकुन्तलाया भ्रमरनिवारणाक्षमताजन्यं वैक्लव्यं दृष्ट्वा सोपहासमित्यर्थः ) वयं = आवां–अनसूया प्रियंवदे के परित्रातुं, तर्हि मया किं कार्यम् इत्याह–दुष्यन्तमिति। राजानं दुष्यन्तं आक्रन्द = तारस्वरेण आह्वय। राजरक्षितव्यानि तपोवनानि राजा = नृपेण रक्षितव्यानि तपसः = तपस्याया वनानि=विपिनानि नाम=निश्चयेन। राज्ञो जनपद रक्षणेन न कर्तव्यसमाप्तिः, अपितु, तपोवनरक्षापि राज्ञः कर्तव्यमेव।

**राजा**—विचारयति यत् अवसरः = उपयुक्तः समयः अयम् एषः, आत्मानं = स्वम्

---

**शकुन्तला**—यह दुष्ट भ्रमर नहीं है, दूसरी जगह जा रही हूँ ( **कुछ जाकर और चारों ओर दृष्टि डालकर** ) क्यों ? यहाँ भी आ रहा है ? अरि सखियों ! मैं इस दुष्ट भ्रमर से पीड़ित हो रही हूँ। तुमलोग इससे मुझे बचाओ।

**दोनों सखियाँ**—( **हँसती हुई** ) हम बचानेवाली कौन होती है ? राजा दुष्यन्त को बुलाओ, वे ही तुझे बचायेंगे, क्योंकि तपोवन की रक्षा का भार तो राजा ही पर होता है। राजा का कर्तव्य केवल जनपद रक्षण मात्र से ही नहीं समाप्त होता अपितु राजा का कर्तव्य तपोवन की रक्षा करना भी है।

**राजा**--हमारे प्रगट होने का अच्छा अवसर है—मत डरो मत डरो ! ( **बीच में ही रुककर**

---

पाठा०—१. एवं राजाहमिति परिज्ञानं भवेत्। भवतु अतिथिसमाचारमवलम्बिष्ये।

शकुन्तला—( पदान्तरे स्थित्वा । सदृष्टिक्षेपम् । ) कहं । इदोवि मं अणुसरदि । [ कथम् । इतोऽपि मामनुसरति । )

राजा—( सत्वरमुपसृत्य ) ।

(कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम् ।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु ॥) २४ ॥

---

प्रकाशयितुं = प्रकटयितुम्, न भेतव्यं न भेतव्यं दुष्यन्तोऽहं भयात् = परित्रास्ये ( इत्यर्द्धोक्ते = इत्यंशमात्रे कथिते सति स्वगतम् = आत्मगतम् ) राजभावः = नृपत्वम्, अभिज्ञातः = विदितः भवेत् = स्यात्, राजाहमस्मीति परिज्ञातं स्यात् । भवतु एवं = वक्ष्यमाणप्रकारेण तावत् अभिधास्ये = वक्ष्ये अभयप्रदानव्याजेन आसां पुरोगमनस्यायमुचितः कालः इत्यर्थः । अवसरलाभेन प्रमुदितः सन्नाह—नेति ।

शकुन्तला—( पदान्तरे = स्थानान्तरे स्थित्वा । सदृष्टिक्षेपं = दृष्टिक्षेपेन सहितं सदृष्टिक्षेपम् ) कथयति—कथम् इतोऽपि मां = इमं जनं अनुसरति = अनुगच्छति ।

( राजा सत्वरं त्वरया सहितं सत्वरम् = आशु उपसृत्य = समीपं गत्वा । )

अन्वयः—दुर्विनीतानां शासितरि पौरवे वसुमतीं शासति ( सति ) कः अयं मुग्धासु तपस्विकन्यकासु अविनयम् आचरति ।

क इति—दुर्विनीतानां = उद्दण्डानां, अशिष्टानां शासितरि = शासके पुरोरपत्यं पुमान् पौरवः पुराणो राजा वा पौरवः तस्मिन् पौरवे-पुरुवंशीये दुष्यन्ते मयि वसुमतीं = भूमिं शासति = पालयति कोऽयं = कोऽसौ दुर्विनीतः मुग्धासु = सरलासु तपस्विकन्यासु मुनीनां कुमारीषु अविनयं = अकृत्यं, अत्याचारम् आचरति = कुरुते । दुष्टनिग्रहशिष्टानुग्रहकरणपूर्वकं पृथ्वीशासके मयि दुष्यन्ते कोऽयं दुर्विनीतः स्वभावतः सरला मुनिकन्यकाः पीडयितुं कुदृष्टिं कर्तुं प्रयतते सद्यः स दण्डितो भवेदिति भावः । अत्राप्रस्तुतप्रशंसा छेकवृत्यनुप्रास-परिकरालङ्कारा आर्या छन्दश्च ॥ २४ ॥

---

मन ही मन ) इस प्रकार कहने पर तो मैं राजा हूँ यह बात प्रगट हो जायेगी । अच्छा, अतिथि-भाव के अनुरूप ही बातें करूँगा ।

**विशेष**—स्वगतम् का तात्पर्य होता है कि नाटक के रंगमंच पर रहने वाले व्यक्ति न सुन पायें, किन्तु दर्शक सुन लें—'अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्' । सखियाँ न तो दुष्यन्त की बातें सुन पायी थीं न वहाँ उनके रहने का पता था, कवि ने राजा के प्रकट होने की बात में बड़ी दूरदर्शिता दिखाई है । अर्द्धोक्ति से तात्पर्य प्रतीत होता है कि दुष्यन्त के मुख से 'मैं राजा दुष्यन्त आ गया' यह निकलने ही वाला था कि उन्होंने पुनः विचार कर अपने को छिपा लिया ।

**शकुन्तला—( कुछ आगे जाकर और इधर उधर देखकर )** हाय, हाय यहाँ भी यह भ्रमर मेरे पीछे आ रहा है । अरी सखियों मुझे बचाओ ।

**राजा—( शीघ्रता से पास जाकर )**

दुष्टों का दमन करने वाले पुरुवंशी राजा दुष्यन्त के पृथ्वी पर शासन करते रहने पर भी यह कौन है जो भोली-भाली तपस्वि-कन्याओं के साथ अशिष्ट व्यवहार करता है ॥ २४ ॥

( सर्वा राजानं दृष्ट्वा किञ्चिदिव संभ्रान्ताः )

**अनसूया**—अज्ज ण क्खु किंवि अच्चाहिदं। इअं णो पिअसही महुअरेण अहिहूअमाणा कादरीभूदा [ **आर्य, न खलु किमप्यत्याहितम्। इयं नौ प्रियसखी मधुकरेणाभिभूयमाना कातरीभूता।** ] ( शकुन्तलां दर्शयति। )

**राजा**—( शकुन्तलाभिमुखो भूत्वा ) अपि तपो वर्धते।

( शकुन्तला साध्वसादवचना तिष्ठति )

**अनसूया**—दाणिं अदिहिविसेसलाहेण। हला सउन्दले गच्छ उडअं। फलमिस्सं अग्घं उवहर। इदं पादोदअं भविस्सदि। [ **इदानीमतिथिविशेषलाभेन। हला शकुन्तले गच्छोटजम। फलमिश्रमर्घमुपहर। इदं पादोदकं भविष्यति।** ]

---

( **सर्वाः**=सकलाः तिस्रो मुनिकन्यकाः राजानं=नृपं दुष्यन्तं दृष्ट्वा=अवलोक्य किञ्चित्=ईषत् इव संभ्रान्ताः=चकिता आवेगे आपतिताः अतर्कितोपनतेन राजदर्शनेन समुपलब्धया लज्जया भयेन च संभ्रमः। )

**अनसूया**—यत् आर्य !=महोदय ! न खलु=निश्चयेन किमपि=किञ्चित् अत्याहितं=महद्भयमापतितम् तर्हि किमनया परित्राणार्थमाक्रन्दितमित्याह—**इयमिति।** इयं=एषा पुरो दृश्यमाना नौ=आवयोः प्रियसखी=शकुन्तला अनेन मधुकरेण अभिभूयमाना=आकुलीक्रियमाणा=बाध्यमाना, कातरीभूता=त्रस्ता ( इति=इत्युक्त्वा शकुन्तलां दर्शयति=अवलोकयति।

**राजा**—राजा=दुष्यन्तः शकुन्तलाभिमुखः—शकुन्तलाम् अभि तथा अभिगतं मुखं यस्य स अभिमुखः, एकदिक् मुखं यस्यासौ शकुन्तलाभिमुखः भूत्वा अपि=किं तपः= तपस्या वर्द्धते=वृद्धिं याति, धर्मानुष्ठानं वृक्षसेचनादिकं च भवत्या निर्विघ्नं भवति ?

( **शकुन्तला साध्वसात्**=संभ्रमेण भयेन वा अवचना अविद्यमानं वचनं यस्याः सा अवचना=अप्रतिवचना, मौनव्रता साध्वसादवचना सती तिष्ठति )

**अनसूया**—इदानीं=सम्प्रति अतिथेः=आधुनिकस्य विशेषस्य=श्रेष्ठतायाः लाभेन प्राप्त्या इति अतिथिविशेषलाभेन तपो वर्द्धते अस्याः शकुन्तलायाः। हला=अयि सखि शकुन्तले ! उटजं=पर्णशालां गच्छ=याहि फलैः मिश्रं=युक्तं फलमिश्रं, अर्घ्यं=अर्घ्यार्थं द्रव्यं, उपहर=आनय। इदं=वृक्षसेचनार्थमानीतं पुरतः स्थाप्यमानं कलसजलं पादोदकं= पाद्यं जलं भविष्यति=सेत्स्यति।

---

**( राजा को देखकर सभी चकित हो घबड़ा-सी जाती हैं )**

**अनसूया**—आर्य ! और तो दूसरी कुछ विशेष बात नहीं है, किन्तु हम लोगों की प्रिय सखी शकुन्तला इस दुष्ट भौंरे से डरकर कुछ व्याकुल सी हो रही है। **( शकुन्तला की ओर संकेत करती है )।**

**राजा**—**( शकुन्तला के अभिमुख होकर )** अयि सुन्दरी ! तुम्हारी तपस्या ( व्रत, नियम, वृक्षादि सेचन आदि ) तो ठीक से चल रही है न ?

**( शकुन्तला घबड़ाई हुई सी मुख नीचे कर खड़ी हो जाती है )**

**अनसूया**—आर्य ! आप जैसे अतिथि के प्राप्त होने से हमारी तपस्या अवश्य ही वृद्धि को प्राप्त हो रही है। अरि सखि शकुन्तले ! पर्णशाला में जाओ और फल से युक्त अर्घ्यपात्र को लाओ। यह वृक्ष सेचन के निमित्त लाया गया कलस का जल पादोदक के लिए प्रस्तुत है।

राजा—भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम् ।

प्रियंवदा—तेण हि इमस्सि पच्छाअसीदलाए सत्तवणवेदिआए मुहुत्तअं उववसिअ परिस्समविणोदं करेदु अज्जो । [ तेन ह्यस्या प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्ण-वेदिकायां मुहूर्त्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः । ]

राजा—ननु यूयमप्यनेन [1]कर्मणा परिश्रान्ताः ।

अनसूया—हला सउंदले उइदं णो पज्जुवासणं अदिहीणं । एत्थ उववसिम्ह । [ हला शकुन्तले उचितं नः पर्युपासनमतिथीनाम् । अत्रोपविशामः । ] (सर्वा उपविशन्ति)

---

राजा—अथ शकुन्तलायामासक्तो राजा दुष्यन्तः तस्याः क्षणिकमप्यदर्शनमसहमानः सन्नाह भवतीनां = युष्माकं सूनृतया = मधुरया एव गिरा = वचसा कृतं = सम्पादितम् अतिथिसत्कारः कृतः । भवतीनां मधुरभाषणेनैव तृप्तोऽस्मि, पाद्यार्घ्यादिः प्रयोजनं नास्तीति भावः । शास्त्रेषु अर्घ्येऽष्टानां वस्तूनां गणना विद्यते । तद्यथा—

आपः क्षीरं कुशाग्रं च दधि सर्पिः सतण्डुलम् ।
यवः सिद्धार्थकं चैव ह्यष्टाङ्गोऽर्घ्यः प्रकीर्तितः ॥

प्रियंवदा—तेन हि = यदि वाङ्मात्रेणैवातिथ्यं जातं तर्हि प्रच्छायशीतलायाम्—प्रकृष्टा छाया प्रच्छायं यद्वा प्रकृष्टा छाया यस्या प्रच्छाया = सघनछाया तया शीतलायां सप्तवर्ण-वेदिकायां—सप्तपर्णस्य = विषमच्छदस्य वेदिकायां = वेद्याम् मुहूर्तं = क्षणम् उपविश्य = स्थित्वा परिश्रमस्य = अध्वश्रमक्लान्तिम् अपनयतु = दूरीकरोतु भवान् यद्वा आर्यः = श्रीमान् परिश्रमस्य = अध्वश्रमक्लान्तेः विनोदम् = अपाकरणं करोतु = विदधातु ।

राजा—नूनमिति । न केवलं वयमेव, किन्तु ताभिः सह उपवेशनं कांक्षन् नूनं = निश्चयेन यूयमपि = भवत्योऽपि अनेन = धर्मकर्मणा = सेचनादिकृत्येन परिश्रान्ताः = क्लान्ताः । अतो युष्माकमपि परिश्रमविनोदनावसरोऽयमित्युपवेष्टव्यं भवतीभिरिति भावः ।

अनसूया—हला, सखि शकुन्तले ! नः = अस्माकं तपस्विकन्यकानां अतिथीनां विशिष्ट-स्यातिथेः नृपस्य पर्युपासनं = सत्कारः समीहिताचरणात्मकं पूजनम् । उचितं = योग्यं कृत्यम् । अत्र = स्थाने उपविशामः = उपतिष्ठामः ( इति = एवमुक्त्वा सर्वे नृपशकुन्तलाप्रियं-वदाऽनसूयाः उपतिष्ठन्ति ) ।

---

राजा—आपलोग कष्ट क्यों करती हैं । आपलोगों की इस प्रकार प्रिय एवं मधुर वाणियों से हमारा अतिथि सत्कार हो गया ।

प्रियम्वदा—अच्छा तो आप थोड़ी देर इस छायादार और शीतल सप्तपर्ण की वेदी पर बैठकर अपना मार्गश्रम = थकावट दूर कर लें ।

राजा—आप लोग भी वृक्षों के सेचनरूपी धर्म कार्य से थक गई हैं । अतः आपलोग भी थोड़ी देर यहाँ बैठकर विश्राम कर लें ।

प्रियम्वदा—हे सखि शकुन्तले ! हम लोगों को विशिष्ट अतिथि के पास बैठकर उसका आदर-सत्कार करना उचित तथा आवश्यक है । अतः आओ, हम लोग भी थोड़ी देर इनके पास बैठ जाँय । **( सभी बैठ जाती हैं )**

विशेष—प्रियम्वदा विनोदप्रिय होती हुई भी छोटी तथा अपरिपक्व बुद्धि है और अनसूया

---

पाठा०—१. धर्मकर्मणा ।

**शकुन्तला**—( आत्मगतम् । ) किं णु क्खु इमं पेक्खिअ तवोवण विरोहिण विआरस्स गमणीअम्हि संवुत्ता । [ **किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता ।** ]

**राजा**—( सर्वा विलोक्य ) अहो समवयोरूपरमणीयं भवतीनां सौहार्दम् ।

---

**शकुन्तला**—किं नु = इति वितर्के, खलु निश्चयेन इमं = जनम् अमुं दुष्यन्तं प्रेक्ष्य = दृष्ट्वा तपोवनस्य = आश्रमस्य विरोधिनः = प्रतिकूलस्य तपोवनविरोधिनः = तपस्विजनप्रतिकूलस्य विकारस्य = विकृतेः--विषयानुभवौन्मुख्यरूपस्य मनोविकारविशेषस्य गमनीया = लक्ष्यभूता प्राप्या संवृत्ता जाता । अनेन शकुन्तलायाः प्रथमः चित्तविकारारम्भरूपोऽङ्गजो भावः स्फुटं दर्शितः । उक्तं च--निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया ।

**राजा**—राजा = नृपो दुष्यन्तः ( सर्वाः=तिस्रः शकुन्तलाप्रियंवदाऽनसूयाः विलोक्य= दृष्ट्वा ) तासां परस्परं सौहार्दमालोक्य प्रसन्नो राजा दुष्यन्तः ताः समावर्जयितुं चाटुभाषणमारभते अहो, आश्चर्यं समानि वयांसि रूपाणि चेति समवयोरूपाणि तैः रमणीयमिति

---

प्रौढमति और गंभीर होने के साथ-साथ परिस्थिति संभालती रहती है । अनसूया ने शकुन्तला को भौंरे से परेशान बताया, जिससे राजा दुष्यन्त सहानुभूति में उसकी ओर मुखकर पूछते हैं, तबतक भौंरा भाग गया । तपोवन में सभी तपस्या करते हैं । अतः वहाँ तपस्वियों के लिए तप की वृद्धि सबसे बड़ी कुशल है । इसलिए राजा ने कुशल-प्रश्न के रूप में तपस्या की वृद्धि ही पूछी । गृहस्थ से स्वस्थता आदि पूछा जाता है, क्योंकि गृहस्थाश्रम में वही प्रमुख विषय हैं । शकुन्तला को ही अतिथि सत्कार करना है, पर वह वचन से भी सत्कार नहीं कर पाती, क्योंकि पहले तो भौरे से परेशान थी अब विशेष अतिथि राजा से घबड़ा गई है कि इनका उचित आतिथ्य मुझ से हो पायेगा या नहीं । सुनृत वाणी का अर्थ है मीठी वाणी । राजा ने कहा–आपलोगों की मीठी वाणी से ही मेरा अतिथि-सत्कार हो गया, अब पाद्य, अर्घ लाने की कोई जरूरत नहीं । अभी तक विनोदी प्रियम्वदा चुप थी, अवसर देख रही थी । राजा की बात सुनकर उनके साथ बातचीत करना अपना सौभाग्य समझ कर मधुरवाणी का परिचय देती हुई कहना आरम्भ किया—अच्छा तो महाराज ! इस छितौन वृक्ष की सघन शीतल छाया में क्षणभर बैठकर विश्राम कर लें । जब प्रियम्वदा ने राजा को बैठाने का अनुरोध किया तब राजा ने भी उनसे वहाँ बैठकर कुछ देर तक विश्राम कर लेने को कहा। यह परस्पर का अनुरोध भारतीय शिष्टाचार की एक परम्परा है । पर्युपासन का तात्पर्य है कि अतिथि के आस-पास बैठना । अतः वे तीनों राजा के पास बैठ गई ।

**शकुन्तला—( मन ही मन )** क्या बात है कि इन्हें देखकर मेरे मन में आश्रम विरोधी = प्रतिकूल भाव = कामविकार उत्पन्न हो रहा है ?

**विशेष**—शकुन्तला अपने मन में ही सोचती है, जिससे प्रतीत होता है कि प्रेम से वशीभूत हो गयी है । नाटकों में स्वगत एवं आत्मगत समानार्थ माने गये हैं । धनञ्जय ने अपने दशरूपक में कहा है कि दर्शकों के सुनने योग्य बात को प्रकाश कहते हैं और जिसको दर्शक सुन रहे हों, पर पात्र नहीं, इसको स्वगत कहा जाता है—'सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम् ।'

**राजा—( सबकी ओर देखकर )** अहा, परस्पर समान अवस्था और समान रूप वाली इन मुनिकन्याओं का प्रेम तथा इनका अनुराग भी आपस में कैसा सुन्दर है ।

**विशेष**—यद्यपि राजा का शकुन्तला के प्रति विशेष अनुराग हो गया है फिर भी उसे छिपा कर समूह से पृथक् कर एक की प्रशंसा अशिष्टता समझ कर सबके रूप, आकृति एवं स्वभाव के

**प्रियंवदा**—( जनान्तिकम् ) अणसूए को णु क्खु एसो चउरगम्भीराकिदो महुरं पिअं आलवन्तो पहाववन्दो विअ लक्खोअदि। ( जनान्तिकम् ) [ **अनसूये को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभाववानिव लक्ष्यते।** ]

**अनसूया**—सहि मम वि अत्थि कोदूहलं पुच्छिस्सं दाव णं ( प्रकाशम् ) अज्जस्स महुरालावजणिदो विसम्मो मं मन्तावेदि। कदमो अज्जेण राएसिणो वंसो अलंकरीअदि कदमो वा विरहपज्जुस्सुअजणो किदो देसो किंणिमित्तं वा

---

समवयोरूपरमणीयं = समेन = तुल्येन वयसा = अवस्थया, रूपेण = आकृत्या वा रमणीयं= सुन्दरं, मनोहरं भवतीनां = युष्माकं सौहार्दम् = मित्रता। अत्र रूपपदेन आकृतिः, सौन्दर्यं स्वभावश्चेति त्रितयं विवक्षितम्।

**प्रियंवदा**—राज्ञो दुष्यन्तस्य रूपसौन्दर्यादिना प्रलोभिता तत्त्वजिज्ञासया ( जनान्तिकं = त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्य दुष्यन्तं श्रावयन्ती अनसूयां प्रति प्राह ) अनसूये! सखि! नु शब्दो वितर्के खल्विति जिज्ञासायाम्। को नु खलु एषः = अयं निकटस्थः चतुर-गम्भीरा आकृतिर्यस्य स चतुरगम्भीराकृतिः = दर्शनीयगभीरस्वरूपः यद्वा दुरवगाहगम्भीरा-कृतिः–दुरवगाहा अत एव गम्भीरा = गभीरा आकृतिः=मुखमुद्रा यस्यासौ प्रियं, मधुरं = सरसं आलपन् = वार्तालापं कुर्वन् प्रभाववान् इव = प्रतापशालीव लक्ष्यते = अनुमीयते। आकृत्या स्वभावेन वाचा च मन्ये नायं प्राकृतो जन इति भावः। यदि अस्य रूपाद्यनु-रूपमभिजात्यमपि स्यात्तदा अस्मत्सख्याः शकुन्तलाया। वरत्वेनायं ग्रहीतुमुचित इति प्रियंवदाया गूढोऽभिसन्धिः।

**अनसूया**—सखि! = आलि! प्रियम्वदे! मम = मे अस्ति=वर्तते कौतूहलं=उत्सुकता

---

सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त कर रहे हैं जिससे सखियाँ न समझ सकें कि ये कहीं छिपकर शकुन्तला के अपूर्व सौन्दर्य को देख रहे थे। इस प्रकार राजा को तीनों की अवस्था, आकृति एवं परस्पर सौहार्द से आश्चर्य हो रहा था। अतः उन्होंने तीनों की प्रशंसा की है।

**प्रियम्वदा**—( **हाथ की आड़ कर केवल अनसूया से** ) सखि अनसूये! यह कौन व्यक्ति है जो देखने में गम्भीर आकृति वाला मालूम पड़ता है। इसके मधुर भाषण से यह अत्यन्त प्रभाव शील प्रतीत हो रहा है।

**विशेष**—राजा दुष्यन्त के शिष्ट व्यवहार तथा प्रभावशाली व्यक्ति का इतना प्रभाव पड़ा कि प्रियम्वदा हाथ की आड़ में मुख छिपा कर अनसूया से बातचीत करती हुई उनकी प्रशंसा कर रही है। दशरूपक में धनञ्जय ने जनान्तिक का लक्षण लिखा है कि बातचीत के प्रसंग में हाथ की अंगुलियाँ खड़ीकर और अनामिका को कुछ तिरछा कर जो कहा जाय उसे जनान्तिक कहते हैं। इस ढंग में वहीं व्यक्ति नहीं सुन पाता है जिसकी तरफ अनामिका तिरछी की जाती है, शेष सुनते रहते हैं।

'त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योऽन्यामन्त्रणं यत् स्यात् जनान्ते तज्जनान्तिकम्॥'

**अनसूया—हे सखि प्रियम्वदे! मुझे भी इस बात का बड़ा कुतूहल हो रहा है। अतः मैं इनसे**

---

पाठा०—१. चतुर।

सुउमारदरो वि तवोवणगमणपरिस्समस्स अत्ता पदं उवणीदो। [ सखि, ममाप्यस्ति कौतूहलम्। प्रक्ष्यामि तावदेनम्। ( प्रकाशम् ) आर्यस्य मधुरालापजनितो विस्रम्भो मां मन्त्रयते। कतम आर्येण राजर्षवंशोऽलंक्रियते कतमो वा विरहपर्युत्सुकजनः कृतो देशः किंनिमित्तं वा सुकुमारतरोऽपि तपोवनगमनपरिश्रमस्यात्मा पदमुपनीतः। ]

शकुन्तला—( आत्मगतम् ) हिअअ मा उत्तम्म। एता तुए चिन्तिद अणसूआ मन्तेदि [ हृदय मोत्ताम्य। एषा त्वया चिन्तितं अनसूया मन्त्रयते। ]

---

प्रक्ष्यामि = पृच्छामि तावत् = प्रथमम् एनं = इमं राजानम्, ( प्रकाशं = व्यक्तम् ) आर्यस्य = श्रीमतः, भवतः मधुरालापजनितः—मधुरेण = कर्णसुखकरेण आलापेन = संभाषणेन जनितः = उत्पन्नः विस्रम्भः = विश्वासः माम् = इमं जनम् अनसूयाम् मन्त्रयते = कथयितुं प्रेरयते, वचनेन नियोजयते, कतमः = कः आर्येण = श्रीमता, राजर्षेवंशः अलङ्क्रियते = कस्य राजर्षेः वंशे भवानुत्पन्नः कतमो वा देशः = स्थानम् विरहेण = वियोगेन पर्युत्सुकाः = उत्कण्ठिता जनाः यस्मिन् स विरहपर्युत्सुकजनः कृतः = विहितः कस्माद्देशादागतोऽसीति भावः। किंनिमित्तं = को हेतुः वा = च सुकुमारतरः = परिश्रमानर्हः अपि तपोवने यद्गमनं तस्य परिश्रमः क्लान्तेः इति तपोवनगमनपरिश्रमस्य आत्मा = देहः पदं = स्थानम् उपनीतः = प्रापितः, केन हेतुना भवानत्र आयात इति हि प्रश्नाशयः। अत्र क्रमशः वंशदेशौ आगमनहेतुश्च भङ्ग्या पृष्टः।

शकुन्तला—( आत्मगतं = स्वगतम् ) हृदयः = मनः मा उत्ताम्य = अलम् अधीरतया सन्तापं मा कृथाः। एषा = इयं निकटस्था अनसूया त्वया भवता = चिन्तितम् = इष्टम् मन्त्रयते = जिज्ञासाप्रकटनेन कथयति।

---

पूछती हूँ ( प्रगट में ) आर्य ! आपके इस मधुर भाषण से जो विश्वास उत्पन्न हो गया है, उसी से मैं आपसे यह पूछने की धृष्टता कर रही हूँ कि आपने किस राजर्षि वंश को अपने जन्म से अलंकृत किया है ? और आपने कौन देश को अपने विरह से उत्सुक=विरहाकुल किया है तथा किस लि[ए] आपने अपने इस सुकुमार शरीर को इस तपोवन में आने के कष्ट में लगाया है अर्थात् [आप] चन्द्र-सूर्यवंशों में किस राजवंश में आपका जन्म है ? और आप किस देश के निवासी हैं तथा इस तपोवन में आपके आने का क्या कारण है ? कृपया बताने का कष्ट करें।

**विशेष**—विश्वास की परिभाषा शास्त्रों में इस प्रकार की गई है—

'यद् यत् स्वचित्ते स्फुरति तत्तत् परिचितान् प्रति।
निःशेषं बोधयन् भावो विश्वास इति कथ्यते॥'

अनसूया तो पहले संकुचित-सी हो गई थी, किन्तु परिस्थिति के अनुकूल होते ही उसने भा[वुक] प्रश्नों की चर्चा छोड़कर व्यावहारिक प्रश्न करना प्रारम्भ कर दिया, जिससे उस आगन्तु[क] अपरिचित अतिथि को विशेष जानकारी हो सके। उसने सभ्यभाषा में राजा से तीन बातें पूछीं— आप किस वंश के राजा हैं ? आपका कौन सा देश है ? यहाँ आश्रम में आने का क्या कारण है ? इस प्रकार काव्यात्मक भाषा में वंश देश और आगमन का कारण पूछकर अनसूया ने प्रगल्भता और व्यवहार-पटुता का पूर्ण कौशल उपस्थित कर दिया है जिससे मधुर आलाप से सौहा[र्द]पूर्ण विश्वास का वातावरण प्रस्तुत हो गया है।

शकुन्तला—( मन ही मन ) हृदय अधीर मत हो। जो बात तुम जानना चाहती हो [उस] बात को तो वह अनसूया स्वयं ही पूछ रही है।

**राजा**—( आत्मगतम् ) कथमिदानीमात्मानं निवेदयामि कथं [1]वात्मापहारं करोमि। भवतु। एवं तावदेनां वक्ष्ये। ( प्रकाशम् ) भवति यः [2]पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः [3]सोऽहमविघ्नक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः।

**अनसूया**—सणाहा दाणि धम्मआरिणो [ सनाथा इदानीं धर्मचारिणः ]

---

**राजा**—( आत्मगतम् स्वगतम् =. ) कथं = कया रीत्या इदानीं = अधुना आत्मानं = स्वस्य परिचयम्, निवेदयामि = कथयामि कथं वा = कया रीत्या वा आत्मापहारं = स्वस्य गोपनं निग्रहणं करोमि = कुर्याम् आत्मनिगूहनं धर्मशास्त्रेषु अधर्म्यं प्रतिपादितमस्ति। तथा हि—

'योऽन्यथा सन्तमात्मामन्यथा सत्सु भाषते। स पापकृत्तमो लोकस्तेन आत्मापहारकः॥'

भवतु = अस्तु, निर्णीतम्, एवं = अनया रीत्या तावत् एनां = इमाम् अनसूयां वक्ष्ये = वदिष्यामि, ( प्रकाशं = स्पष्टम् ) भवति = देवि ! यः पौरवेण = पुरुवंशीयेन राज्ञा = नृपेण दुष्यन्तेन धर्माधिकारे = धर्मरक्षारूपेऽधिकारे नियुक्तः = आदिष्टः, अधिकृतः सः = पूर्वोक्तः अहमयं जनः अविघ्नक्रियोपलम्भाय-अविघ्नानां = क्रियाणाम् उपलम्भाय = क्रिया निर्विघ्ना न वेति ज्ञातुम् इदं = एतत् धर्मारण्यं = रणे साधुरण्यं न रण्यम् अरण्यं धर्मस्य अरण्यं धर्मारण्यम् = तपोवनम् धर्मस्य धर्मसाधनं धर्मार्थं वा अरण्यं धर्मारण्यं आयातः = आगतः।

अयं भावः राज्ञो दुष्यन्तस्य धर्मसचिवोऽहं धर्मरक्षार्थमिहागत इति आत्मनिगूहनरूपो बाह्यार्थः। पौरवेण राज्ञा = इलिलनाम्ना मत्पित्रा धर्माधिकारे = धर्मस्वरूपे प्रजापरिपालनरूपेऽधिकारे नियुक्तः = अभिषेकपूर्वं स्थापितः दुष्यन्त इति प्रसिद्धोऽहमिति बाह्यार्थः।

**अनसूया**—अथ तद्वचनं सादरमनुमोदमाना अनसूया प्राह—इदानीं = साम्प्रतम्

---

**राजा**—( **मन ही मन** ) मैं अब अपने को कैसे प्रकट करूँ ? और छिपाऊँ तो कैसे छिपाऊँ ? अच्छा इस प्रकार कहता हूँ ( **प्रगट में** ) श्रीमती जी, मैं तो पौरव राजा का आज्ञाकारी पुत्र हूँ और उनके नगर की रक्षा करने को नियुक्त हूँ। तथा पुण्य आश्रमों को देखने की अभिलाषा से धर्मारण्य = तपोवन में आ गया हूँ।

**विशेष**—मनुजी ने अपनी मनुस्मृति में पर-पत्नी तथा असम्बद्ध स्त्री को भवती, सुभगा और भगिनी कहने का आदेश दिया है, जिसके अनुसार राजा दुष्यन्त ने मुनिकन्याओं को भवती कहा है—

'परपत्नी तु या स्त्री स्यादसम्बद्धा च योनितः।
तां ब्रूयाद् भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च॥'

पहल राजा दुष्यन्त ने अपने को छिपाने में असुविधा तथा प्रगट होने में मुनिकन्याओं के संकोच का अनुभव कर द्वैविध्य में पड़ गये हैं, पर पुनः उन्होंने निर्णय लिया कि पौरव का अर्थ दुष्यन्त-पिता और दुष्यन्त दोनों होना संभव है। अतः अपने को छिपा रखने का उपाय उन्हें मिल गया है।

**अनसूया**—हे आर्य ! आपके आने से हम सब धर्माचरणशील आश्रमवासी सनाथ और कृतार्थ हो गये।

**विशेष**—धर्मचारी शब्द जातिवाचक होने के कारण स्त्री और पुरुष दोनों के लिए प्रयुक्त होता है।

---

पाठा०—१. आत्मनः परिहारं। २. पौरवेण नगरधर्मा। ३. पुण्याश्रमदर्शनप्रसंगेन।

( शकुन्तला शृङ्गारलज्जां रूपयति । )

**सख्यौ**—( उभयोराकारं विदित्वा । जनान्तिकम् । ) हला सउन्दले जइ एत्थ अज्ज तादो संणिहिदो भवे [ हला शकुन्तले यद्यत्राद्य तातः संनिहितो भवेत् । ]

**शकुन्तला**—तदो किं भवे । [ ततः किं भवेत् । ]

---

धर्मचारिणः = तपोवनवासिनो वयं धार्मिकाः सनाथाः—भावेन = रक्षकेन सहिता सनाथाः। पूर्वं तु सनाथत्वमस्पष्टमासीत्, परमिदानीं स्पष्टमभूदिति भावः । राज्ञो द्व्यर्थकवचनेन अयं राजप्रतिनिधिः राजा वायमिति ज्ञात्वाऽनसूया सनाथत्वं प्रोक्तवती ।

राज्ञो रूपदर्शनेनाङ्कुरितायाः पश्चादाभिजात्यादि-श्रवणेन परिपोषं प्राप्तायाश्च रतेः रवस्थान्तरमनुभावद्वारा दर्शयति—शृङ्गारेति । शकुन्तला शृङ्गारलज्जां = शृङ्गाररसाश्रयां भ्रूभङ्गादिना साकूतं लज्जां = कामचेष्टां वा सव्रीडं नाटयति = सलज्जमभिनयति तदनेन हावो नाम नायिकाङ्गजोऽलङ्कारो दर्शितः । तदुक्तम्—

'भ्रूनेत्रादिविकारैस्तु सम्भोगेच्छाप्रकाशकः । भाव एवाल्पसंलक्ष्य विकारो हाव उच्यते ॥'

लज्जां हि कन्याजनसुलभा भवति—यथा हि भोजराजः—

'दुराचारादिभिर्व्रीडा धाष्टर्याभावस्तमुन्नयेत् । साचीकृताङ्गावरणे वैवर्ण्याधोमुखादिभिः ॥'

लज्जा नाम अन्तरुद्भिन्नमान्मथिकविकारजुगोपायिषा मदनविजृम्भणरूपा शृङ्गाररसतरङ्गिणी, यथा रूढा निर्भरतया तांस्तान् विलासान् नेत्रगात्रविकारपरम्परारूपान् सूते। शृङ्गारलज्जालक्षणं तु परावृत्तेन शिरसा लज्जितया दृशा च । तल्लक्षणं यथा—

'पराङ्मुखीकृतं शीर्षं पारावृत्तमुदीरितम् ।
तत्कार्यं कोपलज्जादि कृते वक्त्रापसारणे ॥
मिथोऽभिगामि-पक्ष्माग्राऽप्यधस्ताद् गततारका ।
पतितोर्ध्वपुटाद्दृष्टिर्लज्जया लज्जिता मता ॥'

**सख्यौ**—इदानीं विदग्धयोः सख्योः प्रवृत्तिमाह—सख्यौ = अनसूया प्रियम्वदा च उभयोः शकुन्तला-दुष्यन्तयोः आकारं = मुखाकृतिं विदित्वा = आकारेण उभयोरनुरागं ज्ञात्वा परस्पराभिलाषमनुभावैरवधार्य वा । सोपहासं सख्यौ शकुन्तलामाहतुः—हला शकुन्तले ! यद्यत्र अद्य = इदानीं अतिथिविशेषलाभे, त्वदनुरूपवरलाभे तातः = कुलपतिः कण्वः सन्निहितः = उपस्थितः भवेत् = स्यात् ।

**शकुन्तला**—ततः किं भवेत् = तदा किं स्यात् ।

---

**( शकुन्तला हाव, भाव, कटाक्ष आदि कामविकारप्रदर्शनपूर्वक शृङ्गार लज्जा का अभिनय करती है । )**

**दोनों सखियाँ—( दोनों की आकृति देखकर शकुन्तला से )** सखि शकुन्तले ! आज यहाँ यदि तात कण्व उपस्थित होते ।

**विशेष**—दुष्यन्त और शकुन्तला दोनों के चेहरे पर परस्पर आकर्षक अनुराग को देखकर दुष्यन्त को न सुनने देने के लिए उनकी तरफ हथेली करके, उस समय महर्षि कण्व के न उपस्थित रहने का पश्चात्ताप करती हुई शकुन्तला से कहती हैं—सखि, यदि इस सु-अवसर पर पिताजी होते तो ।

**शकुन्तला**—तो क्या होता !

**सख्यौ**—इमं जीवितसव्वस्सेण वि अदिहिविसेसं किदत्थं करिस्सदि। [ इमं जीवितसर्वस्वेनाप्यतिथिविशेषं कृतार्थं करिष्यति। ]

**शकुन्तला**—तुम्हे अवेध। किं हिअए करिअ मन्तेध। ण वो वअणं सुणिस्सं। [ युवामपेतम्। किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे। न युवयोर्वचनं श्रोष्यामि। ]

**राजा**—वयमपि तावद्भवत्योः सखीगतं [1]किमपि पृच्छामः।

**सख्यौ**—अज्ज अणुग्गहो विअ इअं अब्भत्थणा। [आर्य अनुग्रह इवेयमभ्यर्थना। ]

---

**सख्यौ**—अनसूया प्रियम्वदा च विवक्षितार्थगोपायनपुरःसरं इमं जनं लोकोत्तरगुण-विशिष्टमतिथिविशेषं राजानम् जीवितसर्वस्वेन=जीवितस्य जीवनस्य सर्वस्वेन=सर्वो-त्तमवस्तुना तपःप्रभावैर्नीतैर्लोकोत्तरपदार्थैरपि कृतार्थं=करिष्यति विवाहादिना यथार्थं सम्मानयेत्। अस्मै अतिथित्वेनागताय त्वदनुरक्ताय महाराजाय जीवितसर्वस्वभूतां त्वं प्रदास्यतीति व्यङ्ग्यार्थः।

**शकुन्तला**—नायकसमक्षं प्रस्तुतां सखीजनवक्रतां बुद्ध्वा सलज्जा कृतककोपेनाह—युवां=भवत्यौ अपेतम्=मत्समीपाद् दूरे गच्छतम् किमपि=कन्यकानामवाच्यं लज्जाकरं किञ्चिद् वस्तु हृदये=अन्तःकरणे कृत्वा=निधाय मन्त्रयेथे=वदथः न युवयोः=परि-हासशीलयोः भवत्योः वचनं=एकमपि वाणीं श्रोष्यामि=आकर्णयिष्यामि।

**राजा**—अथ तथाविधां शकुन्तलामालोक्य परिवृद्धाभिलाषो राजा तस्याः क्षत्रिय-परिग्रहयोग्यतां द्रढयितुं तदुत्पत्ति प्रष्टुमारभते=वयमपि यथा यूयमस्मत्कुलानामाद्य-पृच्छत तथा तावद् भवत्योः युवयोः सखीगतं=सखिसम्बन्धि-शकुन्तलाविषयकं पृच्छामः =प्रष्टुमिच्छामः।

**सख्यौ**—सख्यौ=प्रियम्वदानसूये कथयतः—आर्य !=श्रीमन् ! अनुग्रहः=कृपा इव=तत्तुल्यः इयं=एषा जिज्ञासारूपा अभ्यर्थना=प्रार्थना। भवत्प्रश्नस्य सखीवृत्तान्त-विषयकत्वेन तस्या अभ्युदयहेतुत्वात् अनुग्रहात्मना संभावयावः। एवं च भवतः प्रश्नोऽय-मनुग्रहतुल्य एवेति कामं पृच्छतु भवानिति सूचितम्।

---

**दोनों सखियाँ**—तो अपने जीवनसर्वस्व = शकुन्तला को देकर भी इस विशिष्ट अतिथि वर का सत्कार करते।

**विशेष**—जीवन सर्वस्व का अर्थ है—जीवन का सब कुछ, जिसके दो अर्थ संभव हैं—बड़ी से बड़ी वस्तु और जीवन का सबसे बड़ा धन शकुन्तला। महर्षि कण्व शकुन्तला को प्राणों से भी अधिक मानते थे। इस लिए यह उनका उत्तम धन है। दुष्यन्त को कृतार्थ करने का तात्पर्य है कि उन पर आसक्त अभिलषित शकुन्तला को समर्पित कर उन्हें सन्तुष्ट कर देना।

**शकुन्तला**—जाओ हटो, तुम दोनों तो न मालूम क्या मन में रखकर ऐसी-ऐसी बातें कर रही हो। मैं तुम्हारी बातें सुनूँगी ही नहीं।

**राजा**—जैसे आप लोगों ने मेरा कुल और नाम पूछा है वैसे ही मैं भी आपलोगों की इस सखी के विषय में आप लोगों से कुछ पूछना चाहता हूँ।

**दोनों सखियाँ**—पूछिए, पूछिए। भला अनुग्रह में भी कभी प्रार्थना की जरूरत होती है ? अर्थात् यदि आप पूछेंगे तो हम लोगों पर अनुग्रह ही होगा।

---

पाठा०—१. किञ्चित्।

राजा—भगवान् काश्यपः शाश्वते ब्रह्मणि स्थित इति प्रकाशः। इयं च वः सखी तदात्मजेति कथमेतत्।

अनसूया—सुणादु अज्जो। अत्थि को वि कोसिओत्ति गोत्तणामहेओ महाप्पहावो राएसी। [ श्रृणोत्वार्यः। अस्ति कोऽपि कौशिक इति गोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः। ]

---

राजा—तद्वचसा सन्तुष्टः पृच्छति—भगवान्=ऐश्वर्यादिषड्गुणसम्पन्नः श्रीमान् काश्यपः शाश्वते ब्रह्मणि स्थितः=परब्रह्मणि नियोजितात्मा यद्वा नैष्ठिकब्रह्मचर्ये स्थितः, परिग्रहसहित्यादूर्ध्वरेता इति यावत्, इति प्रकाशः=प्रसिद्धोऽयमर्थः। इयं=एषा च वः=युष्माकं सखी=आलिः शकुन्तला तदात्मजा=तस्यौरसी पुत्री इति=इदं भवतीभ्यां कथितम् एतत्=इदं कथं=केन प्रकारेण संगच्छते ?। तत्प्रकारः कथ्यतामिति भाव।

अनसूया—अथ शकुन्तलोत्पत्तिसम्बन्धिनीं कथां कथयितुमुपक्रमते=श्रृणोतु आर्यः=श्रीमान् आकर्णयतु अस्ति=आसीत् कोऽपि=कश्चित् कुशिकस्य गोत्रापत्यं पुमान् कौशिको विश्वामित्रः इति=एवं प्रकारेण गोत्रकृतं नामधेयं यस्यासौ गोत्रनामधेयः—वंशनामा। महाप्रभावः=विपुलप्रतापः राजर्षिः=राजा=नृपः ऋषिः मुनिरिव इति राजर्षिः।

---

राजा—भगवान् कण्वमुनि तो सदा से नैष्ठिक ब्रह्मचारी प्रसिद्ध हैं। आपकी सखी शकुन्तला उनकी पुत्री है ऐसा आप लोगों ने कहा ही है, तो यह बात कैसे ? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को यह पुत्री कैसे हुई ?

विशेष—शास्त्रों में भगवान् उन्हें कहा गया है, जिनके पास निम्नाङ्कित छह गुण हो—

'उत्पत्ति प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥'

अथवा भग = ऐश्वर्य वाले को भगवान् कहते हैं। समग्र ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और विराग इन छह वस्तुओं का नाम भग है—

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञान-वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥'

आत्मजा औरस पुत्री को कहते हैं, और नैष्ठिक ब्रह्मचारी विवाह न करने वाले ब्रह्मचारी को कहते हैं ? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को औरस कन्या कैसे ? यह प्रश्न भद्र भाषा में उठाया गया है। राजा दुष्यन्त ने पहले तो महर्षि कण्व की विजातीय भार्या में शकुन्तला की उत्पत्ति की बात सोची थी, अब विवाह प्रसंग में कण्व के नैष्ठिक ब्रह्मचर्य में सन्देह करते हैं। जो एक धर्मात्मा राजा के लिए उचित ही है। यहाँ कण्व ऋषि को काश्यपवंश में उत्पन्न कहा गया है।

अनसूया—आर्य ! सुनिए, कौशिक नाम के महाप्रभावशाली राजर्षि थे।

विशेष—पुराणों के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र कुश राजा के वंश में उत्पन्न होने के कारण विश्वामित्र को कौशिकी कहा जाता है, किन्तु महाभारत के अनुसार कान्यकुब्ज के राजा कुश के पुत्र गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए हैं।

'कान्यकुब्जे महानासीत् पार्थिवो भरतर्षभ !।
गाधीति विश्रुतो लोके कुशिकस्यात्मसंभवः ॥
तस्य धर्मात्मनः पुत्रः समृद्धबलवाहनः।
विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः ॥'

विश्वामित्र जी के महाप्रभाव की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है—

तप के द्वारा राजर्षि से ब्रह्मर्षि हो जाना, अंजीगर्त के पुत्र शुनःशेप की वरुण से रक्षा करना, त्रिशंकु को मानव शरीर से स्वर्ग भेजना तथा नई सृष्टि की रचना आदि उनके महाप्रताप के द्योतक हैं।

राजा—अस्ति । श्रूयते ।

अनसूया—त णो पिअसहीए पहवं अवगच्छ । उज्झिआए सरीरसंबड्ढणादिहिं तादकस्सवो से पिदा । [ तमावयोः प्रियसख्याः प्रभवमवगच्छ । उज्झितायाः शरीर-संवर्धनादिभिस्तातकाश्यपोऽस्याः पिता । ]

राजा—उज्झितशब्देन जनितं मे[1] कौतूहलम् । [2]आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि ।

---

राजा—दुष्यन्तः आत्मनः श्रवणौत्सुक्यं द्योतयितुं तदुक्तमनुमोदमानः प्राह—अस्ति=आसीत् श्रूयते=आवर्णनमात्रेण तत्सत्तां जानामि ।

अनसूया—श्रोतुमौत्सुक्यमवधार्य सोत्साहं प्राह—तं=राजर्षिं कौशिकं आवयोः प्रियसख्याः=शकुन्तलायाः प्रभवं=जनकं अवगच्छ=जानीहि । कथं तर्हि कण्वपुत्रीति व्यपदेश इत्यत आह—उज्झितायाः=प्रसवानन्तरं जनन्या परित्यक्तायाः शरीरपरिवर्द्धना-दिभिः=कलेवरपोषणादिभिः तातकाश्यपः=महर्षिः कण्वः अस्याः=शकुन्तलायाः पिता=पातीत्यन्वर्थनामा न तु जनकः यथोक्तं—

'कन्यादाताऽन्नदाता च जन्मदाताऽभयप्रदः ।
जन्मदो मन्त्रदो ज्येष्ठभ्राता च पितरः स्मृताः ॥'

राजा—नृपो दुष्यन्तः सख्योक्त्या शकुन्तलाया राजर्षिबीजात् संभवं ज्ञात्वा तामात्मनः परिग्रहयोग्यां मन्यमानः अत एव प्रवर्द्धमानोऽनुरागस्तन्मातरं ज्ञातुं तदुत्पत्तिं विस्तरेण श्रोतुकाम आह=उज्झित इति शब्देन मे=मम मनसि कौतूहलं=जिज्ञासा जनितं=उत्पन्नम् आमूलात्=आदित आरभ्य, आरम्भात् श्रोतुं=आकर्णयितुं, इच्छामि=कामये ।

---

राजा—हाँ, उनका नाम तो मैंने खूब सुना है ।

अनसूया—हमारी सखी शकुन्तला के वे ही विश्वामित्र जी पिता हैं, परन्तु इस शकुन्तला को इसकी माता ने यों ही छोड़ दिया था । अतः इसका पालन-पोषण कुलपति कण्व ने किया है । इसलिए इसके पालन-पोषण करने के कारण महर्षि कण्व भी इसके पिता के समान हैं, क्योंकि पालन-पोषण करने वालों को भी शास्त्रों में पिता कहा गया है ।

विशेष—महाभारत के आदि पर्व में जो गर्भाधान के शरीर निर्माण करता है, जो अभय दान देकर प्राणों की रक्षा करता है और जिसका अन्न भोजन किया जाता है, ये तीनों पिता कहे गये हैं—

'शरीरकृत् प्राणदाता यस्य चान्नानि भुञ्जते । क्रमेणैव त्रयः प्रोक्ताः पितरौ धर्मसाधने ॥'

इन्द्र द्वारा भेजी गयी अलौकिक सौन्दर्य सम्पन्न मेनका अप्सरा ने अपने हावभावों के द्वारा अग्नि के समान तेजस्वी विश्वामित्र मुनि को तपोभ्रष्ट कर उनके साथ संभोग किया और शकुन्तला को जन्म देकर निर्जन वन में उसे छोड़ कर इन्द्र लोक चली गई । बाद महर्षि कण्व ने उस निर्जन वन में घेर कर शकुन्तों ( पक्षियों ) द्वारा रक्षित उसे लाकर रक्षा किया और उसका नाम शकुन्तला रख दिया । ( अतः शकुन्तोंद्धार रहित होने के कारण इसका नाम शकुन्तला पड़ा ) ।

'निर्जने तु वने यस्माच्छकुन्तैः परिवारिता । शकुन्तलेति नामास्या कृतं चापि ततो मया ॥ ७२।१६

इस प्रकार अपने यहाँ लाकर प्राण दाता और अन्न दाता होने के कारण महर्षि कण्व शकुन्तला के पिता कहे जाते हैं । वह वस्तुतः मेनका में उत्पन्न विश्वामित्र की पुत्री थी ।

राजा—इच्छित शब्द ने मुझ में उत्सुकता उत्पन्न कर दी है । यह क्यों छोड़ दी गई इस प्रसंग को मैं आरम्भ से सुनना चाहता हूँ ।

---

पाठा०—१. न्नः । २. तदामूला ।

**अनसूया**—सुणादु अज्जो पुरा किल तस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किंवि जातसङ्केहिं देवेहिं मेणआ·णाम अच्छरा पेसिदा णिअमविग्घकालिणी।
[ **शृणोत्वार्यः। पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नामाप्सराः प्रेषिता नियमविघ्नकारिणी।** ]

**राजा**—अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्।

---

**अनसूया**—शृणोतु=आकर्णयतु आर्यः=श्रीमान्, पुरा=प्राचीनकाले किल=ऐतिह्यम्, तस्य=उक्तस्य राजर्षेः=नृपमुनेः उग्रे=उत्कटे तपसि=तपस्यायां वर्तमानस्य=विद्यमानस्य देवैः=अमरैः विघ्नकारिणी नियमे तपसि विघ्नं=बाधां करोति तच्छीला विघ्नकारिणी=तपोभङ्गकारी मेनका नाम=मेनकाख्या नाम अप्सराः=स्वर्गवामा प्रेषिता=प्रहिता।

**राजा**—अनसूयोक्तं समर्थयन् राजा प्राह—अस्ति=भवति एतत्=इदं पूर्वोक्तम्,

---

**अनसूया**—महाराज, सुनिए, वे कौशिक विश्वामित्र नामक ऋषि, जिस समय गोदावरी नदी के तट पर उग्र तपस्या कर रहे थे, तो उनकी तपस्या से शङ्कित देवताओं ने उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए मेनका अप्सरा को उनके पास भेजा।

**राजा**—ठीक है, देवता लोग तो दूसरे की समाधि एवं तपस्या से हमेशा डरते ही रहते हैं हां, तो फिर आगे क्या हुआ?

**विशेष**—'अप्सु सरतीति अप्सराः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जल में चलने वाली या जल से उत्पन्न होने वाली को अप्सरा कहा जाता है।

अप्सराएँ स्वर्ग में इन्द्र-सभा की नर्तकी का काम करती हैं। ये नाच और गान में अत्यन्त निपुण हैं। कई तरह से इनकी उत्पत्ति बताई गई है। किसी उग्र तपस्वी के तप से डर कर देवता लोग इन्हें तपोभङ्ग करने के लिए भेजते रहते हैं। भिन्न-भिन्न तपस्वियों के तप को नष्ट करने के निमित्त भिन्न-भिन्न अप्सरायें जाती हैं। ये हमेशा युवती बनी रहती हैं।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार जल-मन्थन से उत्पन्न रस से अप्सरायें उत्पन्न हुई हैं।

'अप्सु निर्मथनादेव रसात्तस्माद्वरस्त्रियः।
उत्पेतुर्मनुश्रेष्ठ ! तस्मादप्सरसोऽभवन् ॥' ४५।३३

महाभारत में उर्वशी, पूर्वचित्ति, सहजन्या, मेनका, विश्वाची और घृताची छह अप्सरायें ब्रह्मा से उत्पन्न कही गई हैं। इनमें मेनका सर्वश्रेष्ठ कही गई है—

'उर्वशी विप्रचित्तिश्च सहजन्या च मेनका।
विश्वाची च घृताची च षडेवाप्सरसां वराः॥
दिवः सम्प्राप्य जगती विश्वामित्रादजीजनत्॥'

अप्सराओं के लुभाने पर बड़े-बड़े ऋषि, महर्षि, देवर्षि, राजर्षि, तपस्वी आदि की तपस्यायें भंग हो जाती हैं। ये इन्द्र के दरबार की अमोघ अस्त्र हैं।

विश्वामित्र जी की उग्र तपस्या को भंग करने के निमित्त जब इन्द्र ने मेनका से कहा तब उसने काम और पवन को सहायता के लिए इन्द्र से मांगा, बाद पवन ने मालिनी नदी के तीर पर तप में संलग्न ऋषि के सामने मेनका के इच्छानुसार मेनका को विवस्त्र कर दिया और काम ने उत्तेजना पैदा कर दी। ऋषि का मन विकृत हो उठा। बाद उन्होंने मेनका को बुलाकर उसके साथ संभोग किया, परिणाम स्वरूप वहीं नवजात शकुन्तला को छोड़कर मेनका तत्काल पुनः इन्द्रलोक चली गई। ऋषि पुनः तप करने के लिए अन्यत्र चले गये। अप्सरायें भारत भूमि पर उत्पन्न शिशुओं को अपने साथ नहीं ले जाती हैं। इस प्रकार मेनका तथा विश्वामित्र से शकुन्तला की उत्पत्ति है। अप्सरा पुत्री होने के नाते शकुन्तला का रूप-सौन्दर्य भी उसी के समान अपूर्व था।

अनसूया—तदो वसन्तोदारसमए से उम्मादइत्तअं रूवं पेक्खिअ [ ततो वसन्तोदारसमये तस्या उन्मादयितृकं रूपं प्रेक्ष्य ] ( अर्धोक्ते लज्जया विरमति )।

राजा—[1]परस्ताज्ज्ञायत एव। सर्वथाप्सरःसंभवैषा।

अनसूया—अहइं। [ अथ किम्। ]

राजा—उपपद्यते।

[2]मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्॥ २५॥

---

अन्यस्य = परस्य समाधेः = तपसः भीरुत्वं = वैक्लव्यमिति अन्यसमधिभीरुत्वं देवानां = सुराणां यत्ते विघ्नमाचरन्ति। देवा अन्येषां तपांसि दृष्ट्वा स्वपदच्युतिमाशङ्कन्ते इति भावः। ततस्ततः = अग्रे किं जातम्।

अनसूया—ततः = मेनकाप्रेषणानन्तरं वसन्तस्य = वसन्तर्तोः उदारे = श्रेष्ठे समये = काले इति वसन्तोदारसमये उन्मादहेतुकं = उन्मादस्य = चित्तविकृतेः हेतुकं = हेतुभूतं जनकं तस्याः = मेनकायाः रूपं = सौन्दर्यं प्रेक्ष्य = आलोक्य। इति = एतावन्मात्रेण अर्द्धोक्ते: अर्द्धमुक्त्वा मध्ये एव विच्छेदिते वाक्ये लज्जां नाटयति = लज्जिताऽभूत्, अग्रेऽस्यार्थस्याश्लीलत्वात्। लज्जया वा विरमतीति पाठे लज्जया = त्रपया विरताऽभवत्!

राजा—परस्तात् = परं अवशिष्टं ज्ञायते = बुध्यते एव अतो न वक्तव्यम्। सर्वथा = नूनमियम् अप्सरःसंभवा = अप्सरो मेनका संभवः = उत्पत्तिर्यस्याः सा मेनकोत्पन्ना।

अनसूया—अथ किम्? बाढम्।

राजा—उपपद्यते = अस्या अप्सरः संभवत्वं युक्त्या युज्यते।

अन्वयः—मानुषीषु अस्य रूपस्य संभवः कथं वा स्यात प्रभातरलं ज्योतिः वसुधातलात् न उदेति।

मानुषीष्विति। मानुषीषु = मनुजस्त्रीषु अस्य = एतस्य लोकोत्तरसौन्दर्यादिगुणगणविशिष्टस्य रूपस्य = आकृतेः संभवः = उत्पत्तिः कथं वा = केन प्रकारेण वा स्यात् = संभवेत् एवंविधसौन्दर्यवत्या अस्या मानुषीषु संभवस्य संभावनाऽपि नास्तीत्यर्थः। उक्तार्थं दृष्टान्तेन द्रढयति—नेति। प्रभातरलं = प्रभाभिः = दीप्तिभिः तरलं = चपलमिति प्रभातरलं = विद्युत् सूर्यः चन्द्रो वा वसुधातलात् = पृथ्वीपृष्ठात् भूमण्डलात् न उदेति =

---

**अनसूया**—वसन्त ऋतु के आगमन से रमणीय, मनोहर और सुहावने समय में अप्सरा मेनका के कामजनक रूप को देखकर विश्वामित्रजी का चित्त चंचल हो उठा।

**( बीच में ही लज्जित हो चुप हो जाती है। )**

**राजा**—आगे का वृत्तान्त तो स्पष्ट ही है कि ऋषि उस मेनका पर आसक्त हो गये। और इस प्रकार विश्वामित्र जी के द्वारा मेनका के गर्भ से यह शकुन्तला उत्पन्न हुई है।

**अनसूया**—जी हाँ, और क्या।

**राजा**—यह ठीक ही है, क्योंकि—

ऐसे रूप का उद्भव मनुष्य स्त्रियों में कहाँ, संभव हो सकता है? क्या कभी प्रभापुञ्ज से चमकती हुई ज्योति ( बिजली, चाँद या सूर्य भी भला पृथ्वी से ) पैदा हुआ करती हैं॥ २५॥

---

पाठा०—१. परस्तादवगम्यत। २. मानुषीभ्यः कथं नु स्यादस्य।

( शकुन्तलाधोमुखी तिष्ठति । )

**राजा**—( आत्मगतम् ) लब्धावकाशो मे मनोरथः । किम् तु सख्याः परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनां श्रुत्वा धृतद्वैधीभावकातरं मे मनः ।

**प्रियंवदा**—( सस्मितं शकुन्तलां विलोक्य नायकमभिमुखी भूत्वा ) पुणो वि वत्तुकामो विअ अज्जो । [ पुनरपि वक्तुकाम इवार्यः । ]

---

नाविर्भवति । यथा विद्युत् भूमेर्नोदेति तथेयं न मनुष्या संभवति तथा च मानुषीषु स्त्रीषु ईदृग्रूपस्य दृष्टिगोचरत्वादियमप्सरः सम्भवैव । यत एषा अप्सरः संभवा तत एवेदृग्रूपशालिनीति भावः । रूपलक्षणं यथा—

'अङ्गान्यभूषितान्येव प्रक्षेप्याद्यैर्विभूषणैः ।
येन भूषितवद्भान्ति तद्रूपमिति कथ्यते ॥'

अत्र प्रतिवस्तूपमा निदर्शनं चालङ्कारः छन्दश्चानुष्टुबेव ॥ २५ ॥

( शकुन्तला अधोमुखी तिष्ठति, अधः = नीचैः मुखं = वदनं यस्याः सा अधोमुखी = निम्नवदना सती तिष्ठति = उपाविशते स्वप्रशंसया स्ववृत्तान्तेन चात्र सलज्जता । )

**राजा**—( आत्मगतम्–आत्मनि = स्वस्मिन् गतं प्राप्तम् आत्मगतं = स्वगतम् ) स्वमनोरथानुकूलां शकुन्तलोत्पत्तिमवधार्य परिग्रहयोग्येयमिति निश्चन्वानः स्वयं परामृशति–लब्धः = प्राप्तः अवकाशः = प्रवेशद्वारं येन स लब्धावकाशः, मनोरथः = अभिलाषः । समुचितविषयोऽयमभिलाषोपगत इत्यर्थः । स्नेहः पापशङ्कीति नीत्या पुनरपापमाशङ्कमान आह—किन्तु सख्याः = प्रियम्बदायाः परिहासोदाहृतां विनोदकथितां वरप्रार्थनां वराय = पत्ये प्रार्थनां = इच्छां श्रुत्वा = निशम्य धृतः = आरूढः द्वैधीभावः = संशयदोलारुढता येन अतः कातरं = व्याकुलमतिधृतद्वैधीभावकातरं मे = मम मनः = मानसम् । सखीवचनस्य परिहासरूपतया तत्राप्रामाण्यशङ्कोदयात् अहमेव = वरो वा तापसा वा कश्चिदिति संशय इति यावत् ।

**प्रियम्वदा**—( स्मितेन = विहासेन सह वर्तते इति सस्मितमीषद्धासपूर्वकं शकुन्तला-

---

( शकुन्तला नीचे मुँह कर लेती है । )

**विशेष**—अपने रूप की प्रशंसा सुनकर सिर नीचा कर लेना उत्तम नायिकाओं का लक्षण है।

**राजा**—( **मन ही मन** ) अह ! हा, तब तो मेरी इच्छा के पूर्ण होने का यही अवसर मालूम पड़ता है । अर्थात् यह शकुन्तला विश्वामित्र द्वारा मेनका अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न क्षत्रिय कन्या है महर्षि कण्व की औरस पुत्री ब्राह्मणी नहीं है । अतः अब इसे प्राप्त कर सकूँगा, किन्तु इसकी सखी प्रियम्बदा ने जो परिहास में इस शकुन्तला से कहा था कि तेरा अब विवाह शीघ्र ही होगा इससे तो मैं शङ्कित और व्याकुल-सा हो रहा हूँ । कहीं इसका विवाह सम्बन्ध अन्यत्र तो ठीक नहीं हो गया है । परिहास की बात झूठी भी हो सकती है, क्योंकि—'परिहासविजल्पितं सखे ! परमार्थेन न गृह्यतां वचः ।' और परिहास कभी कभी सत्य भी हो जाता है । इत्यादि सोच कर दुष्यन्त द्वैधीभाव में पड़े हुए हैं । इस प्रकार राजा दुष्यन्त की मनःस्थिति चंचलता की ओर है, फिर भी मनुष्य आशावादी होता है, वह अपने ही पक्ष की पुष्टि कर आशा करता ही रहता है ।

**प्रियम्वदा**—( **मुसकुराती हुई शकुन्तला की ओर देखकर राजा की ओर मुख करके** ) मालूम पड़ता है कि आप और भी कुछ पूछना चाहते हैं ।

( सखीमङ्गुल्या तर्जयति । )

राजा—सम्यगुपलक्षितं भवत्या। अस्ति नः सच्चरितश्रवणलोभादन्यदपि प्रष्टव्यम् ।

प्रियंवदा—अलं विआरिअ । अणिअन्तणाणुओओ तवस्सिअणो णाम । [ अलं विचार्य । अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम । ]

---

विलोक्यावलोक्य नायकाभिमुखी = दुष्यन्ते निहितदृष्टिः भूत्वा ) आर्यः = श्रीमान् पुनरपि= भूयोऽपि वक्तुकामः = किञ्चिद् विवक्षुः, स्वविवक्षिते निःशङ्कमाख्याहीत्याशयः । शकुन्तलायां रागहेतुकस्य वैलक्ष्यस्य दर्शनेन राज्ञो विवक्षितावगमेन पुनरपि तत्परिहासोपायस्य मनसि स्फुरणं च प्रियम्वदायाः सस्मितावलोकने हेतुः ।

( शकुन्तला-सखीं = आलिं प्रियम्वदां, अङ्गुल्या = तर्जन्या तर्जयति = भर्त्सयति । पुनरपि मत्सम्बन्धे किमपि परिहसितुकामयाऽनया प्रियम्वदयाऽस्मिन् महापुरुषे विवक्षित्वमारोपितमिति सखीहृदयकौटिल्यं जानन्ती शकुन्तलारोषेण तां तर्जयतीत्यर्थः । )

राजा—प्रियम्वदामुखेन शकुन्तलाविषये महर्षेः कण्वस्य संकल्पं जिज्ञासुः प्रियम्वदां श्लाघयन् दुष्यन्त आह—भवत्याः बुद्धिमत्या त्वया सम्यक् = वास्तवं, तथ्यम् उपलक्षितं= लक्षणैरुन्नतिम्, ओष्ठपरिस्पन्दादिरूपेण मुखविकारेण यदनुमीतं तत्समीचीनमेवेत्यर्थः, सच्चरितश्रवणलोभात् सतः = शोभनस्य सतां = सज्जनानां वा चरितस्य = जीवनस्य शकुन्तलारूपस्य यत् श्रवणं = आकर्णनं तस्य लोभात् = स्पृहायाः सतामैतिह्याकर्णनकुतूहलात्, पुण्यप्रदोपाख्यानश्रवणलोभात् अन्यदपि = अवशिष्टं किञ्चित् प्रष्टव्यं = जिज्ञासितव्यम् अस्ति ।

प्रियंवदा —बुद्धिमती प्रियम्वदा दुष्यन्तमनोगतं भावं जानन्ती तदनुसारेणाह—अलं विचार्य, विचारेणालम् । इदं प्रष्टव्यं न वेति विचारो न कर्तव्यः, निःशङ्कं सर्वं पृच्छतीमिति भावः । अनियन्त्रणानुयोगः—अनियन्त्रणः = अनियन्त्रितः अनुयोगः = प्रश्नः यस्मिन् स अनियन्त्रणानुयोगः, तपस्विजनः = तापसलोकः नाम निश्चयेन । राजा प्रभुजनानिव मुनिजनान् प्रति प्रश्नस्य देशकालादिभिः प्रतिबन्धो नास्तीत्यर्थः ।

---

( शकुन्तला सखी प्रियम्वदा को अपनी तर्जनी अङ्गुली से कोंचती है )

**विशेष**—'तर्ज्यतेऽनयेति तर्जनी', इस व्युत्पत्ति के अनुसार तर्जनी अङ्गुली के द्वारा किसी काम को रोकने के लिए इशारा किया जाता है तदनुसार शकुन्तला ने भी आगे पुनः कुछ अपने सम्बन्ध में पूछने के लिए विवक्षु राजा को प्रेरित करने वाली अपनी प्रिय सखी प्रियम्वदा को अपनी तर्जनी अंगुली से कोंचती ( खोदती ) है ।

**राजा**—हाँ, आपने ठीक ही अनुमान किया । मुझे इस प्रसङ्ग को सुनने का लोभ-सा हो रहा है । अतः मैं इस प्रसङ्ग में और भी कुछ पूछना चाहता हूँ ।

**विशेष**—दुष्यन्त को कुछ सोचता हुआ देखकर प्रियम्वदा ने अनुमान लगाया कि वे कुछ पूछना चाहते हैं, पर सीधे-सीधे नहीं पूछ रहे हैं, मुझसे ही वह कहलवाना चाहते हैं । यहाँ राजा शकुन्तला को सच्चरित्र कह कर शकुन्तला की प्रशंसा करते हुए अपने मनोऽनुकूल स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं ।

**प्रियम्वदा**—तो, ठीक बात है । आप कोई विचार न करें । हम तपस्वी लोगों से निर्भय हो जो चाहे सो पूछा जा सकता है । इसमें किसी बात की रोक-टोक नहीं है ।

**राजा**—[1]इति सखीं ते ज्ञातुमिच्छामि ।

**वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद्-**
**व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम् ।**
**[2]अत्यन्तमेव [3]सदृशेक्षणवल्लभाभि-**
**राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः ॥ २६ ॥**

---

**राजा**—प्रियम्वदावचसा तुष्टो राजा स्वानुरागं गोपयन् भङ्ग्या पृच्छति–इति। एवं रीत्या स्वदुक्तनीत्या अनुयोगनियन्त्रणाभावात् ते=तव सखीं=आलिं शकुन्तलां ज्ञातुं–वेदितुम् इच्छामि=वाञ्छामि । तव तद्वृत्तान्तज्ञानमस्तीति भावः ।

**अन्वयः**—किम् अनया मदनस्य व्यापाररोधि वैखानसं व्रतम् आप्रदानात् निषेवितव्यं किम् ? आहो मदनेक्षणवल्लभाभिः हरिणाङ्गनाभिः समम् अत्यन्तमेव निवत्स्यति ।

**वैखानसमिति** । किम् अनया=एतया शकुन्तलया मदयति=चित्तमुन्मादयतीति मदनः तस्य मदनस्य=कामस्य व्यापाररोधि–व्यापारं कृत्यं रुणद्धीति व्यापाररोधि=कामकल्लोलप्रसरावरोधकं वैखानसं व्रतं=मुनिकन्यकोचितं तपश्चरणं, ब्रह्मचर्यम् प्रकृष्टं दानं प्रदानं=विवाहः तस्मात् यद्वा प्रकृष्टाय=उत्तमप्रकृतये राज्ञे मह्यं दानं तस्मात् एतदवधि आप्रदानात्=विवाहावधिः निषेवितव्यं किम्, यथावद् अनुष्ठेयम्, आचरणीयम् किम्! अनेन रूपानुरूपाय कस्मैचित् प्रदानं किमिति भङ्ग्या पृष्टः ।

पक्षान्तरं पृच्छति—आहो ! उताहो, यद्वा मदिराणि=हर्षंकराणि ईक्षणानि=नेत्राणि=अवलोकितानि वा मदिरेक्षणानि तैः वल्लभाः=तपस्विनां प्रियाः ताभिः मदिरेक्षणवल्लभाभिः हरिणाङ्गनाभिः=मृगीभिः समं=सह अत्यन्तमेव=अत्यन्तमाभरणं निवत्स्यति । विवाहावधि ब्रह्मचर्यमस्या आहोस्वित् किमियं यावज्जीवमेव नैष्ठिकब्रह्मचर्यपूर्वकं स्वसदृशीभिः मृगाङ्गनाभिः सह निवासं करिष्यतीति भावः । विवाहपर्यन्तमस्या

---

**राजा**—हाँ, तो जानना चाहता हूँ—

क्या यह आपकी सखी शकुन्तला कामोपभोग को रोकने वाले तपस्वियों के इन कठिन व्रतों एवं नियमों का पालन विवाह तक ही करेगी अथवा हमेशा अपने ही सदृश बड़े-बड़े नेत्र वाली मृगियों के साथ नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत पालनपूर्वक निवास करती रहेगी । आप इसकी प्रिय सखी हैं। अतः इसके हृदय की बात जानती होगी ।

**विशेष**—दुष्यन्त के पूछने का तात्पर्य यह है कि आप शकुन्तला की प्रिय सखी है इसके हृदय की बात जानती होंगी । क्या यह विवाह पर्यन्त ही इस वन में रहेगी या जीवनपर्यन्त? यदि यह किसी राजर्षि को दी जायेगी तो विवाह पर्यन्त ही इस तपोवन में रह सकेगी, यदि किसी तपस्वी को ही दी जायेगी तो वह मृग के जोड़ों के समान कामोपभोग रहित तपोवन में ही निवास करती रहेगी ।

पूर्वार्द्ध में मदन विरोधी कहने का आशय है कि तापसजीवन नीरस और सुख का विरोधी है। उत्तरार्द्ध में मुनियों को नेत्रों से शकुन्तला के नेत्रों की तुलना की गई है, जिससे प्रतीत होता है कि जंगल में अति सुन्दर मृगियां होती हैं ।

प्राचीन काल में स्त्रियां दो प्रकार की होती थीं । एक प्रकार की स्त्रियाँ जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती थीं, जिनका विवाह नहीं होता था । दूसरे प्रकार की स्त्रियां विवाह कर

---

पाठा०—१. एतत्पृच्छामि । २. अत्यन्तमात्म । ३. मदिरेक्षण ।

**प्रियंवदा**—अज्ज धम्मचरणे वि परवसो अअं जणो। गुरुणो उण से अणुरूव-वरप्पदाणे संकप्पो। [ आर्य धर्मचरणेऽपि परवशोऽयं जनः। गुरोः पुनरस्या अनुरूप-वरप्रदाने संकल्पः। ]

**राजा**—( आत्मगतम् ) न दुरवापेयं खलु प्रार्थना।

भव हृदय साभिलाषं संप्रति संदेहनिर्णयो जातः।
आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्॥ २७॥

---

ब्रह्मचर्यमुत जीवनावधि भविष्यतीति प्रष्टुराशयः। अर्थात्-यद्येषा कस्मैचित् नृपतये प्रदेया तदा विवाहपर्यन्तमेव तपोवने स्थास्यति, यदि च कस्मैचित् तपस्विने प्रदेया तथा मृग-मिथुनवत् कामोपभोगरहिता वने एव स्थास्यति।

यद्वा—यद्येषामविधाय कस्मैचिद् राज्ञे प्रदेया तदा विवाहपर्यन्तमेव तपोवने वत्स्यति यदि कस्मैचित्तपस्विने प्रदेया तदा मृगमिथुनवत् कामोपभोगरहिता वने एव स्थास्यतीति भावः। अत्र वृत्यनुप्रास-सहोक्ति-परिकर अलङ्कारा वसन्ततिलका वृत्तञ्च।

**प्रियम्वदा**—अथात्यन्तचतुरा प्रियम्वदा दुष्यन्ताभिप्रायं ज्ञात्वा समुचितमुत्तरमाह—आर्य ! धर्माचरणे = धर्मानुष्ठानेऽपि, किमुत कामाचरणे अयं जनः = प्रियशकुन्तला पर-वशः = पराधीनः स एवोचितं विधास्यति, गुरोः = महर्षेः कण्वस्य अस्याः = एतस्या अनु-रूपाय = रूपादिगुणैः सदृशाय वराय प्रदानमिति अनुरूपवरप्रदाने = योग्यवरसमर्पणे संकल्पः = निश्चयः।

**राजा**—( आत्मगतं = स्वगतम् ) न दुरवापा = न दुर्लभा इयं = एषा शकुन्तला-प्राप्तिरूपा खलु = निश्चयेन प्रार्थना प्रार्थ्यते इति प्रार्थना = प्रार्थ्यमानोऽर्थः।

**अन्वयः**—हे हृदय ! सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः ( अतः ) साभिलाषं भव। यत् अग्निम्, आशङ्कसे तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ( अस्ति )।

**भवेति**। अथ प्रियम्वदोक्त्या शकुन्तलाया राजकन्यात्वानुरूपवरप्रदानविषये कुल-पतेः कण्वस्य संकल्पं श्रुत्वा तामात्मपरिग्रहयोग्यां निश्चित्य वल्लभशङ्काकातरं स्वहृदयं सहर्षमाह—हे हृदय ! = मदीयचित्त ! सम्प्रति = साम्प्रतं, शकुन्तलाया जन्मवृत्तान्ते गुरु-

---

गार्हस्थ्य धर्म का निर्वाह करती थीं। पहले जमाने में स्त्रियों का भी मौञ्जीबन्धन ( यज्ञोपवीत ) वेदाध्ययन और गायत्री वाचन होता था। इस प्रकार राजा दुष्यन्त की यह जिज्ञासा उचित थी कि यह ब्रह्मचर्य का पालन करेगी या विवाह करेगी॥ २६॥

**प्रियम्वदा**—आर्य ! हम लोग तो धर्माचरण में भी परवश हैं, परन्तु गुरु जी की इच्छा इसे किसी अनुरूप योग्य वर को प्रदान करने की ही है। हमलोग तो हमेशा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ही पालन करना चाहती हैं। इस प्रकार विवाह पर्यन्त ही इसका यह तापसोचित धर्माचरण है।

**राजा**—( मन ही मन )

हे हृदय ! तू अब इसकी इच्छा कर सकता है, क्योंकि अब सन्देह दूर हो गया, यह मेरे ग्रहण करने योग्य ही स्त्री रत्न है, जिसे तू अग्नि ( ब्राह्मण कन्या होने के कारण आग के समान स्वर्ग के अयोग्य ) समझा था वह तो स्वर्ग के योग्य शीतल रत्न निकला ( यह ब्राह्मण कुमारी नहीं है कि महर्षि विश्वामित्र से अप्सरा में उत्पन्न राजकन्या क्षत्रिया है। अतः मेरे विवाह योग्य है )॥ २७॥

**विशेष**—राजा जिसे विवाह के अयोग्य ब्राह्मण कन्या समझते थे वह अब क्षत्रिय-कन्या सिद्ध हो गयी। अतः उन्हें अपने मन को सहर्ष सावधान करना उचित ही है। दुष्यन्त के

**शकुन्तला**—( सरोषमिव ) अणसूए, गमिस्सं अहं । [ **अनसूये, गमिष्याम्यहम् ।** ]

**अनसूया**—किंणिमित्तं [ **किंनिमित्तम् ।** ]

**शकुन्तला**—इमं असंबद्धप्पलाविणिं पिअंवदं अज्जाए गोदमीए णिवेदइस्सं [ **इमामसंबद्धप्रलापिनीं प्रियंवदामार्यायै गौतम्यै निवेदयिष्यामि ।** ]

**अनसूया**—सहि ण जुत्तं अकितसक्कारं अदिहिविसेसं विसज्जिअ सच्छन्ददो गमणं । [ **सखि, न युक्तमकृतसत्कारमतिथिविशेषं विसृज्य स्वच्छन्दतो गमनम् ।** ]

---

कृतवरसंकल्पे च प्रियम्वदावचनेनावगते सति, सन्देहस्य निर्णयः सन्देहनिर्णयः यद्वा सन्दिह्यते इति सन्देहः = सन्देहविषयः तस्य तस्मिन् वा निर्णयः किमियं मद्योग्या न वेति संशयस्य निश्चयो जातः = अभवत् । साम्प्रतं सर्वात्मना सन्देहो निवृत्तः । अतः त्वं अभिलाषेण स्पृहया वर्तते इति साभिलाषं भव = यथेष्टमेनामभिलष । यत् = पुरोदृश्यमानं शकुन्तलावस्तुरूपम् = अग्नि = स्पर्शायोग्यमङ्गाररूपं हुताशनम् आशङ्कसे = सन्देहं कुरुषे तदिदं = वस्तु स्पर्शक्षमं रत्नं = स्पर्शयोग्यो मणिविशेषः नेयं ब्राह्मणकन्यका, किन्तु क्षत्राप्सरसः सम्भवा मदुपसंग्रहणार्हतृद ! त्वं यां मुनिकन्यकामगम्यामिति त्वमाशङ्कथा सेयमिदानीं गम्या राजकन्यका निश्चितेति भावः ।

अत्र काव्यलिङ्गालङ्कारो जातिश्चार्या ॥ २७ ॥

**शकुन्तला**—( सरोषम् = रोषेण = कोपेन सह वर्तते सरोषम् कृतककोपमिव अभिनीय ) दुष्यन्तालापजन्यया लज्जया तत्सन्निधौ स्थातुमशक्यतया प्रियम्वदां प्रति शकुन्तलाया रोषः । अनसूये ! = अहं गमिष्यामि = अन्यत्र व्रजामि ।

**अनसूया**—शकुन्तलाया गमने हेतुं जानन्त्यपि तां निरोद्धुमनसूया पृच्छति—किं निमित्तम् = को हेतुः यत्त्वं गमिष्यसि ।

**शकुन्तला**—इमां = एनां, असम्बद्धम् = असङ्गतं प्रलपितुं शीलमस्या इति असम्बद्धप्रलापिनी तामसम्बद्धप्रलापिनीम् = अश्राव्यभाषणशीलां गौतम्यै = संरक्षणनियुक्तायै आत्मनो मातृस्थानीयायै कण्वभगिन्यै निवेदयिष्यामि = विज्ञापयिष्यामि ।

**अनसूया**—प्रस्थानाध्यवसायिनीं तां धर्मलोपोपन्यासव्याजेन उपहासगर्भं पुनरनसूया निषेधति—सखि ! आलि ! अकृतसत्कारम्—न कृतः = न विहितः सत्कारः = समादरो यस्य स तमकृतसत्कारम् = अकृतयथोचितसत्क्रियं, अकृतपूजनम्, अतिथिविशेषम् ईदृशं

---

मन में यहीं से आशा का बीज उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि शकुन्तला क्षत्रिय के योग्य ग्रहणीय एवं स्पृहणीय है । महर्षि कण्व किसी योग्य वर को देने के इच्छुक हैं । राजा दुष्यन्त योग्य एवं सुन्दर युवक होने के नाते सत्पात्र भी हैं । अतः उनके लिए अब शकुन्तला दुर्लभ न रह गयी है ।

**शकुन्तला**—( कुछ कुपित-सी होकर ) मैं अन्यत्र जाती हूँ ।

**अनसूया**—किसलिए जावोगी ?

**शकुन्तला**—असम्बद्ध प्रलापिनी = व्यर्थ की बकवाद करने वाली इस प्रियम्वदा की शिकायत आर्या गौतमी से जाकर करूँगी ।

**अनसूया—सखि ! हम आश्रमवासियों को यह कदापि उचित नहीं है कि ऐसे विशिष्ट अतिथि को आदर सत्कार किये बिना ही उसे छोड़कर यों ही अपने मन से चली जाय ।**

( शकुन्तला न किञ्चिदुक्त्वा प्रस्थितैव )

राजा--( आत्मगतम् ) आः कथं गच्छति । ( ग्रहीतुमिच्छन्निगृह्यात्मानम् ) अहो चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः । अहं हि—

[1]अनुयास्यन् मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः ।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः ॥ २८ ॥

---

विशिष्टं महाप्रभावमतिथिम् उज्झित्वा = अपहाय, परित्यज्य स्वच्छन्दतः = स्वैरम्, गमनं = प्रयाणम् । स्वच्छन्दतो गमनं न युक्तमित्यतो मा गा इति भावः ।

( शकुन्तला--न किञ्चित् = किमपि उक्त्वा = कथयित्वा प्रस्थिता = प्रचलिता एव )

राजा--( आत्मगतम् ) अतः कथं गच्छति = अहो किं याति ( ग्रहीतुं = धर्तुं इच्छन् = वाञ्छन् विनयाभिजात्यादिना आत्मानं = स्वं निगृह्य = निवार्य ) अहो, कामिजनस्य मनोवृत्तिः = चित्तवर्तनं कामिजनमनोवृत्तिः, चेष्टामनुरूपयति तच्छीला चेष्टाप्रतिरूपिका = चेष्टासदृशी ( भवति ) अहं हि = अयं जनो निश्चयेन---

अन्वयः---मुनितनयां सहसा अनुयास्यन् विनयेन पुनः वारितप्रसरः अहं स्थानात् अनुचलन्नपि गत्वा प्रतिनिवृत्त इव ( अस्मि ) ।

अनुयास्यन्निति । गन्तुं प्रयतमानां शकुन्तलामवलोक्य राजा दुष्यन्तो विवेकेनात्मानं निगृह्य स्वगतं विमृशति---मुनितनयां = ऋषिकन्यकां शकुन्तलां प्रति सहसा = अविचारितं, अनुयास्यन् = अनुगमिष्यन् विनयेन = दमेन पुनः = भूयः वारितप्रसरः वारितः = निरुद्धः प्रसरः = अनुयानात्मको वेगः यस्य स वारितप्रसरः = अवरुद्धवेगः अत एवाहं स्थानात् = विश्रामस्थानात् स्थितेर्वा अनुचलन्नपि = अनुतिष्ठन्नपि गत्वा = प्रस्थाय प्रतिनिवृत्तः = प्रत्यागत इव = एव जातोऽस्मीति मे प्रतिभातीत्यर्थः ।

---

( शकुन्तला बिना उत्तर दिये ही जाती है )

राजा—( मन ही मन ) है, यह तो जाती है ( इसे पकड़ना चाहता हुआ भी पुनः अपनी इच्छा को रोककर ) कामियों की मनोवृत्ति शरीर की चेष्टा के अनुरूप ही होती है। क्योंकि—

मैं ही मुनिकन्या=शकुन्तला के पीछे-पीछे जाना चाहता था, पर शिष्टाचार के अनुसार एका-एक रुक गया हूँ । यद्यपि मैं उठा नहीं हूँ, पर प्रतीत होता है कि इसके पीछे-पीछे जाकर लौट रहा हूँ ॥ २८ ॥

**विशेष**—जो व्यक्ति जितना ही संयमी होता है वह अपने मन को उतनी ही शीघ्रता से अपने वश में कर लेता है । जैसे राजा दुष्यन्त का मन भ्रान्ति के कारण शकुन्तला को अपने से दूर समझ कर पकड़ने को दौड़ा । किन्तु उन्होंने धैर्य के द्वारा उसे रोक लिया । मन के अनुसार उसकी चेष्टाएँ भी हुआ करती हैं । मन अत्यन्त वेग से शरीर के अन्दर-अन्दर सारी चेष्टाएँ कर लेता है । राजा दुष्यन्त अपने स्थान से उठे तक नहीं, किन्तु मन शकुन्तला को पकड़ कर पुनः संकोचवश उसे छोड़ दिया । अतः मन की बड़ी प्रवलता मानी गयी है । मर्यादाशील व्यक्ति मन ही मन अनुचित विषय का प्रसार रोक लेते हैं । दुष्यन्त ने शारीरिक व्यापार कुछ नहीं किया, परन्तु उन्हें प्रतीत हुआ कि मैं शकुन्तला को पकड़ने के निमित्त जाकर लौट आया ।

यहाँ मुनिकन्या का प्रयोग बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है जिससे राजा दुष्यन्त ने सोचा कि ~इ मुनि

---

पाठ०—१. स्थानादचलन्नपि ।

**प्रियंवदा**--(शकुन्तलां निरुध्य) हला ण दे जुत्तं गन्तुं। [ हला न ते युक्तं गन्तुम्। ]

**शकुन्तला**--( सभ्रूभङ्गम् ) किंणिमित्तं। [ किंनिमित्तम्। ]

**प्रियंवदा**--रूक्खसेअणे दुवे धारेसि मे। एहि जाव। अत्ताणं मोआविअ तदो गमिस्ससि। [ वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे। एहि तावत्। आत्मानं मोचयित्वा ततो गमिष्यसि। ] ( बलादेनां निवर्तयति )।

**राजा**--भद्रे वृक्षसेचनादेव परिश्रान्तामत्रभवतीं लक्षये। तथा ह्यस्याः--

---

अयं भावः अहो! चेष्टानुरूपा कामुकमनोवृत्तिर्भवति यतोऽहनुयान्तीमिमां शकुन्तलां सहसा अनुयातुमभिलषन्। केवलेनात्मधैर्येणावरुद्धो जातः इति भावः। विरोधाभास-काव्यलिङ्ग-वृत्त्यनुप्रासा अलङ्कारा अत्रार्याछन्दश्च ॥ २८ ॥

**प्रियंवदा**—( शकुन्तलां निरूप्य ) गमनोद्यतां ताम् आदेशान्तरेण निरुणद्धि—हला = हे सखि! ते = तव कृते गन्तुं = गमनं न युक्तं नोचितम्।

**शकुन्तला**—( सभ्रूभङ्गम्-भ्रुवोः भङ्गः भ्रूभङ्गः तेन यथा स्यात्तथा इति सभ्रूभङ्गम् = भ्रूकुटीं बध्वा ) कथयति-किं निमित्तम् = किं निमित्तं = हेतुर्यत्र तत् किंनिमित्तम् = कोऽत्र हेतुरिति भावः।

**प्रियंवदा**—मे = मम द्वे वृक्षसेचने-वृक्षाः सीच्यन्ते आभ्यामिति वृक्षसेचने-वारद्वयं वृक्षसेचनम् धारयसि = ऋणत्वेन धत्से यद्वा वृक्षाणां = द्रुमाणां सेचने = उक्षणे द्वे धारयसि = तव कृतेऽहं द्विःसेचनं कृतवती अस्मि। अतस्तद्रूपम् ऋणं वहसि। त्वया सेचनीयं वृक्षद्वयं मया सिक्तम्, तत्त्वम् ऋणत्वेन मह्यं धारयसीत्यर्थः, एहि = आगच्छ तावत् आत्मानं स्वं मोचयित्वा = ऋणमुक्तं कारयित्वा ( मम कृते द्विः सेचनं कृतम् ) ततः = तदनन्तरं गमिष्यसि = यास्यसि ( बलात् = बलात्कारेण = हठात् एनां=शकुन्तलां निवर्तयति = निवृत्तां करोति, पुनः प्रतिनिवर्तने अनिच्छामभिनयन्तीं प्रतिनिवर्तयतीति भावः )

**राजा**—अथ ऋणमोचनप्रसङ्गेन विक्लवां शकुन्तलाम् ऋणान्मोचयितुं कारुणिकत्वं व्यपदिशन् राजा प्रियम्वदामाह—भद्रे! कल्याणि! मदभिप्रायविरोधिनी मा भूः, वृक्षसेचनात् पूर्वमनुष्ठितात् बालतरुभ्यः उदकदानव्यापारात् परिश्रान्तां=खिन्नां, अत्रभवतीं = आदरणीयां शकुन्तलां लक्षये = लक्षणैः तर्कयामि पश्यामि। तथा हि पश्यतु, एतस्याः शकुन्तलायाः।

---

की औरस पुत्री न होती हुई भी उनके द्वारा पालित-पोषित होने के कारण एक तरह से यह उनकी कन्या ही है। इसके प्रति कोई अनुचित व्यवहार करना खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि ऋषियों को अपनी इच्छा के प्रतिकूल कार्य होने पर सहसा शाप देकर अनिष्ट करने में देर नहीं लगती ॥२८॥

**प्रियम्वदा**—( **शकुन्तला को रोकते हुए** ) अरि सखि! तुम्हारा जाना उचित नहीं है। अतः तुम्हें जाने नहीं दूँगी।

**शकुन्तला**—( **भौहें टेढ़ी कर** ) किसलिए।

**प्रियम्वदा**—तेरे ऊपर मेरा दो वृक्षों को सींचने का ऋण बाकी है। आओ पहले उनसे अपने को छुड़ा लें, तब जाना। ( **बलपूर्वक रोकती है** )

**राजा**—**हे भद्रे! वृक्षों के सींचने से आपकी सखी ( शकुन्तला ) बिल्कुल थक गई- सी मालूम पड़ती है, क्योंकि**—

स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणा-
दद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः ।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः ॥ २९ ॥

---

अन्वयः—घटोत्क्षेपणात् अस्याः बाहू स्रस्तांसौ अतिमात्रलोहिततलौ ( स्तः ), प्रमाणाधिकः श्वासः अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति, वदने कर्णशिरीषरोधि घर्माम्भसां जालकं बद्धम् ( अस्ति ) बन्धे स्रंसिनि मूर्धजाश्च एकहस्तयमिताः पर्य्याकुलाः ( सन्ति )।

वृक्षाणां सेचनादत्यन्तं परिश्रान्तायाः शकुन्तलायाः परिश्रमलक्षणानि ब्रवीति राजा दुष्यन्तः—स्रस्तासाविति । घटोत्क्षेपणात् = कलशोत्थापनात् उत्थाप्योद्वहनाद्वा अस्याः शकुन्तलायाः बाहू = भुजौ स्रस्तांसौ स्रस्तौ = अवनतौ = अंसौ = स्कन्धभागौ ययोस्तौ स्रस्तांसौ—'उन्नतांसः पुमान् पूज्यः सन्नतासा तु सुन्दरी ।' इति वचनेन स्वभावतः सन्नतावपि सम्प्रति परिश्रमवशादत्यन्तं सन्नतांसौ जाताविति भावः । अतिमात्रम् = अत्यन्तं लोहितं रक्तं तलं = करतलं ययोस्तौ अतिमात्रलोहिततलौ = नैसर्गिकलौहित्यापेक्षयाऽतितरां लोहितकरतलौ ( स्तः ) घटोत्क्षेपणादेव प्रमाणेनाधिकः प्रमाणाधिकः = स्वमालाया अधिकः = अतिरिक्तः द्वादशाङ्गुलादधिकः ।

तथा हि— 'देहं व्याप्य स्वनाडीभिः प्रमाणं कुरुते बहिः ।
द्वादशाङ्गुलमानेन तस्मात् प्राणः समीरितः ॥'

श्वासः = निश्वासवायुः अद्यापि = वृक्षसेचनेऽवसितेऽपि स्तनयोः = ऊरुजयोः वेपथुं= कम्पं जनयति = सम्पादयति । वदने = मुखे किम्वा—'सर्वं वा मुखमुच्यते' इति वचनेन सर्वस्मिन्नङ्गे सर्वस्याङ्गस्य संवृतत्वात् कपोलयोरलिके चिबुके चेत्यर्थः । कर्णशिरीषरोधि कर्णं = कर्णाभरणं शिरीषं = शिरीषपुष्पं रोद्धुं शीलमस्येति कर्णशिरीषरोधि—कर्णभूषणशिरीषपुष्परोधकं घर्माम्भसा = श्वेतजलानां जालमेव जालकं—बिन्दुकदम्बकम्, बद्धं= संसक्तं दृश्यते । स्वेदजलेन कर्णशिरीषं गण्डस्थले आसक्तं सत्तथा न तरलितं भवतीति स्वेदोदकस्य कुसुमरोधकता स्फुटा । घटोत्क्षेपणादेव च बन्धे = केशबन्धे स्रंसिनि=शिथिले सति मूर्धजाः = मूर्धनि जायन्ते इति मूर्धजाः=चिकुराः, केशा अपि एकेन हस्तेन=पाणिना यमिताः=नियमिता धृता वा=बद्धा इति एकहस्तयमिताः एककरधृताः अतएव पर्याकुलाः= विकीर्णाः, अंसावलम्बिनः सन्ति ।

इदमस्य तात्पर्य—वृक्षसेचनेनात्यन्तं परिश्रान्तायाः सुकुमाराङ्ग्याः शकुन्तलायाः

---

कलश उठाने के कारण इसके दोनों हाथ कन्धे पर से कुछ नीचे की ओर लटक आये हैं। दोनों हाथों की हथेलियाँ भी लाल हो गई हैं। अति परिश्रम से श्वांस भी लम्बा, लम्बा चल रहा है, जिससे दोनों स्तन भी कुछ कम्पित से हो रहे दीख पड़ते हैं। शिरीष के फूलों से बने हुए कर्णफूलों के चिपकने वाले पसीने के इन बिन्दुओं का जाल-सा मुखमण्डल पर छा गया है ( पसीने से कर्णभूषण गाल पर चिपक गये हैं। ) और इसके शिर का जूड़ा भी ढीला होकर हाथ से पकड़े जाने पर भी इधर-उधर बिखर रहा है। इस प्रकार इसका केशपाश अस्तव्यस्त हो रहा है ॥ २९ ॥

**विशेष**—कोई गम्भीर वस्तु हाथ से उठाने पर कन्धे कुछ झुक जाते हैं, हथेलियाँ लाल हो

तदहमेनामनृणां करोमि। ( अङ्गुलीयं दातुमिच्छति । )

( उभे नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परमवलोकयतः । )

**राजा**—[1]अलमस्मानन्यथा सम्भाव्य। राज्ञः [2]परिग्रहोऽयमिति राजपुरुषं मामवगच्छत ।

---

निसर्गेण सन्नतावपि भुजौ घटोद्वहनात् शिथिलांसौ जातौ, पाणितलयोः नैसर्गिकोऽपि रक्तिमा घटोत्थापनात् अत्यन्तं लोहितो जातः, स्वाभाविकोऽपि द्वादशाङ्गुलः श्वासोऽतिपरिश्रमेण वर्धते वृक्षसेचनकार्यं समाप्तोऽपि कुचकम्पो जायते, भालकपोलभागेषु स्वेदलवो विलोक्यन्ते, तत्र संसक्तं पतनोन्मुखमपि कर्णयोः धृतं शिरीषपुष्पं न पतति तथा एकेनैव करेण धृते केशा शिथिलायन्ते दृश्यन्ते । एभिर्लक्षणैर्नूनमियं शकुन्तला अत्यन्तं परिश्रान्ता अनुमीयते इति भावः । अत्र स्वभावोक्ति-अनुमान-काव्यालिङ्गानुप्रासा अलङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं च वृत्तमस्ति ॥ २९ ॥

इत्थं परिश्रमातिशयमुपवर्ण्य ऋणमोचनोपायमाह—तदहमित्यादिना—तत् = तस्मात् कारणात् अहम् = अयं जनो दुष्यन्तः, एनाम् = इमां परिश्रान्तां शकुन्तलां, अविद्यमानम् ऋणं यस्याः सा ताम् अनृणाम्=ऋणरहितां प्रतिवस्तुप्रदानेन ऋणमुक्तां करोमि=कारयामि इत्युक्त्वा व्यवहारे प्रतिनिधिवस्तुप्रदानेनापि ऋणनिवृत्तिदर्शनात् । ( अङ्गुलीयकं= मुद्रिकां दातुं = वितरितुं इच्छति = वाञ्छति । )

( उभे = द्वे अपि सख्यौ नाम्नः मुद्रायाश्च अक्षराणि = वर्णान्, मुद्रितवर्णान् यद्वा नाम = दुष्यन्त इति नामधेयं मुद्रा = अङ्गुलीयकं च नाममुद्रे—'मुद्रा मुकुलने बन्धे लिङ्गे चिह्नेऽङ्गुलीयके' इत्यजयः । यद्वा नामयुक्ता मुद्रा नाममुद्रा तस्या अक्षराणि नाममुद्राक्षराणि = संज्ञामुद्रिकावर्णान् अनुवाच्य = पुनः पुनः पठित्वा परस्परं=परां परां, अनसूया प्रियम्वदां प्रियम्वदा च अनसूयाम् अवलोकयतः = पश्यतः । निश्चिन्वतश्च अयं महाजनो दुष्यन्त एव न तु तस्य कश्चिदधिकारिपुरुषः । )

**राजा**—अथ इङ्गितज्ञो राजा दुष्यन्तः तयोरभिप्रायं ज्ञात्वा पुनरप्यात्मानं गोपयितु-

---

जाती है, सासें तेजी से चलने लगती हैं, परिश्रम से पसीने निकल आने के कारण गाल में झूमके चिपक जाती हैं, बाल बिखर कर मुँह पर आ जाते हैं जिन्हें एक हाथ में घड़ा लेने से दूसरे हाथ से पकड़ना आवश्यक हो जाता है । इस प्रकार वृक्षों के सींचने में श्रम से थकी सुकुमार शकुन्तला की अवस्था का वर्णन स्वाभाविक ही हैं ।

तो मैं इन्हें ऋण रहित कर देता हूँ ( **अँगूठी देने की इच्छा करते हैं ।** )

**( दोनों सखियाँ दुष्यन्त नाम युक्त अँगूठी के अक्षरों को बाँचकर एक दूसरे की ओर देखती हैं )**

**विशेष**—प्राचीन समय में परिश्रम के रूप में लिए गये ऋण को द्रव्य से चुकाने की प्रथा सी थी तदनुसार राजा दुष्यन्त अपनी अँगूठी देकर प्रियम्वदा के ऋण से शकुन्तला को मुक्त करना चाहते थे । पूर्व जमाने में अंगूठियों में नाम खुदे रहते थे, जिससे पत्र आदि पर मुहर करने का भी काम चलता रहता था। राजा की अँगूठी पर अङ्कित दुष्यन्त नाम पढ़कर प्रियम्वदा और अनसूया दोनों सखियां एक दूसरे को देखने लगीं कि ये तो साक्षात् राजा दुष्यन्त ही हैं ।

**राजा**—आप लोग दूसरी बात न समझें। राजा दुष्यन्त से यह अँगूठी पारितोषिक या दान के

---

पाठा०—१. अलमन्यथा । २. परिग्रहोऽयम् । 'प्रियम्वदा-'

प्रियंवदा—तेण हि णारिहदि एदं अङ्गुलीअअं अङ्गुलीविओअ। अज्जस्स वअणेण अणिरिणा दाणिं एसा। हला सउन्दले मोइदासि अणुअम्पिणा अज्जेण अहवा महाराएण। गच्छ दाणिं [ तेन हि नार्हत्येतदङ्गुलीयकमङ्गुलीवियोगम्। आर्यस्य वचनेनानृणेदानीमेषा। ( किंचिद्विहस्य ) हला शकुन्तले मोचितास्यनुकम्पिनार्येण अथवा महाराजेन गच्छेदानीम्। ]

---

माह—अलमिति। अस्मात् = इमं जनं अन्यथा = विपरीतम्, अस्मदुक्तप्रकारातिरिक्तप्रकारेण राजत्वेनेति यावत् संभाव्य अलं = संभावना न कर्तव्या अहमधिकारिपुरुष एवेति भावः। तर्हीदमङ्गुलीयकं कथं तव करे? इत्यत आह—राज इति। परिगृह्यते इति परिग्रहः राज्ञो दुष्यन्तस्य परिग्रहः = मह्यं दानमेतत् राज्ञः सकाशाल्लब्धमिदं पारितोषिकमित्यर्थः। अतोऽत्र न शङ्का कार्या भवतीभ्यामित्याशयः। अयं=एषः परिग्रहस्वरूपः अङ्गुलीयकरूपः। आन्तरार्थस्तु राज्ञो मम परिग्रहः = परिग्रहयोग्यं = धारणयोग्यमिदमङ्गुलीयकमित्यर्थः यद्वा राज्ञः = मम दुष्यन्तस्य परिग्रहः = भवत्यै उपहारः इत्यर्थः। अतो न राज्ञो मिथ्याभाषणदोषः। इति=एवं विभाव्य माम् इमं जनं राज्ञः पुरुषो राजपुरुषः तं राजपुरुषमिति षष्ठीतत्पुरुषे राजपुरुषं=नृपसेवकं, यद्वा राजा चासौ पुरुषो राजपुरुषः तं राजपुरुषं = राजरूपं पुरुषं दुष्यन्तम् अवगच्छत = जानीत। इति भावः।

प्रियंवदा—अथात्यन्तचतुरा प्रियम्वदा तदभिप्रायं सम्यग् विदित्वा भङ्ग्या उत्तरयति—तेनेति। तेन हि = राजपरिग्रहात्, एतत्=इदं चरितमङ्गुलीयकम्—मुद्रिकाअङ्गुलीवियोगं = भवतः अङ्गुल्याः = अङ्गुलितः वियोगं = विरहं न हीति, यतो राजपरिग्रहात् भवता धारणीयमेव, स्वकीयमेव वस्तु दातव्यं भवति राजप्रसादलब्धमिदं तु सर्वथा अदेयमेवेति भावः, आर्यस्य=श्रीमतो धर्माधिकारिणो महाराजस्य वा वचनेन = वचनामृतेन एव इदानीं = सांप्रतम् एषा = इयं पार्श्ववर्तिनी शकुन्तला मे प्रियसखी अनृणा = ऋणमुक्ता जाता ( किञ्चिद् विहस्य = ईषत् स्मितेन सह ) हला, शकुन्तले ! = प्रियसखि शकुन्तले ! अनुकम्पास्त्यनुकम्पा तेन अनुकम्पिना = दयालुना तव ऋणधारणजन्यक्लेशमसहमानेन

---

रूप में मुझे मिली है। अतः आपलोग इसमें किसी प्रकार की आशङ्का न करें। मुझे राजपुरुष समझें।

**विशेष**—राजपुरुष के समासभेद में दो अर्थ होते हैं, एक राजा का पुरुष=सेवक, दूसरा राजा रूप पुरुष। राजा दुष्यन्त अपने को छिपाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने श्लेष शब्द राजपुरुष कहकर छिपाने का प्रयास करते हुए कहा कि आप लोगों ने अँगूठी पर दुष्यन्त नाम पढ़कर मुझे राजा दुष्यन्त समझा होगा किन्तु मैं दुष्यन्त नहीं हूँ। यह अँगूठी मेरी नहीं है, बल्कि राजा के द्वारा मुझे इनाम में मिली है।

**प्रियम्वदा**—यदि ऐसी बात है अर्थात् यह राजा से पारितोषिक के रूप में मिली है तो फिर उसे आप अपनी अँगुली में रहने दें। इसे अँगुली से पृथक् करना समुचित नहीं है। यह मेरी प्रिय सखी शकुन्तला तो आपके वचन मात्र से ही अब ऋण से मुक्त हो गई। **( कुछ मुस्कराकर )** सखि शकुन्तले ! इस दयालु सज्जन ने तुमको ऋण से मुक्त कर दिया है अथवा इस राजर्षि ने दया करके तुमको ऋण से छुड़ा दिया? अब तुम जा सकती हो।

**विशेष**—प्रियम्वदा परिहास प्रिया सखी है। यह समय-समय पर परिहास के द्वारा चुटकी लेती ही रहती है। प्रियम्वदा ने मुस्कराकर अपना अभिप्राय व्यक्त किया कि महराज! आप लाख

**शकुन्तला**-- ( आत्मगतम् ) जइ अत्तणो पहविस्सं। ( प्रकाशम् ) का तुमं विसज्जिदव्वस्स रुन्धिदव्वस्स वा [ **यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। ( प्रकाशम् ) का त्वं विसर्जितव्यस्य रोद्धव्यस्य वा।** ]

**राजा**--( शकुन्तलां विलोक्य आत्मगतम् ) किं नु खलु यथा वयमस्यामेवमियमप्यस्मान् प्रति स्यात्। अथवा लब्धावकाशा मे प्रार्थना। कुतः—

**वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः**
**कर्णं [1]ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे।**

---

**आर्येण** = धर्मसचिवेन श्रेष्ठपुरुषेण अथवा = यद्वा अङ्गुलीयाक्षरशंसितेन सत्यसंभावानानुरोधेन महाराजेन = राज्ञा दुष्यन्तेन। गच्छ = याहि इदानीम् = अधुना = ऋणतो मुक्ता असि। अतो न रुणध्मि पूर्ववाञ्छानुसारेण गन्तुं शक्नोषि। त्वया यथेष्टं गम्यतामिति भावः।

**शकुन्तला**—अथ सखीवचनेन महाराजत्वमवगम्य प्रवर्द्धमानानुरागा शकुन्तला तस्मात् स्थानात् गन्तुमशक्नुवती विचारयति ( आत्मगतं = स्वगतम् ) यदि = चेत् आत्मनः = मनसः प्रभविष्यामि = शक्ष्यामि तर्हि गमिष्यामि, मदीयं मनस्तु एतदायत्तं जातमित्यं गन्तुमक्षमेति भावः। ( प्रकाशं = स्पष्टम् ) का त्वं = भवती विसर्जितव्यस्य = मोक्तव्यस्य रोद्धव्यस्य=रोधनयोग्यस्य विषये। महाराजेनैवाहं मोचिता स एव मम विरोधे विसर्जने वा प्रभुरिति गूढार्थः।

**राजा**—( अथ शकुन्तलाम् तथाविधां विलोक्य = आलोक्य आत्मगतं = स्वगतम् ), प्रवर्द्धमानानुरागः=राजा दुष्यन्तः चिन्तयति–किं नु=इति वितर्के, खलु=इति जिज्ञासायाम्, वाक्यालङ्कारे वा यथा = यद्वद् वयम् = अहम् अस्यां = एतस्यां शकुन्तलायाम् एवं = तथा इयम् = एषा अपि अस्मान् = मां प्रति = मद्विषये स्यात् = भवेत् अथवा = यद्वा पक्षान्तरे लब्धः = प्राप्तः अवकाशः = शकुन्तलाया हृदये स्थानमिति लब्धावकाशा जाता मे= मम प्रार्थना = अभिलाषा, शकुन्तलाप्राप्तिरूपा। किमियम् अहं तस्यामिव मयि सानुरागा स्यात् ? अथवा सर्वथैवेयं मय्यनुरागिणीति भावः।

**अन्वयः**—इयं यद्यपि मद्वचोभिः वाचं न मिश्रयति, मयि भाषमाणे अभिमुखं कर्णं ददाति, कामं मदाननसंमुखीना न तिष्ठति, अस्या दृष्टिस्तु भूयिष्ठम् अन्यविषया न (अस्ति)।

---

छिपाइए, पर मैं समझ गई हूँ कि आप राजा दुष्यन्त हैं। आप राजधर्म के अनुसार दया करके मेरी सखी शकुन्तला को मेरे ऋण वृक्ष-सेचन से इसे मुक्त करना चाहते हैं, तो आपके आदेश से इसे मैं मुक्त कर देती हूँ। यह अँगूठी आपके हाथ में रहे। आपसे शुल्क नहीं लिया जा सकता है बल्कि आपके आदेश से ही सब कुछ सम्पन्न हो सकता है।

**शकुन्तला**—( **मन ही मन** ) यदि मैं अपने वश में होती या मेरा वश चलता तो मैं इस प्रियजन के पास से कहीं जाती ही नहीं ( **प्रकट में** ) तू कौन है, मुझे जाने देने वाली या रोकने वाली ? अर्थात् महाराज ने मुझे छुड़ाया है वही मुझे भेज या रोक सकते हैं।

**राजा**—( **शकुन्तला को देखकर, मन ही मन** ) क्या, जैसे मेरा इसके प्रति अनुराग हो गया है वैसा ही इसका भी मेरे प्रति अनुराग होगा ? अथवा मेरी अभिलाषा ने इसके हृदय में स्थान पा लिया है। क्योंकि—

यद्यपि मेरी बातों में बात तो नहीं मिलती, किन्तु जब मैं कुछ बोलता हूँ तो सावधानतापूर्वक

---

पाठा०—१. ददात्यवहिता।

कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीना[1]
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः ॥ ३० ॥

( नेपथ्ये ) भो भोस्तपस्विनः संनिहितास्तपोवनसत्त्वरक्षायै भवत । प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः ।

---

तां शकुन्तलां तथाविधामवलोक्य राजा दुष्यन्तो विचिन्तयति–वाचमिति । इयं=एषा शकुन्तला मद्वचोभिः = मम प्रश्नोत्तराद्यात्मकैर्वाक्यैः सह=साकं वाचं = आत्मीयं वचनं न मिश्रयति=न संयोजयति, मया भङ्ग्या बहुषु वचनेषूक्तेष्वपि न किञ्चिदपि प्रवक्ति । मया सह नालापं कुरुते इत्यर्थः । कदाचिदिदमनास्थाहेतुकं स्यादित्यत आह—मयि भाषमाणे–वदति सति अभिमुखं = सम्मुखं कर्णं = श्रवणं ददाति = सावधाना मद्वचनं शृणोतीत्यर्थः । कामं = अत्यन्तं, मदाननसंमुखीना संमुखे तिष्ठतीति संमुखीना आननं मदाननं मेदाननस्य संमुखीना मदाननसंमुखीना = मन्मुखाभिमुखी न तिष्ठति = न विद्यते । अस्याः = शकुन्तलायाः दृष्टिस्तु = नेत्रव्यापारस्तु भूयिष्ठं = अत्यन्तम् अन्यविषया = इतरवस्तुगता = मन्मुखव्यतिरिक्तविषयिणी न = नैवास्ति । अस्या गूढदृष्टिर्मन्मुखविषयैवेति भावः । तथा च नूनमियं मयि गूढानुरागिणी, भङ्ग्या मया उत्क्षिप्तेष्वपि बहुषु प्रश्नेषु नेयं किञ्चिद्वक्ति, किन्तु मयि किञ्चिद् भाषमाणे सति सावधाना सती मदीयं वचः शृणोति । यद्यपि लज्जया असौ मम मुखाभिमुखी न तिष्ठति तथापि अस्या दृष्टिः मन्मुखं विहाय न अन्यत्र गच्छति । अत एभिर्लक्षणैरेषा मयि स्पष्टमनुरागवती जाता । अनेन मुग्धाया नायिकाया गात्रजो विलासः उक्तो भवति । तथा हि तल्लक्षणम्—

'यो वल्लभासन्नगतो विकारो गत्यासनस्थानविलोकनादौ ।
नानाविधाऽकूतचमत्कृतिश्च पराङ्मुखं चास्यमयं विलासः ॥

साहित्यदर्पणे विश्वनाथेन सङ्कोचस्येयं स्थितिः अनुरागिणी नायिकालक्षणं निर्दिष्टमस्ति—

'दृष्ट्वा दर्शयति व्रीडां संमुखं नैव तिष्ठति ।
प्रच्छन्नं वा भ्रमन्तं वातिक्रान्तं पश्यति प्रियम् ॥
अन्यैः प्रवर्तितां शश्वत् सावधाना च तत्कलाम् ।
शृणोत्यन्यत्र दत्ताक्षो प्रिये बालानुरागिणो ॥'

अत्र छेकानुप्रास–वृत्त्यनुप्रासावलङ्कारौ वसन्ततिलका च वृत्तम् ॥ ३० ॥

इत्थं शकुन्तलानुरागस्फुटपरिज्ञानेन कृतकृत्यप्रायस्य दुष्यन्तस्य गमनावकाशं सम्पादयितुं प्रकृतकथाविच्छेदार्थं चान्तरसन्धिमुपाक्षिपति–नेपथ्ये इति । नेपथ्ये=सज्जाकक्षे सैनिका

---

कान देकर यह मेरी बातें ध्यान से सुनती है। यद्यपि यह मेरी तरफ मुख करके नहीं बैठती, फिर भी इसकी दृष्टि दूसरे विषय में न लगकर बार-बार मेरे ही ऊपर आती है। यह सब लक्षण अनुराग का ही है ॥ ३० ॥

**विशेष**—इस पद्य में एक भारतीय सुशील कन्या का संयत प्रेम व्यक्त किया गया है, जो बातचीत के सिलसिले में दूसरी ओर दृष्टि न देकर सावधानता से कान लगाकर ध्यान से अपने नाम की चर्चा सुन लेती है। बहुधा दृष्टि दूसरी तरफ न जाना अनुराग का सूचक है। शकुन्तला के पूर्वोक्त लक्षणों को देखकर राजा दुष्यन्त ने अपने मन में अपने प्रति उसका पूर्ण अनुराग समझ गये।

**( नेपथ्य में )** अरे आश्रमवासी तपस्वियों ! तपोवन के जीवों की रक्षा के लिए आप लोग

पाठा०—१. संमुखीयं ।

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु ।
पतति परिणतारुणप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु ॥ ३१ ॥

---

नवलोक्य केषाञ्चित्तपस्विनां वचनमिदम् । भो भोस्तपस्विनः = हे हे तापसाः ! तपोवनस्य सत्त्वानां रक्षायै इति तपोवनसत्त्वरक्षायै = आश्रमजन्तुसंरक्षणाय सन्निहिताः = उपस्थिताः उद्यताः-सन्नद्धाः भवत = भवन्तु नाम । प्रत्यासन्नः = समीपे आगतः मृगयाविहारी मृगयया विहर्तुं शीलमस्येति मृगयाविहारी = आखेटकरसिकः पार्थिवः = राजा दुष्यन्तः किल = श्रूयते ।

अन्वयः—तथा हि तुरगखुरहतः परिणतारुणप्रकाशः रेणुः शलभसमूहः इव विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु आश्रमद्रुमेषु पतति ।

तुरगेति । अथ नेपथ्ये, स्थिता केचन तपस्विनः मृगयाविहारप्रसंगेन धर्मारण्ये राज्ञो दुष्यन्तस्य प्रत्यासत्तिं ज्ञात्वा आश्रमस्थ जन्तूनां संरक्षणाय आश्रमवासिजनान् सावधानान् कुर्वते तथा हि—प्रत्यासन्नत्वाद्धेतो। यद्वा प्रमाणं प्रदर्शयति तुरगाणां खुरैः हत इति तुरगखुरहतः = वाजिखुरक्षुण्णः अश्वशफहननोत्थापित। परिणतारुणप्रकाशः—अरुणस्य = सूर्यस्येव प्रकाशो यस्य यद्वा अरुणेन = सूर्येण प्रकाशो यस्य स अरुणप्रकाशः परिणतः अरुणप्रकाशो यस्य स परिणतारुणप्रकाशः अथवा परिणतश्चासौ अरुणश्चेति परिणतारुणः तस्य प्रकाशः परिणतारुणप्रकाशः परिणतारुणप्रकाश इव प्रकाशो यस्य स परिणतारुणप्रकाशः । परिणतः = अस्तोन्मुखः सायंकालीनः यः अरुणः = सूर्यः तद्वत् प्रकाशः = उज्ज्वलः, सायङ्कालीनसूर्यप्रभासदृशप्रभावमित्यर्थः—'अरुणोऽस्फुटरागे च सूर्ये सूर्यस्य सारथौ' इति धरणिः । रेणुः = धूलिकदम्बकम्, शलभसमूह इव पतङ्गनिकर इव विटपेषु-शाखासु विषक्तानि = असञ्चितानि = जलार्द्राणि = वारिसिकतानि वल्कलानि येषां ते तेषु विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु = शाखासक्तजलार्द्रवल्कलेषु आश्रमद्रुमेषु—तपोवनतरुषु पतति= आक्रामति । अयं भावो यथा पुञ्जीभूता पतङ्गपङ्क्तिः सम्भूय वृक्षेषु निपतन्ति तथैवायं राजानुजीविसैनिकवाजिखुरोत्थितो रेणुनिकरः तपोवनवृक्षेषु सहसा पतन्ति । तेन स्पष्टमिदं यत् प्रत्यासन्नो राजा दुष्यन्त इति ।

अत्राप्रस्तुतप्रशंसा—वृत्यनुप्रास-उपमा-काव्यलिङ्गालङ्काराः पुष्पिताग्रा वृत्तं च ॥३१॥

---

सावधान तथा सन्नद्ध हो जाइए, क्योंकि महाराज दुष्यन्त शिकार खेलने के लिए इधर ही आ रहे हैं । देखिए—

उनके घोड़ों की टापों से उठी हुई, अस्त होते हुए सूर्य की प्रभा से कुछ लाल यह धूल समूह वृक्षों की शाखाओं पर सूखते हुए मुनियों के गीले वल्कलवस्त्रों पर इस प्रकार गिर रहा है जिस प्रकार आश्रम के वृक्षों पर टिड्डी दल आकर गिरा करता है ॥ ३१ ॥

**विशेष**—कोई तपस्वी राजा दुष्यन्त की सेना के आगे की खबर पाकर जोर से चिल्लाता हुआ आश्रमवासियों को सावधान करता है कि अरे ! आश्रमवासियों ! यहां के जीव-जन्तुओं की रक्षा करने के निमित्त सावधान हो जावो, शिकार खेलते हुए राजा दुष्यन्त इधर ही आ रहे हैं । सेना दूर नहीं है क्योंकि टिड्डी दल के समान लाल धूल आश्रम के वृक्षों पर गिर रही हैं । धूल अधिक देखकर अश्वारोही सैनिकों का अनुमान है । टिड्डी दल का रङ्ग लाल है और धूल का रङ्ग भी लाल जमीन की मिट्टी के कारण लाल है । अतः इन दोनों की समता ठीक है ।

भो, भो, दो बार कहने से चिल्लाने वाले की घबड़ाहट मालूम होती है । परदे के भीतर स्थित नेपथ्य में बताने को चूलिका कहते हैं—'अन्तर्यवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका ।'

अपि च—

तीव्राघात-प्रतिहततरु-स्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्ट-व्रततिवलयासङ्ग-संजातपाशः ।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः ॥ ३२ ॥

---

अथ क्षणादेव दर्शनपथमागतां सेनां, तद्दर्शनेन भयभीतं कञ्चिद् वन्यं गजं चावलोक्य ससंभ्रममुच्यते—अपि च ।

अन्वयः—स्यन्दनालोकभीतः तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसञ्जातपाशः भिन्नसारङ्गयूथः गजः न तपसः मूर्तः विघ्न इव धर्मारण्यं प्रविशति ।

अथ समक्षे समागतां राज्ञो दुष्यन्तस्य सेना तद्दर्शनेन भयभीतं कञ्चनारण्यकगजं विलोक्य ससंभ्रममुच्यते—तीव्रेति । स्यन्दनस्य = दुष्यन्तरथस्य आलोकेन = दर्शनेन भीतः = त्रस्तः इति स्यन्दनालोकभीतः, मुखमभिगतः अभिमुखः तीव्रात् = दृढात् आघातात् = प्रहारात् अभिमुखः = संमुखो यस्तरुः = वृक्षः तस्य स्कन्धे=मूलशाखयोर्मध्यभागे लग्नः = संसक्तः एको दन्तः = रदनो यस्य स तीव्राघातप्रतिहतस्कन्धलग्नैकदन्तः, पादेन—चरणेन आकृष्टाः = आवर्जिताः व्रततयः = मार्गप्राप्तलताः तासां यानि वलयानि = मण्डलानि तेषां सङ्गेन संसर्गेण सञ्जातपाशः = प्राप्तबन्धनरज्जुः इति पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसञ्जात-पाशः = पादेन लताजालं वहन् पाशबद्ध इव प्रतीयमानः इत्यर्थः । भिन्नानि = विविक्तानि विद्रावितानि वा सारङ्गाणां = मृगाणां यूथानि = कुलानि येन स भिन्नसारङ्गयूथः गजः = हस्ती, नः = अस्माकं तपसः = अनुष्ठानस्य मूर्तः = मूर्तिमान् इव धृतदेह इव धर्मारण्यं = तपोवनं प्रविशति = आश्रमम् आगच्छति ।

अथायमाशयः—राज्ञो दुष्यन्तस्य रथनेमिध्वनिमाकर्ण्य भयभीतो निजदन्तेन विद्धं दन्तेनैव समाकर्षन् पादेन मार्गस्थं लताजालं वहन् मार्गमध्ये समागतानां मृगाणां यूथं विद्रावयन् अस्माकं तपस्याया अन्तरायभूतः शरीरधारी विघ्न इवैष आरण्यक इदं धर्मारण्यं प्रविशति । अतो भोः भोः आश्रमवासिनः यूयं सर्वे अपसरत महता भयेन भीत एष आरण्यको गजः न दक्षिणतः, नाभिवामतः, अपि तु समक्षमेव धावति, मार्गे यद्-यद् आपतति तद् सर्वं मर्दयित्वा प्रचलति । तस्मात् शीघ्रं पलायित्वा मार्गमस्मै प्रज्ञाय आत्मनो रक्षा विधेया ।

अत्र सङ्कर-श्रुत्यनुप्रास-स्वभावोक्ति-उत्प्रेक्षा-अप्रस्तुतप्रशंसा-काव्यलिङ्ग-परिकरालङ्काराश्च । भयानको रसः मन्दाक्रान्ता वृत्तं च ॥ ३२ ॥

---

और भी—

यह हाथी जिसका एक दाँत सामने आये हुए वृक्षों में जोर से आघात करने से सट या टूट गया है । और लताओं के जाल को बलात् खींचने से जिसके पैर में लता-पाश सा लग गया है । हमारी तपस्या में साक्षात् विघ्नस्वरूप होकर आश्रम के मृगों के झुण्डों को छिन्न-भिन्न तथा विद्रावित करता हुआ सेना के रथों को देखने से भड़क कर इस आश्रम में प्रवेश कर रहा है ॥ ३२ ॥

**विशेष**—हाथी या किसी पशु को जिसने कभी रथ देखा ही नहीं है, घबड़ा कर भागना स्वाभाविक है । घबड़ाहट के कारण हाथी जो कुछ कर सकता है उसका वर्णन इस पद्य में किया गया है । हाथी के अस्वाभाविक दौड़ने को देखकर भयभीत मृगों का झुण्ड भी जिधर रास्ता पाता है उधर ही भागता जाता है जिससे उस आश्रम की वस्तुओं को छिन्न-भिन्न हो जाने के भय से उन्हें बचाने के निमित्त यहां तपस्वियों को सावधान किया गया है ।

( सर्वा कर्णं दत्त्वा किंचिदिव संभ्रान्ताः )

**राजा**—( आत्मगतम् ) अहो धिक्। सैनिका अस्मदन्वेषिणस्तपोवनमुपरुन्धन्ति। भवतु। प्रतिगमिष्यामस्तावत्।

**सख्यौ**—अज्ज इमिणा आरण्णअवुत्तन्तेण पज्जाउलम्ह। अणुजाणाहि णो उडअगमणस्स [ आर्य अनेनारण्यकवृत्तान्तेन पर्याकुलाः स्मः। अनुजानीहि न उटजगमनाय। ]

**राजा**—( ससंभ्रमम् ) गच्छन्तु भवत्यः। वयमप्याश्रमपीडा यथा न भवति तथा प्रयतिष्यामहे। ( सर्वं उत्तिष्ठन्ति। )

---

( सर्वाः = समग्राः कन्याः कर्णं = श्रवण दत्वा = प्रयोज्य, ध्यानेनाकर्ण्यं किञ्चित् = ईषत् संभ्रान्ताः = व्यग्रा जाताः )

**राजा**—( आत्मगतं = स्वगतम् ) नेपथ्ये तपोधनोक्तिं श्रुत्वा तपोधनबाधामाशङ्क्याह—अहो इति। अहो इति विषादे, धिगिति निन्दायाम् सैनिकाः = सेनाभटा अस्मदन्वेषिणः अस्मान् = नः अन्विष्यन्ति = विचिन्वन्ति ये ते अस्मदन्वेषिणः सन्तः उपरुन्धन्ति = पीडयन्ति। तपःप्रतिरोधमाशङ्कमानो राजा तत्प्रतिकारोपायं विचार्य निश्चिन्वन्नाहं = भवत्विति। भवतु = अस्तु, प्रतिगमिष्यामः = निर्वतिष्यामहे, प्रत्यावृत्ता भविष्यामः। तावत् वाक्यालङ्कारे।

**सख्यौ**—आल्यौ प्रियम्वदा अनसूया च कथयतः—आर्ये! अनेन = अमुना आरण्यकवृत्तान्तेन = वनगजागमनलक्षणेन पर्याकुलाः = व्याकुलीभूताः, भीताः स्मः नः = अस्मान्, आवां उटजगमनाय—उटजे = पर्णशालायां गमनाय = गन्तुम्, प्रयाणाय, अनुजानीहि = आज्ञापय।

**राजा**—( ससंभ्रमं = संभ्रमेण = व्यग्रतया सह ) उत्तरयति-भवत्यः=यूयं गच्छन्तु= यान्तु। वयमपि = अहमपि, यथा = येन प्रकारेण आश्रमपीडा = तपोवनोपरोधः, तपस्विजनानां क्लेशः न भवति = न स्यात् तत्र = तेन प्रकारेण प्रयतिष्यामहे = प्रयत्नं करिष्यामः। ( सर्वे = सकलाः अनसूया, प्रियम्वदा राजा च उत्तिष्ठन्ति-उत्थिताः। )

---

**( सभी कान लगा कर कुछ घबड़ाई हुई सी )**

**राजा—( मन ही मन )** बड़े अनर्थ की बात है कि मुझे खोजते-खोजते मेरे सैनिक इस तपोवन में गड़बड़ मचा रहे हैं तथा तपोवन को तहस-नहस कर रहे हैं।

**विशेष**—राजा दुष्यन्त अपनी सेना के सहित शिकार खेलने जङ्गल में गये हुए थे, पर मृग का पीछा करते-करते महर्षि कण्व के आश्रम में पहुँच गये। दूर चले जाने के कारण व्यग्र होकर सैनिकों को खोजना उचित ही है। धर्मराज के सैनिक यद्यपि धार्मिक कार्यों में बाधा नहीं उपस्थित करते फिर भी कर्तव्यपरायण होने के नाते दुष्यन्त का व्यग्र हो उठना स्वाभाविक ही है।

**सखियाँ**—महाभाग! हाथी के इस उत्पात से हमलोग भी घबड़ा गये हैं। अतः हम लोगों को अपनी कुटी में जाने की अनुमति दीजिए।

**राजा—( घबराहट के साथ )** अच्छा, आपलोग चलें, मैं भी ऐसा प्रयत्न करूँगा कि आश्रम को कोई पीड़ा न हो। **( सभी उठकर खड़े होते हैं )**

**सख्यौ**—अज्ज असंभाविद अदिहि सक्कारा भूओ वि पेक्खणणिमित्तं लज्जेमा अज्जं विण्णविदुं । [ आर्य असंभावितातिथिसत्कारा भूयोऽपि प्रेक्षणनिमित्तं लज्जामहे आर्यं विज्ञापयितुम् । ]

**राजा**—मा मैवम् । दर्शनेनैव भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि ।

**शकुन्तला**—अणसूए, अहिणवकुससूईए परिक्खदं मे चलणं । कुरवअसाहा-परिलग्गं च वक्कलं । दाव परिपालेध मं । जाव णं मोआवेमि । [ अनसूये, अभिनव-कुशसूच्या परिक्षतं मे चरणम् । कुरबकशाखापरिलग्नं च वल्कलम । तावत् परिपालयतं मां यावदेतन्मोचयामि । ]

( राजानमवलोकयन्ती सव्याजं विलम्ब्य सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता । )

---

अथ वचनाभङ्ग्या राजानं दुष्यन्तान्तर्भावजयन्त्यौ सख्यौ स्वगमनं निवेदयतः—

**सख्यौ**—आर्य ! = श्रीमन् ! असंभावितः अतिथेः = प्राघुणिकस्य भवतो = दुष्यन्तस्य सत्कारः = पूजा अर्घाद्युपचारो याभिः ता असंभावितातिथिसत्काराः वयं भूयः = पुनरपि प्रेक्षणनिमित्तं = दर्शनार्थं लज्जामहे = लज्जिता भवामः, आर्यं = भवन्तं विज्ञापयितुं = प्रार्थयितुम् । अद्य गन्तव्यतया भवते निवेद्य गच्छामः । भूयोऽपि अत्रागत्यास्माकमातिथ्यं स्वीकर्तव्यमिति भावः ।

**राजा**—मा मा = नहि, नहि एवं = इत्थं न वाच्यम् । भवतीनां = युष्माकं दर्शने-नैव पुरस्कृतः = सभाजितः कृतातिथ्यः पूजितोऽस्मि ।

**शकुन्तला**—हे अनसूये ! अभिनवया = नूतनया कुशस्य = दर्भस्य सूच्या तीक्ष्णेन = अग्रभागेन कुशाङ्कुराग्रसूचिकया परिक्षतं = विद्धं मे = मम चरणं = पादम्, कुरबकस्य = कण्टकबहुलद्रुमस्य शाखासु = विटपेषु परिलग्नं = कुरबकविटम् संसक्तं च वल्कलं = वल्कलवस्त्रम् तावत्=तदवधि युवां परिपालयतं—प्रतीक्षतां मायावत् = यावदवधि एतत्= इदं वल्कलं मोचयामि = मुक्तं करोमि ।

( राजानं = नृपं दुष्यन्तम् अवलोकयन्ती = पश्यन्ती सव्याजं = व्याजेन=मिषेण सह सव्याजं विलम्ब्य = गमनमान्द्यमुत्पाद्य सखीभ्यां = आलिभ्यां प्रियम्वदानसूयाभ्यां निष्क्रान्ता = रङ्गमञ्चात् बहिर्गता । )

दर्शनौत्सुक्यात् व्याजमुत्पाद्य प्रियदर्शनं प्रियं दुष्यन्तं भूयो भूयः पश्यन्ती गतेत्यर्थः । अनेन वर्णनेन शकुन्तलागमनस्यानुरागस्य पराकाष्ठा प्रदर्शिता ।

---

**दोनों सखियाँ**—महाराज ! अतिथि का सत्कार न करनेवाली हमें श्रीमान् से पुनः-पुनः दर्शन देने की प्रार्थना करने में लज्जा आती है । आशय यह है कि महाराज ! आपका अतिथि-सत्कार न करने से हम लज्जित हैं, आप क्षमा करें और पुनः दर्शन देने का अनुग्रह करें ।

**राजा**—नहीं, ऐसा नहीं, आप लोगों के दर्शन से ही मैं सत्कृत हो गया ।

**शकुन्तला**—सखि अनसूये ! कुश की नई नोक से मेरा पैर बांध गया है और मेरा वल्कल वस्त्र कुरबक की कण्टकयुक्त डाली में फँस गया है, जरा मेरी प्रतीक्षा करो कि मैं इससे मुक्त कर लूँ ।

**(राजा दुष्यन्त को देखती हुई दोनों सखियों के साथ रंगमंच से बाहर चली जाती है ।)**

**विशेष**—वस्तुतः न तो शकुन्तला के पैर में काँटा गड़ा है, न वल्कल वस्त्र ही काँटों में फंसा है, किन्तु बहाना बनाने का उसे अच्छा अवसर मिल गया, जिससे दुष्यन्त को अधिक से अधिक देख सके ।

राजा—मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति। यावदनुयात्रिकान् समेत्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयामि। न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापारादात्मानं निवर्तयितुम्। मम हि—

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्थितं चेतः।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य॥ ३३॥

( निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति प्रथमोऽङ्कः

---

राजा।—अथात्मनि निश्चितशकुन्तलानुरागो राजा तस्यामत्यन्तासक्तः सन् स्वावस्थां परामृशति-मन्दौत्सुक्योऽस्मीति। नगरगमनं प्रति = भूयो राजधान्यां प्रत्यावर्तनविषये मन्दं = शिथिलभूतम् औत्सुक्यम् = उत्कण्ठा यस्यासौ मन्दौत्सुक्यः यावत्, प्रथमं अनुयात्रा-प्रयोजनं, शीलं येषां तेऽनुयात्रिका तान् अनुयात्रिकान् = मदङ्गरक्षकान् अनुगामिनः सैनिकान् समेत्य = सम्भूय नातिदूरे = अनतिदूरे, समीपे एव निवेशयामि = स्थापयामि। यद्यतिदूरे तथा प्रभुत्वस्य शैथिल्यं स्यात्, समीपे चेत् आश्रमस्य पीडा स्यात् इति भावः।

इत्थं विचिन्त्य पुनः प्रगाढप्रेमप्रकर्षशालिनीमात्मनो मनोवृत्तिमनुसन्दधाति—न खल्विति। न खलु = निश्चयेन शकुन्तलायां यो व्यापारः = अङ्गप्रत्यङ्गचक्रमणस्वरूपः तस्मात् यद्वा शकुन्तलया यो व्यापारः = अनुरागद्योतकः स्निग्धवीक्षणादिः तस्मात् शकुन्तलाव्यापारात्=शकुन्तलामुखावलोकनव्यापारात् आत्मानं = मनो निवर्तयितुं=निवृत्तं कर्तुं अवरोद्धुं मम हि = यतः।

अन्वयः—प्रतिवातं नीयमानस्य केतोः इव मम शरीरं पुरो गच्छति चीनांशुकम् इव असंस्तुतं चेतः पश्चात् धावति।

नन्वहमितो यामि, किन्तु कर्तव्यबुद्धिर्मां नयतीत्याह—गच्छतीति। वायोः प्रतिकूलं प्रतिघातम् = वायुप्रतिकूलम्, नीयमानस्य उह्यमानस्य, केनापि चाल्यमानस्य केतोः= ध्वजदण्डस्य चीनांशुकं = चीनदेशोद्भववस्त्रकृतपताका इव मम शरीरं = देहः पुरः= अग्रे, संमुखम्, ( सैन्यं प्रति ) गच्छति = याति असंस्तुतं = अपरिचितम् चेतः = चित्तं पश्चात् शकुन्तलाभिमुखं धावति = जवेन प्रतिकूलं गच्छति। अकाण्डविजृम्भितेन प्रतिवातेनेव अतर्कितोपनतेन तदभिलाषेण पुनः पुनः प्रेर्यमाणं ध्वजदुकूलमिव मदीयं चेतः पश्चाद् व्रजति, शरीरं च ध्वजवत् पुरो मन्दं मन्दं गच्छतीति भावः। एतेन स्वचेतसश्चाञ्चल्यं, वपुषश्च हृदयशून्यत्वात् काष्ठतुल्यत्वं ध्वनितम्।

---

राजा—( ऊँची साँस लेकर ) ये सब तो गईं, अच्छा, मैं भी चलूँ। शकुन्तला को देखकर तो मेरी अब नगर = राजधानी की ओर जाने की इच्छा एवं उत्सुकता नहीं हो रही है। अच्छा, पहले तो अपने साथ के सैनिकों को तपोवन से दूर कहीं ठहरा दूँ। क्या करूँ, मैं तो अपने मन को शकुन्तला को देखने के इस व्यापार से हटा ही नहीं रहा हूँ। मेरा मन तो बार-बार शकुन्तला को देखने के निमित्त व्याकुल हो रहा है। अतः राजधानी भी जाने की इच्छा नहीं हो रही है। क्या करूँ—

मेरा तो शरीर यद्यपि आगे को चल रहा है, किन्तु वेवश हुआ मेरा मन पीछे शकुन्तला की ओर उसी प्रकार दौड़ रहा है जिस प्रकार वायु से विपरीत दिशा में ले जाई जाने वाली ध्वजा का

अयमाशयः—शरीरं ध्वजदण्ड इव मन्दं मन्दं पुरो याति, चित्तं तु अस्थिरं सत् ध्वजवस्त्रमिव पश्चाद् व्रजति। मनोयोगेन शकुन्तलानुगाम्यहं केवलं कर्तव्यबुद्ध्यैव तां परिहाज्य देहमात्रेणान्यत्र गच्छामि। अत्रातिशयोक्ति-वृत्यनुप्रास-उपमा-उत्प्रेक्षालङ्काराः छन्दश्चार्यास्ति ॥ ३३ ॥

( सर्वे = सकला जनाः निष्क्रान्ताः = रङ्गमञ्चाद् बहिर्गताः ) इति=समाप्तः प्रथमः= आद्यः अङ्कः = नाट्यविभागः।

तदुक्तं दशरूपके—

'एकाहाचरितैकार्थमित्थमासन्ननायकम् ।
पात्रैस्त्रिचतुरैरङ्कं तेषामन्तेऽस्य निर्गमम् ॥'

साहित्यदर्पणे च—'अन्तनिष्क्रान्तनिखिल-पात्रोऽङ्क इति कीर्तितः।'

इत्यादिप्रतिपादनात् अङ्कान्ते सर्वपात्रविनिर्गमः उपनिबध्यते। तपोवनावरोधस्य साक्षाददर्शनीयतयाऽङ्कान्ते उपनिबद्धः इत्यत्राङ्कसमाप्तिः।

तथा चोक्तं धनिकेन दशरूपके—

'दूराध्वानं वधं युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम् ।
संरोधं भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम् ॥
शस्त्रस्य ग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत् ।'

अङ्गलक्षणं च—'यदा तु सरसं वस्तु मूलादेव प्रवर्तते ।
आदावेव तदाङ्कः स्यादामुखाक्षेपसंश्रयः ॥'

अपि च—'प्रत्यक्षं नेत्रचरितो विन्दुव्याप्तिपुरस्कृतः ।
अङ्को नानाप्रकारार्थ-संविधानरसाश्रयः ॥'

इति कविकुलकलाधरेण कालिदासेन प्रणीतस्याभिज्ञानशाकुन्तलनाटकस्य
प्रथमेऽङ्के पण्डित-श्रीकृष्णमणित्रिपाठिना संस्कृते कृता
विमलाख्या व्याख्या समाप्ता।

---

पतला कपड़ा पीछे की ओर फहराता है। अर्थात् वायु के विपरीत दिशा में ले जाये जाते हुए झण्डे के वस्त्र के समान देह आगे जाती है तथा मन पीछे दौड़ता है ॥ ३३ ॥

**विशेष**—इधर शकुन्तला प्रेम-पाश से बँध कर काँटा चूभने तथा काँटों में वस्त्र फँसने का बहाना बनाकर बार-बार राजा दुष्यन्त को देखना चाहती है, उधर शकुन्तला में आसक्त राजा की इच्छा राजधानी की तरफ जाने को नहीं हो रही है। सैनिकों द्वारा क्षुब्ध तपोवन का वातावरण शान्त करने के लिए राजा सैनिकों को दूर नहीं समीप में ही ठहराने को सोच रहा है जिससे बार-बार शकुन्तला से भेंट हो सके। मन की गति बड़ी तीव्र होती है। अतः उसे चीनांशुक के समान दौड़ते हुए दिखाया गया। यहाँ कालिदास की उपमा कला बड़ी सुन्दरता से सजाई गयी है। मन को चीनांशुक की उपमा देकर मन की चंचलता दिखाई गई है। शरीर को ध्वज दण्ड की उपमासे काष्ठ के समान हृदय शून्यता व्यक्त की गई है।

**( सभी चले जाते हैं )**

**प्रथम अङ्क समाप्त।**

# द्वितीयोऽङ्कः

( ततः प्रविशति विदूषकः )

**विदूषकः**—( निःश्वस्य ) भो हदो ह्मि एदस्स मिअआसीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिव्विण्णो । अअं मिओ अअं वराहो अअं सद्दूलो त्ति मज्झन्दिणेवि गिम्हे विरलपादवच्छाआसुं वणराइसुं आहिण्डिअ पत्तसङ्करकसाअविरसाइं उण्णकडुआइं पिज्जन्ति गिरिणईसलिलाइं । [ भो हतोऽस्मि एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णः । अयं मृगः अयं वराहः अयं शार्दूल इति मध्यन्दिनेऽपि ग्रीष्मे विरलपादपच्छायासु वनराजिषु आहिण्ड्य पत्रसङ्करकषायविरसानि उष्णकटुकानि पीयन्ते गिरिणदीसलिलानि । ]

---

एवं प्रथमेऽङ्के दुष्यन्तशकुन्तलयोः परस्परदर्शनपूर्वकं रतेरुद्बोधम्, अन्योन्यसंल्लापादिना तस्याः परिपोषे, द्वयोस्तयोः दुष्यन्त-शकुन्तलयोः वियोगं चोपवर्ण्य द्वितीयेऽङ्के दुष्यन्तगताया रतेश्चिन्ता-विषादादिभिर्विप्रलम्भश्रृङ्गारं वर्णयिष्यन् कविकुलकलाधरः कविवरः कालिदासः तदुपयोगाय हास्यप्रियस्य वसन्तस्य विदूषकस्य प्रवेशं प्रदर्शयति—तत इति । ततः = तदनन्तरं विषण्णः = खिन्नः विदूषकः = राज्ञः सहायको हास्यकारी सुहृत् प्रविशति = रङ्गमञ्चे आविर्भवति ।

विश्वं विमृश्य दूषयतीति विदूषकः—केलिकलहप्रियो अङ्गविकृतेन वचसा वेषेण च हास्यकारी राज्ञः सहचरो विदूषकः उच्यते । तथा हि रसार्णवे—

'विकृताङ्गवचोवेषैर्हास्यकारी विदूषकः ।'

विश्वनाथोऽपि साहित्यदर्पणे—

'श्रृङ्गारस्य सहायाः विट-चेट-विदूषकाद्याः स्युः ।
भक्ता नर्मसु निपुणाः कुपितवधूमानभञ्जकाः शुद्धाः ॥
कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्म वपुर्वेषभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहप्रियो विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥'

विदूषकस्य भाषा प्राकृतमेव । अतस्तेन नाटके प्राकृतमेव प्रयुज्यते तथा चोक्तं—
'विदूषकविटादीनां पाठ्यं तु प्रकृतं भवेत् ।'

**विदूषकः**—( निःश्वस्य = निश्वासः = खेदजनकः चिन्तानिर्वेदयोरनुभावः तं प्रदर्श्य ) पटमण्डपे = सुखशयने शयानं वयस्यं राजानं दुष्यन्तं निशि स्वाधिकारेण सम्भाव्य भूयः प्रातःकाले मृगयासंभावनया शीघ्रं तत्समीपमुपसर्पन् विषण्णो विदूषकः मार्गमध्ये स्वकीयां दुरवस्थां स्वयं विमृशति—भो इति । भो ! = हन्त हतः = सङ्कटे पतितोऽस्मि, एतस्य =

---

( तदनन्तर खिन्नचित्त विदूषक का प्रवेश )

**विदूषक**—( ऊँची साँस लेकर ) ओह ! मृगयाशील = शिकार के व्यसनी इस राजा दुष्यन्त की मित्रता से तो मैं अत्यन्त खिन्न तथा दुःखी हो गया हूँ । देखो, यह मृग है, यह सूअर आ रहा है, यह व्याघ्र जा रहा है इस प्रकार कहते हुए इस गर्मी के ऋतु में दोपहर में पत्तों के गिर जाने से अल्प छाया वाली वन पंक्तियों में एक वन से दूसरे वन में दौड़ना पड़ता है । पत्तों के गिरने से सड़े हुए स्वादहीन वन के झरनों एवं पहाड़ी नदियों का गर्म एवं कड़ुआ पानी पीना पड़ता है ।

अणिअदवेलञ्च उण्णोण्णमंसभूइट्ठं भुञ्जीअदि [ अनियतवेलं च उष्णोष्णमांस भूयिष्ठं भुज्यते । ]

तुरअगआणांच शद्देण रत्ति पि मे णत्थि पकामसुइदव्वं । [ तुरगगजानां च शब्देन रात्रावपि मे नास्ति प्रकामशयितव्यम् । ]

महन्ते ज्जेव पच्चूसे दासीए पुत्तेहिं साउणिअलुद्धेहिं कण्णोपवादिणा वणगअणकोलाहलेण पडिबोधिदह्मि । [ महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शाकुनिकलुब्धैः कर्णोपघातिना वनगमनकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि । ]

एत्तिकेण वि मे पीडा ण संवुत्ता जदो जदो अअं गण्डस्स उवरि विप्फोडओ संवुत्तो । [ एतावतापि मे पीडा न संवृत्ता यतः अयं गण्डस्य उपरि विस्फोटकः संवृत्तः ]

---

अमुष्य मृगयाशीलस्य = आखेटकासक्तस्य राज्ञः = नृपस्य दुष्यन्तस्य वयस्य भावेन = सख्येन निर्विण्णः = नैराश्ययुक्तः दुःखितोऽस्मि अयं मृगः = एष हरिणः, अयं वराहः = एष सूकरः, अयं शार्दूलः = एष व्याघ्रः इति = एवं कथयित्वा माध्यन्दिने = मध्याह्ने, असह्यक्लेशप्रदे ग्रीष्मे = तप्तर्तौ ग्रीष्मेण विरलानां = पक्वपत्रापगमादल्पानां, छाया = अनातपः यासां ताः तासु दूरवर्तिनां पादपानां = वृक्षाणां विरलपादपच्छायासु वनराजिषु = विपिनपङ्क्तिषु अहिण्ड्य = परिभ्रम्य पत्राणां = दलानां संकरेण = मिश्रणेन कषायानि = तुवराणि विरसानि = स्वादरहितानि उष्णानि = तप्तानि कटुकानि उष्णकटुकानि गिरिनदी सलिलानि गिरेः = पर्वतस्य नदीनां = सरितां सलिलानि = जलानि शैलातपवन्ती तोयानि पीयन्ते = आस्वद्यन्ते ।

नियता = निश्चिता वेला = कालः यत्र तत् नियतवेलम् न नियतवेलमिति अनियतवेलम् = अनिश्चितसमयं, विषमसमयम्, अकालमित्यर्थः, उष्णमुष्णम् उष्णप्रकारकं मांसं = आमिषमेव भूयिष्ठं = बहुलं यस्मिन् तत् उष्णोष्णमांसभूयिष्ठं यद्वा उष्णमुष्णं मांसं भूयिष्ठं यस्मिंस्तत् आह्रियते इत्याहारः = भोज्यं भुज्यते = अश्यते ।

तुरगगजानां—तुरगाणां = अश्वानां गजानां = हस्तिनां च शब्देन = आरावेण रात्रौ = निशि अपि यदा निद्रा अपेक्षिता मे = मम प्रकामं = पर्याप्तं शयितव्यं निद्रा न अस्ति ।

महति एव प्रत्यूषे = उषसि, अतिप्रातः दास्याः पुत्रैः = अतिनीचैः शाकुनिकैः = आखेटकैः लुब्धैः = लोभपरायणैः, कर्णोपघातिना = कर्णदुःखदायिना श्रवणोद्वेगकारिणा वनगमनकोलाहलेन = विपिनप्रमाणकलकलेन प्रतिबोधितः = जागरितः निद्रादरिद्रीकृतोऽस्मि = भवामि ।

एतावतापि उक्तेन क्लेशेनापि, मे = मम पीडा = क्लेशः न संवृत्ताः न समाप्ता यतः अयं = एषः गण्डस्य = गलगण्डस्य रोगविशेषस्य उपरि पिटकः = विस्फोटकः = असह्यपीडाकारकः = व्रणविशेषः संवृत्तः = जातः । अर्थात् स्फोटस्योपरि स्फोटः । एकस्मिन् दुःखकारणे सत्येव द्वितीयं दुःखमुत्पन्नमिति यावत् ।

---

कुसमय में शूल पर भूना हुआ मांस का आहार करना पड़ता है। और हाथी तथा घोड़ों के शब्दों से मुझे रात को भी नींद नहीं आती। आज बड़े तड़के ही इन दासी पुत्र बहेलियों तथा शिकारियों के हल्ले से जग उठा हूँ। इतना ही होता तो भी कोई बात न थी यहाँ तो फोड़े पर फोड़ा और हो गया है।

तेण हि किल अह्मेसुं अवहीणेसुं तत्थभअदा मिअआणुसारिणा अस्समपदं प्रविट्ठेण मम अधण्णदाए सउन्तला णाम कावि तवस्सिकेणआ दिट्ठा, तं पेक्खिअ सम्पदं णअरगमणस्स कथम्पि ण करेदि। [ तेन हि किल अस्मासु अवहीनेषु तत्रभवता मृगानुसारिणा आश्रमपदं प्रविष्टेन मम अधन्यतया शकुन्तला नाम कापि तपस्विकन्यका दृष्टा, तां प्रेक्ष्य साम्प्रतं नगरगमनस्य कथामपि न करोति। ]

एव ज्जेव चिन्तअस्स मे पहादा अच्छिसुं रअणी। का गदी। जाव णं किद-आआरपरिग्गहं पिअवअस्सं पेक्खामि। [ एवमेव चिन्तयतः मे प्रभाता अक्ष्णोः रजनी। का गतिः यावदेनं कृताचारपरिग्रहं प्रियवयस्यं प्रेक्षे। ]

( परिक्रम्यावलोक्य च ) एसो बाणासणहत्थो हिअयनिहिदपिअअणो वणपुप्फ-मालाहारी इदो ज्जेव आअच्छदि पिअवअस्सो। [ एष बाणासनहस्तः हृदयनिहित-प्रियजनः वनपुष्पमालाधारी इत एव आगच्छति प्रियवयस्यः। ]

---

तेन = एतेन दुष्यन्तेन हि=किल श्रूयते अस्मासु=मयि सैन्ये च अवहीनेषु = आखेटके पश्चादेव विश्लिष्टेषु मन्दगतित्वात् पश्चात् स्थितेषु तत्र भवता = आदरणीयेन मृगानु-सारिणा = मृगमनुधावनेन हरिणानुगामिना आश्रमपदं = तपोवनभूमिं प्रविष्टेन समा-गतेन मम = मे अधन्यतया = दौर्भाग्येन शकुन्तलानाम कापि = काचन तपस्विकन्यका = मुनिकुमारिका दृष्टा = अवलोकिता तां = शकुन्तलां प्रेक्ष्य = वीक्ष्य दृष्ट्वा साम्प्रतं = इदानीं, नगरगमनस्य = पुरप्रयाणस्य ग्रामगमनाय कथां = वार्तां चर्चामपि न करोति = न हि विद्यते। नगरगमनस्य विचारमपि न करोतीत्यर्थः।

एवम् = इत्थमेव चिन्तयतः = विचारयतः मे = मम अक्ष्णोः नेत्रयोरेव असुप्तस्यैव मे रजनी = रात्रिः प्रभाता = व्युष्टा गतेति यावत्। का गतिः = मम दुःखोन्मूलने क उपाय इत्यर्थः। अथ गत्यभावात्तदानीमवश्यानुष्ठेयं विमृशन्नाह यावदिति—यावत् = अद्य, कृतः= विहितः आचारस्य = स्नानसन्ध्योपासनादेः परिग्रहः=प्रतिकर्मप्रसाधनं येन स तं कृताचार-परिग्रहम्=कृताह्निकं प्रियं=इष्टं वयस्यं=सखायं राजानं दुष्यन्तं प्रेक्ष्ये=अवलोकयिष्यामि।

( परिक्रम्यावलोक्य च = मण्डलाकारं चलित्वा दृष्ट्वा च ) एषः = पुरोवर्ती बाणासनं = धनुः हस्ते यस्य स बाणासनहस्तः = धृतकार्मुकः हृदये = मनसि निहितः = स्थापितः प्रियजनः = प्रियाशकुन्तलारूपो येन स हृदयनिहितप्रियजनः, वनस्य = उपवनस्य विपिनस्य वा पुष्पाणां = कुसुमानां मालां = स्रजं धर्तुं शीलमस्येति वनपुष्पमालाधारी वयस्यः = सखा दुष्यन्त इत एव = इहैवागच्छति = अभिवर्तते।

---

वह यह है कि हमसे बिछुड़ जाने के कारण मृग का अनुसरण करते हुए राजा दुष्यन्त ने हमारे दुर्भाग्य से शकुन्तला नाम की किसी मुनि-कन्या को देख लिया है। और उसको देखकर यह अपनी राजधानी को जाने की चर्चा नहीं करता हैं। इस प्रकार चिन्ता करते मुझे रात में नींद भी नहीं आई, जागते जागते ही सबेरा हो गया। या उसी शकुन्तला के ध्यान में इस राजा को रात में भी नींद नहीं आती है। क्या उपाय है? अच्छा, अब नित्यकृत्य से छुट्टी पाकर निश्चिन्त हुए प्रियवयस्य राजा दुष्यन्त को देखना चाहिए।

**( कुछ चलकर सामने देखकर )** सामने यह धनुष बाण हाथ में लिए हुए, हृदय में अपने प्रियजन शकुन्तला का ध्यान लगाये हुए और वन के पुष्पों की माला धारण किये हुए मेरे मित्र राजा दुष्यन्त इधर ही आ रहे हैं।

भोदु अंग-भंग विअलो भविअ चिट्ठिअस्सं एव्वं वि णाम विस्सामं लहेअं। ( इति दण्डकाष्ठकमवलम्ब्य स्थितः। ) [ भवतु। अङ्ग-भङ्गविकलो भूत्वा स्थास्यामि। एवमपि नाम विश्रामं लभेय। ] ( इति काष्ठदण्डमवलम्ब्य स्थितः )

( ततः प्रविशति-यथानिर्दिष्टो राजा )

राजा—( आत्मगतम् )

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु [1]तद्भावदर्शनाश्वासि।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते॥ १॥

---

प्रत्युत्पन्नमतिर्विदूषकः विश्रामलाभे उपायं विमृशन्नाह भवत्विति। भवतु = अस्तु किं करणीयमधुना इति ज्ञातमित्यर्थः। अङ्गस्य = शरीरस्य पादादेः अवयवस्य वा भङ्गेन = घातेन विकलः = पीडित इति अङ्गभङ्गविकलः = पश्यतां यथा सर्वाङ्गपीडासम्भावना स्यात्तथा भूत्वा तद्वदाचरन् स्थास्यामि = उपवेशयामि, एवं = अनेन प्रकारेण पीडाव्याजेन विश्रामं = मृगयाया मुक्तिं लभेय = प्राप्नुयाम् ( इति = इत्थं विचिन्त्य दण्डकाष्ठं = लगुडं अवष्टभ्य = अवलम्ब्य आश्रित्य स्थितः। )

( ततः = तदनन्तरं यथानिर्दिष्टः पूर्वोक्तप्रकारको राजा दुष्यन्तः
प्रविशति = रङ्गमञ्चे उपतिष्ठते )

अन्वयः—कामं प्रिया न सुलभा कामम्, मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि मनसिजे अकृतार्थेऽपि उभयप्रार्थना रतिं कुरुते।

अथ राजा दुष्यन्तो विरहेणोद्विग्नमना शकुन्तला मनसा स्मरन् विमृशति—काममिति।

---

अच्छा, तो मैं अङ्गभङ्ग से विकल कुबड़े की तरह होकर यहीं खड़ा हो जाता हूँ, इसी तरह यदि विश्राम कर सकूँ तो भी ठीक हैं ( लाठी का सहारा लेकर वहीं खड़ा हो जाता है। )

विशेष— नाटकों में अङ्ग भङ्ग, वेश-भूषा, वाणी आदि से हँसाना तथा विनोद का वातावरण उपस्थित करना विदूषक का प्रधान कार्य है। यह राजा का ब्राह्मण-मित्र होता है। साहित्यदर्पण में यह राजा का शृङ्गार-सहायक, परिहास निपुण मानिनीमानभञ्जक और विशुद्ध चरित्र का व्यक्ति कहा जाता है। नाटक में विदूषक राजा को वयस्य कहता, वह प्राकृत में बोलता है—

विदूषकेण वक्तव्यो वयस्येति च भूपतिः। विदूषकविटादीनां पाठ्यं तु प्राकृतं भवेत्॥'

यहाँ विदूषक ने शिकार का बड़ा ही उत्तम दोष प्रदर्शित किया है। ग्रीष्म ऋतु की गर्मी के समय पेड़ों की पत्तियाँ झरनों, नदियों आदि के पानी में गिर कर उसे कसैला बना देते हैं, जिसको पीने में शिकारियों को कटु आस्वाद होता है। गले में बढ़ा हुआ घेघा स्वयं कष्टकारक होता है। यदि उसमें फोंड़ा हो जाय तो और भी कष्टकारक होता है। इसी को कहते हैं कि 'फोड़े पर फोड़ा', 'घाव पर घाव'।

शिकार मृग का अनुसरण करते-करते राजा दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम में जाकर शकुन्तला का साक्षात्कार तथा उसमें आसक्त होकर राजधानी में लौटने का जिक्र नहीं करते, जिससे खिन्न होकर विदूषक मृगया की निन्दा करता है। पुनः राजा का दर्शन करना चाहता है पर राजा को सामने आता हुआ देखकर अपना अङ्ग-भङ्ग कर खड़ा हो जाता है।

( इसके बाद पहले बताये गये के अनुसार राजा दुष्यन्त
रङ्गमञ्च पर दिखाई पड़ते हैं )

राजा—( मन ही मन ) यद्यपि मेरी प्रिया शकुन्तला का मिलना अभी दुर्लभ है, तो भी

---

पाठा०—१. तद्भावदर्शनायासि।

( स्मितं कृत्वा ) एवमात्माभिप्रायसम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता [1]विप्रलभ्यते । कुतः—

कामं=यथेच्छं प्रीणातीति प्रियेत्यन्वर्थंगुणा शकुन्तला सुलभा न=सुखप्राप्या न, दुर्लभेत्यर्थः, तस्याः प्रदानस्य गुर्वधानत्वात्, गुरोश्चासान्निध्यात्, बलात्तदपहरणस्यायुक्तत्वाच्चेति भावः। मनः=तु मननशीलं मे चेतस्तु तस्याः=शकुन्तलायाः भावानां=मय्यनुरागसूचकानां स्निग्धवीक्षण-मन्दगमनचेष्टाविशेषादीनां दर्शनेन अवलोकनेन आश्वसिति तच्छीलम् आश्वसि=आश्वासयुक्तमिति तद्भावदर्शनाश्वासि=तदनुरागनिश्चयात्कृताश्वासम् प्रियाया दुर्लभत्वेऽपि मे चेतस्या अनुरागचिह्नं दृष्ट्वा आश्वस्तं वर्तते । मनसिजे=मन्मथे अकृतः=अद्यावधि अप्राप्तः अर्थः मनोरथो यस्य स तस्मिन् अकृतार्थेऽपि=भोगसामग्रीसम्पादनद्वारा अनुरक्तयोः स्त्रीपुरुषयोः मिथः संयोजनमेव कामस्यार्थः तदसम्पादनात् अकृतकृत्ये सत्यपि अचरितार्थेऽपि उभयप्रार्थना—उभयोः=स्त्रीपुरुषयोः प्रार्थना अनुराग इत्युभयप्रार्थना=परस्परमीङ्गित-चेष्टित-कटाक्षपातादिव्यतिरेकेण स्वानुरागसूचनमेव रतिं=प्रीतिं कुरुते सुखं जनयति । नायिकासमागमसुखालाभेऽपि तच्चेष्टादिभिरेव मनो मे मोदते इत्याशयः। अत्रार्थान्तरन्यास-विभावना-श्रुत्यनुप्रास-अप्रस्तुतप्रशंसालङ्काराः आर्या च जातिः ॥ १ ॥

( स्मितं कृत्वा=इषद् विहस्य, स्मितमभिनीयेति भावः ) स्मितलक्षणं यथा—

'ईषद्विकसितैर्गण्डैः कटाक्षैः सौष्ठवान्वितैः ।
अलक्षितद्विज धीरमुत्तमानां स्मितं भवेत् ॥'

कामिजनमनोवृत्तेर्लोकविलक्षणत्वावगमोत्थो विस्मयः स्मितस्य हेतुः । अलीकेऽपि सत्यबुद्धि विदधानाः कामिनोऽवश्यं विडम्ब्यन्ते इत्याह—एवमिति । एवं=तस्या मय्यनु-

मेरे प्रति उसके भावों = अनुरागसूचक कटाक्षपूर्वक निरीक्षण, मन्दगमन आदि चेष्टा को देखकर मेरे मन में कुछ धीरज तो बँधी हुई है । क्योंकि कामवासना यद्यपि कृतार्थ न हो फिर भी दोनों की चाह ही सुखप्रद होती है । अर्थात् शकुन्तला के न मिलने से सुरति सुख के अभाव में मेरी कामवासना तो पूरी नहीं हुई है, किन्तु मेरे प्रति उसके प्रेमानुराग को जान कर मुझे आनन्द सुख तो हो ही रहा है ॥ १ ॥

**विशेष**—'समीहा रतिभोगार्था विलास इति कथ्यते ।' के अनुसार राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला की आशा लगाई है । अतः यहाँ प्रतिमुख सन्धि का अङ्ग विलास नामक अवस्था है । नायक-नायिका के मिलन से काम की सफलता मानी जाती है, क्योंकि काम का काम दोनों को मिलाना ही है । काम की सफलता से रति की प्राप्ति होती है । इस पद्य में दुष्यन्त और शकुन्तला दोनों के परस्पर अनुराग से रति का होना निश्चित है । अतः बीज रूप से दोनों में कामना निहित है । अतः प्रतिमुख सन्धि है, क्योंकि जहाँ मिलन के निमित्ति किया गया अनुराग लक्ष्य तथा अलक्ष्य रहता है वहाँ प्रतिमुख सन्धि होती हैं यहाँ दुष्यन्त का अनुराग लक्ष्य है तथा शकुन्तला का अलक्ष्य । प्रतिमुख सन्धि का लक्षण साहित्यदर्पण में विश्वनाथ ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

'फलप्रधानोपायस्य मुखसन्धिनिवेशिनः ।
लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्र प्रतिमुखं च तत् ॥'

**( कुछ हँसकर )** अपने अभिप्राय के अनुसार ही अपने प्रिय जनों की भी चित्तवृत्ति की संभावना करके ही प्रार्थयिता = कामीजन अपने मन को विविध कल्पनाओं से बहलाया करता है।

पाठा०—१. विडम्ब्यते ।

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने [1]यत् प्रेरयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्युपरुद्धया यदपि [2]तत्सासूयमुक्ता सखी
सर्वं तत्किल मत्परायणमहो [3]कामः स्वतां पश्यति ॥ २ ॥

रागोऽस्तीति विश्वेन आत्मनः = आत्मीयस्य अभिप्रायेण = मनोरथेन हेतुना सम्भाविता = कल्पिता इष्टजनस्य = प्रियजनस्य चित्तवृत्तिः=मनोव्यापारः येन स आत्माभिप्रायसम्भावितेष्टजनवृत्तिः प्रार्थयिता = कामिजनः, कामुकः, विडम्ब्यते = परिहास्यते, परिहासास्पदं भवति। कामिन्याः सहजमपि लीलाविलासमात्मानुकूलं मन्यमानः कामुको वञ्चितो भवतीति भावः। अतः तस्याः शकुन्तलायाः स्निग्धवीक्षितादीनामपि न मत्परत्वं सम्भवतीत्याह—कुत इति।

अन्वयः—अन्यतोऽपि नयने प्रेरयन्त्या तया यत् स्निग्धं वीक्षितं, नितम्बयोः गुरुतया विलासादिव यत् मन्दं यातम्, मा गा इत्युपरुद्धया सखी यत्, सासूययुक्ता, तत् सर्वं मत्परायणं किल, अहो कामः स्वतां पश्यति ॥ २ ॥

शकुन्तलाविषये निराशो राजा दुष्यन्तः स्वमनसि विचारयति—स्निग्धमिति। अन्यतः = अन्यत्र अन्यस्यां दिशि नयने = लोचने प्रेरयन्त्या = प्रेषयन्त्या, पातयन्त्या व्यापारयन्त्या तया=शकुन्तलया यत् स्निग्धं=सस्नेहं वीक्षितं=स्निग्धदृष्ट्या अवलोकितम्, नितम्बयोः = कटिपश्चाद्भागयोः गुरुतया = भारवत्वाद् दुर्वहतया, विलासात् = अङ्गविकारात्, स्वाभाविकशृङ्गारक्रियाविशेषात् मन्दं = शनैः यातं = गतम्। मा गाः = सखि! न युक्तं गन्तुम् इत्युक्त्वा उपरुद्धया = निरुद्धया वारितगमनया सखी=अनुरोधकर्त्री प्रियम्वदा सासूयं = असूयया = भ्रूभङ्गादिजनितया ईर्ष्यया सह सासूयं = सेर्ष्यं, उक्ता = किं निमित्तामिति कथिता। तत् सर्वं=चाक्षुष-कायिक-वाचिक-मानसिकव्यापारात्मकं पूर्वोक्तं सकलम् अहमेव परं = प्रमुखम् अयनं = शरणं, लक्ष्यं यस्य तत् यद्वा मयि परायणं

---

अर्थात् अपनी प्रिया की नैसर्गिक चेष्टाओं को भी अपने प्रति अनुराग सूचक समझता हुआ कामी यों ही व्यर्थ की आशायें लगाया करता है, क्योंकि—

उस शकुन्तला ने दूसरी तरफ नजर घूमाते हुए भी प्रेमपूर्वक जो मेरी तरफ दृष्टिपात किया, उसने अपने नितम्ब के भार से जो लीलापूर्वक मन्द-मन्द गमन किया था और सखी प्रियम्वदा के प्रति जो 'सखि मत जा, थोड़ा ठहर जा' इत्यादि वचन कहने से जो असूया पूर्वक देखा था, वे सारी बातें अपने ही ऊपर समझकर मैं मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। अहो, आश्चर्य है कि कामी पुरुष अपनी प्रिया की सारी चेष्टायें अपने ही ऊपर समझा करते हैं ॥ २ ॥

**विशेष**—स्निग्ध दृष्टि का लक्षण बताया गया है कि—विकासयुक्त, सस्नेह, मधुर, चतुर भ्रू धारण करने वाली, कटाक्ष सम्पन्न तथा सकाम दृष्टि को स्निग्ध दृष्टि कहते हैं। जैसे—

'विकाशि स्निग्धमधुरा चतुरे बिभ्रती भ्रुवौ। कदाक्षिणी साभिलाषा दृष्टिः स्निग्धाऽभिधायते ॥'

इसी प्रकार प्रियजन के पास गमन, ठहरना और देखना आदि में जो परिवर्तन हो जाता है उसे विलास कहते हैं—

'यो वल्लभासन्नगतो विकारो गत्यासनस्थानविलोकनादौ।'

---

पाठा०—१. यत्प्रेषयन्त्या। २. सा सासूयमुक्ता। ३. कामी।

**विदूषकः**—( तथास्थित एव ) भो वअस्स ण मे हत्थपाआ प्रसरंति। वाआमेत्तएण जीवापइस्सं। [ **भो वयस्य, न मे हस्तपादं प्रसरति वाङ्मात्रेण जापयिष्यामि।** ]

**राजा**—( सस्मितम् ) कुतोऽयं गात्रोपघातः।

**विदूषकः**—कुदो किल सअं अच्छी आउलीकरिअ अस्सुकारणं पुच्छेसि। [ **कुतः किल स्वयमक्ष्याकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि।** ]

**राजा**—न खल्ववगच्छामि।

---

मत्परायणं=मद्विषयकानुरागाविष्करणतत्परम् किल=इत्यलीके वार्ता सम्भाव्ययोः किल। 'हेत्वरुच्योरलीके च।' इति हैमः। अतो न मत्परायणमिति भावः। पूर्वं प्रस्थानकाले शकुन्तलायाः यत् स्निग्धवीक्षण-नितम्बगौरवगमनमान्द्यादिकमासीत् तत्सर्वमपि विलासिन्याः तस्या वस्तुतः स्वाभाविकमपि मया मूढेन मत्परायणत्वेन कल्पितम्। अतो मत् परायणताकल्पनमयथार्थमेवेति भावः। आत्मनो मत्परायणताप्रतीतौ विस्मयमान आह—अहो इति। अहो=इत्यद्भुते कामी=कामुकः स्वतां=आत्मीयतां, सर्वत्र स्वाभिप्रायरूपतां पश्यति=जानाति। सर्वोऽपि कामी जनः निजकामनाविषयभूतवनिताजनादिव्यापारमात्मपरायणत्वेन सम्भावयतीत्याश्चर्यंकमित्यर्थः। अत्रार्थान्तरन्यास-उत्प्रेक्षा-स्वभावोक्तिकारकदीपकालङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं च छन्दः॥ २॥

**विदूषकः**—अथैवं विचारयतो दुष्यन्तस्य शकुन्तलासम्बन्धिसम्वादसम्पादनार्थं तस्य नर्मसचिवो विदूषक उपतिष्ठते—**भो वयस्येति**। तथास्थितदण्डमवलम्ब्य स्थित एव विदूषकः कथयति—भो वयस्य !=मित्र ! मे=मम हस्तपादं=पाणिचरणम् न प्रसरति =न हि प्रचलति=नोपतिष्ठते अतः वाङ्मात्रेण=हस्तमुद्रां विना वचसा एव जापयिष्यामि =जय इति शब्दमुच्चारयिष्यामि, विजयं तेऽभिधास्यामि, जयी क्रियते भवानित्यर्थः।

**राजा**—तस्य व्याजं जानन्नपि राजा सस्मितं—स्मितेन ईषद्धास्येन सह पृच्छति—**कुत इति**। कुतः=कस्मात् कारणात् अयं=पुरो दृश्यमानः गात्राणां=अवयवानां उपघातः विकलतेति गात्रोपघातः=अङ्गवैकल्यं कायविकलता अङ्गभङ्गः ?

**विदूषकः**—पीडां बहुत्वं द्योतयन्नाह—**कुत इति**। अक्षि=आकुलमनाकुलं, अनाकुलमाकुलं कृत्वा आकुलीकृत्य=नेत्रयोरङ्गुलिप्रवेशं कृत्वा अश्रूणां=नेत्रजलस्य कारणं हेतुं पृच्छसि। **त्वयैव कृतोऽयं** गात्रोपघातः कुतः तत्कारणं पृच्छसीति भावः।

**राजा**—खलु=निश्चयेन अवगच्छामि=तव वक्रोक्तेः कारणं बोद्धुं न शक्नोमि।

---

साहित्यदर्पण तथा मेदिनीकोश में भी विलास का लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

'यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादि-कर्मणाम्।
विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसंदर्शनादिना॥
विलासो हावभेदे स्यात्।' इति मेदिनी।

**विदूषक—( लाठी के सहारे खड़ा हुआ )** मित्र ! मेरा हाथ नहीं उठ रहा है। अतः वाणी के द्वारा ही आपका जय-जयकार करता हूँ।

**राजा—( मुस्कुराहट के साथ )** यह अङ्ग का जकड़ना कैसे हो गया ?

**विदूषक**—कैसे हो गया, यह आप कैसे पूछते हैं, आपने तो मेरी आँख स्वयं अपने हाथ से दुखाकर आँसू कैसे आ गये यह पूछते हैं।

**राजा**—मैं तुम्हारी वक्रोक्ति को नहीं समझ पा रहा हूं, साफ-साफ बताओ कि क्या बात है ?

विदूषकः—भो वअस्स जं वेदसो खुज्जलीलं विडंबेदि त किं अत्तणो पहावेण णं णईवेअस्स ? [ भो वयस्य, यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति तत्किमात्मनः प्रभावेण ननु नदीवेगस्य ? ]

राजा—नदीवेगस्तत्र कारणम् ।

विदूषकः—मम वि भवं [ ममापि भवान् । ]

राजा—कथमिव ?

विदूषकः—एव्वं राअकज्जाणि उज्झिअ तारिसे आउलप्पदेसे वणचरवुत्तिणा तुए होदव्वं। जं सच्चं पच्चमहं सावदसमुच्छारणोहिंसखोहिअसंबंधाणं मम गत्ताणं अणीसो म्हि संवुत्तो। ता पसादइस्सं विसज्जिदुं मं एक्काहं एव्व दाव विस्समिदुं। [ एवं राजकार्याण्युज्झित्वा तादृश आकुलप्रदेशे वनचरवृत्तिना त्वया भवितव्यम्।

---

विदूषकः—पुनः पृच्छति—भो वयस्य !=अरे मित्र ! यत् वेतसः=वानीरः कुब्जः=वक्रः तस्य लीलां=क्रियां विलम्बयति=अनुकरोति नम्रीभवति तत् किम् आत्मनः=स्वस्य प्रभावेण=बलेन उत=ननु अथवा नदीवेगस्य=तटिनीवेगस्य मतेः प्रभावेण ?

राजा—नद्या वेगः नदीवेगः=तटिनीगतिः तत्र=तस्मिन् पूर्वोक्ते कुब्जलीलाडम्बने कारणं=हेतुः ।

विदूषकः—मम=मे अपि भवान्=त्वमेव ।

राजा—कथं=केन प्रकारेण इव=वाक्यालंकारे ।

विदूषकः—विदूषको हेतुं दर्शयन्नाह—एवमिति । एवं=इत्थमेव राजकार्याणि=नृपकर्माणि, भूपतिकृत्यानि अनुपेक्षणीयानि प्रजारक्षणादीनि उज्झित्वा—त्यक्त्वा, मृगयातिसेवनेन स्वप्नेऽपि राजकार्यण्यस्मरता तादृशे=वर्णयितुमशक्ये आकुलः=पशुवृक्षादिभिः घनः प्रदेशः=स्थानमिति आकुलप्रदेशः तस्मिन् आकुलप्रदेशे=सघनवनक्रूरश्वापदसञ्चारदुर्गमे वने=अरण्ये चरति=अटति इति वनेचरः तस्य वृत्तिः=व्यापार इव वृत्तिः=व्यापारो यस्य स तेन वनचरवृत्तिना=राजोचितदेहसंस्कारवर्जं वनाद्वनमाहिण्डता त्वया भवता भवितव्यं=वनचरवदितस्ततोऽरण्ये धावनं कथञ्चिद्भवति । किं मन्त्रणया परिभ्राम्यतु भवान् वनमनिशं किमत्रास्माकं कथनेन, किन्तु अहं ब्राह्मणः, न हि खलु ब्राह्मणस्य मृगया भवति सहजस्नेहभाजनम् । यत् सत्यं=तथ्यमेव प्रत्यहं=

---

विदूषक—अच्छा, बताइए वेंत जो टेढ़ा होकर कुबड़े की तरह हो जाता है वह अपने से ही हो जाता है या नदी के वेग के कारण ?

राजा—नदी का वेग ही वेंत के टेढ़ापन का कारण है ।

विशेष—नदी के तट पर जमे हुए वेंत के पौधे नदी में लटके रहने के कारण झुक जाते हैं और टेढ़े हो जाते हैं, नदी का पानी उसके ऊपर से बहता रहता है । वेंत पानी के दबाव से झुककर कुब्ज की तरह टेढ़ा हो जाता है ।

विदूषक—इसी प्रकार मेरे अङ्ग-वैकल्य के होने में भी आप ही कारण है ।

राजा—यह कैसे ?

विदूषक—आपका तो यह कार्य कदाचित् ठीक भी हो सकता है, जो आप राज कार्य को छोड़कर शिकार के निमित्त जंगली कोल-भीलों की तरह वनों में मारे-मारे फिरते हैं । क्या कहा जाय, इसमें नहीं करने से तो आप मानेंगे ही नहीं । अतः शिकार के लिए आपका सता करना भी व्यर्थ

यतस्त्वं प्रत्यहं श्वापदसमुत्सारणैः संक्षोभितसन्धिबन्धानां मम गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः। तत्प्रसादयिष्यामि विसर्जितुं मामेकाहमेव तावद्विश्रमितुम् । ]

**राजा**—( स्वगतम् ) अयं चैवमाह—ममापि [1]काश्यपसुतामनुस्मृत्य [2]मृगया-विक्लवं चेतः। कुतः—

**न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु ।**
**सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः ॥ ३ ॥**

---

प्रतिदिनम् श्वापदसमुत्सारणैः—श्वापदानां = व्याघ्रादिहिंस्रजन्तूनां समुत्सारणैः = अप-सारणैः अनुगमनैर्वा संक्षोभितानि = सम्यक्चलितानि मृगयावसरे इतस्ततः पलायन-प्रशक्त्या व्यथितानि सन्धिबन्धनानि = अङ्गसंयोगस्थानबन्धनानि ऊरुमूलस्थानि येषां ते तेषां संक्षोभितसन्धिबन्धानां मम = मे गात्राणां = अङ्गानाम् अनीशः = अक्षमः संवृत्तः = जातः असक्तः अस्मि तत् = तस्मात् कारणात् प्रसादयिष्यामि = प्रार्थये, मां विसर्जयितुं एकाहं केवलमेकं दिनं विश्रमितुं- विश्रान्ति प्राप्तुं च मुक्तये त्वां प्रीणयिष्यामीति चाटूक्तिः।

**राजा**—नृपो दुष्यन्तः ( स्वगतम् = अप्रकाशम् ) अयं = एषश्च एवं = अनेन प्रकारेण आह = कथयति मम = मे अपि काश्यपसुता = काश्यपगोत्रोद्भवस्य महर्षेः कण्वस्य सुतां = पोष्यपुत्रीं शकुन्तलां अनुस्मृत्य = स्मृत्वा मृगयाविक्लवं = आखेटकविह्वलं मृगयाविषये शिथिलादरम् चेतः = मनः चेतसो मृगयाविषये शिथिलादरत्वमेव प्रपञ्चयति—**कुत** इति। कुतः = यतः ।

**अन्वयः**—अधिज्यम् आहितसायकं इदं धनुः मृगेषु नमयितुं न शक्तोऽस्मि यैः प्रियायाः सहवसतिम् उपेत्य मुग्धविलोकितोपदेशः कृत इव अस्मि ।

विदूषकोक्ति निशम्य राजा दुष्यन्तो विचारयति—**न नमयितुमिति** । ज्यामधिगत-मधिज्यं = आरोपितमौर्वीकम्, आहितसायकं—आहतः सायको यस्मिन् तत् आहित-सायकं = संयोजितबाणं, इदं धनुः = कोदण्डमेतत् मृगेषु = हरिणेषु नमयितुं = व्यापार-यितुं न शक्तोऽस्मि = न समर्थोऽस्मि । यैः = मृगैः प्रियायाः = दयितायाः कण्वसुतायाः शकुन्तलायाः सहवसतिं = वने एकत्र वासं, सहवासम् सङ्गतिं वा उपेत्य = प्राप्य समधि-

---

ही है। परन्तु मैं तो ब्राह्मण हूँ, मेरे तो प्रतिदिन जँगली जानवरों के पीछे-पीछे दौड़ने से हाथ-पैर ढीले हो जाते हैं, अतः मेरे ऊपर दया कीजिए, कम से कम एक दिन तो शिकार बन्द कर विश्राम कर लीजिए और मुझे भी एक दिन विश्राम कर लेने दीजिए।

**राजा**—( **मन ही मन** ) यह विदूषक भी मृगया बन्द करने को कह रहा है, और मेरा मन भी मुनि-कन्या शकुन्तला को याद करते रहने के कारण शिकार के प्रति उदासीन हो रहा है, क्योंकि—

अपने इस बाण सन्धान किये हुए धनुष को मैं उन मृगों के ऊपर तानकर उन पर बाण को नहीं छोड़ सकूँगा, जिन मृगों ने मेरी प्रिया के साथ ही साथ वन में रह कर उसकी-सी नेत्र कान्ति पाई है॥ ३॥

**विशेष**—शकुन्तला के समान ही इन मृगों की बड़ी-बड़ी आंखें हैं। इसलिए प्रियानुकूलकारिणी इन मृगों पर बाण छोड़ना उचित नहीं। शकुन्तला की संगति से ही इन मृगों की आँखें इस प्रकार

---

पाठा०—१. कण्वसुतामनुस्मृत्य । २. 'मृगयां प्रति निरुत्सुकं चेतः, तथा हि—'
३. लोचनकान्तिसंविभागः ।

**विदूषकः**—( राज्ञो मुखं विलोक्य ) अत्तभवं किं वि हिअए करिअ मंतेदि। अरण्णे मए रुदिअं आसि [ **अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते। अरण्ये मया रुदितमासीत्।** ]

**राजा**—(सस्मितम्) किमन्यत्। अनतिक्रमणीयं मे सुहृद्वाक्यमिति स्थितोऽस्मि।

**विदूषकः**—चिरं जीअ। [ **चिरं जीव।** ] ( इति गन्तुमिच्छति )

---

गत्य मुग्धानि = स्वभावसुन्दराणि निश्चलानि च तानि विलोकितानि अवलोकनानि दृष्टयः तेषां उपदेशः = शिक्षेति मुग्धविलोकितोपदेशः कृतः = वितरितः। मत्प्रियालोचनतुल्य-नयनानां हरिणाङ्गनानामुपरि कथमहं बाणप्रहार करिष्ये इति भावः। एभिः = हरिणैः मम प्रियायाः शकुन्तलायाः सकाशात् मुग्धवीक्षणं शिक्षितमिति तया साकमेषां गुरुशिष्य भावात्तस्याः शिष्यभूताः एते हरिणा मया न वध्या भवितुमर्हन्ति। मया नृशंसेन लक्ष्यी-कृता एते यस्मिन् समये मां भयतरलतारं निरीक्षिष्यन्ते, तस्मिन् काले मम हस्ताद्धनुर्बाणा निपतिष्यन्ति। अत्र काव्यलिङ्ग-उत्प्रेक्षा-श्रुत्यनुप्रास-स्मृतिमत्-पर्यायोक्त-उपमालङ्काराः पुष्पिताग्रा वृत्तिश्च ॥ ३ ॥

**विदूषकः**—( राज्ञो मुखं विलोक्य = अवलोक्य ) कथयति—अनेन शकुन्तलाचिन्तना-सक्तमानसेन राज्ञा मदुक्तौ प्रतिवचनं न दत्तमिति तेन ज्ञायते यत् अत्र भवान् = महाराजः किमपि = किञ्चित् हृदये = मनसि कृत्वा = निधाय मन्त्रयते = विचारयति। अरण्ये = वने मया रुदितं = रोदनं कृतमासीत्। यद्वचनमरण्यरोदनमिव व्यर्थमासीदित्यर्थः। एष चित्तविक्षेपान्मम वचनं न शृणोतीति विदूषकस्योपलम्भः।

**राजा**—( सस्मितं = ईषद्धासेन सह ) कथयति किमन्यत् = तवेच्छाविरुद्धं भवेत्। अनतिक्रमणीयं = अनुलंघनीयम् सुहृद् वाक्यं = मित्रस्य ते वचनम् मे = मम कृते इति स्थितोऽस्मि = तूष्णीं स्थितोऽस्मि मृगयाद्विमुखीभूतोऽस्मि। अतस्त्वदुक्तमेव विचारया-मीति भावः।

**विदूषकः**—सपरितोषं कथयति, चिरं = बहुकालं जीव-दीर्घायुर्भव। विश्रामावसर-लाभाच्चपलतासूचकमिदमाशीर्वचनं हास्याङ्गम्। ( इति = एवमुक्त्वा, गन्तुं = प्रयातुं, इच्छति = वाञ्छति )।

---

भोलीभाली हैं और प्रतीत हो रहा है कि इन्होंने उसी से यह भोलापन सीखा है। इन शकुन्तला की प्रिय शिष्या मृगियों की आँखों का भोलापन मुझे अतिप्रिय लगता है। अतः मैं इन पर क्रूर दृष्टि नहीं रख सकता हूँ। इस प्रकार शकुन्तला की अनुस्मृति से राजा को मृगों के शिकार में विरसता प्रतीत हो रही है। देशकालानुवर्ती अनुभूत पदार्थों को निरन्तर ध्यान में लाने को अनुस्मृति कहते हैं—

'अर्थानामनुभूतानां देशकालानुवर्तिनाम्।
सातत्येन परामर्शो मानसः स्यादनुस्मृतिः॥'

**विदूषक**-( **राजा के मुँह की ओर देखकर** ) आप तो मन ही मन कुछ सोच रहे हैं। तो क्या ? मैंने इस वन में ही रोदन किया। क्या मेरी प्रार्थना आपने अनसुनी कर दी ?

**राजा**—( **मुस्करा कर** ) नहि, नहि मित्र ! आपकी बात अनुलङ्घनीय ही होती है। इसलिए मैं चुप होकर तुम्हारी बात सोच रहा हूँ।

**विदूषक**—आप दीर्घायु हों ( **यह कह कर उठना चाहता है** )

**राजा**—वयस्य, तिष्ठ सावशेषं मे वचः।

**विदूषकः**—आणवेदु भवं [ आज्ञापयतु भवान् ]।

**राजा**—विश्रान्तेन भवता ममाप्यनायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्।

**विदूषकः**—किं मोदअखंडिआए ? तेण हि अअं सुगहीदो खणो [ किं मोदकखण्डिकायाम् तेन ह्ययं सुगृहीतः क्षणः ]।

**राजा**—यत्र वक्ष्यामि। कः कोऽत्र भोः।

( प्रविश्य )

**दौवारिकः**—( प्रणम्य ) आणवेदु भट्टा [ आज्ञापयतु भर्ता ]।

---

**राजा**—वयस्य ! = मित्र ! तिष्ठ=उपविश, सावशेषं = अवशिष्टम्, असमाप्तं मे = मम वचः = वचनम्।

**विदूषकः**—आज्ञापयतु = आदिशतु, भवान् = त्वम्।

**राजा**—विश्रान्तेन भवता = कान्तिरहितेन, अपनीतमृगया परिश्रमेण त्वया अनायासे = अभ्यासरहिते परिश्रमशून्ये मृगयातिरिक्ते मम = मदीये कर्मणि = कार्ये सहायेन = सहयोगिना भवितव्यम्।

**विदूषकः**—पुनरपि हास्यव्यञ्जकं जगाद—किं खण्डनं खण्डिकाभक्षणार्थं ग्रासपरिणामं = मोदकानां शकलीकरणमित्यर्थः। मोदकस्य = मिष्टान्नस्य खण्डिकायां=मोदकभक्षणमहोत्सवे तेन तर्हि हि = निश्चयेन सुगृहीतः = सम्यग् अङ्गीकृतः = क्षणः = अवसरः। मोदकभक्षणं चेदनुजानासि तर्हि स्वीकृतमिदं निमन्त्रणमित्यर्थः। सावधानोऽस्मि कथयेति भावः।

**राजा**—यत्र = यस्मिन् विषये वक्ष्यामि = कथयिष्यामि। शकुन्तलावृत्तान्तं विवक्षुः सोत्कण्ठो राजा दुष्यन्तः तस्य देशस्य विविक्ततां सम्पादयितुमुपक्रमते—भो ! कः, कोऽत्र = अस्मिन् स्थाने वर्तते स आगच्छतु इति शेषः। भोः इति सामान्येन परिजनं प्रति सम्बोधनं वर्तते।

**दौवारिकः**—द्वारे नियुक्तो दौवारिकः = द्वारपालः। ( प्रविश्य प्रणम्य च ) भर्ता = स्वामी, आज्ञापयतु = आदिशतु।

---

**राजा**—मित्र ! ठहरो-ठहरो, मेरी बात तो पूरी ही नहीं हुई, सुन लो।

**विदूषक**—अच्छा, तो आज्ञा दीजिए।

**राजा**—अच्छा, आप इस प्रकार विश्रान्ति प्राप्त कर बिना परिश्रम के ही हो सकने वाले मेरे एक कार्य में सहायक होवें।

**विदूषक**—क्या, लड्डू खाने में ? तब तो मैं तैयार हूँ। ( विदूषक को लड्डू खाना अत्यन्त प्रिय है )।

**राजा**—जिस ( उस ) अनायास कार्य में मैं कहूँगा। अरे, कौन है पहरे पर।

**विशेष**—यहाँ कः कः वीप्सा में द्वित्व है। अकेले भो का प्रयोग अज्ञात के लिए होता है।

**( प्रवेश कर )**

**द्वारपाल**—**( प्रणाम कर )** महाराज, मैं उपस्थित हूँ, क्या आज्ञा है ?

**विशेष**—संस्कृत नाटकों में दौवारिक अधम पात्र माना जाता है और यह प्राकृत में ही बोलता है और तथा को भर्ता कहता है। 'नीचेषु प्रकृतं भवेत्' 'भट्टेति चाधमैः प्रयोज्यम्।'

राजा—रैवतक, सेनापतिस्तावदाहूयताम् ।

दौवारिकः—तह [ तथा ] । ( इति निष्क्रम्य सेनापतिना सह पुनः प्रविश्य ) एसो अण्णावअणुक्कंठो भट्टा इदो दिण्णदिट्ठी एव्व चिट्ठदि उवसप्पदु अज्जो [ एष आज्ञावचनोत्कण्ठो भर्त्ता यतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति । उपसर्पत्वार्यः ] ।

सेनापतिः—( राजानमवलोक्य ) दृष्टदोषापि स्वामिनि मृगया केवलं गुण एव संवृत्ता तथा हि देवः—

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं[1]
रविकिरणसहिष्णु[2] स्वेदलेशैरभिन्नम् ।

---

राजा—रैवतक !=दौवारिक ! सेनापतिः=सेनानीः तावत् आहूयताम्=आकार्यताम् ।

दौवारिकः—तथा=यथा आज्ञापयति देवः ( इति=एवं कथयित्वा निष्क्रम्य=रङ्गमञ्चाद् बहिर्भूत्वा सेनापतिना सह=सेनानिना सह=साकं पुनः=भूयः प्रविश्य=रङ्गमञ्चे प्रकटितः ) एषः=अयं पुरोवर्ती आज्ञाया आदेशस्य वचने=कथने उत्कण्ठा=उत्सुकता त्वरा यस्य स आज्ञावचनोत्कण्ठितः आदेशदानसमुत्सुकः भर्ता=स्वामी इतः=आवां प्रति दत्ता=प्रदत्ता दृष्टिः=नेत्रव्यापारः येन स इति दत्तदृष्टिः एव तिष्ठति=उपविष्टोऽस्ति, आर्यः=श्रीमान् उपसर्पतु=समीपमुपगच्छतु ।

सेनापतिः—( राजानमवलोक्य=दुष्यन्तं दृष्ट्वा ) दुष्यन्तविषये मृगयाया गुणत्वं समर्थयति—दृष्टाः—अनुभूता संभाविता वा दोषाः=अवगुणाः यत्र यथा वा सा यद्वा दृष्टा शास्त्रेषु निर्दिष्टा दोषाः हिंसाजन्यपापादयो यस्यां सा दृष्टदोषा=भूरिदोषजननी मृगया=आखेटकार अपि यद्यपि=तथापि स्वामिनि=देवे गुणः=अलङ्कृतिः एव संवृत्ता=भूता । तथा हि=उदाह्रियते—देवः=स्वामी इतीदं पदं बिभर्त्तीत्यनेन सम्बद्ध्यते ।

अन्वयः—गिरिचरो नाग इव देवः अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं रविकिरणसहिष्णु-स्वेदलवैः अभिन्नम् अपचितम् अपि व्यायतत्वात् अलक्ष्यं प्राणसारं गात्रं बिभर्ति ।

---

राजा—रैवतक ! जरा सेनापति को बुलाना ।

विशेष—सेनापतिः—सुशील, सबल, आलस्यहीन, मृदुभाषी, शत्रु के दोषों से परिचित, कुलीन, समय का अभिज्ञ, अस्त्र-शस्त्र आदि का रहस्यज्ञ समाज में सरल, उचित स्थानों से परिचित, काल का जानकार और गुणवान् होना चाहिए—सेनापति का लक्षण इस प्रकार है—

'शीलवान् सत्त्वसम्पन्नः त्यक्तालस्यः प्रियम्वदः :
पररन्ध्रान्तराभिज्ञो यात्राकालविशेषवित् ।।
अस्त्रशस्त्रातितत्त्वज्ञो लोके चावक्रतां गतः ।
देशवित् कालविच्चैव भवेत्सेनापतिर्गुणैः ।।'

द्वारपाल—जो आज्ञा महाराज की, अभी बुला लाता हूँ **( बाहर जाकर सेनापति को साथ में लेकर भीतर आकर सेनापति से )** आर्य ! भीतर पधारिए महाराज आपकी प्रतीक्षा में आपको कुछ आज्ञा देने के लिए हम लोगों की ओर दृष्टि डाले ही हैं ।

**सेनापति—( राजा को देखकर मन ही मन )** यद्यपि शिकार खेलने में बहुत दोष है, क्योंकि शिकार खेलना भी एक व्यसन ही है, हमारे इन प्रभु=महाराज के लिए तो यह व्यसन भी गुणदायक ही हो रहा है, क्योंकि—

---

पाठा०—१. क्रूरकर्मा । २. सहिष्णुः······रभिन्नः ।

अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं
गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्त्ति ॥ ४ ॥

( उपेत्य ) जयतु स्वामी, गृहीतश्वापदमरण्यम् । किमन्यत्रावस्थीयते ?

राजा—मन्दोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माढव्येन ।

---

तथाविधं राजानं दुष्यन्तं दृष्ट्वा सेनापतिः स्वामिनि मृगयाया गुणत्वं समर्थयन् स्वात्मनि चिन्तयति—अनवरतेति । गिरौ = पर्वते चरति = विहरति इति गिरिचरः = विहारी नाग इव = गज इव देवः = स्वामी अनवरतं = सततं धनुषः = कार्मुकस्य ज्यायाः = मौर्व्याः आस्फालनेन = संघर्षणेन क्रूरः = कठोरः पूर्वः = पूर्वभागः यस्य तत्-अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वम्, रवेः = सूर्यस्य किरणानां = रश्मीनां सहिष्णु = अभ्यासबलात् सहनशीलं = आतपेऽप्यक्लान्तमिति रविकिरणसहिष्णु = आदित्यतेजः सहनशीलम् स्वेदलवैः = स्वेदस्य लवाः = बिन्दवः स्वेदलवाः तैः स्वेदलवैः = श्रमवारिबिन्दुभिः अभिन्नम् = असंपृक्तम् अपचितं = कृशम्, अपि व्यायतत्वात् = मृगयाव्यापारव्यायामात् अलक्ष्यं = अपरिचितत्वेन लक्षयितुमशक्यम् प्राणसारं—प्राणेन = बलेन सारं = स्थिरमिति प्राणसारं यद्वा प्राणः = बलं सारः = तत्त्वं यस्मिन् तत् प्राणसारं तत् गात्रं = वपुः बिभर्त्ति = धारयति । अयं भावो यथा आरण्यको गजो राजगज इव न राजभोगान् लभते अपितु आरण्यकवनमूलफलासनो दुर्बलकलेवर एव राजभोगानुजीवि नागरिकमजायेक्षया वैशिष्ट्यं बिभर्त्त्येव तथैव महाराजो दुर्बलशरीरोऽप्युत्कर्षतां बिभर्त्त्येवेति भावः । अत्र परिकर-श्लेष-उपमा-वृति-श्रुतानुप्रासा अलङ्काराः मालिनी वृत्तं च ॥ ४ ॥

( उपेत्य = आज्ञावचनोत्कण्ठया समीपमुपसृत्य ) जयतु = सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् स्वामी—देवः गृहीताः—धृताः शोभिताः श्वापदाः—हिंस्रा जन्तवो यस्मिन् तत् गृहीतश्वापदम् = निरुद्धमृगयातायातम्=अरण्यं—वनम्, जातम् किमन्यत्र=अन्यस्मिन् स्थाने अवस्थीयते= अवस्थानं क्रियते, क्रियेत ।

**राजा**—मृगयायाः = आखेटस्य अपवादिना = निन्दकेन माढव्येन माढव्यनाम्ना विदूषकेन मन्दः = शिथिलः क्षीणमृगयाविषयकः उत्साहः यस्य स मन्दोत्साहः कृतः = विहितोऽस्मि ।

---

इनका तो मृगया के कारण बराबर धनुष को चढ़ाते रहने से पूर्ण व्यायाम हो जाने के कारण शरीर सुदृढ एवं कठोर हो गया है और सूर्य की प्रखर किरणों के सहन करने की क्षमता भी इनमें आ गई है । इनको परिश्रम से तथा सूर्य के सन्ताप से भी पसीने नहीं आते हैं, इनका शरीर यद्यपि परिश्रम से कृश हो गया है, फिर भी गढ़ा रहने के कारण कृशता प्रतीत नही हो रही है। अतः जिस प्रकार जङ्गली हाथी का शरीर कृश होते हुए भी बलिष्ठ और शक्तिसम्पन्न होता है वैसे ही महाराज का शरीर कृश होते हुए भी उत्साह सम्पन्न, सुदृढ, परिश्रम सहिष्णु तथा क्षमताशील है ॥ ४ ॥

**( पास में जाकर )** महाराज की जय हो, महाराज ! जङ्गल के हिंस्र जीव पकड़ लिए गये हैं । क्या, दूसरी जगह डेरा डाला जाय ? महाराज की क्या आज्ञा है ?

**राजा**—शिकार का निन्दक इस माढव्य विदूषक ने मेरा शिकार खेलने का उत्साह ही भंग कर दिया है । अतः अब मैं शिकार नहीं खेलूँगा ।

**सेनापतिः**—( जनान्तिकम् ) सखे, स्थिरप्रतिबन्धो[1] भव। अहं तावत्स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये। ( प्रकाशम् ) [2]प्रलपत्वेष वैधवेयः। ननु प्रभुरेव निदर्शनम्।

**मेदश्छेदकृशोदरं लघु [3]भवत्युत्थानयोग्यं वपुः**
**सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।**
**उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले**
**मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः॥ ५॥**

---

**सेनापतिः**—( जनान्तिकं = माधव्यं प्रति मन्दस्वरेण ) राजोक्तमाकर्ण्य विश्रामावसरलाभेन मनसि हृष्यन् सेनापतिं विदूषकमाह—सखे ! = मित्र ! त्वमिव अहमपि विश्रमोत्सुकोऽस्मि, त्वया मध्ये न विरन्तव्यम् स्थिरप्रतिबन्धः—स्थिरः = अविचलितः प्रतिबन्धः = मृगया विरोधः यस्य सः स्थिरप्रतिबन्धः, भव, नैसर्गिकेण चापलेन पुनरपि राज्ञो मतं नानुसरति भावः। अहं हि = अयं जनः यावत् स्वामिनः = महाराजस्य चित्तवृत्तिं = मनोव्यापारम्, अनुवर्तिष्ये = अनुगमिष्यामि भृत्यत्वादित्यर्थः ( प्रकाशं = स्पष्टम् ) एषः = अयं पुरोवर्ती विधवापुत्रः विदूषकः, प्रलपतु = मृगयापवादं वदतु नाम ननु = दृढामन्त्रणे प्रभुरेव निदर्शनम् = महाराज एव दृष्टान्तः। मृगया गुणानां देवे दर्शनादिति भावः। अग्रे श्लोकेन मृगयागुणो वर्ण्यते।

**अन्वयः**—वपुः मेदश्छेदकृशोदरं लघु उत्थानयोग्यं भवति भयक्रोधयोः सत्त्वानां विकृतिमच्चित्तमपि लक्ष्यते चले लक्ष्ये इषवः सिध्यन्ति यत् धन्विनां स च उत्कर्षः मृगया मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति ईदृग् विनोदः कुतः।

सेनापतिर्मृगयाया गुणान् वर्णयति—**भेद इति**। वपुः = शरीरं मेदसः = वसायाः छेदेन = अल्पीभावेन कृश = क्षीणं, उदरं यस्मिन् तत् मेदश्छेदकृशोदरं = मेदोविनाशतनुतरोदरम् अत एव लघु = भाररहितं उत्थानयोग्यं = उत्थानस्य = अनालस्यलक्षणस्योद्योगस्य योग्यं = आश्रयभूतं भवति यद्वा उत्साहयोग्यं = उत्साहशालि भवति। भयक्रोधयोः = भीतिकोपयोः विकारयोः सत्त्वानां = सिंहव्याघ्रादिजन्तूनां विकृतिमत् = विकृतियुक्तं चित्तं = चेतः लक्ष्यते = लक्षणैर्ज्ञायते चले = चञ्चले लक्ष्ये = शरव्ये—मृगयादिरूपे वेद्धव्ये

---

**सेनापति—( हाथ की आड़ लेकर विदूषक से )** मित्र माधव्य ! आप अपनी बात पर अडिग रहिएगा। मैं महाराज को प्रसन्न करने के लिए ही उनके मन की बात बताता हूँ **(प्रगट में)** महाराज ! माधव्य तो मूर्ख है, जो ऐसी बात बकता है। शिकार के गुणों को यह क्या जाने। आखेट के गुणों के तो आप ही प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। आप देखें—

शिकार खेलने से पेट की चर्बी कम हो जाती है और शरीर फूर्तीला एवं उत्साह सम्पन्न हो जाता है। भय तथा कोप में जङ्गली जीवों का मनोभाव मालूम पड़ जाता है। बाण चलाने वालों का विशेष गुण चल-लक्ष्य पर बाण प्रहार सिद्ध हो जाता है। इसलिए शिकार को व्यसन मानना सर्वथा व्यर्थ है। मृगया जैसे मनोविनोद का साधन अन्यत्र कहीं नहीं है॥ ५॥

**विशेष**—यहाँ सेनापति ने बड़ी चतुराई से काम लिया है—उसने विदूषक की ओर हाथ करके पहले ही समझा दिया कि मित्र ! मैं केवल राजा को प्रसन्न करने के लिए ही शिकार की प्रशंसा तथा तुम्हें विधवा का पुत्र कह कर तुम्हारी निन्दा कर रहा हूँ, तुम बुरा न मानना, अपनी बात पर डटे रहना ताकि मृगया खेलना बन्द हो जाने से हमलोगों को कुछ आराम मिल जाय। इसके

---

पाठा०—१. दृढप्रतिज्ञो। २. प्रलपत्येष वैधेयः। ३. भवत्युत्साहयोग्यं।

**विदूषकः**—( सरोषम् ) अपेहिरे उच्छाअहेतुक ! अवेहि अत्तभव पकिदिं आपण्णो । तुमं दाव दासीए पुत्तो अडवीदो अडवीं आहिंडंतो णरणासिआलोलुवस्स जिण्णरिच्छस्स कस्स वि मुहे पडिस्ससि । [ ( सरोषम् ) **अपेहि रे उत्साहहेतुक ! अपेहि अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः । त्वं तावद्दास्याः पुत्रोऽटवीतोऽटवीमाहिण्डमानो नरनासिकालोलुपस्य जीर्णऋक्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यसि ।** ]

---

इषवः = बाणाः, भल्लाद्यायुधानि सिध्यन्ति = सफली भवन्ति । यत् धन्वि = धानुष्कानां स च उत्कर्षं = कुशलता धनुर्विद्योन्नतिः मृगयां – आखेटकं मिथ्यैव = असत्यं व्यसनं = दोषाधायकं वदन्ति = लोकाः कथयन्ति, ईदृक् – निरुक्तलक्षणवत्तया एतत्सदृशो हितकारा विनोदः विनुद्यते काल इति विनोद विहारः क्रीडा वा कुतः = न कुत्रापीत्यर्थः । वस्तुतो मृगया नानासद्गुणाधानहेतुभूतोत्पादीयैवेति भावः ।

मृगयायां निम्नोक्ता दश गुणाः प्रोक्ताः सन्ति । तथा हि—

'मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियोन्मदः ।
तौयात्रिकं वृथाट्या च कामजो दशमो गुणः ॥'

'अत्र काव्यलिङ्गवृत्यनुप्रास-समुच्चयालङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं च छन्दः ॥ ५ ॥

मृगयायामितस्ततो धावनेन वसायाः कार्श्यात् शरीरं स्फूर्तिशीलं भवति, लक्ष्यवेधावसरे भयेन पलायमाणानां हरिणादीनामिङ्गितानि ज्ञायन्ते, उत्थायोत्थाय निर्भरं धावति परित्रस्ते मृगेऽपि लक्ष्यकौशलं सिध्यति, संमुखे मुख व्यादाय समुत्पतिष्णोः शार्दूलस्य कण्ठे भल्लोत्क्षेपणे महती आनन्दानुभूतिर्भवति । मृगयासक्तचेतसां पुंसां दिनमनायासेन व्यत्येति सर्वथा मनसि समुत्साहो बोभवीति न मृगया सदृशः क्वापि मनोविनोदः सम्भवतीत्यवश्यं मृगया विधेयेति भावः ॥ ५ ॥

**विदूषकः**—( सरोषं – रोषसहितं ) अपेहि = दूरं गच्छ उत्साहहेतुकः=वृथा उत्साहवर्द्धक ! अत्रभवान् = पूज्यः श्रीमान् महाराजः प्रकृतिमापन्नः = स्वाभाविकीस्थिति प्राप्तः । त्वं = भवान् दास्याः पुत्रः = दासीपुत्रः तावत् तु अटवीतोऽटवीं = वनाद्वनान्तरं, अहिण्डमानः = भ्रमन् नरनासिकालोलुपस्य = नराणां = मनुष्याणां नासिकाणां लोलुपस्य =

---

बाद ( सामने ) राजा से कहता है कि महाराज शिकार खेलने से लाभ होते हैं—जैसे दौड़ने के व्यायाम से मोटापन दूर होकर शरीर फुर्तीला हो जाता है, भय और क्रोध में बिगड़े हुए जानवरों के मन की स्थिति मालूम हो जाती है । चल-लक्ष्य पर धनुर्धारियों का बाण सध जाता है । अतः मृगया को व्यसन बताना उचित नहीं ऐसा मनोरञ्जन अन्यत्र नहीं ।

**विदूषक—( क्रोध के साथ )** अरे व्यर्थ उत्साह दिखाने वाले, जा दूर हट, अब तो महाराज शिकार से उदासीन हो गये हैं, तुम्हारे फेर में अब नहीं पड़ सकते हैं । इसलिए अरे, रण्डे का पुत्र ! तूँ एक जङ्गल से दूसरे जङ्गल में घूमता फिरता हुआ किसी बूढ़े खूंखार भालू के, जो मनुष्यों के नाक खाने का अभ्यासी है, उसके मुख में पड़ जायेगा ।

**विशेष**—इस प्रकार सेनापति तथा विदूषक दोनों ने बनावटी मतभेद उपस्थित कर महाराज को शिकार खेलने से विरत करने का प्रयास किया । भालू को नरनासिकालोलुप कहने का तात्पर्य है कि रीछ मनुष्य की नाक नोचने के बाद ही अन्य अङ्ग पर आक्रमण करता है । वृद्ध भालू कहने का अर्थ है वृद्धावस्था में तृष्णा अधिक बढ़ जाती है जिससे वृद्ध की लोलुपता का बढ़ जाना स्वाभाविक हैं ।

**राजा**—[1]भद्र सेनापते, आश्रमसन्निकृष्टे स्थिताः स्मः। अतस्ते वचो नाभिनन्दामि। अद्य तावत्—

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
[2]विश्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः॥ ६॥

---

लिप्सो कस्यापि जीर्णऋक्षस्य वृद्धभल्लूकस्य मुखे=वदने पतिस्यसि=यास्यसि। वृद्धभल्लूकस्तव नासिकां भक्षयतु इति शापः। भल्लूका हि स्वपुरः समागतानां पुंसां नासिकामाच्छिद्य खादन्तीति प्रसिद्धिः। वार्द्धके लोलुपता वर्द्धते एवेति स्वभावोक्तिरिति भावः।

**राजा**—मृगयापरिहाराय कारणान्तरं निर्दिशन् कथयति—भद्र सेनापते!=महाशयसेनानिन्! आश्रमस्य=तपोवनस्य सन्निकृष्टे=समीपे स्थिताः=प्राप्ताः स्मः। अतः=अस्मात् कारणात् ते=तव वचः=वचनं नाभिनन्दामि=प्रशंसामि अद्य=अस्मिन् दिने तावत्=तु।

**अन्वयः**—महिषाः शृङ्गैः मुहुः ताडितं निपानसलिलं गाहन्तां, मृगकुलं छायाबद्धकदम्बकं सत् रोमन्थम् अभ्यस्यतु वराहपतिभिः विश्रब्धं पल्वले मुस्ताक्षतिः क्रियताम्, इदम् अस्मद्धनुः च शिथिलज्याबन्धं सत् विश्रामं लभताम्।

**गाहन्तामिति**—महिषाः=लुलायाः शृङ्गैः=विषाणैः मुहुः=वारम्वारम् ताडितं=उत्फालितं, निपानसलिलं=आहावजलम्, गाहन्ताम्=आलोडयन्तु, निर्भयत्वाद् यथेच्छं क्रीडन्तु सदा प्रज्वलितस्य जठराग्नेः शान्तये महिषा जलावगाहनं कुर्वन्तीति प्रसिद्धिः। मृगकुलं=हरिणानां समूहः छायासु=अनातपेषु बद्धं=रचितं कदम्बकं मण्डलाकारेणावस्थानम् यत तत्—छायाबद्धकदम्बकं=आतपरहिते स्थाने बद्धयूथं मृगकुलं=हरिणसमूहः रोमन्थं चर्वितचर्वणं, उद्गलितशष्पादि-कवलचर्वणम्, अभ्यस्यतु=मुहुर्मुहुः करोतु, पूर्वं मृगयाप्रसङ्गे पलायनपरैः तैः विस्मृतो रोमन्थः इदानीं पुनरपि निःशङ्कं क्रियतामित्यर्थः। वराहपतिभिः=सूकरश्रेष्ठैः विश्रब्धं=निःशङ्कं पल्वले=अल्पसरोवरे जलगर्तेषु मुस्ताक्षतिः=मुस्ताख्यकन्दग्रहणाय तस्योत्खननं क्रियतां=विधीयताम्-वराहाः प्रायः कर्दमविशिष्टेऽल्पजले सरोवरे एव औष्ण्यमतिरेकाद्दिवसं यापयन्तीति प्रसिद्धिः। इदं=मृगयार्थमारोपितज्यम् अस्मद्धनुश्च मम चापं च शिथिलः=निरन्तरमाकर्षणात् शैथिल्यमा-

---

**राजा**—सेनापते! मैं आश्रम के पास में हूँ। अतः शिकार के समर्थक तुम्हारे वचनों का समर्थन नहीं कर सकता। आज तो—

वनैले भैंसे अपने सींगों से बार-बार जल का ताड़न करते हुए पास के जलाशयों में निर्भय होकर जलक्रीड़ा करें। हरिण वृक्षों की सघन छाया में बैठकर सुखपूर्वक रोमन्थ=जुगाली का अभ्यास करें। बड़े-बड़े जङ्गली सूअर छोटे-छोटे गड्ढों में नागरमोथा की जड़ों को खोद-खोदकर खायें और प्रत्यञ्चा ढीला किया हुआ धनुष भी विश्राम करे। आज शिकार नहीं खेली जायेगी। अतः महिष, मृग, शूकर आदि जङ्गली जानवरों को निर्भय होकर स्वच्छ विचरण करने दिया जाय॥ ६॥

**विशेष**—इस पद्य के द्वारा बताया गया है कि मृगया से राजा दुष्यन्त को विरत हो जाने के कारण शोर, भगदड़, प्रहार आदि का भय न होने से पशु, सूअर, मृग, भैंस आदि स्वन्त्रतापूर्वक विहार करें।

---

पाठा०—१. भद्रसेन। २. विश्रब्धैः।

**सेनापतिः**—[1]यत्प्रभविष्णवे रोचते ।

**राजा**—तेन हि निवर्तय पूर्वगतान् [2]वनग्राहिणः । यथा न मे सैनिकास्तपोवन[3]मुपरुन्धन्ति तथा निषेद्धव्याः । पश्य—

**शमप्रधानेषु [4]तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।**
**स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ॥ ७ ॥**

---

पन्नः ज्याबन्धः = मौर्वीबन्धः यस्य तत् शिथिलज्याबन्धं = सत् विश्रामं = विश्रान्ति लभताम् = प्राप्नोतु सद्यः संह्रियतां मृगयेत्यथः ॥ ६ ॥

प्राक मृगयाप्रसङ्गेन वनकोलाहलेन विक्षुब्धा महिषा जलाशयेषु विषाणैः जलोत्फालनात् दंशादीन् निवारयन्तो निःशङ्कं जले क्रीडां कुर्वन्तु । मदीयशरपातशङ्कया उत्प्लुत्योत्प्लुत्य पलायमानाः मृगाः छायाशीतलेषु तरुतलेषु निर्भयमवस्थिताः रोमन्थं कुर्वन्तु, सूकरा अपि खातजलेषु अवगाहमवगाह्य मुस्तमूलखनने प्रवर्तन्ताम्, चिरमारोपितमौर्वीकमस्मदीयं धनुरपि गुणावरोपणात् विश्रामं लभतामित्येवमादिदेश राजा दुष्यन्त इति भावः ।

केचित्तु महिषाश्च महिष्यश्च मृगाश्च मृग्यश्च महिषादिद्वन्द्वपरतया मुस्ता-विश्रान्ति-ज्यानां च स्त्रीलिङ्गनिर्दिष्टानां नायिकात्वारोपेण क्षतौ च दन्तक्षतत्वारोपेण बन्धपदेन च सुरतकरणत्वारोपेण च बन्धशब्दस्य स्नेहवाचकतया सुरतान्तमौर्वीरूपनायिकाप्रणयत्वेन नायकनायिकामिथुनव्यापारसूचकतयाऽमुं पद्यं व्याख्यान्ति । व्याख्येयं विदुषां सहृदयानां हृदयाह्लादकत्वेऽप्यन्तेवसतामनुपयोगित्वान्नान्यद्विचार्यते ।

अत्रातिशयोक्तिस्वभावोक्तिवृतिश्रुत्यनुप्रासक्रियासमुच्चयप्रस्तुताङ्कुरकाव्यलिङ्गालङ्काराः वृत्तं च शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ६ ॥

**सेनापतिः**—अथ मृगयानिवृत्तिमिच्छन्नपि सेनापतिः राज्ञाज्ञायामेव तद्धेतुतां दर्शयिष्यन्नाह—प्रभविष्णवे = प्रभुता शक्तिसम्पन्नाय महाराजाय यद्रोचते = रुचिकरं स्यात्तत्तथेवेति भावः ।

**राजा**—तेन = तस्मात् कारणात् हि = निश्चयेन पूर्वगतान् = वनग्रहणार्थं मदाज्ञया पूर्वप्रेषितान् वनग्राहिणः = वनशोधकान् निवर्तय = परावर्तय आगमय । यथा = येन प्रकारेण न मे = मम सैनिकाः = भटाः तपोवनं = तपस्यारण्यम् न उपरुन्धन्ति = परिपीयन्ति, तथा = तेन प्रकारेण निषेधव्याः = प्रतिषेधनीयाः । पश्य = अवलोकय ।

**अन्वयः**—शमप्रधानेषु तपोवनेषु दाहात्मकं तेजः गूढम् अस्ति हि स्पर्शानुकूलाः अपि सूर्यकान्ताः इव अन्यतेजोऽभिभवात् तत् ते वमन्ति ।

तपोपरोधनिषेधे कारणं कथयन् राजा दुष्यन्त आह—**शमेति** । शमः = शान्तिः एव

---

**सेनापति**—जैसी महाराज की इच्छा, वही ठीक है ।

**राजा**—तो फिर शिकार की खोज में आगे बढ़े हुए धनुर्धरों को वापस बुला लो और हमारे सैनिक इस आश्रम से दूर ही रहें—ऐसा मेरा आदेश सभी सिपाहियों को सुना दो, क्योंकि देखो—

शान्ति प्रधान तपोवनों के ऋषियों के अन्दर गूढ़रूप से दाहात्मक तेज = अग्नि छिपा रहता है। वे स्पर्शयोग्य सूर्यकान्तमणि की तरह दूसरे के तेज के प्रभाव से जल उठते हैं । अतः ये तपोवनवासी ऋषिगण भी दूसरे के द्वारा अभिभूत होने से उसे जलाकर खाक कर सकते हैं ॥ ७ ॥

---

पाठा०—१. यथा प्रभविष्णवे । २. धनुर्ग्राहिणः । ३. वनं नाभिरुन्धति दूरात्परिहरन्ति च । ४. तपोवनेषु ।

**सेनापतिः**—यदाज्ञापयति स्वामी ।

**विदूषकः**—धसदु दे उच्छाहवुत्तंतो । [ **ध्वंसतां त उत्साहवृत्तान्तः** ] । ( निष्क्रान्तः सेनापतिः ) ।

**राजा**—( परिजनं विलोक्य ) अपनयन्तु भवत्यो मृगयावेशम् । रैवतक, त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु ।

**परिजनः**—जं देवो आणवेदि [ **यद्देव आज्ञापयति** । ] ( इति निष्क्रान्तः )

---

प्रधानं = मुख्यं वस्तु येषां ते तेषु शमप्रधानेषु शान्तेष्वपि अतएव तपः एव प्रधानं = वित्तं, जीवनसर्वस्वं येषां ते तेषु तपोधनेषु दाहात्मकं = दाहजनकं लक्षणया दाहस्वभावं शीघ्रकार्यंकारिफलं तेजः = धाम गूढं = प्रच्छन्नं यथा स्यात्तथा अन्यजनैरदृश्यमित्यर्थः अस्ति । हि = यतः स्पर्शानुकूलाः = सुखकरस्पर्शा अपि सूर्यकान्ताः = सूर्यकान्तमणयः अन्यतेजोऽभिभवात् = अन्येषां तेजसामभिभवात् = समाक्रमणात् दहन्ति = अग्निं वमन्तः दाहसमर्था भवन्ति । बहिः = सुखकरा अपि जडाः सूर्यकान्तमणयोऽभिभवाद् यथा दहन्ति तथैव प्रायः शान्तान्यपि तपोवनानि पराभवाद्दहन्तीत्येव । तेषामबुद्धिपूर्वकत्वात् प्रतीकारानर्हत्वं व्यङ्ग्यम् । मुनीनां शापायुधत्वे प्रमाणं यथा महाभारते—

'मन्युप्रहरणा विप्रा न विप्रा शस्त्रपाणयः ॥'

तथा च स्पर्शे सति शीतला अपि प्रतीयमानाः सूर्यकान्तमणयो यथा सूर्यतेजसा अन्तःस्थितमग्निं बहिरुद्गिरन्ति तथा स्वभावतः शमप्रधाना ऋषयः परकृतबलात्कारेण संक्षुब्धहृदयाः स्वान्तःस्थितपरनिग्रहसामर्थ्यं सद्यः प्रकटय्य निगृह्णन्ति परानिति भावः ।

अत्र श्रुत्यनुप्रास–श्लेषोपमा–अनुभाव–काव्यलिङ्गालङ्काराः छन्दश्चोपजातिः ॥ ७ ॥

**सेनापतिः**—स्वामी = प्रभुः, महाराजः यत् = तथा आज्ञापयति = आदिशति ।

**विदूषकः**—ते = तव उत्साहवृत्तान्तः = उत्साहस्य = मृगयारूपस्य वृत्तान्तः = चर्चेति उत्साहवृत्तान्तः ध्वंसतां = नश्यतु । विदूषकस्य स्वपक्षविजयसूचकः परिहासोऽयम् । ( सेनापतिः = सेनानीः निष्क्रान्तः = निर्गतः )

**राजा**—( परिजनं = भृत्यवर्गं विलोक्य = दृष्ट्वा ) अपनयन्तु = दूरीकुर्वन्तु भवत्यः = यूयम् मृगयावेशं आखेटकोपयोगि वेशं = परिधानम् रैवतक ! त्वमपि = एवं = स्वोपयोगि नियोगं = द्वारदेशरक्षणरूपं स्वाधिकारं कर्तव्यम्, अशून्यं = अरिक्तं, सम्पन्नं, पूर्णं कुरु = विधेहि, इतो बहिर्गच्छेति भावः ।

**परिजनः**—देवः = स्वामी यत् = यथा आज्ञापयति = आदिशति तत् कुर्मः ( इति = एवं कथयित्वा निष्क्रान्तः = निर्गतः )

---

**सेनापति**—जैसी महाराज की आज्ञा ।

**विदूषक**—अरे, व्यर्थ उत्साहपूर्वक ! जा निकल, यहाँ से शीघ्र जा । ( **सेनापति निकल जाता है** )

**राजा**—( **अपने परिजनों की ओर देखकर** ) आपलोग भी जाकर अपना-अपना शिकारी वेश दूर कीजिए । रैवतक ! तुम भी अपने पहरे पर जाओ, आवश्यकता होने पर तुम्हें बुला लेंगे ?

**रैवतक**—जैसी महाराज की आज्ञा ( **निकल जाता है** )

**विदूषकः**—किदं भवदा णिम्मच्छिअं। संपदं एदस्सिं पादअच्छाआए विरइ दलदाविदाणदंसणीआए आसणे णिसीददु भवं, जाव, अहं वि सुहासीणो होमि [ कृतं भवता निर्मक्षिकम्। सांप्रतमेतस्यां पादपच्छायायां विरचितलतावितानदर्शनीयाया- मासने निषीदतु भवान् यावदहमपि सुखासीनो भवामि ]।

**राजा**—गच्छाग्रतः।

**विदूषकः**—एदु भवं [ एतु भवान् ] इत्युभौ परिक्रम्योपविष्टौ )।

**राजा**—माढव्य अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि येन त्वया [1]दर्शनीयं न दृष्टम्।

---

**विदूषकः**—कृतं = रचितम्। भवता = त्वया मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकं = सर्वेषा- मप्यपगमादत्यन्तं जनराहित्यम् साम्प्रतं=इदानीम्, एतस्याम् अस्यां पादपच्छायायां=पाद- पानां=वृक्षाणां छायायाम् अनातपे विरचिताः = कृताः, च ते लतावितानाः विरचितलता- वितानाः = तैः दर्शनीयाः = अवलोकनीया रमणीया तस्यां = विरचितलतावितानदर्शनी- यानां—वृक्षच्छायाकृतोल्लोचनमनोहारिणि आसने—भवान् त्वम्—निषीदतु=उपविशतु यावत् अहमपि अयमभिजनः सुखासनीः = सुखोपविष्टः आनन्दनिषण्णः भवामि = कुण्डितसन्धिरहं क्षणमपि उपवेशनं विना स्थातुं न शक्नोमि, तवोपवेशनेन विना ममोपवेशनमनुचितमिति त्वं शीघ्रमुपविशेति भावः।

**राजा**—अग्रतः = अग्रे अग्रे गच्छ = याहि = मार्गं प्रदर्शय तावत् कुञ्जशिलातलस्य।

**विदूषकः**—भवान् = त्वम् एतु = आगच्छतु इत्येवं भूते।

( उभौ = राजा विदूषकश्च परिक्रम्य = परितः किञ्चिद् गत्वा उपविष्टौ = विषण्णौ। )

**राजा**—अथ नर्मसचिवेन सह सुखासीनो राजा शकुन्तलामेव ध्यायन् अत्यन्तमुत्कण्ठितः तल्लाभोपायं चिन्तयन् तद्विषयिणीं वार्तां प्रस्तौति—माढव्य! अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि= न अवाप्तं = प्राप्तं चक्षुषोः = नेत्रयोः फलं = साफल्यं स अनवाप्तचक्षु फलः = अनधिगत- नयनसाफल्यः लोचनफलं न लब्धवानसीति भावः। येन त्वया दर्शनीयं = दर्शनयोग्यं, कान्तं वस्तु न दृष्टं = नावलोकितमतो लोचनसाफल्यं त्वया न लब्धमिति हृदयम्।

इत आरभ्य नाटकस्य द्वितीयः प्रतिमुखसन्धिः प्रारभ्यते। स च तृतीयाङ्कपर्यन्तं गमिष्यति। तल्लक्षणं यथा रसार्णवे—

'बीजप्रकाशनं यत्र दृश्यादृश्यतया भवेत्। तत् स्यात प्रतिमुखम्...... ॥'

---

**विदूषक**—आपने सबको हटाकर अब निर्मक्षिक = एकान्त बना दिया। अब आप वृक्षों की छाया से चन्दवे की तरह आच्छादित इस शिलातल पर बैठ जाइए, ताकि मैं भी यहाँ सुखपूर्वक बैठ सकूँ।

**राजा**—अच्छा, तो तुम आगे-आगे चलो।

**विदूषक**—आइए, आप मेरे पीछे-पीछे चले आइए।

**( दोनों कुछ चलकर शिला खण्ड पर बैठते हैं )**

**राजा**—सखे माढव्य! तुमने द्रष्टव्य वस्तुओं में भी सबसे श्रेष्ठ उस वस्तु को नहीं देखा है। अतः तुम्हारे नेत्र निष्फल ही हैं, क्योंकि नेत्रों का फल तो उस शकुन्तला के मुखदर्शन से ही हो सकता है।

---

पाठा०—१. द्रष्टव्यानां परं न दृष्टम्।

**विदूषकः**——णं भवं अग्गदो मे वट्टदि [ ननु भवानग्रतो मे वर्तते । ]

**राजा**—सर्वः खलु कान्तमात्मीयं पश्यति । तामाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवोमि ।

**विदूषकः**—( स्वगतम् ) होदु से अवसरं ण दाइस्सं । ( प्रकाशम् ) भो वअस्स ते तावसकण्णआ अब्भत्थणीआ दीसदि । [ भवतु अत्यावसरं न दास्ये । भो वयस्य ते तापसकन्यकाभ्यर्थनीया दृश्यते । ]

---

प्रकृते च मृगयागुणदोषवर्णनप्रसङ्गेन विच्छिन्नस्य प्रयोजनस्य अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि इत्यादिना प्रवर्तनात् विन्दुरयम् । प्रयत्नलक्षणं यथा भारते—

'अपश्यतः फलप्राप्तिं यो व्यापारफलं प्रति ।
परं चौत्सुक्यगमनं प्रयत्नः सः प्रकीर्तितः ॥'

यथात्र-राजा-'तपस्विभिः परिज्ञातोऽस्मि केनापदेशेनाश्रमे व्रजामः' इत्यादि। प्रयत्न एव । केचित्तु द्वितीयाङ्कप्रारम्भादेव प्रतिमुखं कथयन्ति ।

विदूषकः—ननु = दर्शनीयः भवानेव = त्वमेव अग्रतः = समक्षं वर्तते विद्यते । त्वत्तोऽधिकस्य सुन्दरस्य वस्तुनोऽभावात् दर्शनीयतमं त्वामेव दृष्ट्वाऽहमवाप्तचक्षुःफल एवास्मीति भावः ।

राजा—सर्वः = समस्तः खलु—निश्चयेन कान्तं=मनोरमं, दर्शनीयम् आत्मीयं = स्वं स्वकीयं जनं वा पश्यति = विलोकयति जानाति । तां = अनुभूतां प्रसिद्धां—आश्रमस्य = तपोवनस्य ललामभूतां=शोभामिति आश्रमललामभूतां = तपोवनालङ्कारभूताम् शकुन्तलां= कण्वकन्याम् अधिकृत्य=विषयीकृत्यैव ब्रवोमि = वदामि । शकुन्तलैव द्रष्टव्यानां परमुत्कृष्टं दर्शनीयेति ममाभिप्राय इत्यर्थः ।

विदूषकः—( स्वगतं = मनसि ) भवतु = तथा एव स्यात्, अस्य = दुष्यन्तस्य यद्वा प्रस्तुतस्य रागानुप्रवेशस्य अवसरं = अवकाशं, चर्चाम् न दास्ये = नोपस्थापयामि नगरगमनादिविघ्नकरणेन अङ्कुरावस्थमेवैनमनुरागमुच्छेत्स्यामीति भावः ( प्रकाशं = स्पष्टम् ) धर्मलोपभयेन भीषयन्निवाह——भो वयस्य ! = हे मित्र ! ते = तव तापसकन्यका = मुनिकुमारिका अभ्यर्थनीया = विवाहार्थं प्रार्थनीया । दृश्यते=प्रतीयते । अनुचितोऽयमभिलाषः सर्वथा परित्याज्यः त्वया इति भावः ।

---

**विदूषक**—द्रष्टव्य पदार्थों में सबसे श्रेष्ठ तो आप ही मेरे सामने बैठे हैं । अब इससे क्या अधिक देखना बाकी रह गया है ।

**राजा**—अरे मित्र ! अपने को तो सभी लोग सुन्दर मानते हैं, पर मैं अपनी बात तो नहीं कह रहा हूँ, किन्तु इस आश्रम की प्रधान अलंकाररूप उस सुन्दरी शकुन्तला के विषय में ही यह बात कह रहा हूँ । उसको तुमने नहीं देखा है । यह तुम्हारे नेत्रों की निष्फलता ही है ।

**विदूषक—( मन ही मन )** मुझे यहां ऐसा करना चाहिये कि मैं इस राजा की कामवासना को अधिक उत्तेजन नहीं दूँ, यही अच्छा है । **( प्रगट में )** अरे, वयस्य ! जब उस तापस कन्या से हमें और तुम्हें कोई प्रयोजन ही नहीं है तब उसे देखने की भी क्या जरूरत है ? अर्थात् वह ब्राह्मणकन्या होने के कारण तुम्हारे विवाह के योग्य ही नहीं है । अतः उसकी चर्चा ही व्यर्थ है ।

**राजा**—सखे, न परिहार्ये वस्तुनि पौरवाणां मनः प्रवर्तते ।

**सुरयुवतिसंभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम् ।**
**अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम् ॥ ८ ॥**

**विदूषकः**—( विहस्य ) जह कस्स वि पिण्डखज्जूरेहिं उव्वेजिदस्स तिंतिणीए अहिलासो भवे, तह इत्थिआरअणपरिभाविणो भवदो इअं अब्भत्थणा । [ यथा

---

**राजा**—अथ राजा स्वात्मनि आरोपितं धर्मलोपभयमसहमान आह–सखे ! = मित्र ! दुर्मार्गंप्रवृत्तिनिवारणं सुहृदो धर्मः, किन्तु चिरपरिचितेन त्वया कथमयमनुचितारम्भो मयि सम्भावितः ? अपरिहार्ये वस्तुनि = अगम्यागम्यादौ पौरवाणां = पुरुवंशजानां मनः = चित्तम् न प्रवर्तते = नानुधावति, तदादित्सा तु दूरेऽपास्ता । अतः पुरुवंशोत्पन्नस्य मम मनः परिहार्यं पदार्थं नाभिलषतीति भावः ।

**अन्वयः**—शिथिलम् अर्कस्य उपरि च्युतं नवमल्लिकाकुसुमं इव उज्झिताधिगतं सुरयुवतिसंभवं मुनेः अपत्यं तत् किल ( अस्ति ) ।

शकुन्तलां ब्राह्मणकन्यां मन्यमान विदूषकस्य सन्देहं दूरीकुर्वाणो राजा दुष्यन्त-स्तद्वृत्तान्तमुपस्थापति—सुरयुवतीति । शिथिलं = वृन्ताद् विश्लथीभूतं, अर्कस्य = मन्दारस्य उपरि = ऊर्ध्वं च्युतं = पतितं नवमल्लिकापुष्पम् = नवमल्लिकायाः = तरुलतायाः कुसुमं = पुष्पमिव = यथा आदौ उज्झितं = मेनकया परित्यक्तं पश्चादधिगतं कण्वेन प्राप्त-मिति उज्झितागमं सुरयुवतिः = देवाङ्गना मेनका संभवः कारणं, जन्म यस्य तत् सुर-युवतिसंभवम् = मेनकोत्पन्नम् तत् किल = निश्चयेन तत् तथाविधमित्यर्थः ।

**अयं भावः**—यथा मन्दारनवमालिकाकुसुमयोर्न परस्पर जन्यजनकयोर्भावः, अपितु काकतालीय एव कश्चन सम्बन्धः संभवति तथैव कण्वेन मुनिना पालितेयं शकुन्तला । नास्या मुनिनाऽन्यः कोऽपि सम्बन्धः । नेयं तदात्मजा, अतः पालितत्वादेव कण्वस्य शकुन्त-लापितृत्वं अप्सरसि मेनकायां राजर्षिणा विश्वामित्रेण जनितेयं मत्परिग्रहयोग्यैवम् । मित्र ! पौरवस्य वयं न खलु अस्माकं परिहार्ये वस्तुनि मनो निवेशः ; यथा मन्दारोपरि-दैवात् पतितं नवमालिकापुष्पं = मन्दारपुष्पं भवितुमर्हति तथैवेयमपि शकुन्तला न कण्वस्यौरसी पुत्री, किन्तु कौशिकेन मुनिना मेनकायामुत्पन्नाऽरण्ये परित्यक्ता महर्षिणा कण्वेन परिपालिता चेति सर्वथैवेयं मम विवाहयोग्येत्यत्र न सन्देहः कार्यः ॥ ८ ॥

**विदूषकः**—वर्णमूलके गम्यत्वे राज्ञा परिष्कृतेऽपि सांसर्गिकं तत् साधयन् विदूषकः ( विहस्य = मन्दहास्यं कृत्वा ) यथा = येन प्रकारेण कस्यापि = कस्यचित् पुरुषस्य पिण्ड-खर्जूरैः = खर्जूराख्यफलविशेषैः उद्वेजितस्य विरक्तस्य, जिह्वाजाड्यं तन्मूलामरुचिं च

---

**राजा**—मित्र ! निषेधयोग्य वस्तु की ओर पुरुवंशियों का मन चलता ही नहीं । यह शकुन्तला किसी सुन्दरी अप्सरा से उत्पन्न हुई है । अतः यह ब्राह्मण की कन्या नहीं । कण्वमुनि को तो यह उस अप्सरा से छोड़ी हुई मिली, अतः उन्होंने इसका केवल पालन-पोषण किया है। इसलिए यह उनकी कन्या कहलाती हैं । इस प्रकार कण्वमुनि के पास तो यह उसी प्रकार आ गई जैसे मदार के पौधे के ऊपर नेबारी का सुन्दर कोमल फूल आकर टपक पड़े ॥ ८ ॥

**विदूषक**—( हँसकर ) हे मित्र ! मीठे-मीठे पेड़ा और खजूरों को खाते-खाते जब मनुष्य का मन भर आता है तब उसको खट्टी चीज इमली, नीबू आदि खाने की भी इच्छा होती है । मालूम

कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत् तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयमभ्यर्थना । ]

**राजा**—न तावदेनां पश्यसि [1]येनैवमवादोः ।

**विदूषकः**—तं खु रमणिज्जं भवदो वि विम्हअं उप्पादेदि [ तत्खलु रमणीयं यद्भवतोऽपि विस्मयमुत्पादयति । ]

**राजा**—वयस्य, किं बहुना,

[2]चित्रे निवेश्य परिकल्पितस[3]त्त्वयोगा
रूपोच्चयेन [4]मनसा विधिना कृता नु ।

---

प्रापितस्य तिन्तिण्यां = अम्लत्वात् चिञ्चायां अभिलाषो लालसा भवेत् = स्यात् तथा = तेन प्रकारेण स्त्रीरत्नपरिभाविनः—स्त्रीरत्नानां = नारीवर्याणां परिभाविनः = तिरस्कर्तुः भवतः = तव दुष्यन्तस्य इयमेषा = शकुन्तलाविषयिणी अभ्यर्थना = इच्छा । यथा मधुरेणोद्विग्नो लोको हृद्यमम्लं चिञ्चाफलं बहु मन्यते तथैव त्वयापि अन्तःपुरस्थायां वरवर्णिनीनां चिरपरिचयवशात्तां अवज्ञाय वनवासिनीयं तपस्विकन्या प्रशस्यते इति भावः । विदूषकस्येयं परिहासोक्तिः ।

राजा—प्रियायां तस्यामतिसुन्दर्यां शकुन्तलायामारोपितं दौर्भाग्यमसहमानो न तावत् एनां शकुन्तलां पश्यसि = अवलोकयसि येन = कारणेन एवं = तथा त्वम् अवादीः = अकथयः ।

विदूषकः—भूयो भूय उच्यमानराजवचनेन शकुन्तलासौन्दर्यमङ्गीकुर्वन् माधव्यः अभिधत्ते—तत् वस्तु खलु = निश्चयेन रमणीयं = अतिमनोरमं यत् = वस्तु भवतः—तव अपि विस्मयं = आश्चर्यं कौतुकम् उत्पादयति = जनयति । सा रमणीयैवेति तर्कयामि, यतस्तवाश्चर्यं जनयतीति भावः । तस्मात्त्वत्कौतुकादेवाहं सौन्दर्यातिशालिनीमनुमिनोमीत्यर्थः ।

राजा—वयस्य ! = मित्र ! किं बहुना—अलम् आधिक्येन, अङ्गप्रत्यङ्गवर्णनरूपेण स किमपि फलम्, बहूक्तेनापि यथावद्वर्णनस्याशक्यतया तेन न प्रयोजनसिद्धिरिति भावः ।

अन्वयः—धातुः विभुत्वं तस्याः वपुश्च अनुचिन्त्य मे सा विधिना चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा कृता नु अपररत्नसृष्टिः प्रतिभाति ।

शकुन्तलानिर्माणस्य लोकोत्तरत्वमाह—चित्रेति । धातुः—चतुर्दशभुवननिर्मातुः सिद्ध-

---

पड़ता है अन्तःपुर की सुन्दर-सुन्दर स्त्री-रत्नों को उपभोग करने वाले आपकी भी वैसे ही इस जंगली कन्या के ऊपर इच्छा हो रही है ।

**राजा**—मित्र ! तुमने उसे देखा नहीं है इसीलिए तुम ऐसा कह रहे हो ।

**विदूषक**—तो वह अवश्य ही अत्यन्त सुन्दरी होगी, जो आपके मन में भी इतना विस्मय, औत्सुक्य और आश्चर्य उत्पन्न कर रही है ।

**राजा**—मित्र !—ज्यादा क्या कहूँ,

ब्रह्माजी की सब कृतियों को तथा उस अतिसुन्दरी शकुन्तला के सुन्दर शरीर के देखने से यही

पाठा०—१. येन त्वमेवंवादी । २. चित्ते । ३. सर्वयोगान् । ४. महता मनसा ।

स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥ ९ ॥

**विदूषकः**—जइ एव्वं पच्चादेसो दाणिं रूववदीणं [ यद्येवं प्रत्यादेश इदानीं रूपवतीनाम् ] ।

---

हस्तस्य ब्रह्मदेवस्य विभुत्वं = सामर्थ्यं, निर्माणकौशलं तस्याः शकुन्तलायाः वपुः = लोकोत्तरसौन्दर्यशालि अतुलसौन्दर्यसारसमुज्ज्वलं शरीरं च अनुचिन्त्य = मुहुर्मुहुरनुसन्धाय स्थितस्य मे = देवेन्द्रसाहाय्याय स्वर्गगमनसमये प्रागुर्वशीरम्भादि–दिव्यस्त्रीरत्नानि दृष्टवतो मम सा मन्नेत्रकुमुदविकासराकाशशाङ्कायमाना । शकुन्तला—विधिना = ब्रह्मणा चित्रे = आलेख्ये = फलकादौ निवेश्य, विभाव्य आकृतिसमर्पणप्रकारेण विलिख्य परिकल्पितः = प्रतिष्ठापितः, कृता सत्वस्य = प्राणस्य, जीवस्य योगः सम्बन्धो यस्याः सा परिकल्पितसत्वयोगा रूपोच्चयेन—रूपस्य = सौन्दर्यस्य उच्चयः = उच्चयनं = चन्द्रपद्मादिसुन्दरपदार्थजाता तत्सौन्दर्यस्य सारग्रहणं तेन रूपोच्चयेन मनसा = तदेकतानेन चेतसा कृता = सङ्कल्पेन प्रादुर्भूता । नु वितर्के अपरा = पूर्वक्तदिव्यादिव्यसकलस्त्रीरत्नेभ्यो व्यतिरिक्ता, अनन्यसाधारणी स्त्रीरत्नस्य सृष्टिः स्त्रीरत्नसृष्टिः = उत्कृष्टस्त्रीरत्नत्वेन सृष्टा प्रतिभाति = मम मनसीदृशो वितर्कः समुल्लसति ।

शकुन्तलाया अङ्गप्रत्यङ्गवर्णनं तु कठिनमेव, परमेतावदेव वक्तुं शक्यते यद् यथा कश्चित् कुशलः शिल्पी सर्वतोऽनुभूतैः आत्मनः सिद्धिप्रयोगैः महता कौशलेन विशिष्टसामग्रीसम्भारसारमाकृत्य पूर्वकल्पितशिल्पसमूहात् उत्कृष्ट वस्तु सम्पादयति तथैव प्रजापतिरपि सकललोकसृष्टिलब्धानुभवविशेषबलात् महता बुद्धियोगेन करस्पर्शक्लेशमन्तरा केवलं मनसैव सौन्दर्यसारेणैवोपादानेन एषा कापि परमादर्शभूता ललनाललामा निर्ममे। कथमन्यथा जगदतिशायिरूपसम्पदस्तस्याः सृष्टिः ब्रह्मणा कर्तुं शक्येत । अत्र यावदीदृशसृष्टेस्तेनाकल्पनादिति शकुन्तलायाः सौन्दर्यं वर्णनातीतं लोकोत्तरं वैशिष्ट्यं बिभर्तीति तत्त्वम् । अत्रोत्प्रेक्षातिशयोक्तिकाव्यलिङ्गालङ्कारः । वृत्तं च वसन्ततिलका ॥ ९ ॥

**विदूषकः**—राजोक्तिमनुवदन् विदूषकः कथयति—यदि = चेत् एवं = इत्थम् भवदुक्तं सत्यं तदा इदानीं = साम्प्रतं रूपवतीनां = रूपाभिमानिनीनां सुन्दरीणां स्त्रीणाम्। प्रत्यादेशः = प्रत्याख्यानं, निराकरणम्, अनन्यसाधारणसौन्दर्यशालिनी सेति भावः ।

---

मालूम पड़ता है कि ब्रह्माजी ने आज तक जितने भी सृष्टि के उत्पादन के उत्तम-उत्तम योग जाने और सीखे हैं। उन सब योगों को चित्त में रखकर और अपनी सम्पूर्ण कारीगरी खर्च करके रूप और सौन्दर्य की राशि के व्यय से इस कृशाङ्गी शकुन्तला को बनाया है। अतः ब्रह्माजी की वर्तमान सभी स्त्री सृष्टियाँ अलग, यह तो कोई अपूर्व अद्भुत स्त्री सृष्टि ही है ॥ ९ ॥

**विशेष**—राजा दुष्यन्त को ब्रह्मदेव की सामर्थ्य का स्मरणकर तथा शकुन्तला का अद्भुत सौन्दर्य देखकर मालूम पड़ता है कि यह स्त्री रत्न की एक अपूर्व सृष्टि है। प्रतीत होता है कि उन्होंने पहले चित्र बनाकर बड़े मनोयोग से इसे बनाया है, अतः इसका सौन्दर्य इस प्रकार लोकोत्तरवर्णनातीत है ।

**विदूषक**—तो, फिर यह शकुन्तला सभी = देवाङ्गना, मनुष्य आदि रूपवती स्त्रियों का प्रत्याख्यान = मान तथा गर्व का मर्दन करने वाली है, यही समझना चाहिए ।

राजा—इदं च मे मनसि वर्त्तते ।

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
[1]रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति [2]विधिः ॥ १० ॥

---

राजा—अथ राजा तस्या रूपसम्पदा यौवनेन च सन्धुक्षिताभिलाषः तल्लाभविषये स्वमनोव्यापारं प्रकटयन्नाह—इदं = एतदतिरिक्तं च = अपि मे = मम मनसि = हृदये वर्त्तते = अस्ति ।

अन्वयः—अनाघ्रातं पुष्पम् ( इव ) कररुहैः अलूनं किसलयम् ( इव ) अनाविद्धं रत्नम्, ( इव ) अनास्वादितरसं नवं मधु ( इव ) अखण्डं पुण्यानां फलम् इव च अनघं तद्रूपम्, विधिः इह कं भोक्तारं समुपस्थास्यति ( इति ) न जाने ।

शकुन्तलाया लोकोत्तरं लावण्यं सञ्चिन्त्य तल्लाभें सन्दिहानो राजा दुष्यन्तो नर्मं सचिवं विदूषकं ब्रवीति—अनाघ्रातमिति । अनाघ्रातं-न आघ्रातं=नासिकाविषयीकृतमिति अनाघ्रातं = अकृताघ्राणाम्, अकृतसुरभिगन्धोपभोगम्, पुष्पं = कुसुमं ( इव ) ( अनेन मकरन्दसौरभपूर्णत्वं द्योत्यते ) कररुहैः = नखैः अलूनं = अच्छिन्नम्, अत्रोटितम्, किसलयं = पल्लवः, अशोकादिनवदलम् ( इव ), ( अनेनाम्लानत्वं ध्वन्यते ) अनाविद्धं = आसमन्ताद्वेधरहितम् रत्नं = हीरकादिविशिष्टमुक्तादानादि ( अनेन धारणार्थं गात्रसम्पर्काभावादौज्वल्यातिशयः सूच्यते ) न आस्वादितः = रसनाविषयीकृतः रसः = आनन्दानुभवः यस्य तत् अनास्वादितरसम् = अगृहीतास्वादमनुच्छिष्टं च नवं = प्रत्यग्रं-मधु=पुष्परसात्मकं क्षौद्रम् ( इव ) ( अनेन पतिशेषत्वादिदोषराहित्यं सूचितम् ) अखण्डं = न खण्डो विभागो यस्य तत् अखण्डं = परिपूर्णं, पुण्यानां = अनेकजन्मार्जितानां सुकृतानां फलं = परिणामः इव सुदुर्लभम् न अघं यस्मिन् तत् अनघं = निष्पापम्, निर्मलं निष्कलङ्कं तद्रूपं—तस्याः शकुन्तलायाः रूपं = सौन्दर्यादिकं लावण्यं विधिः = ब्रह्मा, इह = अत्र जगति, शकुन्तलारूपस्य विषयं वा क भाग्यवन्तं पुरुषं भोक्तारं = उपभोगकर्तारम् उपस्थास्यति=उपस्थापयिष्यति, उपसंक्रमिष्यति । तत् अहं न जाने = नाहं वेद्मि, एतद्रूपानुरूपतरुणसृष्टेरभावादिति भावः ।

इदमस्य तात्पर्यम्—मित्र माधव्य ! तां मुनिकुमारीमनुध्यायन्नहं शोचामि यत् क्रीडोद्यानपूर्णविकसितमपि केनाप्यनघ्रातत्वात् सौरभसम्भारं सुमनमिव नखाग्रैर्वृन्तात्

---

राजा—हाँ, मित्र ! मेरे मन में तो यहां तक बात उठ रही है कि—

विधाता शकुन्तला का यह निर्दोष रूप-लावण्य जिस भाग्यशाली के उपयोग में लायेंगे, क्योंकि इसका मनोहर सौन्दर्य बे-सूँघा हुआ पुष्प, नाखूनों से न नोंचे गये कोमल पल्लव, विना बेंधा हुआ = अखण्डित रत्न तथा जिसका रस नहीं चखा गया है उस अभिनव मधु के समान तथा पुष्पों के अखण्डित फल का तरह है। अर्थात् यह किस भाग्यशाली पुरुष की अर्द्धांगिनी बनेगी मैं यही बार-बार विचार कर रहा हूँ ॥ १० ॥

**विशेष**—यहां कवि ने निसर्ग सुन्दरी शकुन्तला के मनोहर रूप का चित्रण करते हुए उसे अनाघ्रात पुष्प, नखों से आलून किसलय, अनाविद्ध रत्न, अनास्वादित मधु तथा पुष्पों का अखण्ड

---

पाठा०—१. रत्नाभुक्तं । २. भुवि ।

**विदूषकः**—तेण हि लहु परित्ताअदु णं भवं। मा कस्स वि तवस्सिणो इंगुदीतेल्लमिस्सचिक्कणसीसस्स हत्थे पडिस्सदि [ तेन हि लघु परित्रायतामेनां भवान्। मा कस्यापि तपस्विन इंगुदीतैलमिश्रचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति ]।

---

त्रोटिताग्रशोकनवपल्लवमिव वेधादिदोषहीनं हीरकादिरत्नमिव, अभुक्तरसं मधु इव, अभुक्तपरिपाकं सुकृतफलमिव ब्रह्मदेवः कं भाग्यवन्तं पुमांसं तद्रूपभोक्तारं सृष्टवानिति न वेद्मि—यतो हि विधेर्विलसितानि दुर्ज्ञेयानि भवन्ति।

अत्र परिकर-मालोपमा-शोभा-श्रुतिवृत्यनुप्रासा अलङ्काराः छन्दश्च शिखरिणी ॥१०॥

**विदूषकः**—राजोक्तिं श्रुत्वा विदूषक आह—तेन हि = यस्मात् सा स्त्रीललामभूता भवद्विवाहयोग्या च तस्मात् कारणात् निश्चयेन—लघु = द्रुतम्, इदानीमेव भवान् = त्वम् परित्रायतां = रक्ष एनां = शकुन्तलाम् परपरिग्रहरूपाद् भयाद्रक्षतु स्वयमेनामङ्गीकुरुतमित्यर्थः। मां = इदं न स्यात् यत् इङ्गुद्याः तैलम् इङ्गुदीतैलं = तापसतरुतैलं तेन मिश्रं = सम्पृक्तम् अतः चिक्कणं = स्निग्धं शीर्षं=मस्तकं यस्य स तस्येङ्गुदीतैलमिश्रशीर्षस्य कस्यापि = कस्यचित् तपस्विनः = तापसस्य हस्ते = पाणौ पतिष्यति = यास्यति। अतस्तपनात् पूर्वमेव भवान् तां स्वीकुरुतामिति भावः।

---

फल बतलाया है जिसका तात्पर्य है कि अभीतक किसी पुरुष ने इस शकुन्तला के सौन्दर्य एवं सौकुमार्य का उपभोग नहीं किया है। यही तात्पर्य नखों से आलून पल्लव, अनाविद्धरत्न, अनास्वादित मधु तथा पुण्यों के अखण्ड फल से भी निकलता है। वन में उत्पन्न शकुन्तला के लिए जंगली फूल, पल्लव, रत्न तथा मधु की उपमा देकर कवि ने अपना नैसर्गिक प्रवृत्ति चित्रण की ओर किया है क्योंकि वन एवं पर्वतों के उपादानों का ग्रहण करना उनका स्वाभाविक गुण है। शकुन्तला ने लावण्य के लिए पुष्प की उपमा देने से कवि ने उसमें सुगन्धि होने से उसे पद्मिनी नायिका होने का संकेत किया है, नखों से अच्छिन्न पल्लव की उपमा से कोमलता, सुन्दर और नया पन व्यक्त किया गया है। सूँघने से फूल की सुगन्ध कम होती है तथा नाखून से तोड़ने पर पत्तों में खरोंच से चिह्न हो जाता है। अनास्वादित मधु की उपमा पुष्पों की ओर मधुपके समान पुरुषों के लिए शकुन्तला का सौन्दर्य अत्यन्त लुभावना प्रतीत होता है। मधु में नया अनास्वादित विशेषण महत्त्वपूर्ण है। पुराना और आस्वादित होने से मधु में विकृति आ जाती है और स्वाद में विरसता होती है। बींधे हुए रत्न को उत्तमता नहीं मानी गयी है, रत्न परीक्षा के प्रसंग में सारसमुच्चय में अनाविद्ध रत्न को उत्तम बताया गया है—

'वृत्तं स्निग्धसमुज्ज्वलं शुचिगुरु श्वेतं बृहत् कोमलम्।
स्वच्छान्तं समसूक्ष्म-वेधसुरभि त्रासादिभिर्वर्जितम् ॥'

यहाँ शकुन्तला के रूप को कवि ने अनघ कहा है, जो विश्वकोश के अनुसार निर्मल का पर्यायवाची है—'अनघो निर्मला पापमनोज्ञेषु च मेघवत्।' और रूप का लक्षण इस प्रकार है—

'अङ्गान्यभूषितान्येव प्रक्षेपाद्यैर्विभूषणैः।
येन विभूषितवद् भान्ति तद्रूपमिति कथ्यते ॥'

**विदूषक**—तो मित्र! आप शीघ्रता से शीघ्र वहाँ पहुँच जाइए। कहीं वह शकुन्तला इंगुदी के तेल से चिकने शिर वाले मैले-कुचैले किसी तपस्वी ब्राह्मण कुमार के हाथ में न पड़ जाय। अर्थात् किसी तपस्वी से उसका विवाह न हो जाय।

**विशेष**—यहाँ हास्यप्रिय विदूषक का कहना भी हास्यमय ही है—वह राजा को उपदेश देता है कि जब उसका उपभोक्ता कौन होगा? यह निश्चय नहीं, तो आप शीघ्र जाकर उससे विवाह कर लें। अन्यथा किसी अयोग्य से उसका विवाह न हो सके।

**राजा**—परवती खलु तत्रभवती । न च [1]संनिहितोऽत्र गुरुजनः ।

**विदूषकः**—अत्रभवन्तं अंतरेण कोदसो से दिट्ठिराओ [ **अत्रभवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिरागः ।** ]

**राजा**—निसर्गादेवाप्रगल्भस्तपस्विकन्याजनः । तथापि तु—

**अभिमुखे मयि [2]संहृतमीक्षणं**
**हसितमन्यनिमित्तकृ[3]तोदयम् ।**
**विनयवारितवृत्तिरतस्तया**
**न विवृतो मदनो न च संवृतः ॥ ११ ॥**

---

**राजा**—अथ विदूषकसूचितस्य यस्य शीघ्रतरपरित्राणस्याशक्यतामवधारयन् राजा सविषादमाह परवती = पराधीना परवशा खलु = निश्चयेन तत्रभवती – माननीया शकुन्तला ( स्त्रीरत्नत्वान्माननीयत्वम् ) न च अत्र = अस्मिन् स्थाने, आश्रमे गुरुजनः = अस्याः पूज्यः पिता कण्वो महर्षिः सन्निहितः = उपस्थितः । अतो न सहसा तस्या विवाहमङ्गलसंभवः न त्वा सा शीघ्रं सुलभेति भावः ।

**विदूषकः**—राजविषये शकुन्तलया अनुरागं जिज्ञासमानो विदूषकः प्राह—अत्र-भवन्तं = पूज्यं श्रीमन्तं अन्तरेण = भवद्विषये कीदृशः = किम्भूतः तस्याः = शकुन्तलाया दृष्टिरागः = दृष्टेः चक्षुषः रागः = अनुरागः, क्रोधदयारागविरागादयः सर्वेऽपि भावा प्रायः चक्षुषैव व्यज्यन्ते इति भावः ।

**राजा**—स्वभावसरलायां तस्यां दृष्टिरागस्य दुर्लक्ष्यत्वं कथयन् राजा प्राह—तपस्वि-कन्याजनः—तपस्विनां=तापसानां कन्याजनाः=कुमार्यः निसर्गात्=स्वभावात् एव अप्रगल्भा = अनुरागप्रकाशनकौशलशून्याः तथा च नागरिकयौवनपरिचितदाम्पत्यव्यवहारानभिज्ञ-त्वादप्रौढा भवन्ति । तथापि = सामान्यतपस्विकन्यकानामित्थं भूतत्वेऽपि तु = किन्तु तया हृद्गतो भावः ।

**अन्वयः**—मयि अभिमुखे सति ईक्षितं संहृतम् अन्यनिमित्तकृतोदयं हसितम्, अतो विनयवारितवृत्तिः मदनः तया न निवृत्तः, न च संवृतः ।

शकुन्तलाया आत्मनि अनुरागविशेषं संभावयन् राजा विदूषकं कथयति—**अभिमुख-**

---

**राजा**—नहीं मित्र ! वह तो पराधीन हैं तथा उसके पालयिता पिता महर्षि कण्व भी अभी आश्रम पर मौजूद नहीं है । इसलिए अभी उसके विवाह का कोई प्रसंग ही नहीं है ।

**विदूषक**—अच्छा, तो बताइए कि आपके ऊपर उसका अनुराग कैसा है ?

**राजा**—मित्र ! जङ्गली तपस्वियों की कन्यायें तो स्वभाव से ही भोली-भाली तथा मुग्धा हुआ करती हैं । अतः उनके मन के भाव को ठीक-ठीक पता लगाना कठिन काम है । तो भी—

मेरे संमुख होते ही वह अपनी आँखों को दूसरी तरफ हटा लेती थी, दूसरी बातों के प्रसङ्ग के व्याज से वह हँसती भी थी । इस प्रकार विनय से अवरुद्ध अपनी अभिलाषा तथा कामवासना को न तो उसने स्पष्टतया व्यक्त ही किया न पूर्ण रूप से छिपाया ही । अतः प्रतीत होता है कि वह मेरे में अनुरक्त भी है और सङ्कोच भी करती हैं ॥ ११ ॥

**विशेष**—उत्तम नायिकाओं के शृङ्गार-लज्जा का विवेचन करते हुए मातृगुप्त ने लिखा है कि—

---

पाठा०—१. संनिहितगुरुजना । २. संवृतमीक्षितं । ३. कृतोदयम् ।

**विदूषकः**—ण खु दिट्ठमेत्तस्स तुह अंक समारोहदि। [ न खलु दृष्टमात्रस्य तवाङ्कं समारोहति। ]

**राजा**—मिथः प्रस्थाने पुनः शालीनतयापि काममाविष्कृतो भावस्तत्रभवत्या। तथा हि—

---

इति। मयि अभिमुखे = संमुखं स्थिते सति, तस्या मुखकमलं पश्यति सति तया ईक्षितं = नेत्रविलोकनं वा संहृतं = निर्वर्तितं गोपितं, पराङ्मुखं कृतम् अभिमुखोऽहं तया गूढं वीक्षित इत्यर्थः, अन्यत् = इतरत् निमित्तं = हेतु यस्य तत् अन्यनिमित्तम् अन्यनिमित्तं = अन्यहेतुकं यथा स्यात्तथा कृतः = विहितः उदयः = आविर्भावः यस्य तत् अन्यनिमित्त-कृतोदयम् कथान्तरव्याजेन तया हसितं = हासः कृतः, विनयेन = शीलेन वारिता नियमिता वृत्तिः = व्यापारो यस्य स विनयवारितवृत्तिः = लज्जावरुद्धप्रसरः मदनः = कामः मद्विषयकः प्रेमा तया = शकुन्तलया न विवृतः=न प्रकटीकृतः न च संवृतः = न च गोपायितः निगूहितः, मुग्धात्वेन दृष्टिपरावर्तनादिना निगूहितोऽपि मद्विषयको भावोऽन्य-निमित्तकथादिभिर्हसितादिभिर्वा स्वानुरागप्रकटनात् स्फुटीकृतः।

मित्र! यदाहं तत्संमुखे तिष्ठन् तन्मुखं सस्पृहं द्रष्टुमभिलषितवान् तदा सा केनापि व्याजेन मद्दर्शनं परिहृतम्। यदा चाहं तदनभिमुखमतिष्ठं तदा सा मां प्रच्छन्नतया-ऽद्राक्षीत्। तथैव मम सम्मुखे तन्मुखे यदा मन्दहासो दृष्टः तदा सा मुखं तिर्यक् कृतवती। अतोऽहं तर्कयामि यत् सा मयि बाढमनुरागवती॥ ११॥

**विदूषकः**—राज्ञो वचनमाकर्ण्य तस्मिन् शकुन्तलाया अनुरागं निश्चिन्वन् विदूषकः सपरिहासमाह—दृष्टमात्रस्य=तया तदानीं दृष्टस्य तव=भवतः, अङ्कं=क्रोडम्, समारोहति= आरूढा भवति। अपरिचितस्य तव विश्वासाभावात् तया स्वानुरागो न सम्यक् प्रकटित इति भावः।

**राजा**—विदूषकोक्त्या हृष्टो राजा तस्या स्वस्मिन् प्रणयचेष्टां कथयन्नाह—मिथः=

---

'विकसित-कपोलानामुत्फुल्लामललोचनम्।
किञ्चिल्लक्षितदन्ताग्रं हसितं तद्विदो विदुः॥
उत्तमस्य संमुद्दिष्टं स्मितं हसितमेव च।'

दृष्टि मिलते ही हटा लेना तथा किसी दूसरे व्याज से हँसना, यह मुग्धा नायिकाओं द्वारा काम-वासना को छिपाने का स्वरूप है। इस प्रकार हसित में अनुराग का सूचक बताते हुए कहा गया है कि—

'उत्फुल्ल-गण्डमण्डलमुल्लसित-दृगन्तसूचिताकृतिम्।
नमन्त्यापि मुखाम्भोजमुन्नमितं रागसाम्राज्यम्॥'

नायिकाओं को मुग्धा होना यौवनावस्था के आरम्भ का सूचक है, मुग्धा नायिकाएँ न तो अपने प्रेम को छिपा पाती हैं, न व्यक्त ही करती हैं। उनकी स्थिति हिंडोले पर चढ़ी स्त्री के समान होती है। मुग्धा की परिभाषा इस प्रकार है—

'तत्र कन्या त्वरूढा स्यात् सलज्जा पितृपालिता।
सखीकेलिषु विक्षुब्धा प्रायो मुग्धा गुणान्विता॥'

**विदूषक**—मित्र! तो क्या आप चाहते हैं कि आपको देखते ही वह आप की गोद में आकर बैठ जाय?

**राजा**—मित्र अनसूया तथा प्रियम्वदा नामक अपनी सखियों के साथ वहाँ से

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।
आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् ॥ १२ ॥

---

रहसि ( सहोपविश्य मदभिप्रायं च ज्ञात्वा ) प्रस्थाने=सखीभ्यां साकं गमनारम्भे पुनः =पश्चात् शालीनतया=अधृष्टतयापि कामम्=अत्यर्थं भावः=अनुरागरूपश्चित्ताभिप्रायः आविष्कृतः=प्रकटितः तत्रभवत्या=मान्यया, शकुन्तलया ।

**अन्वयः**—तन्वी कतिचिदेव पदानि गत्वा अकाण्डे दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षतः इति विवृत्तवदना द्रुमाणां शाखासु असक्तमपि वल्कलं विमोचयन्ती स्थिता आसीत् ।

शकुन्तलाया भावाविष्करणप्रकारं वर्णयन् राजा दुष्यन्तो विदूषकं कथयति—दर्भाङ्कुरेति । तन्वी=स्वभावतः कृशाङ्गी शकुन्तला कतिचित्=कानिचित् एव द्वित्राण्येव पदानि=पदप्राप्यस्थानानि गत्वा=चलित्वा अकाण्डे=अनवसरे एव दर्भस्य=कुशस्य अङ्कुरेण=अग्रभागसूच्या कुशाग्रसूचिकया चरणः=मम पादः क्षतः=सव्रणः विद्ध इत्युक्त्वा=इति हेतुमभिनीय वा विवृत्तवदना=विवृतं=प्रत्यावृतं वदनं=मुखं यया सा विवृत्तवदना=वदनं विवृत्य विलोकयन्ती मत्संमुखीना द्रुमाणां=वृक्षाणां शाखासु= स्कन्धेषु, विटपेषु असक्तं=अलग्नम्, असंबद्धमपि वल्कलं=परिधानीयं वल्कलवस्त्रं विमोचयन्ती=मन्दं मन्दं मोचनव्यापारमभिनयन्ती स्थिता=अवस्थिता आसीत् । कुशाग्र-भागपादव्यधनाभावेऽपि तद्व्याजेन वल्कलस्य शाखास्वनासक्तस्यापि विमोचनछलेन निरुद्धगमना स्वाशयं स्पष्टमेव प्रकटितवतीति भावः ।

मित्र ! स्वसखीभ्यां सार्द्धं स्वाश्रमे गच्छन्ती सा शकुन्तला द्वित्राणि पदानि गत्वा मार्गमध्ये कुशाग्रेण मम पादौ क्षतौ इति दुःखातिशयं प्रदर्शयन्ती पार्श्वस्वतरुशाखायामना-शक्तमपि स्वकीयं वस्त्रं मोचयितुं प्रयतमाना सा मुखं विवृत्य मामेव विलोकयन्ती किञ्चित्कालं तस्थौ । एतेनानुमीयते यत् सा मद्विषयकानुरागातिशयादेवेदृशं व्यापारं कृतवतीत्यर्थः ।

अत्र विरोधाभासविभावना-हेतु-व्याजोक्ति-स्वभावोक्ति-वृतिश्रुति-छेकानुप्रासा अल-ङ्कारा वसन्ततिलकावृत्तं च ॥ १२ ॥

---

जाते समय उसने बड़े ही हाव-भाव एवं कटाक्षपूर्वक मेरे प्रति अपना प्रेम भाव व्यक्त किया है । जैसे—

सखियों ! मेरा पैर कुश के तीखे अग्रभाग से बींध गया है। इस बहाने वह कृशाङ्गी शकुन्तला मेरे ही वास्ते कुछ देर तक ठहर गई तथा शाखाओं में न अटके हुए भी अपने वल्कलवस्त्र को झूठे ही छुड़ाने के बहाने से वह मेरी तरफ घूम-घूम कर अनुराग सहित प्रेम भाव से मुझे बार-बार देख रही थी ॥ १२ ॥

**विशेष**—नायिकागत अनुराग के संकेत का नाम विलम्ब है, जिसमें प्रेमिका रास्ते में किसी बहाने से मुँह मोड़कर नायक को देखती है—**'विलम्बस्तु पथि व्याजात् परिवृत्यापि दर्शनम् ।'** एकाएक दर्भाङ्कुर से चरण क्षत का बहाना अत्युपकारक है। अन्यथा व्याज नहीं बन सकता था। सूक्ष्म दर्भ के अंकुर के चूभने में उसके निकालने में भी विलम्ब सम्भव है जिससे अधिक समय तक नायिका का नायक को देख सकने का अवसर मिल जाता है ।

**विदूषकः**—तेण हि गहीदपाहेओ होहि । किदं तुए उववणं तवोवणं त्ति पेक्खामि [ **तेन हि गृहीतपाथेयो भव । कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि** ] ।

**राजा**—सखे, तपस्विभिः कैश्चित् परिज्ञातोऽस्मि । चिन्तय तावत् केनापदेशेन सकृदप्याश्रमे वसामः ।

---

**विदूषकः**—राजोक्तं निशम्य विदूषकः अनन्तरकर्तव्यमुपदिशति—तेन=तस्मात् कारणात् हि=निश्चयेन गृहीतं=प्राप्तं पाथेयं—मार्गोपयोगि धनादिकं येन स गृहीतपाथेयः स्वीकृत-शम्बलः ( यथा विदेशं जिगमिषुं प्रति कश्चिद्वदति—पाथेयं गृहाणेति तद्वत् पथि साधु पाथेयं भवति यद्वा पाथेयपदेन आश्वासनसाधनं प्रेम लक्ष्यते । ) कृतं=रचितं, त्वया=भवता उप-वनम्—उद्यानं तपोवनं—तपसः=तपस्याः वनं=विपिनं इति तपोवनम् इति=एवं पश्यामि=विलोकयामि । तपोवनमिदं त्वया शकुन्तलाविषयप्रेमव्यापारेण उपवनमिव कामिजन-विहारयोग्यं कृतमिति भावः । यद्वा त्वया दुष्यन्तेन इदं शान्ताश्रमपदम् उपवनं क्रीडा-काननमिव निष्पादितम् । परस्परानुरागोत्पत्तेरनुरूपमुपवनमेव न तपोवनमिति तादृशानु-रागचर्चाविष्करणादिभिराश्रममुपवनानां नीतम् । श्रमप्रधानस्य तपोवनस्येदानीमनुराग-प्रधानता जातेत्याशयः ।

**राजा**—कण्वाश्रमे निवासमिच्छन् राजा विदूषकमुपायं पृच्छति—सखे !=मित्र! कैश्चित्=कैरपि तपस्विभिः=तापसैः परिज्ञातः=मृगयार्थमागतो राजा दुष्यन्तः तपोवन-मागत इति रूपेण ज्ञातोऽस्मि अत एव नेपथ्ये सन्निहितो मृगयाविहारी राजा दुष्यन्त इत्यादि तपस्विभिरुद्घोषितम् । अतो राजभावगोपनपूर्वकं तत्रोषितुं न शक्यते । न वा प्रयोजनमनन्तरा तत्र गमनं संभाव्यते राज्ञस्तथानौचित्यात् । राजभावेन वासश्चानुचितः । अतो हि त्वं चिन्तय=विचारय केन अपदेशेन=व्याजेन, निमित्तेन सकृत्=एकवारमपि आश्रमे=तपोवने वसामः=तिष्ठामः सोऽपि महान् लाभ इति भावः । चिन्तयेत्यनेन विदूषकस्य प्रतिभाकौशलमात्मनश्च तथाविधोपायाप्रतिभानं सूचितम् ।

---

**विदूषक**—वाह, तब तो उसने आपको प्रेम मार्ग के लिए पाथेय को ही प्रदान कर दिया है। इस प्रकार प्रेम लीला से तो आपने इस तपोवन को अपने अन्तःपुर का उपवन ( विलास स्थान) ही बना लिया है ।

**विशेष**—परदेश जाते समय आत्मीय बन्धुजन अपने बन्धुओं को मार्ग में जलपान, भोजन आदि के लिए जो कुछ देते हैं उस पाथेय कहते हैं । पाथेय शब्द की व्युत्पत्ति है, 'पथि साधु पाथेयम्'—अर्थात् रास्ते में उपयोग की वस्तु । प्रेम पथ पर चलने वालों के लिए नायिका विषयक चिन्तन ही पाथेय है । विदूषक के कहने का तात्पर्य है कि प्रेम-लीला तपोवन में नहीं हो सकती, उपवन में सर्वथा सम्भव है । मित्र ! तपोवन जैसे अनुपयुक्त स्थान में भी तुमने प्रेम के उपयुक्त स्थान उपवन जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी है ।

**राजा**—सखे ! इस आश्रम के कुछ तपस्वियों ने मुझे पहचान लिया है । जरा ऐसा सोचो कि जिससे मैं पुनः इस आश्रम में एक बार और जा सकूँ तथा अपनी प्राणप्रिया शकुन्तला को भली भाँति देख सकूँ ।

विदूषकः—को अवरो अवदेसो तुम राआणं। णीवारछट्ठभाअं अम्हाणं उपहरंतु त्ति [ कोऽपरोऽपदेशस्तव राज्ञः। नीवारषष्ठभागमस्माकमुपहरन्त्विति ]

राजा—मूर्ख, अन्यद्भागधेयमेतेषां रक्षणे निपतति यद्रत्नराशीनपि विहायाभिनन्द्यम्। पश्य—

**यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि [1]तत्फलम्।**
**तपः षड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः॥ १३॥**

---

विदूषकः—चिन्तयन्नाह विदूषकः भवतः = राज्ञः कृते कः अपरः = कोऽन्यः अपदेशः = व्याजः नीवारस्य षष्ठोभाग इति नीवारषष्ठभागः तं नीवारषष्ठभागं = कररूपकम् अस्माकं = नः उपहरन्तु = आनयन्तु, इति मुनिधान्यस्य षष्ठांशं कररूपं राजग्राह्यं भागमुपाहरत इति तापसान् नियुञ्जानः अत्र निवसेति भावः।

राजा—नायमुपायः समुचित इति विचारयन् राजा विदूषकमाह—मूर्ख !=विशेषानभिज्ञ ! अज्ञ माधव्य ! अन्यत् = नीवारषष्ठभागातिरिक्तं भागधेयं = राजग्राह्यं भागं एतेषां = तापसानां रक्षणे = पालने कृते सति तन्निमित्तत्वेन निपतति = स्वयमेवाविर्भवति, तेषां रक्षणेन प्राप्यते, यत् = भागधेयं = करं रत्नराशीन् = हीरकादिरत्नपूगान् विहाय = परित्यज्य अभिनन्द्यं = श्लाध्यं रत्नाराश्यपेक्षयाऽपि विशेषतः प्रशस्यमित्यर्थः। एते हि तापसा नीवारषष्ठांशापेक्षयाऽभिनन्दनीयं स्वं पुण्यभागं मह्यं स्वयमेव वितरन्ति। अतो रत्नदानात् काचयाचनमिव तेभ्यो नीवारषष्ठभागयाचनमिति भावः। पश्य = विलोकय।

अन्वयः—वर्णेभ्यः नृपाणां यत् फलम् उत्तिष्ठति तत् क्षयि, हि आरण्यकाः न अक्षय्यं तपः षट्भागं ददति।

विदूषकेण नीवारषष्ठभागाहरणव्याजेन कण्वाश्रमगमनोपाये सूचिते तस्यानुचितत्वं

---

विदूषक—क्या, यही कम है कि आप यहाँ के राजा हैं। भला, आपके लिए अतिरिक्त बहाने के ढूँढ़ने की क्या जरूरत है कि नीवार ( मुनि-अन्न ) का छठा हिस्सा लाइये।

विशेष—यहाँ विदूषक का परिहास है। वह यहाँ ऐसा बहाना बताता है कि राजा उसे सुनकर हँस पड़े। महाराज मनु ने ऐसा नियम बताया है कि राजा पशु और सोने का पचासवाँ भाग तथा धान्य का छठा भाग आठवाँ भाग या बारहवाँ भाग कर के रूप में ले सकता है—

'पञ्चाशद्भाग आदेयो राजा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा॥' ७।१३०

इसके अनुसार ऋषि-मुनि लोग विना जोते-बोये होने वाले नीवार नामक धान्य को किसी तालाब के तट पर राजकर के रूप में रख देते थे। यहाँ राजा की ओर से पशु, पक्षी आदि के निमित्त दान हो जाता था।

राजा—अरे मूर्ख ! ये तपस्वी तो मुझे सर्वश्रेष्ठ पुण्य का सर्वोत्तम भाग कर के रूप में देते ही हैं, जिसे राजा लोग रत्नों की राशि से भी अधिक पसन्द करते हैं। देखो—

जो अन्य वर्णों से कर के रूप में हमें प्राप्त होता है, वह तो नश्वर=नष्ट होने वाला है, पर ये वनवासी तपस्वी तो हमें अपनी तपस्या के छठे हिस्से के रूप में देते हैं, जो कभी नष्ट नहीं हो सकता। अतः वह साधारण कर से बहुमूल्य वस्तु है॥ १३॥

विशेष—यहाँ राजा के द्वारा विदूषक को मूर्ख कहने का तात्पर्य है कि इन तपस्वी ऋषियों से

पाठा०—१. तद्धनम्।

( नेपथ्ये )

हन्त सिद्धार्थौ स्वः ।

---

विवृण्वन् राजा दुष्यन्तः प्राह—यदुत्तिष्ठतीति । वर्णेभ्यः = ब्राह्मणादिभ्यश्चतुर्वर्णेभ्यः नृपाणां = रक्षयितॄणां राज्ञां कृते यत् धान्यषड्भागहिरण्यदशभागादि-मन्वादिस्मृतिकार-निर्दिष्टं फलं = राजग्राह्यो भागः उपतिष्ठति = उत्पद्यते लभ्यते, तत् = फलं क्षयि = उपभोगादिना क्षयशीलं विनाशि, हि = निश्चयेन आरण्यकाः = वनवासिनः तपस्विनः नः = अस्माकं कृते छेत्तुं शक्यं क्षय्यं न क्षय्यम् छेत्तुमशक्यम् अक्षय्यं = अविनाशि = अशक्यक्षयम् तपःषड्भागं = तपसः षष्ठं भागं भोगाय वर्गप्रदं सुकृतं ददति = वितरन्ति। अतः तपस्विनां मुनिजनानां संरक्षणं राज्ञोऽवश्यं कर्तव्यमिति भावः ।

अयं भावः—अरे माधव्य ! एते हि तपस्विनः मह्यं यादृशं कररूपं राजभागं वितरन्ति स हि रत्नौघादप्युत्तमोऽस्ति । पश्य वयं स्मो राजानः चतुर्णां वर्णानां संरक्षणेन तेभ्यो राजग्राह्यं भागं गृह्णीमः स खलु भोगेन क्षीयते परमेते वनवासिनः तपस्विनः मुनयो मत्पराक्रमरक्षिते तपोवने निरुपद्रवं तपोऽनुतिष्ठन्तः यं तपः षड्भागं मह्यं स्वतो ददति स खलु न कथमपि विनाशशीलो भवितुमर्हति अपि तु इहामुत्र शुभफलप्रदत्वेनात्यन्तमुपकरी । अतस्तेभ्यो मुनिभ्यो नीवारषड्भागाहरणं मन्मते सर्वथाऽनुचितमेव प्रतिभाति ।। १३ ।।

अथ मुनिप्रवेशं सूचयन्नाह—( नेपथ्ये = प्रसाधनकक्षे ) हन्त ! = हर्षे सिद्धार्थौ सिद्धः सयत्नः अर्थः = प्रयोजनं प्रायोऽस्तीति तौ सिद्धार्थौ राजदर्शनात् निष्पन्नप्रयोजनौ = कृतकृत्यौ स्वः = भवावः ।

---

कर जैसी छोटी वस्तु नहीं ली जा सकती, भले ही वे राजदेय कर के रूप में कहीं कुछ वस्तु रखें उनसे जब कर से भी उत्तम वस्तु तपस्या का पुण्य अपने आप प्राप्त हो जाता है, तो कर के लिए उनसे कहना मूर्खता के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अर्थात् धर्मात्मा राजा प्रतिदिन जो धर्म करता है, उससे राजा की आयु धन और राष्ट्र की अभिवृद्धि होती हैं, तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों से जो राजा को कर के रूप में मिलता है, वह राज्यव्यवस्था में उपयुक्त होकर नष्ट हो जाता है, किन्तु उस राज्य-व्यवस्था से सुरक्षित रहकर वनवासी ऋषि-मुनि जो तप के द्वारा जो पुण्य अर्जित करते हैं, उसका छठा भाग धर्मात्मा राजा को मिलता है, जो कभी नष्ट नहीं होता—

'संरक्ष्यमाणो राजा यं कुरुते धर्ममन्वहम् ।<br>
तेनायुर्वर्द्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ।।' ७।१३६<br>
'यदधीते यद् यजते यद्ददाति यदर्चति ।<br>
तस्य षड्भागभुग् राजा सम्यग् भवति रक्षणात् ।।' ८।३०५

महाभारत के शान्ति पर्व के अन्तर्गत राजधर्म-व्यवस्था प्रकरण में भी लिखा है कि राजा को प्रजा की रक्षा के लिए प्रजा से छठा भाग कर के रूप में लेना चाहिए—

'आददीत बलिं चापि प्रजाभ्यः कुरुनन्दन ।<br>
षड्भागभविता प्राज्ञः तासामेवाभिगुप्तये ।।' ६८।२७

**( नेपथ्य में )** अहो, इस राजा के दर्शन से हमलोग कृतार्थ हो गये ।

**राजा**—( कर्णं दत्वा ) अये धीरप्रशान्तस्वरैस्तपस्विभिर्भवितव्यम् ।

( प्रविश्य )

**दौवारिकः**—जेदु भट्टा । एदे दुवे इसिकुमारआ पडिहारभूमिं उवट्ठिदा [ **जयतु भर्ता । एतौ द्वौ ऋषिकुमारकौ प्रतीहारभूमिमुपस्थितौ** ] ।

**राजा**—तेन ह्यविलम्बितं प्रवेशय तौ ।

**दौवारिकः**—एसो पवेसेमि [ **एष प्रवेशयामि** ] ( इति निष्क्रम्य, ऋषिकुमाराभ्यां सह प्रविश्य ) इदो इदो भवंतो । [ **इत इतौ भवन्तौ** ]

( उभौ राजानं विलोकयतः )

**प्रथमः**—अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयतास्य वपुषः । अथवोपपन्नमेतदृषिभ्यो नातिभिन्ने राजनि । कुतः—

---

**राजा**—( कर्णं दत्वा = श्रुत्वा–श्रवणस्यामिनयं विधाय ) अये = अहो धीरः = गम्भीरः प्रशान्तः = अतिशान्तः स्वरः = शब्दः येषां ते तैः धीरप्रशान्तस्वरैः = शान्त-मधुरस्वरैः तपस्विभिः = तापसैः भवितव्यम् । वैयंव्यञ्जकस्वराः तपस्विनः समागता इत्यनुमीयते इत्यर्थः ।

**दौवारिकः**—जयतु भर्ता = सर्वोत्कर्षेण वर्ततां स्वामी । एतौ = पुरो दृश्यमानौ द्वौ = द्विसंख्याकौ ऋषिकुमारकौ = मुनिबालकौ प्रतीहारभूमिं = प्रतिहारस्य द्वारस्य भूमिं = स्थानम् द्वारदेशम्, उपस्थितौ = प्राप्तौ स्तः ।

**राजा**—तेन = प्रोक्तेन कारणेन हि निश्चयेन तौ = ऋषिकुमारकौ अविलम्बितं = न विलम्बितमविलम्बितं = सत्वरं प्रवेशय = अन्तरागमय ।

**दौवारिकः**—एषः = अहं अथ नैव प्रवेशयामि = अन्तः आनयामि ( इति = इत्युक्त्वा निष्क्रम्य = रङ्गमञ्चाद्बहिर्गत्वा ऋषिकुमाराभ्यां = मुनिबालकाभ्यां सह = साकं पुनः प्रविश्य = रङ्गमञ्चे उपस्थाय ) इतः, इतः = अनेन मार्गेण, अनेन मार्गेण आगच्छतां भवन्तौ = युवाम् ।

( उभौ = द्वौ ऋषिकुमारकौ राजानं = भूपतिं दुष्यन्तं विलोकयतः = पश्यतः )

**प्रथमः**—प्रथमः = द्वयोरन्यतरः ऋषिकुमारः अहो = आश्चर्यं परैरनभिभवनीयः

---

**राजा**—( **कान लगाकर** ) यह प्रशान्त, गम्भीर स्वर तो तपस्वियों का सा प्रतीत होता है ।

( **प्रवेश कर** )

**दौवारिक**—महाराज की जय हो, जय हो, महाराज ! ये दो ऋषिकुमार दरवाजे पर उपस्थित हैं । उनके लिए महाराज की आज्ञा है ?

**राजा**—बिना विलम्ब उन्हें शीघ्र अन्दर लाओ ।

**दौवारिक**—महाराज की जो आज्ञा बस, यह मैं अन्दर लाया ( **बाहर निकल जाता है तथा मुनि बालकों के साथ पुनः अन्दर जाकर** ) आप लोग इस मार्ग से अन्दर पधारिए, इधर से पधारिए ।

( **दोनों ऋषिकुमार राजा को देखते हैं** )

**प्रथम ऋषिकुमार**—तेजस्वी होते हुए भी इस राजा की आकृत्ति से ही विश्वसनीयता =

पाठा०—१. दृषिकल्पे राजनि ।

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः ॥ १४ ॥

---

तेजोविशेषो दीप्तिः तद्वतः दीप्तिमतोऽपि = तेजस्विनोऽपि अस्य = राज्ञो दुष्यन्तस्य वपुषः= शरीरस्य विश्वसनीयता—विश्रम्भभाजनता, विश्वासोत्पादकप्रसादगुणशालिता। अथवा= पक्षान्तरे नेदं विस्मयास्पदम् उपपन्नम् = उचितं युक्तमेव एतत् = इदं वस्तु विश्वासपात्रता ऋषिभ्यः = मुनिभ्यः नातिभिन्ने = अत्यन्तभेदरहिते प्रायः समाने राजनि = प्रजारञ्जन-शीले भूपतौ दुष्यन्ते। कुतः = यतः।

**अन्वयः**—अमुना अपि सर्वभोग्ये आश्रमे वसतिः अध्याक्रान्ता। अयमपि रक्षायोगात् प्रत्यहं तपः सञ्चिनोति वशिनः अस्यापि चारणद्वन्द्वगीतः केवलं राजपूर्वः मुनिः इति पुण्यः शब्दः मुहुः द्यां स्पृशति।

प्रथमो मुनिकुमारो राज्ञो दुष्यन्तस्य ऋषि समानतां समर्थयति—**अध्याक्रान्तेति।** अमुना = राज्ञा दुष्यन्तेन सर्वभोग्ये = सर्वं = ब्रह्मचारिप्रभृतिभिः भोग्ये आश्रयणीये गृहस्थाश्रमे यद्वा सर्वाणि = पृथ्वीधनरत्नवनितादीनि भोग्यानि यस्मिन् तथाविधे आश्रमे = राज्याश्रमे वसतिः = गृहं निवासो वा अध्याक्रान्ता = स्वीकृता। मुनिपक्षे सर्वैः अध्यय-नार्थमागतैः आश्रमवासिभिः शिष्यैः आश्रयणीये ब्रह्मचर्याश्रमे स्थानमङ्गीकृतम्। ऋषि-वदसावपि आश्रमवासीति भावः। अयमपि = एष राजापि रक्षायोगात् = रक्षैव = प्रजापालनमेव योगः = उपायः तस्मात् यद्वा रक्षाया योगः = उद्योगः तस्मात् प्रत्यहं =

---

दयालुता तथा सज्जनता झलक रही है। अथवा ऋषितुल्य इस राजा में यह साधु शीलता तो उचि[त] ही है, क्योंकि—

यह राजा भी ऋषि-मुनियों की तरह सबके उपकार करने वाले आश्रम = गृहस्थाश्रम में नि[वास] करता है। प्रजा की उचित रक्षा करके यह भी प्रतिदिन तप का संचय करता है = अपना पु[ण्य] तथा तप बढ़ाता है। इन्द्रिय विजयी इस राजा का पुण्य, यश तथा राजपूर्वक मुनि शब्द चार[णों] द्वारा देवलोक में गाया जाता है। अर्थात् स्वर्ग लोक में देवता लोग इन्हें राजर्षि नाम से स्म[रण] करते हैं। अतः यह राजा तपस्वी मुनियों की तरह परोपकारपरायण होने से राजर्षि नाम से प्रसि[द्ध] हैं। इन दोनों में अन्तर इतना ही है कि इनके नाम में ऋषि के पहले राज शब्द सम्बद्ध है। अ[तः] इन्हें राजर्षि कहते हैं ॥ २४ ॥

**विशेष**—यहाँ श्लेषालङ्कार की महिमा से राजा का चरित्र ऋषियों के चरित्र के समान दिख[ाया] गया है। गृहस्थ तथा मुनि ये दोनों परोपकारी होते हैं। उपकार निरत मुनियों की तो बात अलग है, पर गृहस्थ भी अपनी अर्जित सम्पत्ति से सभी आश्रमों के लोगों का पालन करता है इसीलिए गृहस्थाश्रम को सर्वभोग्य बताया है। भगवान् मनु के अनुसार गृहस्थाश्रम सर्व[श्रेष्ठ] बताया गया है, क्योंकि वह इतर तीनों ब्रह्मचर्याश्रम, वानप्रस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम का पा[लन] पोषण करता है—

'सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि ॥
यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥' ६।८९, ९० ॥

**द्वितीयः**—गौतम ! अयं स बलभित्सखो दुष्यन्तः।

**प्रथम**.--अथ किम् ?

**द्वितीयः**—तेन हि।

---

प्रतिदिनम् सर्वदा तपः = तपस्यां, लोकोत्तरधर्मं ऋषिकृततपः षष्ठांशं पुण्यम् 'पुण्यात् षड्भागमादत्ते न्यायेन परिपालयन्' इति याज्ञवल्क्योक्तेः। संचिनोति = संगृह्णाति। मुनिपक्षे–रक्षार्थं शरीरस्थैर्यसम्पत्तये योगः = अष्टाङ्गयोगः यमनियमाद्यात्मकः तन्निमित्तं तपः = कृच्छ्रचान्द्रायणादि संचिनोति = करोति। वशिनः = संयमिनो जितेन्द्रियस्य अस्य राज्ञो दुष्यन्तस्यापि चरणानां=गायनकुशलानां सिद्धयोनिविशेषाणां द्वन्द्वैः = मिथुनैः गीतः वर्णितः पुण्यः पवित्रः केवलं राजपूर्वः = राजशब्दविशिष्टः मुनिः = ऋषिः इति = एवंभूतः शब्दः राजर्षिशब्दः मुहुः = शश्वत् द्यां = देवलोकम्, स्पृशति = गगनं व्याप्नोति। मुनिपक्षेऽपि जितेन्द्रियाणां मुनीनां तपोऽनुष्ठानप्रभावेण चारणद्वन्द्वैर्भक्त्या तन्नामस्मरणात्मकगीतानि देवलोके गीयन्ते इति समानम्।

अयं भावः— यथा ऋषयोऽध्ययनार्थमागतान् बहून् स्वाश्रमे वासयन्ति तथैवायमपि राजा सर्वान् आश्रमिणः परिपालयन् गृहस्थाश्रमे निवसति यथा वा ऋषयः तपोऽनुष्ठानोपयिकं स्वदेहं संपादयन्तो यमनियमाद्यष्टाङ्गप्रयोगसाधनद्वारा कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि तपांसि कुर्वते तथैवायमपि राजा दुष्यन्तः यथाशास्त्रं सर्वेषां पालनं कुर्वन् ऋषिभ्यः तपः षष्ठांशभागमाददानः तपःपुण्यं संचिनोति। अपि च यथा सिद्धगन्धर्वप्रभृतिभिः जितेन्द्रियाणामेषां मुनीनां पुण्यनामानि स्वर्गे गीयन्ते तथैव संयमिनः सञ्चितपुण्यराशेरस्यापि राजर्षेः दुष्यन्तस्यापि पुण्यानि यशांसि नामानि च तैः निरन्तरं जेगीयन्ते। अत्र व्यतिरेक काव्यलिङ्ग-श्लेषालङ्काराः मन्दाक्रान्ता छन्दश्च ॥ १४ ॥

**द्वितीयः**—अतोऽस्य राजर्षेरपूर्वो महिमा। अथ द्वितीयो मुनिकुमारः स्वसहचरद्वारा राजर्षेर्दुष्यन्तस्य तथाविधं माहात्म्यमाकर्ण्य सादरं सविस्मयमयं पृच्छति—गौतम! अयं = एष पुरोवर्ती सः = प्रसिद्धः दुर्धर्षदानवजयादौ साहाय्यकरणाद् बलभित्सखः = इन्द्रमित्रः दुष्यन्तः = राजर्षिदुष्यन्तः।

**प्रथमः**—अथ किम् = किम् अन्यत् ?

**द्वितीयः**—द्वितीयः ऋषिकुमारः राज्ञः प्रभावं वर्णयन्नाह—तेन = तस्मात् कारणात् हि = निश्चयेन।

---

पद्मपुराण में लिखा है कि जिस प्रकार जीव माता का आश्रयण कर जीता है उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ का आश्रय कर पनपते हैं—

'यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। वर्तन्ते गृहिणस्तद्वदाश्रित्येतर आश्रमाः॥'

रत्नाकर में चारण की परिभाषा निम्न प्रकार से वर्णित है—

'किङ्किणीवाद्यवेदी च वृत्तो विकटनर्तकैः।
मर्मज्ञः सर्वरोगेषु चतुरश्चारणो मतः॥'

**द्वितीय ऋषिकुमार**—सखे ! गौतम ! क्या बल नामक असुर को मारने वाले देवराज इन्द्र के मित्र राजा दुष्यन्त यही हैं ?

**प्रथम**—और क्या, यही तो हैं।

**द्वितीय**—उस कारण से निश्चय ही—

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति।
आशंसन्ते [1]सुरयुवतयो बद्धवैरा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे ॥ १५ ॥

**उभौ**—( उपगम्य ) विजयस्व राजन्!

---

**अन्वयः**—यत् नगरपरिघप्रांशुबाहुः एक अयम् उदधिश्यामसीमां कृत्स्नां धरित्रीं भुनक्ति एतच्चित्रम्। हि दैत्यैः बद्धवैराः सुरयुवतयः अस्य अधिज्ये धनुषि पौरुहूते वज्रे च विजयम् आशंसन्ते।

द्वितीयो मुनिकुमारकः राज्ञो दुष्यन्तस्य बलभितसखत्वं समर्थयन् ब्रवीति—नैतच्चित्र-मिति। यत् = यस्मात् नगरस्य = पुरस्य परिघः = अर्गलः तद्वत् प्रांशू = दीर्घौ, उन्नतौ बाहू = भुजौ यस्य स नगरपरिघप्रांशबाहुः = पुरद्वारार्गलदीर्घपीवरभुजदण्डः, एकः = एकाकी अयं = पुरोवर्ती राजा दुष्यन्तः उदधिना = समुद्रेण श्यामा = नीलवर्णा सीमा = पर्यन्तो यस्याः सा तामुदधिश्यामसीमां = समुद्रमेखलां, कृष्णसागरपर्यन्तां वा कृत्स्नां = समग्रां = निखिलां धरित्रीं = पृथ्वीम् भुनक्ति एतत् न चित्रम् = नैतदाश्चर्यजनकम् हि = यतः दैत्यैः = दितिपुत्रैः, दानवैः बद्धवैराः = वद्धद्वेषाः सत्यः सुरयुवतयो देवाङ्गनाः अप्सरसः अस्य राज्ञो दुष्यन्तस्य अधिज्ये = आरोपितमौर्वीके = धनुषि = चापे पौरुहूते वज्रे = इन्द्रहस्तस्थिते कुशिके च विजयं = दैत्यानां पराजयकरणात्मकं जयम् आशंसन्ते = संभाव-यन्ति प्रार्थयन्ति निश्चिन्वन्ति। तथा च न केवलं निखिलभूमण्ड़लबालकोऽयं, किन्तु महेन्द्रसमपराक्रमो देवानामपि युद्धेषु साहाय्यमाचरन्तीति भावः।

**अयं भावः**—आजानुबाहुः पीनदृढवक्षःस्थलः समग्रां पृथ्वीं प्रशासदसौ राजा दुष्यन्तः सर्वेभ्यो भूपतिभ्योऽतिशेते इति नाश्चर्यकरं प्रत्युत दानवैः सह देवानां संग्रामे समुपस्थिते सति महेन्द्रसाहाय्याय समागतस्यास्य समारोपितमौर्वीके धनुषि युद्धत्रासादिभीरवो देवाङ्गना अस्य विजयं वाञ्छन्ति। तस्मात् सर्वातिशौर्यशालिनोऽस्य राज्ञो दुष्यन्तस्य सकलमहीमण्डलपरिपालनक्षमत्वं नाश्चर्यजनकं प्रत्युत समुचितमेव प्रतिभाति।

अत्रोपमा–काव्यलिङ्ग–पर्यायोक्त-दीपकालङ्कारा मन्दक्रान्ता वृत्तं च ॥ १५ ॥

**उभौ**—उभौ = द्वावपि ऋषिकुमारौ ( उपगम्य = समीपमुपसृत्य ) राजन् = हे महाराज! विजयस्व = विजयतात्।

---

यह आश्चय की बात है कि यह राजा जिनकी भुजाएँ लम्बी-लम्बी नगर द्वार की अर्गला के समान हैं, वे अकेले ही समुद्र पर्यन्त पृथ्वी की रक्षा करते हैं और उनका उपयोग करते हैं, क्योंकि दैत्यों से वैर रखने वाले देवता लोग भी युद्ध में इन्द्र के वज्र से या इस राजा के चढ़े हुए धनुष से ही अपनी विजय की आशा करते ही रहते हैं। अर्थात् यह राजा सम्पूर्ण पृथ्वी का एकच्छत्र राज्य करता है और इसकी सहायता देवगण भी किया करते हैं और स्वर्ग में जाकर यह युद्ध में इन्द्र को भी सहयोग देता हैं, इससे आश्चर्य ही क्या है? ॥ १५ ॥

**दोनों—( राजा के पास जाकर )** महाराज! आप विजयी हों।

---

पाठा०—१. समितिषु सुराः सक्तवैराः।

राजा--( आसनादुत्थाय ) अभिवादये भवन्तौ !
उभौ--स्वस्ति भवते ( इति फलान्युपहरतः ) ।
राजा--( सप्रणामं परिगृह्य ) [1]आज्ञापयितुमिच्छामि ।
उभौ--विदितो भवानाश्रमसदामिहस्थः तेन भवन्तं प्रार्थयन्ते ।
राजा--किमाज्ञापयन्ति ।

---

राजा—( आसनादुत्थाय = सिंहासनादुत्थितो भूत्वा ) भवन्तौ = युवाम् अभिवादये= वन्दे, प्रणतोऽस्मि ।

उभौ—भवते = आयुष्मते तुभ्यं स्वस्ति = कल्याणं भवतु ( इति - एवमुक्त्वा राज्ञे फलानि उपाहरत = अर्पयत ) ।

राजा—( सप्रणामं = प्रणामेन=नत्या सह सप्रणामं-नतिपूर्वकम् परिगृह्य=गृहीत्वा, स्वीकृत्य ) भवद्भ्यामात्मानम् आज्ञापयितुं = आज्ञप्ती भवितुम् इच्छामि = वाञ्छामि ।

उभौ—ऋषिकुमारौ स्वकार्यं निवेदयतः-आश्रमसदां = आश्रमवासिनां मुनीनां भवान् = त्वमिहस्थः विदितः = ज्ञातः । तेन = कारणेन ते भवन्तं त्वां प्रार्थयन्ते = निवेदयन्ति ।

राजा—नृपो दुष्यन्तः कथयति यत् किम् आज्ञापयन्ति = आदिशन्ति ते आश्रमसदो मुनयः ।

---

**राजा—( आसन से उठकर )** मैं आप दोनों को प्रणाम करता हूँ । और आप लोगों से शुभ आशीर्वाद की कामना करता हूँ ।

**दोनों**—राजन् ! आपका कल्याण हो। **( दोनों ऋषिकुमार राजा को फल भेंट करते हैं )**

**विशेष**—ऋषिकुमारों द्वारा राजा दुष्यन्त को फल देने का तात्पर्य है कि भारतीय मर्यादा के अनुसार राजा, गुरु और वैद्य के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। हाथ में उपहार के रूप में कुछ फूल, फल लेकर राजा आदि का दर्शन करना चाहिए---

'रिक्तपाणिर्न गच्छेत् राजानं दैवतं गुरून् । नैमित्तिकं च वैद्यं च फलेन फलमाहरेत् ।।'
धर्मशास्त्रों में निर्देश किया गया है कि देवता, राजा, गुरु, भार्या, वैद्य एवं ज्योतिषियों के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए—

'दैवो राजा गुरुर्भार्या वैद्यो नक्षत्रपाठकः । रिक्तपाणिर्न गन्तव्यः तत्र कार्यं न सिध्यति ।।'
इसलिए किसी आदरणीय व्यक्ति से मिलते समय आदर पूर्वक उसे उपहार में यथाशक्ति फल, फूल आदि कुछ अवश्य दिया जाना चाहिए । राजा, गुरु आदि के दर्शन करते समय खाली हाथ नहीं जाना चाहिए---

'अग्निहोत्रं गृहं क्षेत्रं मित्रं भार्यां सुतं शिशुम् । रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं देवतां गुरुम् ।।'
इसलिए स्मृतियों के इस नियम के अनुसार ऋषिकुमारों ने राजा दुष्यन्त को आदरपूर्वक फलोपहार दिया था ।

**राजा—( प्रणामपूर्वक फल लेकर )** मैं आप लोगों के आने का उद्देश्य भी सुनना चाहता हूँ ।

**दोनों**—आपका यहाँ आना तपस्वियों को ज्ञात हो गया है। अतः वे आप से अभ्यर्थना करते हैं ।

**राजा**—तो, कहिए पूज्य तपस्वियों की क्या आज्ञा है ?

---

पाठा०—१. आगमनप्रयोजनं ज्ञातुमिच्छामि ।

**उभौ**--तत्रभवतः कण्वस्य महर्षेरसान्निध्याद्रक्षांसि न इष्टिविघ्नमुत्सादयन्ति। तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति।

**राजा**--अनुगृहीतोऽस्मि।

**विदूषकः**--( अपवार्य ) एसा दाणि अणुऊला ते अब्भत्थणा [ **एषेदानीमनुकूला तेऽभ्यर्थना** ]।

**राजा**--( स्मितं कृत्वा ) रैवतक, [1]मद्वचनादुच्यतां सारथिः सबाणासनं रथमुपस्थापयेति।

---

**उभौ**—आश्रमवासिनां प्रार्थनाप्रकारं उभौ = द्वावपि ऋषिकुमारकौ कथयतो यत् तत्रभवतः = पूज्यस्य श्रीमतः कण्वस्य महर्षेः = महामुनेः कुलपतेः कण्वस्य असान्निध्यात् = सान्निध्याभावात् अनुपस्थित्या रक्षांसि = राक्षसा नः = अस्माकं इष्टिविघ्नं = यज्ञबाधाम् उत्पादयन्ति = जनयन्ति तत् = तस्मात्, अतः कतिपयरात्रम्=कतिपयाः=काश्चन रात्रयः = निशा यस्मिन् तत् कतिपयरात्रम् ( रात्रिकाले रक्षसां सञ्चारेण भयसम्भवात् ) सारथिः= सूत एव द्वितीयः = सहायो यस्य स सारथिसहायः तेन सारथिसहायेन = सारथिना साकं भवता=त्वया दुष्यन्तेन आश्रमः = तपोवनं नाथेन = रक्षकेण सहितः = सनाथः न सनाथः- असनाथः सनाथः क्रियतामिति सनाथीक्रियताम् = सस्वामिकः क्रियताम्, विधीयताम् परिपाल्यताम् ( राजपरिजनसम्बन्धे हि तपोवनोपराधसम्भवात् सारथिद्वितीयेनेत्युक्तम् )।

**राजा**—अनुगृहीतः = कृतकार्यः अस्मि = भवामि भवदभ्यर्थनामङ्गीकरोमीति भावः। तपोधनानां नियोगस्य स्वाभ्युदयहेतुत्वात् राज्ञा सः अनुग्रहः एव संभावितः। अत्र केनाप्यपदेशेन पुण्याश्रमं गन्तुमिच्छो राज्ञः ऋषिकुमारकृता अभ्यर्थना अनुग्रहपक्षे एव संवृत्तेति भावः।

**विदूषकः**—( अपवार्य = परावृत्य, परावर्तनं कृत्वा राजानं प्रति ) एषा = इयं पूर्वोक्ता अभ्यर्थना = प्रार्थनां ते = तव, त्वां प्रति अनुकूला = मनीषिता, अभीष्टा।

**राजा**—( स्मितं कृत्वा = ईषद्धासं विधाय ) रैवतक ! मद्वचनात् = अस्मदादेशेन

---

**दोनों**—यहाँ कुलपति पूज्यपाद महर्षि कण्व के किसी कारणवश बाहर चले जाने के कारण राक्षस लोग हमारे यज्ञों में विघ्न कर रहे हैं। अतः थोड़े दिनों या कुछ रात के लिए यज्ञरक्षार्थ आप सारथि के साथ एकाकी यहां निवास करें और इस आश्रम की शोभा बढ़ावें।

**विशेष**—यहाँ ऋषि कुमारों ने ऋषियों के प्रार्थना कुछ रात के लिए केवल सारथि के साथ रुकने की प्रार्थना की है, क्योंकि ऋषियों के लिए सेना का आतिथ्य एवं स्वागत करना कठिन हो जायेगा। दूसरी बात यह है कि ऐसे साधारण कार्य के निमित्त सेना का रुकना उचित नहीं और आश्रम पर सेना के ठहरने से तपोवन के आवश्यक कार्यों में विघ्न-बाधा भी उपस्थित हो सकता है। कुछ रात रुकने का अभिप्राय यह है कि राक्षसों की बाधा रात में ही अधिक होती है। अतः रात में ही रहकर उसका निवारण किया जा सकता है।

**राजा**—मैं इस प्रकार सेवा की आज्ञा से कृतार्थ हो गया। अर्थात् मेरा अहोभाग्य है कि ऋषियों ने मुझे यह कार्य करने की आज्ञा प्रदान की है।

**विदूषक—( अलग से )** यह तो आपकी इच्छा के अनुकूल ही गलहस्त है=गर्दनियां देकर = बलात्कार पकड़कर मनोऽनुकूल कार्य में लगाना है।

**राजा—( हँसकर )** रैवतक ! जाओ, मेरी आज्ञा से सारथि को कहो कि धनुष बाण के साथ मेरा रथ यहां लावे।

---

पाठा०—१. उच्यतामस्मत्सारथिः।

दौवारिकः—जं देवो आणवेदि [ यद्देव आज्ञापयति ]। ( इति निष्क्रान्तः )।

उभौ—( सहर्षम् )।

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि।
आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः ॥ १६ ॥

---

मदाज्ञया–महाराजदुष्यन्त आज्ञापयतीत्युच्यताम् सबाणासनं—बाणासनेन = धनुषा सह सबाणासनं = धनुर्बाणसहितं रथं = स्यन्दनम् उपस्थाय = आनय इति सारथिः = सूतः उच्यतां = कथ्यताम्।

दौवारिकः—देवः = स्वामी, महाराज यत् आज्ञापयति = आदिशति ( इति = एवमुक्त्वा निष्क्रान्तः = रङ्गाद् बहिर्गतः )।

उभौ—( सहर्षं = हर्षेण = प्रमोदेन सह वर्तते इति सहर्षं = सप्रमोदम्।

अन्वयः—पूर्वेषामनुकारिणि त्वयि इदं युक्तरूपम् ( अस्ति ) पौरवा आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः ( सन्ति ) खलु।

यज्ञविघ्नवारणाय मुनिजनप्रार्थनया दुष्यन्तस्याश्रमगमनं स्वीकृतौ भृशं सन्तुष्टौ ऋषिकुमारकौ तमभिनन्दत—अनुकारिणीति। पूर्वेषां=ययातिपुरुप्रभृतीनां स्वपूर्वजानाम् अनुकारिणि = अनुकरणकर्तरि तत्सदृशे त्वयि = राज्ञि दुष्यन्ते इदं = मुनिजनप्रार्थनायाः सद्यः स्वीकरणं युक्तरूपं = अतिशयेन पूज्यते युक्तम् अस्ति पौरवाः = पुरुवंशोद्भवा राजानः आपन्नाभयसत्रेषु–आपन्नाः=आपत्तियुक्ताः तेषामभयानि = अभयदानान्येव सत्राणि = यागविशेषाः तेषु विषये दीक्षिताः = कृतदीक्षाः = धृतव्रताः खलु = निश्चयेन। अत्रापन्नाभय प्रदाने सत्रत्वारोपेण तस्यावश्यककर्तव्यत्वम्, लोकोत्तरफल–जनकत्वम्, साधारणजन-दुष्करत्वं च सूच्यते।

अयं भावः—राजन्! यथा सर्वे पुरुवंशोद्भवा राजानः आपद्ग्रस्तेभ्योऽस्मभ्योऽभयप्रदानेन सर्वदानुगृहीतवन्तः तथैव भवानपि अस्मदापन्निवारणे सावधान एवास्ति। अतो भवत इदं कार्यं निजपूर्वजानुसारं योग्यमेवास्ति ॥ १६ ॥

---

दौवारिक—महाराज की जो आज्ञा।

दोनों—( हर्ष के साथ ) राजन्!

महाराज ययाति, पुरु आदि अपने पूर्व पुरुषों के समान ही उपकार परायण आपके लिए तो यह यज्ञ के रक्षार्थ सन्नद्ध होना उचित ही है, क्योंकि पौरवराजवंश = आपका घराना तो विपत्ति ग्रस्तों को अभयदान देने में = सदावर्त में हमेशा दीक्षित = सन्नद्ध रहता है ॥ १६ ॥

**विशेष**—इस पद्य में पूर्व शब्द पूर्वपुरुष = पूर्वजों का बाधक है जिन्होंने बड़े बड़े पुण्य कार्य किये हैं। यहाँ दुष्यन्त चरित्र, शौर्य, रूपदान शुद्ध रूप में अपने पूर्वजों के अनुकरण करने वाले कहे गए हैं। जिस प्रकार इनके पूर्व पुरुषों ने ऋषि-मुनियों की सहायता कर शुभ्र पुण्य अर्जित किया है इसी प्रकार ये भी हम लोगों की प्रार्थना स्वीकार कर पुण्यभागी होंगे। क्योंकि दीक्षित व्यक्ति कार्य पूरा किये विना दूसरा काम नहीं करता। अतः आप हमलोगों का कार्य अवश्य पूर्ण करेंगे।

**राजा**—( सप्रणामम् ) [1]गच्छतं पुरो भवन्तौ अहमप्यनुपदमागत एव।

**उभौ**—विजयस्व ( इति निष्क्रान्तौ )।

**राजा**—माढव्य ! अप्यस्ति शकुन्तलादर्शने कुतूहलम् ?

**विदूषकः**—पढमं [2]सपरीवाहं आसि। दाणिं रक्खसवुत्तंतेण बिंदू वि णावसेसिदो [ प्रथमं सपरीवाहमासीत्। इदानीं राक्षसवृत्तान्तेन बिन्दुरपि नावशेषितः ]।

**राजा**—मा भैषीः, ननु मत्समीपे वर्त्तिष्यसे।

**विदूषकः**—एसो रक्खसादो रक्खिदो म्हि [ एष राक्षसाद्रक्षितोऽस्मि ]।

( प्रविश्य )

---

**राजा**—( सप्रणामं = प्रणतिपूर्वकमाह ) पुरः = अग्रे भवन्तौ = युवां गच्छतं = व्रजतम् अहं = अयं जनोऽपि भवतोः अनुपदं—पदस्य पश्चादनुपदं = भवत्पदन्यासलक्ष्यीकृत्य अनन्तरमेव युष्मत्पादन्यासचिह्नानुसरन्नेव आगतः = आश्रमे प्राप्त एव। एवं स्वगमने विलम्बाभावं द्योतयति।

**उभौ**—ऋषिकुमारौ कथयतो यत् विजयस्व महाराज, त्वं जय, सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् ( इति = एवमुक्त्वा, निष्क्रान्तौ = रङ्गमञ्चाद् बहिर्गतौ )

**राजा**—माढव्य ! अपि = किम् शकुन्तलादर्शने = मुनिकन्यावलोकने कुतूहलम् = उत्सुकता अस्ति = वर्तते।

**विदूषकः**—प्रथमं = मुनिकुमारप्रार्थनाश्रवणपर्यन्तम् राक्षसवृत्तश्रवणात् पूर्वं तु सपरीवाहं = परीवाहेन = जलोद्रेकेन सह वर्तमानं सपरीवाहं = वेगेन विपुलं वहन् प्रपाल इव कौतुकप्रवाह आसीन। इदानीं = साम्प्रतं तु तापसमुखराक्षसवृत्तान्तश्रवणात् बिन्दुरपि नावशेषितः = रक्षितः, अल्पमात्रमपि नेदानीं तापसाश्रमे गन्तुमभिलषामीति भावः।

**राजा**—मा भैषीः = न भयमाप्नुहि ननु मत्समीपे = मम निकटे एव वर्तिष्यसे = स्थास्यसि। अतो न ते राक्षसेभ्यो भीतिसंभावना।

**विदूषकः**—एषः = अयम् = अहं राक्षसात् = असुरात् राज्ञा रक्षितः = सुरक्षितं एव अस्मि = भवामि = दुष्यन्तेन मद्रक्षणे प्रतिश्रुते रक्षितमेवात्मानमहं मन्ये इति भावः।

---

**राजा**—( **प्रणामपूर्वक** ) आप लोग पधारिए, मैं भी आपलोगों के पीछे-पीछे तुरन्त आ रहा हूँ।

**दोनों**—आपकी विजय हो ( **कहकर चले जाते हैं** )

**राजा**—सखे माधव्य ! क्या तुम्हें भी शकुन्तला को देखने का कौतूहल एवं उत्कण्ठा है ?

**विदूषक**—मित्र ! पहले तो बड़ी इच्छा थी, परन्तु अब ऋषि कुमारों से वहाँ राक्षसों के उपद्रव का वृत्तान्त सुनकर उस इच्छा में बहुत परिवर्तन आ गया है अर्थात् अब तो मेरा कौतूहल ही शान्त हो गया।

**राजा**—मित्र ! मत डरो। यदि राक्षसों से डर लगता है तो तुम मेरे ही पास रहोगे जिससे डर न लगे अतः भय की कोई बात नहीं हैं।

**विदूषक**—चलो, अब मैं राक्षस से सुरक्षित हो गया।

( **प्रवेशकर** )

---

पाठा०—१. गच्छतां भवन्तौ। २. अपरिबाधं।

**दौवारिकः**—सज्जो रधो भट्टिणो विजअप्पत्थाणं अवेक्खदि। एस उण णअरादो देवीणं आणत्तिहरओ करभओ आअदो [ **सज्जो रथो भर्तुर्विजयप्रस्थानमपेक्षते। एष पुनर्नगराद्देवीनामाज्ञसिहरः करभक आगतः** ]।

**राजा**—( सादरम् ) [1]किमम्बाभिः प्रेषितः ?

**दौवारिकः**—अह इं [ **अथ किम्** ] ?

**राजा**—[2]ननु प्रवेश्यताम्।

**दौवारिकः**—तह। ( इति निष्क्रम्य करभकेण सह प्रविश्य ) एसो भट्टा, उवसप्प [ तथा। **एष भर्ता, उपसर्प** ]।

**करभकः**—चेदु भट्टा देवी आणवेदि आआमिणि चउत्थदिअहे पउत्थपारणो मे उववासो भविस्सदि। तहिं दोहाउणा अवस्सं संभाविदव्वा त्ति [ **जयतु भर्ता। देव्याज्ञापयति आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो मे उपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषावश्यं संभावनीयेति।** ]

---

**दौवारिकः** = ( प्रविश्य = रङ्गान्त आगत्य ) सज्जः = प्रस्तुतः रथः = स्यन्दनः भर्तुः = स्वामिनः विजयप्रस्थानं = जयप्रमाणम् अपेक्षते = प्रतीक्षते। एष = अयं पुरःस्थितः नगरात् = पुरात् राजधानीतः देवीनां = राजमातृणां अम्बाया राजमातुः पूज्यत्वाद्बहुवचनम् आज्ञसिहरः = सन्देहवाहकः आनेता, करभकः आगतः = प्राप्तः।

**राजा**—( सादरम् आदरेण = सम्मानेन सहितं सादरम् = ससम्मानम् ) किम् अम्बाभिः = मातृभिः प्रेषितः = प्रहितः ?

**दौवारिकः**—द्वारपालो रैवतकः प्रतिब्रूते—अथ किं = वाढम्। एवमेतत्।

**राजा**—ननु = रैवतक ! प्रवेश्यताम् = रङ्गान्तः आनीयताम्।

**दौवारिकः**—तथा = आम् ( इति = एवमुक्त्वा निष्क्रम्य = बहिर्गत्वा करभकेण = तन्नाम्ना अम्बासन्देशवाहकेन सह = साधं प्रविश्य = रङ्गमागत्य ) एषः = अयं भर्ता = स्वामी, उपसर्प = समीपे गच्छ।

**करभकः**—जयतु भर्ता = स्वामी सर्वोत्कर्षेण वर्तताम्। देवी = राजमाता आज्ञापयति =

---

**दौवारिक**—महाराज का जय-जयकार हो, महाराज का विजय रथ तैयार है और आपके विजयार्थ प्रयाण की प्रतीक्षा कर रहा है, किन्तु यह करभक नामक सन्देशवाहक राजमाताओं की कोई सूचना लेकर राजधानी से आया है।

**राजा**—( **आदर के साथ** ) क्या मेरी माताओं ने उसे भेजा है ?

**विशेष**—यहाँ माताओं के सन्देश में आदर व्यक्त किया गया है, क्योंकि दुष्यन्त मातृ भक्त राजा है।

**द्वारपाल**—जी, हाँ।

**राजा**—तो उसे शीघ्र यहाँ लाओ।

**द्वारपाल**—महाराज की जैसी आज्ञा ( **बाहर जाता है और करभक के साथ पुनः प्रवेश कर** ) करभक ! ये महाराज बैठे हैं, आप जाइए।

**करभक**—महाराज की जय हो। राजमाताओं ने आज्ञा दी है कि आगामिनि चतुर्थी के दिन

---

पाठा०—१. किमार्याभिः। २. तेन हि।

**राजा**—इतस्तपस्विकार्यम्, इतो गुरुजनाज्ञा। द्वयमप्यनतिक्रमणीयम्। किमत्र प्रतिविधेयम्।

**विदूषकः**—तिसंकू विअ अंतराले चिट्ठ। [ त्रिशङ्कुरिवान्तराले तिष्ठ ]

---

आदिशति–आगामिनि चतुर्थदिवसे = अस्माद् दिनाच्चतुर्थदिवसे चतुर्थ्यां तिथौ वा प्रवृत्तपारणः = प्रवृत्ता = आरब्धा पारणा उपवासाङ्गं व्रतान्तभोजनं यस्य स प्रवृत्तपारणः = उपवासः अन्तग्रहणेन व्रतभङ्गः क्रियमाणोपवाससमाप्तिः भविष्यन्ति। तत्र = तस्मिन् अवसरे दीर्घायुषा = चिरञ्जीविना त्वया अवश्यं नूनं सम्भावनीया = उपस्थित्या समाजनीया, सन्तोषणीया इति। उपवासस्तु आरब्ध एव केवलं तस्य समाप्तिः चतुर्थेऽह्नि भविष्यतीति भावः।

**राजा**—तदाकर्ण्य नृपो दुष्यन्तश्चिन्तयति—इतः=एकतः अत्र तपोवने तपस्विकार्यं = तापसानां यज्ञस्य राक्षसेभ्यो रक्षणम् पुनः इतः = अन्यत्र नगरे वा द्वितीयतः गुरुजनाज्ञा गुरुजनस्य = मातुः आदेशः, प्रत्यावर्तनरूपः द्वयं = उभयमपि, अनतिक्रमणीयम् = अनुलङ्घनीयम् तपस्विकार्य-गुरुजनानुज्ञयोः समप्राधान्येन युगपत् कर्तुमशक्यत्वात् राजा प्रतिपत्तिमूढः सन्नाह–किमत्र प्रतिविधेयं = अस्मिन् विषये कतरत् कर्तव्यम् किमनुष्ठेयमित्यर्थः।

**विदूषकः**—राज्ञः प्रतिपत्तिमूढत्वं विदित्वा माढव्यः कथयति यत् त्रिशङ्कुरिव = त्रिशङ्कुसदृशः अन्तराले = द्वयोर्मध्ये तिष्ठ = भव।

त्रिशङ्कुकथा वाल्मीकिरामायणे बालकाण्डस्य ५७तः ६०सर्गपर्यन्तं प्रसिद्धाऽस्ति, तद्यथा–एकदा त्रिशङ्कुः विश्वामित्रेण स्वतपोबलबलादूर्ध्वं स्वर्गे लोके प्रेषितः तदसहमानेन

---

या आज से चौथे दिन प्रवृत्तपारण नामक हमारा उपवास पूर्ण होगा, उस दिन आप अवश्य उपस्थित होकर हमारा उत्साह एवं हर्ष बढ़ावें।

**विशेष**—चतुर्थ दिवस में आगामिनि विशेषण से गत चतुर्थ दिन का निराकरण किया गया है, प्रवृत्तपारण कहकर उपवास शब्द के प्रयोग से माताओं के अनशन की आशङ्का का वारण किया गया है।

**राजा**—इधर तो मुझे ऋषियों का कार्य करना है। उधर गुरुजन=माताओं की आज्ञा का भी पालन करना आवश्यक है। ये दोनों ही अत्यावश्यक कार्य हैं, अब क्या करना चाहिए? एक समय में एक ही हो सकता है क्योंकि दोनों कार्यों का स्थान दूर-दूर है।

**विदूषक**—मित्र! अब तुम त्रिशंकु की तरह बीच में ही लटकते रहो।

**विशेष**—उपहासप्रिय विदूषक ने यहाँ अच्छा मजाक किया है कि तपस्वीजन तथा माताओं के मध्य में रहकर किसी का भी कार्य नहीं हो सकता है।

वाल्मीकीयरामायण के बालकाण्ड में ५७ से ६० सर्गों में राजा त्रिशंकु की कथा अङ्कित है—महाराजा हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु सूर्यवंश में उत्पन्न राजा थे। ये बड़े पराक्रमी और पुण्यात्मा राजा थे इन्होंने एक बार सदेह स्वर्ग में जाने की इच्छा से कुलगुरु वसिष्ठजी से यज्ञ कराने के निमित्त प्रार्थना की, पर उन्होंने यह कहकर इनकार कर दिया कि यह कार्य असंभव है। तब त्रिशंकु ने वसिष्ठजी के विरोधी विश्वामित्र मुनि के द्वारा यज्ञ कराया।

मन्त्रों के प्रभाव से त्रिशंकु इसी देह से स्वर्ग को चला, किन्तु गुरु वसिष्ठ की अनुमति के बिना यज्ञ करने से देवता असन्तुष्ट हो गये और उन्होंने उसे स्वर्ग जाने से रोककर नीचे ढकेल दिया। इधर विश्वामित्र भी मन्त्रों से उसे स्वर्ग भेजने में जोर लगा रहे थे। इस प्रकार उधर स्वर्ग में

राजा—सत्यमाकुलीभूतोऽस्मि[1]।

**कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद द्वैधीभवति मे मनः।**
**पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा ॥ १७ ॥**

---

देवेन्द्रेण चाधः पातितः। ततः स नोर्ध्वं न चाधः, किन्तु: अन्तराल एवातिष्ठत्। एतत्कथोद्देशेन विदूषको दुष्यन्तमुपहसति–यत्त्वमपि तथैव गुरुजन-मुनिजनाज्ञयोः किमपि अकृत्वा अत्रैवं विचारयन्नेव तिष्ठ। न खलु राजधान्यां गच्छ न च तपोवनमुपव्रजेति भावः।

**राजा**––विदूषकस्य परिहासं जानन् राजा, मित्र! नायं परिहासावसर इत्याह––सत्यमित्यर्द्धाङ्गीकारे–सत्यं=इदं तथ्यम् यत् आकुलीभूतः–न आकुलः अनाकुलः अनाकुलः आकुलः सम्पद्यमानः आकुलीभूतः =व्याकुलः अस्मि = भवामि। आकुलीभूतोऽस्मीति यत् तत् सत्यमित्यर्थः।

**अन्वयः**—पुरः शैले ( सति ) प्रतिहतं स्रोतोवहः स्रोतो यथा कृत्ययोः भिन्नदेशत्वात् मे मनः द्वैधी भवति।

अथात्मनो मनसो व्याकुलत्वं स्पष्टयति राजा दुष्यन्तः––**कृत्ययोरिति**। पुरः =अग्रे ( शिलाः सन्ति यस्मिन्नित्यन्वर्थनामवति प्रतिहननसमर्थे ) शैले = पर्वते सति प्रतिहतम् = अवरोधं प्राप्तम्, निरुद्धप्रवाहं, स्रोतोवहः =नद्या स्रोतः =प्रवाहः जलवेगः यथा = इव मे = मम मनः =चित्तम् कृत्ययोः =कर्तव्ययोः भिन्नः = पृथक् देशः =स्थानं ययोः तयोः भावः तत्त्वं तस्मात् भिन्नदेशत्वात्—नानादेशस्थत्वात् द्वैधीभवति = मार्गद्वयगमनशीलं संशयाकुलं भवति, मातृकार्यं राजधान्यां मुनिकार्यं च तपोवने इत्येकदा तयोर्द्वयोरनुष्ठाना-सम्भवादित्याशयः।

अयं भावः––यथा वेगेन प्रवहन् नदीप्रवाहः मार्गे शिलाखण्डरुद्धः द्विधा भूत्वा उभयोः

---

में देवता लोगों ने उसे घुसने नहीं दिया, इधर विश्वामित्रजी ने उसे भूमि पर गिरने नहीं दिया। फलतः वह न ऊपर स्वर्ग में जा सका न नीचे जमीन पर हो आ सका। बेचारा आकाश के बीच में ही आजतक उलटा होकर लटका रह गया। उसके मुख से जो लार गिरी थी उसी से कर्मनाशा नदी निकली है जिसके जल के स्पर्शमात्र से धर्म कर्म नष्ट हो जाते हैं। अतः उस नदी का जल अस्पृश्य माना गया है।

त्रिशंकु के नामकरण के सम्बन्ध में पुराणों में कहा गया है कि इनमें तीन शङ्कु = पाप होने के कारण इनका नाम त्रिशङ्कु पड़ा था। इनके तीन पाप ये थे—इन्होंने अपने पिता को असन्तुष्ट कर दिया, जिससे उन्होंने राज्य से बाहर निकाल दिया था तथा इन्होंने गुरुवसिष्ठ की दुधार गौ का वध कर दिया। इसी प्रकार इन्हें गोमांस भक्षण का भी दोषी बताया गया है। इन्हीं तीनों पापों के कारण त्रिशंकु नाम से प्रसिद्ध थे।

**राजा**—सच-मुच मैं व्याकुल हो गया हूँ क्योंकि दोनों ही कार्य अवश्य कर्तव्य है, किसे करूँ, और किसे छोड़ूँ।

जैसे सामने पर्वत की चट्टान आजाने पर उसके दोनों ओर नदी का प्रवाह दो भागों में बँट जाता है, वैसे ही इन दोनों कार्यों के भिन्न-भिन्न दिशाओं में होने के कारण प्रतिहत हो मेरा मन भी द्विविधा में पड़ गया है, इसे करूँ या उसे करूँ, इसी संशय में पड़ गया हूँ ॥ १७ ॥

**विशेष**—इस समय मेरे सामने वस्तुतः दो कर्त्तव्य उपस्थित हैं—राक्षसों से ऋषियों के यज्ञ

---

पाठा०—१. कृतोऽस्मि।

( विचिन्त्य ) सखे ! [1]त्वमम्बया पुत्र इति प्रतिगृहीतः । अतो भवानितः प्रतिनिवृत्य [2]तपस्विकार्यव्यग्रमानसं मामावेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकृत्यमनुष्ठातुमर्हति ।

**विदूषकः**--ण खु मं रक्खोभीरूअं गणेसि [ न खलु मां रक्षोभीरुकं गणय ] ।

**राजा**--( सस्मितम् ) भो महाब्राह्मण ! कथमेतद् भवति सम्भाव्यते ?

---

पार्श्वयोः=शैलोभयपार्श्वाभ्यां प्रवहति तथैव एकतो मुनिजनाभ्यर्थनं अन्यतो नगरात् मातुरादेश इति कर्तव्याकर्तव्य-निश्चयाभावात् मामकीनं मनः द्वैधीभवति ॥ १७ ॥

( विचिन्त्य =चिन्तितो राजा तत्कालस्फुरितया प्रतिभया कर्तव्यं निर्धार्य ) विदूषकमाह--सखे ! त्वमम्बया = मम मात्रा पुत्र इति = पुत्रत्वेन प्रतिगृहीतः = अङ्गीकृतोऽसि । अतः = अनेन कारणेन भवान् = त्वमितः = अस्मात् स्थानात् प्रतिनिवृत्त्य = प्रत्यावृत्त्य तपस्विनां = तापसानां कार्यं = कृत्यं तत्र व्यग्रं = आकुलं मनः = चित्तं यस्य पूतं तपस्विकार्यव्यग्रमानसं मां = इमं जनं दुष्यन्तम् आवेद्य = सूचयित्वा तत्रभवतीनां=आदरणीयाया अम्बायाः पुत्रस्य = सुतस्य कृत्यं विधानमिति पुत्रकृत्यं = सुतोचितं विधानम् पुत्रेण मया कर्तुमुचितकर्म अनुष्ठातुं = सम्पादयितुम् अर्हसि = योग्योऽसि ।

**विदूषकः**--न खलु मां=इमं जनं रक्षोभीरुकं=असुराद्भयभीतं गणय=जानीहि यद्यहं राजधानीमभिगमिष्यामि तदा भवान् मां राक्षसाद्भीतं मन्यते। अतो यदि मां तथा न मनुते भवान् तदाहं गमिष्यामि अर्थाद् भवन्नियोगेनैवाहं नगरं गच्छामि, न रक्षोभयेनेति भावः।

**राजा**--( सस्मितं-किञ्चिद्-हसित्वा ) भो महाब्राह्मण ! = हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! कथं = केन प्रकारेण, न केनापि प्रकारेण एतत् = इदं रक्षोभीरुत्वं भवति = त्वयि सम्भाव्यते = सम्भवति ? नैवेत्यर्थः । नाहं त्वां रक्षोभीरुकं सम्भावयामि, त्वमेव स्वमुखेन तत् प्रकाशयसीत्याकूतम् ।

अत्र महाब्राह्मणेति सम्बोधनमुपहासादेव प्रोक्तम् । महाब्राह्मणपदस्य पुण्यजनादि-शब्दवद् विपरीतलक्षणया रूढ्या वा निन्दितब्राह्मणपरत्वात् । तदुक्तं--

'शङ्खे तैले तथा मांसे वैद्ये ज्योतिषके द्विजे ।
यात्रायामथ निद्रायां महच्छब्दो न दीयते ॥'

---

की रक्षा तथा माँ का व्रत पारण के दिन बुलावा है । अतः नदी के प्रवाह का पहाड़ से टकराकर दो भागों में विभक्त हो जाने की तरह मेरा मन भी दोनों जगह बँट गया है । अतः मैं संशयास्पद स्थिति में पड़ गया हूँ ।

**( कुछ सोचकर )** सखे माधव्य ! हमारी माताओं ने तुमको भी पुत्र की तरह मान रखा है। अतः तुम यहाँ से राजधानी जाकर माताओं को मेरे तापस कार्य में लगे रहने की सूचना दे देना और मेरी असमर्थता बताकर उनके पुत्रोचित कार्य का सम्पादन तुम्हीं कर देना ।

**विशेष**--इस व्रत का पारण पुत्र के हाथ से दिए हुए ग्रास से होता है, सो तुम ही हमारी ओर से उनके मुख में ग्रास देकर पारणा करा देना, क्योंकि तुम भी तो उनके माने हुए प्रिय पुत्र ही हो ।

**विदूषक**--हे मित्र ! तुम कहीं मुझे राक्षसों के भय से डरकर भागा हुआ तो, नहीं समझ लोगे ?

**राजा**--**( हँसकर )** हे महाब्राह्मण ! तुम्हारे जैसे वीर को डरकर भागा हुआ मैं कैसे समझ सकता हूँ । तुम तो बड़े वीर हो ।

---

पाठा०--१. त्वभार्याभिः पुत्र इव गृहीतः । २, तपस्विकार्यव्यग्रतामस्माकं निवेद्य ।

**विदूषकः**——तेण हि राआणुअ विअ गच्छिदुं इच्छामि [ तेन राजानुज इव गन्तुमिच्छामि । ]

**राजा**——तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्वानानुयात्रिकांस्त्वयैव सह [1]प्रस्थापयामि।

**विदूषकः**—तेन हि जुवराओ म्हि दाणिं संवुत्तो [ तेन हि युवराजोऽस्मीदानीं संवृत्तः ]।

**राजा**—( स्वगतम् ) चपलोऽयं वटुः। कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तःपुरेभ्यः कथयेत्। भवतु एनमेवं वक्ष्ये। ( विदूषकं हस्ते गृहीत्वा, प्रकाशम् ) वयस्य, ऋषिगौरवादाश्रमं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायां ममाभिलाषः। पश्य—

---

**विदूषकः**——तेन = तेन कारणेन राजानुज इव = राजकनिष्ठभ्रातेव गन्तुमिच्छामि = व्रजितुं वाञ्छामि सकलसैनिकादिपरिवारसहितं मां प्रेषयेति भावः।

**राजा**—तपोवनोपरोधः सैनिकानां हस्तितुरगादीनां कोलाहलेन तपोवनशान्तिभङ्गः तपोवनबाधापरिहरणीयः = दूरीकरणीयः इति = हेतोः सर्वान् = सकलान् अनुयात्रिकान्= सहागतान् सैनिकान् त्वया=भवता माढव्येन एव सह=साकं प्रस्थापयामि = विसर्जयामि। तेन तव राजभ्रातृवद् गमनाभिलाषस्य साफल्यं सम्भवत्येवेत्याशयः।

**विदूषकः**—तेन = कारणेन हि = निश्चयेन इदानीम् = अधुना युवराजः = संवृत्तः = जातः अस्मि = भवामि।

**राजा**——अथ राजा दुष्यन्तो विदूषकस्य प्रस्थाने कश्चिद् दोषमाशङ्क्य ( स्वगतं = निजमनसि ) चिन्तयन्ति–चपलः = अनवस्थितः, वाच्यावाच्यविचाररहितः इति यावत् अयं = एषः वटुः = ब्राह्मणकुमारः कदाचित् = कदापि अस्मत्प्रार्थनां=मदभिलाषं मृगयावृत्तान्तप्रसङ्गेन शकुन्तलावृत्तान्तमपि अन्तःपुरेभ्यः = अन्तःपुरिकाभ्यः सुन्दरीभ्यां = महादेव्यै च कथयेत् = वदेदिति सम्भावयामि एवं सति दाक्षिण्यभङ्गः स्यादिति भावः। तत्परिहारं विमृशन्नाह—भवतु = अस्तु उपायजातः, एवं चपलं विदूषकमेवं = इत्थं वक्ष्ये = वदिष्यामि। ( विदूषकं = माधव्यं हस्ते गृहीत्वा = तस्य करं स्वकरेण गृहीत्वा = अनेनात्मनः सख्यं व्यञ्जयन् मनसि किञ्चिद् विभाव्य रहस्यनिर्भेदं निराचिकीर्षया

---

**विदूषक**—तो मैं राजा के छोटे भाई की तरह शान से ( खूब ठाट बाट से ) राजधानी में जाना चाहता हूँ।

**राजा**—ठीक है, मैं अपने साथ के सभी सैनिक और दरबारियों को तपोवन में विघ्न न हो इसलिए तुम्हारे साथ ही राजधानी को भेज देना चाहता हूँ। अतः इनके साथ तुम खूब ठाट बाट से मेरे भाई की तरह ही जा सकते हो।

**विदूषक**—तब तो मैं इस समय युवराज ही हो गया।

**राजा**—**(मन ही मन)** यह ब्राह्मण बालक तो बड़ा ही चञ्चल स्वभाव का है, कहीं शकुन्तला वाली बात महल की रानियों से तथा माताओं से जाकर न कह दे। अच्छा, इससे ऐसा कहता हूँ। **( विदूषक का हाथ पकड़कर, प्रगट में )** मित्र माधव्य ! मैं तो ऋषियों के कार्य की गुरुता को देखकर ही आश्रम में जा रहा हूँ। सचमुच किसी तापस कन्या में मेरा मन नहीं लगा है क्योंकि देखो—

---

पाठा०—१. प्रेषयामि।

**क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो [1]मृगशावैः सममेधितो जनः ।**
**परिहासवि[2]जल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः ॥ १८ ॥**

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

**इति द्वितीयोऽङ्कः ।**

---

तमावर्जयति प्रकाशम् = स्पष्टम् ) वयस्य = मित्र ! ऋषिगौरवात् = मुनीनां समादरात् आश्रमं = तपोवनं गच्छामि = यामि । न खलु = नैव, निश्चयेन सत्यं = वास्तविकं तथ्यमेवं तापसकन्यकायां = कण्वकुमार्यां शकुन्तलायां मम = अस्य जनस्य नागरस्य चक्रवर्तिनः = विदग्धस्य राज्ञो दुष्यन्तस्य अभिलाषः = प्रेमास्ति । पूर्वं तु सर्वं मया केवलमुपहासेनैव प्रोक्तमिति भावः । पश्य = त्वमवलोकय, विचारय ।

**अन्वयः**—वयं क्व परोक्षमन्मथः मृगशावैः समम् एधितः जनः क्व । सखे ! परिहास-विजल्पितं वचः परमार्थेन न गृह्यताम् ।

शकुन्तलाविषयकमनुरागं प्रच्छादयन् तस्याः स्वाभिलाषानर्हत्वं च समर्थयन् राजा दुष्यन्तो विदूषकं ब्रूते—**क्व वयमिति** । वयं अनेकराजोपचाराभ्यस्ता नानावैदग्धीकुशला नागरा महाकुलीना सम्राट्पदे स्थिताश्च क्व = कुत्र परोक्षमन्मथः = मनो मथ्नातीति मन्मथः = कामः सोऽपि परोक्षः = अप्रत्यक्षे । यस्य स परोक्षमन्मथः = अज्ञातकामकथः मृगाणां शावैः मृगशावैः = हरिणशिशुभिः = समं = सह एधितः = वर्द्धितः पालितः जनः = शकुन्तलारूपः क्व अनयोर्महदन्तरमेतत् । अतो नास्माकमीदृशे तापसबालिकारूपेऽनुचिते कर्मणि कथमपि प्रवृत्तिः सम्भाव्यते ।

**सखे ! = मित्र !** परिहासेन=उपहासेन विजल्पितं=पूर्वं कथितं वचः=वाक्यं **परमार्थेन**= तत्त्वतः सत्यमेतदिति न गृह्यताम् = नैव त्वया मन्यताम् । शकुन्तलानुरागकथावर्णनादिकं सर्वं वचो मत्कृतं काल्पनिकं परिहासोक्तमेव, न याथार्थ्यमित्यवगन्तव्यमित्याशयः ।

**अयं भावः** मित्र माधव्य ! शकुन्तलानुरागादिविषयक-यद्वचनं मया प्राक्कथितं तत्सर्वं परिहासोक्तमेव ज्ञेयम् । त्वमेव तावद् विचारय अनेककलाकुशलानामवरोधजनानां भोक्तारः रसिकावतंसाः वयं राजानः कुत्र ? जन्मकालत एव जनकजननीभ्यां वने परित्यक्ता कण्वेन महर्षिणा धर्मबुद्ध्या स्वकुटीरमानीय स्वाश्रमस्थैः मृगबालकैः साकं संवर्द्धिता आरण्यवृत्तिः कामकलानभिज्ञा च कुत्र तस्मादेतत् मदुक्तं सर्वमेव काल्पनिकं न वास्तव-मिति मन्तव्यम् ॥ १८ ॥

( इति = एवमालप्य सर्वे = सकलाः निष्क्रान्ताः = रङ्गमञ्चाद् बहिर्गताः )

---

कहाँ तो हम वैदग्ध्य प्रिय नागरिक और कहाँ मृग शावकों के साथ पली हुई भोली-भाली तपस्वियों की कन्यायें । भला, हमारा इनसे मेल कैसा, इसलिए हे मित्र ! हमने तो हँसी-परिहास में ही तुमसे शकुन्तला के बारे में यों ही गढ़कर बातें कह दी थीं । उन्हें तुम सच्ची न समझ लेना । यह तो केवल एक विनोद = हँसी-मजाक ही था । इसमें सचाई कुछ भी नहीं है ॥ १८ ॥

**( सब बाहर निकल जाते हैं )**

**॥ द्वितीय अङ्क समाप्त ॥**

---

पाठा०—१. मृगशावैः सह वर्धितो जनः ।　　२. विकल्पितं ।

# तृतीयोऽङ्कः

## अथ विष्कम्भकः

( ततः प्रविशति कुशानादाय यजमानशिष्यः )

**शिष्यः**—( विचिन्त्य, सविस्मयम् ) अहो महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः। प्रविष्टमात्र एव तत्रभवति सारथिद्वितीये राजनि निरुपद्रवाणि नः कर्माणि प्रवृत्तानि भवन्ति।

**का कथा बाणसंधाने ज्याशब्देनैव दूरतः।**
**हुंकारेणेव धनुषः स हि [1]विघ्नानपोहति ॥ १ ॥**

---

अथास्मिन् तृतीयेऽङ्के प्राक् शिष्यस्य ततो राज्ञः तदनन्तरं च सखीजनसहितायाः शकुन्तलाया गौतम्याश्च प्रवेशं कथयितुं महाकविः कालिदासः वस्तुसंघटनाय विष्कम्भकनामकमर्थोपक्षेपकमाचरन् सकुशहस्तमुनिशिष्यप्रवेशमाह-- **तत इति।**

( तत = तदनन्तरं यजमानस्य = यज्ञकर्तुः गुरोः शिष्यः तच्छात्रः कुशान् = दर्भान् आदाय—गृहीत्वा प्रविशति = रङ्गमञ्चे दृश्यते )।

**शिष्यः**—( विचिन्त्य = विचारमभिनीय विस्मयेन सहितं सविस्मयं = साश्चर्यम् ) गुरोराज्ञया ब्रह्मकर्मोपयुक्तान् कुशान् आदाय यज्ञशालां गच्छन् शिष्यः मध्येमार्गं राज्ञो दुष्यन्तस्य महान्तं प्रभावं विचिन्त्य साश्चर्यं स्वगतमाह—अहो = आश्चर्ये महान् = विशालः अनुभावः = प्रभावो यस्य स महानुभावः = महाप्रभावः पार्थिवः = भूपतिः दुष्यन्तः। प्रविष्टमात्रे = प्रविश्यान्तरागते समागतवति एव सारथिद्वितीये=सूतमात्रपरिजने तत्रभवति = श्रीमति राजनि = नृपे निर्गतानि = दूरीभूता उपद्रवाः = विघ्नाः येषां तानि निरुपद्रवाणि नः = अस्माक कर्माणि = यज्ञादि-कृत्यानि = प्रवृत्तानि = आरब्धानि निष्पन्नानि भवन्ति। राज्ञः प्रभावातिशयात् निर्विघ्नानि सर्वाणि कृत्यानीति भावः। एतेन राज्ञ आगमनेन मुनिजनयज्ञपरिपन्थिरक्षो विद्रावणानन्तरं निर्विघ्नं यज्ञकर्मसमाप्तिः प्रदर्शिता।

**अन्वयः**—बाणसन्धाने का कथा, स हि धनुषो हुङ्कारेणैव ज्याशब्देन दूरत एव विघ्नान् अपोहति।

राज्ञो दुष्यन्तस्य महाप्रभावं वर्णयन् यजमानशिष्यो ब्रूते—**का कथेति। बाणसन्धाने**= धनुषा बाणस्य योजने का कथा = किमुच्यताम्, शरसन्धानस्य प्रसङ्ग एव नापेक्ष्यते, स= राजा दुष्यन्तो हि = निश्चयेन धनुषः = चापस्य हुङ्कारेण—निग्रहसूचकेन हुमिति शब्दोच्चारणमात्रेण ज्याशब्देन = ज्यायाः = मौर्व्या=शब्देन=टणत्काररूपेण ध्वनिता दूरत एव दूरस्थितान् एव विघ्नान् = यज्ञविघ्नकारिकृतान् उपद्रवान् अपोहति = निरस्यति दूरी

---

**( कुशों को लिये हुए ऋषि के शिष्यों का प्रवेश )**

**शिष्य—( आश्चर्यपूर्वक, कुछ सोचकर )** अहो, महाराज दुष्यन्त तो बड़ा ही प्रतापी है, क्योंकि सारथि के साथ इनके आश्रम में प्रवेश करते ही इष्टि और यज्ञ आदि सभी कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो गये, ठीक ही हैं—

बाण के सन्धान की तो बात ही क्या है ? केवल इनके धनुष के टंकार मात्र से ही इन्होंने राक्षस आदि समस्त विघ्नों को दूर कर दिया ॥ १ ॥

---

पाठा०—१. विघ्नान्व्यपोहति।

यावदिमान्वेदिसंस्तरणार्थदर्भानृत्विग्भ्य [1]उपनयामि। (परिक्रम्यावलोक्य च आकाशे) प्रियंवदे कस्येदमुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीपत्राणि नीयन्ते। (आकर्ण्य) किं ब्रवीषि। आतपलङ्घनाद्बलवदस्वस्था शकुन्तला तस्याः शरीर-निर्वापणायेति। तर्हि त्वरितं गम्यताम्। यत्नादुपचर्यताम्। सखि सा खलु तत्र भगवतः कण्वस्य कुलपतेरुच्छ्वसितम्। अहमपि तावद्वैतानिकं शान्त्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि। (इति निष्क्रान्तः)

---

करोति। एवं च राज्ञा दुष्यन्तेनाऽनायासं सर्वे विघ्नानिरस्ताः, इष्टिश्च निर्विघ्नतया समाप्तेति भावः। अहो राज्ञो दुष्यन्तस्य प्रभावातिशयं यस्मिन् प्रविष्टेऽनायासेन एवं सर्वं कार्यं सम्पन्नम्। अत्र समासोक्तिगर्भा उत्प्रेक्षाकाव्यलिङ्गं चालङ्कारौ छन्दश्चानुष्टुवेव ॥१॥

प्रस्तुतं स्वकृत्यमनुसन्धायाह—यावदिति' यावत् = प्रथमं एतान् = मद्धस्तगतान् वेद्यां संस्तरणं=प्रसारणमर्थः=प्रयोजनं यस्य तत् वेदिसंस्तरणार्थं कुशकण्डिकार्थं वेदिका-प्रसारणप्रयोजनं दर्भान् = कुशान् ऋत्विग्भ्यः याजकेभ्यः उपनयामि = उपहरामि समर्पयामि (परिक्रम्य = प्रदक्षिणं कृत्वा अवलोक्य = दृष्ट्वा च, आकाशे = निरवकाशे) रङ्गभूमौ प्रियम्वदामदृष्ट्वापि प्रियम्वदे ! कस्य = कस्य जनस्य उपभोगाय इदम् = एतत् उशीर-कल्पितमनुलेपनं उशीरानुलेपनं = वीरणमूलकमङ्गानुलेपनं मृणालवन्ति=मृणालनालसहि-तानि नलिनीपत्राणि = कमलिनीदलानि नीयन्ते = उपह्रियन्ते। (आकर्ण्य = आकर्णन-मभिनीय) आकर्णनाभिनयस्तु पार्श्वानतेन शिरसा स्तब्धेन नेत्रेण च भवति। यथोक्तम्—

> 'पार्श्वस्याभिमुखं यत्तु तत्पार्श्वानतमुच्यते।
> प्रयोज्यमाकर्णनादौ पार्श्वस्थस्यावलोकने॥
> यत्तु स्यान्निश्चयपुटं स्तब्धनेत्रं प्रचक्षते।'

किं ब्रवीषि—किं कथयसि किमेवमभिदधासि आतपलङ्घनात् = ग्रीष्मप्राप्तेः बलवत् = नितराम् अवस्था = न स्वस्था, प्रकृतिस्था शकुन्तला तस्याः = शकुन्तलायाः शरीर-निर्वापणाय = शरीरस्य = देहस्य निर्वापणाय = सन्तापशान्त्यै शरीरसन्तापशमनाय इति= एवं त्वं वदसि तर्हि = तदा त्वरितं = शीघ्रम् गम्यताम् = व्रज्यताम्। यत्नादुपचर्यताम्= सावहितं चिकित्स्यताम्। सखि–आलि प्रियम्वदे ! सा = शकुन्तला तत्र भगवतः =श्रीमतः कुलपतेः = कण्वस्य = कण्वमहर्षेः उच्छ्वसितम्=जीवनम्। अहं = अयमपि जनः तावत् = प्रथमं वितानस्य = यज्ञस्येदं वैतानिकं = यज्ञसम्बद्धं शान्त्यर्थमुदकं जलमिति शान्त्युदकम्

---

अच्छा, तबतक मैं वेदी संस्कार विशेष = कुशकण्डिका के निमित्त इन कुशाओं को होताओं को जाकर दे दूँ (**कुछ दूर चलकर सामने आकाश की ओर देख**) अरी, प्रियम्वदे ! यह खश का अनुलेपन = अङ्गराज तथा मृणालतन्तु से युक्त कमलिनी के पत्ते किसके लिए ले जा रही हो? (**कान में हाथ लगाकर**) कह रही हो कि धूप में चलने से शकुन्तला अत्यधिक अस्वस्थ हो गई हैं। उसके शरीर की दाह दूर करने के निमित्त ही ये शीतल उपचार की सामग्री ले जा रही हूँ। अच्छा, प्रियम्वदे ! देखो, शकुन्तला का बड़े उपाय से उपचार करना आवश्यक है, क्योंकि वह हमारे कुलपति महर्षि कण्व के प्राण के समान प्रिय है। तथा मैं भी इसके अभिषेक के लिए गौतमी के द्वारा यज्ञ का आमन्त्रित शान्ति जल भेज रहा हूँ (**निकल जाता है**)।

---

पाठा०—१. उपहरामि।

[ इति विष्कम्भकः । ]

अभिमन्त्रितं रक्षाजलम् अस्यै=शकुन्तलायै गौतमीहस्ते=गौतम्याः करे विसर्जयिष्यामि= प्रेषयिष्यामि ( इति=एवं कथयित्वा निष्क्रान्तः=निर्गतः ) ।

( इति=समाप्तः विष्कम्भकः )

तृतीयाङ्कादारम्य एतत्पर्यन्तो भूत-भविष्यदंशसूचकः कथ्यमानो विष्कम्भकः अयं चार्थोपक्षेपको भवति । तदुक्तं साहित्यदर्पणे—

'अर्थोपक्षेपकाः पञ्च विष्कम्भकप्रवेशकौ । चूलिकाङ्कावतारोऽथ स्यादङ्कमुखमित्यपि ।।'

तत्र विष्कम्भकलक्षणं यथा—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ।।'

प्रकृते च अनेन राज्ञो दुष्यन्तस्याश्रमोपस्थितिः, ऋषीणां यज्ञकार्यनिर्वहणञ्च भूतोऽर्थः, शकुन्तलाविरहावस्थावर्णनं शीतलोपधारादिकं गौतमीसमागमश्च भविष्यदर्थः सूचितः । स चायं विष्कम्भको मध्यमपात्रप्रयोजितत्वाच्छुद्धविष्कम्भकः । तदुक्तं—

'मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ।।'

संस्कृतभाषिपात्रप्रयोजितः शुद्धो विष्कम्भकः, संस्कृतप्राकृतभाषिपात्रप्रयोजितस्तु सङ्कीर्णो विष्कम्भकः ।

अपि चान्यत्र तल्लक्षणमेवमुक्तमस्ति—

'तत्र विष्कम्भको भूतभाविवस्त्वंशसूचकः । अमुख्यपात्ररचितः संक्षेपैकप्रयोजनः ।।'
'द्विधा स शुद्धो मिश्रश्च मिथः स्यान्नीचमध्यमैः । शुद्धः केवलमध्योऽयमनेकानेककृतो द्विधा ।।'

विष्कम्भकोऽयमेकमध्यमपात्रप्रयुक्तत्वात् शुद्ध एवास्ति ।

[ विष्कम्भक समाप्त । ]

**विशेष**—अङ्कों में रङ्गमञ्च पर साक्षात् नहीं देखने में योग्य किन्तु आवश्यक भूत, भविष्य की बातों की संक्षिप्त सूचना देने को विष्कम्भक कहते हैं । जैसे—

'वृत्त-वर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ।।'

इस विष्कम्भक के द्वारा भूत-भविष्य दोनों कथाओं का संकेत किया गया है जैसे तृतीय अङ्क के आरम्भ में राजा दुष्यन्त के द्वारा राक्षसों से मुनियज्ञ की रक्षा तथा तदनन्तर शकुन्तला का विरहावस्था का वर्णन है ।

यहाँ सार्वभौम सत्ता सम्पन्न नरेश राजा दुष्यन्त का गौरव गाथा है कि उनका प्रताप इतना गौरवशाली है कि यहां उनके आते ही सब विघ्न दूर हो गये, धनुष पर बाण रखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी ।

यज्ञ करने के निमित्त साफ-सुथरा की गई जमीन को वेदी कहते हैं, उसकी सुरक्षा के निमित्त उसके चारों तरफ कुछ बिछा कर जो यज्ञीय कर्म करते हैं उसे कुशकण्डिका कहते हैं । कुशकण्डिका भी यह रक्षा का एक शास्त्रीय उपाय है ।

नाटकों में किसी पात्र के न होने पर भी 'क्या करते हो', यह कहकर बिना सुने हुए भी सुनने का अभिनय कर उसे उद्धृत करना धनञ्जयकृत दशरूपक ग्रन्थ में आकाशभाषित कहा गया है—

'किं ब्रवीष्येवमित्यादि बिना पात्रं ब्रवीति तत् । श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम् ।।'

किसी नायक के विरह से सन्तप्त विरहिणी नायिका के सन्ताप को शान्त करने के लिए खश तथा नालसहित कमल के पत्तों का उपयोग किया जाता है । खश का लेप प्रायः स्तनों पर किया

( ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा )

**राजा**—( निःश्वस्य )

**जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम् ।**
**अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम् ॥ २ ॥**

---

अथ मिथः प्ररूढरागयोः शकुन्तलादुष्यन्तयोः समदनावस्थावर्णनेन विप्रलम्भशृङ्गारं प्रदर्शयिष्यन् कविकालिदासः पूर्वसूचितस्य नायकस्य प्रवेशमाह—**तत इति ।**

( ततः=शिष्यः निर्गमनान्तरं कामयमानावस्थः—कामयमानस्य = कामिनः, विरहिणः अवस्था = दशा इवावस्था यस्य स कामयमानावस्थः विरहव्याकुलो राजा दुष्यन्तः प्रविशति = रङ्गभूमौ आविर्भवति ) ।

**राजा**—( निःश्वस्य = दीर्घं निःश्वासम् उत्सृज्य ) ।

ससैनिकं विदूषकं राजधानीं संप्रेष्य मुनियज्ञविघ्नाश्च निवार्य मुनिभिः विश्रामार्थमादिष्टो राजा दुष्यन्तः रहसि शकुन्तलामेवानुध्यायन् मदनज्वालावलीढहृदयः प्रियाप्राप्त्युपायं विमृशन्नपि नाधिगच्छन् सोत्कण्ठमाह—**जाने इति ।**

**अन्वयः**—( अहम् ) तपसो वीर्यं जाने, सा बाला परवती ( अस्ति ) इति मे विदितं तथापि इदं हृदयं ततो निर्वर्तयितुं न अलमस्मि ।

अनुयात्रिकैः सार्द्धं विदूषकं स्वराजधान्यां संप्रेष्य मुनिजनकार्यं च सम्पाद्य तैं विश्रामाद्यर्थमादिष्टो रहसि स्थितो राजा दुष्यन्तः सोत्कण्ठं शकुन्तलामेवानुध्यायन् तद्विषये विमृशति—**जाने तपसो वीर्यमिति ।** अहं = दुष्यन्तः तपसः = तपश्चरणस्य वीर्यं = प्रभावं जाने = बलाद् यदि शकुन्तलां हरामि तदा नूनं कण्वशापापहतो भवेयमिति वेद्मि सा = अनुभूतकटाक्षमन्दस्मिता मय्यनुरागिणी बाला = षोडशवार्षिकी शकुन्तला परवती पराधीना गुरुजनपरतन्त्रा । इति = एवं मे = मम विदितम् = ज्ञातम् । स्वयं मय्यनुरक्ताऽपि सा ऋषिशापभयेन बलादपि हर्तुं न शक्यते, अप्रगल्भत्वाद् गुरुजनपरतन्त्रत्वाच्च सा स्वयमागमिष्यतीत्यपि न सम्भवति । एवं चेत्तर्हि तत्कथैव त्याज्येत्याह—**अलमिति ।** तथापि = तदपि इद हृदयं = स्वकीयं मनः ततः = शकुन्तलातो निर्वर्तयितुं = अपसारयितुं परावर्तयितुं दूरीकर्तुं न अलं = समर्थः अस्मि = न शक्नोमि ।

अयं भावः—यदि प्रभुशक्तिसम्पन्नोऽहं शकुन्तलां बलादपहरामि तर्हि निग्रहानुग्रहसमर्थाः तपस्विनः कदाचिन् मां शापेन दहेयुः । मय्यनुरागिणी अपि सा शकुन्तला गुरुजन-

---

जाता है तथा कमल के भींगे पत्तों को चादर की तरह बिछा दिया जाता है एवं उससे हवा भी की जाती है ।

**( इसके बाद विरही जैसी अवस्था में राजा दुष्यन्त का रंगमंच पर प्रवेश )**

**राजा—( आह भरकर )**

मैं मुनियों की तपस्या का प्रभाव खूब जानता हूँ ( वे शाप देकर परिवार सहित भस्म करने की शक्ति रखते हैं ) और यह बाला शकुन्तला कण्व के पराधीन है ( उनकी आज्ञावर्तिनी है ) यह भी जानता हूँ । अतः कण्व की आज्ञा के विना इसके साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध करना विपत्ति से खाली नहीं है । पर क्या करूँ ? मेरा मन तो उसकी ओर उसी प्रकार नहीं हट रहा है जैसे नीची भूमि से ऊपर की ओर जल ॥ २ ॥

**विशेष**—'तपो हि दुरतिक्रमः' के अनुसार तप की शक्ति सबसे प्रबल मानी जाती है। इसलिए राजा दुष्यन्त सोच रहे हैं कि शकुन्तला को बलात्कार से अपने पास रख लेने पर महर्षि कण्व

( मदनबाधां निरूप्य ) भगवन् कुसुमायुध, त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्या-मतिसंधीयते कामिजनसार्थः। कुतः—

**तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-**
**र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।**
**विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै-**
**स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि ॥ ३ ॥**

---

पराधीनत्वान्न स्वयं मामुपस्थातु शक्नोति । अत्राप्रस्तुतप्रशंसा-विशेषोक्तिः अतिशयो-क्तिश्चालङ्काराः वृत्तं चार्या ॥ २ ॥

अथ विप्रलम्भपरिपोषाय राज्ञो दशां वर्णयन्नाह—**मदनबाधामिति** । ( मदनस्य = कामस्य बाधां=पीडां निरूप्य = नाटयित्वा ) उन्मादवशान् मदनं पुरोऽवस्थितं सम्भावयन् सबहुमानमुपालभमानो राजा प्राह—भगवन् कुसुमायुध ! = श्रीमन् कामदेव ! त्वया = कामेन चन्द्रमसा = शशिना च विश्वसनीयाभ्यां = विश्वस्ताभ्याम्, सौम्यत्वात्—आह्लाद-जनकत्वाच्च विश्वासयोग्याभ्यां कामिजनसार्थः=सर्वकामुकजनसमूहः अतिसन्धीयते = प्रतार्यते । न त्वहमेव अपितु सर्वेऽपि कामिनः त्वया चन्द्रमसा च सम्भूये त्वमेव वञ्च्यन्ते । तस्माद् युवां प्रसिद्धौ प्रतारकौ इति भावः । कुतः = यतः ।

मदनचन्द्रमसोः कामिजनातिसन्धात् त्वं समर्थयन्नाह —**तवेति** ।

**अन्वयः**—तव कुसुमशरत्वं, इन्दोः शीतरश्मित्वं, इदं द्वयं मद्विधेषु अयथार्थं दृश्यते । इन्दुः हिमगर्भैः मयूखैः अग्निं विसृजति त्वं कुसुमबाणान् अपि वज्रसारी करोषि ।

शकुन्तलाविरहेण सातिशयं क्लिश्यन् सोन्माद इव शिथिलविवेको राजा दुष्यन्तः कामं चन्द्रं चोपालभते—**तवेति** । तव = भवतः, कुसुमायुधस्य, मदनस्य कुसुमशरत्वं—कुसुमः = पुष्पं शरः = बाणो यस्या स तस्य कुसुमशरस्य भावः कुसुमशरत्वं = पुष्पात्मक-बाणवत्वं इन्दयति = आह्लादयतीन्दुः तस्य इन्दोः = आह्लादनस्वभावस्य चन्द्रमसः शीतरश्मित्वं = शीताः = हिमाः रश्मयः = किरणा यस्य स शीतरश्मिः तस्य भावः तत्त्वं शीतरश्मित्वं = शैत्यकारित्वेन तापस्यापनोदनकिरणवत्त्वम्, इदं द्वयम् = एतत् पूर्वोक्तम्

---

शायद नाराज होकर मेरा अनिष्ट कर देंगे । क्योंकि मेरे सैन्यबल की अपेक्षा उनमें तपोबल प्रबल है और उनके अधीन रहने के कारण शकुन्तला स्वयं मेरे पास आ नहीं सकती । दूसरी बात यह है कि मेरा मन शकुन्तला के पास चला गया है और वहीं उसमें इतना लीन हो गया है, कितना भी मैं चाहता हूँ कि पुनः मेरे पास लौट आये पर वह वहां से आना नहीं चाहता ।

**( काम बाधा का अभिनय करके )** मन को मन्थन करने वाले भगवान् कामदेव ! जब आप कुसुमायुध हैं, तब आपका यह तीखापन कैसे ? पुष्प के बाणों को चलाकर भी आप कामीजनों को इतनी भीषण व्यथा कैसे पहुँचाते हैं ? आप और शीतल **( कुछ स्मरण करके )** ओह ! ठीक रश्मि चन्द्रमा भी है । विश्वसनीय होकर भी आप और चन्द्रमा दोनों कामीजनों को धोखा देते हो, क्योंकि—

आपका नाम कुसुमायुध और चन्द्रमा का नाम शीतरश्मि है, किन्तु आपलोगों के ये दोनों नाम हमारे जैसे विरही लोगों के लिए अन्वर्थ नहीं हैं, क्योंकि चन्द्रमा तो अपनी किरणों से हिमगर्भ अग्नि, बरसाता हैं और आप भी नाम से कुसुमायुध होकर वज्र से भी कठोर तीखे बाण विरहियों पर बरसाते हो । अतः आपके तथा चन्द्रमा के मीठे-मीठे नामों को सुनकर विश्वास में विरही लोग धोखा खा जाते हैं ॥ ३ ॥

**विशेष**—कामदेव का नाम कुसुमायुध है और चन्द्रमा की किरणें शीतल हैं अतः वे शीत-

( सखेदं परिक्रम्य )क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि निरस्तविघ्नैः सदस्यैरनुज्ञातः श्रमक्लान्तमात्मानम् विनोदयामि। ( निःश्वस्य ) किं नु खलु मे प्रिया दर्शनादृते शरणमन्यत्। यावदेनामन्विष्यामि। ( सूर्यमवलोक्य ) इमामुग्रातपवेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना शकुन्तला गमयति। तत्रैव तावद् गच्छामि। ( परिक्रम्य संस्पर्शं रूपयित्वा ) अहो प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः।

---

उभयमपि तव कुसुमशरत्वमिन्दोः शीतरश्मित्वं च मद्विधेषु = मत्सदृशावस्थेषु विरहिषु अयथार्थं—विपरीतार्थं दृश्यते = अनुभूयते। इन्दुः = चन्द्रमाः हिमं = तुहिनं गर्भे = मध्ये येषां ते तैः हिमागर्भैः = तुषारमध्यैः मयूखैः = किरणैः अग्निं = सर्वाङ्गीणतापजनकं वह्निं विसृजति = किरति त्वं = कुसुमबाण इति व्यपदिष्टः कामः कुसुमबाणान् = कुसुमात्मकत्वेन सौम्यान् = आह्लादकान् स्वीयशरान् अपि वज्रसारीकरोषि वज्रस्य = कुलिशस्य सार इव सारो बलं येषां यद्वा अवज्रसान् वज्रसान् करोषीति वज्रसारी करोषि अथवा वज्रवत् = कुलिशवत् सारीकरोषि दृढीकरोषि। वज्रस्येव कुसुमेषु काठिन्यमाधाय तैः सारभूतैः कामिनः प्रहरसीत्यहो ते वञ्चनचातुरीत्यर्थः।

**अयं भावः**—भगवन् कुसुमायुध ! मुधैव त्वं पुष्पबाण उच्यते किञ्च चन्द्रोऽप्यसौ वृथैव शीतरश्मिर्निगद्यते। युवयो. कुसुमशरत्व-शीतरश्मित्वे द्वे अपि मादृशेषु विरहिषु जनेषु वाढं विपरीतार्थे एव प्रतीयेते। यद्यसौ चन्द्रमा शीतरश्मि: तर्हि कथं स्वकिरणैरनलमभिवर्षति ? एवमेव भगवन् कामदेव ! त्वमपि बहिर्दृष्ट्या कुसुमाकरानपि स्वीयान् शरान् कुलिशवत्तीक्ष्णान् मर्मच्छिदश्च कुरुषे। अत्र काव्यालिङ्गरूपक-विरोधाभास-परिणामोपमा छेकवृत्यनुप्रासा अलङ्कारा: मालिनीछन्दश्च ॥ ३ ॥

( सखेदं = खेदसहितं परिक्रम्य किञ्चिच्चलित्वा ) मदनक्लेशं सोढुमसमर्थः स्वचित्तविनोदो चिन्तयन्नाह—क्व=कुत्र कस्मिन् देशे उपविश्य नु खलु = वितर्के संस्थिते = समाप्ते कर्मणि = कार्ये निरस्तविघ्नैः सदस्यैः = यज्ञसभाया ऋत्विग्भि: अनुज्ञातः अनुमतः श्रमक्लान्तं = यज्ञविघ्ननिवारणजन्यपरिश्रमेण खिन्न आयासश्रान्तं, आत्मानं = शरीरं विनोदयामि = क्लेशमपहरामि ( निःश्वस्य = दीर्घनिःश्वासमुत्सृज्य ) किम् = नु खलु मे = मम प्रियदर्शनात्=शकुन्तलावलोकनात् ऋते=विना शरणम्=आश्रय:, अन्यं = अपरं यावत् प्रथमम् एनां = शकुन्तलाम् अन्विष्यामि = गवेषयामि मृगये ( सूर्यं = भास्करम् अवलोक्य = दृष्ट्वा ) एनां=एताम् उग्रः = प्रचण्डः आतपः = सूर्यतेजो घर्मो यस्यां तथाभूतां

---

रश्मि कहे जाते हैं, किन्तु ये दोनों विरही स्त्री-पुरुषों को विपरीत प्रभाव दिखाते हैं। इसलिए राजा दुष्यन्त ने दोनों को ऐसा कहा है।

**( खेद के साथ कुछ चलकर )** यज्ञ के विघ्न दूर हो जाने पर अब मुझे विश्राम करने के लिये तपस्वियों ने आज्ञा दे दी है। अतः मैं अपने खिन्न और व्याकुल मन को कहां बहलाऊँ तथा अपनी प्रिय शकुन्तला को देखे विना मेरे चित्त को शान्ति किसी उपाय से नहीं मिल सकती। अतः मैं उसे ढूढ़ता हूँ **( ऊपर आकाश की ओर देखकर )** इस तीव्र ताप में दोपहर के समय तो मेरी प्रिया शकुन्तला अपनी सखियों के साथ प्रायः लतामण्डपों से आच्छन्न मालिनी नदी के तीर पर ही समय बिताती है। अच्छा, तो मैं फिर वहीं चलता हूँ। **( घूम कर ठण्डी हवा लगने का अभिनय करके )** अहो ! यह स्थान तो सुन्दर एवं सुगन्धित हवा से बड़ा ही मनोरम है।

शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम् ।
अङ्गैरनङ्गतप्तैरविरलमालिङ्गितुं[1] पवनः ॥ ४ ॥

( परिक्रम्यावलोक्य च ) अस्मिन्वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे संनिहितया तथा भवितव्यम् । तथा हि ( अधो विलोक्य )

---

वेलां = समयमिति उग्रातपवेलाम् = प्रखरातपवद् मध्यंदिनम्, प्रायेण लतावलयवत्सु = लतामण्डलमण्डितेषु मालिनीतीरेषु = मालिनीनदीतटभागेषु ससखीजना = आलिजन-सहिता शकुन्तला = गमयति = कृच्छ्रेणातिवाहयति । तत्रैव = तस्मिन्नेव स्थाने तावद् गच्छामि = व्रजामि ( परिक्रम्य = प्रदक्षिणं कृत्वा संस्पर्शं = स्पर्शसुखम् रूपयित्वा = नाटयित्वा ) अहो = आश्चर्यम् प्रकृष्टः = श्रेष्ठश्चासौ वातः = वायुः प्रवातः यद्वा प्रकृष्टे वातः यत्र स प्रवातः तेन सुभगः = रम्यः प्रवातसुभगः अयं = एषः उद्देशः = स्थानम् ।

अन्वयः—अरविन्दसुरभिः मालिनीतरङ्गाणां कणवाही पवनः अनङ्गतप्तैः अङ्गैः अविरलम् आलिङ्गितुं शक्यम् ।

वायुस्पर्शसुखमनुभूय तस्य प्रदेशस्य वातसुभगत्वमुपपादयति—शक्यमिति । अर-विन्दस्य = कमलस्य सुरभिः = गन्ध इव गन्धो यस्य सः यद्वा अरविन्दवत् सुरभिः अरविन्दसुरभिः = कमलसुगन्धिः, मालिन्याः नद्याः तरङ्गाणां = लहरीणां कणवाही— कणान् = लेशान् शीकरान् वहति तच्छीलः कणवाही पवनः = वायुः अनङ्गेन = कामेन तप्ताऽपि अनङ्गतप्ताः तैः अनङ्गतप्तैः = मदनसञ्जातसन्तापैः अङ्गैः = शरीरावयवैः अवि-रलम् = अवच्छिन्नं, निरन्तरम् आलिङ्गितुं = मया आश्लेषं कर्तुम् उपगूहितुम्, शक्यम् = योग्यम् । एतेनास्य प्रदेशस्य कामिजनसेवनयोग्यत्वं पवनस्य सुरभित्वं, मन्दत्वं, शीतलत्वं च ध्वनितम् ।

अयं भावः—विकसितसरोजसौरभं समादाय सुगन्धपरिपूर्णमालिनीतरङ्गजलकणं वहन् मन्दसञ्चारी पवनः अनङ्गतप्तानि ममाङ्गानि क्षणं सुखयतीति मया नूनं चलितुं योग्यः । अत्र समाहित-समासोक्ति-वृत्यनुप्रास-छेकानुप्रास-सङ्करालङ्काराः जातिश्चार्या ॥ ४ ॥

( परिक्रम्य = इषद् गत्वा, अवलोक्य दृष्ट्वा च ) अस्मिन् = अत्र वेतसैः = वानीरैः परिक्षिप्ते—आवृते लतानां = वल्लरीणां मण्डपे = विताने वेलबल्लीविरचितमण्डपे तया=

---

शीतल और सुगन्धित यह वन का पवन मुझे बहुत ही सुहावना लग रहा है। तथा इनके सेवन से काम सन्ताप सन्तप्त मेरे शरीर को एवं मन को भी यहाँ बड़ी शान्ति मिल रही है ॥ ४ ॥

**विशेष**—दुष्यन्त यह सोचकर कि यज्ञ रक्षा कार्य सम्भव हो जाने पर मुनियों की अनुमति पाकर परिश्रम से थके शरीर का क्लेश कहाँ दूर करूँ ? दीर्घ श्वास भर कर शकुन्तला के सिवा मेरा क्या शरण है ? जरा इसे ढूढूँ, सूर्य को देखकर इस धूप के समय वह मालिनी तट पर लता-मण्डप में होगी। वहीं चलूँ। कामतापों से सन्तप्त पुरुषों के लिए शीतल, मन्द और सुगन्ध वायु अधिक सुखद प्रतीत होता है। यहां मालिनी तरंगों के सम्पर्क से वायु का शीतल कणवाही से मन्द तथा अरविन्द के स्पर्श से सुगन्धित प्रतीत होती है। यद्यपि ऐसी हवा कामियों का उद्दीपक है, पर दुष्यन्त को यह सुखद प्रतीत हो रही है। इसलिए अपने मनोविनोद के लिए जाकर देखता है और अपनी भावना व्यक्त करता है।

---

पाठा०—१. तप्तैर्निर्दयमालिङ्गितुं ।

**अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात् पश्चात् ।**
**द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा ॥ ५ ॥**

यावद्विटपान्तरेणावलोकयामि । ( परिक्रम्य तथा कृत्वा सहर्षम् ) अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम् । एषा मे मनोरथप्रियतमा सुकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते । भवतु लताव्यवहितः श्रोष्याम्यासां विश्रम्भकथितानि । ( इति विलोकयन् स्थितः )

---

शकुन्तलया सन्निहितया उपस्थितया भवितव्यम् = भूयेत । तथा हि = यतः । अधो विलोक्य = नीचैर्दृष्ट्वा ।

**अन्वयः**—पाण्डुसिकते अस्य द्वारे पुरस्तात् अभ्युन्नता पश्चात् जघनगौरवात् अवगाढा अभिनवा पदपङ्क्तिः दृश्यते ।

वेतसलतामण्डपे शकुन्तलासद्भावं समर्थयन् राजा दुष्यन्तो ब्रवीति—**अभ्युन्नतति**। **पाण्डुसिकते** पाण्डुरबालुकाकणसनाथे **अस्य** = वेतसलतामण्डपस्य **द्वारे** = द्वारप्रदेशे मुखभागे **पुरस्तात्** = पादाग्रभागे, अङ्गुल्यादौ **अभ्युन्नता** = समुन्नता **पश्चात्** = पार्ष्णिभागे **जघनस्य गौरवात्** नितम्बभागस्य पृथुत्वात् **अवगाढा** = निम्ना, अवखाता, गभीरा **अभिनवा** अचिरोद्धता च **पदपङ्क्तिः** = पादन्यासप्रतिबिम्बश्रेणिः चरणचिह्नश्रेणिः **दृश्यते** = विलोक्यते, नेत्रव्यापारविषयी क्रियते ।

नूनमस्मिन् लतामण्डपे शकुन्तला सद्य एव प्रविष्टेत्यनुमीयते, यतो हि श्वेतसिकताकणमयेऽस्य द्वारभागे अविकला पदपङ्क्तिर्दृश्यते या च अङ्गुल्यादिभागे समुन्नता पार्ष्णिप्रदेशे च गभीराऽस्ति । तस्मात्तर्कये यत्तस्या एव इदं पादादि चिह्नम् । अत्रानुमान-स्वभावोक्ति-पर्यायोक्ति-श्रुत्यनुप्रास-समासोक्तिश्चालङ्काराः आर्या च छन्दोऽस्ति ॥ ५ ॥

**यावत् विटपान्तरेण**=वृक्षशाखावकाशेन शाखामध्यव्यवधानेन **अवलोकयामि** = पश्यामि ( **परिक्रम्य तथा कृत्वा सहर्षम्**=किञ्चिच्चलित्वा विटपान्तरेण लतामण्डपे तथा पूर्वनिर्दिष्टां शकुन्तलामवलोक्य सहर्षम् ) **अये** = अहो **नेत्रनिर्वाणं**–नेत्रयोः = लोचनयोः निर्वाणमिति

---

**( घूमकर और देखकर )** बेंत से घिरे हुए इस लतामण्डप में भी वह मेरी प्रिया शकुन्तला उपस्थित होगी, क्योंकि—**( नीचे देखकर )**

इस लतामण्डप के साफ स्वच्छ गौरवर्ण बालुका से युक्त द्वार पर आगे से ऊँची और पीछे से जघनस्थभार के कारण दबी हुई ताजी पदपङ्क्ति = पैरों के चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़ रही हैं ॥ ५ ॥

**विशेष**—राजा दुष्यन्त ने द्वार पर शकुन्तला के शरीर और छापकी गहराई देखकर अनुमान लगाया कि वह पर्णशाला के अन्दर गयी हुई है । विरहावस्था में राजा को सभी चीजें शकुन्तला से सम्बद्ध दीख रही है । सफेद बालू पर पैरों की छाप स्पष्ट पड़ी हुई हैं जिसे देखकर राजा का अनुमान शकुन्तला विषयक हो रहा है । स्त्रियों का नितम्ब भाग पुरुषों की अपेक्षा अधिक भारी होता है जिससे उनकी छाप गहरी होती है । देह का भार प्रमुख रूप से एड़ियों पर ही पड़ता है । उनकी छाप गहरी होती है ।

अच्छा, तबतक मैं इसे वृक्ष की शाखाओं की आड़ से देखता हूँ । **( देखकर हर्ष के साथ )** ओह, मेरी आँखें इसे देखकर तृप्त हो गई, मैं नेत्रों का परम सुख पा गया । यह मेरी मनोरथ विषयीभूता=अभीष्टा प्राणप्रिया शकुन्तला पुष्पों से अलंकृत शिलातल पर लेटी हुई है । और इसकी

---

पाठा०--१. मुपास्यते । शृणोमि तावदासां ।

( ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला )

**सख्यौ**—( उपवीज्य सस्नेहम् ) हला सउंदले अवि सुहेदि दे णलिणीपत्तवादो। [ **हला शकुन्तले अपि सुखयति ते नलिनीपत्रवातः** ]।

**शकुन्तला**—किं वीअअंति मं सहीओ [ **किं वीजयतो मां सख्यौ** ]।

( सख्यौ विषादं नाटयित्वा परस्परमवलोकयतः )

---

नेत्रनिर्वाणं = लोचनसुखम् नयनानन्दः लब्ध-प्राप्तम्। एषा=पुरःस्थिता मे = मम मनोरथ-प्रियतमा = सङ्कल्पप्रिया, कुसुमैः = पुष्पैः सह सकुसुमां सकुसुमम् आस्तरणं यत्र तत् सकुसुमास्तरणं यद्वा कुसुमानामास्तरणेन = उत्तरच्छदेन सहितं सकुसुमास्तरणं = पुष्पास्तीर्णम् कल्पिता पुष्पशय्या शिलायाः पदमिति शिलापदम् प्रशस्तां शिलां = शिलाफलकम् अधिशयाना = अधितिष्ठन्ती सखीभ्यां प्रियम्वदानसूयाभ्यां द्वाभ्यामालिभ्याम् अन्वास्यते = उपचर्यते = सेव्यते। भवतु = अस्तु लताव्यवहिता = लताभिर्व्यवहित एव आसां=तिसृणां शकुन्तलानसूयाप्रियम्वदानाम्, विश्रम्भे = विश्वासे कथितानि = प्रोक्तानि भणितानि इति विश्रम्भकथितानि = निःशङ्कालापान् रहस्यवार्ताः शृणोमि = आकर्णयामि। ( इति=इत्थम् मनसि अभिधाय, विलोकयन् = अवलोकयन् स्थितः = उपविष्टः )।

अथ दुष्यन्तविषयकानुरागेण पीडयमानाया निदाघव्यपदेशेन मालिनीतटमण्डपोपविष्टायाः ससखीजनायाः शकुन्तलायाः प्रवेशमाह—तत इति।

( ततः = तदनन्तरं यथोक्तव्यापारा यथोक्तः = पूर्वोक्तः व्यापारः = कार्यं यस्याः सा यथोक्तव्यापारा = मदनबाधया शिलाफलकमधिशयाना शकुन्तला सखिभ्यां द्वाभ्यामालिभ्यामनसूयाप्रियम्वदाभ्याम् सह = साकं प्रविशति = रङ्गभूमौ दृश्यते )

**सख्यौ**—( उपवीज्य = व्यजनं दोलयित्वा स्नेहेन सहितं सस्नेहं = सप्रेम ) हे सखि। = शकुन्तले ! अपि = किम् नलिनीपत्रवातः = नलिन्याः = कमलिन्याः पत्रस्य = दलस्य वातः = पवनः ते = तव सुखयति = सुखमुत्पादयति।

**शकुन्तला**—हे सख्यौ = आली किं मां शकुन्तलां भवत्यौ वीजयतः = पवनं कुरुतः। किमर्थं मां वीजयतः, तापशान्तेरभावेन निष्फलमेतत्।

( सख्यौ = आली, प्रियम्वदानसूये विषादं = क्लेशानुभूतिं नाटयित्वा अभिनयेन प्रदर्श्य परस्परम् = अन्योन्यम् [ अनसूयाप्रियम्वदां प्रियम्वदां चानसूयाम् ] अवलोकयतः = पश्यतः )

---

दोनों सखियाँ इसके पास बैठी हुई हैं। अच्छा, मैं इस लता की आड़ में होकर इनके आपसी विश्वसनीय बातचीत को सुनूँ। ( **उनकी ओर देखते हुये ठहर जाते हैं** )।

**( इसके पश्चात्, पूर्वोक्त अवस्था में दोनों सहेलियों के साथ शकुन्तला प्रवेश करती है )**

**दोनों सखियाँ**—( **कमल के पत्तों से हवा करके** ) सखि शकुन्तले ! कमलिनी के पत्तों की हवा तुम्हें आराम तो दे रही है न ?

**शकुन्तला**—सखियों ! तुम लोग व्यर्थ इस कमलिनी के पत्ते से मुझे क्यों हवा कर रही हो, मुझे तो इससे कुछ भी शान्ति नहीं मालूम हो रही है।

**( दोनों सखियाँ बड़े खेद के साथ निराशा भाव से परस्पर भाव से देखती हैं )**

राजा—बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला दृश्यते। (सवितर्कम्) तत्किमयमातप-दोषः स्यात् उत यथा मे मनसि वर्तते। (साभिलाषं निर्वर्ण्य) अथवा कृतं संदेहेन—

**स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं**
**प्रियायाः साबाधं [1]किमपि कमनीयं वपुरिदम्।**
**समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-**
**र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु॥ ९॥**

---

शकुन्तलायाः तादृशीमवस्थामवलोक्य सख्योः विषादः किमावां कुर्म इति अनिष्ट-शङ्कया च परस्परावलोकनम्। विषादनाटनं च धूतेन शिरसा, विषण्णया च दृष्ट्या भवति। तल्लक्षणं च—

'पर्यायेण शनैस्तिर्यग्गतमुक्तं धुतं शिरः।
या दृष्टिः पतितापाङ्गा विस्तारितपुटद्वया।
निमेषिण्यस्ततारा च विषण्णा सा विवादिनी॥'

राजा—तथाविधां शकुन्तलामवलोक्य सख्योश्चालापमाकर्ण्य शकुन्तलायाः सन्तापाति-शयमवगच्छन् राजा प्राह—बलवत् = अधिकं, अत्यन्तम् अस्वस्थं = अप्रकृतिस्थं शरीरं = देहो यस्याः सा अस्वस्थशरीरा = अप्रकृतिस्थवपुः शकुन्तला दृश्यते = अवलोक्यते। (सवितर्कं = वितर्केण = विकल्पने सह सवितर्कम्) तत = तर्हि किम् = अयं पूर्वोक्तः आतपस्य = सूर्यतेजसो घर्मस्य दोषः = विकारः स्यात् = भवेत् उत = अथवा यथा मे = मम मनसि = चेतसि, विचारे वर्तते = विद्यते, तथा अस्ति यथाहमेतद्विषयकेण कामेन पीडितोऽस्मि तथैवेयमपि मद्विषयेणानुरागेण कामेन पीडिताऽस्तीत्यर्थः (अभिलाषेण सहितं साभिलाषं = सतृष्णम् निर्वर्ण्य = निरीक्ष्य) अथवा = यद्वा कृतम् = अलं सन्देहेन = शङ्कया कृतं = अलम्। अत्र सन्देहो नोचित इति भावः।

**अन्वयः**—स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं साबाधं प्रियाया इदं वपुः किमपि कमनीयं (अस्ति) कामं मनसिजनिदाघप्रसरयोः तापः समः ग्रीष्मस्य युवतिषु एवं सुभगमपराद्धं न तु।

मालिनीतीरवर्तिनि लतामण्डपे कुसुमशयने शयानां सखीभ्यां वीज्य मानामस्वस्थ-शरीरा शकुन्तलामवलोक्य तदस्वास्थ्यं ग्रीष्ममूलकं काममूलकं वेति विकल्पयन् राजा-दुष्यन्तो—विचारयति—**स्तनन्यस्तोशीरमिति**। स्तनयोः = कुचयोः न्यस्तं = निहितं

---

**राजा**—यह शकुन्तला तो बहुत बीमार मालूम पड़ती है (**विचार करता हुआ**) तो, क्या लू लग जाने से इसकी यह दशा हुई है, या जैसा मेरे मन में है (**बड़ी चाह के साथ देखकर**) या. शङ्का करना बेकार है। मेरे प्रति इसका अनुराग ही इसके इस अस्वास्थ्य का कारण है, क्योंकि—

मेरी प्रिया शकुन्तला के स्तनों पर खश सूखी हुई है, हाथों में ढीले-ढीले मृणाल से वलय बँधे हुए हैं। यद्यपि मेरी प्रिया का शरीर तो अवश्य पीडित है, पर इसके शरीर की कमनीयता तो वैसी की वैसी ही बनी हुई है। यद्यपि काम का सन्ताप तथा ग्रीष्म का सन्ताप समान ही हो सकता है किन्तु लू लगने से शरीर का सौन्दर्य और कमनीयता जैसी की तैसी कभी नहीं रह सकती। अतः

---

पाठा०—१. तदपि कमनीयं।

**प्रियम्वदा**—( जनान्तिकम् ) अणसूये तस्स राएसिणो पढमदंसणादो आरहिअ पज्जुस्सुआ विअ सउंदला। किं णु खु से तण्णिमित्तो अअं आतंको भवे [ **अनसूये, तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सुकेव शकुन्तला। किं नु खलु तस्यास्तन्निमित्तोऽयमातङ्को भवेत्** ]।

---

स्थापितं, उशीरम् = नलदानुलेपः यत्र तत् स्तनन्यस्तोशीरम् = पयोधरोत्सङ्गनिविष्टवीरण-मूलम् शिथिलितं = शिथिलं जातं मृणालस्य = कमलस्य एकं = मुख्यं वलयं = कङ्कणं यस्मिन् तत् शिथिलितमृणालैकवलयं = सन्तापशुष्कशिथिलविसैकवलयम् एकं वलयमेकवलयं आसमन्ताद् बाधा आबाधा आबाधया = सर्वव्यापकपीडया सह वर्तमानं साबाधम् = सपीडं, व्यथितम् प्रियायाः = शकुन्तलाया इदम् = एतम् पुरोदृश्यमानं वपुः = शरीरं किमपि = लोकोत्तरं चमत्कारि कमनीयं = मनोहरम् दर्शनीयम् (अस्ति) कामं = यद्यपि मनसिजनिदाघप्रसरयोः मनसि जायते इति मनसिजः = मदनश्च निदाघः = ग्रीष्मश्च मनसिजनिदाघौ तयोः प्रसरौ = व्यापकौ तयोः मनसिजनिदाघप्रसरयोः = कामग्रीष्मवेगयोः तापः = दाहः समः = तुल्यः तथापि ग्रीष्मस्य निदाघस्य युवतिषु = तरुणीषु एवं = दृश्यमान प्रकारेण सुभगं = सुन्दरं अपराद्धं = अपराधः न तु ग्रीष्मतापतप्तस्य वपुषः नेदृशी कमनीयता भवति। स्तनयोः सन्तापातिशयप्रतीत्या कामकृत एवायं परिताप इति भावः।

**अयं भावः**—स्वभावशीतलयोरपि शकुन्तलायाः पयोधरयोः उशीरानुलेपनं निहितं दृश्यते, अलङ्कारान्तरा सहिष्णुरियं मृणालवलयमात्रं परिधत्ते तदपि शुष्कं जातम्। एतामवस्थापन्नापीयं नैसर्गिकं सौन्दर्यं न परित्यजति। यद्यपि ग्रीष्मर्तुजन्यः कामजन्यश्च सन्तापः समान एव दृश्यते तथापि ग्रीष्मजन्ये परितापे एतादृशसौन्दर्यहानिर्भवति। तस्मात् कामजन्य एवायं परितापः प्रतीयते।

अस्मिन् पद्ये अप्रस्तुतप्रशंसा-व्यतिरेक-अनुमान-व्यतिरेक-विभावना-विशेषोक्ति-सन्देह-संकर-संसृष्टि-छेक-वृत्ति-श्रुत्यनुप्रासा अलङ्कारा शिखरिणी च छन्दः॥ ६॥

**प्रियम्वदा**—(जनान्तिकं = त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्य) अथ शकुन्तलायाः सन्तापस्य शिशिरोपचारादिना परिशान्तिमपश्यन्ती तस्य राजविषयककाममूलकत्वमेव संभावयन्ती प्रियम्वदा अनसूयामाह—अनसूये = सखि! तस्य राजर्षेः = दुष्यन्तस्य प्रथमदर्शनात् = प्रथममिलनात् आरभ्य = प्रभृति पर्युत्सुकेव = उत्कण्ठितेव शकुन्तला किं नु खलु तस्याः = शकुन्तलायाः तन्निमित्तः तत् = दर्शनं स दुष्यन्तो वा निमित्तं = कारणं यत्र स तन्निमित्तः =

---

इसकी दशा तो काम के सन्ताप से ही है, ग्रीष्म के सन्ताप से नहीं। क्योंकि युवतियों पर ग्रीष्म का सन्ताप ऐसा रुचिकर नहीं होता, जैसा कि काम का होता है॥ ६॥

**विशेष**—शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त सोचते हैं कि युवती स्त्रियों पर ग्रीष्म का प्रभाव उतना रुचिकर नहीं होता जितना कामकृत होता है। अतः शकुन्तला की सुन्दरता कुछ अपूर्व होने से यह कामकृत ही है।

**प्रियम्वदा—( अलग से अनसूया के प्रति )** हे अनसूये! उस राजर्षि दुष्यन्त के पहले पहल देखने के साथ ही यह शकुन्तला इस प्रकार उत्कण्ठित और आतुर हो गई है, अतः दूसरे कारण इसकी यह दशा नहीं हो सकती, किन्तु इस दशा का कारण तो उसी राजर्षि दुष्यन्त का प्रथम दर्शन ही है। अतः यह उन पर आसक्त होकर ही इस प्रकार कामसन्तापजन्य दशा से अस्वस्थता को प्राप्त हो रही है।

**अनसूया**—सहि मम्मवि ईदिसी आसंका हिअअस्स। होदु पुच्छिस्सं दाव णं ( प्रकाशम् ) सहि पुच्छिदव्वासि किंवि। बलवं खु दे संदावो [ सखि, ममापीदृश्याशङ्का हृदयस्य। भवतु प्रक्ष्यामि तावदेनाम्। सखि प्रष्टव्यासि किमपि। बलवान् खलु ते संतापः ]।

**शकुन्तला**— पूर्वार्धेन शयनादुत्थाय ) हला! किं वत्तुकामासि [ हला किं वक्तुकामासि ]।

**अनसूया**—हला सउंदले अणब्भंतरा खु अम्हे मदणगदस्स वुत्तंतस्स। किदु जादिसा इदिहासणिबंधेसु कामअमाणाणं अवस्था सुणीअदि तादिसीं दे पेक्खामि। कहेहि किंणिमित्तं दे संदावो। विआरं खु परमत्थदो अजाणिअ अणारंभो पडिआरस्स [ हला शकुन्तले अनभ्यन्तरे खल्वावां मदनगतस्य वृत्तान्तस्य। किन्तु यादृशीतिहासनिबन्धेषु कामयमानानामवस्था श्रूयते तादृशीं तव पश्यामि। कथय किंनिमित्तं ते संतापः। विकार खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य ]।

---

राजर्षिनिमित्तकः, अयं = एषः आवाभ्यामनुभूयमानः आतङ्कः = सन्तापपीडा भवेत् = स्यात्। दुष्यन्तदर्शनकृत एवास्याः सन्तापप्रसर इति भावः।

**अनसूया**—प्रियम्वदोक्तमनुवदती अनसूया प्राह—सखि ! = आलि ! ममापि हृदयस्य = चेतसः ईदृशी = एवंविधा एव आशङ्का = वितर्कः अस्ति, अहमप्येवं सम्भावयामि ( प्रकाशं = स्पष्टम् ) सखि != शकुन्तले किमपि = ईषत् प्रष्टव्या = जिज्ञासितव्या असि = वर्तसे—भवतीं किमपि प्रष्टुमिच्छामीत्यर्थः। अतिशयेन बली बलवान् = प्रबलतमः ते = तव सन्तापः = तापः पीडा।

**शकुन्तला**—( पूर्वार्द्धेन = शरीरपुरोभागेन शयनात् = आस्तरणात् उत्थाय = देहमुत्थाप्य ), हला = हे सखि ! किं वक्तुकामा असि = भवसि यद् वक्तुमिच्छसि तद् वद।

**अनसूया**—हला = हे सखि शकुन्तले ! आवां = अहं प्रियम्वदा च खलु = निश्चयेन मदनगतस्य = कामतत्त्वस्य वृत्तान्तस्य—वार्ताया अविद्यमानमभ्यन्तरं तत्त्व ययोस्ते अनभ्यन्तरे = अज्ञातरहस्ये, मनुकन्यकत्वानां कामवृत्तान्तस्यानभिज्ञे स्वः, किन्तु इतिहासनिबन्धेषु = पुराणप्रबन्धेषु कामयमानानां = विरहिणां यादृशी अवस्था = दशा श्रूयते, पुराणप्रबन्धेषु शिष्यैर्वाचितेषु कुलपतिना तद्व्याख्याने क्रियमाणे च श्रवणमात्रेण सा अवस्था आवाभ्यां ज्ञायते इत्यर्थः। आवयोः ईदृगवस्थाया न स्वयमनुभवो नापि कोऽपि ईदृग्विधः

---

**अनसूया**—सखी प्रियम्वदे ! मेरे मन में भी यही आशंका हो रही है कि यह राजा दुष्यन्त पर आसक्त है। अच्छा इससे ही पूछती हूँ ( **प्रगट में** ) सखी शकुन्तले ! मैं तुमसे कुछ पूछना चाहती हूँ। क्या तेरे अङ्गों में बड़ी पीड़ा हो रही है ?

**शकुन्तला**—( **शरीर के ऊपरीभाग से बिस्तर से उठकर** ) हे सखी ! क्या कहना चाहती हो।

**अनसूया**—सखि शकुन्तले ! हमलोग वनवासी होने के कारण काम-कथा से तो सर्वथा अपिरिचित ही हैं। तो भी इतिहास-पुराणों में कामी जनों की अवस्था का जैसी वर्णन सुना जाता है वैसी ही तेरी भी अवस्था मालूम होती है। अतः बता यह कामसन्ताप तुझे किस कारण से हो रहा है ? क्योंकि वास्तवरूप में रोग के कारण को ठीक-ठीक समझे बिना उसका प्रतिकार नहीं हो सकता है।

राजा—अनसूयामप्यनुगतो मदीयस्तर्कः । न हि स्वाभिप्रायेण मे दर्शनम् ।

शकुन्तला—( आत्मगतम् ) बलव खु मे अहिणिवेसो । दाणिं वि सहसा एदाणं ण सक्कणोमि निवेदिदुं [ बलवान्खलु मेऽभिनिवेशः । इदानीमपि सहसैतयोर्न शक्नोमि निवेदयितुम् । ]

प्रियंवदा—सहि सउंदले सुठ्ठु एसा भणादि । किं अत्तणो आतंकं उवेक्खसि । अणुदिअह खु परिहीअसि अगेहि । केवलं लावण्णमई छाआ तुमं ण मुचेदि [ सखि शकुन्तले, सुष्ठ्वेषा भणति । किमात्मन आतङ्कमुपेक्षसे । अनुदिवसं खलु परिहीयसे अङ्गैः । केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति ।

---

प्रत्यक्षतो दृष्टः इति किमिदमिति निश्चेतुमावां न पारयाव इति भावः । तादृशीं कामिजनावस्थासदृशीं तव = भवत्या दशां पश्यामि = अवलोकयामि, कथय = वद किं निमित्तं = किं निदानं ते = तव सन्तापः = पीडा । खलु = यतः परमार्थतः = वस्तुतः विकारं = रोगकारणं अज्ञात्वा = अविदित्वा प्रतीकारस्य = उपायस्य चिकित्सायाः अनारम्भः = उपक्रमो न सम्भवति । तदुक्तं 'व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानम्' ।

राजा—अनसूयोक्तं श्रुत्वा सन्तुष्यन् राजा स्वगतमाह—मदीयः तर्कः काममूलक एवायं सन्ताप इति विकल्पः, मम युक्तिः अनसूयामपि अनुगतः=अनुसरति । अनसूयाऽप्येवमेव तर्कयतीत्यर्थः । स्वाभिप्रायेण = स्वाभिप्रायानुसारि मे = मम कामिनः दर्शनं = ज्ञानं तर्क इति यावत् । कामिनामेवंविधतर्कसम्भवेऽपि अकामिना जनेनापि एवमेव सम्भावनादिति भावः । अनेन स्वतर्कस्य प्रामाणिकत्वावगमेन राज्ञो हर्षो द्योत्यते ।

शकुन्तला—(आत्मगतं = स्वगतम्) बलवान् = दृढः खलु = निश्चयेन मे = मम अभिनिवेशः = आग्रहः यत् इदानीम् = अस्मिन् काले, एतस्यामवस्थायामपि सहसा = अकस्मात् एतयोः = एताभ्यां निवेदयितुं = सूचयितुं न शक्नोमि = न पारयामि ।

प्रियम्वदा—अथ शकुन्तला लज्जमानां सम्भाव्य तस्या लज्जामपनेतुं तन्मुखाच्च कृत्स्नं वृत्तान्तं ज्ञातुं प्रयतमाना प्रियम्वदा प्राह—सखि = शकुन्तले ! एषा = अनसूया सुष्ठु भणति = सयुक्तिकं वदति किम् = केन कारणेन आत्मनः = स्वस्य आतङ्कं = रोगम् पीडाम् उपेक्षसे = उपेक्षां कुरुषे, अनुदिवसं = प्रतिदिनम् खलु=निश्चयेन अङ्गैः=अवयवैः परिहीयसे = प्रतिक्षणं क्षीणा भवसि, केवलं लावण्यमयी = लावण्ययुक्ता छाया = कान्तिः त्वां = भवतीं न मुञ्चति = न परित्यजति । उक्तं च कामकृतसन्तापेषु एव खलु ईदृशी दशा भवति नातपलङ्घने, तत्र लावण्यस्यापि विलयादिति भावः । लावण्यलक्षणं च—

'मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा । प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥'

---

राजा—अनसूया ने भी मेरा तर्क समझ लिया है । निश्चय ही मेरा अनुमान व्यक्तिगत अभिप्राय से प्रेरित नहीं है ।

शकुन्तला—( मन ही मन ) सखि, यह सन्ताप बहुत बड़ा और गूढ है । अतः इसके कारण को सहसा मैं कहने में असमर्थ हूँ ।

प्रियम्वदा—सखि शकुन्तले ! यह अनसूया ठीक कह रही है । अपने इस कष्ट के कारण को क्यों छिपा रही हो । देखो, प्रतिदिन तुम क्षीण होती जा रही हो । तुम्हारे शरीर में अब केवल लावण्य की छाया सुन्दरता ही अवशिष्ट है ।

**राजा**—अवितथमाह प्रियंवदा । तथा हि—

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावंसौ छविः [1]पाण्डुरा ।
शोच्या च प्रियदर्शना च [2]मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी ॥ ७ ॥

---

**राजा**—अथ सख्योः संवादेन आत्मविषयं शकुन्तलाया कामं ज्ञात्वा प्रहृष्टो राजा दुष्यन्तः प्रियम्वदामनुवदति—वितथं = मिथ्या न वितथमवितथम् अवितथं = सत्यमाह-प्रियम्वदा शकुन्तला प्रियसखी तथा हि ।

**अन्वयः**—आननं क्षामक्षामकपोलं, उरः काठिन्यमुक्तस्तनम्, मध्यः क्लान्ततरः अंसौ प्रकामविनतौ, छविः पाण्डुरा, मदनक्लिष्टा इयं पत्राणां शोषणेन मरुता स्पृष्टा माधवी लता इव शोच्या च प्रियदर्शना आलक्ष्यते ।

तस्याः शकुन्तलाया तादृशीमवस्थामवलोक्य प्रियम्वदोक्तमेव समर्थयन् राजा दुष्यन्तः विचिन्तयति—**क्षामक्षामेति** । अस्या आननं = मुखं क्षामक्षामौ = अतिकृशौ कपोलौ = गण्डस्थलौ यस्मिन् तत् क्षामक्षामकपोलम् = कृशतरकपोलम्, उरः = वक्षःस्थलम् काठिन्येन = कठोरत्वेन मुक्तौ = रहितौ स्तनौ = कुचौ यस्मिन् तत् काठिन्यमुक्तस्तनम् मध्यः = कटिभागः क्लान्ततरः = अतिशयेन क्लान्तः, परिम्लानः अंसौ = स्कन्धभागौ प्रकामविनतौ = प्रकाममत्यन्तं विनतौ नम्रौ, बाहू सातिशयं ग्लानाविति भावः, छविः = देहकान्तिः पाण्डुरा = शैत्यसमन्विता, श्वेता, मदनेन क्लिष्टा मदनक्लिष्टा = कामपीडिता स्मरशरसन्तप्ता, इयं = शकुन्तला पत्राणां = दलानां शोषणेन = शातनेन शोषकेन मरुता = पश्चिमवायुना स्पृष्टा = ताडिता माधवीलता = माधवीवल्लरी वासन्ती विसतन्तु इव = यथा शोच्या = उक्तकार्कश्यवैवर्ण्यादिना दयनीया, प्रियं दर्शनं यस्याः सा प्रियदर्शना = लावण्यानपायात् नयनलोभनीयाकृतिश्च, मनोज्ञदर्शना च आलक्ष्यते = आभाति, परिलक्ष्यते ॥ ७ ॥

**अयं भावः**—अस्या मम प्रियायाः शकुन्तलाया यदाननादिकं मनोमोदप्रदं दृश्यतेस्म तदिदानीं वैवर्ण्यमावमापन्नं दृश्यते । तस्मादियं कामकृश्यमानापि शकुन्तला पाण्डुपत्रा माधवी लतेव लोभनीयाकृतिरेव दृश्यते ।

**अत्र पद्ये** उपमा-अनुप्रास-स्वभावोक्ति-काव्यलिङ्गालङ्काराश्छन्दश्च शार्दूलविक्रीडितम् ।

---

**राजा**—प्रियम्वदा बिलकुल ठीक कह रही है ।

इसका कपोलस्थल = मुख क्षीण होकर मुरझा जाने से परिम्लान हो गया है, स्तनों के ढीले पड़ जाने से इसकी छाती भी परिक्षीण हो गई हैं। मध्यभाग भी इसका क्लान्त हो गया है। कन्धे भी नीचे की ओर झुक गये हैं और देह की कान्ति भी पीली पड़ गयी है। अतः काम सन्ताप से परिक्षीण होकर यह शोचनीय होते हुए भी उसी प्रकार देखने में सुन्दर मालूम पड़ती है जिस प्रकार पत्तों के मुर्झा जाने से पवन के झकोरों से सूखती हुई माधवीलता ॥ ७ ॥

**विशेष**—इसके कपोल और कमर पतले हो गये है, कन्धे अधिक झुक गये हैं, विरह के स्तनमण्डल ढीले पड़ गये हैं। चेहरे में सफेदी आ गयी है। अतः यह शकुन्तला अब शोच्य हो गयी है। माधवी चमेली की एक जाति है। वसन्त सभी पुष्पों को विकसित कर देता है। लताएँ सभी दुबली होती है, माधवी लता ही सौन्दर्य के निमित्त प्रसिद्ध है ।

---

पाठा०—१. पाण्डरा । २. मदनग्लानेयमालक्ष्यते ।

शकुन्तला—सहि कस्स वा अण्णस्स कहइस्सं। आआसइत्तिआ दाणिं वो भविस्सं [ सखि, कस्य वाऽन्यस्य कथयिष्यामि। आयासयित्रीदानीं वां भविष्यामि ]।

उभे—अदो एव्व खु णिब्बंधो। सिणिद्धिजणसंविभत्तं हि दुक्खं सज्झवेदणं होदि [ अत एव खलु निर्बन्धः स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति ]।

राजा—पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला
नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।
दृष्टो निवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्ण-
मत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतोऽस्मि॥ ८॥

---

शकुन्तला—अथ लज्जमानापि शकुन्तला सख्योरनुरोधेन स्वस्यातङ्कहेतुं कथयितुमुपक्रमते—सखि ! = हे आलि ! कस्य वा अन्यस्य = युवाभ्यामपरस्य कथयिष्यामि = स्नेहविश्वासवत्योर्युवयोरवश्यमाख्यास्यामि यदि युवाभ्यां न कथयिष्यामि तर्हि कस्यै अन्यस्यै कथयिष्यामि, युष्मद्भिन्ना का मेऽन्तरङ्गभूतेत्याशयः इदानीं = मदातङ्कनिमित्तकथनकाले वां = युवयोः आयासयित्री = क्लेशदायिनी भविष्यामि = समसुखदुःखयोर्युवयोर्मत्पीडाश्रवणेन दुःखमेव भविष्यतीति भावः।

उभे—अत एव आवयोरायासः स्यादिति हेतोः खलु = निश्चयेन निर्बन्धः = कारणकथनाग्रहः, हठः। स्निग्धजनेषु=स्नेहास्पदेषु सखीप्रभृतिषु संविभक्तं = विभागेन समर्पितम् सह्यवेदनं = सह्या = सहनीया = वेदना = अनुभूतिः यस्य तत् सह्यवेदनं=मर्षणीयाघातम्, शिथिलं भवति = जायते। यथा कस्यापि भारवाहकस्य भारे तन्मित्रेणांशतो गृहीते तस्य भारोद्वहनदुःखं लघु भवति तथेति भावः।

राजा—मन्निमित्त एवास्या अवस्थेति निश्चिन्वानो राजा दुष्यन्तः शङ्काकातरः सन् स्वयं विमृशति—पृष्टा जनेनेति।

अन्वयः—इयं बाला समदुःखसुखेन जनेन पृष्टा ( सती ) मनोगतम् आधिहेतुं न वक्ष्यति न। अनया बहुशः निवृत्य सतृष्णं दृष्टोऽपि अत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतः अस्मि।

शकुन्तलाया आतङ्कनिमित्तमुद्दिश्य सख्योः प्रश्नमाकर्ण्य किमियमुत्तरयतीति शङ्कमानो राजा दुष्यन्तः स्वयमेव विमृशति—पृष्टा जनेनेति। इयं=एषा सखीभ्यामातङ्कहेतुं पृच्छ्यमाना बाला = षोडशवार्षिकी शकुन्तला दुःखं = क्लेशः सुखं = हर्षश्चेति समदुःखसुखे समे = तुल्ये दुःखसुखे = प्रतिकूलानुकूलवेदने यस्य तेन समदुःखसुखेन यद्वा समं तुल्यं

---

शकुन्तला—( लम्बी साँस लेकर ) हे सखियों ! तुम्हारे सिवाय मैं अपना कष्ट किससे कहूँगी, किन्तु इस सन्ताप के कारण को तुम लोगों से कहकर मैं तुम लोगों के कष्ट का ही कारण बनूँगी।

दोनों सखियाँ—हे सखि ! इसीलिये तो हम तुमसे पूरी पूरी बात करने का आग्रह कर रही हैं क्योंकि अपने स्नेही जनों को सुनाकर उनमें बाँट दिये जाने से दुःख भी कुछ सह्य हो जाता है और उसकी पीड़ा भी कुछ कम हो जाती है।

राजा—यद्यपि अपने सुख और दुःख के साथी प्रियजनों से अनुरोध पूर्वक पूछे जाने पर यह बाला अपने मन की आधि = मानसी व्यथा को अवश्य बतायेगी। अतः इसमें मुझे आतुरता ही

---

पाठा०—१. विवृत्य।

**शकुन्तला**—सहि जदो पहुदि मम दंसणपहं आअदो सो तवोवणरक्खिदा रायसी तदो आरहिअ तग्गदेण अहिलासेण एतदवत्थम्हि संवुत्ता [ **सखि, यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः स तपोवनरक्षिता राजर्षिः तत आरभ्य तद्गतेनाभिलाषेणैतद-वस्थास्मि संवृत्ता** ]।

**राजा**—( सहर्षम् ) श्रुतं [1]श्रोतव्यम्।

---

दुःखं सुखं यस्य तेन दुःखेषु सुखेषु च तुल्यमेव दुःखं सुखं चानुभवता जनेन—सखीजनेन पृष्टा = अनुयुक्ता सती मनोगतं = हृदयकोणनिगूहितम् आधिहेतुं = मानसिकक्लेशकारणं न वक्ष्यति न = अवश्यमभिधास्यत्येव ( नञ् द्वौ प्रकृतार्थदार्ढ्यं बोधयतः ) अनया = शकुन्तलया बहुशः = अनेकवारम् भृशं विवृत्य = परावृत्य सतृष्णं = साभिलाषं दृष्टोऽपि = प्रेक्षितोऽपि कृतदर्शनोऽपि अहम् अत्रान्तरे = अस्मिम् अवकाशो सखीजनप्रश्न-शकुन्तला-प्रतिवचनयोर्मध्ये श्रवणकातरतां—श्रवणे = शकुन्तलोत्तरश्रवणे कातरतां = भीरुतां गतः = प्राप्तः अस्मि = भवामि। किमियमभिधास्यति = किंनिमित्तास्या पीडेति श्रवणे कातरोऽस्मीति भावः।

अस्याः शकुन्तलाया आतङ्कनिमित्तमुद्दिश्य सखीभ्यां पृष्टा सतीयं किं कारणमभिदधातीति शङ्कया वाढमहं कातरः सञ्जातोऽस्मीति तात्पर्यम्। अत्र–काव्यलिङ्गवृत्यानुप्रासावलङ्कारौ वृत्तं च वसन्ततिलका ॥ ८ ॥

**शकुन्तला**—सखीभ्यामातङ्कहेतुं पृष्टा शकुन्तला उत्तरयति–सखि ! = हे सखि ! **यतः प्रभृति** = यत आरम्य यस्मिन् क्षणे तपोवनस्य रक्षिता तपोवनरक्षिता आश्रमरक्षकः **सः**–वृक्षसेचनकाले मया दृष्टः राजर्षिः = दुष्यन्तः मम = मे शकुन्तलायाः दर्शनस्य पन्थाः दर्शनपथः तं दर्शनपथं = लोचनगोचरम् आगतः = प्राप्तः। तत आरभ्य = ततः प्रभृति तं गतः तद्गत, यद्वा स गतः = विषयो यस्य स तद्गतेन = दुष्यन्तविषयकेण अभिलाषेण मनोरथेन एषा = इयम् अवस्था = दशा यस्याः सा एतदवस्था = ईदृक्कामदशाविकला अहं संवृता जाताऽस्मि।

**राजा**—शकुन्तलाया उत्तरमाकर्ण्य आत्मानं कृतार्थं मन्यमानो राजा दुष्यन्तः (सहर्षं-सानन्दम् ) श्रोतव्यं = श्रवणयोग्यं मदभिलषणीयं श्रुतम् = आकर्णितम्।

---

क्या है ? यह ठीक है। परन्तु इसने मुझे बार-बार घूम-घूम कर बड़े ही अनुराग से अपने प्रेमपूर्ण सतृष्ण नेत्रों से देखा है। अतः मैं इसके उत्तर को सुनने के लिए उतावला इसलिए हो रहा हूँ कि देखें यह अपने सन्ताप का क्या कारण बताती है ? ॥ ८ ॥

**शकुन्तला**—जब से तपोवन के रक्षक वे राजर्षि मेरी दृष्टि में आ गये तभी से मैं उनपर आसक्त हो गई हूँ और उनके ही विरह में मेरी आज यह अवस्था हो रही है।

**राजा**—( **हर्षपूर्वक** ) अहा, जिस बात को सुनने की मेरी इतनी व्याकुलता थी वही बात मैंने आज सुन ली। ठीक है,

---

पाठा०—१. यच्छ्रोतव्यम्।

स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः ।
दिवस [1]इवार्धश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य ॥ ९ ॥

**शकुन्तला**—तं जइ वो अणुमदं ता तह वट्टह जह तस्स राएसिणो अनुकंपणिज्जा होमि। अण्णहा अवस्सं सिंचध मे तिलोदअं। [ **तद्यदि वामनुमतं तदा तथा वर्त्तेथां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि अन्यथाऽवश्यं सिञ्चतं मे तिलोदकम्** ]।

---

**अन्वयः**—तपात्यये जीवलोकस्य अर्धश्यामः दिवस इव मे स्मर एव तापहेतुः स एव निर्वापयिता जातः ।

अथ राजा दुष्यन्तो हर्षातिरेकाद् मदनमभिनन्दयन्नभिधत्ते—**स्मर एव तापहेतुरिति।** तापस्य = ग्रीष्मस्य अत्ययः = अवसानं यस्मिन् स तस्मिन् तपात्यये = निदाघावसाने प्रावृडारम्भे जीवलोकस्य = प्राणिवर्गस्य सम्बन्धे अर्थे = अपरार्धे श्यामः = कृष्णवर्णः सच्छायः इति अर्धश्यामः दिवसः = दिनम् इव यथा मे = मम दुष्यन्तस्य स्मरः = काम एव तापस्य = एतावत्पर्यन्तमनुभूतस्य आतङ्कस्य हेतुः = कारणमिति तापहेतुः शकुन्तलाया-मनुरागोत्पादनेनेत्यर्थः, स एव = स्मर एव निर्वापयिता = निवृतेः कारयिता, शकुन्तलाया अपि मयि अनुरागमुत्पाद्य तन्मुखात्तच्छ्रवणे शान्तिदायकः जातः = संवृतः। अहो मे सौभाग्यं यत् पूर्वं सन्तापकस्वभावोऽपि स्मरः प्रियानुरागप्रापणेन सम्प्रति मे सुखप्रदः सम्पन्नः। एवं च शकुन्तलाविषये पूर्वं ममानुरागमुत्पाद्य अत्यन्तमुद्वेजकोऽप्यसौ स्मरः इदानीं शकुन्तलामुखादेव तस्याः मय्यनुरागं मां श्रावयन् मयाह्लादजनको जात इत्याशयः।

**अयं भावः**—शकुन्तलाविषये पूर्वं ममानुरागमुत्पाद्य मदनः पुनः तन्मुखादेव तस्याः मयि अनुरागं संश्राव्य ममाह्लादको जातः। तस्मादस्यावस्था मदनकृतैव ।

अत्र पद्ये विरोधाभास-काव्यलिङ्ग-उपमा-वृत्यनुप्रासा अलङ्कारा आर्यावृत्तञ्च ॥९॥

**शकुन्तला**—ततः शकुन्तलास्वाभिलाषं दुष्पूरं सम्भावयन्ती अपि तत्तापप्रतिकाराय सखीजन प्रार्थयते—तत् = तर्हि दुष्यन्तविषयकोऽभिलाषः यदि = चेत् वां = युवयोः अनु-मतम् = अभीष्टम् तदा = तर्हि तथा = तेन प्रकारेण वर्तेथाः = प्रवर्तेथाः कुरुतम् यथा = येन प्रकारेण तस्य राजर्षेः = राज्ञो दुष्यन्तस्य अनुकम्पनीया = दयनीया, कृपापात्रं भवामि =

---

जिस कामदेव ने प्रिया के विरह में मुझे इतना सन्ताप पहुँचाया वही कामदेव अब मेरे सन्ताप को दूर करने वाला भी वैसा ही हो गया है जैसे ग्रीष्म ऋतु में गर्मी का सन्ताप देने वाला भी दिन ग्रीष्म के चले जाने पर वर्षा ऋतु में मेघों से आच्छन्न होकर प्राणियों के सन्ताप को दूर करने वाला हो जाता है ॥ ९ ॥

**विशेष**—अर्धश्याम का तात्पर्य है कि कुछ धूप और कुछ छाँह या दिनके पूर्व भाग में धूप और उत्तर भाग में छाँह। ग्रीष्म ऋतु में धूप होने से ताप होता है और पुनः बदली होने पर शान्ति मिलती है। वस्तुतः शकुन्तला और दुष्यन्त को भी ताप हेतु है।

**शकुन्तला**—अतः हे सखियों, यदि तुम लोगों को भी जँचे तो ऐसा कोई उपाय करो जिससे मैं उस राजर्षि की दया-पात्र हो सकूँ। नहीं तो मैं अब उनके विरह में बच नहीं सकूँगी। मेरे मरने के बाद तुम लोग मुझे तिलाञ्जलि देना और मेरे लिए रोना, यही कार्य तुम्हारे लिए रह जायेगा।

**विशेष**—शकुन्तला के कहने का तात्पर्य है कि मैं काम से इतनी सन्तप्त हो गई हूँ कि यदि वे

---

पाठा०—१. इवाभ्रश्यामस्तपात्यते ।

**राजा**—[1]संशयच्छेदि वचनम् ।

**प्रियंवदा**—( जनान्तिकम् ) अणसूये दूरगअमन्महा अक्खमा इअं कालहरणस्स। जस्सि बद्धभावा एसा सो ललामभूतो पोरवाणं । ता जुत्तं से अहिलासा अहिणंदिदुं [ **अनसूये, दूरगतमन्मथाक्षमेयं कालहरणस्य । यस्मिन् बद्धभावैषा स ललामभूतः पौरवाणाम् । तद्युक्तोऽस्या अभिलाषाभिनन्दितुम् ।** ]

---

स्याम् । अन्यथा=नो चेत् अवश्यं=नूनं मे=मम, मह्यम्, तिलोदकं=तिलमिश्रं जलम्, तिलजलाञ्जलिं सिञ्चतं=तपर्यंतम् ।

मदभिलाषस्य युवयोरननुमतत्वे मह्यं निवापाञ्जलिजलम् निक्षिपतम्, यतः तदलाभे तद्विरहेऽहमद्य श्वो वा मरिष्याम्येवेति भावः ।

**राजा**—शकुन्तलोक्तं निशम्य प्रहृष्टो राजा आह—गुरुजनपारवश्ये मां वरिष्यति न वा कमप्यन्यं वा वरिष्यतीत्यादि संशयोच्छेदि=सन्देहनिवर्तकं, शङ्कानिवारकं वचनम् =कथनमेतत् । सत्यमियं मां कृतार्थयिष्यति नो चेद् विरहासहिष्णुतया नूनं मरिष्यतीति भावः ।

**प्रियम्वदा**—( जनान्तिकं =पृथक् ) शकुन्तलायाः प्रतिवचनेन तां दुष्यन्तविषये प्रगाढानुरागामवधार्य सविषादं सहर्षं च प्रियम्वदा प्राह—अनसूये ! इयं=एषा शकुन्तला दूरं गतः=अतिभूमिं प्राप्तः परां काष्ठां प्राप्तः मन्मथः=मदनो यस्याः सा दूरगतमन्मथा कालहरणस्य=कालक्षेपस्य न क्षमते इति अक्षमा=अयोग्या । अतः परमावाभ्यामुपेक्षायां कृतायां प्रियसमागमे कालक्षेपेण दशमदशान्तिकरूढमदनविकारा इयमवश्यं म्रियेत । कामस्य हि दश दशा भवन्ति—नयनप्रीतिः, चित्तासङ्ग, अर्थसङ्कल्पः निद्राच्छेदः, तनुता, विषयनिवृत्तिः, त्रपानाशः, उन्मादः, मूर्च्छा, मृतिश्च । तथा हि—

> नयनप्रीतिः प्रथमं चित्तासङ्गः ततोऽथ सङ्कल्पः ।
> निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः ॥
> उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः ।

तत्राद्ययावत् कामस्य सप्तमीमवस्थामियं नीता । तिस्रोऽवशिष्टाः सन्ति । यदीदानीमपि नेयमावाभ्यामुपचरिता भवेत्तदा अन्याः तिस्रोऽपि अवशिष्टाः कामावस्था अस्या अमङ्गलरूपा भवेयुरित्याशयः ।

---

राजर्षि मुझे न मिल सकेंगे तो मेरा प्राणान्त हो जायेगा । मरने के बाद उस प्रेतात्मा के, उसके बान्धव लोग उसके नाम से तिल मिश्रित जल अञ्जलि में रखकर देते हैं, उसे तिलाञ्जलि कहते हैं। यहाँ अपनी सखियों से शकुन्तला उसी का सङ्केत करती है ।

**राजा**—अहो, इसका यह वचन तो मेरे संशय को स्पष्ट ही दूर करने वाला है ।

**प्रियम्वदा—(अलग से)** हे अनसूये ! इसकी कामवासना तो बहुत दूर तक पहुँच चुकी है। अतः अब यह प्रिय सङ्गम में होने वाला ज्यादा विलम्ब सहन करने में असमर्थ है । अतः शीघ्र ही इसके प्रिय को इससे मिलाना चाहिए। जिससे इसको प्यार है, वे पुरुवंश के अलंकार स्वरूप है। इसलिए इसकी अभिलाषा अभिनन्दनीय है ।

**विशेष**—प्रियम्वदा अनसूया से कहती है कि सखि ! काम की दश-दशाओं में लज्जानाश

---

पाठा०—१. विमर्शच्छेदि ।

**अनसूया**—तह जह भणसि [ **तथा यथा भणसि** ]।

**प्रियंवदा**—( प्रकाशम् ) सहि दिट्ठिआ अणुरूवो दे अहिणिवेसो। साअरं उज्झिअ कहिं वा महाणई ओदरइ। को दाणिं सहआरं अंतरेण अदिमुत्तलदं पल्लविदं सहेदि [ **सखि, दिष्ट्यानुरूपस्तेऽभिनिवेशः। सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां सहते** ]।

**राजा**—किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते।

---

यस्मिन् दुष्यन्ते इयम् = एषा शकुन्तला वद्धभावा: = दृढीभूतप्रेमा वर्तते। सः=स हि पौरवाणाम् = पुरुवंशोद्भवानां ललामभूतः = अलङ्कारभूतः, तद् = अस्मात् कारणात् अस्या सख्याः शकुन्तलायाः अभिलाषः = लालसा अभिनन्दितुं = समर्थयितुं युक्तम् = उचितम्।

**अनसूया**—प्रियम्वदोक्तमनुमोदमाना अनसूया ब्रूते—यथा भणसि—यादृशं त्वं कथयसि तथा = तथैवास्ति।

**प्रियम्वदा**—( प्रकाशं = स्पष्टम् ) इत्थं मिथो निश्चित्य शकुन्तलामाश्वासयितुकामा प्रियम्वदा वदति—सखि! = आलि शकुन्तले! दृष्ट्या = देवैन अनुरूपः = योग्यः ते = तव अभिनिवेशः = स्नेहबन्धः, निश्चयः, युवयोः परस्परानुरूपात्तव तस्मिन् अनुरागो योग्य एवेति भावः। सागरं = सगरेण राज्ञा निर्मितं समुद्रम् उज्झित्वा = विहाय महानदी = विशाला सरित् गङ्गा, यमुना, वा कुत्र = कस्मिन् स्थाने अवतरति = याति। गङ्गायमुनासदृशी पुण्यनदी सागरं त्यक्त्वा नान्येन मिलतीति भावः। कः इदानीं = वाक्यालङ्कारे सहकारम् = आम्रवृक्षं, रसालपादपम् अन्तरेण = विना पल्लवितां = उद्भिन्नाभिनवदलाम् किसलयवतीं अतिमुक्तलतां = माधवीलतां वासन्तीवल्लरी वा सहते = रञ्जयति' स्वीकुरुते वा सहकार एव तादृशीं लतां सोढुं समर्थो नान्यः, वासन्तीलतासमानायाः शकुन्तलाया जातरागायाः सहकार इव राजनि दुष्यन्तेऽनुराग इति भावः। महानद्याः सागरगमनमिव, सहकारस्य पल्लविता वासन्ती वल्लरीसहनमिव च तव दुष्यन्ताभिलषितत्वमनुरूपमेवेति भावः।

**राजा**—सख्योर्वाक्चातुरीमनुवदन् प्रशंसामुखेन राजा दुष्यन्त आह—अत्र विषये

---

चतुर्थ अवस्था है। कुमारी होते हुए भी ताप का कारण पुरुष वासना बताना लज्जा का नाश है। इसके बाद उन्माद, मूर्च्छा और मरण अवशेष रह गया है। विलम्ब होने पर इसकी दशा और दयनीय हो जायेगी, इसकी अवस्था असाध्य हो जायेगी तो मौत तक पहुँच जा सकती है। इसलिए हम लोगों को वह उपाय करना चाहिए जिससे वे राजर्षि इससे मिल जाँय।

**अनसूया**—जैसा कह रही हो, वैसी ही बात है।

**प्रियम्वदा**—( **प्रकाश में** ) सखि शकुन्तले! सौभाग्य से तुम्हारा निश्चय अनुरूप = तुम्हारे लायक है। समुद्र को छोड़कर बड़ी नदी भला, कहाँ उतर सकती है? आम्र वृक्ष के बिना कौन माधवीलता को पल्लवित देख सकता है।

**राजा**—इसमें क्या आश्चर्य है यदि विशाखाएँ=दो तारे चन्द्रमा की रेखा का अनुसरण करें।

**विशेष**—ज्योतिषशास्त्र के अनुसार विशाखा सोलहवाँ नक्षत्र है जिसकी अधिष्ठात्री देवता दो है, तद्गत द्वित्व को मानकर यहाँ विशाखा को दो कहा गया है। तारे=नक्षत्र चन्द्रमा का अनुसरण करते हैं और दोनों सखियाँ शकुन्तला का। शकुन्तला स्त्री है और चन्द्रमा पुंलिङ्ग, अतः असंगति दूर करने के लिए चन्द्र की जगह चन्द्रलेखा का अनुसरण कहा गया है।

**अनसूया**—को उण उवाओ भवे जेण अविलंबिअं णिहुअं अ सहीये मणोरहं संपादेह्म [ **कः पुनरुपायो भवेद्येनाविलम्बितं निभृतं च सख्या मनोरथं संपादयावः** ]।

**प्रियंवदा**—णिहुअंत्ति चिंतणिज्जं भवे। सिग्घंत्ति सुअरं [ **निभृतमिति चिन्तनीय भवेत्। शीघ्रमिति सुकरम्** ]।

**अनसूया**—कहं विअ [ **कथमिव** ]।

**प्रियंवदा**—ण सो राएसी इमस्सिं सिणिद्धदिट्ठीए सूइदाहिलासो इमाइं दिअहाइं पज्जाअरकिसो लक्खीअदि [ **ननु स राजर्षिरेतस्यां स्निग्धदृष्ट्या सूचिताभिलाष एतान्दिवसान् प्रजागरकृशो लक्ष्यते** ]

---

**किं चित्रम्** = किमाश्चर्यम्, यदि = चेत् विशाखे = तारकाविशेषयुगलं शशाङ्कलेखां = चन्द्ररेखाम् अनुवर्तेते = अनुगच्छतः। अत्र विशाखे सखीस्थानीये, शकुन्तला च चन्द्ररेखा-स्थानीया। सखीभ्यामस्याः शकुन्तलाया अभिलाषोऽनुमतः।

**अनसूया**—तयोः सङ्गमोपायं विचिन्तयन्ती अनसूया ब्रवीति—कः पुनरुपायः = कस्तर्हि उपायः भवेत् = स्यात् येन = उपायेन अविलम्बितं = विलम्बमकृत्वा त्वरितम् निभृतं = गूढम्, प्रच्छन्नरूपेण च सख्याः = शकुन्तलायाः मनोरथं = अभिलाषं दुष्यन्तसमागम-लक्षणम् संपादयाव. = सफलां कुर्वः। अनेन गान्धर्वो विवाहो विवक्षितः तस्य परस्परा-नुरागमूलकत्वेन अतिश्लाघ्यत्वात् सद्यः सम्पादकत्वाच्चेति भावः।

**प्रियम्वदा**—प्रियम्वदा कथयति निभृतं = गुप्तमिति कार्यानुष्ठानं चिन्तनीय = विमर्श-योग्यम् भवेत् = स्यात् शीघ्रम् = अविलम्बितमिति कार्यानुष्ठानम् सुकरम् = अनायासेन करणीयम्।

**अनसूया**—कथमिव = केन प्रकारेण सुकरम्।

**प्रियम्वदा**—उपायस्य शीघ्रतरं कर्तुं क्षमत्वे कारणस्वरूपं राज्ञोऽप्यौत्सुक्य वर्णयन्ती प्रियम्वदा प्राह—ननु = भो ! स राजर्षिः = राजा दुष्यन्तः एतस्यां = शकुन्तलायां स्निग्ध-दृष्ट्या = प्रेममयावलोकनेन = साभिलाषवीक्षणेन, सूचिताभिलाषः = सूचितः = प्रकटितः अभिलाषः = प्रेम येन स तथाभूतः सन् एतान् दिवसान् इमानि दिनानि प्रजागरकृशः = प्रजागरेण = रात्रिजागरेण कृशः = क्षीणः लक्ष्यते = प्रतीयते, दर्शनेन ज्ञायते। यज्ञरक्षणा-वसरे आश्रमे स्थित आवाभ्यां लक्षित इति भावः।

---

**अनसूया**—तो क्या उपाय हो सकता है जिससे हम दोनों विना देर किये हुए इस सहेली की इच्छा चुपचाप पूरी कर दें।

**प्रियम्वदा**—जहाँ तक चुप चाप कार्य करने का सम्बन्ध है, विचारने की आवश्यकता है वहाँ तक जल्दी का सवाल आसानी है। अर्थात् सखि ! यह कार्य गुप्त रूप से कैसे हो सकेगा—यही केवल हमें विचारना है, शीघ्र होना तो कोई कठिन बात नहीं है।

**अनसूया**—कहो यह कार्य शीघ्र कैसे हो सकता है ?

**प्रियम्वदा**—क्योंकि वह राजर्षि दुष्यन्त भी इस शकुन्तला को बार-बार स्नेह एवं चाह पूर्वक देखने से इसमें अपनी आसक्ति व्यक्त कर चुके हैं और आजकल इस शकुन्तला की चाह और विरह में रात को जागकर बिताने से ही ये राजा भी कृश एवं म्लान वदन हो रहे हैं।

राजा—सत्यमित्थंभूत एवास्मि । तथा हि—

[1]इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभिः[2] ।
[3]अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ॥ १० ॥

---

राजा—प्रियम्वदोक्तां निजावस्थामनुवदन् राजा प्राह—सत्यं = तथ्यम् यथार्थम् इथंभूतः = निद्रारहितः कृशश्च एव अस्मि । तथा हि—

अन्वयः—निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिः अन्तस्तापात् अशिशिरैः अश्रुभिः विवर्णमणीकृतं मणिबन्धात् स्रस्तं स्रस्तं कनकवलयं मया अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुः प्रतिसार्यते ।

प्रियम्वदोक्तौ आत्मनो रात्रौ प्रजागरणकारणं निशम्य राजा दुष्यन्तो निजामवस्थां परामृशन् ब्रूते—इदमशिशिरेति । निशि निशि = प्रतिनिशम्, तद्दर्शनात् प्रभृति सर्वासु रात्रिषु, भुजे = बाहौ न्यस्तात् = निक्षेपात् अपाङ्गात् = नेत्रप्रान्तात् प्रसारिभिः = प्रवर्तिभिरिति भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिः = हस्ततलन्यस्तनयनान्तनिर्गतैः अन्तस्तापात् = मदनाग्निदाहजन्यात् आन्तरादुष्मणः अशिशिरैः = उष्णैः अश्रुभिः = बाष्पैः लोचनजलविन्दुभिः विवर्णाः = विच्छायाः मणयः = पद्मरागादयो यत्र तत् विवर्णमणि न विवर्णं मणि अविवर्णमणि, अविवर्णमणि विवर्णमणि सम्पादितम् = अविवर्णमणिकृतम् मणिबन्धात् = बाहुपाणितलसन्धिस्थानात्, करमूलात् स्रस्तं = स्वस्थानात् पुनः पुनर्गलितम्, इदम् = एतत् कनकवलयं = सुवर्णकङ्कणम् मया अभिलुलितः = कार्श्यात् अनतिस्पृष्टः ज्याघातस्य = धनुर्गुणाकर्षणस्य अङ्कं = चिह्नं यस्मिन् तत् = अनभिलुलितज्याघाताङ्कम् मुहुः = वारंवारं प्रतिसार्यते = पश्चान्नीयते । मया स्वस्थाने एव स्थाप्यते । प्रकोष्ठरूपस्वस्थानस्थं क्रियते इत्यर्थः ।

अयं भावः—शकुन्तलादर्शनस्मरणात् मम दिनानि कथमप्यतिक्राम्यन्ति, रात्रौ तु मृदुतरास्वपि शय्यासु निद्रानभिमुखो भवति, शीतलेषु भूतलेषु लुण्ठता मया सुतरां क्षीणात् प्रकोष्ठात् मुहुर्मुहुर्गलितमिदं सुवर्णकङ्कणं भूयोभूयः ऊर्ध्वं नीययते । तस्मात् सत्यमेव वाढमहं कृशो जातः इति चिन्तयति दुष्यन्तः

अत्र काव्यलिङ्ग-स्वभावोक्ति-पर्यायोक्ति-अप्रस्तुतप्रशंसालङ्काराः छन्दश्च हरिणी॥१०॥

---

राजा—( अपनी ओर देखकर ) सचमुच मैं ऐसा ही कृश हो रहा हूँ, क्योंकि—

सोते समय बाएँ भुजा पर रखे हुए नेत्र के कोने से धारारूप से बहते हुए भीतर के ताप से अत्यन्त उष्ण आसुओं से काले एवं मलिन पड़े हुए अपने हाथ के सुवर्ण कङ्कण को, जो कि धनुष की डोरी को बार-बार खींचने से जिसमें कुछ शुष्क प्रायः ताजे दाग पड़े हुए हैं। ऐसे मणिबन्धस्थान = कलाई पर से खिसक खिसक कर गिरता रहता है, उसको मैं रात भर बार-बार हाथ में डालता रहता हूँ । इस प्रकार मेरी समस्त रातें बीत जाती हैं ॥ १० ॥

विशेष—यहाँ निशि-निशि शब्द शकुन्तला के दर्शन से अब तक से समय ज्ञान कराते हैं।

---

पाठा०—१. अतिशिशिरतरैरन्तस्तापैर्विवर्ण···” २. प्रवर्तिभिरश्रुभिः । ३. अनतिलुलितज्याघाताङ्कान् ।

**प्रियंवदा**—( विचिन्त्य ) हला मअणलेहो से करोअदु। इमं देवप्पसादस्साव-देसेण सुमणोगोविदं करिअ से हत्थअं पावइस्सं [ **हला मदनलेखोऽस्य क्रियताम्। इमं देवप्रसादस्यापदेशेन सुमनोगोपितं कृत्वा तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि** ]।

**अनसूया**—रोअइ मे सुउमारो पओओ। किं वा सउंदला भणादि [ **रोचते मे सुकुमारः प्रयोगः। किं वा शकुन्तला भणति** ]।

**शकुन्तला**—को णिओओ विकप्पीअदि [ **को नियोगो विकल्प्यते** ]।

**प्रियंवदा**—तेण हि अत्तणो उवण्णासपुव्वं चिंतेहि दाव ललिअपदबंधणं [ **तेन ह्यात्मन उपन्यासपूर्वं चिन्तय तावल्ललितपदबन्धनम्** ]।

---

**प्रियम्वदा**—( विचिन्त्य = विचार्य ) शीघ्रं शकुन्तलाया मनोरथं साधयितुं प्रियम्वदा वदति—हला = सखि अनसूये ! अस्य = राज्ञो दुष्यन्तस्य मदनस्य = कामस्य लेखः = पत्रिका = प्रेमपत्रं क्रियताम् = विधीयताम्। इमं = एतं = लेखं देवप्रसादस्य = भगवन्नि-र्माल्यस्य अपदेशेन = ऋषिभिः प्रेषितं देवनिर्माल्यमिति व्याजेन सुमनोगोपितं = पुष्पाच्छा-दितं कृत्वा = विधाय तस्य = दुष्यन्तस्य हस्तं = करं प्रापयिष्यामि = समुपस्थापयिस्यामि।

**अनसूया**—प्रियम्वदोक्तिमनुमोदमाना अनसूया ब्रवीति—रोचते = समीचीन इति प्रतीयते मे = मह्यं सुकुमारः = कोमलः, सुकरो निरपायश्च प्रयोगः = उपक्रमः। किं वा शकुन्तला भणति = कथयति।

**शकुन्तला**—सखीवचनं भङ्ग्या अनुमोदमाना शकुन्तला पृच्छति—कः नियोगः—आज्ञा विकल्प्यते = विचार्यते-युवयोः यः कोऽपि नियोगो मया विचारमकृत्यैव सम्पाद्यते इत्यर्थः।

**प्रियम्वदा**—शकुन्तलोक्तिमाकर्ण्य कथयति प्रियम्वदा—तेन हि मदुक्तोपायस्य त्वया अभिनन्दितत्वात् आत्मनः = आत्मविहारावस्थायाः उपन्यासपूर्वकं = प्रसङ्गानुकूलं पूर्वमुप-न्यासं कृत्वा चिन्तय = सावधानं निरूपय ललितं च तत् पदबन्धनं ललितपदबन्धनं = माधुर्यादिगुणप्रधानं स्वाभिप्रायप्रकाशकं पद्यम्।

---

तकिया लगाकर लेटने पर भी रात में जागरण एवं विरह-व्याकुलता से लोटने-पोटने में वह हट जाती है। अतः बाँह को तकिया बनाना पड़ता है। वलय स्वाभाविक रूप से ढीले नहीं हैं पर वह बाँह में ऊपर धनु को डोर की निशाने से हटकर कसा गया है। इसलिए ढीला प्रतीत हो रहा है। अन्य अलंकारों का त्यागकर एक वलय धारण करने से विरहाधिक्य की प्रतीति होती है। दुबलेपन से कंकण इतना ढीला हो गया है कि वह बार-बार खिसक जा रहा है।

**प्रियम्वदा**—( **कुछ सोचकर** ) हे सखि ! इस समागम कार्य सिद्ध के लिए एक मदनलेख = प्रेमपत्र राजा को लिखा जाय तथा उस पत्र को पुष्पों में छिपाकर देवप्रसाद के व्याज से मैं इसे राजा के हाथ तक पहुँचा दूँगी।

**अनसूया**—सखि ! यह सरल तथा सुन्दर उपाय मुझे भी अच्छा लग रहा है, पर शकुन्तला से भी पूछ लें कि वह इस विषय में क्या कहती है ?

**शकुन्तला**—क्या सखियों की सलाह भी कहीं टाली जा सकती है ?

**प्रियम्वदा**—तो फिर तुम अपने प्रसङ्ग तथा दशा के अनुरूप सुन्दर एवं ललित पदावली से युक्त कोई गीतिका विचार करके बनाओ, जो उस पत्र में अङ्कित किया जा सके।

**शकुन्तला**—हला चिंतेमि अहं। अवहीरणभीरुअं पुणो वेवइ मे हिअअं [ हला चिन्तयाम्यहम्। अवधीरणाभीरु पुनर्वेपते मे हृदयम्।

**राजा**—( सहर्षम् )

> **अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको**
> **विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।**
> **लभेत् वा प्रार्थयिता न वा [1]श्रियं**
> **श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्॥ ११॥**

---

**शकुन्तला**—हला = सखि प्रियम्वदे ! अहम् चिन्तयामि = आत्मावस्थोपन्यासपूर्वंव पद्यं विचारयामि अवधीरणभीरु = अवज्ञाभीतं तिरस्कारसम्भावनाभयशीलं मे = मम हृदयं = आन्तरं वेपते = कम्पते। पत्रिकाप्रेषणेन मया स्वकीये प्रणये प्रकाशिते कदाचित् स मामवज्ञास्यतीति संभावनया भयशीलं मामकीनं हृदयं कम्पते इत्यर्थः।

**राजा**—नृपो दुष्यन्तः ( सहर्षं = हर्षपूर्वकं सानन्दं च ) वृथाऽऽशङ्कमानां शकुन्तलां दृष्ट्वा राज्ञोः हासः।

**अन्वयः**—हे भीरु ! यतः अवधीरणाम् विशङ्कसे स अयं ते सङ्गमोत्सुकः तिष्ठति प्रार्थयिता श्रियं लभेत वा न वा ! श्रिया ईप्सितः दुरापः कथं भवेत्।

अथ शकुन्तलाद्वारा कृतामात्मनोऽवधीरणामाशङ्कमानो राजा दुष्यन्तः तां परिहरन्नभिधत्ते—अयमिति। हे भीरु ! = भयशीले; यतः = यस्मात, मत्सकाशात्, अवधीरणां = तिरस्कारं, अवहेलनम्, विशङ्कसे = विविधप्रकारैः आशङ्कसे स अयं त्वद्विरहाग्निसन्तापशान्तये त्वन्मुखचन्द्रचन्द्रिकामनुभवन् दुष्यन्तः ते = तव निकटवर्ती सङ्गमोत्सुकः = मिलनोत्कण्ठितः, क्षणमपि विलम्बमसहमानः तिष्ठति = योग्यमवसरं प्रतीक्षमाणस्थितिं करोति। तमेव दृष्टान्तेन समर्थयति—प्रार्थयिता = प्रार्थनापूर्वकं प्रयतमानो याचकः श्रियं = लक्ष्मीं, समृद्धयात्मिकां सम्पदं लभेत = प्राप्नुयात् वा न वा = कदाचित् लभेत, कदाचिन्न लभेतेति विकल्पः परन्तु, श्रिया = सम्पदा ईप्सितः = स्वयमाप्तुमिष्टः दुरापः = दुर्लभः कथं भवेत् = न भवेदित्यर्थः। श्रिया ईप्सितः सुलभ एव।

**अयं भावः**—त्वां प्रार्थयितुस्त्वं दुर्लभा, त्वया प्रार्थ्यमानस्तु ते सुलभ एवाहम्। अतो भवत्या प्रार्थना विहातुं नाहं समर्थः, व्यर्थमवहेलनभीरुत्वं तवेति भावः। अत्राप्रस्तुतप्रशंसा-दृष्टान्तार्थान्तरन्यासालङ्कारा वृत्तं च वसन्ततिलका॥ ११॥

---

**शकुन्तला**—ऐसी गीतिका तो मैं बना रही हूँ, किन्तु कहीं वे मेरी उपेक्षा न कर दें, इस भय से मेरा हृदय काँप रहा है।

**राजा**—( **प्रसन्न होकर** ) हे भीरु ! जिससे तुम तिरस्कार की सम्भावना कर रही हो, वह तो मैं तुम्हारे संगम के लिए स्वयं लालायित हो रहा हूँ। याचक तो लक्ष्मी की प्रार्थना करने पर भी कहीं से लक्ष्मी को कदाचित प्राप्त कर सके या नहीं भी परन्तु लक्ष्मी के लिये तो कभी याचक दुर्लभ नहीं होते॥ ११॥

**विशेष**—शकुन्तला भीरु नायिका है। इसलिए उसे अपने तिरस्कार की संभावना है पर राजा इसके निवारणार्थ कहता है, प्रिये ! प्रार्थी तो मैं हूँ, मेरा तिरस्कार संभव है, तुम तो प्राप्य हो अतः

---

पाठा०—१. श्रियो।

**सख्यौ**--अत्तगुणावमाणिणि ! को दाणिं सरीरणिव्वावत्तिअं सारदिअं जोसिणिं पडंतेण वारेदि [ **आत्मगुणावमानिनि ! क इदानीं शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति** ]।

**शकुन्तला**--- सस्मितम् ) णिओइआ दाणिं म्हि [ **नियोजितेदानीमस्मि** ], ( इत्युपविष्टा चिन्तयति )

**राजा**— स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि । यतः—

**उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्या ।**
**[1]कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन ॥ १२ ॥**

---

**सख्यौ**—शकुन्तलायाः सकासात् अवधीरणाशङ्कां दृष्टान्त-द्वारा परिहरन्त्यौ प्राहतुः- आत्मनो गुणान् अवमनुते तच्छीला आत्मगुणावमानिनी तत्सम्बुद्धौ आत्मगुणावमानिनि !=अज्ञातनिजगुणगौरवे ! स्वगुणगौरवानभिज्ञे ! स राजा त्वद्गुणैः क्रीतः तस्मादवधारणाशङ्कां न कार्येति भावः । शरीरनिर्वापयित्रीं = उष्मतापापमोदिनीम् कामादिसन्तापशमनकारिणीम् देहानन्ददायिनीम् शारदीं = शरत्कालसम्बन्धिनीं ज्योत्स्नां = चन्द्रिकां पटान्तेन = अञ्चलेन को वारयति = तिरोधत्ते । न कोऽपीत्यर्थः । यथा शरीरसुखदायिनीं शारदीं ज्योत्स्नां न कोऽपि वारयति तथा स्वयं प्रणयपत्रप्रेषणेन प्रदर्शितानुरागां त्वां स राजा नावधारयेत् । त्वया संगतो राजा नूनमात्मानं धन्यं मनुते; का कथा तत् तवावधीरणायाः इति भावः ।

**शकुन्तला**—सख्योरभिप्रायं जानन्ती शकुन्तला (सस्मितम् = स्मयपूर्वकम्) इदानीं = दृष्टान्तद्वारा स्वपक्षसमर्थनेन शङ्कापरिहारात् नियोजिता = प्रणयपत्रिकारचनार्थमाज्ञप्ता अस्मि । इदानीमवश्यमेव मया प्रणयपत्रिका विचिन्त्येति उक्त्वा ( उपविष्टा चिन्तयति । )

**राजा**—तथाभूतां शकुन्तलामवलोकयन् ब्रवीति—स्थाने = उपचितम् खलु = निश्चयेन विस्मृतौ = निमिषौ यस्य यत्र सा न विस्मृतनिमेषः तेन विस्मृतनिमेषेण = निमेषशून्येन अनाकलितपक्ष्मपातेन निमेषशून्येन चक्षुषा = नेत्रेण प्रियां = शकुन्तलाम् अवलोकयामि ।

**अन्वयः**—पदानि रचयन्त्या अस्याः उन्नमितैकभ्रूलतम् आनन कण्टकितेन, कपोलेन मयि अनुरागं प्रथयति ।

**निर्निमेषेण** नेत्रेण शकुन्तलानुरागस्योचितत्वं समर्थयति राजा दुष्यन्तः—**उन्नमितै-**

---

तेरा तिरस्कार संभव नहीं क्योंकि प्रार्थी को लक्ष्मी भले न मिले किन्तु लक्ष्मी जिसको चाहे उसका मिलना दुःसाध्य नहीं । तात्पर्य यह है कि यहाँ दुष्यन्त अपने को प्रार्थी तथा शकुन्तला को लक्ष्मी मानते हैं । अतः उसके अभिलषित का मिलना कठिन नहीं है ।

**दोनों सखियाँ**—अरी, अपने को कम समझने वाली सखि शकुन्तले ! सन्ताप को दूर करने वाली शरद् ऋतु के चन्द्रमा को चन्द्रिका=चाँदनी को भला छाता लगाकर कौन टालता है ? अर्थात् शरद् कालीन चन्द्रमा की शीतल चाँदनी को आँचल से कौन रोकता है, कोई नहीं। अतः वह राजा तुम को कैसे नहीं चाहेगा ।

**शकुन्तला**—( **हँसकर** ) सखियों ने विशेष अनुरोध से मुझे इस पत्र लेखन कार्य में लगा ही दिया है ( **बैठी हुई गीति की चिन्ता करती है** ) ।

**राजा**—अहा, मैं यहाँ निर्निमेष लोचन होकर बड़े ही अच्छे इस मौके में अपनी प्रिया को देख रहा हूँ, क्योंकि—

---

पाठा०—१. पुलकाञ्चितेन कथयति ।

**शकुन्तला**—हला चिंतिदं मए गीदवत्थु। ण खु सण्णिहिदाणि उण लेहण साहणाणि [ **हला चिन्तितं मया गीतवस्तु । न खलु संनिहितानि पुनर्लेखनसाधनानि** ]।

**प्रियंवदा**—इमस्सि सुओदरसुउमारे णलिणीपत्ते णहेहिं णिक्खित्तवण्णं करेहि [ **एतस्मिञ्शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे नखैर्निक्षिप्तवर्णं कुरु** ]।

**शकुन्तला**—( यथोक्तं रूपयित्वा ) हला सुणुह दाणिं संगदत्थं ण वे त्ति [ **हला शृणुतमिदानीं संगतार्थं न वेति** ]।

---

केति। पदानि = गीतिकापदानि, कवितापदानि, शब्दान् रचयन्त्या = विचारयन्त्या अस्याः = पुरःस्थितायाः शकुन्तलाया उन्नमिता एका भ्रूलता यस्मिन् तत् उन्नमितैकभ्रूलतम् = उत्क्षिप्तैकभ्रूकुटीमनोहरम् आननं = मुखम् कण्टकितेन = रोमाञ्चितेन पुलकितेन कपोलेन = गण्डस्थलेन मयि = दुष्यन्ते अनुरागं = प्रेमबन्धं कथयति = सूचयति, अनुमापयति।

**अयं भावः**—सखीनियोगानुसारं सन्देशपद्ययोग्यानि पदानि रचयन्त्या मध्ये मध्ये एकां भ्रूलतामूर्ध्वमाक्षिप्य क्षणं तूष्णीं तिष्ठन्त्या अस्याः शकुन्तलाया रोमाञ्चितः कपोलो मद्विषये प्रगाढं प्रेमाणं द्योतयति।

अत्रोपमार्थापत्ति-स्वभावोक्ति-सन्देह-संकरानुमानालङ्काराः छन्दश्चार्या ॥ १२ ॥

**शकुन्तला**—सखीनियोगानुष्ठानं निवेदयति—हला = सखि ! मया गीतवस्तु = गीति-सामग्री, संगतार्थं चिन्तितं = विचारितम् पुनः किन्तु लेखनसाधनानि लेखनस्य = अङ्कनस्य साधनानि = अपेक्षितवस्तूनि, लेखनोपकरणानि, लेखनीपत्रिका-मसीपात्रादीनि च खलु सन्निहितानि = उपस्थितानि सन्ति।

**प्रियम्वदा**—प्रियम्वदोत्तरयति—एतस्मिन् = पुरःस्थिते शुकस्य = कीरस्य उदरवत् सुकुमारेऽतिकोमले कीरक्रोडकोमले नलिनीपत्रे = कमलिनीदले नखैः = नखरैः निक्षिप्त-वर्णं = निक्षिप्ता उत्कीर्णाः वर्णाः = अक्षराणि यस्मिन्निति निक्षिप्तवर्णं कुरु = निधेहि, नखाग्रैर्लिखेति भावः। अनेनाक्षरलेखनसौकर्यं प्र दर्शितम्।

**शकुन्तला**—( यथोक्तं रूपयित्वा = नखैर्लिखित्वा ) हला = सखि ! शृणुत = आकर्ण्यताम्, इदानीं = अधुना सङ्गतार्थं = सङ्गतः अविरुद्धः अर्थो यस्य तत् सङ्गतार्थं = युक्तार्थम् समुचितार्थं वा न वा इति।

---

अपनी भ्रुकुटि को टेढ़ी करके कविता के पदों को रचती हुई मेरी प्रिया का मुख ही रोमाञ्चित कपोलों के द्वारा मेरे प्रति इसके अनुराग को प्रगट कर रहा है ॥ १२ ॥

**विशेष**—प्रेमपत्र को लिखने के लिए उद्यत शकुन्तला की भावभंगिमा देखकर राजा अपने में उसके अनुराग की कल्पना करते हैं। सुधाकर में रति की छह अवस्थाओं में अनुराग छठवां माना गया है—'अङ्कुरपल्लवकलिका-प्रसूनफलभोगभागियं क्रमशः।
प्रेमा मानः प्रणयः स्नेहो रागोऽनुराग इत्युक्तः॥

**शकुन्तला**—सखियों ! मैंने गीत का पद्य तो बना लिया, किन्तु पत्र लिखने के साधन ( भोजपत्र, कागज, दावात, स्याही आदि ) तो यहाँ है नहीं, पत्र कैसे लिखूँ।

**प्रियम्वदा**—सुग्गे के उदर के समान सुकुमार इस कमलिनी के हरे पत्ते पर ही नखों से तुम पत्र लिखो।

**शकुन्तला**—( **उसी प्रकार से लिखने का अभिनय कर** ) सखियों ! तुम लोग भी इसे सुन लो, मैंने ठीक लिखा है या नहीं ?

उभे—अवहिद म्ह [ अवहिते स्वः ]।

शकुन्तला—( वाचयति )।

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण कामो दिवापि रत्तिम्मि।
णिग्घिण तवइ बलीअं तुइ वुत्तमणोरहाइं अंगाइं ॥ १३ ॥
[ तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि रात्रावपि।
निर्घृण तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथान्यङ्गानि ॥ ]

राजा—अवसरः खल्वात्मानं दर्शयितुम् ( सहसोपसृत्य )

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः ॥ १४ ॥

---

उभे—द्वे अपि सख्यौ—कथयतः—आवां अवहिते = सावधाने दत्तावधाने स्वः।

शकुन्तला—( वाचयति ) मदनज्वालावलीढा शकुन्तला राज्ञे सोपालम्भं स्वावस्थां निवेदयन्ती स्वस्वीकारं प्रार्थयते— तवेति।

अन्वयः—हे निर्घृण ! तव हृदयं न जाने त्वयि वृत्तमनोरथानि मम अङ्गानि कामः पुनः दिवापि रात्रिमपि बलीयस्तपति।

मदनानलतापासहिष्णुः शकुन्तला दुष्यन्ताय सोपालम्भमात्मनाऽवस्था तस्मै निवेदयन्ती स्वस्वीकृतिं निवेदयते—तवेति। हे निर्घृण ! = हे निर्दय ! तव = भवतः हृदयं-अन्तर्भावं अन्तरं न जाने = त्वां मदनः तपति न वेति न जानामि, त्वयि=तव विषये वृत्तमनोरथानि-वृत्तः = संजातः मनोरथः = अभिलाषः येषां तादृशानि ममाङ्गानि कामः = मदनः पुनः = तु दिवा = दिवसम् अपि रात्रि = निशाम् अपि च बलीयः = अत्यर्थं तपति तापं जनयति। यस्मात्त्वन्निमित्तमेव मदनेनैवं तप्यमानायां मयि न दयसे तस्मान्निर्दयोऽसि, इतः परमपि स्वकीयं निर्दयत्वं विहाय त्वदेकशरणां मां झटित्यङ्गीकुरुष्व। यदि मां नाङ्गीकुरुषे तर्हि मदनहनकोऽसौ मां दशमीं दशां प्रापयिष्यतीति भावः ॥ १३ ॥

राजा—ज्ञातरहस्यस्य प्रहृष्टस्य स्वावस्थां निवेदयितुं योन्योऽनवसर इति मन्यमानस्य राज्ञश्चेष्टामाह—( सहसा = अतर्कितम्, उपसृत्य = समीपमागत्य। )

---

दोनों सखियाँ—हम सावधान हो इसे सुन रही हूँ। सुनाओ।

शकुन्तला—( पत्र को बाँचती है )।

हे निर्दय ! तुम्हारे हृदय की क्या दशा है ? यह तो मुझे मालूम नहीं है, किन्तू सम्पूर्ण अङ्गों को तो जिनका सुख तुम्हारे ही हाथ है और जिनकी भावना तुम्हारे में लगी हुई है, मदन दिन-रात प्रबल वेग से जला रहा है ॥ १३ ॥

विशेष—यहाँ शकुन्तला ने राजा को निर्घृण कहा है, जिसका तात्पर्य है कि वे अति निर्दयी हैं, अन्यथा विवश होकर वे मेरे पास अवश्य आते या मुझे अपने पास ही बुलाते। उनके लिए मैं कामताप से सन्तप्त हो रही हूँ पर वे बचाते नहीं हैं। मेरा प्रत्येक अङ्ग उनसे मिलना चाहता है—भुजायें आलिंगन के लिए, नयन दर्शन के लिए, कर्ण वचनामृत श्रवण के लिए, नासिका मुखसौगन्ध पान के लिए लालायित है और इसी प्रकार प्रत्येक अंग उनसे मिलना चाहता है पर, उन्हें इनकी परवाह ही नहीं है। इस प्रकार परुषभाषण करती हुई राजा को निर्घृण बनाती है, जो एक विरहिणी के लिए स्वाभाविक है।

राजा—अपने को प्रगट करने का अच्छा मौका है ( सहसा शकुन्तला के पास पहुँचकर )

**सख्यौ**—( अवलोक्य सहर्षम् ) साअदं अबिलंबिणो मणोरहस्स [ **स्वागतम-बिलम्बिनो मनोरथस्य** ]। ( शकुन्तलाभ्युत्थातुमिच्छति )।

राजा—अलमलमायासेन।

**संदष्टकुसुमशयनान्याशुक्लान्तविसभङ्गसुरभीणि।**
**गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ॥ १५ ॥**

---

**अन्वयः**—तनुगात्रि ! त्वां मदनः अनिशं तपति मां पुनर्दहत्येव। दिवसः यथा शशाङ्कं ग्लपयति तथा कुमुद्वतीं न हि।

अथ दुष्यन्तः आत्मनोऽवस्थां निवेदयन्नाह—**तपतीति**। तनुगात्रि ! तनूनि = कृशानि गात्राणि = अङ्गानि यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे तनुगात्रि ! = हे कृशाङ्गि ! त्वां = भवतीं मदनः = कामः अनिशं = निरन्तरं दिवामपि = रात्रिमपि तपति = सन्तापमात्रेण पीडयति मां पुनः = मां तु दहत्येव = भस्मीकरोत्येव। एतावता त्वं तापमात्रं जानासि, न तु दाह-मपि। हि = यतः दिवसः = वासरः यथा = येन प्रकारेण शशाङ्कं = चन्द्रं ग्लपयति = ग्लानं करोति, श्रीविहीनं विधत्ते इत्यर्थः। कुमुद्वतीं कुमुदः प्रेयसीं कुमुदिनीं न हि तथा। दिवसे चन्द्रस्य यादृशी ग्लानिः तथा न कुमुदिन्या, कामेनाहमेव पीड्ये, न पुनर्भवतीं। तस्मान् त्वदपेक्षया समधिकं दुःखं मया सह्यते। अत्र दृष्टान्त-प्रतिवस्तूपमा-व्यतिरेक-विरोधाभासानुप्रासा अलङ्काराः आर्यावृत्तं च ॥ १४ ॥

**सख्यौ**—( सहर्षम् = सानन्दं राज्ञोऽतर्किताागमनेन हर्षम् ) अविलम्बिनः = अकृत-विलम्बस्य मनोरथस्य = अभिलाषापूर्तेः, मनोरथरूपस्य तव स्वागतं = शुभाभिनन्दनम्। ( शकुन्तला अभ्युत्थातुं = उत्थातुम् इच्छति = वाञ्छति )।

**राजा**—स्वदर्शनेन शकुन्तलाया अभ्युत्थानारम्भमवलोकयन् अवसरप्राप्तं सदयमाह—अलमलम् = कृतं कृतम्, आयासेन = अभ्युत्थानारम्भप्रयासेन यथेष्टं सुखमुपविशेति भावः।

**अन्वयः**—आशु संदष्टकुसुमशयनानि क्लान्तविसभङ्गसुरभीणि गुरुपरितापानि ते गात्राणि उपचारं नार्हन्ति।

आत्मानमतर्कितोपनतमवलोक्य ससंभ्रममुत्थातुं प्रयतमानां शकुन्तलां निवारयन् राजा दुष्यन्तः तद्-गात्राणामुपचारकरणसमर्थतां समर्थयन्नाह—**सन्दष्टेति**। आशु =

---

हे कृशाङ्गि ! तुमको तो कामदेव रात-दिन केवल सन्ताप ही पहुँचाता है, किन्तु मुझे वह जला ही रहा है, क्योंकि सूर्य का उदय जितना चन्द्रमा को हतप्रभ करके ग्लानि पहुँचाता है उतना कुमुदिनी को नहीं, अतः दिन से कुमुदिनी की अपेक्षा चन्द्रमा की अधिक हानि होती है ॥ १४ ॥

**विशेष**—यहाँ शकुन्तला के प्रेमपत्र में जो भोलापन और स्वाभाविकता है वह राजा दुष्यन्त के पद्य में नहीं है, क्योंकि वह नगर की चातुरी से पूर्ण औपचारिक मात्र है। राजा दुष्यन्त अपने को चन्द्रमा तथा शकुन्तला को कुमुद्वती कहकर उसे अपनी प्रिया के रूप में वर्णित करते हैं।

**दोनों सखियाँ—( देखकर आनन्द के साथ )** शीघ्र ही सिद्ध होने वाले मनोरथ के विषयभूत आपका स्वागत है **( शकुन्तला उठना चाहती है )**।

**राजा**—नहीं नहीं कष्ट न करें क्योंकि—

सन्ताप से फूलों की शय्या में भी जिन अङ्गों के दाग पड़ गये हैं और मृणाल-वलयों को भी जिन्होंने सन्ताप से विमर्दित = मुरझा दिया है, ऐसे अत्यन्त सन्तप्त आपके ये अङ्ग इस प्रकार के उपचार = शिष्टाचार के योग्य नहीं हैं ॥ १५ ॥

---

१. पाठा०—न्याशुविमर्दितमृणालवलयानि।

**अनसूया**—इदो सिलातलेक्कदेसं अलंकरेदु वअस्सो [ **इतः शिलातलैकदेशमलंकरोतु वयस्यः** ]। ( राजोपविशति शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति )

**प्रियंवदा**—दुवेणं णु वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो। सहीसिणेहो मां पुणरुत्तवादिणिं करेदि [ **द्वयोर्ननु युवयोरन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः। सखीस्नेहो मां पुनरुक्तवादिनीं करोति** ]।

**राजा**—भद्रे नैतत्परिहार्यम्। विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति।

---

शीघ्रम्, संदष्टकुसुमशयनानि संदष्टं = संश्लिष्टं कुसुमशयनं = पुष्पशय्या येषु तानि संदष्टकुसुमशयनानि कान्ताः = म्लानाः विसभङ्गा येषु तानि अत एव सुरभीणि = सौगन्ध्यवन्ति इति क्लान्तविसभङ्गसुरभीणि ग्लपितशयनीयकुसुमानि गुरुः = महान् परितापः = सर्वतः तापः सन्तापो येषु तानि गुरुपरितापानि तीव्रसन्तापानि ते = तव गात्राणि = अङ्गानि उपचारम् = अभ्युत्थानवन्दनसत्कारादिकं नार्हति = कर्तुं न क्षमन्ते।

**अयं भावः**—हे कृशाङ्गि ! अभ्युत्थानादिकं कर्तुं न युज्यते तापातिरेकात्तव शरीरमभ्युत्थानवन्दनादिसत्कारं कर्तुं नार्हति विहाय लज्जाभये सुखमुपविश्यताम्। अत्र काव्यलिङ्ग-परिकर-अनुप्रासोपमालङ्कारा आर्यावृत्तं च ॥ १५ ॥

**अनसूया**—समागतस्य तस्य राज्ञो दुष्यन्तस्य सत्कारं कुर्वाणाऽनसूया कथयति—**वयस्यः** = समानसुखदुःखः सुहृत् शिलातलैकदेशं = भवत्प्रियाधिष्ठितशिलाखण्डैकदेशमनुगृह्णातु। एवं युवयोः सहोपवेशनदर्शनेन आवयोर्नयनप्रीतिर्भविष्यतीत्याकूतम्। ( राजा = दुष्यन्त उपविशति = शकुन्तला सलज्जा = सत्रपा तिष्ठति = स्थिता )

**प्रियम्वदा**—अथावसरप्राप्तकर्तव्यविषये जागरूका प्रियम्वदा चिराभिलषितसमागमयोः परस्परानुरागयोः दैवादेकान्ते संगतयोर्नायकयोः प्रेमप्रगाढाया इयत्तामवधारयितुं प्रसङ्गमवतारयति—ननु = भोः द्वयोर्युवयोः = भवतोः अन्योन्यानुरागः = परस्परप्रेमप्रत्यक्षः = अपरोक्षः स्पष्ट एव। सखीस्नेहः = शकुन्तलाप्रेम मामिमां प्रियम्वदां पुनरुक्तवादिनीं = पुनरुक्तभाषणशीलाम् आवृत्तिव्यापृताम् करोति = विदधाति।

**राजा**—आत्मवक्तव्यस्यानवकाशतया तूष्णीमासीनां प्रियम्वदां वक्तुं राजा समुद्योजयति—एतत् = त्वया विवक्षितं न परिहार्यं = मध्ये एव न त्यागयोग्यम् किन्तु वक्तव्यमेवेति भावः। विवक्षितं = वक्तुमिष्टमपि लज्जादिवशादनुक्तं सत् पर्यवसाने अनुतापं =

---

**विशेष**—उठकर स्वागत करने का शिष्टाचार स्वस्थ अवस्था में संभव है। अस्वस्थ व्यक्ति को उठकर किसी का स्वागत करने में कष्ट होता ही है। शकुन्तला का शरीर मदन ताप से सन्तप्त हो गया है। उसमें फूल की भी शय्या सूखकर चिपक गई है और कमलनाल भी मुरझा गया है। अतः अधिक ताप से सन्तप्त उसका स्वागतार्थ उठना राजा दुष्यन्त को समुचित नहीं प्रतीत होता।

**अनसूया**—हे महाभाग ! जिसपर शकुन्तला लेटी हुई है, इसी शिलातल के एक भाग में आप भी बैठ जाइए ( **राजा बैठ जाते हैं, शकुन्तला लज्जित हो एक तरफ बैठी रहती है** )।

**प्रियम्वदा**—आप दोनों का पारस्परिक प्रेम प्रत्यक्ष है, फिर भी सहेली के प्रति मेरा स्नेह ही मुझे पुनः उसी बात को कहने को प्रेरित कर रहा है।

**राजा**—भद्रे ! अवश्य कहो, बात को मन में रखो, क्योंकि जिस बात को कहने का मन करे उसे न कहने से मन में सन्ताप और विकलता बढ़ती है।

**प्रियंवदा**—आवण्णस्स विसअणिवासिणो जणस्स अत्तिहरेण रण्णा होदव्वं त्ति एसो वो धम्मो [ **आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्तिहरेण राजा भवितव्यमित्येव युष्माकं धर्मः** ]।

**राजा**—नास्मात्परम्[1]।

**प्रियंवदा**—तेण हि इअं णो पिअसही तुमं उद्दिसिअ इमं अवत्थंतरं भअणेण आरोविदा। ता अरुहसि अब्भुववत्तीए जीविदं से अवलंबिदुं [ **तेन हीयमावयोः प्रियसखी त्वामुद्दिश्येदमवस्थान्तरं भगवता मदनेनारोपिता तदर्हस्यभ्युपपत्त्या जीवितं तस्या अवलम्बितुम्** ]।

**राजा**—भद्रे! साधारणोऽयं[2] प्रणयः। सर्वथानुगृहीतोऽस्मि।

---

पश्चात्तापं जनयति = प्रसूते। एवं च सखीस्नेहात्तदीयानुरागस्यैव पुनरभिधानात् पुनरुक्तिः, सखीस्नेहात्तदीयानुरागमेव भवद्विषयमधिकृत्य किञ्चिद्वच्मीत्याशयः।

**प्रियम्वदा**—अत्र प्रियम्वदा विवक्षितमर्थं प्रस्तौति—आपन्नस्य = परचक्रादिना आपदं प्राप्तस्य विषयवासिनः = स्वदेशवासिनः जनस्य = जनसामान्यस्य स्त्रीजनस्य च आर्तिहरेण = पीडानिवारकेण अनर्थनिवारकेण राज्ञा = क्षत्रियेण भवितव्यं, इति युष्माकं क्षत्रियाणां, अनुरागिणां च धर्मः अवश्यकर्तव्यं स्वभावश्च। अयं धर्म्यः पन्था इति भावः।

**राजा**—नृपः कथयति अस्मात् = पूर्वोक्तात् आर्तिहरणात् परं = पश्चात् अन्यत् न धर्म इति भावः।

**प्रियम्वदा**—प्रियम्वदा वक्ति–तेन हि इयं = एषा आवयोः = नौ प्रियसखीप्रिया = आली शकुन्तला त्वां = भवन्तम् उद्दिश्य = विषयीकृत्य इदं = एतत् दृश्यमानम् अवस्थान्तरं अन्यां = सर्वथाभिन्नां अवस्थां = दशां भवता = श्रीमता मदनेन = कामदेवेन आरोपिता—प्रापिता तत् = तर्हि अभ्युपपत्त्या = अनुग्रहेण तस्याः = शकुन्तलाया जीवितं = जीवनं अवलम्बितुं = आलस्यं विहाय धारयितुं = अर्हसि = अधिक्रियसे। त्वयि प्रगाढानुरागिणीमेनां झटिति परिगृहाणेति भावः।

**राजा**—प्रियम्वदोक्तिमनुमोदमानो राजा प्राह—भद्रे! = कल्याणि! त्वं स्ववैदग्ध्या नागरिका अप्यधिशेषे–साधारणः = आवयोः उभयोः समानः अयं = त्वयोक्तः जीविताlम्बनविषयः प्रणयः = प्रार्थना सर्वथा = सर्वेण प्रकारेण पूर्णतः अनुगृहीतः = कृतकृत्यः युवाभ्याम् अभीष्टसिद्ध्यनुकूलाचरणरूपमनुग्रहं प्रापितः अस्मीति भावः।

---

**प्रियम्वदा**—विपत्ति ग्रस्त देशवासी की पीड़ा को दूर करना राजा का धर्म है।

**राजा**—इससे अधिक दूसरा धर्म नहीं।

**प्रियम्वदा**—हाँ, तो—हमारी इस सखी शकुन्तला को आपके ही कारण भगवान् कामदेव ने पीड़ित करके इस दशा तक पहुँचा दिया है। अतः इस पर आप कृपा करें, इसे जीवन धारण कराना आपका कर्तव्य है।

**राजा**—भद्रे! हम दोनो का परस्पर प्रेम समान ही है। इसमें प्रार्थना की आवश्यकता क्या है? आपके इस कथन से मैं सर्वथा अनुगृहीत हूँ।

---

१. पाठा०—अस्मात्परं किं तत्? २. एष।

**शकुन्तला**—( ( प्रियंवदामवलोक्य[1] ) हला किं अन्तेउरविरहपज्जुस्सुअस्स राएसिणो उवरोहेण [ हला किमन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन ]।

**राजा**—इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिते हृदयं मम।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः ॥ १६ ॥

---

**शकुन्तला**—( प्रियम्वदामवलोक्य = दृष्ट्वा ) त्वया अस्य राज्ञो हृदयमज्ञात्वैव मत्परिग्रहप्रार्थना प्रकाशिता तुल्यानुरागश्चेदसौ तदा सर्वं समञ्जसम् अन्यथा प्रार्थनाभङ्गेन नः परिहास एव स्यादिति अवलोकनेन सूच्यते। हला = हे सखि प्रियम्वदे! अन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य = अन्तःपुरस्य अवरोधस्य तत्रत्यराज्ञीनां विरहेण वियोगेन पर्युत्सुकः = उत्कण्ठितः इति अन्तःपुरविरहपर्युत्सुकः तस्य अन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य = अन्तःपुरवर्तिस्त्रीजनवियोगोत्कण्ठितस्य राजर्षेः = महाराजस्य राज्ञो दुष्यन्तस्य उपरोधेन = विवशीकरणेन किं = को लाभः? एवंविधस्यास्य राज्ञो दुर्भगानां तपस्विकन्यकानामस्माकं प्रार्थना उपरोध एवेति तं मा कृथाः, युवयोः अमुना व्यापारेण नास्ति किमपि प्रयोजनमिति तदाशयः।

**राजा**—ईदृशेन शकुन्तलावाग्वज्रेण प्रगाढं प्रहतो राजा दुष्यन्तः तत्प्रणयभङ्गभीरुः तस्या मनोमालिन्यमपनेतुं प्रयतमान आह—इदमिति।

**अन्वयः**—हे मदिरेक्षणे! हृदयसन्निहिते इदमनन्यपरायणं मम हृदयं यदि अन्यथा समर्थयसे मदनबाणहतः पुनः हतोऽस्मि।

अन्तःपुरपर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन किमिति वाग्वज्रोपमं शकुन्तलावचनं निशम्य राजा दुष्यन्तः तस्या मनोमालिन्यमपनेतुं प्रयतमानो ब्रवीति—इदमिति। मदिरा = मद्यं तत्तुल्ये मत्तकारिणी ईक्षणे = नेत्रे यस्या असौ यद्वा मदिरे ईक्षणे यस्या असौ मदिरेक्षणा तत्सम्बुद्धौ हे मदिरेक्षणे! = चञ्चलनयने! मदिरोपमया ईदृशे सरम्भेऽपि हृद्यो मादकश्च ते कटाक्षमोक्ष इति सूच्यते। मदिरादृष्टिलक्षणं चाह भरतमुनिः—

'आघूर्णमानमध्या या क्षामा चञ्चिततारका।
दृष्टिर्विकसितापाङ्गा मदिरा तरुणे मदे ॥''

हृदयसन्निहिते = स्वेष्टदेवतावत् मम मनसि सम्यग्धारिते, हृदयेश्वरि, इदं = प्रगटिताशयं

---

**शकुन्तला**—( प्रियम्वदा की ओर देखकर ) हे सखि! अपने अन्तःपुर = रनिवास की स्त्रियों के विरह में उत्सुक इन राजर्षि को तुम लोग क्यों दबा रहे हो?

**राजा**—

हे हृदयस्थलनिवासी प्रिये! यदि मेरे अनन्यपरायण इस हृदय को तुम इस प्रकार सन्देह की दृष्टि से देखोगी तो, हे उन्मत्त कर देने वाले तीखे नेत्र वाली प्रिये! मैं तो मदन के बाणों से पहले से ही घायल हूँ, परन्तु अब तुम्हारे इस प्रकार सन्देह करने से तो मैं सचमुच ही मारा जाऊँगा ॥ १६ ॥

**विशेष**—यहाँ मदिरेक्षणे सम्बोधन बड़े महत्त्व का है, इसका अर्थ मदिरा के समान मादक दृष्टि। भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में मदिरा दृष्टि की परिभाषा यों की है—

'आघूर्णमानमध्या या क्षामा चञ्चिततारका। दृष्टिर्विकसितापाङ्गा मदिरा तरुणे मदे ॥'

---

१. पाठा०—सप्रणयकोपस्मितम्।

**अनसूया**—वअस्स बहुवल्लहा राआणो सुणीअंति। जह णो पिअसही बंधुअण-सी अणिज्जा ण होइ तह णिव्वत्तेहि [ **वयस्य, बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते। यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वर्तय** ]।

**राजा**—भद्रे ! किं बहुना—

**परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे।**
**समुद्रवसना[1] चोर्वी सखी च युवयोरियम्॥ १७॥**

---

अनन्यपरायणं = अन्या = अपरा स्त्री परायणं आश्रयो यस्यासौ अन्यपरायणः = न अन्य-परायणः इत्यनन्यपरायणः तमनन्यपरायणम् = त्वदेकप्रणयप्रवणं दर्शनात्प्रभृति त्वयि अनुरक्तं मम = दुष्यन्तस्य हृदयं = चेतः यदि अन्यथा = अन्यपरायणत्वेन समर्थयते = युक्त्या साधयसे तर्हि मदनस्य = त्वद्दर्शनेन ममोन्मादसम्पादकस्य कामस्य त्वां निमित्तीकृत्य प्रयुक्तैर्बाणैर्हतः = पूर्वमेवात्यन्तं पीडितोऽपि पुनः = भूयः तव इदृशेन मयि अविश्वासेन हतः = मारितः अस्मि। तद्विरहस्य सर्वथा असह्यतया गत्यन्तराभावात् अतः परं मरणमेव शरणीकरिष्यामि। तस्मात् मम हृदयमेवं मा अन्यथा समर्थयस्व त्वदेकावलम्बे मयि प्रसी-देति भावः। अत्रोपमा-लाटानुप्रास परिकरा अलङ्कारा द्रुतबिलम्बितं वृत्तञ्च॥ १६॥

**अनसूया**—स्वकार्यसाधने चतुरा अनसूया अवसरप्राप्तं वक्तव्यं प्रस्तौति—वयस्य ! = मित्र ! राजानः = नृपतयः बहुवल्लभा बह्व्यो बल्लभा येषां ते बहुबल्लभाः = अनेक-परिग्रहाः श्रूयन्ते = आकर्ण्यन्ते। यथा येन प्रकारेण नौ = आवयोः प्रियसखी = प्रिया = वल्लभाया सखी = आली च प्रियसखी शकुन्तला बन्धुजनैः = बन्धुभिः जनैः शोचनीया = चिन्तनीया इति बन्धुजनशोचनीया = प्रियजनशोच्या न भवति = न स्यात् तथा = तेन प्रकारेण निवर्तय = निर्वाहय। भवतो राजत्वाद् बहुवल्लभात्वेन भाव्यमिति बहुवल्ल-भत्वादस्यां कदाचित्त्वानादरो यथा न स्यात्तथास्यां प्रेम्णा वर्तेथा इत्यर्थः।

**राजा**—योग्यमुत्तरं दित्सू राजा प्राह—भद्रे = कल्याणि ! किं बहुना = युष्माभिरेवं बहु न वक्तव्यमित्यर्थः। तत्र हेतुमाह—**परीति**।

**अन्वयः**—परिग्रहबहुत्वेऽपि मे कुलस्य द्वे प्रतिष्ठे ( स्तः, एका ) समुद्रवसना उर्वी, ( द्वितीया ) युवयोः इयं सखी च।

बहुवल्लभा राजानो भवन्ति यथावयोः प्रियसखी शकुन्तला बन्धुभिः शाचनीया न

---

**अनसूया**—सुना जाता है कि राजाओं की अनेक प्रियायें होती हैं। अतः हमारी प्रिय सखी शकुन्तला अपने बन्धुजनों से शोचनीय न हो अर्थात् हमलोग तथा महर्षि कण्व जी को दुःखित न होना पड़े। ऐसा ही आप सब प्रकार से इसका ध्यान रखें।

**राजा**—हे सुभगे ! अधिक मैं क्या कहूँ—

यद्यपि मेरे रनिवास में स्त्रियों की कमी नहीं, मेरी प्रिय भार्यायें भी बहुत हैं, किन्तु हमारे इस पौरव कुल की प्रतिष्ठा को तो मैं दो ही वस्तुओं से समझता हूँ—एक तो समुद्र पर्यन्त पृथ्वी और दूसरी यह प्रिय सखी शकुन्तला अर्थात् अनेक स्त्रियों के रहते हुए भी मैं आपकी प्रिय सखी शकुन्तला को ही अपनी पटरानी बनाऊँगा और इसी का पुत्र मेरे राज्य का उत्तराधिकारी होगा। आपलोग चिन्ता न करें॥ १७॥

**विशेष**—यहाँ प्रतिष्ठा पद का अर्थ प्रतिष्ठा का कारण है। वंश को चलाने के निमित्त चा

---

१. पाठा०—समुद्ररशना।

**उभे**—णिब्बुदम्ह [ **निर्वृते स्वः** ]।

**प्रियंवदा**—( सदृष्टिक्षेपम् ) अणसूए जह एसो इदी दिण्णादट्ठी उस्सुओ मिअपोदओ मादरं अण्णेसदि। एहि संजोएम णं [ **अनसूये, यथैव इतो दत्तदृष्टिरुत्सुको मृगपोतको मातरमन्विष्यति। एहि संयोजयाव एनम्** ]। ( इत्युभे प्रस्थिते )

**शकुन्तला**—हला असरण म्हि। अण्णदरा वा आअच्छदु ] हला **अशरणास्मि। अन्तरा युवयोरागच्छतु।** ]

---

स्यात्तथावर्तनीये भवतेत्यनसूयोपालम्भमाकर्ण्य वचनचतुरो राजा दुष्यन्तः तां समाश्वासयन्नाह—कल्याणि! परिग्रहाणां = पत्नीनां बहुत्वं = विपुलत्वमिति परिग्रहबहुत्वं तस्मिन् परिग्रहबहुत्वे मम ललनानेकत्वेऽपि मे = मम कुलस्य पौरववंशस्य द्वे = उभौ प्रतिष्ठे = प्रतिष्ठाहेतू सगौरवस्थितिकरणीभूते स्तः। ते के द्वे इत्याह—एकः समुद्रः = सागर एव वसनं = परिधानं यस्याः सा समुद्रवसना, समुद्रो रशना यस्याः स समुद्ररशना वा = समुद्रान्ता ऊर्वी–अन्वर्थनामवती पृथ्वी, द्वितीया च युवयोः = भवत्योः इयं = एषा पुरःस्थिता मत्प्राणवल्लभा सखी = वयस्या शकुन्तला च।

**अयं भावः**—राज्ञां बहुवल्लभत्वे सत्यपि मम पौरवकुलस्य द्वे एव प्रतिष्ठास्पदे प्रथमा सागरा रशना पृथिवी, द्वितीया युवयोरियं आली मम प्रिया च शकुन्तला। इयमेव-प्रधानमहिषी भविष्यति, अस्याः तनय एव च मम सिंहासनाधिकारी भविष्यति। अत्र दीपक-रूपक-तुल्ययोगितातिशयोक्ति-श्लेषानुप्रासा अलङ्कारा अनुष्टुप्छन्दश्च ॥ १७ ॥

**उभे**—राज्ञो वचनमाकर्ण्य सानन्दे द्वे अपि प्रियम्वदा-अनसूया च युगपत् सख्यौ, ब्रूतः-निर्वृते स्वः आवां सुखिते च जाते। मनोरथाभ्यधिकाभीष्टलाभेन वाढं मोदामहे इत्यर्थः।

**प्रियम्वदा**—इत्थं सिद्धमनोरथयोः सख्योर्मध्ये प्रियम्वदाश्रेष्ठामाह—( सदृष्टिक्षेपं = दृष्टे = ईक्षणस्य क्षेपेण=नियोजनेन सह वर्तमानं सदृष्टिक्षेपम् ) अनसूये! यथा = यतः एषः = अयं निकटवर्ती इतः = इमां दिशम् दत्तदृष्टिः नियोजितेक्षणः उत्सुकः = स्वमातृदर्शन-स्तन्यपानादौ उत्कण्ठितः, मृगपोतकः हरिणशिशुः, मातरं तृणादिलोभेन दूरं गताम् = स्वजननीम् अन्विष्यति = मृगयते। एहि = आगच्छ संयोजयावः = एनं मृगशावकं मात्रा सह संमेलयावः ( इति एवं कथने समाप्ते उभे, द्वे एव प्रस्थिते = प्रस्थानमभिनीतवत्यौ )

**शकुन्तला**—एवं सख्यौ प्रस्थानोद्यते दृष्ट्वा सोत्कण्ठापि भयलज्जाकातरा शकुन्तला

---

पुत्र पैदा करने की संभावना से शकुन्तला को प्रतिष्ठा का हेतु कहा गया है। इस प्रकार पौरव वंश की प्रतिष्ठा का कारण समुद्रवसना = चारों समुद्र से घिरी हुई और कण्वपुत्री शकुन्तला है। राजा पृथ्वीपति कहा जाता है। इसलिए उसकी प्रतिष्ठा का हेतु एक पत्नी तो स्वाभाविक पृथ्वी है ही दूसरी प्रतिष्ठा का हेतु शकुन्तला होगी, क्योंकि इसका पुत्र चक्रवर्ती = सार्वभौम राजा होगा। अतः इसे पटरानी होने के कारण सापत्न्य दोष का कष्ट नहीं होगा। यदि इसकी कोई सौत होगी तो पृथ्वी है, जो निर्जीव होने से इसको कोई कष्ट नहीं दे सकती है।

**सखियाँ**—हम दोनों सुखी और निश्चिन्त हो गई।

**प्रियम्वदा**—( **बाहर की ओर दृष्टि डालकर** ) अनसूये! चूँकि यह मृग छौना बेचारा हरिण का छोटा बच्चा इधर दृष्टि लगाये उत्कण्ठित होकर अपनी माँ को ढूँढ़ रहा है। अतः आवो इसे इसकी माँ से मिला दें। ( **दोनों सखियाँ प्रस्थान करती हैं** )

**शकुन्तला**—हे सखि! मैं अकेले हूँ। तुम दोनों में से एक आओ।

**उभे**—पुहुवीए जो सरणं सो तुह समीवे वहई [ **पृथिव्या यः शरणं स तव समीपे वर्तते** ] ( इति निष्क्रान्ते )

**शकुन्तला**—कहं गदाओ एव्व [ **कथं गते एव** ]

**राजा**—अलमावेगेन । नन्वयमाराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते ।

**किं शीतलैः[1] क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्**
**संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।**
**अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते**
**संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ॥ १८ ॥**

---

सवैक्लव्यमाह हला=अयि सखि ! अशरणास्मि—असहायास्मि । अतः युवयोः=भवत्योः अन्यतरा=एकतरा मत्समीपे तिष्ठतु आगच्छतु=आव्रजतु । एषा मत्समीपे तिष्ठतु, अन्या स्वकार्यार्थं गच्छतु इति भावः ।

**उभे**—द्वे अपि सख्यौ प्रियम्वदा अनसूया च कथयतः पृथिव्याः=वसुन्धरायाः शरणम्=आश्रयः स तव=भवत्याः समीपे=निकटे वर्तते=तिष्ठति ( इति=एवमुक्त्वा निष्क्रान्ते=निर्गते ) ।

**शकुन्तला**—कथं मद्वाक्यमनादृत्य एव=किं याते एवोभे सख्यौ ।

**राजा**—कन्याविश्रम्भणे चतुरो नायको राजा दुष्यन्तः भयलज्जादितरलां शकुन्तलां प्रियभाषणादिना अनुकूलयितुमारभते—आवेगेन=सखीजनासान्निध्यमूलके न संभ्रमेण अलं=व्यर्थम् । तत्र हेतुमाह—ननु भो अयं=मद्रूपो एष जनो दुष्यन्तः आराधयिता=भक्तः सेवकः तव=भवत्याः समीपे=निकटे=वर्तते=आराधनावसरं प्रतिपालयन् तिष्ठति । एतस्यामवस्थायां तदाराधनेऽहमेवास्मि मुख्योऽधिकारी तत्र कीदृशी तव सेवां करोमीत्याह—**किमिति** ।

**अन्वयः**—हे करभोरु ! किं क्लमविनोदिभिः शीतलैः नलिनीदलतालवृन्तैः आर्द्रवातान् संचारयामि उत पद्मताम्रौ ते चरणौ अङ्के निधाय यथासुखं संवाहयामि ।

मृगशावकमातृसंमेलनव्याजेन शकुन्तलादुष्यन्तयोः परस्परालापावसरप्रदानाय निर्गतयोः सख्योः साध्वससलज्जयाधोमुखीं शकुन्तलामवलोक्य राजा दुष्यन्तो मधुरालापैः तां प्रसादयितुमुपक्रमते—**किमिति** । करभौ इव ऊरू यस्या सा करभोरुः तत्सम्बुद्धौ हे

---

**सखियाँ**—पृथ्वी का जो आश्रय है, वह तो तुम्हारे पास ही है ( दोनों निकल जाती हैं ) ।

**शकुन्तला**—क्या दोनों ही चली गईं ?

**राजा**—घबड़ाओ मत । मैं तो तुम्हारी आराधना करने वाला सेवक तुम्हारे पास बैठा हूँ । कहो तुम्हारी क्या सेवा करूँ ?

हे सुन्दरि ! हे करभ के समान जाँघोंवाली ! क्या सन्ताप को दूर करनेवाले तथा शीतल जल के कणों से भीगे रहने से जिसकी हवा ठण्डी हो रही है ऐसे कमलिनी के पत्तों से निर्मित्त इस पंखे को हिलाकर तुम्हें हवा करूँ या कमल के समान लाल-लाल कोमल तुम्हारे दोनों पैरों को अपनी गोद में रखकर सुखद रूप से धीरे-धीरे दबाऊँ ॥ १८ ॥

**विशेष**—'करस्य करभो बहिः' के अनुसार करभ शब्द का अर्थ कलाई से लेकर हाथ की कनिष्ठ अङ्गुली तक बाहरी भाग है । इसकी मेरी पतली गोलाई और कोमलता जँघे से मिलती-

---

१. पाठा०—शीकरैः ।

**शकुन्तला**—ण माणणीएसु अत्ताणं अवराहइस्स [ न माननीयेष्वात्मानमपराध-यिष्ये ]। ( इत्युथाय गन्तुमिच्छति )

**राजा**—सुन्दरि अनिर्वाणो[1] दिवसः। इयं च ते शरीरावस्था।

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम्।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधापेलवैरङ्गैः[3] ॥ १९ ॥

---

करभोरु = 'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इत्यमरवचनानुसारं करमसदृशोरु। किं क्लमं = क्लान्ति विशेषेण नुदन्ति अपनयन्ति तच्छीलानि तैः क्लमविनोदिभिः = सन्तापहारिभिः, शीतलैः = शिशिरैःशीकरैः = जलकणैर्वा नलिनं = पत्रं विद्यते यासां ता नलिन्यः नलिनीनां = कमलिनीनां दलानि = पत्राणि एव तालवृन्तानि = व्यजनानि तैः नलिनीदलतालवृन्तैः = पद्मिनीपत्रविरचित्तव्यजनैः, आर्द्रवातं—आर्द्रो वातः येषां ते तान् आर्द्रवातान् = क्लिन्नपवनान्, शीतलतरवातान् सञ्चारयामि = सम्यक् = संकीर्णं चारयामि। उत = अथवा पद्मवत् = कमलवत् ताम्रौ = अरुणौ पद्मताम्रौ = कमलोदररक्तौ ते = तव चरणौ = पादौ अङ्के = क्रोडे, उत्सङ्गे निधाय = स्थापयित्वा यथासुखं = मन्दं मन्दं संवाहयामि = मर्दयामि—संमर्दनेन खेदमपनयामीत्यर्थः।

**अयं भावः**—प्रिये ! अलं सखीजनासान्निध्येन अहमेव तत्स्थानीय—आज्ञाकारी सेवावसरं प्रतीक्षमाणः तव समीपे तिष्ठामि। कथय, कीदृशी सेवां करोमि ? किम् क्लमनिवारकैः शीतलैः नलिनीदलवृन्तैः सर्वाङ्गे सम्यक् संचारयामि यद्वा कमलसदृशे-स्ताम्रौ तव चरणौ क्रोडे कृत्वा सखीजनवत् यथासुखं शनैः-शनैः संवाहयामि। यथा त्वमनुमन्यसे तथैव कर्तुमुद्यतोऽस्मि। अत्र परिणाम-काव्यलिङ्ग-परिकर-वृत्यनुप्रासा अलङ्कारा वसन्ततिलका च छन्दः ॥ १८ ॥

**शकुन्तला**—राज्ञो वचनं निशम्य तदभिप्रायपरिज्ञानात् सलज्जा शकुन्तला तद्वचन-निषेधमुखेनाह—माननीयेषु—चक्रवर्तितया सर्वजनमाननीयेषु जनेषु = भवद्विधेषु आत्मानं = स्वं न अपराधयिष्ये—पादसंवाहनादिकर्मानुज्ञानेन कृतपापाचरणं अपराधिनं नहि विधा-स्यासि। ( इति = एवम् उक्त्वा उत्थाय गन्तुं = यातुम् इच्छति वाञ्छति )।

**राजा**—अथ चतुरो नायकः तस्या गमनस्य, तदवस्थाप्रतिकूलत्वं प्रतिपादयन् तां निवर्तयितुमुपक्रमते—सुन्दरि ! = हे मञ्जुले ! न निर्वाणं = समाप्तिः यस्य स अनिर्वाणः अशान्ततापः, अपरिणतः दिवसः = दिनम्। इयं = एषा, एतादृशसन्तापयातिशयशालितया शोच्या च ते = तव शरीरावस्था = शरीरस्थितिः ?

**अन्वयः**—नलिनीदलकम्पितस्तनावरणं कुसुमशयनम् उत्सृज्य शरीरबाधापेलवैः अङ्गैः आतपे कथं गमिष्यसि।

---

जुलती है। करभ का दूसरा अर्थ हाथी का बच्चा या सूँढ़ भी है, जो चढ़ाव उतार का है। इसलिए स्त्रियों के जाँघ के निमित्त इसकी तथा कदली स्तम्भ की उपमा दी जाती है।

**शकुन्तला**—मैं माननीय जनों से अपनी सेवा कार्य करा कर अपने को अपराधी नहीं बनाऊँगा। **( ऐसा कहकर धीरे-धीरे उठकर जाना चाहती है )**

**राजा**—हे सुन्दरी ! अभी तो दिन भी नहीं छिपा है। अतः धूप बड़ी कड़ी पड़ रही है और तुम्हारे शरीर की यह हीन दशा है। इस समय तो तुम्हारा बाहर जाना ठीक नहीं, क्योंकि—

---

१. पाठा०—अपरिनिर्वाणो। २. कोमलैरङ्गैः।

( इति बलादेनां निवर्तयति )

**शकुन्तला**—पोरव रक्ख अविणअं। मअनसंतत्ता वि ण हु अत्तणो पहवामि
[ **पौरव रक्षाविनयम्। मदनसंतप्तापि न खल्वात्मनः प्रभवामि** ]।

**राजा**—भीरु अलं गुरुजनभयेन। दृष्ट्वा ते विदितधर्मा तत्रभवान्न तत्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः। अपि च।

---

देशकालावस्थाभिः शकुन्तलागमनस्यानुचितत्वं प्रतिपादयन् राजा दुष्यन्तः कथयति—उत्सृज्यते। नलिनीदलाभ्यां = कमलिनीपत्राभ्यां कल्पितं = रचितं स्तनयोः = कुचयोः आवरणं = आच्छादनं वल्कलं स्थानीयम् यस्मिन् तत् नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम् कमलिनीपत्रावृतस्तनाभागम् कुसुमशयनं सन्तापहरेषु सखीभ्यां विरचितां पुष्पशय्याम् उत्सृज्य = परित्यज्य परिबाधया सर्वाङ्गीणसन्तापेन पेलवैः = दुर्बलैः परिबाधापेलवैः विरहबाधाकदर्थितैः, कृशतरैः अङ्गैः अवयवैः उपलक्षिता आतपे = घर्मे कथं = केन प्रकारेण गमिष्यामि गन्तुं प्रभविष्यसि। स्वस्थोऽपि जनः वस्त्रावरणादीनि विहाय आतपे गन्तुं न प्रभवति, त्वं तु स्वभावतः सुकुमाराङ्गी, तत्रापि पीडायुक्ता ईदृगवस्था त्वं कुसुमशयनं पुष्पशय्यां हित्वा सुतरां गन्तुमशक्ता। एवंचेदृगवस्थायास्तव गमनोपक्रमः अविमृश्य कारितातिरिक्तं न किमप्यस्ति। तस्माद्विरम्यतामस्मात् व्यापारादिति भावः।

**अयमभिप्रायः**—प्रिये! त्वमसि निसर्गादेव आतपा सहिष्णुः स्थितिश्च त्वदीया न गमनोचिता सन्तापहारिणी सखीभ्यां विरचितां पुष्पशय्यां परिहाय दुर्बलैरङ्गात्त्वं कथमातपे गमिष्यसि? अतो गमनव्यापाराद् विरम। इत्युक्त्वा तां वलान्निवर्तयितुमुपक्रमते। अत्र काव्यलिङ्ग-परिकरानुप्रास-संसृष्टि-संकरालङ्कारा: आर्या छन्दश्च ॥ १९ ॥

( इति = एवमुक्त्वा बलात् = शक्त्या एनां = इमां शकुन्तलां निवर्तयति—प्रत्यावर्तयति, गन्तुं न ददाति। अनिच्छतीमपि तां बलादवरुणद्धि अनेन राज्ञो वचनमुल्लङ्घ्य लज्जया गन्तुमुद्यता, राज्ञा च बलात् परावर्तेति सूच्यते। )

**शकुन्तला**—लज्जाकुला शकुन्तला राज्ञो बलात्कारपरिग्रहं निषेधति—पौरव != पुरुवंशोद्भव महापुरुष! आत्मनः = स्वस्य अविनयम् = रक्ष, दूरीकुरु उद्दण्डतां जहीहि। मदनेन संतप्ता मदनसन्तप्ता=कामपीडिता अपि आत्मनः स्वस्य न खलु निश्चयेन प्रभवामि= प्रभुरस्मि। गुरुजनाधीनाहं न वपुस्ते दातुं प्रभवामि। स्वेच्छायां सत्यामपि गुरुजनपराधीनत्वादसमर्थाऽस्मीत्याशयः। पितृपारतन्त्र्यं हि कन्यकानां धर्मः। तथा चोक्तं महाभारते—

'यस्य मां दास्यति पिता स मे भर्ता भवेदिति।
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये न स्त्रीः स्वातन्त्र्यमर्हति ॥'

**राजा**—भूयोऽपि राजा तामनुकूलयन्नाह—भीरु! = हे भयशीले! अलं = कृतम्,

---

इस पुष्प शय्या को छोड़कर सन्ताप से पीडित अपने कोमल कलेवर को लेकर कमलिनी पत्तों से स्तनों को ढके हुए भला बताओ तो इस धूप में बाहर कैसे जाओगी॥ १९॥

**( राजा शकुन्तला को जबरदस्ती पकड़ कर रोकता है )**

**शकुन्तला**—पुरुवंश में उत्पन्न राजन्! अपने अविनय = अशिष्टता को रोको। कामदेव से अत्यन्त सन्तप्त होकर भी मैं निश्चय ही अपने अधीन नहीं हूँ। पराधीन हूँ। अतः मुझे छोड़ दो।

**राजा**—अरी, डरपोक! गुरुजन = बड़ों का कुछ भी डर मत करो, क्योंकि तुम्हारे धर्म पिता

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः ।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः ॥ २० ॥

---

गुरुजनस्य = पितुः कण्वस्य भयेन = भीत्या गुरुजनभयेन = आवयोः संगमस्याधर्मबुद्ध्या गुरोः प्रतिकूलबुद्ध्या वा तस्माद्भयं मा कृथाः, विदितधर्मा = विदितो धर्मो यस्य येन वा स विदितधर्मरहस्यः तत्रभवान् = पूज्यः कुलपतिः = सर्वाश्रमगुरुः महर्षिकण्वः दृष्ट्वा = दिव्यचक्षुषा आवयोः परिणयं विज्ञाय ते = तव तत्र = विवाहे दोषं = त्रुटिं न ग्रहीष्यति=न ज्ञास्यति, अपि च यथा उक्तम् शिष्टाचारेणापि अधर्म्यत्वशङ्कां परिहरन्नाह—गान्धर्वेणेति ।

**अन्वयः**—बह्व्यो राजर्षिकन्यका गान्धर्वेण विवाहेन परिणीताः ताः पितृभिश्च अभिनन्दिताः श्रूयन्ते ।

शिष्टाचारप्रदर्शनपूर्वकमभिधत्ते—गान्धर्वेणेति । बह्व्यः = बहुसंख्याकाः अनेकाः राजर्षीणां = क्षत्रियश्रेष्ठानां कन्यकाः = कुमार्यः 'मुनिकुमारिका ऋषिकुमार्यः' इत्यपि क्वचन पाठः । गान्धर्वेण = परस्परानुमोदनकृतेन विवाहेन = परिणयेन परिणीताः = विवाहिताः कृतोद्वाहाः सन्ति ताः गान्धर्वविधिना कृतोद्वाहाः कन्यकाः पितृभिः = गुरुजनैः अभिनन्दिताः = अनुमोदिताश्च श्रूयन्ते पुराणेतिहासादौ कथारूपेण आकर्ण्यन्ते । क्षत्रियस्य च गान्धर्वो विवाहः श्रेष्ठ उच्यते । इत्युक्तत्वात् पितृकृतमनुमोदनं संगच्छते । तथा च त्वयापीत्थं क्रियमाणे तव पिता महर्षिकण्वोऽपि त्वामभिनन्दयिष्यत्येव । अतो भयं विहाय मया सह यथेच्छं विहर, सफलय च स्मरपीडितं मामात्मानं चेति भावः ।

**अयं भावः**—प्रिये ! अलमाशङ्कया वयं क्षत्रियाः स्मः अस्माकं गान्धर्वविवाहः स्मृतिषु श्रेष्ठः स आम्नातः पूर्वमनेका मुनिकुमारिका राजन्यकन्यकाश्च स्वेच्छया स्वानुरूपैः वरैः सह गान्धर्वेण विवाहविधिना विवाहिताः अनन्तरं ज्ञातवृत्तान्तैस्तद्गुरुः मातृ-पितृ-भ्रातृभिः तस्य धर्म्यत्वादनुभेदनं कृतमिति पुराणे इतिहासे च तत्कथानकमुपनिबद्धमस्ति । तथैवावयोरपि समर्थनं भविष्यति । अत्राप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारोऽनुष्टुप् छन्दश्च ॥२०॥

---

महर्षि कण्व तो गान्धर्व विधि से विवाह के रहस्य को जानने वाले धर्मवेत्ता हैं। अतः वे हमारे तुम्हारे इस स्वेच्छाकृत गान्धर्व विवाह को न तो बुरा समझेंगे न अप्रसन्न ही होंगे क्योंकि इससे पूर्व भी

बहुत सी मुनियों या राजाओं की कन्यायें गान्धर्व विवाह विधि से विवाहित हो चुकी हैं, और उनके बान्धवों ने उन विवाह सम्बन्ध का अनुमोदन भी किया है ॥ २० ॥

**विशेष**—स्मृतियों में विवाह आठ प्रकार के माने गये हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व राक्षस और पैशाच विवाह—

"ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षो प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥" मनुस्मृति ३।२१

जिनमें एक गान्धर्व विवाह भी है। परस्पर प्रेमवश मन्त्रोच्चारण के बिना भी सकाम पुरुष और सकाम कन्या का जो एकान्त में स्वेच्छा से पारस्परिक मिलन होता है उसे गान्धर्व विवाह कहते हैं।

'सकामायाः सकामेन निर्मन्त्रो रहसि स्मृतः । करस्पर्शस्तु गान्धर्वो विवाहः शुभलक्षणः ॥'

मनुजी ने भी कन्या तथा वर के आपसी अनुराग से परस्पर सहयोग को गान्धर्व विवाह कहा है—दोनों के परस्पर अभिलाषा से उत्पन्न होने के कारण यह कामज कहा गया है—

इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च । गान्धर्वः स तु विज्ञेयः मैथुन्यः कामसम्भवः ॥३।३२

शकुन्तला—मुच दाव मं। भूओ वि सहीजणं अणुमाणइस्सं [ **मुञ्च तावन्माम्। भूयोऽपि सखीजनमनुमानयिष्ये** ]।

राजा—भवतु मोक्ष्यामि।

शकुन्तला—कदा [ कदा ]

**राजा—अपरिक्षतकोमलस्य यावत् कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन।**
**अधरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य॥ २१॥**

---

**शकुन्तला**—इत्थं राज्ञा दुष्यन्तेन तत् समागमस्य निर्दोषत्वे साधितेऽपि लज्जापरवशा शकुन्तला पुनरपि गन्तुमुपक्रममाणा प्राह— मुञ्च = त्यज तावत् = इदानीं मां=इमं जनम्, सखीजनमपि अनुमानयिष्ये = अनुमतिं कारयिष्ये। तातकण्वस्तु साम्प्रतं दूरदेशं गतवानस्तीति सन्निहिते सख्यौ अवश्यमेव प्रक्ष्यामि। अतः तत्समीपे गत्वा तदनुमतिं लप्स्ये इति भावः।

**राजा**—तां प्रीणयितुकामो राजा अनुमन्यते—भवतु = अस्तु मोक्ष्यामि = त्यक्ष्यामि।

**शकुन्तला**—शकुन्तला भविष्यदर्थं पृच्छति—कदा = कस्मिन् समये मोक्ष्यसि।

**राजा**—मोक्षकालावधिमाह—**अपरिक्षतेति**।

**अन्वयः**—हे सुन्दरि! यावत् षट्पदेन कुसुमस्य इव पिपासता मया अपरिक्षतकोमलस्य नवस्य अस्य ते अधरस्य रसः सदयं गृह्यते।

कदा मोक्ष्यसीति शकुन्तलया पृष्टो राजा दुष्यन्तः समाधत्ते—**अपरिक्षतेति**। हे सुन्दरि = हे मनोहारिणि! यावद् = यावत्कालपर्यन्तं षट्पदेन=भ्रमरेण कुसुमस्य=सुमनस्य इव = यथा मधुकरेण पुष्पस्य रसो गृह्यते तथा पिपासता = पातुमिच्छता अधरपानार्थमाकुलेन मया = अनेन जनेन न विद्यते परिक्षतं यस्य स अपरिक्षतः स चासौ कोमलश्चेति अपरिक्षतकोमलः तस्य अपरिक्षतकोमलस्य = अनवाप्तदन्तक्षतस्य, भ्रमराद्यनुपहतस्य अत एव कोमलस्य = कुमारस्य स्पर्शवतः अस्य = पुरोदृश्यमानस्य सुधासहोदरस्य ते = तव अधरस्य = अधरोष्ठस्य रसः = माधुर्यरसः, स्वादः, मकरन्दो वा दयया करुणया सह वर्तमानं यथा स्यात्तथा सदयं = सकृपं, कृपामृदु यथा स्यात्तथा गृह्यते = आस्वाद्यते।

भ्रमरेण पुष्परसमिव यावदहं तवाधररसपानं न करिष्ये, तावन्न मोक्ष्यामि तदनन्तरं तृष्णं रसे गृहीते सति त्वां मोक्ष्यामीति फलितम्।

---

इतिहास एवं पुराणों में क्षत्रियों के लिए गान्धर्व विवाह कथा के रूप में श्रेष्ठ कहा गया है और क्षत्रियों के धर्म्य विवाह में इनका निर्देश है—

'क्षत्रियस्य तु गान्धर्वो विवाहः श्रेष्ठ उच्यते। गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ॥' ३।२६

शकुन्तला राजर्षि विश्वामित्र की पुत्री है। अतः उसके लिए गान्धर्व विवाह विशेष रूप से विहित ही है—

**शकुन्तला**—जरा मुझे छोड़िए, पुनः सखियों से अनुमति ले लूँ।

**राजा**—ठीक है, छोड़ दूँगा।

**शकुन्तला**—कब! छोड़िएगा?

**राजा**—जिस प्रकार भ्रमर फूल का रस ग्रहण करता है, उसी प्रकार हे सुन्दरि! जबतक मैं तुम्हारे अक्षत कोमल अधर का रस-पान सँभाल कर न कर लूँगा अर्थात् तुम्हारे अधर का जब तक धीरे-धीरे रसास्वाद न कर लूँगा तब तक नहीं छोड़ूँगा॥ २१॥

( इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति । शकुन्तला परिहरति नाट्येन )

( नेपथ्ये ) चक्कबाकबहुए आमंतेहि सहअरं । उट्ठिआ रअणी [ चक्रवाकवधूः आमन्त्रयस्व सहचरम् । उपस्थिता रजनी ] ।

**शकुन्तला**—( ससंभ्रमम् ) पोरव असंसअं मम शरीरवुत्तंतोवलंभस्स अज्जा गोदमी इदो एव्व आअच्छदि । जाव विडवंतरिदो होहि । [ पौरव ! असंशयं मम शरीरवृत्तान्तोपलम्भायार्या गौतमीत एवागच्छति । यावद्विटपान्तरितो भव ] ।

---

अयं भावः—सुमुखि ! सद्यः प्रफुल्लितस्य समीपमुपगतो भ्रमरो यथा तत्कुसुममनास्वाद्य तत्पुष्पं न जहाति तथैव त्वदधरपानं कर्तुंकामोऽहमपि अनवाप्तदन्तक्षतस्य ते सुकोमलस्य तवाधरस्य रसपानं यावत् सदयं न करोमि तावत्त्वां न त्यक्ष्यामि । मया च सानन्दं सस्पृहं च गृहीते रसे त्वं यथासुखं यास्यसि तदा न मेऽवरोध्गे भविष्यति । अत्रोपमा–काव्यलिङ्ग–परिकराश्चालङ्कारा मालमारिणी वृत्तञ्च ॥ २१ ॥

( इति = एवमुक्त्वा मुखम् = आननम् अस्याः = शकुन्तलाया समुन्नमयितुं = उत्थाययितुम् इच्छति = वाञ्छति प्रयतते शकुन्तला च नाट्येन = अभिनयेन परिहरति = निवारयति । चुम्बनादीनामभिनयस्य भारतीये नाटके निषिद्धत्वं सर्वंप्रसिद्धम् )

अथ गौतमी प्रवेशं वर्णयितुमारभते—नेपथ्य इति । ( नेपथ्ये ) हे चक्रवाकवधूः = चक्राङ्गपत्नि ! चक्रवाकि ! सहचरं = सपतिम् आमन्त्रयस्व = आपृच्छस्व, रजनी = रात्रिः उपस्थिता = सन्निहिता, आयाति, वियोगसमयस्ते समुपस्थितः । रात्रि हि चक्रवाकमिथुनस्य वियोगकारिणी राजन्यपगते चक्रवाकयोरिव गौतमीगमने पुनरपि युवयोः समागमो भविष्यति । अतोऽत्यन्तं विषादो मा विधेयः इति द्योत्यते । सम्भोगलतामण्डपदिशा गौतम्याः प्रवेशमालोक्य शकुन्तलाबोधनाय प्रकृतमर्थं संगोप्य सख्योः प्रियम्वदाऽनसूययोः वंचनमिदम् । अमुनाऽप्राकृतेन च हे शकुन्तले ! स्वप्रियं दुष्यन्तम् आपृच्छस्व = गोपाय उपस्थिता तत्र भवती गौतमी ।

**शकुन्तला**—( ससंभ्रमं = संभ्रमेण = आवेगेन सह वर्तते इति ससंभ्रमम् ) पौरवः = पुरुवंशज ! असंशयम् = असन्दिग्धम् मम = शकुन्तलायाः शरीरवृत्तान्तोपालम्भाय शरीरस्य=

---

**( यह कहकर शकुन्तला के मुख-कमल को उठाना चाहता है और शकुन्तला नखरे का अभिनय कर रोकती है । )**

**( नेपथ्य = सज्जागृह या आकाश में )** हे चकवी ! साथी को विदा करो, रात आ गई ।

**विशेष**—यह लोक प्रसिद्ध है कि चकवा-चकवी दोनों दिन-भर तो साथ ही रहते हैं, किन्तु रात होते ही वे दोनों अलग-अलग हो जाते हैं । इस प्रकार रात-भर उनका विरह रहता है, पुनः सुबह होने पर वे दोनों मिल जाते है । प्रसंग से यह बात स्पष्ट है कि गौतमी को आती हुई देखकर प्रियम्वदा और अनसूया ने शकुन्तला को सावधान करने के निमित्त चक्रवाक-वधू का ब्याज किया है । यहाँ चक्रवाक वधू , शकुन्तला है, उसका सहचर चक्रवाक राजा दुष्यन्त है और विरहप्रद रात्रि वियोग करने वाली गौतमी है । इससे यह भी मालूम पड़ता है कि दोनों सखियाँ मृगशावक को उसकी माँ से मिलाने के लिए बाहर निकल कर शकुन्तला-दुष्यन्त के मिलन का अवसर देने निमित्त लताकुञ्ज से बाहर आकर उनकी प्रतीक्षा कर रही थी ।

**शकुन्तला**—( घबड़ा कर ) हे पौरव सन्देह नहीं कि मेरे शरीर का समाचार

**राजा**—तथा ( इत्यात्मानमावृत्य तिष्ठति )

( ततः प्रविशति पात्रहस्ता गौतमी सख्यौ च )

**सख्यौ**—इदो इदो अज्जा गोदमी [ **इत इत आर्या गौतमी** ]।

**गौतमी**—( शकुन्तलामुपेत्य ) जादे अवि लहुसंदावाइ दे अंगाई [ **एहि उटजमेव लघुसंतापानि तेऽङ्गानि ?** ]।

**शकुन्तला**— अत्थि मे विसेसो [ **अस्ति मे विशेषः** ]।

**गौतमी**—इमिणा दब्भोदएण णिराबाधं एव्व दे शरीरं भविस्सदि ( शिरसि शकुन्तलामभ्युक्ष्य ) वच्छे परिणदो दिअहो। एहि उडजं एव्व गच्छम्ह। [ **अनेन दर्भोदकेन निराबाधमेव ते शरीरं भविष्यति। वत्से परिणतो दिवसः। एहि उटजमेव गच्छामः** ] ( इति प्रस्थितः )।

---

देहस्य यद्वृत्तान्तं = उदन्तं तस्य उपालम्भाय = ज्ञानाय शरीरावस्थापरिज्ञानाय आर्या = महोदया गौतमी = कनीयसी तातधर्ममगिनी इतः = इह एव आगच्छति = आयाति यावत् विटपान्तरितः = मवशाखाप्रच्छन्नः शाखानिलीनदेहः तिष्ठेत्यर्थः।

**राजा**—तथा=एवं करोमि (इति उक्त्वा आत्मानं=स्वं, आवृत्य=आच्छाद्य तिष्ठति।)

( ततः = तदनन्तरं प्रविशति=दृश्यते रङ्गभूमौ पात्रहस्तो पात्रं = भाजनं हस्ते = करे यस्याः सा पात्रहस्ता शान्त्युदककुम्भकरा गौतमी = कण्वस्य कनीयसी धर्मभगिनी सख्यौ=प्रियम्वदानसूये च )

**सख्यौ**—आल्यौ कथयतः इतः = अनेन मार्गेण, आर्या = इतः अनेन मार्गेण मान्या गौतमी = गौतमगोत्रोत्पन्ना।

**गौतमी**—( शकुन्तलामुपेत्य = समीपे गत्वा ) जाते पुत्रि ! अपि लघुः = अल्पः, सन्तापः = पीडा येषां तानि लघुसन्तापानि ते = तव अङ्गानि = अवयवाः ? तवाङ्गानां सन्तापस्य लाघवमस्ति किम्।

**शकुन्तला**—अस्ति = विद्यते मे = मम विशेषः = परिवर्तनम्।

**गौतमी**—अनेन = एतेन दर्भोदकेन = कूर्चादिनिबद्धदर्भसहितेनोदकेन निराबाधं = अपगतनिशेषपीडं ते = तव शरीरं = देहं भविष्यति। ( शिरसि = शकुन्तलाम् अभ्युक्ष्य

---

लेने के लिय आदरणीया गौतमी इधर आ रही है। जरा आप वृक्षों की इन शाखाओं के पीछे छिप जाइए।

**विशेष**—भारतीय परम्परा के अनुसार नाटकों में रंगमंच पर अश्लील चुम्बन आदि दिखाने का निषेध है। वह केवल सूच्य है दर्शनीय नहीं। इसलिए कविवर कालिदास ने शकुन्तला के चुम्बन के लिए उद्यत राजा दुष्यन्त को आर्या गौतमी की उपस्थिति से विरत कर दिया।

**राजा**—अच्छा ( **एकान्त में जाकर छिप जाता है** )।

( **इसके बाद हाथ में पात्र लिये गौतमी और दोनों सखियाँ प्रवेश करती हैं** )

**सखियाँ**—इधर से, आर्या गौतमी।

**गौतमी**—( **शकुन्तला के पास जाकर** ) बेटी, तेरे अङ्गों में पीड़ा कम तो हुई है न ?

**शकुन्तला**—मुझे कुछ फर्क अवश्य मालूम पड़ती है।

**गौतमी**—इस कुश द्वारा छिड़के जल से तुम्हारी देह पीड़ा से रहित हो जायेगी ( **शकुन्तला के शिर पर जल छिड़क कर** ) बेटी, दिन ढल गया, आओ, अब पर्णशाला में चलें ( **सब रवाना हो जाती हैं** )।

**शकुन्तला**—( आत्मगतम् ) हिअअ पढमं एव्व सुहोवणदे मणोरहे कादरभावं ण मुंचसि । साणुसअविहडिअस्स कहं दे संपदं संदावो । ( पदान्तरे स्थित्वा प्रकाशम् ) लदावलअ संदावहारअ अमंतेमि तुमं भूओ वि परिभोअस्स [ **हृदय ! प्रथममेव सुखोपनते मनोरथे कातरभावं न मुञ्चसि । सानुशयविघटितस्य कथं ते सांप्रतं संतापः ? लतावलय ! संतापहारक ! आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय** ] । ( इति दुःखेन निष्क्रान्ता शकुन्तला सहेतराभिः ) ।

**राजा**—( पूर्वस्थानमुपेत्य सनिःश्वासम् ) अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः । मया हि—

---

शकुन्तलामस्तके कूर्चेन जलविन्दून् अभिषिञ्च्य संगमय्य ) वत्से != पुत्रि ! परिणतः = अस्तं गतः दिवसः = दिनम्, एहि = मया सह आगच्छ उटजं = पर्णशालामेव गच्छामः = यामः इति = एतत्कथनानन्तरम् प्रस्थिताः ताः प्रचलिताः ।

**शकुन्तला**—( आत्मगतं = स्वगतम् ) अथ गौतम्या सखीभ्यां च सह प्रस्थिता शकुन्तला प्रियविरहातुरा तदाख्ये परिचुम्बनादौ आत्मनः प्रतिकूलाचरणं स्मरन्ती सोत्कण्ठा पश्चात्तापपरवशा च सती स्वगतं स्वहृदयमुपालभते—हृदय इति । हृदये ! प्रथममेव गौतम्यागमनात् पूर्वमेव सुखेन उपनते सुखोपनते = अनायासप्राप्ते मनोरथे = अभिलाषे मनोरथविषये प्रियतमं तत्कर्तृ चुम्बनादौ साध्वसं न मुञ्चसि=न त्यजसि । सानुशयविघटितस्य–सानुशयस्य = पश्चात्तापसहितस्य अत एव विघटितस्य = वियोजितस्य कथं = किमर्थं व्यर्थं साम्प्रतं = इदानीम् ते = तव सन्तापः = पीडा ( पदान्तरे स्थित्वा प्रकाशम् ) अथ विरहविधुरा शकुन्तला पुनरपि प्रियतममावर्जयन्ती प्रच्छन्नं तं प्रियतमं सन्तापहारकुलतापदेशेन ब्रवीति–सन्तापहारक ! लतावलय ! इति । लतावलय !–लतानां=वल्लरीणां वलयः = मण्डलः तत्सम्बुद्धौ हे लतावलय ! लतागृहसन्निहितप्रियतम ! संतापहारक ! = संतापमयं हरतीति संतापहारकः तत्सम्बुद्धौ हे संतापहारक !=कामसन्तापहारिन् ! त्वां = भवन्तं भूयः = पुनरपि परिभोगाय सुखाय आमन्त्रये = संभोगार्थं प्रार्थये त्वया मम कामजसन्तापहरणार्थं पुनरप्यत्रागन्तव्यमिति भावः । इति = एवमुक्त्वा दुःखेन = क्लेशेन इतराभिः = अन्याभिः गौतमीप्रियम्वदानसूयाभिः साकं निष्क्रान्ता = निर्गता ।

**राजा**—अथ नायकस्य राज्ञो दुष्यन्तस्य पूर्वप्रसक्तं विप्रलम्भमवतारयति—पूर्वस्थानमिति—( पूर्वस्थानं = पूर्वं = प्रथमं मिलनकालिकं च तत् स्थानं = भूमिम् प्रियया शकुन्तलया परिभुक्तं लतामण्डपं उपेत्य उपगम्य विश्वासेन सह सनिःश्वासं दीर्घं निश्वस्य ) अहो, हन्त ! विघ्नवत्यः = विघ्नबहुलाः गौतमीप्राप्त्या प्रियाविप्रलम्भात् सान्तरायाः

---

**शकुन्तला—( मन ही मन )** हृदय, मनोरथ, दुष्यन्त के आसानी से मिल जाने पर पहली बार भी डर नहीं छोड़ा, अब पश्चाताप सहित अलग हुए तुम्हारा संताप कैसा **( अगले कदम पर ठहर कर, प्रगट में )** सन्ताप दूर करने वाले लता मण्डप ! पुनः सुख भोग के लिए तुम से विदा लेती हूँ। **( शकुन्तला दुःखपूर्वक उन स्त्रियों के साथ बाहर चली जाती है )**

**विशेष**—यह बात लतापरक और दुष्यन्तपरक है ।

**राजा—( पूर्व स्थान पर पहुँच लम्बी साँस लेकर )** हाय, मनोरथ की सिद्धियाँ भी विघ्न से भरी हुई होती हैं क्योंकि देखो--

मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु ॥ २२ ॥

क्व नु खलु संप्रति गच्छामि। अथवा इहैव प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतावलये मुहूर्तं स्थास्यामि। ( सर्वतोऽवलोक्य )

---

प्रार्थितानां = मनोरथविषयीभूतानामर्थानां सिद्धयः = लाभा इति प्रार्थितार्थसिद्धयः अभिलषितार्थसम्पत्तयः, मया = अनेन हि = यतः। उक्तमर्थं स्ववृत्तान्तेन समर्थयति—मुहुरिति।

अन्वयः—पक्ष्मलाक्ष्या अङ्गुलिसम्वृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामं मुहुरंशविवर्ति मुखं मया हि कथमपि उन्नमितं न तु चुम्बितम्।

गौतम्यागमनेन विघ्नितमनोरथायाः शकुन्तलायाः ताभिः सह प्रस्थाने कृते भूयोऽपि तमेव शकुन्तलापरिभुक्तमुक्तं लतामण्डपमुपेत्य दीर्घं निःश्वस्य राजा दुष्यन्तः ब्रवीति—मुहुरिति। पक्ष्मले = प्रशस्तरोमवती अक्षिणी = नयने यस्याः सा तस्याः पक्ष्मलाक्ष्याः = चारुनेत्रलोमललितलोचनायाः अङ्गुल्या = तर्जनीरूपया संवृतः = आच्छादितः अधरोष्ठः = अधरो यत्र तत् अङ्गुलिसंवृताधरोष्ठम् = तर्जनीसमाच्छादिताधरोष्ठम् प्रतिषेधाक्षराणि = निषेधबोधकानि = मा मा अलमित्यादीनि तेषां प्रतिषेधाक्षराणां विक्लवेन = वैक्लव्येन स्फुटमनुच्चारणेन अभिरामं = सुन्दरमिति प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम् = नहि नहि-मा-मा अलमित्याद्याक्षरस्फुटोच्चारणमनोरमम् मुहुः = वारं वारम् अंसविवर्ति = अंसयोः = स्कन्धयोः विवर्तितुं = निवर्तितुं शीलं यस्य तत् अंसविवर्ति स्कन्धापरावर्तनशीलम्, मुखम् = आननम्। मया = दुष्यन्तेन कथमपि = अतिकृच्छ्रेण, बलात्काराद्यात्मकेन प्रयत्नातिरेकेण उन्नमितं = चुम्बनार्थमूर्ध्वीकृतम्, तु = किन्तु यथेच्छं न चुम्बितं = गौतमीसमागमादेव अधरस्वादो न लब्धः।

अयं भावः–कथञ्चित् सौभाग्योदयेन स्वभावभोरुः एषा प्रिया शकुन्तला रहसि समधिगता बहुभिः प्रयत्नैरपि लज्जापसारणं विधाय तदधररसं परिपातुकामस्य ममाभिप्रायं विज्ञाय तर्जन्या स्वाधरोष्ठमाच्छाद्य मा-मा-नहि-नहि-अलमलमिति प्रतिषेधयन्त्याः तस्या विवर्तनशीलं मुखमुत्थाप्य चुम्बितुमारब्धं, परं गौतम्या आगमनेन तस्य रसास्वादावसरो न लब्धः। अत्र स्वभावोक्ति-काव्यलिङ्ग-श्रुतिवृत्यनुप्रासा अलङ्कारा मालभारिणी वृत्तं च।२२।

इत्थं विरहोत्कण्ठितो राजा स्वमनोविनोदोपायं विमृशन्नाह—क्व = कुत्र नु खलु सम्प्रति = प्रियाविरहितः सन् अधुना गच्छामि = यामि, भूयः स्वकर्त्तव्यं निश्चिन्वानो राजा प्राह–अथवा = यद्वा इहैव = अत्रैव आदौ प्रियया परिभुक्तः = सेवितश्च पश्चात् = तदनन्तरं प्रियापरिभुक्तमुक्ते = प्रियया शकुन्तलया परिभुक्ते मुक्ते च लतावलये–वल्लरीमण्डपे मुहूर्तं क्षणं स्थास्यामि = उपवेक्ष्यामि ( सर्वतः = सर्वत्र, अवलोक्य = दृष्ट्वा )।

---

सुन्दर नेत्र वाली अपनी प्यारी की अंगुलियों से ढके नहीं, नहीं, बस, बस रहने दो, जाने दो इत्यादि मधुर अक्षरों से और घबराहट से युक्त पीछे की ओर घुमाए मुख को किसी तरह उठाकर भी मैं बारम्बार चुम्बन नहीं कर सका ॥ २२ ॥

अब मैं क्या करूँ ? या अपनी प्रिया के संभोग संपर्क से मनोहर सुखद लता-गृह में ही थोड़ी देर बैठूँ ( चारों ओर देखकर )।

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः ।
हस्ताद् भ्रष्टमिदं विसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि ॥ २३ ॥

( आकाशे ) राजन् !

---

**अन्वयः**—शिलायां पुष्पमयी शरीरलुलिता इयं तस्याः शय्या ( अस्ति ) नलिनीपत्रे नखैः अर्पितः क्लान्तः एषः ( तस्याः ) मदनलेखः । हस्ताद् भ्रष्टम् इदं ( तस्या एव ) विसाभरणं इति आसज्जमानेक्षणः ( अहम् ) शून्यादपि वेतसगृहात् सहसा निर्गन्तुं न शक्नोमि ।

प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतामण्डपे परितो दत्तदृष्टिः राजा दुष्यन्तः स्वमनसि विमृशति—**तस्या इति** । शिलायां = शिलाफलके पुष्पमयी = सुमनप्रचुरा, कुसुमनिर्मिता, ननु पल्लवमयी तस्याः ततोऽपि मृदुलत्वात् शरीरलुलिता = देहपरिवर्तनेन मृदिता इयं = एषा पुरोदृश्यमाना तस्याः = शकुन्तलायाः शय्या = तल्पम् अस्ति । नलिनीपत्रे = पद्मिनीदले नखैः = नखरैः अर्पितः = लिखितः, तदनुरागसूचकः अङ्कितः, क्लान्तः = मलिनः एषः = अयम् तस्या एव मन्मथलेखः = स्वप्रणयसूचकः कामलेखः हस्तात् = कामाग्निसन्तापशोषेण क्षामात् = करात् भ्रष्टं = गलितं, च्युतम्, इदम् = एतत् तस्या एव विसाभरणं मृणालवलयं कमलनालभूषणम् दृश्यते इति, एवं कृत्वा आसज्जमानेक्षणः = आसज्ज्यमाने सम्बध्यमाने ईक्षणे = नेत्रे यस्य स आवध्यमानेक्षणः = संसक्तलोचनयुगलः अहम् शून्यात् प्रियाविरहितात् वेतसगृहात् = वेतसलतामण्डपात् सहसा = सद्यः निर्गन्तुं = बहिः प्रयातुं न शक्नोमि = न पारयामि-प्रियापरितानि आभरणादीनि निरीक्षमाणोऽहं नास्माद्वानीरकुञ्जादबहिर्गन्तुं समर्थोऽस्मीति भावः ।

**अयं भावः**—शिलाफलके मदनानलसन्तप्तशरीरस्य परिवर्तनेन मृदितेयं पुष्पमयी शय्या दृश्यते, तया शकुन्तलया मामुद्दिश्य स्वप्रेमप्रकाशनाय पद्मिनीदले नखैः शोभनाक्षरैः अङ्कितः करस्पर्शात् म्लानो मदनलेखश्च मन्नयने समाकर्षति, अपि च कामकृतया बाधया दुर्बलाङ्ग्याः तस्या हस्ताच्च्युतं मृणालवलयं च विद्यते । एतेन सर्वेणाकृष्यमाणहृदयोऽहं साम्प्रतं प्रियाविरहितात् तस्मात् लतामण्डपात् बहिर्निर्यातुं न शक्नोमि । अत्र विभावना-सन्देहसङ्कर-काव्यलिङ्गालङ्कारा शार्दूलविक्रीडितं च छन्दः ॥ २३ ॥

नाटकनायकस्य राज्ञो दुष्यन्तस्य गमनावसरसम्पादनार्थं रसान्तरप्रवेशमवतारयितुमुपक्रमते कविः—आकाशे = व्योम्नि क्वचन नेपथ्ये इति पाठे तु यवनिकायामिति बोध्यम् । हे राजन् ! इति पात्राप्रवेशार्थं सम्बोधनं मुनिशिष्योक्तिर्बोद्धव्या ।

---

इधर तो इस शिला-फलक पर यह मेरी प्रिया के शरीर से दबी हुई परिम्लान पुष्पों की शय्या दीख रही है और इधर कमलिनी के पत्ते पर लिखा काम बाधा सूचक उसका प्रेमपत्र पड़ा है, उधर उसके हाथ से खिसक कर गिरा हुआ यह मृणालवलय = कमलकङ्कण पड़ा है । इस प्रकार यहाँ चारों तरफ मेरी दृष्टि आकृष्ट होकर अटक रही है । इसलिए प्रियारहित इस वेतसलतागृह से भी सहसा अन्यत्र जाने में सर्वथा असमर्थ हो रहा हूँ ॥ २३ ॥

**विशेष**—यहाँ कवि ने कामियों के मानसिक भाव को व्यक्त किया है ।

**सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रयस्ताः ।**
**छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः संध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम् ॥२४॥**

**राजा**—( आकर्ण्य सावष्टम्भम् ) भो भोस्तपस्विनः ! मा भैष्ट मा भैष्ट, अयमयमागच्छामि । ( इति निष्क्रान्तः )

**इति तृतीयोऽङ्कः ।**

---

**अन्वयः**—सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते ( सति ) हुताशनवतीं वेदीं परितः प्रयस्ताः भयमादधानाः सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानां छाया बहुधा चरन्ति ।

मुनीनां यज्ञशालासु सायङ्कालीनहोमावसरे हव्यद्रव्यगन्धमाघ्राय समागतानां राक्षसानां बद्धपङ्क्तीश्छाया अवलोक्य मुनयः ससभ्रमराजानं निवेदयन्ति—**सायन्तने** इति । सायंभवे सायन्तने = सायं निवर्तनीये सन्ध्याकालीने सवनकर्मणि = यज्ञकार्ये संप्रवृत्ते = अस्माकं रक्षको राजा दुष्यन्तः सन्निहितोऽस्तीति बुद्धया निर्भयं सम्यगारब्धे हुतं = हव्यम् अशनं = भोजनं यस्यासौ हुताशनोऽग्निः सोऽस्तीति हुताशनवती तां हुताशनवतीम् = वैश्वानरवतीम् वेदीं = यज्ञवेदीम् परितः = सर्वतः, वेद्याः समन्तात् प्रयस्ताः इतस्तत विक्षिप्ताः भयं = साध्वसं आदधानाः = आमीक्षण्येनोत्पादयन्त्यः पिशितं = रुधिरं अशनं भोजनं येषां ते तेषां पिशिताशनानां = मांसाशिनां राक्षसां सन्ध्यायाः = सायंकालस्य पयोदाः = वारिदाः तद्वत् कपिशाः = आरक्ताः धूम्रवर्णा इति सन्ध्यापयोदकपिशाः सायङ्कालिकमेघपुञ्जवद्धूम्रवर्णा छायाः = पङ्क्तयः बहुधा = बहुप्रकारः नैकविधाः वारं बारं चरन्ति = भ्रमन्ति, गतागतं कुर्वन्ति ।

**अयं भावः**—राजन् ! अस्माकं संरक्षको भवान् सन्निहित एवास्तीति मत्वा अस्माभिः सान्ध्यकालीनो होमः समारब्धः तत्र हुताज्यचारुगन्धमाघ्राय उपस्थिता भयङ्कराकारा रक्तश्मश्रुकेशा अस्मान् भीषयन्तो बद्धश्रेणयो राक्षसाः यज्ञवेदीः समन्तात् गतागतं कुर्वन्ति । अतः शीघ्रतरं भवता तत्प्रतिकारः करणीयः, नो चेद्विलम्बे यज्ञहान्या राजधर्मविलोपो भवेत् । अत्रोपमा-काव्यलिङ्ग-छेकानुप्रासवृत्यनुप्रासालङ्काराः वसन्ततिलकाछन्दश्च ॥ २४ ॥

**राजा**—राजा दुष्यन्तो नेपथ्ये यज्ञकर्मणि राक्षसानां भयावहं वृत्तमाकर्ण्य सावष्टम्भं सवेगमाह—भो भो तपस्विनो मा भैष्ट = युष्माभिः भय न कार्यम् अयमहमागच्छामि, अयं = एषोऽहं महेन्द्रादीनामपि साहाय्यकारी दुष्यन्तः अहम् = इदानीमेव भवतां यज्ञरक्षायै द्रागेव आगच्छामि, आगच्छामीत्यनेन ममागमनमेव प्रतिविधानो विलम्बः मय्युपस्थिते

---

**( आकाश में )** अहो राजन् ! सावधान सावधान देखो देखो हमारे यज्ञ के सायंकालिक हवन का अनुष्ठान प्रारम्भ होते ही यज्ञाग्नि से सुशोभित वेदी के चारों ओर फैली हुई भय देने वाली सायंकालिक मेघों की घटा के समान काली-पीली मांसभोजी राक्षसों की ये छाया दिखाई पड़ रही हैं ॥ २४ ॥

**राजा—( सुनकर बड़े गर्व और धैर्य के साथ )** अरे तपस्वियों, डरो मत, डरो मत. आपके यज्ञ की रक्षा के निमित्त मैं यह आया, **( यह कहकर बाहर निकल जाते हैं )**

**विशेष**—राक्षसों का भय विशेष कर रात में ही होता है। इसलिए सन्ध्या **होते ही यज्ञ के**

# चतुर्थोऽङ्कः

( ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ )

अनसूया—पिअंवदे जइवि गंधव्वेण विहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउँदला अणुरूव-भत्तुगामिणी संवुत्तति निव्वुदं मे हिअअं तह वि एत्तिअ चिंतणिज्जं [ प्रियंवदे यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलानुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृतं मे हृदयम् तथाप्येतावच्चिन्तनीयम् ]

---

क्षणादेव सर्वं सुस्थं स्यादिति द्योत्यते। एतेन राज्ञो दुष्यन्तस्य युद्धवीरत्वं दयावीरत्वं च ध्वन्यते। ( इति = एवमुक्त्वा, निष्क्रान्तः = निर्गतः ) 'अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्कः परिकीर्तितः।' इत्युक्तेरङ्कान्ते पात्रनिर्गमस्यावश्यकत्वादिति शिवम्।

( इति = समाप्तः तृतीयः तार्तीयिकः अङ्कः – प्रकरणम् )

इति कविवरकालिदासेन प्रणीतस्याभिज्ञानशाकुन्तलनाटकस्य
तृतीयेऽङ्के पं० श्रीकृष्णमणित्रिपाठिना संस्कृते कृता
विमलाख्या व्याख्या समाप्ता।
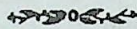
अस्मिन् चतुर्थेऽङ्के तपोवनप्रक्रान्ताया इष्टेः समाप्तौ कण्वेन विसर्जितायाः शकुन्तलायाः प्रतिगृहे प्रेषणं मुख्यो भागः। तत्पूर्वभागतया कुसुमावचयव्यग्रयोः प्रियम्वदानसूययोः सख्योर्मिथः सम्वादेन दुर्वाससः शापादेर्वर्णनम्। तत्र कुलपतिः महर्षिः कण्वः प्रधान-पात्रम्, इतरे च पात्राणि सन्ति तदङ्गानि। प्रायेण करुण एवात्र प्रधानो रसः, स च शृङ्गारस्याङ्गम्। दुहितृवात्सल्यादि-लोकवृत्त-प्रदर्शनमात्र-सर्वाभीष्टं कल्पनम्। आत्म-सदृशेन भर्त्रा संगतायाः शकुन्तलायाः पतिगृहगमनात् स्वारथ्यमाप्नोऽहमिव समस्तो लोकोऽपि स्वस्थः स्यादिति महर्षेः कण्वस्य हृदयम्।

अथ कथासंघटनाय पूर्ववर्णितयोः शकुन्तलायाः सख्योः प्रियम्वदानसूययोः प्रवेश-द्वारा विष्कम्भकं योजयति—तत इति।

( ततः = तदनन्तरं तृतीयाङ्ककथासमाप्तौ कुसुमावचयं = पुष्पाणामादानं
नाटयन्त्यौ = अभिनयन्त्यौ पुष्पत्रोटनं कुर्वन्त्यौ सख्यौ = आल्यौ
प्रियम्वदा अनसूया च प्रविशतः = रङ्गभूमौ दृश्येते )

अनसूया—शकुन्तलायाः सातिशयस्नेहवती सखी-अनसूया तत्सौभाग्यविषये संलापं

---

हवन कुण्ड में प्रक्षिप्त सुगन्धित द्रव्यों की सुगन्ध पाकर राक्षसों का उपद्रव प्रारम्भ हो गया। इसलिए मुनियों ने राक्षसों की भयावह छाया को देखकर रक्षा के निमित्त राजा दुष्यन्त का आह्वान कर शकुन्तला में आसक्त उनके हृदय को शृङ्गार रस से छोड़कर वीर रस में परिवर्तन कर दिया है।

॥ तृतीय अङ्क समाप्त ॥

( पुष्प तोड़ने का अभिनय करती हुई दो सखियों का प्रवेश )

अनसूया—हे सखि प्रियम्वदे! यद्यपि गान्धर्व विधि से राजा दुष्यन्त के साथ शकुन्तला का

**प्रियंवदा**—कहं विअ [ **कथमिव** ]।

**अनसूया**—अज्ज सो राएसी इट्ठिं परिसमाविअ इसीहिं वसज्जिओ अत्तणो णअरं पविसिय अंतेउरसमागदो इदोगदं वुत्ततं सुमरदि वा ण वेत्ति [ **अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्य ऋषिभिर्विसर्ज्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तःपुरसमागत इतोगतं वृत्तान्तं स्मरति वा न वेति** ]।

**प्रियंवदा**—वीसद्धा होहि ! ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होंति। तादो दाणिं इमं वुत्तंतं सुणिअ ण आणे किं पडिवज्जिस्सदि ति [ **विस्रब्धा भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। तथा इदानीमिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति** ]।

---

कुरुते—प्रियम्वदे ! यद्यपि गान्धर्वेण विधिना = गान्धर्वविवाहरीत्या निर्वृतं = सम्पन्नं कल्याणं = विवाहमङ्गलं यस्याः सा निर्वृतकल्याणा = जातविवाहमङ्गला, शकुन्तला अनुरूपं = योग्यं भर्तारं = पतिं दुष्यन्तं गच्छति तच्छीला = अनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्ता = जाता मे = मम हृदयं = अन्तरं निर्वृतं = शकुन्तलायाः सानुरागानुसूयभर्तृगामित्वात् निश्चिन्तं सुखितं, तुष्ट जातम् तथापि एतावत् = चित्तं = चिन्ताविषयः।

**प्रियंवदा**—कथमिव चिन्तनीयम् विनयप्रकारेण चिन्तेति भावः।

**अनसूया**—चिन्ताप्रकारमेवानसूया प्रस्तौति—अद्य = इदानीं सः=पूर्वोक्तः राजर्षिः = राजा दुष्यन्तः इष्टिं = यज्ञं परिसमाप्य = परितः समाप्य ऋषिभिः = मुनिभिः विसर्जितः= प्रहितः, अनुज्ञातनगरगमनः आत्मनः = स्वस्य नगरं = हस्तिनापुरं प्रविश्य = राजधानीम् अन्तर्गत्वा अन्तःपुरे = राज्ञीप्रासादे समागतः मिलितः इत्यन्तःपुरसमागतः। इतोगत=अत्र तपोवने गतं = जातं संबद्धं वृत्तान्तं = शकुन्तलाया गान्धर्वविवाहादिकम् स्मरति न वा राजकार्यव्यग्रतया अन्तःपुरस्थस्त्रीसमाजसङ्गमेन वा न स्मरति वेत्यर्थः। अयमेव चिन्ताविषयः।

**प्रियंवदा**—न विस्मरतीति पक्षे कृतविश्वासा प्रियम्वदा वदति—विश्रब्धा = विश्वस्ता भव = विश्वसीहि। तादृशाः = तथाविधाः, आकृतिविशेषाः = दुष्यन्ते दृश्यमानाकृतयः गुणविरोधिनः = सौजन्यादिगुणरहिता न भवन्ति न जायन्ते—यत्राकृतिस्तत्र गुणा भवन्ति, इत्युक्तेः। तस्मान्न विश्वस्ता भव। राजा सर्वं संस्मृत्य शकुन्तलां स्वपुरं निष्पत्येव। राजविषये न किमपि चिन्तास्पदम्। पिता, कुलपतिः तातः = महर्षिः कण्वः

---

मङ्गलमय विवाह सम्पन्न हो गया, और उसने अपने योग्य पति को भी प्राप्त कर लिया, यह सोच कर मेरा मन शान्त है, फिर भी मेरा मन प्रसन्न नहीं हो रहा है चिन्ता बनी हुई है।

**प्रियम्वदा**—क्यों, अब तुम जिस बात की चिन्ता कर रही हो ?

**अनसूया**—यही कि, यज्ञ समाप्त हो जाने से ऋषियों ने अपने नगर को जाने के लिए अनुमति दे दी है। वे राजधानी में आकर अन्तःपुर की रानियों के साथ भोग-विलास में लिप्त हो जाने से सखी शकुन्तला का स्मरण करेंगे या नहीं ?

**प्रियम्वदा**—हे सखि ! तुम बिल्कुल निश्चिन्त रहो, क्योंकि ऐसी सुन्दर तथा सौम्य मूर्ति वाले महापुरुष कर्म दया, दाक्षिण्य आदि गुणों से रहित नहीं होते। हाँ, यह अवश्य चिन्तनीय है कि पिताजी तीर्थ-यात्रा से लौट आये हैं, ये इस बात को सुनकर न जाने क्या कहेंगे।

**अनसूया**—जह अहं दक्खामि तह तस्स अणुमदं भवे [ **यथाहं पश्यामि तथा तस्यानुमतं भवेत्** ]।

**प्रियंवदा**—कहं विअ [ **कथमिव** ]।

**अनसूया**—गुणवदे कण्णआ पडिवादणिज्जेत्ति अअं दाव पढमो संकप्पो। तं जइ देव्वं एव्व संपादेदि णं अप्पआसेण किदत्थो गुरुअणो [ **गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत्प्रथमः संकल्पः। तं यदि दैवमेव संपादयति नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः**]।

**प्रियंवदा**—(पुष्पभाजनं विलोक्य) सहि अवइदाइं बलिकम्मपज्जत्ताइं कुसुमाइं, [ **सखि अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि** ]।

**अनसूया**—णं सहीए सउंदलाए सोहागदेवआ अच्चणीया [ **ननु सख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीयाः** ]।

---

इदानीं = अधुना विवाहानन्तरं इयं वृत्तान्तं = आत्मनोऽनुज्ञां विना कृतं गान्धर्वविवाहं श्रुत्वा = निशम्य न जाने = न जानामि किं प्रतिपत्स्यते = उचितमनुचितं वेति किं कल्पयिष्यति। इति न जाने इत्यर्थः।

**अनसूया**—तन्न चिन्त्यमित्यनसूया प्राह—यथा अहं जानामि = विचारयामि तस्य तातकण्वस्य अनुमतं = आज्ञाया समर्थितं भवेत् = स्यात्। यदि मां पृच्छसि चेत्तदा पूर्वापरभावेन विचारे क्रियमाणे तातस्येदमवश्यमनुमतं भवेदिति मे प्रतिभातीत्यर्थः।

**प्रियंवदा**—कथमिव = केन प्रकारेण इव, तातस्यानुमतमिति कथं जानासीत्यर्थः।

**अनसूया**—गुणवते = श्लाघ्यगुणप्राचुर्यवते पुरुषाय कन्यका = कुमारी प्रतिपादनीया प्रदेया इति = एवं, अयं तावत् = अयमेव प्रथमः सङ्कल्पः = पूर्वमेवेदं संकल्पितमित्यर्थः। तं = सङ्कल्पं यदि = चेत् दैवमेव = भाग्यमेव सम्पादयति = सफलयति, स्वयमेव तथा भवेदिति यावत्, ननु = निश्चितं अप्रयासेन = अनायासेन कृतार्थः = कृतकृत्यः गुरुजनः = पिता कण्वः। तथा प्रतिपत्तेरवसर एव नास्तीत्यर्थः।

**प्रियम्वदा**—( पुष्पभाजनं=पुष्पपात्रं विलोक्य=दृष्ट्वा ) सखि = आलि अनसूये! वलिकर्मपर्याप्तानि = नित्यपूजाकार्यप्रचुराणि कुसुमानि = पुष्पाणि अवचितानि = गृहीतानि।

---

**अनसूया**—मेरी समझ में तो पिताजी शकुन्तला का गान्धर्व विवाह अनुचित नहीं समझेंगे।

**प्रियम्वदा**—यह कैसे ?

**अनसूया**—गुणवान् योग्य व्यक्ति को कन्या देनी है, यही उत्तम विचार हैं, उसको यदि भाग्य ने अपने आप सम्पादन कर दिया तो गुरुजन कृतार्थ ही होते हैं। इसलिए यदि शकुन्तला को दुष्यन्त जैसे योग्य वर स्वयं मिल गये तो पिताजी प्रसन्न ही होंगे।

**विशेष**—पिताजी को अप्रसन्न होने की बात तब होती जब वे प्रियसखी शकुन्तला को जीवन भर अविवाहिता ही रखना चाहते, विवाह करना होगा, योग्यतम वर अपने आप ही मिल गये तब नाराज होने की बात ही क्या है। इसलिए प्रियम्वदे! तुम सन्देह न करो, पिताजी प्रसन्न ही होंगे, नाराज नहीं होंगे।

**प्रियम्वदा**—ठीक है, **( फूलों की डालियों को देखकर )** हे सखि अनसूये! बलि-कर्म देव-पूजा के लायक तो फूल हो गये। इसलिए अब फूल तोड़ना बन्द करें।

**प्रियंवदा**--जुज्जदि [ **युज्यते** ]।

( इति तदेव कर्मारभेते )

( नेपथ्ये ) अयमहं भोः ।

**अनसूया**—( कर्णं दत्वा ) सहि सहिं अदिधीणं विअ णिवेदिदं [ **सखि अतिथीनामिव निवेदितम्** ]।

**प्रियंवदा**—णं उडजसंणिहिदा सउंदला। ( आत्मगतम् ) उज्ज उण हिअएण असंणिहिदा [ **ननूटजसंनिहिता शकुन्तला। अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता** ]।

**अनसूया**—होदु अलं एत्तिएहि कुसुमेहिं [ **भवतु अलमेतावद्भिः कुसुमैः** ]

( **इति प्रस्थिते** )।

---

**अनसूया**—ननु = निश्चयेन शकुन्तलायाः = सख्याः सौभाग्यदेवता = सौभाग्यवत्यादिप्रदायिनी हरगौरीमूर्तिः = इन्द्राणी देवता वा अर्चनीयाः = पूजनीयाः ।

**प्रियम्वदा**—युज्यते = आवश्यकमेवेतत् कर्म उचितमिदम् ।

( इति = एवमुक्ते तदेव = पूर्वोक्तं पुष्पावचयं कर्म = कार्यम् आरभते = कुरुतः )

अथ राज्ञः शकुन्तलाविस्मरणकारणसम्पादनायोपक्रमते—( नेपथ्ये = जवनिकायाम् ) भोः = कोऽप्यस्ति, गृहस्वामिनि ! अयम् = एषः दुर्वासा अहम् ते गृहद्वारि=आगतोऽस्मि। कण्वाश्रमान्तिकमागतस्य तत्र कमप्यनवलोकयतः आतिथ्यं परिग्रहीतुमिच्छोर्महर्षेर्दुर्वाससो वचनमिदम् ।

**अनसूया**—( कर्णं दत्वा = आकर्ण्य ) अयमहमित्यादि वचनं श्रुत्वाऽनसूया वदति—सखि प्रियम्वदे ! अतिथीनां = प्राघुणिकानाम् इव = यथा निवेदितम् = आत्मनिवेदनम्, सूचनाऽनुमीयते ।

**प्रियम्वदा**—ननु = सखि ! उटजे = पर्णशालायाम् संनिहिता = उपस्थिता, शकुन्तला = शकुन्तला उटजे अस्त्येवेत्यर्थः । अद्य शकुन्तला पुनः = तु हृदयेन = मनसा असन्निहिता = नोपस्थिता । इदानीं भर्तृगतहृदया सा किमपि न जानातीत्यसन्निहितप्रायैवेत्यर्थः । एवं च अतिथिसत्कारे सा न दत्तावधाना भवेदिति भावः ।

**अनसूया**—भवतु = अस्तु एतावद्भिः = एतन्मात्रैः कुसुमैः = पुष्पैः अलम् = पर्याप्ता । एतावन्ति कुसुमानि वलिकर्मं शकुन्तला सौभाग्यदेवतार्चनयोः पर्याप्तानीत्यर्थः ।

---

**अनसूया**—अरी प्रियम्वदे ! आज शकुन्तला के सौभाग्य देवता का भी तो पूजन करना । इसलिए और फूल भी तोड़ लेना चाहिए।

**प्रियम्वदा**—ठीक है **( पुनः पुष्प तोड़ने लगती है )**

**( नेपथ्य में )** यह मैं अतिथि के रूप में आकर द्वार पर खड़ा हूँ।

**अनसूया**—**( कान लगाकर )** सखि प्रियम्वदे ! यह तो अतिथि की तरह कोई बोल रहा हैं।

**प्रियम्वदा**—तो ठीक है, वहाँ तो कुटी में शकुन्तला है ही। **( मन ही मन में )** किन्तु आज उसका हृदय तो कहीं दूसरी जगह है। अर्थात् राजा दुष्यन्त के चिन्तन में लगी हुई है। इसलिए वह अतिथि के इस शब्द को सुनेगी या नहीं इसमें सन्देह है।

**अनसूया**—अब फूल तोड़ना रहने दो, इतने फूलों से ही काम चल जायेगा।

**( यह कहकर दोनों चल देती है )**

( पुनर्नेपथ्ये ) आ: अतिथिपरिभाविनि !

**विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा**
**तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।**
**स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्**
**कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ॥ १ ॥**

**प्रियंवदा**—हद्धी अप्पिअं एव्व संवुत्तं। कस्सिं पि पूआरुहे अवरद्धा सुण्णहिअआ सउंदला ( पुरोऽवलोक्य ) णहु जस्सिं कस्सिं पि। एसो दुव्वासो सुलहकोवो

---

( पुनर्नेपथ्ये = भूयो जवनिकायाम् ) आ:, अतिथिपरिभाविनि ! = अभ्यागतयमानशीले ! अस्य कर्मणः फलमविलम्बेनातिशीघ्रमेव प्राप्स्यसि ।

**अन्वयः**—अनन्यमनसा यं विचिन्तयन्ती तपोधनं मामुपस्थितं न वेत्सि स प्रमत्तः प्रथमं कृतां कथाम् इव बोधितोऽपि त्वां न स्मरिष्यति ।

आत्मनः परिभवं विवृण्वन् तदनुरूपं फलं प्राप्स्यसीति शापवचनमाह—**विचिन्तयन्तीति**—अन्यः = अपरः मानसे = हृदये यस्याः सा अन्यमानसा न अन्यमानसा अनन्यमानसा यद्वा अनन्यं मानसं यस्याः सा अनन्यमानसा = एकाग्रचित्ता यं कञ्चित् पुरुष विचिन्तयन्ती = विशेषेण विविध वा चिन्तयन्ती = स्मरन्ती तपोनिधि = तपोमूर्ति, चिरसञ्चितविपुलमानसं मां = दुर्वाससम् उपस्थितं = गृहद्वारि स्वयमागतम् न वेत्सि = न जानासि नावबुध्यसे, सः = ते मनोगतो जनः, प्रमत्तः = प्रमादवान् प्रथम = पूर्वं प्रमाददशावस्थायाम् कृताम् = उक्तां कथामिव = वार्तामिव बाधितोऽपि तत्र लिङ्गेन स्मारितोऽपि सन् त्वां=अतिथिजनावमानिनीं भवतीं न स्मरिष्यति=न ज्ञास्यसि ।

**अयं भावः**—महर्षेः कण्वस्याश्रमे आतिथ्यग्रहणार्थं स्वयमुपस्थितो महर्षिर्दुर्वासाः स्वागमननिवेदनमनवधानां द्वारदेशे विषण्णां शून्यहृदयां शकुन्तलां विलोक्य निजावमानेन क्रुद्धः शापं दत्तवान् यत् हे अतिथितिरस्कारिणि ! त्वं यं जनमनन्यमनसा सती चिन्तयसि मां चातिथिं न वेत्सि स प्रमादी पुरुष इव पूर्वं स्वानुभूतां वार्तामिव त्वां नैव स्मरिष्यति । **अत्रोपमा-काव्यलिङ्ग-श्लेष-छेक-वृत्यनुप्रासा अलङ्कारा वंशस्थवृत्तं च ॥ १ ॥**

**प्रियम्वदा**—शापवचनमाकर्ण्य सखेदमाह—हा धिक् = हन्त, धिक्कृतयः अप्रियं = अनभिष्टमेव संवृत्तं = जातम्, कस्मिन्नपि = अज्ञाते पूजार्हे = पूजनीये अतिथिविशेषे हृदयशून्या = अकर्मण्यहृदया शकुन्तला अपराद्धा = अपराधं कृतवती । न खलु = निश्चयेन यस्मिन् कस्मिन्नपि = साधारणं जनं प्रति । एषः = अयम् अभ्यागतः सुलभकोपः = अति-

---

**( पुनः नेपथ्य में )** आ, मुझ अतिथि को इस तरह तिरस्कार कर रही हो, मेरी बात का उत्तर तक नहीं देती । अतः,

अनन्य भाव से जिस राजा दुष्यन्त की चिन्ता करती हुई तू मुझ तपस्वी अतिथि को भी नहीं देख रही हो, वह तेरा प्रिय दुष्यन्त बार-बार तेरे कहने पर भी तुझे उसी प्रकार नहीं पहचानेगा जिस प्रकार उन्मत्त=पागल हुआ दुष्यन्त पहले अपने किए हुए कार्यों को भूल जाता है ॥ १ ॥

**प्रियम्वदा**—हाय, हाय, यह तो वही हुआ, जो मैं पहले से ही समझ रही थी, प्रतीत होता है कि किसी पूजनीय विशेष अतिथि को शून्य हृदया=दुष्यन्त गतमानसा शकुन्तला ने अप्रसन्न

---

पाठा०—१. तपोनिधि ।

महेसी । तह सविअ वेअबलुप्फुल्लाए दुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो । को जण्णो हुदवहादो दहिदुं पहवादि [हा धिक् ! अप्रियमेव संवृत्तम् । कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला । न खलु यस्मिन् कस्मिन्नपि । एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः । तथा शप्त्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः । कोऽन्यो हुतवहाद्दग्धुं प्रभवति ] ।

**अनसूया**--गच्छ पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि णं जाव अहं अग्घोदअं उवकंपेमि [ गच्छ पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनं यावदहमर्घोदकमुपकल्पयामि ] ।

**प्रियंवदा**--तह [ तथा ] । ( इति निष्क्रान्ता ) ।

**अनसूया**--( पदान्तरे स्खलितं निरूप्य ) अव्वो आवेगक्खलिदाए गईए पब्भट्ट मे अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं [ अतो आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्रहस्तात् पुष्पभाजनम् ] । ( इति पुष्पोच्चयं रूपयति )

---

क्रोधः = उग्रक्रोधः महर्षिः दुर्वासाः = दुर्वासामुनिः तथा = यथोक्तप्रकारं शप्त्वा = शापं दत्वा वेगस्य = शीघ्रतायाः = महान् ऋषिः बलेन = शक्त्या उत्फुल्लया = विकसितया दूरोत्क्षिप्तपादन्यासया दुर्वारया = दुर्निवारया निवारयितुमशक्यया गत्या प्रादप्रक्षेपेण प्रतिनिवृत्तः = परावर्तितः आश्रमाद्बहिर्गतः । हुतवहात् = अग्नेर्दग्धुं = ज्वलयितुं अन्यः = अपरः क = को हि पुरुषः प्रभवति = शक्नोति । यथा हुतवह एव झटिति दग्धुं प्रभवति तथैव दुर्वासा अपि शप्तुं शक्नोति नान्यः । अर्थाद् अग्निकल्पात् दुर्वाससः सदृशात् महर्षेर्विना कोऽन्यः शप्तुं शक्नोति, कुलपतेः कण्वस्य दुहितरं शकुन्तलामिति भावः ।

**अनसूया**—सखि शीघ्रं गच्छ = याहि पादयोः = चरणयोः प्रणम्य = नत्वा पतित्वा एनं = दुर्वाससं निवर्तय = परावर्तय = आवर्तय यावत् = अत्रान्तरे अहं = अयं जनः अर्घार्थं = पूजार्थम् उदकं = जलम् इनि अर्घोदकं यद्वा अर्घं = दूर्वाक्षतादियुक्तम् उदकमिति अर्घोदकम् । उपकल्पयामि = सम्पादयामि विदधामि । यावत् स प्रत्यागच्छति तावदहमर्घोदकमुपकल्पयामीत्यर्थः ।

**प्रियम्वदा**—तथा = आम् ( इति = एवमुक्त्वा निष्क्रान्ता = रङ्गभूमितो बहिर्गता ) ।

**अनसूया**—( पदान्तरे = अन्यस्मिन् पदे, स्खलितं = स्खलनं निरूप्य = नाटयित्वा ) अहो = हन्त आवेगेन शापहेतुकेन संभ्रमेण स्खलितया = प्रतिरुद्धया विक्लवागत्या = गमनेन मे = मम अग्रहस्तात् = हस्ताग्रात् पुष्पभाजनं = कुसुमपात्रं प्रभ्रष्टं = निपतितम् ।

( इति = एवमुक्त्वा पुष्पोच्चयं = कुसुमोत्थापनम्, रूपयति = नाटयति )

---

कर दिया है, जिससे वह इस प्रकार शाप दे रहा है। **( सामने की ओर देखकर )** सखि ! शकुन्तला ने किसी ऐसे-तैसे साधारण अतिथिका अपराध नहीं किया है किन्तु यह तो सुलभ कोप, उन अत्यन्त क्रोधी महर्षि दुर्वासा हैं, जो इस प्रकार शाप देकर जल्दी-जल्दी लम्बे-लम्बे पैर रखते हुए लौटे जा रहे हैं।

**अनसूया**—अब तू शीघ्र जा, उनके पैर में पड़कर उन्हें लौटा ले आ, तब तक मैं भी उनके अतिथि सत्कार के निमित्त अर्घ्यजल आदि तैयार करती हूँ।

**प्रियम्वदा**—ठीक है, **( निकल जाती है )**

**अनसूया**—**( अगले कदम पर ठोकर खाने का अभिनय कर )** हाय, घबड़ाहट और जल्दी से चलने के कारण ठोकर लग जाने से मेरे हाथ से यह फूलों की डलिया जमीन पर गिर गई है। यह अपशकुन = अमंगल सूचक हुआ ? **( गिरे हुए फूलों को चुनने का अभिनय करती हैं )**

( प्रविश्य )

**प्रियंवदा**--सहि पकिदिवक्को स कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि ? किं वा उणा साणुक्कोसो किदो [ **सखि प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति ? किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः** ]।

**अनसूया**--( सस्मितम् ) तस्सिं बहु एदं पि, कहेहि [ **तस्मिन् बह्वेतदपि, कथय** ]।

**प्रियंवदा**--जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि तदा विण्णविदो मए भअवं पढम त्ति पेक्खिअ अविण्णादतवप्पहावस्स दुहिदुजणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वोत्ति [ **यदा निवर्त्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया भगवन् प्रथम इति प्रेक्ष्याविज्ञाततपःप्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षितव्य इति** ]।

---

**प्रियम्वदा**—( प्रविश्य = अन्तः आगत्य ) सखि ! = आलि अनसूये ! प्रकृतिवक्रः = स्वभावकुटिलः सः = महर्षिः दुर्वासा कस्य अनुनयं = प्रार्थनां प्रतिगृह्णाति = स्वीकरोति । किमपि = ईषत् पुनः = तु सानुक्रोशः = सदयः कृतः = विहितः ।

**अनसूया**—( सस्मितं = स्मितेन–ईषद्धास्येन सह सस्मितम् ) तस्मिन् = दुर्वाससि एतदपि = इदमपि ईषत् सानुक्रोशत्वम् । कथय = वद ।

**प्रियम्वदा**—यदा = यस्मिन् काले निवर्तितुं = प्रत्यावर्तितुं न इच्छति = न वाञ्छति तदा मया विज्ञापितः = निवेदितः दुर्वासा यत् भगवन् = श्रीमन् ! प्रथमः = आद्यः अपराधः = आगः इति = एवं प्रेक्ष्य = दृष्ट्वा विचार्य तपसः = तपस्याया प्रभावः = शक्तिः—तपःप्रभावः विज्ञातः तपःप्रभावो येन स विज्ञाततपःप्रभावः न विज्ञाततपःप्रभाव इति अविज्ञाततपःप्रभावः तस्य अविज्ञाततपःप्रभावस्य = अज्ञातत्वत्तपोवीर्यस्य दुहितृजनस्य = कन्यालोकस्य कन्याकल्पायाः शकुन्तलायाः पुत्र्याः एक अपराधः भगवता = श्रीमता दुर्वाससा एकः = केवलः अपराधः = आगः मर्षितव्यः = क्षन्तव्य इति ।

---

**प्रियम्वदा**—( **प्रवेश कर** ) हे सखि प्रियम्वदे ! दुर्वासा तो मानो साक्षात् शरीर धारण किए ए क्रोध ही है अर्थात् वे तो क्रोध की मूर्ति हैं। भला वे किसको अनुनय-विनय सुनते हैं, किन्तु बड़ी कठिनाई से मैंने उन्हें किसी प्रकार प्रसन्न कर ही लिया ।

**अनसूया**—( **मुस्कराकर** ) चलो, दुर्वासा के विषय में यही बहुत है ।

**प्रियम्वदा**—बहुत प्रार्थना करने पर भी अब वे आश्रम पर नहीं लौटने को राजी हुए, तब मैंने उनके पैरों पर पड़ कर उनसे प्रार्थना की कि—हे भगवन् ! आपके तप के प्रभाव को न जानने वाली आपकी पुत्री के समान उस शकुन्तला का यह पहला ही अपराध है इसलिए कृपया आप इसे क्षमा करें ।

**विशेष**—ऋषियों में महर्षि दुर्वासा बड़े क्रोधी माने जाते हैं, उनको मनाना साधारण बात नहीं है, पर अनसूया ने अनुनय-विनय पूर्वक पैरों पर पड़कर उन्हें मना ही लिया । उसने सोचा कि जब तक इनके बराबर शक्ति का प्रयोग न होगा तब तक ये मानने वाले नहीं, उसने बताया कि महाराज ! आपके समान ही तपस्वी महर्षि कण्व भी हैं, जो इस शकुन्तला के धर्म पिता हैं। जैसे वह उनकी पुत्री है वैसे ही आपकी भी पुत्री है, फिर बालिका है, जिससे वह आपकी तपःशक्ति नहीं जानती है। ऐसी दशा में कम से कम प्रथम अपराध को तो कृपया क्षमा कर ही दीजिए। तदनुसार उन्होंने अँगूठी दर्शन तक शाप को सीमित कर दिया ।

**अनसूया**--तदो तदो [ **ततस्ततः** ]।

**प्रियंवदा**--तदो मे वअणं अण्णहामविदुं णारिहदि। किंदु अहिण्णाणाभरणदंसणेण सावो णिवत्तिस्सदि त्ति मंतअतो अंतरिहिदो [ **ततो मे वचनमन्यथाभवितुं नार्हति किन्त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निर्वात्तिष्यत इति मन्त्रयन् स्वयमन्तर्हितः** ]।

**अनसूया**--सवकं दाणिं अस्ससिदुं। अत्थि तेन राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअंकिअं अंगुलीअअ सुमरणीअंति सअं पिणद्धं। तस्सिं साहीणोबाआ सउदला भविस्सदि [ **शक्यमिदानीमाश्वासयितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा प्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम् तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति।** ]

**प्रियंवदा**--सहि एहि देवकज्ज दाव निव्वत्तेम्ह [ **सखि एहि देवकार्यं तावन्निर्वर्त्तयावः** ] ( इति परिक्रामतः )।

---

**अनसूया**—ततस्ततः = तत्पश्चात् किं जातम् तत्पश्चात् किं जातम् ?

**प्रियम्वदा**—ततः=तदनन्तरं मे=वचनमन्यथा भवितुं नहीति = मया यदुच्यते तत्तथैव भविष्यतीत्यर्थः। किन्तु अभिज्ञानाभरणदर्शनेन—अभिज्ञायते येन तत् अभिज्ञानम् = परिचायकं तादृशं यदाभरणं = भूषणं तस्य दर्शनेन शापो निर्वतिष्यते = शापमोक्षो भविष्यतीत्यर्थः। इति = एवं मन्त्रयन् = कथयन् स्वयम् = आत्मना अन्तर्हितः = अन्तर्धानमवाप।

**अनसूया**—प्रियम्वदा विषादमपनयन्ती अनसूया प्राह—शक्यमिदानीमाश्वासयितुं = शक्यं = सम्भवति इदानीमधुना आश्वासयितुं = प्रस्थापयितुम् अधुना अनेन वचनेन कथञ्चित् आश्वस्ता भवामीत्यर्थः। तेन राजर्षिणा दुष्यन्तेन संप्रस्थितेन = प्रस्थानकाले इतः गतेन स्वनामधेयाङ्कितं निजनामलिखितम् अङ्गुलीयकं = मुद्रिकां त्वया अनेन अभिज्ञानेन गान्धर्वविवाहादिकं सर्वं घटितं स्मरणीयम् इति = एवमुक्त्वा स्वयम् = आत्महस्तेन पिनद्धं = परिधापितम्। तस्मिन् = तस्य शापस्य विषये स्वस्य = आत्मनः अधीनः = आयत्तः उपायः = प्रतीकारः यस्या सा स्वाधीनोपाया = स्वायत्तसाधना शकुन्तला भविष्यति = स्यात्।

**प्रियम्वदा**—अनसूयावचनेन निश्चिन्ता प्रियम्वदा अनन्तरकरणीयं निरूपयन्नाह—सखि !=आलि–अनसूये ! एहि = आगच्छ तावत् देवकार्यं = देवपूजाप्रभृति निर्वर्तयावः = अनुतिष्ठावः। ( इति = एवमुक्त्वा परिक्रामतः = गच्छतः )।

---

**अनसूया**—हाँ, तब क्या हुआ ?

**प्रियम्वदा**—तब उन्होंने कहा कि मेरा वचन तो मिथ्या हो नहीं सकता, किन्तु अँगूठी आदि आभूषण = चिह्न दिखाने से ही यह शाप छूट जायेगा—ऐसा कहते ही कहते वे महर्षि वहीं अन्तर्हित हो गये।

**अनसूया**—अच्छा, तब तो कुछ धीरज करने की बात हुई, क्योंकि उस राजर्षि दुष्यन्त ने जाते समय स्वयं ही शकुन्तला के हाथ में स्मृति चिह्न के स्वरूप में अपने नाम के अक्षरों से अङ्कित अँगूठी पहना दी है। वही उपाय उनको दिखाने के लिए शकुन्तला के पास स्वाधीन रहेगा। इस प्रकार उनकी दी हुई अँगूठी को दिखाकर शकुन्तला उस दुष्यन्त को याद दिला देगी।

**प्रियम्वदा**—हे सखि ! आओ, अब इस शकुन्तला के सौभाग्य देवताओं की पूजा आदि के आवश्यक कार्य को हमलोग सम्पन्न करें। **( दोनों घूमती है )**

**प्रियंवदा**—( विलोक्य ) अणसूए पेक्ख दाव । वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही । भत्तुगदाए चिंताए अत्ताणं विण एषा विभावेदि । किं उण आअंतुअं [ **अनसूये पश्य तावत् । वामहस्तोपहितवदनालिखितेव प्रियसखी । भर्तृगतया चिन्तयात्मानमपि नषा विभावयति । किं पुनरागन्तुकम् ।** ]

**अनसूया**—पिअवदे दुवेणं एव्व णं णो मुहे एसो वुत्तंतो चिट्ठदु । रक्खिदव्वा खु पकिदिपेलवा पिअसही । [ **प्रियंवदे द्वयोरेव ननु नौ मुख एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी ।** ]

**प्रियंवदा**—को णाम उण्होदएण णोमालिअं सिंचेदि [ **को नाम उष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति** ] । ( इत्युभे निष्क्रान्ते )

---

**प्रियम्वदा**—( विलोक्य अनसूये, तावत् पश्य = अवलोकय ) वामे = सव्ये हस्ते = करे उपहितं = स्थापितं वदनं = मुखं यया सा वामहस्तोपहितवदना = वामकरतलनिविष्टकपोला आलिखिता = चित्रे अर्पिता चित्रितेव प्रियसखी = शकुन्तला भर्तृगतया = भर्तारं पतिं गता = प्राप्ता तया भर्तृगतया चिन्तया = विचारेण आत्मानमपि = स्वमपि एषा = इयं प्रियसखी शकुन्तला न विभावयति = न जानाति । किं पुनः = का कथा आगन्तुकं = अतिथिं विभावयेव । काहं, किं करोमि, कुत्र तिष्ठामि, इत्याद्यात्मविषयकमपि ज्ञानमस्या नास्ति । अनया समीपमागतोऽपि दुर्वासाः न लक्षित इति न चित्रमिति भावः ।

**अनसूया**—हे प्रियम्वदे ! द्वयोः = उभयोः एव ननु नौ = आवयोः मुखे = वदने एषः = अयं शापस्य वृत्तान्तः = उदन्तः तिष्ठतु = नियमितो भवेत्, हृदये निहितोऽस्तु । एष वृत्तान्तो नान्यस्य कस्यचिद्वाच्येत्यर्थः, रक्षितव्या, खलु = निश्चयेन प्रकृतिपेलवा = स्वभावसुकुमारप्रियसखी प्रिया = वल्लभा सखी = आली इति प्रियसखी शकुन्तला । यद्येषा कुतोऽपि वृत्तान्तममुं श्रोष्यति तदा सद्या विपद्येतेति भावः ।

**प्रियम्वदा**—शकुन्तलाया एतन्निवेदनं सर्वथानुचितमिति दृष्टान्तमुखेन प्रियम्वदा प्राह—कः जनो नाम उष्णोदकेन द्रव्यं = तप्तं यदुदकं = जलमिति उष्णोदकं तेन उष्णोदकेन = तप्तजलेन नवमालिकाम् = नवमालतीलताम् सिञ्चति = उक्षति भूतस्य शकुन्तलापरिणयस्य भविष्यतः शापादिवृत्तान्तस्य च सूचकत्वादयं विष्कम्भको नानार्थोपक्षेपकः शुद्धश्च प्राकृतभाषि सखीद्वयप्रयुक्तत्वात् समाप्त इति ।

( इति = एवमुक्त्वा उभे = द्वे निष्क्रान्ते = निर्गते )

---

**प्रियम्वदा—( देखकर )** हे अनसूये ! देख तो यह प्रियसखी शकुन्तला अपने बायें हाथ की हथेली पर अपना गाल रख कर चित्रलिखित सी होकर अपने प्यासे के चिन्तन में ऐसी तल्लीन हो रही है कि अपने को भी यह नहीं जान रही है, तब अतिथि की तो भला बात ही क्या है ?

**अनसूया**—हे सखि प्रियम्वदे ! दुर्वासा के शाप की यह बात मेरे और तेरे मन में ही रहनी चाहिए, क्योंकि स्वभाव से ही अत्यन्त कोमल स्वभाव वाली इस शकुन्तला की रक्षा भी तो हमें करनी है ।

**प्रियम्वदा**—ठीक है, भला ऐसा कौन होगा जो नेवारी के कोमल पौधे को गर्म जल से सींचेगा ? **( यह विचार कर दोनों चली जाती है )**

**विशेष**—दुर्वासा मुनि का शाप शकुन्तला को सुनना तथा नेवारी के पौधे में गर्म जल देना

[1]विष्कम्भः।

( ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः )

**शिष्यः**—वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासादुपावृत्तेन काश्यपेन। प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि कियदवशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्त प्रभातम्। तथा हि—

**यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-**
**माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।**

---

उष्णोदकेन नवमालिकायाः सेचनमिव शकुन्तलाया एतद्वृत्तान्तनिवेदनमिति को वा सचेता तत् कुर्यात्। एतेन तां प्रति शापकथनमत्यन्तमनुचितमिति आविष्कृतः। अतस्त्वया न भेत्तव्यम्। इति भावः।

अथ कुलपतेः कण्वस्य प्रवासात् प्रत्यागमनं सूचयितुं शिष्यस्य प्रवेशमाह–( ततः = सखीद्वयनिर्गमनानन्तरं सुप्तं=स्वापः तस्मादुत्थितः सुप्तोत्थितः यद्वा आदौ सुप्तः पश्चादुत्थित इति सुप्तोत्थितः = स्वापानन्तरं प्रबुद्धः गुरुशुश्रूषां निवर्त्य तदादेशेन नक्षत्रनिरीक्षणाय निर्गतः निद्रा निर्घूर्णितलोचनः शिष्यः = कण्वस्यान्तेवासी प्रविशति = रङ्गमञ्चे दृश्यते )।

**शिष्यः**—प्रविशत्यस्मिन्निति प्रवासो विदेशः तस्मात् प्रवासात्=यात्रातः प्रतिनिवृत्तेन= उपावृत्तेन सोमतीर्थात् आगतेन तत्रभवता=पूज्येन काश्यपेन = कश्यपगोत्रोत्पन्नेन कुलपतिना वेलायाः = समयस्य उपलक्षणार्थं = नक्षत्रैरुपलक्ष्यज्ञानार्थं = समयपरिज्ञानार्थम् आदिष्टः= आज्ञापितोऽस्मि। प्रकाशं = वृक्षादिना अनावृतं निरावरणं प्रदेशं निर्गतः = निष्क्रान्तः आवरणरहिते स्थाने स्थितः तावत् अवलोकयामि = अवगच्छामि, पश्यामि यत् रजन्याः = रात्र्याः कियत् = किंपरिमाणम् अवशिष्टं = निशाया कियान् भागः अवशिष्टः, इति ( परिक्रम्य = किञ्चिच्चलित्वा अवलोक्य = दृष्ट्वा च ) हन्त = खेदे अहो, प्रभातं–प्रकृष्टं भातम् = अवलोको यस्मिन्निति प्रभातम् = प्रातर्जातम्।

**अन्वयः**—एकतः ओषधीनां पतिः अस्तशिखरं याति एकतः अरुणपुरःसुरः अर्कः आविष्कृतः : लोकः तेजोद्वयस्य युगपत् व्यसनोदयाभ्याम् आत्मदशान्तरेषु नियम्यते इव।

सोमतीर्थयात्रातः प्रतिनिवृत्य समयज्ञानार्थमादिष्टः कुलपते कण्वस्य शिष्यः गगन-

---

दोनों बराबर है, क्योंकि नेवारी अत्यन्त कोमल होती है। अतः उसके पौधे में गरम पानी से सीचने मे वह तत्काल मुर्झा जाती है। इसी प्रकार स्वभावतः सुकुमारी शकुन्तला भी शाप की बात को सुनकर व्याकुल हो जायेगी तथा संभवतः प्राणत्याग भी कर सकती हैं। इसलिए दोनों सखियों ने शाप की बात को अपने तक ही सीमित रखा।

विष्कम्भ = इधर-उधर की बातों की आवश्यक सूचना देना भूत शकुन्तला परिणय और भावी दुर्वासा के शाप की सूचना देने के कारण यह विष्कम्भ नानार्थोपक्षेपक तथा शुद्ध है।

**( इसके बाद सोकर उठे हुए कण्व के शिष्य का प्रवेश )**

**शिष्य**—प्रवास = यात्रा से लौटकर आये हुए कुलपति गुरुवर जी मुझे समय जानने के लिए आज्ञा दी है? अतः बाहर निकल कर देखूँ कि रात कितनी बाकी है? **( कुछ चल कर आकाश की ओर देख कर )** ओह, रात तो बीत चुकी है, अब सबेरा होना ही चाहता हैं, क्योंकि देखो—

एक ओर पश्चिम में तो ओषधियों के पोषक स्वामी भगवान चन्द्रमा अस्ताचल पर जा रहे हैं

---

पाठा०—१. प्रवेशकः।

तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत [1]इवात्मदशान्तरेषु ॥ २ ॥

अपिच—

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा ।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥ ३ ॥

---

मण्डलमवलोकयन् ब्रवीति–यात्येकत इति । एकतः = एकस्यां दिशि, पश्चिमदिग्भागे ओषधीनां = वनस्पतीनां, तृणज्योतिषां पतिः स्वामी, चन्द्रः अस्तशिखरं = अस्ताचलाग्रं याति, अस्तं गच्छति । एकतः = अपरस्यां पूर्वस्यां दिशि अरुणः = अनूरुर्विनतापुत्रः पुरःसरः = अग्रयायी यस्यासौ अरुणपुरः सरः = अरुणसारथिः अर्कः = सूर्यः आविष्कृतः = उद्गच्छति । लोकः = जगतः स्थैर्यास्थैर्यविवेकरहितो जनः तेजोद्वयस्य = चन्द्रस्य सूर्यस्य च युगपत् = समकालम् व्यसनोदयाभ्यां, = सङ्कटसमुन्नतिभ्यां, सम्पद्विपद्भ्यां आत्मदशान्तरेषु = सुखदुःखात्मस्वदशाविशेषेषु नियम्यते इव = सुखदुःखयोरनियतत्वात्तयोः प्राप्तौ हर्षशोकावनुचिताविति शिक्ष्यते इव । तथा च समस्तप्रपञ्चप्रवर्तकयोः सोमसूर्ययोरपि एकस्य आपत्, अन्यस्य सम्पत्, एकस्य सम्पत्तिः, अपरस्य च विपत्तिः इति पर्यायेण प्रवर्तमानयोरापत्संपदो हर्षशोकाभ्यां वैवश्यं मा भूदिति दैवेन उपदिश्यते इवेति । स्वस्वविपत्तिसम्पत्तिदशयोः न केनापि दुःखहर्षौ कार्याविति भावः । अत्र समासोक्ति-तुल्ययोगितोत्प्रेक्षा-निदर्शनाद्यलङ्काराः वसन्ततिलका छन्दश्च ॥ २ ॥

अथ प्रासङ्गिकचन्द्रवृत्तान्तद्वारा प्रस्तुतमर्थं स्फुटीकुर्वन्नाह—अपि च-अन्तर्हित इति ।

**अन्वयः**—शशिनि अन्तर्हिते ( सति ) सैव कुमुद्वती संस्मरणीयशोभा ( सती ) मे दृष्टिं न नन्दयति, अबलाजनस्य इष्टप्रवासजनितानि दुःखानि अतिमात्रसुदुःसहानि नूनं भवन्ति ।

प्रासङ्गिकचन्द्रवृत्तान्त-द्वारा प्रस्तुतमर्थं स्पष्टीकुर्वाणः कण्वशिष्यः कथयति—**अन्तर्हिते** इति । शशिनि = राकाशशाङ्के पूर्णचन्द्रे अन्तर्हिते = अस्तं याते सति सैव कुमु-

---

दूसरी ओर पूर्व दिशा में भगवान् भास्कर सूर्य अब उगना ही चाहते हैं । इस प्रकार एक ही साथ दो तेजों मण्डलों के उत्थान और पतन होने से इस संसार को भी नाना प्रकार की सूचना प्राप्त हो रही है ॥ २ ॥

**विशेष**—यहाँ एक ओर चन्द्रमा का अस्त होना = पतन और दूसरी ओर सूर्य का उदय = अभ्युदय हो रहा है । इसी प्रकार इस विश्व में भी एक का अधःपात होता है तो वह रोता है उसी समय दूसरे का अभ्युदय होता है तो वह हँसता है, यही संसार की दशा है । सूर्य-चन्द्रमा के दृष्टान्त में इसी दशा को सूचित करना कवि का लक्ष्य है । जब विश्व के नियन्ता ये दोनों तेज व्यसन एवं उदय के वश में हैं तो साधारण मनुष्यों की क्या गति है ?

और भी—

चन्द्रमा के अन्तर्हित = अस्त होते ही वही कुमुदिनी है, जो चन्द्रमा के रहते विश्वसित रह कर हृदय को आनन्द देती थी, अब उसकी शोभा केवल याद करने की बात रह गयी है, ठीक ही

---

पाठा—१. इवैष दशान्तरेषु ।

( प्रविश्यापटीक्षेपेण )

**अनसूया**—जइ वि णाम विसअपरम्मुहस्स वि जणस्स एदं ण विदिअं तह वि तेण रण्णा सउंदलाए अणज्जं आअरिदं [ **यद्यपि नाम विषयपराङ्मुखस्यापि जनस्यैतन्न विदितं तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायामनार्यमाचरितम्** ]।

---

द्वती = पूर्वमभिनन्दित-सौन्दर्यसौभाग्यातिशया कुमुदिनी संस्मरणीया = संस्मरणमात्रेणानुभवितुं योग्या अदृश्या शोभा = सुषुमा सुन्दरता यस्याः सा संस्मरणीयशोभा—स्मरणीयशोभातिशयसौभाग्या सती मे = मम दृष्टिं = लोचनं न नन्दयति = न हर्षयति । चन्द्रे सन्निहिते लोचनलोभनीयसौन्दर्यापि कुमुदनी तस्मिन्नस्तं प्रयाते व्यवहिते सति नष्टसुषुमासौभाग्या सती लोचनयोर्हर्षं न जनयतीत्याशयः । अबलाजनस्य = स्त्रीजनस्य इष्टस्य = प्रियस्य प्रवासेन = दूरदेशवासेन जनितानि = उत्पादितानि, स्वप्रियविप्रयोगसमद्भूतानि दुःखानि = कष्टानि अतिमात्रं = अत्यर्थं सुदुःसहानि = दुःखेनोद्वहनीयानि इति अतिमात्रसुदुःसहानि कष्टेन सोढव्यानि नूनं = निश्चयेन भवन्ति = जायन्ते ।

**अयं भावः**—या कुमुदिनी निजसहचरशशिसन्निधाने प्रफुल्लितपुष्पा सती रसिकानां हृदयेषु परमानन्दं समुत्पादयति । सैव कुमुद्वती शशिनोऽस्तंगमनात् अत्यन्तं दुःखिता सती परित्यक्ताङ्गसंस्कारामरणा वनितेव विगतसुषमा न लोचनानन्दं जनयति, यतो हि प्रियप्रवासजन्या पीडा स्वभावतः सुकुमारीणां नारीणां नूनं सुदुःसहा भवति । अत्र कुमुदनीतुल्या शकुन्तला, चन्द्रतुल्यो राजा दुष्यन्तो, बोद्धव्यः—इति गूढोऽर्थः ।

अर्थान्तरन्यास-समासोक्ति-काव्यलिङ्गाद्यलङ्कारा वसन्तलिका वृत्तं च ॥ ३ ॥

पूर्वोक्तशिष्यवचनश्रवणानन्तरं प्रबुद्धाः अनसूया ( अपटीक्षेपेण = जवनिकां विनैव प्रविश्य = रङ्गमञ्चे उपस्थाय ) 'अपटी काण्डपटिका प्रतिसीरा जवनिका तिरस्करणी' इति हलायुधः ।

यद्यपि असूचितस्य पात्रस्य नाटके प्रवेशोऽनुचितः तथापि'पटीक्षेपेण कर्तव्यमार्तराजप्रवेशनम्' इत्युक्तेःशकुन्तलाया दुःखातिशयेन प्रभातकालिककार्यत्वरया चार्तया अनसूयायास्तथा प्रवेशो नानुचितः । कैश्चित्तु पटीक्षेपो न कर्तव्य आर्तराजप्रवेशने' इति पाठान्तरं कुर्वद्भिः अपटीक्षेपेणेत्यस्य जवनिकानपसारणेनैवेत्यर्थः क्रियते ।

**अनसूया**—अथ तथा प्रविष्टा प्रियसख्याः शकुन्तलाया वियोगदुःखं तन्निदानभूतां राजकर्तृकामुपेक्षां विचिन्तयन्तीं दूयमानचेताः चिन्तातिरेकेण जागरणेनैव निशां नयन्ती कस्यांचित् रात्रौ कथमपि निद्रामवाप्य प्रभाते प्रबुद्धा तत्समये पूर्वोक्तं कण्वशिष्योक्तं वचनमाकर्ण्य पुनः समुद्बुद्धचिन्तासंस्कारदुःखिता सर्वस्यास्य क्लेशस्य निदानं राजा

---

अबलाजनों के लिए अपने प्रिय के वियोग से जनित दुःख को सहन करना बड़ा ही कठिन होता है। ठीक ही हैं, प्रिय के वियोग में स्त्रियों की यही दशा होती है ॥ ३ ॥

**विशेष**—कुमुदिनी का फूल चन्द्रमा को देखकर रात में विकसित होता है तथा चन्द्रमा के अस्त होते ही दिन में वह संकुचित हो जाता है जिससें उसकी शोभा चली जाती है। यही हाल शकुन्तला का भी है जो प्रिय दुष्यन्त के वियोग से ऐसी हो रही है।

**अनसूया**—( **बीच में ही पर्दा उठा प्रविष्ट होकर** ) यद्यपि विषयों से स्वभावतः विमुख सरल स्वभाव तपस्वियों को यह सब प्रेम का व्यवहार विदित नहीं है तथापि निर्विवाद है कि उस राजर्षि ने शकुन्तला के प्रति अनुचित आचरण किया है।

**शिष्यः**—यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि। ( इति निष्क्रान्तः )

**अनसूया**—पडिबुद्धा वि किं करिस्सं। ण मे उइदेसु वि णिअकरणिज्जेसु हत्थपाआ पसरंति। कामो दाणिं सकामो होदु। जेण असच्चसंधे जणे सुण्णहिअआ सही पदं कारिदा। अहवा, दुव्वाससो कोवो एसो विआरेदि। अण्णहा कहं सो राएसी तारिसाणि मंतिअ एत्तिअस्स कालस्स लेहमेत्तं वि ण विसज्जेदि। ता इदो अहिण्णाणं अंगुलीअअं से विसज्जेम। दुक्खसीले तवस्सिजणे को अब्भत्थीअदु। णं सहीगामी दोसो त्ति व्ववसिदा वि ण पारेमि, पवासपरिणिउत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्संतपरिणीदं आवण्णसत्तं सउंदलं णिवेदिदुं इत्थंगए अम्हेहिं किं करणिज्जं। [ **प्रतिबुद्धापि किं करिष्ये न मे उचितेष्वपि निजकार्येषु हस्तपादं प्रसरति। काम इदानीं सकामो भवतु। येनासत्यसंधे जने शून्यहृदया सखी पदं कारिता। अथवा, दुर्वाससः कोप**

---

दुष्यन्त एवेति निश्चिन्वाना अनसूया तस्मिन् रोषपूर्वकमाह—यद्यपि = यदपि नाम संभावनायाम् विषयेभ्यो = शब्दस्पर्शादिभ्यः पराङ्मुखस्य = विमुखस्यापि जनस्य = व्यक्तेः, विषयविरतस्य जनस्य एतत् = इदं प्रेम विषयिजनवृत्तम् विदितं = न ज्ञात तथापि = तदपि तेन = राज्ञा दुष्यन्तेन तथा प्रतिज्ञाय शकुन्तलायां=शकुन्तलाविषये न आर्यमनार्यं अनुचिताचरितम् असज्जनोचितम् अनुष्ठितम्। तेन राज्ञा तथाप्रतिज्ञाय स्वपुरं गत्वा शकुन्तलायाः स्मरणमपि न कृतमितीदमनार्यजनजुष्टं क्रियते इत्यर्थः। यद्वा विषयपराङ्मुखस्य मद्विधस्य जनस्य एतत् विषयिजनवृत्तं न विदितमित्यर्थयोजना कर्तव्या। तथाहि यद्यपि विषयपराङ्मुखो अहं सामान्यतो विषयजनवृत्तान्तं न जानामि तथापि तेन राज्ञा तथा प्रतिज्ञाय स्वराजधानीमुपस्थाय शकुन्तलायाः स्मरणमपि न क्रियते इत्यनार्यमाचरितं जानामीति भावः।

**शिष्यः**—स्वकर्तव्यमनुसन्दधानः शिष्यः प्राह—यावत् = वाक्यालङ्कारे उपस्थितां = प्राप्ताम्, होमवेलां = हवनकालं गुरवे = आचार्याय कण्वाय निवेदयामि = सूचयामि। ( इति = एवमुक्त्वा निष्क्रान्तः = रङ्गभूमितो निर्गतः ) इदं शिष्य प्रवेशकलनं महर्षेः कण्वस्य सोमतीर्थात् प्रत्यागमनसूचनार्थम्, अनसूयावचनावकाशदानार्थं च।

**अनसूया**—प्रतिबुद्धा = त्यक्तनिद्रा, जागरिता अपि, किं करिष्ये = किं विधास्ये, सुप्तेव किमपि कर्तुं न प्रभवामीत्यर्थः। उचितेष्वपि = अभ्यर्थेषु समीचीनेष्वपि निजकार्येषु = स्वशरीरकार्येषु गृहकार्येषु च मे = मम हस्तौ च पादौ चेति हस्तपादं = करचरणं न प्रसरति = न चलति। मम हस्तौ पादौ च स्वोचिते कार्ये व्यापारं कर्तुं न प्रभवत इत्यर्थ कामः = हिताहितविचारसाहित्येन प्रवर्तनशीलः स्मरः इदानीं सख्याविरहदशायाम् सकामः = सफलमनोरथः भवतु = जायताम्। अनुरक्तयोरमात्ययोः परस्परं वियोग एव

---

**शिष्य**—जरा गुरुजी को बता दूँ कि होम का समय हो गया है। **( बाहर जाता है )**

**अनसूया**—अब तो सबेरा हो गया। अतः जल्दी शय्या से उठी हूँ जल्दी उठकर ही क्या करूँगी ? चिन्ता के कारण आवश्यकीय प्राभातिक कृत्य—स्नान, ध्यान, जप, तप, पूजा, पाठ, गृह मार्जन आदि ने भी हाथ पाँव नहीं पसरते। अब उस निर्दय कामदेव की इच्छा तो पूरी हुई जिसने ऐसे झूठे मिथ्या प्रतिज्ञावाले पुरुष राजा दुष्यन्त में शुद्धहृदया सखी शकुन्तला का मन आसक्त = अनुरक्त कर दिया है। **( कुछ स्मरण करके )** अथवा उस धर्मात्मा राजर्षि दुष्यन्त का भी इसमें

एष विकारयति । अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावत्कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति । तदितोऽभिज्ञानमङ्गुलीयकं तस्य विसृजावः । दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम् । ननु सखीगामी दोष इति व्यवसितापि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीतामापन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम् । इत्थं गतेऽस्माभिः किं करणीयम् ] ।

---

कामस्याभिमतः सम्प्रति दुष्यन्तस्यापेक्षया तेन शकुन्तलाया वियोगं सम्पाद्य पूर्णमनोरथो भवत्वित्यर्थः । येन = यद्द्वारा असत्यसन्धे–सत्या सन्धा = प्रतिज्ञा यस्य स सत्यसन्धः न सत्यसन्धः असत्यसन्धः तस्मिन् असत्यसन्धे = मिथ्याप्रतिज्ञे जने = जनस्य विषये शून्यहृदया–शून्यं = रिक्तं हृदयं = आन्तरं यस्या सा शून्यहृदया = वञ्चनाशून्यहृदया सखी पदं कारिता = स्थानं लम्भिता, अवतारिता ( स्मृत्वा ) अथवा = यद्वा नात्र कामस्य राज्ञो वा दोषः, अपितु दुर्वाससः एष कोपः = क्रोधस्तज्जन्यशापः एव विकारयति = अन्यथा कारयति । अन्यथा = नो चेत् स राजर्षिः = दुष्यन्तः कथं – केन प्रकारेण तादृशानि = तत्प्रकाराणि वचनानि मन्त्रयित्वा = कथयित्वा एतावत्कालस्य – एतावन्तं कालमभिव्याप्य लेखमात्रं = केवलं लेखपत्रमपि न विसृजति = दूतद्वारा न प्रेषयति । तस्मात् शापहेतुकमेवेदं विस्मरणमिति तर्कयामीत्यर्थः । ( विचिन्त्य ) तत् = तर्हि इतः = अस्मात् स्थानात् अभिज्ञानं = परिचयचिह्नम्–अङ्गुलीयकं = मुद्रिकाम् तस्य = तं प्रति विसृजावः = प्रेषयावः ।

अभिज्ञानाङ्गुलीयकस्य विसर्जने विश्वस्तस्य प्रेष्यस्याभावं निरूपयन्ती सविषादमाह– दुःखशीले = तपःक्लेशशीले यमनियमव्रतोपवासादिनियमपरायणे शृङ्गारकथाऽयोग्ये विषयविरसे तपस्विजने = तपस्विजनमध्ये को नु तपस्वी–अभ्यर्थ्येताम् = प्राथ्यर्ताम् कं प्रेषयावः, न कोऽपि प्रेषणयोग्य इत्याशयः । ननु संभावनायां सखीगामी = शकुन्तलासम्बद्धः दोषः = गुरुजनानुज्ञां विना स्वातन्त्र्येण राज्ञा सह गान्धर्वविवाहकस्य लक्षणोऽपराधः, यद्वा कथमियं पूर्वापरानुसन्धानमन्तरा तस्मै खलु अपरिचिताय दुष्यन्ताय आत्मानं

---

कोई दोष नहीं है । यह तो दुर्वासा का ही प्रभाव प्रतीत हो रहा है जो वह राजा शकुन्तला को भी भूल गया हैं और बुलाना तो दूर रहा, बात तक वह नहीं कर रहा है । अन्यथा वह राजर्षि दुष्यन्त अनेक प्रकार की लम्बी-चौड़ी प्रतिज्ञायें करके तथा शकुन्तला को बड़ी-बड़ी आशायें दिला कर अब इतने दिन बीत गये पर कुशल-क्षेम की बात चिट्ठी-पत्री, सन्देश भी दूत के द्वारा भेज सकता था ? **( पुनः कुछ विचार कर )** तो क्या, यहाँ उस राजनामाङ्कित अंगूठी को ही परिचय के रूप में राजा के पास भेजा जाय ? अथवा तपोनिष्ठ, व्रत, नियम आदि के नानाविध कष्टों को सहन करने वाले इन दुखिया तपस्वी के बीच में-से किसी को भेजने को कहें, किसको वहाँ भेजे ? तथा यह तो सखी का दोष है । इसलिए इसे किसी से कहने में भी हम असमर्थ हैं । और इसी कारण सोमतीर्थ की यात्रा से लौटकर आये हुए पिता कण्वजी से भी शकुन्तला-दुष्यन्त का गन्धर्व विधि से विवाह हो गया है तथा शकुन्तला गर्भवती हो गई है—इस बात को कहने में हम असमर्थ हैं । अतः कुछ समझ में नहीं आता कि हमें इस प्रसंग में अब क्या करना चाहिए ?

**विशेष**—अनसूया को विशेष चिन्ता इस बात की है कि आज राजा दुष्यन्त को गये कितने दिन बीत गये, पर उन्होंने लम्बी-लम्बी दिलासा दिलाकर जाने पर न तो कोई पत्रादि भेजा

( प्रविश्य )

**प्रियंवदा**—( सहर्षम् ) सहि तुवर सउंदलाए पत्थाणकोदुअं निब्वत्तिदुं [ **सखि, त्वरस्व शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्** ]।

**अनसूया**—सहि कहं एदं ] **सखि कथमेतत्** ]

**प्रियंवदा**—सुणाहि दाणिं सुहसइदपुच्छिआ सउंदलासआसं गदम्हि, तदो जाव एणं लज्जावणदमुहिं परिस्सजिअ तादकस्सवेण एव्वं अहिणंदिदं दिठ्ठिआ धूमाउलिददिठ्ठिणो वि जअमाणस्स पाअए एव्व आहुदी पडिदा। वच्छे सुसिस्सपरिदिण्णा विज्जा विअ असोअणिज्जा संवुत्ता । अज्ज एव्व इसिरक्खिदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमित्ति [ **श्रृणु इदानीं सुखशयनपृच्छिका शकुन्तलासकाशं गतास्मि । ततो याव-**

---

समर्पितवतीति शकुन्तलागतोऽयं दोषः। इति हेतोः व्यवसितापि = बहुशः कथनार्थं कृतनिश्चयापि प्रवासात् सोमतीर्थात् प्रतिनिवृत्तस्य आगतस्य तातकण्वस्य दुष्यन्तपरिणीतां दुष्यन्तेन गान्धर्वविधिना विवाहितां अत एवापन्नसत्वां = गर्भिणीं शकुन्तलां निवेदयितुं = कथयितुं न पारयामि लज्जया, शङ्कया च वक्तुं न शक्नोमि, इत्थं गते = एवम्प्रकारायामवस्थायां प्राप्तायाम् अस्माभिः किं करणीयम् = किं कर्तुमुचितमिति प्रतिमूढाऽस्मीति भावः।

अथ कथा संघटनाय प्रियम्वदाप्रवेशः ( प्रविश्य = रङ्गभूमिं आगत्य )।

**प्रियंवदा**—( सहर्षम् = सानन्दम् ) हे सखि ! = हे आलि ! शकुन्तलायाः = प्रियसख्याः प्रस्थानकौतुकं = पतिगृहगमनस्य माङ्गलिकं कृत्यम् निर्वर्तयितुं = सम्पादयितुं त्वरस्व = त्वरया आगच्छ, शीघ्रतां कुरु, पतिगृहप्रस्थानकाले कर्तुमुचितं पारम्पर्यंगतं मङ्गलकर्म प्रस्थानकौतुकमुच्यते । तथाहि हैमे—

'कौतुकं नर्माणीच्छायामुत्सवे कुतुके यदि ।
पारम्पर्यागतख्यातमङ्गलोद्वाहसूत्रयोः ॥'

**अनसूया**—सखि कथमेतत् = हे आलि ! कुतः समागतं प्रस्थानकौतुकम् एतत् । सखि ! अद्भुतमेवेदं मे प्रतिभाति, कथमेतत् संवृत्तं ? तत्प्रकारं कथयेति भावः ।

**प्रियम्वदा**—सखि ! श्रृणु = आकर्णय इदानीम् = अधुनैव सुखशयनपृच्छिका सुखिनः शयनं सुखशयनं रात्रौ सुखशयनं जातमिति या पृच्छतीति सुखशयनपृच्छिका गतास्मि =

---

न सन्देशवाहक ही पठाया, क्या दुर्वासा का शाप तो नहीं काम कर रहा है ? किसी विषयविमुख तपस्वी को भेजना भी ठीक नहीं, एक तो नियम पालन करने में लगे हुए हैं, दूसरी बात यह है कि वे नियम भंगकर दूत का कार्य करना स्वीकार भी नहीं कर सकते हैं। और सोमतीर्थ से लौटकर यहाँ उपस्थित पिता कण्वजी शकुन्तला का दुष्यन्त के साथ गान्धर्व-विवाह सुनकर क्या कहेंगे ? इसलिए बहुत सबेरे उठकर मैं क्या करूँ ? हाथ-पैर नहीं पसरता है। प्रातःकालीन कृत्यों में मन नहीं लगता, क्या करूँ, यह विचार में नहीं आता। इस प्रकार एक सखी का दूसरी सखी की ममता से व्यग्र होना सराहनीय है। अनसूया बड़ी गम्भीर है, शकुन्तला की चिन्ता उसे हमेशा बनी रहती है।

**प्रियम्वदा**—( **प्रवेश कर हर्ष के साथ** ) हे सखि ! अनसूये ! शकुन्तला की विदाई के माङ्गलिक कार्य निपटाने के लिए जल्दी करो।

**अनसूया**—सखी यह कैसे ?

**प्रियम्वदा**—सुनो, अभी-अभी "सुखपूर्वक सोई तो ?" यह पूछने के लिए मैं गई तो वहाँ अवनतमुखी शकुन्तला को छाती से लगाकर पिता कण्व ने उसके विवाह की बात को भी अभिनन्दित

दैनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम् दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीया संवृत्ता। अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामि इति ]।

अनसूया—अह केण सूइदो तादकस्सवस्स वुत्तंतो [ अथ केन सूचितस्तातकाश्यपस्य वृत्तान्तः ]।

प्रियंवदा—अग्गिसरणं पविट्ठस्स सरीरं विणा छंदोमईए वाकिआए [ अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या ]। ( संस्कृतमाश्रित्य )

---

प्रातः सुखशयनं प्रष्टुं गताऽऽसमहं शकुन्तलासकाशं = शकुन्तलासमीपे। ततः = तदनन्तरं यावदेव लज्जया = त्रपया अवनतं = नम्रं मुखं = आननं यस्या सा तां लज्जावनतमुखीम्-वीडानम्रवदनां एनां = इमां शकुन्तलाम् परिष्वज्य = आलिङ्ग्य च तातकाश्यपेन कश्यप-गोत्रोत्पन्नेन महर्षिणा कण्वेन एवं = इत्थं अभिनन्दितं = अनुमोदितम्। तत्कृतं स्वेच्छा-विवाहकर्मप्रशंसितम्। दृष्ट्या = सौभाग्येन धूमाकुलितदृष्टेः = धूमेन आकुलिता दृष्टिर्यस्येति धूमाकुलितदृष्टिः तस्य तादृशस्य=आज्यधूमोपहृतदर्शनशक्तेः यजमानस्य=होतुः तव पावके एव = अग्नावेव, नान्यत्र आहुतिः=पतिता=उपहृता। कामवशीभूतयाऽपि त्वया योग्ये पात्रे एवात्मा समर्पित इत्याशयः। सुशिष्यः = शोभनोऽन्तेवासी तस्मै परिदत्ता = वितरिता इति सुशिष्यपरिदत्ता = योग्यशिष्यसमर्पिता विद्या = शिक्षा इव यथा अशोचनीया = शोचयितुं न योग्या शोकानर्हा संवृत्ता = जाताऽसि। दुष्यन्तहस्तगतात्वेन शोचनीयतां गतेत्याशयः। अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता। शोच्यता हि कन्याया अपात्रे प्रदानाद् भवति। अन्येन तस्याः कृतकृत्यता ध्वनिता गान्धर्वे विवाहे स्वानुमतिश्च स्फुटं प्रदर्शिता।

कन्यायाः पितृगृहावस्थानस्यानौचित्यमाकलयन्नाह—अद्यैवेति। अद्यैव = अस्मिन्नेवाहनि ऋषिभिः=मुनिभिः शारङ्गरवादिभिः रक्षितां रक्ष्यमाणां तत्सहायां त्वां = भवतीम् भर्तुः = पत्युः सकाशं = समीपम् विसर्जयामि = प्रेषयामि। प्रहिणोमि इति = एवं तात-कण्वेन शकुन्तलाकृतमभिनन्दितम्।

अनसूया—अथ = ननु केन = केन जनेन सूचितः = आख्यातः विज्ञापितः तात-काश्यपस्य = पितरं कण्वं प्रति वृत्तान्तः = शकुन्तलापरिणयात्मकोदन्तः ?

प्रियम्वदा—अग्निशरणं = अग्न्यगारं अग्निहोत्रगृहम्, यज्ञशालाम् प्रविष्टस्य = अन्त-

---

किया कि, "हे वत्से! बड़े हर्ष की बात है, कि धूएँ से अवरुद्ध दृष्टि वाले यजमान के हाथ से भी छोड़ी हुई आहुति सौभाग्यवश अग्नि के मुख में ही पड़ी अर्थात् कामोपहित होकर भी मैंने अपने को योग्य वर राजर्षि दुष्यन्त के ही हाथ में सौंपा है। अस्तु, जिस प्रकार योग्य शिष्य को दी हुई विद्या अशोचनीय होती है उसी प्रकार योग्य पुरुष के हाथ में तू गई है। इसलिए अब तेरे विषय में कुछ भी चिन्ता नहीं है। और आज ही मैं तुझको ऋषियों की रक्षा में देकर तेरे पति राजा दुष्यन्त के घर पर भेजता हूँ।"

**अनसूया**—अच्छा, तो सखी, शकुन्तला के विवाह की बात किसने पिता जी से बता दी है ?

**प्रियम्वदा**—पिताजी सुबह जब हवन करने के लिए अग्निशाला में प्रविष्ट हुए तब अशरीरिणी छन्दोमयी आकाशवाणी ने ही यह बात कह दी।

**( संस्कृतभाषा में श्लोकबद्ध पद्य के रूप में )**

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः ।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव ॥ ३ ॥

गंतस्य, प्रविष्टं तातं प्रति शरीरं = देहं बिना शरीररहितया छन्दोमय्या=पद्यबद्धया, श्लोक-मन्त्रमय्या, वाण्या = आकाशवाण्या संस्कृतं=देवभाषां आश्रित्य=प्रयुज्य सूचितो वृत्तान्तः ।

**विशेषः**––अत्राशरीरिण्या वाण्या अनुवादः, यथास्थितस्यैवानुवादः स च संस्कृत-मन्तरेण न सम्भवतीति संस्कृताश्रयणम् । तथा चोक्तम्—

'योज्यं विदूषकोन्मत्त बालतापसयोषिताम् ।
नीचानां पण्डकानां च नीचग्रहविकारिणाम् ॥
विद्वद्भिः प्राकृतं कार्यंकरणात् संस्कृतं क्वचित् ।'

अशरीरिण्या वाचः स्वरूपमाह—दुष्यन्तेनेति ।

**अन्वयः**—हे ब्रह्मन् ! भुवः भूतये दुष्यन्तेन आहितं तेजः तनयाम् अग्निगर्भां शमीमिव अवेहि ।

अग्निशालां प्रविष्टस्य कुलपतेः कण्वस्य व्योमवाचा यदुदीरितं तदेव ब्रूते प्रियम्वदा–**दुष्यन्तेनेति** । हे ब्रह्मन् ! = हे महर्षे कण्व ! भुवः = पृथिव्याः भूतये = ऐश्वर्याय, अभ्युदयाय, भूमण्डलहिताय दुष्यन्तेन=तन्नाम्ना राजर्षिणा आहितं = निषिक्तं तेजः = वह्निरूपं धाम वीर्यं गर्भं दधानां=धारयन्तीं, तनयां तनोति = विस्तरति कुलमिति तनयां तां तनयां = स्वपुत्रीं स्वभर्तृकुलवृद्धिहेतुभूतां धर्मकन्यां शकुन्तलाम् अग्निगर्भां = अग्निः गर्भे अन्तः गर्भमध्ये वा यस्याः सा अग्निगर्भा तामग्निगर्भां = अनलान्तरां अवेहि = त्वं जानीहि शमीं = दुःखशमनीम् शमीवृक्षम् इव = यथा ।

**अयं भावः**— यज्ञशालां प्रविष्टं कुलपतिं कण्वं प्रति पद्यबद्धया आकाशवाण्या सूचित-मर्थं विवृण्वती प्रियम्वदा अनुवदति—ब्रह्मन् ! अखिलभूमण्डलस्य कल्याणाय राजर्षिणा दुष्यन्तेन निहितं रेतः **'अष्टानां लोकपालानां मात्राभिर्जायते पुमान्'** इत्यनुसारम् अति-शीघ्रं सम्राजं पुमांसमुत्पादयिष्यति अतोऽन्तर्लीनपावकां शमीमिवात्मनं पोष्यपुत्रीं शकुन्तलामवेहि । अर्थादियं ते धर्मकन्या शकुन्तला शीघ्रमेव विश्वकल्याणकारिणं चक्र-वर्तिनं तनयं जनयिष्यति ॥ ३ ॥

---

**हे ब्रह्मन !** तुम अपनी पुत्री शकुन्तला को दुष्यन्त के द्वारा प्रजा के कल्याण के लिए अपना तेज = वीर्य इसमें स्थापित कर देने से उसी प्रकार गर्भवती समझो जिस प्रकार अग्नि के तेज से शमी वृक्ष गर्भवान् हो जाता है ॥ ३ ॥

**विशेष**—शमी वृक्ष में अग्नि का निवास रहता है । इसलिए शमीवृक्ष के काष्ठ से अरणि=अग्नि मन्त्रार्थ आधार काष्ठ बनाकर पीपल के डण्डे से उसे मलकर यज्ञ आदि में अग्नि उत्पन्न की जाती है जिसे बहुत ही पवित्र बताते हैं । शमी वृक्ष में अग्नि के निवास के सम्बन्ध में महाभारत में दो पर्वों में दो प्रकार की कथाएँ मिलती हैं—पहली कथा अनुशासन पर्व के १३१ अध्याय के ६९ श्लोक से ४४ तक उपलब्ध होती है । इसके अनुसार अग्नि अपने में भगवान् शङ्कर का तेज मिलने पर न सहकर भगी और जल में जाकर छिपी । वहाँ अपने को सुरक्षित न पाकर शमी में समा गई । बाद वहाँ से देवताओं ने उसे खोज लाया । दूसरी कथा शल्यपर्व के ४८ वें अध्याय में १७-२० श्लोकों में मिलता है । इसमें भी इसी तरह महर्षि भृगु के शाप के भय से भागने और पुनः देवताओं के द्वारा शमी वृक्ष में खोजे जाने का वृत्तान्त है ।

**अनसूया**—( प्रियंवदामाश्लिष्य ) सहो पिअं मे किंदु अज्ज एव्व सउंदला णीअदित्ति उक्कंठासाधारणं परितोसं अणुहआमि [ **सखि; प्रियं मे किंत्वद्यैव शकुन्तला, नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि** ]।

**प्रियंवदा**—सहि आवां दाव उक्कंठं विणोदइस्सामो। सा तवस्सिणी णिव्वुदा होदु। [ **सखि आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यावः। सा तपस्विनी निर्वृत्ता भवतु** ]।

**अनसूया**—तेण हि एदस्सिं चूदसाहावलंबिदे णारिएरसमुग्गए एतण्णिमित्तं एव्व कालंतरक्खमा णिक्खित्ता मए केसरमालिआ। ता इमं हत्थसंणिहिदं करेहि। जाव अहं वि से मिअलोअणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलअणित्ति मङ्गलसमालभणाणि विरएमि [ **तेन ह्येतस्मिश्चूतशाखावलम्बिते नालिकेरसमुद्गक एतन्निमित्तमेव**

---

**अनसूया**—( प्रियम्वदामाश्लिष्य = आलिङ्ग्य ) हर्षप्रकर्षमनुभवन्ती अनसूया वदति—सखि प्रियम्वदे! प्रियं मे = इदं त्वयोक्तं मह्यं प्रियं जातम्। शकुन्तलाया एवं पित्राभिनन्दनं प्रियमपि सम्प्रति मेऽप्रियं जातं शकुन्तलावियोगदुःखप्रदत्वादित्याह = किन्तु = परन्तु शकुन्तला अद्यैव = अस्मिन्नहन्येव नीयते = पतिगृहं प्रेष्यते इति उत्कण्ठासाधारणं विरहोत्पन्ना महती वेदना उत्कण्ठा तया सधारणं = समानम् विषादसदृशं परितोषं = शकुन्तलायाः प्रियसमागमो भविष्यतीत्यानन्दकरं सन्तोषमनुभवामि = प्राप्नोमि।

**प्रियम्वदा**—सखि! = आलि! आवां = उभौ तावत् = तु उत्कण्ठां = विषादं विनोदयिष्यावः = परिहरिष्यावः, केनाप्युपायेन नेष्यावः। सा = शकुन्तला तपस्विनी = प्रियविरहेण दीना, अनुकम्पार्हा निर्वृत्ता = भर्तृगृहगमनेन सुखिता भवतु = जायतात्।

**अनसूया**—शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकनिवर्तने त्वरमाणाऽनसूया प्राह—तेन = तर्हि हि = निश्चयेन एतस्मिन् = समीपवर्तिनि चूतशाखावलम्बिते = चूतस्य शाखायामवलम्बिते आम्रविटपाश्रिते नारिकेलस्य = नारिकेलकपालरचिते समुद्गके = सम्पुटके पेटिकायां एतत् = प्रस्थानमङ्गलम् एव निमित्तम् = उद्देश्यं यस्य तत् एतन्निमित्तं शकुन्तलागमनमङ्गलपर्यन्तं स्वसौरभं यथावदेव धारयन्ती, वकुलमाला पर्युषितापि सौरभं न भुञ्जतीति प्रसिद्धिः। अपरिम्लाना, केसरमालिका = वकुलमाला निक्षिप्ता = स्थापिता तिष्ठति

---

**अनसूया**—( प्रियंवदा को छाती से चिपका कर ) अरी प्रिय बोलनेवाली सखि प्रियंवदे? तूने मुझको यह तो बहुत ही प्रिय बात सुनाई है, किन्तु शकुन्तला आज ही चली जायेगी इस बात से कुछ उत्कण्ठा और उद्वेग भी हो रहा है तथा सन्तोष का अनुभव भी कर रही हूँ।

**विशेष**—उद्वेग तथा सन्तोष दोनों का होना इसलिए है कि शकुन्तला के बिना हमलोगों का मन अब कैसे लगेगा, अतः मन में उद्वेग होना स्वाभाविक है। सन्तोष इसलिए हो रहा है कि अब शकुन्तला अपने पतिगृह में सुख से रहेगी।

**प्रियम्वदा**—हमलोग तो अपनी उत्कण्ठा = शकुन्तला को देखने की इच्छा को किसी तरह सहन कर लेंगी, पर यह बेचारी अपनी पति के यहाँ जाकर किसी तरह सुखी हो।

**अनसूया**—ठीक ही है, अच्छा तो तू जा और देख, मैंने उस आम के पेड़ की शाखा में लटकते हुए नारियल के डिब्बे में इसीलिए = शकुन्तला के मङ्गलाचारों में काम आने के लिए कई दिन तक टिकने वाली मौलसरी की माला तथा केसर सावधानी से रखी है। तू इसे कमल के

कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका । तदिमां हस्तसंनिहितां कुरु । यावदहमपि तस्यै मृगरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मङ्गलसमालम्भनानि विरचयामि ]।

**प्रियंवदा**—तह करोअदु [ तथा क्रियताम् ]।

( अनसूया निष्क्रान्ता । प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्णाति )

( नेपथ्ये ) गौतमि आदिश्यन्तां शाङ्गरवशारद्वतमिश्राः शकुन्तलानयनाय।

**प्रियंवदा**—( कर्णं दत्त्वा ) अनसूए तुवरसु एदे खु हत्थिणाउरगामिणो इसीओ सद्दावीअंति [ अनसूये त्वरस्व, एते खलु हस्तिनापुरगामिन ऋषय आकार्यन्ते ]।

( प्रविश्य समालम्भनहस्ता )

---

तदिमां = मया स्थापितां केसरमालिकाम्, हस्तसन्निहितां करोपस्थितां कुरु = विधेहि। आनयेत्यर्थः । यावत् = तत्रान्तरे अहमपि तस्यै = तदर्थं, शकुन्तलार्थं मृगगोरोचनां = गोरोचनाम् तीर्थमृत्तिकाम् = तीर्थप्रदेशसंभूतां लोहितां मनःशिलादिवत् वर्णकरणोपयुक्तां मृगम् दूर्वाकिसलयानि = उत्तंसाद्यर्थं दूर्वाङ्कुरान् इति = एतद्रूपाणि मङ्गलसंमालम्मानि = अङ्गरागादीनि मङ्गलालङ्कारााणि विरचयामि = एकत्र करोमि ।

**प्रियम्वदा**—तथा क्रियताम् = तथा = उक्तप्रकारेण विधीयताम् ।

( अनसूया निष्क्रान्ता = निर्गता प्रियम्वदा नाट्येन = अभिनयेन सुमनसो गृह्णाति = पूर्वोक्तस्थलात् केसरमालामादत्ते )

(नेपथ्ये = जवनिकायाम्) ( इयं कण्वोक्तिः ) हे गौतमि ! शारङ्गरवः प्रधानशिष्यः शारङ्गरव-शारद्वतमिश्राः = श्रेष्ठः शारङ्गरवः, शारद्वतश्च, आदिश्यन्ताम् = नियुज्यताम्, आज्ञाप्यन्ताम्, शकुन्तलानयनाय = शकुन्तलाप्रयाणार्थम् अत्र मिश्रशब्दो बहुवचनं पूजायाश्चास्ति ।

**प्रियम्वदा**—इमां कण्वोक्तिमाकर्ण्य प्रियम्वदा अनसूयां ब्रवोति ( कर्णं दत्वा ) सखि। अनसूये ! त्वरस्व = शीघ्रतां कुरु, एते = इमे समीपवर्तिनः खलु = निश्चयेन हस्तिनापुरगामिनः = हस्तिनापुरं प्रस्थातुं प्रस्तुताः ऋषयः = शारङ्गरवादयः आकार्यन्ते = तातेन आहूयन्ते।

( समालम्भनहस्ता = समालम्भनम् अलङ्करणं हस्ते = करे यस्याः सा: मङ्गलोपकरणहस्ता कथयति । अनसूया प्रविश्य = रङ्गभूमेरन्तरे आगत्य )।

---

पत्ते पर रख मेरे हाथ के समीप लाओ । तब तक मैं शकुन्तला के मङ्गलाचारों के निमित्त गोरोचन, तीर्थों की मिट्टी, दूब, पञ्चपल्लव तथा माङ्गलिक मेंहदी आदि चीजें इकट्ठी करके लाती हूँ ।

**प्रियम्वदा**—वैसा ही किया जाय ।

**( अनसूया जाती है तथा प्रियम्वदा मौलसरी की माला तथा केसर को कमलिनी के पत्ते पर रखती है )**

**( नेपथ्य में )** अरी गौतमी, तू जाकर विद्वान् तथा कर्मठ शार्ङ्गरवमिश्र और शारद्वतमिश्र को मेरी आज्ञा सुना दे कि वत्सा शकुन्तला को पतिगृह पहुँचाने जाने के लिए तुम लोग शीघ्र ही तैयार हो जाओ ।

**प्रियम्वदा**—**( कान देकर )** अनसूये, जल्दी कर जल्दी कर, देख शकुन्तला को हस्तिनापुर ले जाने वाले ऋषि लोग बुलाये जा रहे हैं ।

**( दूर्वा, रोली, उबटन, अंगराग, मेंहदी, गोरोचन आदि माङ्गलिक वस्तुएँ हाथ में लिये हुए प्रवेश कर )**

**अनसूया**—सहि सहि गच्छम्ह [ **सखि एहि गच्छावः** ] ( इति परिक्रामतः )।

**प्रियंवदा**—( विलोक्य ) एसा सुज्जोदये एव्व सिहामज्जिद: पडिच्छिदणीवारहत्थाहिं सोत्थिवाअणिकाहिं तावसीहिं अहिणंदीअमाणा सउंदला चिट्ठइ। उवसप्पम्ह णं [ **एषा सूर्योदये एव शिखामज्जिता प्रतिष्ठितनीवारहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति । उपसर्पाव एनाम्** ]। ( इत्युपसर्पतः )।

( ततः प्रविशति यथोद्दिष्टव्यापारासनस्था शकुन्तला )

**तापसीनामन्यतमा**—( शकुन्तलां प्रति ) जादे मत्तुणो बहुमाणसूअअं महादेईसद्दं लहेहि [ **जाते भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवी-शब्दं लभस्व** ]।

---

**अनसूया**—सखि ! = आलि ! एहि = आगच्छ सह एव गच्छावः ( इति परिक्रामतः )।

**प्रियम्वदा**—( विलोक्य ) शकुन्तलामालोक्य प्रियम्वदा वदति—एषा = असौ, शकुन्तला सूर्योदये = सूर्यस्याविर्भावे प्रातःकाले एव शिखामज्जिता = शिरःस्नाता शिखामज्जनं स्नानं कारिता सशिरस्कं स्नातेत्यर्थः, अभ्यङ्गस्नानं कारितेति यावत् । प्रतिष्ठिताः = गृहीताः नीवाराः = मुन्यन्नं यैः एवं भूतौ = हस्तौ = करौ यासां ताः ताभिः प्रतिष्ठितनीवारहस्ताभिः = गृहीतनीवाराख्यमङ्गलधान्याभिः स्वस्तिवाचनिकाभिः स्वस्ति वाचनम् = आशीर्वादः पारम्पर्येण तदधिकारिणीभिः = मङ्गलशब्दोच्चारणचतुराभिः तापसीभिः = तपस्विसुवासिनीभिः, अभिनन्द्यमाना = स्तूयमाना, आशीर्भिरनुगृह्यमाना दत्तोत्साहा शकुन्तला तिष्ठति = शकुन्तलाप्रयाणप्रसङ्गात् वृन्दबाहुल्येन दत्ता आशिषः सबहुमानमङ्गीकृत्य तिष्ठतीत्यर्थः । एनाम् = इमाम् उपसर्पावः = उपगच्छावः ( इति = ततः उपसर्पतः = उपगच्छतः )।

( ततः = तदनन्तरं यथोद्दिष्टः = उपर्युक्तः व्यापारः = कार्यमस्याः सा यथोद्दिष्टव्यापारा आसनस्था = आसने उपविष्टा प्रविशति = रङ्गभूमौ दृश्यते )

**तापसीनामन्यतमा**—कापि सुवासिनी तापसी ( शकुन्तलां प्रति ) उद्दिश्य कथयति जाते ! = हे पुत्रि ! भर्तुः = पत्युः बहुमानसूचकं = बहु अधिकश्चासौ मानः = आदरश्चेति बहुमानः तस्य सूचकं प्रकाशकमिति बहुमानसुखसूचकं = अधिकसम्मानव्यञ्जकम्, महादेवी इति शब्दं महादेवीशब्दं = पट्टराज्ञीनामधेयम् प्रधानमहिषीविरुदम् लभस्व = प्राप्नुहि, भर्त्रा समादृता सती तस्य देवीषु श्रेष्ठा भवेत्यर्थः ।

---

**अनसूया**—हे सखि ! आओ चलें ( दोनों घूमती हैं )।

**प्रियम्वदा**—( सामने देखकर ) यह देखो सामने, शकुन्तला सूर्योदय होते ही सिर से स्नानकर चोटी गुँथवाकर और नीवार के चावलों को हाथ में लिए स्वस्तिवाचन मङ्गलाचार आदि करने वाली एवं आशीर्वाद, शिक्षा आदि देने वाली तापसी सौभाग्यवती स्त्रियों से अभिनन्दित की जाती हुई यहाँ बैठी है। आओ इसके पास चलें ( दोनों शकुन्तला के पास जाती हैं )।

**( पूर्वोक्त प्रकार से मङ्गलाचार करनेवाली तापसियों से घिरी हुई तथा आसन पर विराजमान शकुन्तला का प्रवेश )**

**तापसियों में एक**—( शकुन्तला के प्रति ) पुत्रि ! पति के दिये हुए अधिक आदर सूचक महारानी पद प्राप्त करो।

**द्वितीया**—वच्छे ! वीरप्पसविणी होहि [ **वत्से वीरप्रसविनी भव** ]।

**तृतीया**—वच्छे भत्तुणो बहुमदा होहि [ **वत्से भर्तुर्बहुमता भव** ]।

( इत्याशिषो दत्त्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ताः )

**सख्यौ**—( उपसृत्य ) सहि सुहमज्जनं दे होदु [ **सखि सुखमज्जनं ते भवतु** ]।

**शकुन्तला**—सागअं मे सहीणं। इदो णिसीदह। [ **स्वागतं मे सख्योः। इतो निषीदतम्** ]।

**उभे**—( मङ्गलपात्राण्यादाय उपविश्य ) हला सज्जा होहि। जाव मङ्गलसमालंभणं विरएम [ **हला सज्जा भव। यावन्मङ्गलसमालम्भनं विरचयावः** ]।

**शकुन्तला**—इदं पि बहु मंतव्वं। दुल्लह दाणि मे सहीमंडण भविस्सदि त्ति [**इदमपि बहु मन्तव्यम्। दुर्लभमिदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यतीति**] (इति बाष्पं विसृजति)

---

**द्वितीया**—अथ द्वितीया = अपरा तापसी आशिषं प्रयुङ्क्ते-वत्से !=हे पुत्रि ! वीरप्रसविनी = शूरपुत्रजननी भव, वीरं कुमारं जनयस्वेत्यर्थः।

**तृतीया**—तृतीया तापसी आशीर्वादं प्रददाति—वत्से ! जाते ! भर्तुः स्वस्वामिना राजर्षेः दुष्यन्तस्य बहुमता—अति सम्मानिता, अभीष्टा भव।

( इति = एवं, आशिषो दत्वा = शुभाशंसनं कृत्वा गौतमीवर्जं = गौतमीं विहाय अन्या, तापस्यः निष्क्रान्ताः = रङ्गभूमितो निर्गताः )

**सख्यौ**—अनसूया प्रियम्वदा चोपसृत्य = उपस्थाय शकुन्तलां ब्रूतः—सखि ! ते सुमज्जनं भवतु = स्यात् सुस्नानं ते भवतु। इदं स्वागतसदृशं वचनम्। पतिगृहप्रस्थानाङ्गमिदं मज्जनमिति पतिगृहप्राप्तिफलेन अस्य शोभनत्वं भवत्वित्यभिप्रायः।

**शकुन्तला**—सख्योरागमनेन सन्तुष्टा शकुन्तला आह—स्वागतं अभिनन्दनम् मे = मम सख्योः = आल्योः इतः = इह स्थाने निषीदतम् = उपविशतम्।

**उभे**—( प्रियम्वदानसूये च उभे = द्वे अपि सख्यौ मङ्गलपात्राणि मङ्गलार्थं प्रस्तुतानि भाजनानि मङ्गलसमालम्भनपात्राणि आदाय = गृहीत्वा उपविश्य = निषद्य ) हला = हे सखि ! सज्जा = प्रस्तुता प्रसाधनार्थमङ्गप्रत्यङ्गानां प्रसारणाकुञ्चनाभिमुखी भवेति यावत्, मङ्गलसमालम्भनं = मङ्गलार्थं समालम्भनं अलङ्करणं विरचयावः = विदध्मः।

**शकुन्तला**—इदम् = एतत् अलङ्करणमपि बहु अधिकं मन्तव्यं ज्ञातव्यम् इदानीं =

---

**दूसरी**—बेटी ! वीर पुत्र उत्पन्न करने वाली हो।

**तीसरी**—वत्से ! पति तुझे बहुत मान दे।

**( इस प्रकार आशीर्वाद देकर गौतमी के अतिरिक्त सभी बाहर चली जाती हैं )**

**दोनों सखियाँ**—**( पास में जाकर )** हे शकुन्तले ! क्या तू स्नान कर चुकी ?

**शकुन्तला**—आओ प्रियसखियों, आओ तुम्हारा स्वागत है, आओ यहाँ मेरे पास बैठ जाओ।

**दोनों सखियाँ**—**( मङ्गलपात्र लेकर बैठे हुए )** हे सखि ! तू थोड़ा ठीक से सीधी होकर बैठ जा तो हम तेरे शरीर में अङ्गराग, मेंहदी, रोली आदि माङ्गलिक वस्तुएँ लगाकर तेरा समालम्भन = शृंगार कर दें।

**शकुन्तला**—यह तुम्हारा आवश्यक समयोचित कार्य भी मुझे आज अति प्रिय प्रतीत हो रहा है, क्योंकि पुनः तुम्हारे हाथ से मेरा इस प्रकार का मण्डन मेरे लिए दुर्लभ ही हो जायेगा। **( आँसू टपटपाती है )**

उभे--सहि उइअं ण दे मंगलकाले रोइदुं [ सखि उचितं न ते मङ्गलकाले रोदितुम् ] ( इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः ) ।

प्रियंवदा--आहरणोइदं रूवं अस्समसुलहेहिं पसाहणेहिं विप्पआरोअदि [ आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रकार्यते । ]

( प्रविश्योपायनहस्तौ )

ऋषिकुमारकौ--इदमलंकरणम् । अलंक्रियतामत्रभवती ।

---

अधुना मे = मम कृते सखीमण्डनं = आलीविरचितं मण्डनम् = अलङ्करणम् दुर्लभं = दुष्प्राप्यं युवयोः अस्मत्पतिगृहवासासंभवात् इतः परं सखीकर्तृकं मण्डनं मे दुर्लभं भविष्यति ( इति = एवमुक्त्वा वाष्पं = अश्रु विसृजति = विरहचिन्तया दुःखेन त्यजति ) ।

उभे—सखि ! = आलि ! मङ्गलकाले = मङ्गलकाले रोदनानौचित्यमागमसिद्धम् । शुभकार्यक्षणे ते = तव कृते रोदितुं = रोदनं नोचितं = न समीचीनम् ( इति = एवमुक्त्वा अश्रूणि = नेत्रजलानि प्रमृज्य = प्रोञ्छ्य विशोध्य नाट्येन = अभिनयेन प्रसाधयतः = अलङ्कुरुतः ।

प्रियम्वदा—शकुन्तलां प्रसाधयन्तीं प्रियम्वदा तत्साधनानां तद्रूपाननुगुणं पश्यन्ती सविषादमाह—आभरणोचितं = अनर्घहारकेयूरादिकयोग्यं कनकभूषणार्हं रूपं = आकृतिः आश्रमसुलभैः = तपोवनसुलभैः, तपोवनलभ्यैः प्रसाधनैः = अङ्गरागादिभिः भूषाभिः विप्रकीर्यते = विकृतं क्रियते । नैतानि आभरणानि तवोचितानीति भावः । आश्रमे नगरोचितानां प्रसाधनानामभावाद् आश्रमवासिनां दारिद्र्यं पौरा लक्षयिष्यन्तीति खेदास्पदम् । एवं प्रियम्वदोक्तौ आभरणोचितं रूपमिति कथनेन आभरणसूचनात्तदानेत्रोः, आभरणहस्तयोः ऋषिकुारयोः प्रवेशमाह—( उपायनं = वृक्षादेरुपायनभूतं क्षौमादि उपहारः हस्ते = करे ययोः ते उपायनहस्तौ प्रविश्य = रङ्गभूमावागत्य ) ।

ऋषिकुमारकौ—इदं = एतत् अलङ्करणम् = भूषणसमूहः गृह्यतां तावत् अत्र भवती = श्रीमती शकुन्तला अलङ्क्रियताम् = प्रसाध्यताम् ।

---

**विशेष**—इस प्रकार के अलंकरण तो प्रतिदिन प्राप्त हो जाते हैं । इसका उतना महत्त्व नहीं किन्तु अपने पति के घर चले जाने पर सखियों के हाथ से वह न प्राप्त हो सकेगा । इसलिए शकुन्तला ने उसे बहुत मानने की बात कही है ।

**दोनों सखियाँ**--हे सखि ! इस मङ्गल समय = पतिगृह की शुभ यात्रा में तेरा रोना ठीक नहीं है । **( दोनों आँसू पोंछ कर उसके श्रृङ्गार करने का अभिनय करती हैं )**

**विशेष**—शुभ समय में रोना अनिष्टकारक माना जाता है । इसीलिए माङ्गलिक कार्यों के समय में अश्रुपात वर्जित है । अतः सखियों ने आँसू रोकने के निमित्त समझाया ।

**प्रियम्वदा**—सखि शकुन्तले ! यह तुम्हारा रूपसौन्दर्य विविधरत्नों के आभूषणों के ही योग्य है । इस प्रकार आश्रमसुलभ फूलपत्तियों के श्रृंगार से तो यह तेरा सौन्दर्य उलटा बिगड़ता प्रतीत हो रहा है । वस्तुतः तेरे शरीर के योग्य गहने तो राज्योचित आभरण ही हो सकते हैं ।

**( रत्नजटित आभूषणों को हाथ में लिए हुए दो ऋषिकुमारों का प्रवेश )**

**दोनों ऋषिकुमार**—लो, ये नाना प्रकार के रत्नों से जड़े हुए आभूषण हैं, इससे आयुष्मती शकुन्तला का श्रृंगार करो ।

( सर्वा विलोक्य विस्मिताः )

**गौतमी**—वच्छ णारअ। कुदो एदं [ वत्स नारद। कुत एतत् ]।

**प्रथमः**—तातकाश्यपप्रभावात्।

**गौतमी**—किं माणसो सिद्धिः [ किं मानसी सिद्धिः ]।

**द्वितीयः**—न खलु, श्रूयताम्, तत्रभवता वयमाज्ञप्ताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरति इति। तत इदानीं—

**क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं**
**निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्।**
**अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-**
**र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः॥ ४॥**

---

( सर्वाः = सकलाः उपस्थिताः तापस्यः विलोक्य = आलोक्य विस्मिताः = आश्चर्य-चकिता जाताः, आश्रमे कुतः खल्वेतेषां सम्भव इति सर्वासां विस्मयः )

**गौतमी**—वत्स नारद ! कुत एतत् = कस्मात् स्थानात् आसादितमेतत् सर्वम् अलङ्करणम् ?

**प्रथमः**—तातकाश्यपप्रभावात् = तातस्य = पितुः काश्यपस्य = महर्षेः कण्वस्य प्रभावात् = तपोबलात् तपस्या महिम्ना एतदलङ्कारजातमासादितमिति भावः।

**गौतमी**—किं मानसी सिद्धिः = मनःसङ्कल्पमात्रजन्या तादृशी अलौकिकयोगसिद्धिः ?

**द्वितीयः**—न खलु मानसीयोगसिद्धिः श्रूयतामाभरणप्राप्तिप्रकारः। तत्र भवता = पूज्येन कण्वेन शकुन्तलाहेतोः = शकुन्तलायाः प्रसाधनार्थं वनस्पतिभ्यः = वृक्षेभ्यः कुसुमानि = पुष्पाणि आहरत = यूयम् आनयत इति = इत्थं वयं ऋषिकुमारका आज्ञप्ताः = आदिष्टाः। ततः = तदनन्तरम्, इदानीं = अधुना अस्मासु कुसुमादानायोद्यतेषु सत्सु—**क्षौममिति**।

**अन्वयः**—केनचित् तरुणा इन्दुपाण्डु माङ्गल्यं क्षौमम् आविष्कृतम्, केनचित् ( च ) चरणोपभोगसुलभः लाक्षारसः निष्ठ्यूतः। अन्येभ्यः तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः आपर्वभागोत्थितैः वनदेवताकरतलैः आभरणानि दत्तानि।

मुनिकुमारकोपनीतान्याभरणानि विलोक्य कुत एतानि प्राप्तानीति गौतम्या पृष्टौ मुनिकुमारकौ कथयतः—**क्षौमं केनचिदिति**। केनचित् तरुणा = केनापि वृक्षेण इन्दु-

---

**( उन दुर्लभ एवं बहुमूल्य रत्नजटित आभूषणों को देखकर सभी आश्चर्यचकित हो जाती हैं )**

**गौतमी**—हे वत्स नारद ! ये आभूषण तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुए ?

**प्रथम मुनिकुमार**—ये पिता कण्व के तपस्या के प्रभाव से ही प्राप्त हुए हैं।

**गौतमी**—क्या मानसी योगसिद्धि के प्रभाव से सब मिल गये हैं ?

**दूसरा**—नहीं, नहीं, पिता जी ने हमलोगों से कहा था कि तुम लोग जाकर आश्रम के वृक्षों से शकुन्तला के योग्य आभूषणों के लिए पुष्प आदि मांग लाओ, तब हम लोग वृक्षों के पास गये, तब—

किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के समान पाण्डुरवर्ण माङ्गलिक रेशमी साड़ियाँ प्रगट की, किसी ने

**प्रियंवदा**—( शकुन्तलां विलोक्य ) हला इमाए अब्भुववत्तीए सुइया दे भत्तुणो गेहे अणुहोदव्वा राअलच्छित्ति [ **हला अनयाभ्युपपत्त्या सूचिता ते भर्तुर्गेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीरिति** ]। ( शकुन्तला व्रीडां रूपयति )।

---

पाण्डु इन्दुवत = चन्द्रवत् पाण्डु श्वेतं चन्द्रधवलम् माङ्गल्यं मङ्गले = मङ्गलकर्मणि साधु मङ्गलप्रयोजकम् शुभकर्मयोग्यं क्षौमं = अंशुकम् आविष्कृतम् = प्रकटीकृतं, दत्तम् केनचित् = केनापि तरुणा च चरणोपभोगसुलभः—चरणयोः पादयोः उपभोगे = रञ्जनादौ सुलभः = योग्य इति चरणोपभोगसुलभः = चरणलेपनमनोहरः लाक्षारसः = आलक्तकद्रवः निष्ठ्यूतः = उद्‌गीर्णः आविष्कृतो दत्तः। अन्येभ्यः = अन्यतरुभ्यः वनदेवताधिष्ठितेभ्यो वृक्षान्तरेभ्यः सकाशात् तेषां किसलयाः पल्लवा इति तत्किसलयाः तेषामुद्भेदा तत्किसलयोद्भेदा तेषां प्रतिद्वन्द्विभिः प्रतिस्पर्धिभिरिति तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः = तत्पल्लवशोभानुकारिभिः पर्वणः करमूलस्य भागः = अंशः पर्वभागप्रदेशः तं मर्यादीकृत्य आपर्वभागम् उत्थितैः = उच्छ्रितैरिति आपर्वभागोत्थितैः = मणिबन्धपर्यन्तं बहिर्निःसृतैः वनदेवताधिष्ठात्रीणां करतलैः उत्तानैरालोहितैर्हस्तैरिति वनदेवताकरतलैः = वनदेवतापाणितलैः आभरणानि = मुक्तारत्नाद्यलङ्काराणि दत्तानि = आवयोर्हस्ते समर्पितानि न तु भूमौ पतितानि तेषां परिधानायोग्यत्वात्।

**अयं भावः**—महर्षेः कण्वस्य निदेशवर्तिना केनचिद् वृक्षेण चन्द्रधवलं पदांशुकं दत्तम्। केनचिद् स्त्रीणां चरणरञ्जनोपयुक्तं लाक्षाद्रव उद्‌गीर्णः तथा अपरेभ्यो पल्लवरागताम्रेभ्यः वनदेवताकरतलेभ्यः विभिन्नानि महर्घाणि रत्नानि अस्मद्धस्ते समागतानि, तस्मादाचिन्त्यः खलु गुरोः कुलपतेः तपःप्रभावातिशयः।

अत्रोपमानुप्रासार्थापत्ति—स्वभावोक्ति हेत्वलङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं छन्दश्च ॥ ४ ॥

**प्रियंवदा**—शकुन्तलां विलोक्य समुचिताभरणालाभे खेदं परिहरन्ती सहर्षमाह—हे सखि शकुन्तले! अनया = एतया पूर्वोक्त्या अभ्युपपत्त्या = वनदेवताभ्यो वृक्षेभ्यश्च स्वतः प्राप्त्या अनुग्रहेण ते = तव भर्त्तुः = पत्युः गेहे = गृहे अनुभवितव्या = भोक्तव्या राजलक्ष्मीः = महाराज्ञीपदप्रतिष्ठं महादेवीपदप्राप्तिरूपा वा सूचिता भवति।

( शकुन्तला व्रीडां = लज्जां रूपयति = नाटयति )

---

पैरों में लगाने के निमित्त महावर दिया और किसी वृक्ष से वनदेवताओं ने कलाई तक पल्लवों के समान कोमल हाथ बाहर निकाल कर हमे नाना प्रकार के वे आभूषण भी दिये हैं ॥ ४ ॥

**विशेष**—माङ्गलिक रेशमीवस्त्र, विवाह, विदाई आदि के अवसर पर धारण किये जाते हैं। ब्रह्मचारी लोग शकुन्तला के लिए तपोवन के वृक्षों से गहने माँगने गये थे, किन्तु वनदेवियों ने भी शकुन्तला के प्रेम तथा महर्षिकण्व के प्रभाव से प्रसन्न होकर स्वयं ही गहने देने लगीं। वनदेवियाँ तो नहीं दीख पड़ीं, परन्तु कलाई से हथेली तक नये-नये पल्लवों के समान लाल लाल उनके हाथ दिखाई पड़े। इस प्रकार उस तपोवन के वृक्षों ने तो शकुन्तला के निमित्त तत्तत् वस्तुएँ तो दीं ही, पर वनदेवियों ने भी शकुन्तला के स्नेहवश रत्नजटित अमूल्य विभिन्न आभूषण दिये।

**प्रियम्वदा**—( **शकुन्तला को देखकर** ) हे सखि! इस कृपा से तुम्हारे द्वारा ससुराल में राजलक्ष्मी का उपयोग करने की सूचना मिलती है। ( **शकुन्तला लज्जा का अभिनय करती है** )

**प्रथमः**--गौतम एह्येहि अभिषेकोत्तीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः।

**द्वितीयः**--तथा ( इति निष्क्रान्तौ )।

**सख्यौ**--अए अणुवजुत्तभूसणो अअं जणो। चित्तकम्मपरिअएण अगेसु दे आहरण विणिओअं करेम्ह [ **अये अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः। चित्रकर्मपरिचयेनाङ्गेषु ते आभरणविनियोगं कुर्वः** ]।

**शकुन्तला**--जाणे वो णेउणं [ **जाने वां नैपुणम्** ]। ( उभे नाट्येनालङ्कुरुतः )

---

**प्रथमः**--गौतम ! एहि, एहि = आगच्छ, आगच्छ अभिषेकोत्तीर्णाय = अभिषेकात् = मालिन्यामवगाहनस्नानात् उत्तीर्णाय तत्तीरं प्राप्ताय यद्वा अभिषेकार्थमवतीर्णाय गुरवे कण्वाय वनस्पतिसेवां = वनस्पतिकृतां क्षौमादिप्रदानरूपां सेवां निवेदयावः = सूचयावः।

**द्वितीयः**--तथा = आम् (इति = एवमुक्त्वा निष्क्रान्तौ=द्वावपि रङ्गभूमितो बहिर्गतौ)

**सख्यौ**--अलङ्करणेऽसामञ्जस्यं विचार्य तत्रात्मदोषं परिहरन्तौ प्रियम्वदानसूया च ऊचतुः--अये ! अहो ! अनुपयुक्तभूषणं न उपयुक्तानि = य धृतानि आभूषणानि = अलङ्काराणि येन स अनुपयुक्तभूषणः = आधृतालङ्कारः, भूषणपरिधानानभिज्ञः अयं = एष जनः चित्रकर्मपरिचयेन चित्रस्य = आलेख्यस्य कर्म = रचना तत्र परिचयेन = ज्ञानेनेति चित्रकर्मपरिचयेन आश्रमस्थदेवालयेषु चित्रस्थदेवतानां तेषु तेषु अङ्गेसु तेषां तेषामाभरणानां प्रत्यहं दर्शनपरिचयेन यद्वा चित्रपटेषु राजमहिष्यादि-दर्शनाजातेन परिचयेन वा ते = तव आभरणविनियोगम् आभरणानां = अलङ्काराणां विनियोगं = परिधानं कुर्वः = विदध्मः।

**शकुन्तला**--वां = युवयोः अलङ्कारधारणे नैपुणं चातुर्यं = कदाप्यधृताभरणयोर्युवयोरपि केवलेन चित्रकर्मपरिचयेनैव समुचिताभरणाविन्यासरूपं कौशलं जाने।

( उभे = द्वे अपि सख्यौ नाट्येन = अभिनयेन अलङ्कुरुतः = भूषयतः। ) तत्र पादरञ्जननाटनं नु कर्तरीमुखेन--आलक्तेन भवति, हंस्यास्येन च्यूतसन्देशेन कुसुमावचयाभिनयः क्रियते, ऊर्मिकापरिधापनं च क्रियते। तत्र कर्तरीमुखलक्षणं यथा--

आश्लिष्टा मध्यमे पृष्ठे संस्थिता तर्जनी यदा।
त्रिपताकस्य हस्तस्य तदा स्यात् कर्त्तरीमुखः॥
आलक्तकादिनः पादरञ्जने·········· ····।

हंसास्यलक्षणं तु--

'लग्नास्त्रेताग्निसंस्थानास्तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यमाः ।

---

**प्रथम**--हे गौतम ! आओ, आओ स्नान कर जलाशय से बाहर तट पर आये हुए पिता जी से वृक्षों की सेवा बतावें।

**दूसरा**--ठीक है **( दोनों बाहर जाते हैं। )**

**दोनों सखियाँ**--अरे हमने तो गहने पहने ही नहीं, चित्रों के परिचय से तुम्हारे अङ्गों में गहने धारण करायेंगी।

**शकुन्तला**--तुम्हारी कुशलता और चतुरता मैं जानती हूँ। **( दोनों सहेलियाँ यथास्थान गहने पहराने का अभिनय करती हैं )**

( ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः कण्वः )

कण्वः—( विचिन्त्य )

**यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं [1]संस्पृष्टमुत्कण्ठया**
**[2]कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।**
**वैक्लव्यं मम [3]तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः**
**पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ ५ ॥**

( इति परिक्रामति )

---

शेषे यत्रोर्ध्वविरले सहंसास्याभिधीयते ॥
औचित्याच्युतिसंयुक्तं कुसुमावचयादिषु ।'

( ततः = तदनन्तरं पूर्वं स्नानन् = अवगाहनं पश्चात् उत्तीर्णः = जलाशयाद् बहिर्गत इति स्नानोत्तीर्णः = निर्वतिताभिषेकविधिः कण्वः = कश्यपवंशावतीर्णः महर्षिः कण्वः प्रविशति = रङ्गभूमौ दृश्यते )

कण्वः = कुलपतिः कण्व। कथयति स्वमनस्येव । परिसमाप्तप्राभातिककृत्यः शकुन्तला-प्रेषणायोद्यतः स्नेहातिरेकात्तद्विषयकं सुदुःसहं विरहदुःखमनुसन्दधानः महर्षिः कण्व आह--यास्यत्यद्येति ।

अन्वयः---अद्य शकुन्तला यास्यति इति हृदयम् उत्कण्ठया संस्पृष्टम्. । कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषः, दर्शनं चिन्ताजडम्, अरण्यौकसः मम तावत् स्नेहात् ईदृशम् इदं वैक्लव्यम् गृहिणः नवैः तनयादुःखैः कथं नु पीड्यन्ते ।

अथ शकुन्तलां पतिगेहं प्रेषयिष्यन् तस्याः स्नेहातिशयात् वैक्लव्यमुपगतो महर्षिः कण्वः तदीयप्रस्थानमनुसन्दधानो ब्रवीति—**यास्यत्यद्येति** । अद्य=अस्मिन्नहनि, न त्विदानीं यदि इदानीमेव तदा का गतिर्भवेदित्यर्थः । शकुन्तला = मम धर्मकन्या शकुन्तैर्लालिता तत्सकाशाल्लब्धा, न तु मदात्मजेति भावः, यास्यति = पतिगृहं गमिष्यति, न तु, याता, नापि याति, अपितु यास्यतीति मनसि कृतमात्रे एवेदमुत्कण्ठादिकमन्यथा कीदृग्भविष्यतीति यावत्, इति = हेतौ भविष्यता शकुन्तला प्रस्थानेन हृदयं = शकुन्तलानुध्यानेन

---

**( स्नान कर लौटे हुए महर्षि कण्व का प्रवेश )**

**महर्षि कण्व—( सोचकर ) ।**

आज शकुन्तला अपने पति के घर जायेगी, इसलिए मेरा हृदय उत्कण्ठा से व्याकुल हो रहा है, और आँसुओं के भीतर ही भीतर रोकने से मेरा गला भी भर गया है । मेरे नेत्र भी चिन्ता से जड़ी-भूत होकर देखने में असमर्थ हो रहे हैं । यदि वनवासी वीतराग मेरे जैसे निस्पृह की भी कन्या के वियोग की कल्पना से ऐसी विफलता हो रही है तो फिर विचारे गृहस्थ सांसारिक लोग कन्या के अभिनव = ताजे वियोग रूपी दुःख से कैसे नहीं दुःखित हों ॥ ५ ॥

**( घूमते हैं । )**

**विशेष**—अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क के चार श्लोक विषय की दृष्टि से उत्कृष्ट माने जाते हैं, जिनमें एक श्लोक यही है । अपने पिता के घर से पतिगृह के लिए पहली बिदाई के समय

---

पाठा०—१. स्पृष्टं समुत्कण्ठया । २. अन्तर्बाष्पभरोपरोधि गदितं चिन्ताजडं दर्शनम् । ३. तावदीदृशमहो ।

**सख्यौ**--हला सउंदले अवसितमंडणासि । परिधेहि संपदं खोमजुअलं [ **हला शकुन्तले अवसितमण्डनानि । परिधत्स्व सांप्रतं क्षौमयुगलम्** ]। ( शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते ) ।

**गौतमी**—जादे एसो दे आणंदपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सजन्तो विअ गुरु

---

तन्मयीभूतं मे चेतः उत्कण्ठया = स्वरहस्यवेदनया व्याकुलतया संस्पृष्टं = सम्यक् स्पृष्टम् व्याप्तं कण्ठः = स्वरः वाष्पं = स्वरसतः प्रवृत्तानामश्रूणां वृत्त्या=उद्गमेन कलुषः = गद्गद इति स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषः—दर्शनं = चक्षुः चिन्तया = शकुन्तलानुध्यानेन जडं = पुरोगतविषयाग्रहणासमर्थं = चिन्ताजडम् = अरण्यं = विपिनमेव लोकं गृहं यस्येति अरण्यौकाः तस्यः रण्यौकसः = वनवासिनः जन्मतस्तपोवने वर्तमानस्य मम = शमदमादि सम्पन्नस्य वीतरागस्य निरीहस्य तावत् = अपि स्नेहात् = प्रीतिभावात् इदृशम् = अनिर्वचनीयम् इदं = अनुभूयमानं वैक्लव्यं = विह्वलता तर्हि गृहिणः = गृहस्थाः नवैः = अभिनवैः प्रथमोत्पन्नैः तनयायाः = औरस्याः कन्यायाः विश्लेषदुखैः = विरहदुखैः पुत्री-वियोगजन्यक्लेशैः तनयाविश्लेषदुःखैः कथं = केन प्रकारेण नु पीडयन्ते = नाभिभूयन्ते अपितु पीडयन्ते एव । निर्ममस्य ममापि यत् असह्यप्रायं तदा वराका=विषयिणो गृहस्थाः तेन निर्जीवा एव भवन्तीति भावः ।

**अयमभिप्रायः**—पतिगेहं गमिष्यन्त्याः शकुन्तलायाः स्नेहातिशयाद् विक्लवहृदयः कुलपतिः कण्वो निजमनसि विचारयति—अद्य शकुन्तला पतिगृहं गमिष्यतीत्यनुसन्धान-मात्रेण तदीयविरहवेदनया जडीभूतं मे हृदयम् चिन्तया वाढं व्याप्तोऽस्मि, मम स्वरश्च प्रवृत्तानां वाष्पाणां प्रवृत्या गद्गदो जातः, मम नेत्रं च समक्ष-विषयाग्रहणासमर्थंमजायत । जन्मत आरम्य तपस्तप्त्वा तपोवने निवसतो वीतरागस्यापि मम यदीदृगनिर्वचनीयं वैक्लव्यं तर्हि विषयासक्तस्य गृहस्थस्य आत्मजवियोगजन्यैदुःखैर्जातस्य क्लेशस्य का कथा ?

अत्र व्यतिरेकानुप्रासार्थापत्ति काव्यलिङ्गालङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं च छन्दः ॥५॥

इति = एवमुक्त्वा शकुन्तलासमीपे परिक्रामति = परिभ्रमति )

**सख्यौ**—हला-सखि ! = शकुन्तले ! अवसितं = समाप्तं मण्डनं = अलङ्करणं यस्या सा अवसितमण्डना = परिसमाप्तरचनाभरणसन्निवेशा असि । साम्प्रतं = इदानीम् क्षौमयोर्युगलं क्षौमयुगलं = कौशेयवस्त्रयुग्मम् परिधत्स्व = धारय, ( इति शकुन्तला उत्थाय, अन्यथा वस्त्रधारणस्याशक्यत्वात् क्षौमयुगलं परिधत्ते = धारयति ) ।

**गौतमी**—जाते ! = पुत्रि ! एषः = अयं पुरोवर्ती ते = तव गुरुः तातः पिता कण्वः

---

पिता को जो हार्दिक क्लेश होता है उसका मार्मिक चित्रण इस श्लोक द्वारा किया गया है । प्रथम बार का वियोग बाद के वियोग की अपेक्षा अधिक दुःखद होता है । कन्या की पहली बिदाई के समय विषयासक्त गृहस्थ पिता को कितना दुःख होता है इसकी कल्पना वीतराग महर्षि कण्व भी नहीं कर सके । वस्तुतः जब अनासक्त विषयविमुख महर्षि कण्व को पोष्यपुत्री शकुन्तला के वियोग का इतना दुःख हुआ तो बेचारे विषयासक्त गृहस्थों को अपनी आत्मजा की पहली बिदाई के दुःख का कहना ही क्या है ?

**दोनों सखियाँ**—सखी शकुन्तले ! तुम्हारा शृंगार हो चुका, अब रेशमी कपड़ों का जोड़ा पहन लो और ओढ़ लो । ( **शकुन्तला उठकर पहनती है** )

**गौतमी**—बेटी शकुन्तले ! देख, ये तुम्हारे पिता जी महर्षि कण्व उपस्थित हैं, जो आनन्द

उवट्ठिदो । आआरं दाव पडिवज्जस्स । [ जाते एष त आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गुरुरुपस्थितः । आचारं तावत्प्रतिपद्यस्व ] ।

**शकुन्तला**—( सव्रीडम् ) ताद वंदामि [ तात वन्दे ] ।

**कण्वः**—वत्से !

**ययातेरिव शर्मिष्ठा [1]भर्तुर्बहुमता भव ।**
**सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥ ६ ॥**

---

आनन्दं = हर्षं परितो वाहयति = प्रेरयति इति आनन्दपरिवाहितेन आनन्दपरिवाहिणा = आनन्दातिशये प्रकाशयता हर्षनिर्भरेण हर्षाश्रुविमुञ्चता चक्षुषा = लोचनेन दृष्ट्या उपलक्षितः परिष्वज्यमानः आलिङ्गन् इव त्वाम् उपस्थितः = सन्निहितः । तावत् आचारम् = अभ्युत्थानवन्दनादिकम् प्रतिपद्यस्व = विधेहि ।

**शकुन्तला**—( सव्रीडं = सलज्जाम् ) तात ! = पितः वन्दे = त्वां प्रणमामि ।

**कण्वः**—अथ महर्षिः कण्वः स्नेहातिशयव्यञ्जकं वत्से ! इति सम्बोधनं प्रयुज्य = तदनुरूपामाशिषं प्रयुङ्क्ते—**ययातेरिवेति ।**

**अन्वयः**—( हे वत्से ) ययातेः शर्मिष्ठेव भर्तुः बहुमता भव । सा पुरुम् इव त्वमपि सम्राजं सुतम् अवाप्नुहि ।

ह्रियावनतां वन्दमानां शकुन्तलामवलोक्य महर्षिः कण्वः तदनुरूपां स्नेहातिशयव्यञ्जिका प्रयुङ्क्ते—**ययातेरिवेति** । वत्से ! = धर्मकन्यके शकुन्तले ! ययातेः=ययातिनाम्ना प्रसिद्धस्य सोमवंशीयस्य नृपतिनहुषपुत्रस्य शर्मिष्ठेव = तदभिधाना वृषपर्वणः पुत्री तन्महिषीव भर्तुः = पत्युर्दुष्यन्तस्य बहुमता = सम्मानिता प्रिया भव । सा शर्मिष्ठा पुरुं-तन्नामकं चन्द्रवंशस्य कर्तारं समाजं पुत्रमिव त्वमपि सम्राजं = चक्रवर्तिनं सुतम् = आत्मजम् अवाप्नुहि = लभस्व ।

**अयं भावः**—लज्जयावनतमुखीं वन्दमानां शकुन्तलां समवेक्ष्य सस्नेहमाशिषं ददत्

---

प्रवाहित वात्सल्य दृष्टि से तुम्हें देख रहे हैं। अतः तू समुचित अभ्युत्थान प्रणाम आदि आचार का पालन कर इनका सम्मान करो अर्थात् इनको प्रणाम करो ।

**शकुन्तला ( लज्जा के साथ )** पिता जी को प्रणाम है ।

**कण्व**—वत्से ! जिस प्रकार पूर्वकाल में शर्मिष्ठा राजा ययाति की प्रिय थी वैसे ही तुम भी अपने पति दुष्यन्त की अत्यन्त प्यारी हो। और जैसे शर्मिष्ठा ने राजा ययाति सम्राट् पुरु को जन्म दिया था, वैसे ही तू भी राजा दुष्यन्त से चक्रवर्ती पुत्र को प्राप्त करो ॥ ६ ॥

**विशेष**—चन्द्रवंशी नहुषपुत्र राजा ययाति की दो रानियाँ थीं, एक असुरगुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी तथा दूसरी असुरों के राजा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा। इन दोनों में देवयानी की अपेक्षा शर्मिष्ठा राजा ययाति को अधिक प्यारी थी । इन दोनों की कथा महाभारत के आदि पर्व में बड़े विस्तार के साथ लिखी हुई है। देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच के शाप से ब्राह्मण कन्या देवयानी का पाणिग्रहण हुआ था, किन्तु शर्मिष्ठा उसकी दासी बनकर ययाति के पास गई थी, जिससे उन्होंने गान्धर्व विवाह कर लिया था ।

कवि ने यहाँ उपमा सटीक दी है। शर्मिष्ठा से शकुन्तला का कई बातों में साम्य है। दोनों का माता पिता की आज्ञा के बिना गान्धर्व विवाह हुआ था, दोनों को माता पिता ने त्याग दिया था,

---

पाठा०—१. पत्युर्बहुमता ।

**गौतमी**--भअवं वरो खु एसो ण आसिसा [ **भगवन्, वरः खल्वेषः नाशिषः** ]।

**कण्वः**--वत्से ! इतः सद्योहुताग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व ।

( सर्वे परिक्रामन्ति )।

**कण्वः**--( ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते )

**अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।**
**अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ॥ ७ ॥**

---

महर्षिः कण्वो ब्रूते वत्से ! यथा वृषपर्वणः पुत्री शर्मिष्ठा नहुषात्मजस्य राज्ञो ययातेः प्रधाना राजमहिषी चन्द्रवंशस्य विधातारं ययातिसिंहासनासीनं पुत्रमजनयत् तथैव त्वमपि राजर्षेः दुष्यन्तस्य महादेवीषु प्रियतमा श्रेष्ठा सती भरतवंशस्य कर्त्तारं दुष्यन्त-सिंहासनाधिकारिणं चक्रवर्तिनं तनयं प्राप्नुहि । अत्रोपमालङ्कारः अनुष्टुव् वृत्तञ्च ॥ ६ ॥

**गौतमी**—भगवन् = हे ब्रह्मन् ! एषः = अयं खलु निश्चयेन वरः = वरदानम् ननु आशिषः = आशीर्वादवचांसि । आशीस्तु अभीष्टस्य प्रार्थनं भवति किन्तु वरस्तु अभीष्ट-साधनसमर्थो विधिः इति उभयोर्भेदः । प्रस्थानसमये शकुन्तलाकृतवन्दनानन्तरं शिष्टा-चारप्रयुक्ताऽप्येषा आशीः भवन्मुखनिर्गतत्वाद्वर एव प्रवृत्त इति भावः । तदुक्तमुत्तरराम-चरिते—ऋषीणां पुनराधाना वाचमर्थोऽनुधावति ।

**कण्वः**—कुलपतिः कण्वो हि शकुन्तलायाः कृते प्रयाणाङ्गं कर्तव्यमुपदिशति—वत्से= आयुष्मति ! इतः = अत्र देशे सद्योहुताद् = अस्मिन् एव क्षणे शास्त्रीयविधिना हव्येन सन्तर्पितान् अग्नीन् त्रेताग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व = परिक्रमस्व ।

( सर्वे = सकला जनाः परिक्रामन्ति = यज्ञाग्नि प्रदक्षिणीकुर्वन्ति )

**कण्वः**—( ऋक्छन्दसा = ऋग्वेदच्छन्दोग्रथितेन वाक्येन आशास्ते = आशीर्वादान् ददाति ) । श्लोकात्मकं तद्वाक्यमाह—अमीति ।

**अन्वयः**—वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः हव्यगन्धैः दुरितम् अपघ्नन्तः अमी वैतानाः वह्नयः त्वां पावयन्तु ।

---

सौत रहते हुए दोनों का विवाह प्रेमवश हुआ था, छोटी रानी होने पर भी दोनों के पुत्र चक्रवर्ती राजा हुए हैं । दोनों को पुत्रों से दो क्षत्रिय वंश चले हैं—ययाति के पुत्र पुरु से पौरववंश तथा दुष्यन्त के पुत्र भरत से भरतवंश ।

**गौतमी**--हे भगवन् ! यह तो वरदान है, आशीर्वाद नहीं ।

**कण्व**--वत्से ! इधर अग्निहोत्रशाला में स्थित अभी हवन की हुई ये तीनों अग्नि विराजमान हैं । इनकी तू प्रदक्षिणा कर ।

**विशेष**--कर्मकाण्ड की दृष्टि से अग्नि तीन प्रकार की है, एक गार्हपत्य अग्नि दूसरी आहव-नीय अग्नि, और तीसरी दाक्षिणात्य अग्नि । इनमें गार्हपत्य अग्नि निरन्तर बनी रहती है, समय-समय पर आवश्यकतावश अन्य कुण्डों में लाई जाती है । इसी प्रकार तीन कुण्ड भी होते हैं गार्हपत्य, आहवनीय और दाक्षिणात्य ।

**( सभी लोग अग्नि की परिक्रमा के लिए ले जाते हैं )**

**कण्व--(ऋग्वेद के मन्त्र की छाया से विरचित पद्यबद्ध वाक्य से आशीर्वाद देते हैं)** वत्से !

वेदी के चारों ओर विराजमान समिधाओं से प्रज्वलित और जिनके चतुर्दिक् कुश बिछे हुए हैं

प्रतिष्ठस्वेदानीम् । ( सदृष्टिक्षेपम् ) क्व ते शार्ङ्गरवशारद्वतमिश्राः ?

( प्रविश्य )

**शिष्यः**—भगवन् इमे स्मः ।

**कण्वः**—भगिन्यास्ते मार्गमादेशय ।

**शार्ङ्गरवः**—इत इतो भवती ( सर्वे परिक्रामन्ति )

---

पत्युः गेहं गच्छन्तीं शकुन्तलां यज्ञाग्निप्रदक्षिणीकरणे नियुज्य तदभीष्टसिद्धये शुभाशंसनं कुरुते—**अमीति** । वेदिं = वेदिकाम्, परितः = सर्वतः, यज्ञवेद्याः समन्तात् क्लृप्तधिष्ण्या क्लृप्तानि रचितानि धिष्ण्यानि स्थानानि येषां ते क्लृप्तधिष्ण्याः = रचितनिवासाः प्रथमाधानसमये एव त्रिधाकल्पितस्थानाः अथवा प्रतिदिनं होमान्तरमेकीभूताः पुनर्होमसमये पृथक् कल्पिताः समिद्वन्तः—समिधः = यज्ञकाष्ठानि सन्ति येषां ते समिद्वन्तः = ज्वलितसमिधः प्रान्तेषु = पार्श्वेषु संस्तीर्णाः = आस्तृता दर्भाः = कुशा येषां ते प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः = पर्यन्तनिविष्टकुशाः हव्यस्य = हुतद्रव्यस्य बन्धैः परिमलैः हव्यगन्धैः = दन्दह्यमानसमिदाज्यचर्वादिसुरभिगन्धैः दुरितं = पापम् अपघ्नतः = नाशयन्तः अमी = इमे पुरतो दृश्यमानाः वितानस्य इमे वैतानाः = यज्ञसम्बन्धिनः वह्नयः = दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयाख्याः त्रयोऽग्नयः त्वां = भवतीं शकुन्तलां पावयन्तु=पवित्राशया कुर्वन्तु ।

**अयम्भावः**—पतिगेहं गच्छन्तीं शकुन्तलां सम्बोध्य महर्षिः कण्वोऽभिधत्ते—प्रज्वलितसमिधः प्रकाशमाना हुताज्यादिसुगन्धि जिघ्रतां पुंसां पापानि दूरयन्तः एते त्रयोऽग्नयः मनोवृत्तिशोधनद्वारा त्वां पुनन्तु = पालयन्तु च ।

इदानीं = सांप्रतं प्रतिष्ठस्व मुहूर्तोऽतिक्रामति, विलम्बो न कार्यं इत्यर्थः ( सदृष्टिक्षेपं = तस्मिन् प्रदेशे शिष्योपस्थितिसंभावनया तानवलोकयितुं चतुर्दिक्षु दृष्टिप्रदक्षिणं कृत्वा ) क्व ते = पूर्वमादिष्टाः शार्ङ्गरवमिश्राः = श्रेष्ठाः शार्ङ्गरवाः क्व = कुत्र सन्ति ?

( प्रविश्य = उपस्थाय )

**शिष्यः**—भगवन् ! = श्रीमन् ! इमे स्मः = अत्र उपस्थिताः स्मः ।

**काश्यपः**—कुलपतिः कण्व आदिशति—ते = तव भगिन्याः धर्मभगिन्याः स्वसुः शकुन्तलायाः मार्गं = पन्थानं, आदेशय = अनेन पथा भवती आगच्छत्विति निर्दिश, दर्शयेति भावः ।

**शार्ङ्गरवः**—इतः इतो भवती = हे भवति = हे श्रीमति ! इतः इतः = अनेन पथा त्वमायाहि । ( सर्वे = सकलाः परिक्रामन्ति = परिभ्रमन्ति )

---

ऐसे हवनीय द्रव्य आज्यादि के गन्धों से युक्त अपनी सुगन्ध से पापों को नष्ट करने वाले तीनों अग्नियाँ तुम्हारे विघ्नों को दूर करें ॥ ७ ॥

**( शकुन्तला तीनों अग्नियों की प्रदक्षिणा करती है )**

पुत्रि ! अब तू मङ्गल प्रस्थान कर **( इधर-उधर देखकर )** वैदिक विद्वान् शार्ङ्गरवमिश्र तथा शारद्वतमिश्र कहाँ हैं ।

**शिष्य—( प्रवेश कर )** हे भगवन् ! हमलोग उपस्थित हैं ।

**कण्व**—वत्स, तुम दोनों अपनी बहन शकुन्तला को मार्ग दिखा कर हस्तिनापुर ले जाओ ।

**शार्ङ्गरव**—हे भगवति ! इधर से आओ, इधर से **( सभी घूमते हैं )**

**कण्वः**—भो भोः [1]संनिहितास्तपोवनतरवः ।

**पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं [2]युष्मास्वपीतेषु या**
**नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।**
**आद्ये वः [3]कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः**
**सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ८ ॥**

---

**कण्वः**—भो भोः = हे हे सन्निहिताः = उपस्थिताः तपोवनतरवः = तपोवनाटवीतरवः आश्रमस्थवृक्षाः !

**अन्वयः**—या युष्मासु अपीतेषु प्रथमं जलं पातुं न व्यवस्यति । या प्रियमण्डना अपि भवतां स्नेहेन पल्लवं न आदत्ते । वः आद्ये कुसुमप्रसूतिसमये यस्या उत्सवः भवति । सा इयं शकुन्तला पतिगृहं याति सर्वैः ( युष्माभिः ) अनुज्ञायताम् ॥

अथात्मानं प्रणम्य हुताग्नींश्च प्रदक्षिणीकृत्य प्रस्थातुमुद्यतां शकुन्तलामुद्दिश्य कुलपतिः कण्वः तपोवनवृक्षानामन्त्रयनुवाच—**पातुं नेति** । या = शकुन्तला युष्मासु = भवत्सु वृक्षेषु न विद्यते पीतं = पानं येषां ते तेषु अपीतेषु = अपीतजलेषु असिक्तेषु प्रथमं = पूर्वमेव जलं = पानीयमपि पातुं न व्यवस्यति = न यतते, नेच्छति, भवत्सु अकृतसेकेषु सत्सु जलमपि न पिबति, फलमूलादेरपि का कथेत्यर्थः । या शकुन्तला प्रियाणि मण्डनानि यस्याः सा प्रियमण्डना = भूषणप्रियापि भवतां = युष्माकं स्नेहेन = भविष्यानुरागेण युष्माकं पल्लवं = नवदलं किसलयमपि न आदत्ते = न गृह्णाति, न लुनातीत्यर्थः वः = युष्माकं आद्ये- प्रथमे कुसुमानां प्रसूतिः कुसुमप्रसूतिः = कौस्कोदगमः तस्याः समये कुसुमप्रसूतिसमये = प्रथमकालिकास्फुटने यस्याः = अस्याः, शकुन्तलायाः उत्सवः = देवोत्सवः–पुत्रोत्सवादिवत् परमानन्दः भवति = जायते, भवदाद्यसुमनदर्शनसमयज अस्या हर्षातिरेको वक्तुं न सुशक इति भावः । सा = युष्मास्वेवंविधवात्सल्यातिशायिनी इयं = पतिगृहप्रस्थानवेषेव युष्मानामन्त्रयितुमुपस्थिता शकुन्तला = भर्तृभवनं याति पतिगेहं गन्तुमुपक्रमते, सर्वैः = सकलैः युष्माभिः सम्भूय, प्रत्येकमनुज्ञाकरणे विलम्बः स्यात्, एषा अनुज्ञायताम् = अनुमन्यताम् । अतो भवद्भिः संभूय पतिगृहप्रयाणानुरूपशुभाशीर्वचनवर्धितं स्वस्नेहानुरूपं चानुमोदनं क्रियतामिति भावः ।

**अयं भावः**—अहो, तपोवनवृक्षाः ! येयं भवद्भगिनी शकुन्तला युष्मासु स्नेहाधिक्यांद

---

**कण्व**—हे समीपवर्ती आश्रम के वृक्षों !

जो शकुन्तला जल से तुम्हारा रोचन किये बिना कभी भी जल तक नहीं पीती थी, जो पत्र-पुष्पों के बने हुए आभूषणों की प्रिय = अनुरागिणी होते हुए भी स्नेह से तुम्हारे कोमल पत्तों तक को नहीं तोड़ती थी और जो तुम्हारे पहले-पहले फूल निकलने के समय अनेक उत्सव एवं आनन्द मनाती थी, वही शकुन्तला आज अपने पति के घर जा रही है । आप लोग सभी उसे जाने की अनुमति दीजिये ॥ ८ ॥

**विशेष**—चतुर्थ अङ्क के उत्तम चार श्लोकों में यह दूसरा श्लोक है । इसमें प्रकृतिसुन्दरी शकुन्तला के गुणों का उत्कृष्ट वर्णन हैं जो पर दुःख निवारणार्थ सन्नद्ध रहती थी अपनी परवाह तक नहीं करती थी । वन में विराजमान शकुन्तला वन-वृक्षों से सदा प्रेम करती रहती थी और

---

पाठा०—१. संनिहितावनदेवतास्तपोवनतरवः । २. युष्मास्वसिक्तेषु । ३. कुसुमप्रवृत्तिसमये ।

( कोकिलारवं सूचयित्वा )

**अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः ।**
**परभृतविरुतं कलं [1]यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥ ९ ॥**

---

युष्मद्भ्यो जलदानात् पूर्वं जलपानं न करोतिस्म, पुष्पपल्लवालङ्कारप्रियापि युष्मासु स्नेहातिरेकात् एकमपि पल्लवं न त्रोटयतिस्म, प्रत्यहं पयोदानावसरे भवतो निरीक्षमाणायाः यस्याः प्रथमपुष्पोदये महानुत्सवो भवतिस्म, सेयं युष्माकं मम च लालनीया वत्सा शकुन्तला पत्युर्गेहं गच्छति । अतः सर्वैर्युष्माभिः सम्भूय पतिगेहप्रयाणानुगुणं शुभासंशसन-पूर्वकमनुगमनं क्रियताम् ।

अत्र—विशेषोक्ति-समासोक्ति काव्यलिङ्गालङ्कारः शार्दूलविक्रीडितं च छन्दः ॥ ८ ॥

( कोकिलरवं सूचयित्वा = पिकशब्दं श्रावयित्वा )

इदं कोकिलरवसूचनं नेपथ्यगतनटकर्तृकं ते हि सुशिक्षिताः शकुन्तशब्दं कुर्वन्ति ।

अथ शकुन्तलागमने महर्षिः कण्वः स्वप्रार्थनानुरूपां तपोवनवृक्षानुमतिं प्राह—अनुमत-गमनेति ।

**अन्वयः**—इयं शकुन्तला वनवासबन्धुभिः तरुभिः अनुमतगमना यथा एभिः ईदृशं कलं परभृतविरुतं प्रतिवचनीकृतम् ।

कुलपतिः कण्वः तपोवनवृक्षान् शकुन्तलागमनानुमतिं संप्रार्थ्य तत्कालं कोकिलरुतं निशम्य कथयति—अनुमतगमनेति । इयम् = एषा शकुन्तला वनवासस्य बन्धुभिः वन-वासबन्धुभिः = आश्रमसहोदरैः = स्निग्धजनैः तरुभिः = तपोवनवृक्षैः अनुमतं = अनुज्ञातं गमनं = पतिगृहयात्रा यस्याः सा अनुमतगमना = अनुज्ञातपतिगृहगमना जाता । यथा = यस्मात् एभिः = तपोवनवृक्षैः ईदृशं = एवंविधम्, उक्तप्रकारम् कलं = मधुरं रवं पर-भृतानां = कोकिलानां विरुतं = मञ्जुकूजितम् प्रवचनीकृतम् = प्रत्युत्तरवत् उपन्यस्तम् । स्वोत्तररूपेण प्रकटितम् ।

**अयं भावः**—तस्मिन् समये कोकिलध्वनिमाकर्ण्य महर्षिः कण्वोऽनुमितवान् यत् बाल्य-कालादस्याः शकुन्तलायाः साहचर्येण भ्रातृभूतैरेभिः आश्रमवृक्षैर्मम प्रार्थनानुरूपमेवेयं शकुन्तला पतिगृहगमनायानुमता । यत एभिः अस्याः समानस्वरं मधुरं कोकिलाङ्गनानां मञ्जुकूजितं प्रत्युत्तरवदुपन्यस्तं तस्मात् एभिस्तरुभिरपीयं शकुन्तला गन्तुमनुमन्यते एव । यात्राकाले हि कोकिलध्वनिं शकुनज्ञैः शुभं मन्यन्ते । अत्रानुमान-रूपक-परिणाम-काव्य-लिङ्गालङ्कारः अपरवक्त्रं च वृत्तम् ॥ ९ ॥

---

उनका ध्यान रखती थी। यहाँ वर्तमानकालिक क्रियायों से प्रतीत होता है कि वह ससुराल जाने समय तक आश्रम के कर्तव्यों में तत्पर थी।

**( वृक्षों पर विराजमान कोयलों की ध्वनि से प्रस्थान की अनुज्ञा की सूचना बताकर )**

वन में साथ ही रहने से बन्धुभाव को प्राप्त हुए इन वृक्षों ने शकुन्तला को पतिगृह जाने की अनुमति दे दी है, क्योंकि उन्होंने मधुर एवं मनोहर कोकिल का शब्द ही अपने उत्तर में उच्चारित किया है ॥ ९ ॥

---

पाठा०—१. यदासीत्प्रतिवचनीकृतमेभिरात्मनः ।

[1]( आकाशे )

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभिश्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापैः[2] ।
भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः ॥१०॥

( सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति )

**गौतमी**—जादे णादिजणसिणिद्धाहिं अणुण्णादगमणासि तवोवणदेवदाहिं । पणमभअवदीणं [ जाते ज्ञातिजनस्निग्धाभिरनुज्ञातगमनासि तपोवनदेवताभिः । प्रणम भगवतीः ] ।

---

वनदेवतानामनुज्ञाप्रकारं प्रदर्शयति—( आकाशे ) रम्यान्तर इति ।

**अन्वयः**—अस्याः पन्थाः कमलिनीहरितैः सरोभिः रम्यान्तरः, छायाद्रुमैः नियमितार्कमयूखतापैः कुशेशयरजोमृदुरेणुः शान्तानुकूलपवनः च शिवश्च भूयात् ।

वनदेवतानामनुज्ञाप्रकारं प्रदर्शयति—रम्यान्तर इति । अस्याः = पुरोदृश्यमानायाः शकुन्तलाया. पन्थाः = मार्गः कमलिनीभिः = पद्मिनीभिः हरितैः = श्यामलैः कमलिनीहरितैः पद्मिनीखण्डहरितायमानैः सरोभिः = सरोवरैः जलाशयैः तडागैः रम्यं मनोहरं अन्तरं इतस्तपोवनादारभ्य भर्तृगृहं यावत् मध्यगामीमार्गः यस्यासौ रम्यान्तरः = हृद्यमध्यः छायाप्रधाना द्रुमाः छायाद्रुमाः = छायाबहुला वृक्षाः तैः छायाद्रुमैः = शीतलछायामनोहरैः नियमितः अर्कस्य = सूर्यस्य मरीचीनां = किरणानां तापोऽस्यासौ नियमितार्कमयूखतापः = अवरुद्धदिवाकरकिरणसन्तापः कुशेशयानां रज इव मृदुः रेणुः यस्यासौ कुशेशयरजोमृदुरेणुः=कमलपरागकोमलधूलिपटलः शान्तोऽनुकूलश्च पवनो यत्रासौ शान्तानुकूलपवनः अतएव शिवः = सुखदः कल्याणकारी, भूयात् = स्यात् ।

**अयंभावः**—शकुन्तला सुकुमाराङ्गी पतिगेहं गच्छन्ती मार्गमध्ये न किमपि कष्टमनुभवतादिति हेतोः तपोवनादारभ्यास्याः पतिगृहं पर्यन्तं मध्यगामी मार्गः तत्र तत्र अस्याः श्रमविनोदनाय निरन्तरव्याप्ताभिः कमलिनीभिः श्यामलैः जलाशयैः परिपूर्णः छायाद्रुमैः मध्याह्नसूर्यतापरहितश्च भवतु, किञ्च सुरभिमृदुः मन्दानुकूलपवनश्च मार्गे भवतु, अत्रोपमा-परिकर-काव्यलिङ्गादयोऽलङ्कारा वसन्ततिलका छन्दश्च ॥ १० ॥

( सर्वे = सकला सविस्मयं साश्चर्यं च आकर्णयन्ति = शृण्वन्ति )

**गौतमी**—वनदेवतानामेव तद्वचनमिति निश्चिन्वाना शकुन्तलां तत्कर्तव्यमुपदिशति—

---

**( आकाशवाणी होती है )**

इस शकुन्तला का मार्ग बीच-बीच में कमल की लताओं से हरे-भरे सरोवर से युक्त, मन को हरने वाला, घनी छाया से युक्त वृक्षों से सूर्य की किरणों के दुःखद सन्तापों से रहित कमलों की रज से मृदुल और शान्त, मन्द-मन्द पवन से सुखप्रद और कल्याणकारी हो ॥ १० ॥

**विशेष**—इस आकाशवाणी के द्वारा वनदेवताओं की ओर से शकुन्तला को शुभाशीर्वाद के रूप में कहा गया है कि मार्ग में इसे किसी प्रकार का कष्ट न हो, त्रिविध = मन्द, शीतल एवं सुगन्ध वायु सुखप्रद हो ।

**( सभी आश्चर्यचकित हो सुनते हैं )**

**गौतमी**—पुत्रि ! वन में हमेशा साथ-साथ रहने से हमारे में बन्धुभाव और स्नेह रखने वाली

---

पाठा०—१. ( नेपथ्ये ) । २. मरीचितापः ।

**शकुन्तला**—( सप्रणामं परिक्रम्य जनान्तिकम् ) हला पिअंवदे णं अज्जउत्तदंसणुस्सुआए वि अस्समपदं परिच्चअंतीए दुक्खेण मे चलणा पुरदो पवट्टंति [ **हला प्रियंवदे नन्वार्यपुत्र दर्शनोत्सुकाया अप्याश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तेते** ]।

**प्रियंवदे**—ण केवलं तपोवणविरहकादरा सही एव्व। तुए उवट्ठिदविओअस्स तपोवणस्स वि दाव समवत्था दीसई [ **न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव। त्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्यापि तावत्समवस्था दृश्यते** ]।

**उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा।**
**ओसरिअ पंडुपत्ता मुअंति अस्सू विअ लदाओ ॥ ११ ॥**

[**उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्त्तना मयूराः।**
**अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ॥** ]

---

जाते ! = वत्से ! ज्ञातिजनस्निग्धाभिः = सम्बन्धिजनवत् स्नेहशीलाभिः तपोवनदेवताभिः अरण्यदेवीभिः अनुज्ञातगमना = अनुमतप्रस्थाना असि अतः भवतीः ताः महोदयाः प्रणम = नमस्कुरु।

**शकुन्तला**—( सप्रणामं प्रणामेन = नत्या सह नतिपूर्वकम् परिक्रम्य किञ्चिद्गमनं नाटयित्वा जनान्तिकं त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्य केवलं सखीं प्रत्याह—हला = सखि ! प्रियम्वदे ! आर्यपुत्रस्य स्वामिनः दर्शनार्थं = मिलनार्थम् उत्सुकायाः = उत्कण्ठितायाः अपि आश्रमपदं = तपोवनं परित्यजन्त्याः = मुञ्चन्त्याः आश्रमात् प्रतिष्ठानायाः दुःखेन = क्लेशेन मे = मम चरणौ = पादौ पुरतः = अग्रे प्रवर्तेते = चलतः। आश्रमे स्नेहातिशयवशात् तं त्यक्तुं न प्रभवामीत्यर्थः।

**प्रियंवदा**—न केवलं सख्येव भवती एव तपोवनविरहकातरा = तपोवनस्य भाविना विरहेण कातरा = दुःखितेति, किन्तु त्वया = भवत्या उपस्थितवियोगस्य उपस्थितो वियोग उपस्थितवियोगः तस्योपस्थितवियोगस्य = सम्मात्रितवियोगस्य तपोवनस्य आश्रमवासिनो जनस्यापि तावत् समवस्था = समानैव दशा दृश्यते, दर्शनेन ज्ञायते।

तमेव प्रकारं प्रदर्शयति उद्गलितेति—

**अन्वयः**—मृग्यः उद्गलितदर्भकवलाः, मयूराः परित्यक्तनर्तनाः, लताः अपसृतपाण्डुपत्राः ( सत्यः ) अश्रूणि मुञ्चन्ति इव।

आश्रमवासिनां स्थावरजङ्गमानामपि शकुन्तलाविरहकातरत्वं अनुभवन्ती प्रियम्वदा

---

इन वनदेवताओं ने भी तुम्हें जाने की अनुमति प्रदान कर दी है। अतः इन भगवती वनदेवियों को तू प्रणाम कर।

**शकुन्तला—( प्रणाम करती हुई कुछ चलकर अलग हो प्रियम्वदा से )** हे सखि ! प्रियम्वदे ! आर्यपुत्र को देखने के लिए मैं उत्सुक हो रही हूँ, तो भी चिर परिचित आश्रम को छोड़ते हुए अत्यन्त दुःख से भरे मेरे पैर आगे की ओर नहीं उठ रहे हैं।

**प्रियम्वदा**—इस आश्रम के वियोग से केवल तू ही दुःखी और व्याकुल नहीं हो रही हो, किन्तु भावी तेरे इस वियोग के कारण इस आश्रम की भी बुरी दशा हो रही है, क्योंकि देख—

ये हिरण और हिरणियाँ मुख से कुशा के ग्रासों को भी छोड़कर दुःखित हो खड़ी हैं, मोर तथा

**शकुन्तला**—( स्मृत्वा ) ताद लताबहिणिअं वणजोसिणिं दाव आमंतइस्सं, ( तात लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये ) ।

**कण्वः**—अवैमि ते यस्यां सोदर्यस्नेहम् । इयं तावद्दक्षिणेन ।

**शकुन्तला**—( लतामुपेत्यालिङ्ग्य ) वणजोसिणि चूदसंगता वि मं पच्चालिंग इदोगदाहिं साहाबाहाहिं । अज्जुपहुदि दूरपरिवत्तिणी भविस्सं । ताद ! अहंविअ इअं तुए चिन्तणीया । [ **वनज्योत्स्ने चूतसंगतापि मां प्रत्यालिङ्गेतोगताभिः शाखाबाहाभिः । अद्यप्रभृति दूरपरिवर्तिनी भविष्यामि । तात ! अहमिवेयं त्वया चिन्तनीया** ]

---

शकुन्तलां ब्रूते--उद्गलितेति । मृग्यः = हरिण्यः उद्गलितः = चर्वितोऽपि मुखान्निगलितः दर्भाणां = कुशानां कवलः = ग्रासः याभिः ता उद्गलितदर्भकवलाः = परित्यक्तकुशपत्रग्रासाः परित्यक्तकोमलदर्भाङ्कुरग्रासा वा मयूराः = शिखिनः, बर्हिणः परित्यक्तं नर्तनं = नृत्यं यैस्ते परित्यक्तनर्तनाः = परिवर्जितनर्तनाः लताः = वल्लर्यः अपसृतानि पाण्डुपत्राणि याभिस्ता अपसृतपाण्डुपत्राः = पतितपरिणामपाण्डुपत्राः गलितजीर्णवर्णाः सत्य अश्रूणि = बाष्पाणि नेत्रजलं मुञ्चन्ति = त्यजन्ति इव वनलतारूपा बन्धुस्त्रियः गलत्पाण्डुपत्रापदेशेन अश्रूणि त्यजन्तीवेत्यर्थः ।

**अयं भावः**—सखि शकुन्तले ! पतिगृहं गच्छन्तीं त्वमेव केवलम् आश्रमविरहकातरा असि, अपितु भविष्यत्-त्वद्वियोगेन इमे आश्रमस्था सर्वे जीवा अपि कातरा दृश्यन्ते । अवलोकय त्वया प्रदत्ताभिः नीवारममुष्मिभिः संवर्द्धिता हरिण्यः चर्वितमपि दर्भाङ्कुरग्रासं मुखादुद्गिरन्त्यः मौनमासते । निजनर्तनैः त्वां विनोदन्तो मयूरा अपि विस्मृतनृत्याः स्तब्धाः सन्ति, इमा पुरोवर्तिन्यो लता अपि गलज्जीर्णपर्णा व्याजेन विरहदुःखजन्यं बाष्पं मुञ्चन्त्य इव दृश्यन्ते । तस्मात् सकलेऽपि आश्रमः त्वद्-विरहवेदनया कातरो जातः ॥११॥

**शकुन्तला**—( स्मृत्वा वनज्योत्स्नाम् ) तात ! = पितः ! लताभगिनीं लता=वल्लरी एव भगिनी स्वसेति लताभगिनी तां लताभगिनीं भगिनीस्थानीयां लतां वनज्योत्स्नां = नवमालिकालताम् आमन्त्रयिष्ये = तदनुमतिं याचिष्ये, यद्वा तां प्रेक्षिष्ये प्रेक्ष्यामि ।

**कण्वः**—महर्षिः कण्वः शकुन्तलोक्तमनुवदन्नाह--शकुन्तले ! तस्यां वनज्योत्स्नानां ते = तव सोदरस्नेहं = सहोदरवद्भगिनीवत् स्नेहं समानोदरबन्धुवात्सल्यं अवैमि=जानामि । इयं तावत् दक्षिणेन = दक्षिणदिग्भागे वर्तते तदुपसर्प्यतां त्वयेति भावः ।

**शकुन्तला**--( लतामुपेत्य=वनज्योत्स्नां वल्लरीमुपसृत्य ) हे वनज्योत्स्ने !=नवमालिकालते ! चूतेन संगता चूतसंगता = सहकारसंगता आम्रमिलितापि मां = प्रियभगिनीं

---

मोरनियों ने नाचना बन्द कर दिया है और ये लताएँ भी अपने पुराने पत्तों को छोड़ने के बहाने से मानों आँसू ही बहा रही है ॥ ११ ॥

**शकुन्तला—( कुछ सोचकर )** पिता जी, मैं अपनी लता बहन माधवीलता से भी मिल आऊँ अर्थात् उससे भी आज्ञा ले लूँ ।

**कण्व—**हे पुत्री ! उस वासन्तीलता में तेरा सहोदर भगिनी की तरह ही स्नेह है, यह मैं जानता हूँ, यह देख, दक्षिण की ओर यह वासन्तीलता है ।

**शकुन्तला—( वासन्तीलता के पास जाकर और उसका आलिङ्गन कर )** हे लता बहन ! तू अपने पति आम से संगत होती हुई मेरी ओर फैली अपनी लतारूपी भुजाओं से

कण्वः—

**संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम् ।**
**चूतेन संश्रितवती नवमालिकेयमस्यामहं त्वयि च संप्रति वीतचिन्तः ॥ १२ ॥**

---

शकुन्तलां, प्रत्यालिङ्ग्य = परिषजस्व, इतः = अस्मात् स्थानात् गताभिः = याताभिः मदभिमुखमागताभिः शाखामया बाहाः=भुजा शाखाबाहाः ताभिः शाखाबाहाभिः=विटप-बाहुभिः । अद्य प्रभृति=अस्मात् दिनात् आरभ्य दूरं परिवर्तनं यस्या सा: दूरपरिवर्तिनी=दूरतरनगरगामिनी दूरस्था भविष्यामि । अनेन-मत्कृते क्षणमपि ते चूतवियोगः माभूदिति शकुन्तलायाः तस्यां स्नेहातिशयः सूच्यते । इतः परं वार्तामात्रमपि लब्धुं न शक्यमिति वियोगदुःखस्थप्राबल्यं च सूच्यते । तात ! = पितः ! इयं = वनज्योत्स्ना अहमिव मत्समाना त्वया चिन्तनीया = पालनीया ।

**कण्वः**—महर्षिः कण्वः शकुन्तलायाः तपोवनविरहकातरतामपाकरिष्यन् स्वस्य कृतकृत्यतां च प्रतिपादयन् प्राह—संकल्पितमिति ।

**अन्वयः**—मया तव अर्थे प्रथमम् एव संकल्पितम्, आत्मसदृशं भर्तारं त्वं सुकृतैः गता ( असि ) इयं नवमालिका ( च ) चूतेन संश्रितवती, अस्यां त्वयि च ( विषये ) संप्रति अहं वीतचिन्तः ( जातः ) ।

कुलपतिः कण्वः पतिगेहं गच्छन्तीं शकुन्तलां तपोवनविरहकातरामालोक्य योग्यतमपतिलाभेन हर्षयत् आत्मनः कृतकृत्यतां प्रतिपादयन् ब्रवीति—संकल्पितमिति । मया = तपोनिधिना कण्वेन तवार्थे = त्वदर्थं एवमनेन = यौवनात् प्रागेव संकल्पितम् = मनसा चिन्तितम्, आत्मसदृशं = रूपादिगुणैः अभिजनेन सौन्दर्येण वयसा च तवानुरूपं भर्तारं पतिं त्वं सुकृतैः = स्वसौभाग्यादिभिः निजपुण्यैः मत्प्रयासं विनैव गता = स्वत एव प्राप्ता असि । इयं = पुरोदृश्यमाना नवमालिका = वनज्योत्स्ना चूतेन = सहकारेण आत्मसदृशेन संश्रितवती । अस्यां = वनज्योत्स्नायां त्वयि च वनज्योत्स्नायाः तव च विषये अहं संप्रति = इदानीं वीतचिन्तः—वीता अपगता चिन्ता = विचारणं यस्य सः वीतचिन्तः = अपगतचिन्तः जातोऽस्मि । युवां ममाशोच्ये जातेऽत्यर्थं = यथोक्तं अशोच्यादि पितुः = कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता ।

**अयं भावः**—शकुन्तले ! किमेवं कातरा असि, मया त्वदर्थं, चिन्तितं त्रिभुवनभरणपोषणसमर्थं भर्तारं मम प्रयासमन्तरैव स्वसौभाग्यादिपुण्यैस्त्वं प्राप्तवती । इयं वनज्योत्स्ना च सहकारेण संगता । अतस्तव अस्याश्च विषयेऽहमिदानीं चिन्तारहितो जातः । इतः परं त्वं तपोवनविरहक्लेशं परिहायानुरूपयति लाभहर्षेण सुखमास्व ।

अत्र-समासोक्ति-तुल्योगिता-काव्यलिङ्गादयोऽलङ्काराः वसन्ततिलकावृत्तं च ॥ १२ ॥

---

मेरा आलिङ्गन कर । अब आज से मैं तेरे से दूर हो जाऊँगी । ( **कण्व से** ) पिता जी, कृपया आप इस लता का मेरी तरह ही पालन-पोषण कीजियेगा और मेरी ही तरह इसका पूरा पूरा ध्यान रखियेगा ।

**कण्व**—वत्से ! पहले तो तेरे लिए योग्य वर की मुझे चिन्ता थी सो स्वयं योग्य वर के साथ अपने ही रूप-सौन्दर्य आदि गुणों से चली ही गई है । अतः अब मेरी चिन्ता नहीं रही । अब इस वासन्तीलता का भी मैं इस पार्श्ववर्ती आम्र के वृक्षों के साथ शीघ्र ही विवाह कर दूँगा ॥१२॥

इतः पन्थानं प्रतिपद्यस्व ।

**शकुन्तला**—( सख्यौ प्रति ) हला एस दुवेणं वो हत्थे णिक्खेवो [ **हला एषा द्वयोर्युवयोर्ननु हस्ते निक्षेपः** ]।

**सख्यौ**—अअं जणो कस्स हत्थे समप्पिदो [ **अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः** ]।

( इति वाष्पं विहरतः )

**कण्वः**—अनसूये अलं रुदित्वा । ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला ।

( सर्वे परिक्रामन्ति )

**शकुन्तला**—ताद एसा उडजपज्जंतचारिणी गब्भमंथरा मिअवहू जदा अणघप्पसवा होई तदा मे कंपि पिअणिवेदइत्तअं विसज्जइस्सह। [ **तात एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदा नवप्रसवा भवति तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ** ] ।

---

ततः = तस्मात् इतः = अनया दिशा गन्तव्यमार्गं प्रतिपद्यस्व = अनुसर ।

**शकुन्तला**—हला = सख्यौ आल्यौ ! एषा = इयं नवमालिका द्वयोः = उभयोः युवयोः हस्ते = करे ननु = निश्चयेन निक्षेपः = न्यासः निःक्षेपवत् समर्पितेयं सावधानतया संरक्षणीयेत्यर्थः ।

**सख्यौ**—अनसूया प्रियम्वदा च स्वीयां दुःखदां तद्विरहोत्कण्ठां भङ्ग्या निवेदयतः—अयं जनः = आवाम् कस्य हस्ते समर्पितः = निक्षिप्तः । त्वया आवयोर्हस्ते निक्षिप्तां वनज्योत्स्नां तु आवां पालयाव एव, आवयोः त्वद्विरहे कः गतिरिति भावः ।

( इति = एवमुक्त्वा वाष्पम् अश्रूणि विहरतः = मुञ्चतः )

**कण्वः**—अनसूये ! रुदित्वा अलं = रोदनं न कार्यम्, ननु = निश्चयेन, भोः भवतीभ्यामेव = युवाभ्यामेव शकुन्तला स्थिरीकर्तव्या = अस्थिरा = धैर्यरहिता स्थिरा धैर्ययुक्ता कर्तव्या = करणीया, सान्त्वनीया । विस्रम्भातिशयास्पदाभ्यां भवतीभ्यामेव दुःखापनोदनेन शकुन्तलाचेतसः स्थिरीकरणं कार्यम्, अन्यथा भवतीनां रुदिते सातिशयं रोदिष्यतीति भावः ।

( इति = एवमुक्त्वा सर्वे = सकलाः परिक्रामन्ति = परिभ्रमन्ति )

**शकुन्तला**—तात ! = पितः ! एषा = निकटस्था मद्वियोगकातरा = मत्पुरतः स्थिता

---

अतः तू निश्चिन्त होकर यहाँ से प्रस्थान कर ।

**शकुन्तला**—**( सखियों के पास जाकर )** हे सखियों, इस वासन्तीलता को मैं तुम दोनों के हाथ धरोहर के रूप में छोड़ जाती हूँ । इसकी रक्षा का भार तुम दोनों पर है ।

**दोनों सखियाँ**—और हे सखि ! हम लोगों को तुम किसके सहारे छोड़कर जा रही हो ।

**( यह कह दोनों आँसू बहाती हैं )।**

**कण्व**—हे अनसूये, अरी प्रियम्वदे ! तुम लोग रोओ मत । तुम लोगों को तो शकुन्तला को ही धीरज धराना चाहिए, उलटे तुम दोनों ही रो रही हो ।

**( सब लोग कुछ धीरे-धीरे चलते हैं )**

**शकुन्तला**—हे पिता जी ! कुटी के पास धीरे-धीरे घूमती हुई गर्भभार से क्लान्त यह मृगी जब सुख से प्रसव कर ले, तब इस प्रिय समाचार को सुनाने के लिए मेरे पास किसी शुभ [समाचार पहुँचाने वाले दूत को आप अवश्य भेजियेगा । देखिये, यह बात भूलियेगा मत ।

**कण्वः**—नेदं विस्मरिष्यामः ।

**शकुन्तला**—( गतिभङ्गं रूपयित्वा ) को णु खु एसो णिवसणे मे सज्जइ [ **को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते** ] ( इति परावर्तते )

**कण्वः**—वत्से !

**यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे ।**
**श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥१३॥**

---

उटजपर्यन्तचारिणी, उटजपर्यन्ते = पर्णशालासंगीथे चरति तच्छीलेति उटजपर्यन्तचारिणी कुटीप्रान्ते एव संचरणशीला गर्भेण मन्थरा=मन्दगमना गर्भमन्थरा=गर्भमारमन्दगमना = मृगवधूः हरिणो यदा = यस्मिन् काले अनघः = सकुशलः = प्रसवः = सन्तानोत्पत्तिः यस्या सा अनघप्रसवा = सुखप्रसूतिः तदा = तस्मिन् काले मह्यं=मम प्रति कोऽपि—कश्चन प्रियनिवेदयितृकं सन्तानजन्मशुभवृत्तान्तसूचकः जनः विसर्जयिष्यथ = यूयं प्रेययिष्यथ ।

**कण्वः**—काश्यपः कथयति—न इदम् = एतत् तदुक्तं विस्मरिष्यामि = नूनं प्रेषयिष्यामि ।

**शकुन्तला**—( गतिभङ्गं रूपयित्वा = गत्या = चलनस्य भङ्गं = बाधां गमनरोधं रूपयित्वा = सूचयित्वा मृगसङ्गेन गतिस्खलनमभिनीय ) का नु खलु = वितर्के एषा = अयं मे निवसने = वस्त्रे सज्जते—संसक्तो भवति वसनमाकर्षतीत्यर्थः । ( इति = एवमुक्त्वा परावर्तते = निवर्तते ।

**कण्वः**—अनन्तरं महर्षिः कण्वः शकुन्तलामनुसरन्तं मृगपोतकमवलोक्य सकरुणं तस्य प्रवृत्तिं वर्णयति—**वत्से ! यस्येति ।**

**अन्वयः**—त्वया कुशसूचिविद्धे यस्य मुखे व्रणविरोपणं इङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत स अयं श्यामाकमुष्टिपरिवर्द्धितकः पुत्रकृतकः मृगः ते पदवीं न जहाति ।

पतिगेहं प्रस्थितायाः शकुन्तलाया वसनाञ्चलं गृहीत्वाऽऽकर्षयन्तं मृगशिशुमवलोक्य महर्षिः कण्वः कथयति—**वत्से यस्येति ।** त्वया = भक्त्या कुशानां = दर्भाणां सूचीभिः = सूचितीक्ष्णैरग्रैः विद्धे = क्षते यस्य = मृगस्य मुखे = वदनाभ्यन्तरे व्रणस्य=क्षतस्य विरोपणं = शोषकं व्रणविरोपणम् इङ्गुदीनां=तापसतरूणां तैलं = तत्फलस्नेहं न्याषिच्यत=नितरां सिक्तम् । सः = तद्वात्सल्यविषयः अयं = एषः = त्वद्विरहेण त्वामनुसरन् श्यामाकमुष्टि-

---

**कण्व**—वत्से ! नहीं, नहीं, इसे मैं नहीं भूलूँगा ।

**शकुन्तला**—( **अपनी गति का अवरोध कर अभिनय करती हुई** ) अरी, मैया री मैया ! यह मेरे पैरों में बार-बार आता हुआ कौन मेरे कपड़ों में लिपट रहा है ? ( **घूमकर देखती है** ) ।

**कण्व**—हे पुत्रि ! जिसके मुख के तीक्ष्ण अग्रभाग से विक्षत हो जाने पर मैंने घाव को भरने वाला इङ्गुदी का तेल लगा-लगाकर जिसका व्रण ठीक किया है तथा श्यामक की मुट्ठियाँ दे-देकर जिसका तूने आज तक पालन किया है, वह बच्चे की तरह पाला हुआ यह हिरण का बच्चा तेरे मार्ग को नहीं छोड़ रहा है ॥ १३ ॥

**विशेष**—छोटे बच्चों के मुख में कुश के तीक्ष्ण अग्रभाग से घाव हो जाता है, जिससे उनका खाना बन्द हो जाता है, मुख में घाव हो जाने के कारण वे स्वयं नहीं खा सकते हैं । अतः शकुन्तला मुट्ठी में कोमल घास लेकर धीरे-धीरे उनके घाव को बचाकर खिलाती थी ।

**शकुन्तला**—वच्छ किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व। दाणिं वि मए विरहिदं तुमं तादो चिंतइस्सदि। णिवत्तेहि दाव [ वत्स किं सहवासपरित्यागिनीं मामनुसरसि अचिरप्रसूतया जनन्या विना वर्धित एव। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयिष्यति। निवर्तस्व तावत् ]।

( इति रुदती प्रस्थिता )

**कण्वः**—

**उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं बाष्पं कुरु स्थिरतया [1]विहतानुबन्धम्।**
**अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति ॥ १४॥**

---

परिवर्द्धितकः=वर्द्धित एव वर्द्धितकः=पालितः श्यामाकस्य=मुन्यन्नस्य वीराकस्य मुष्टिभिः=मुष्टिपरिमितैः श्यामाकैः परिवर्द्धितक इति श्यामाकमुष्टिपरिवर्द्धितकः, स्वयमत्तुमसमर्थस्य श्यामाकान् मुष्टौ गृहीत्वा तन्मुखेऽर्पित्वा वर्द्धित इत्यर्थः। कृत्रिमः पुत्रः पुत्रकृतकः= कृत्रिमपुत्रः पुत्रस्थानीयः मृगः=मृगशावकः ते=तव पदवीं=पन्थानं न जहाति= त्यजति।

**अयम्भावः**—दयार्द्रहृदया त्वया दर्भाङ्कुरभक्षणक्षतमुखस्य यस्य मृगशावकस्य सखाभ्यन्तरे इङ्गुदीतैलं निक्षिप्य व्रणः शोषितः स्वयमत्तुमसमर्थस्य तन्मुखे मुष्टिपरिमितं श्यामकं प्रक्षिप्य पुत्रवत्पालितश्च सोऽयं मृगशिशुः त्वद्विरहदुखितः ते वसनं न त्यजति, क्षणं लालयित्वा एवमाग्रस्व

अत्र स्वभावोक्तिः काव्यलिङ्गश्चालङ्कारो वसन्ततिलकाछन्दश्च ॥ १३ ॥

**शकुन्तला**—स्नेहपरवशा शकुन्तला तमौरसपुत्रवत् लालयन्ती सविषादमाह—वत्स! किं=किमर्थम् सहवासपरित्यागिनीं=तवाश्रमवासिनं च सहवासं विहाय पतिगेहं गच्छन्तीं माम् अनुसरसि=अनुगच्छसि, वृथैव किं स्नेहबन्धनमनुबध्नासि। अचिरप्रसूतोपरतया—अचिरं प्रसूता उपरता चेति अचिरप्रसूतोपरता तया अचिरप्रसूतोपरतया= त्वां प्रसूता चिरादेव मृतया=जनन्या=मात्रा विना वर्धितः—यथावत् परिपोषित एवासि। इदानीं=मद्वियोगकाले मया विरहितं यद्विपुत्रं त्वां=भवन्तम् ततः= पिता कण्वः चिन्तयिष्यति=पालयिष्यति तावत् त्वं निवर्तस्व=परावर्तस्व=आश्रमपदं गच्छ। अतस्तव निवर्तनमेव श्रेयः नेतः परं गन्तव्यमिति भावः।

( इति=एवमुक्त्वा रुदती=विलपन्ती प्रस्थिता प्रचलिता )

**कण्वः**—शकुन्तलारोदनं न केवलममङ्गलमेव प्रत्युत् मार्गगमनावरोधीत्युत्प्रेक्ष्य महर्षिः कण्वः कथयति—उत्पक्ष्मणोरिति।

---

**शकुन्तला**—हे वत्स! तुम लोगों के सहवास सुख को छोड़कर जाने वाली मेरे साथ तू क्यों इस प्रकार प्रेम प्रदर्शित कर रहा है? मेरे साथ क्यों आ रहा है? तुझे जन्म देकर तेरी माता के तत्काल मर जाने पर तेरी माता के अभाव में जिस तरह मैंने माता की तरह तेरा आज तक पालन-पोषण किया है तथा इतना बड़ा किया है, उसी प्रकार मेरे अभाव में तेरा पालन-पोषण पिताजी करते रहेंगे, अब तू लौट जा, मेरे साथ मत चल।

**( यह कहकर रोती हुई शकुन्तला प्रस्थान करती है )**

**कण्व**—पुत्रि! तू रो मत, धैर्य धारण कर और चित्त को स्थिर कर इस रास्ते को देखो।

पाठा०—१. शिथिलानुबन्धम्।

**शार्ङ्गरवः**—भगवन् ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरम् अत्र संदिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि।

**कण्वः**—तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः।

---

**अन्वयः**—उत्पक्ष्मणोः नयनयोः उपरुद्धवृत्ति वाष्पं स्थिरतया विहितानुबन्धं कुरु। अलक्षितनतोन्नतभूमिभागे अस्मिन् मार्गे ते पदानि विषमीभवन्ति।

यात्राकाले स्नेहानुबन्धमवलोक्य रुदत्याः शकुन्तलाया अश्रुमोचनं न केवलममङ्गलमेवापितु मार्गगमनविरोधीत्याशङ्क्य महर्षिः कण्वः तां रोदनात् निवर्तयितुं प्राह—उत्पक्ष्मणोरिति। उत् = ऊर्ध्वं पक्ष्मणी ययोः ते तयोः उत्पक्ष्मणोः = उद्गतनेत्ररोमयोः नयनयोः = नेत्रयोः उपरुद्धवृत्ति = उपरुद्धा = व्याहृता वृत्तिः = दर्शनव्यापारो येन तं उपरुद्धवृत्ति = प्रतिहतदर्शनशक्ति वाष्पं = अश्रुजलम् स्थिरतया धैर्येण विहितः = दूरीकृतः अनुबन्धः = पुनः पुनरुत्पत्तिर्यस्य स तं विहितानुबन्धं = निरुद्धाविच्छिन्नप्रसरणं कुरु, धैर्यमवलम्ब्य नेत्रजलं निवर्तयेति भावः। अलक्षितः = अनाकलित नतः = निम्नः = उन्नतः = उच्चश्च भूमिभागः = भूप्रदेशः यस्मिन् स तस्मिन् अलक्षितनतोन्नतभूमिभागे मार्गे = गन्तव्ये पथि ते = तव पदानि = चरणन्यासाः विषमीभवन्ति = स्खलन्ति, उच्चावचेषु निपतन्तीत्यर्थः!

**अयम्भावः**—वत्से! धैर्यमवलम्ब्य वाष्पं रोधय मार्गस्योच्चावचत्वात्ते पादौ इतस्ततः स्खलतः। अत आश्रमस्नेहवैक्लव्यजन्यदुःखेन प्रसरन्तमश्रुप्रवाहमवरोधय येन गन्तव्यमार्गस्ते स्पष्टं दृश्येत।

अत्र परिकर-काव्यलिङ्गालङ्कारौ वसन्ततिलका वृत्तं च॥ १४॥

**शार्ङ्गरवः**—शकुन्तलास्नेहवशतया तन्मार्गानुसारिणं महर्षिकण्वं तच्छिष्यः शार्ङ्गरवः तात्कालिकं कर्तव्यं स्मारयति—भगवन्! = गुरुवर! स्निग्धो जनः = स्नेहपालः आ उदकान्तमोदकान्तम् = उदकान्तपर्यन्तम् अनुगन्तव्यः = बन्धुभिः अनुसरणीयः इति वृद्धैः श्रूयते। तत् = तस्मादिदं सरस्तीरं = जलाशयतटम् अस्ति। अत्र = अस्मिन् स्थाने सन्दिश्य = वाचिकमादिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि = भवान् आश्रमं प्रति निवर्तताम्।

**कण्वः**—शिष्योक्तिमनुमोदमानः कण्वमहर्षिः कथयति—तेन हि = तस्मात् भवदुक्तस्य सर्वथाकरणीयत्वात् इमां = पुरस्थितां क्षीरप्रधानो वृक्षः क्षीरवृक्षः तस्य छायायां = अनातपप्रदेशे आश्रयामः = शरणं कुर्मः।

---

हे वत्से! उन्नत बरौनो से सुशोभित तेरे नेत्रों की दृष्टि शक्ति को रोकने वाले आंसुओं को धैर्य से तथा चित्त को स्थिर कर हटा क्योंकि ऊँचे-नीचे भू-भाग वाले मार्ग पर तेरे पैर लड़खड़ा रहे हैं। अतः रोना बन्द कर मार्ग में देखकर चल॥ १४॥

**शार्ङ्गरव**—गुरु जी, परदेश जाते समय अपने स्नेही बन्धुजनों का जलाशयपर्यन्त ही अनुगमन करना चाहिए ऐसा सुना जाता है। अब सरोवर का तट आ गया है। अतः हमलोगों को आवश्यक सन्देश देकर आप आश्रम को लौट जायँ।

**विशेष**—शास्त्रों में लिखा है कि जब अपना स्नेही बन्धुजन परदेश जाय तो उसको जलाशय तक ही पहुँचाना चाहिए। इसलिए शकुन्तला को सरोवर तक ही पहुँचाने के लिए कहा गया है।

**कण्व**—ठीक है, हमलोग इस दूध वाले वृक्ष की छाया में खड़े हो जायें।

( सर्वे परिक्रम्य स्थिताः )

**कण्वः**—( आत्मगतम् ) किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः संदेष्टव्यम् । ( इति चिन्तयति ) ।

**शकुन्तला**—( जनान्तिकम् ) हला पेक्ख णलिणीपत्तंतरिदं वि सहअरं अदेक्खंती आदुरा चक्कवाई आरडदि दुक्करं अहं करोमि त्ति तक्केमि [ **हला पश्य । नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्या रौति दुष्करमहं करोमीति तर्कयामि ।** ]

**अनसूया**—सहि मा एव्वं मंतेहि । [ **सखि मैवं मन्त्रय ।** ]

**एषा वि पिएण विणा गमेइ रअणिं विसाअदीहअरं ।**
**गरुअं वि विरहदुक्खं आसाबंधो सहावेदि ।। १५ ।।**

---

( सर्वे = सकलाः परिक्रम्य = परिभ्रम्य स्थिताः = उपविष्टाः )

**कण्वः**—महर्षिः कण्वः दुष्यन्ताय सन्देष्टव्यमर्थं मनसि विमृशन्नाह—किं नु खलु तत्रभवतः = आदरणीयस्य दुष्यन्तस्य = राजर्षेः दुष्यन्तस्य युक्तरूपं = प्रशस्तं युक्तं योग्यतमं अस्माभिः-मया कण्वेन सन्देष्टव्यं = सन्देशरूपेण प्रेषणीयम् ( इति = एवं चिन्तयति विचारयति ) इदमस्य तात्पर्यम्-हि राजर्षिः ममानुपस्थितौ मृगयाव्याजेनेदं धर्मारण्यं प्रविश्य मुग्धामेनां शकुन्तलां प्रलोभ्य गान्धर्वविधिना विवाह्य गृहं गतः, अन्तःसत्वामेनां धर्मपत्नीं न स्मरति =नापि कञ्चननेतारं जनं प्रेषयति । तत्र राजकार्याधिक्यं वनवासिनो मे लाघवमूलकमौदासीन्यं वा हेतुः । तस्मान्मया मुनिजनोचितकर्तव्योपदेशप्रदानमुचितमिति विमृशति ।

**शकुन्तला**—सरसस्तीरे समुपस्थिता शकुन्तला सहचरखिन्नां कामपि चक्रवाकीं विलोकयन्ती स्वभर्तृविरहदुःखमाकलयित्वा स्वप्रियसखीमाह—हला हे सखि ! पश्य = वीक्षस्व, नलिनीपत्रेण = कमलिनीदलेन अन्तरितं = व्यवहितं, न तु दूरदेशं गतमिति नलिनीपत्रान्तरितम् अपि सहचरं = प्रियम् अपश्यन्ती = अनवलोकयन्ती आतुरा = विह्वला चक्रवाकी = चक्रवाकवधूः आरौति = क्रन्दति, क्रोशति इति = एवं चिन्तयित्वा अहं दुष्करं = कठोरं करोमि = आचरामि इति = एवं तर्कयामि-जाने । अहं पुनः दूरवर्तिनि प्रिये यद् जीवामि तन्मे कठिनं हृदयमिति भावः ।

**अनसूया**—चक्रवाकवधूदर्शनसन्धुक्षितं शकुन्तलाया विरहदुःखमुपपत्या शमयन्ती अनसूया प्राह—हे सखि ! शकुन्तले एवं = इत्थं मा मन्त्रय = न कथय, एवं न वक्तव्यं, सुकरमेव त्वया क्रियते इति भावः । सखि ! एवं मन्त्रय—

---

**( सभी क्षीरी वृक्ष की छाया में खड़े होते हैं )**

**कण्व—( मन ही मन )** मैं माननीय राजा दुष्यन्त को उनके अनुरूप क्या सन्देश दूँ। **( विचार करते हैं )**

**शकुन्तला—( अलग से )** सखि अनसूये ! देखो तो, कमलिनी के पत्तों की ओट में छिपे हुए अपने सहचर चक्रवाक को नहीं देखकर भी यह चक्रवाकी आतुर हो बोल रही है । अपने प्रिय के वियोग में मैं भी जो जी रही हूँ यह मैं अति कठिन कार्य कर रही हूँ ।

**अनसूया**—हे सखि ! ऐसा मत सोचें, क्योंकि—

[ एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम् ।
गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति ॥ ]

कण्वः—शार्ङ्गरव इति त्वया मद्वचनात्स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः ।

शार्ङ्गरवः—आज्ञापयतु भवान् ।

---

अन्वयः—एषा अपि प्रियेण विना विषाददीर्घतराम् रजनीम् गमयति । आशाबन्धः गुरु अपि विरहदुःखं साहयति ।

पत्रे विरहितमपि प्रियमपश्यन्तीं दुःखितां चक्रवाकवधूं विलोक्य दुःखितां शकुन्तलां सान्त्वयन्ती अनसूया प्राह—एषेति । एषापि = चक्रवाकवधूरपि प्रियं विना क्षणमपि मात्रं न तिष्ठन्ती, तद्विरहमसहमाना प्रियेण = सहचरेण चक्रवाकेन विना विरहिता विषाददीर्घतराम् = विषादेन = प्रियविरहजन्यदुःखेन दीर्घतरां = दीर्घत्वेनानुमितां रजनीं रागिणो जना अस्यामिति रजनी तां रजनीं = रात्रिम् गमयति = यापयति । आशाबन्धः = आशा = कदापि सम्बन्धो भवेदिति सम्भावना एव बन्धः = बन्धनमिति आशाबन्धः = सङ्गमाशातन्तुः गुरु अपि = दुर्वहमपि विरहदुःखं = विरहपीडाम् साहयति सहनयोग्यं करोति । त्वयापि भर्तृप्राप्तिपर्यन्तमेव दुःखं सोढव्यमिति भावः ।

अयं भावः—सखि शकुन्तले ! मैवं वक्तुमुचितम्, एषा वराकी चक्रवाकवधूः प्रत्यहं प्रियविरहिता निशां गमयत्येव, पुनः प्रियसंगमो भविष्यतीत्याशया सा जीवति न म्रियते, यथेयं प्रातःकाले पत्या पुर्नमिलति तथैव त्वमपि पत्या दुष्यन्तेन मिलिष्यसि । अतो भर्तृ मिलनाशया तावदिदं विरहदुःखं सोढव्यमेव । अत्रान्तरन्यासोऽलङ्कारः गाथाछन्दश्च ॥१५॥

कण्वः—अथ शकुन्तलाविषये दुष्यन्तेन क्रियमाणा या उपेक्षाया निवृत्त्यर्थं तद्योग्यताविचारपूर्वकं तस्याः स्वीकारं सन्दिशन्नाह कुलपतिः—शार्ङ्गरव ! त्वया सावधानतया श्रोतव्यं, यतो मम शिष्येषु त्वमेवासि योग्यतमो भाषणकुशलः । इति त्वया, न त्वन्येन शकुन्तलां पुरस्कृत्य = अग्रतः कृत्वा शकुन्तलाविषये तामुद्दिश्य मद्वचसा = मम वचनात् सः = प्रक्रान्तो राजा दुष्यन्तः वक्तव्यः = सन्देष्टव्यः ।

शार्ङ्गरवः—भवान् = कुलगुरु आज्ञापयतु = आदिशतु सावधानोऽस्मि ।

---

चक्रवाकी तो अपने प्रिय के बिना उसके वियोग में भी विषाद और शोक से अधिक लम्बी होने वाली रात को केवल भावी पति मिलन की आशा से बिता देती है, क्योंकि गुरुतर दुःसह विरह के दुःख को भी आशातन्तु ही सहन करा देता है। इसलिए हे सखि ! तू भी मिलने की आशा से इस विरह के काल को बिता दे, घबड़ा मत। शीघ्र ही तेरा भी तेरे पति के साथ मिलन होगा। उस बिरहिणी की चकवी के समान तुम्हारा भी दुःख दूर हो जायेगा ॥ १५ ॥

**विशेष**—कवि प्रसिद्धि के अनुसार चकवा-चकवी पक्षी प्रायः जलाशयों के तट पर रहते हैं और वे दोनों स्त्री पुरुष दिन भर तो एक साथ ही रहते हैं, किन्तु रात में दोनों का विरह हो जाता है। चकवी इस तट पर आती है तो चकवा उस तट पर चला जाता है, इसी प्रकार चकवा इस तट पर आता है तो चकवी उस तट पर चली जाती है। रात भर वे इसी प्रकार विरह में बिताते हैं पुनः सुबह होने पर वे पूर्ववत् मिलकर साथ-साथ प्रेम से रहते हैं। यह उनका नैसर्गिक नियम है।

**कण्व**—शार्ङ्गरव शकुन्तला को सामने कर राजा दुष्यन्त से मेरा यह सन्देश कहना।

**शार्ङ्गरव**—हाँ, आप कहें मैं सावधान हूँ, राजा को क्या कहूँ।

कण्वः—

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ १६ ॥

---

कण्वः—मद्वचनात्–इत्यादिनोक्तं विवृण्वन् महर्षिः कण्वो ब्रवीति—**अस्मानिति**।

**अन्वयः**—अस्मान् संयमधनान् अस्मान् आत्मनः उच्चैः कुलं च, त्वयि अस्याः कथमपि अबान्धवकृतां तां स्नेहवृत्तिं च साधु विचिन्त्य इयं दारेषु सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकं दृश्या। अतः परं भाग्यायत्तम्, तत् बन्धुभिः न वाच्यं खलु।

राज्ञे दुष्यन्ताय सन्देष्टव्यमर्थं विवृण्वन् महर्षिः कण्वः कथयति—**अस्मानिति**। अस्मान्=नः संयमः=आत्मदमनात्मकं तपः एव धनं=सर्वस्वं येषां ते तान् संयमधनान्=तपोधनान् अस्याः शकुन्तलाया पितृत्वेन सम्बन्धिनं मां=कण्वम् साधु=सम्यक् विचिन्त्य=विचार्य आत्मनः=स्वस्य उच्चैः=आभिजात्यविभूत्यादिभिः श्रेष्ठम्, उन्नतं सततोदितं कुलं=पौरवान्वयं च साधु विचिन्त्य तादृशकुलोत्पन्नस्य तवालीकप्रतारणं न योग्यमित्यर्थः, त्वयि=भवति सर्वदा=सर्वप्रकारेण कमनीये राजनि अस्याः=त्वय्यैकशरणायाः शकुन्तलायाः कथमपि=केनापि प्रकारेण साक्षात् परम्परया परोक्षं वा अबान्धवकृताम् बान्धवैः कन्यादानाधिकारिभिरस्माभिर्विनाकृतां विहिताम् प्रक्रान्ताम्=अतिशयितां स्वाभाविकीं स्नेहवृत्तिं=रागाधिक्यं च साधु विचिन्त्य त्वया=भवता, त्वं स्वकर्तव्यं स्वयमेव जानासि तथापि मदुपदेशोऽयं दुहितृवात्सल्यादिति भावः। इयं=अस्मद्धर्मदुहिता तव धर्मदाराः शकुन्तला दारेषु पूर्वगृहीतपुरन्ध्रीषु, भार्यासु सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकं—सामान्या=इतरदारसाधारणी या प्रतिपत्तिः बहुमानः तत्पूर्वकं=तत्पुरस्कारेण दृश्या दर्शनीया, गणनीया अन्यतमत्वेनावेक्षणीया। अर्थात्त्वमात्मनः सत्कुलसंभूतत्वम् अस्माकं महत्त्वम्, अस्यां स्नेहप्रवाहस्याकृत्रिमत्वं साधु विचार्य बहुमानपुरःसरमियं शकुन्तला पालनीयेत्यर्थः। विशेषः कुतो नाभ्यर्थ्यते इत्यत आह—अतः परं=उक्तादतिरिक्तं भाग्यायत्तम् वध्वाः सौभाग्याधीनम्, अतः तत् वधूबन्धुभिः=पितृभ्रातृप्रभृतिभिः कन्यापक्षीयैः आप्तजनैः न वाच्यं=न वक्तव्यम् प्रधानमहिषीपदं तु भाग्यायत्तम् वात्सल्यमीप्सितमपि प्रार्थनामात्रेणालभ्यत्वान्नैव प्रार्थनीयम्। अतो नोच्यते इति भावः।

**अयं भावः**—राजन्! पूर्वोक्तं सर्वं साधु विचार्य मुग्धाया अस्याः शकुन्तलाया

---

**कण्व**—हे राजन्! संयम धन = इन्द्रिय निग्रही और तपस्यापरायण हमारी प्रतिष्ठा एवं मानमर्यादा को भली-भांति ध्यान में रखते हुए तथा अपने उच्चकुल पौरववंश की ओर देखते हुए तथा अपने में शकुन्तला की बन्धु-बान्धवों से न कराई हुई स्वाभाविक इस अनिर्वचनीय विशिष्ट प्रेम प्रवृत्ति को भी देखते हुए इस शकुन्तला को अपनी और स्त्रियों के बराबर ही समझना, यही हमारा कहना है। इससे अधिक = इसे ही महारानी बनाना, यह मैं नहीं कहना चाहता हूँ, क्योंकि पति के विशेष स्नेह, अनुराग और महारानी पद की प्राप्ति तो अपने भाग्य और गुणों के ही अधीन है। अतः उसके लिए हमारा कुछ भी कहना व्यर्थ ही है ॥ १६ ॥

**विशेष—चतुर्थ अङ्क के उत्तम श्लोकों में यह तीसरा श्लोक है। अपनी कन्या के कल्याण**

**शार्ङ्गरवः**—गृहीतः सन्देशः ।

**कण्वः**—वत्से त्वमिदानीमनुशासनीयासि। वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम् ।

**शार्ङ्गरवः**—न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम ।

---

दारसामान्यप्रतिपत्त्या नूनं परिपालनं कार्यं, नो चेत् अस्माकं प्रतिकूलेषु शाप एवास्त्रम् । अस्मच्छापास्त्रं न केवलं त्वामेव दण्डयेत्, अपितु सर्वमेव त्वत्कुलं प्रदहेत् । अतः सम्यग् विचार्य कार्यमिति भावः । अत्र सामान्यनिबन्धनाऽप्रस्तुतप्रशंसा काव्यलिङ्गं चालङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं च छन्दः ॥ १६ ॥

**शार्ङ्गरवः**—गृहीतः = अवधृतः, सन्देशः = वक्तव्योऽर्थः । इत्थं भवदुक्तमर्थं राज्ञे बोधयिष्यामीति भावः ।

**कण्वः**—महर्षिः कण्वो हि दुष्यन्ताय सन्देष्टव्यमर्थं शार्ङ्गरवाय निर्दिश्य शकुन्तलायै अपि पतिगृहे प्रवर्तनप्रकारमुपदेष्टुमारभते—वत्से ! त्वं भवती इदानीं = साम्प्रतम् अनुशासनीया = शिक्षणीया असि = वर्तसे वनमोकः वनम् = अरण्यं ओकः = गृहं येषां ते वनौकसः = वनवासिनोऽपि अपरिचितनागरिकलोका अपि सन्तः = वर्तमानाः वयं लौकिकज्ञाः = लोकव्यवहाराभिज्ञाः । गृहस्थलोकवृत्तज्ञाः लोकाचारपाटवा स्मः । अतो लोकाचारं त्वां शिक्षयामः ।

**शार्ङ्गरवः**—सबहुमानं गुरूक्तं सामान्यमुखेनानुवदन् शार्ङ्गरवः कथयति धीमतां = प्रशस्तबुद्धिशालिनां न खलु कश्चिद् अविषयः, न किञ्चिदपि अज्ञातमस्ति । धीमन्तो हि सर्वं विषयं करतलामलकवत् पश्यन्तीति भावः । तदुक्तं—'सतां प्रज्ञोन्मेषः पुनरयमसीमो विजयते ।'

---

के निमित्त इसमें सन्देश दिये गये हैं। राजाओं को अपने उच्चकुल की प्रतिष्ठा और तपस्वियों के प्रति सम्मान की बात कहकर उत्तम कर्तव्य का पालन आवश्यक बतलाया गया है और अनेक पत्नी वाले पुरुषों को पक्षपातहीन होकर सबमें समान व्यवहार करने का उपदेश देकर सामाजिक कलह को शान्त करने का प्रयास है। इसमें यह विशेषकर बताया गया है कि शकुन्तला ने अपने बन्धु-बान्धवों की अनुमति के बिना ही राजा दुष्यन्त में स्वाभाविक प्रेम के कारण उनको आत्मसमर्पण कर दिया है। इसलिए उनका कभी अनादर नहीं करना चाहिए, सर्वदा स्नेह भाव से इसमें अनुराग रखना उचित है। जो लोग अपने अभिभावकों की अनुमति से विवाह करते हैं उसमें वधू का वैसा उत्तम अनुराग नहीं रहता, पर शकुन्तला ने अपने स्वाभाविक अनुरागसे ब्याह किया। अतः इसका अनादर नहीं होना चाहिए। इससे अधिक पति का विशेष अनुराग, या महारानी आदि पद की प्राप्ति तो कन्याओं के भाग्य पर ही निर्भर है। कन्यापक्ष वालों का इससे अधिक कहना उचित नहीं।

**शार्ङ्गरव**—पिता जी, मैंने सन्देश भलीभाँति समझ लिया। जाकर उन्हें इसी प्रकार कहूँगा।

**कण्व**—वत्से ! अब तुम्हें कुछ शिक्षा देनी है। यद्यपि हम लोग वनवासी तापस हैं, फिर भी हम लौकिक व्यवहार को जानते हैं।

**शार्ङ्गरव—भगवन् ! बुद्धिमानों की दृष्टि से कोई भी विषय ओझल नहीं है, आप तो सर्वज्ञ हैं। भला, आपसे कौन सी बात अज्ञात है ?**

**कण्वः**—सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य—

**शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने**
**भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।**
**भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने [2]भाग्येष्वनुत्सेकिनी**
**यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ १७ ॥**

---

**कण्वः**—सा आश्रमाचारमात्रज्ञा त्वम् इतः मत्सकाशात् = अस्मात् पितृकुलात् धर्मारण्याच्च पतिकुलं = स्वामिवंशं प्राप्य = आसाद्य पतिकुलेऽनुष्ठेयान्याह—शुश्रूषस्वेति ।

**अन्वयः**—गुरून् शुश्रूषस्व, सपत्नीजने प्रियसखीवृत्तिं कुरु, विप्रकृतापि रोषणतया भर्तुः, समीपं मास्म गमः, परिजने भूयिष्ठं दक्षिणा भव, भाग्येषु अनुत्सेकिनी ( भव ) एवं युवतयः गृहिणीपदं यान्ति, वामाः (तु) कुलस्य आधयः भवन्ति ।

पतिगृहे वर्तनप्रकारमुपदिशन् महर्षिः कण्वः शकुन्तलामुपदिशति—शुश्रूषस्वेति । गुरून् = पत्युर्गुरुभूतान् श्वश्रू श्वसुरादीन् शुश्रूषस्व स्वयमतन्द्रिता सती तेषां पादसेवनादिरूपां परिचर्यां कुर्वित्यर्थः । गुरोः शुश्रूषाया लोकद्वयकल्याणकरत्वेन प्रतिपादनात् । तथा चोक्तं—

'भर्तृशुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ।
तद्बन्धूनां च कल्याणि ! प्रजानां चानुपोषणम् ॥'

**समानः** पतिर्यासां ताः सपत्न्यः ता एव जनः सपत्नीजनस्तस्मिन् सपत्नीजने पत्या परिणीताः परिपोष्यमाणाश्च स्त्रियः सपत्न्यः तत्समूहे प्रियसखीवृत्तिं प्रियसखी=स्नेहबहुमानविश्वासपात्रभूता वयस्या तद्वृत्तिं = तत्तुल्यं व्यवहारं कुरु = विधेहि सपत्नीषु प्रियसखीव वाङ्मनःकार्यैर्निर्व्याजं प्रवृत्तिं विधेहीत्यर्थः । विप्रकृतापि = अपमानिताऽपि भर्तरि पररमणीरमणादिना स्वापमानं कुर्वत्यपि रोषणतया = क्रोधोद्भवया ईर्ष्यया पत्युः = भर्तुः प्रतीपं = प्रातिकूल्यं विरुद्धं मा स्म गम, किन्तु अनुकूलैव भव, परिजने = सेवकवर्गे भूयिष्ठं = नितरां प्रकामं दक्षिणा = अभीष्टसम्पादिना अनुकूला भव, परिजना यथा त्वयि अनुरागिणः सन्तः त्वदाज्ञावशवर्तिनो भवेयुस्तथा तेषु दाक्षिण्यं प्रकाशयेत्यर्थः । भाग्येषु=

---

**कण्व**—बेटी, तुम यहां से ससुराल पहुँच कर—

( १ ) सास, ससुर आदि अपने बड़ों की सेवा करना ( २ ) अपनी सौतों से अपनी प्रियसखियों के समान व्यवहार करना ( ३ ) पति द्वारा किसी समय किसी कारणवश तिरस्कृत होने पर भी क्रोध के वश में होकर अप्रसन्न न होना और विपरीत आचरण नहीं करना ( ४ ) अपने नौकर, चाकर या पति के बन्धु-बान्धवों के प्रति सदा उदार रहना ( ५ ) राज्योचित सुखभोगों, को पाकर भी कभी अभिमान न करना। इस प्रकार व्यवहार करने से स्त्रियां गृहस्वामिनी बन जाती हैं और इसके विरुद्ध चलने वाली स्त्रियाँ कुल के लिए विपरीत और मानसी पीड़ा देने वाली होती हैं ॥ १७ ॥

**विशेष**—चतुर्थ अङ्क के उत्तम चार श्लोकों में यह चतुर्थ श्लोक जिसमें कि उत्तम उपदेश है। ऊपर निर्दिष्ट कर्तव्यों के पालन करने से ससुराल में गई हुई अभिमान रहित बहुएँ सम्मानित होकर स्वयं तो सुखी रहती ही हैं, परिवार को भी निरन्तर सुखी रखती हैं। इसके विपरीत उलटा आचरण

---

१. भोगेष्वनुत्सेकनी ।

कथं वा गौतमी मन्यते ।

गौतमी—एत्तिओ बहूजणस्स उवदेसो। जादे एवं खु सव्वं ओधारेहि।
[ एतावान्वधूजनस्योपदेशः । जाते एतत्खलु सर्वमवधारय । ]

कण्वः—वत्से ! एहि परिष्वजस्व मां सखीजनं च ।

---

भाग्योपनतेषु महादेवीपदलाभादिषु सत्सु अनुत्सेकिनी=अभिमानगर्वादिरहिता ईर्ष्यादि-विरहिता निरभिमाना, अगर्विता च भव । एवं=उक्तप्रकारेण वर्तमाना युवतयः=स्त्रीमात्रम्-गृहिणीपदं=गृहिणीपदाधिकारं यान्ति=प्राप्नुवन्ति, वामाः=प्रतीपवर्तिन्यः इतो विरुद्धा पत्युर्विरुद्धाचरणाः स्त्रियः कुलस्य, पत्युः पित्रोः वंशस्य च आधयः= व्याधिवत् पीडाकारिण्यो भवन्ति ।

अयं भावः—वत्से ! त्वं मत्सकाशात् पतिगेहमुपगता प्रत्यहं श्वश्रू श्वसुरं च पाद-संवहनव्यजनोद्धूलनादिना परिचरन्ती तेषामाश्रवा भव । तस्मिन् पतिगृहे बह्व्यः सपत्न्यो भवेयुः तासु प्रियसखीवद् व्यवहर्तव्यम् । भर्त्रा अपमानितापि ईर्ष्यावशात् कथमपि न पत्युर्वि-रुद्धमाचरणीयम्, भृत्यवर्गे चाभीष्टसम्पादनद्वारा उपकारभारं प्रकटयन्ती तत्रानुरागिणी भव, सौभाग्यात् कदापि गर्वं मावह, हर्षविषादयोः चित्तवृत्तेः समत्वं सम्पादनीयम् । इत्थं विद-धाना नार्यः गृहिण्यो भवन्ति । प्रतीपमाचरन्त्यो भर्तृकुलस्य, पितृवंशस्य च दुर्यशो जन-कत्वाद् क्लेशजनिका एव जायन्ते । अतस्त्वं गुरुजनशुश्रूषादिना शीघ्रमेव महादेवीपदं प्राप्स्यति । अत्राप्रस्तुतप्रशंसा काव्यलिङ्ग-रूपक-कारकदीपकालङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं च छन्दः ॥ १७ ॥

स्वोक्तेऽर्थे कुलगौरवाया गौतम्याः सम्मतिमिच्छन्नाह—महर्षिः-कथं=किम्बा गौतमी मन्यते=परामृशति । मदुक्तं गौतमी सम्भाव्यते न वा ?

गौतमी--एतावान्=एतन्मात्रमेव वधूजनस्य=बधूनां कृते उपदेशः=शिक्षा । जाते !=पुत्रि ! एतत्=इदं खलु निश्चयेन सर्वं=सकलं कण्वोक्तम् अवधारय=गृहाण । उपदेशममुं सावधानतया सर्वदा स्मरेति भावः ।

कण्वः—वत्से !=पुत्रि शकुन्तले ! मां=कण्वं सखीजनं=आलीवृन्दं च परिष्वजस्व =आलिङ्गयस्व ।

---

करने वाली वस्तुएँ अभिमान राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि दोनों के वशीभूत होकर कुलकलङ्किनी बन जाती हैं और परिवारों के लिए सिरदर्द हो जाती हैं ।

मेरा तो तेरे को यही उपदेश है, गौतमी का क्या परामर्श है ? जैसा गौतमी कहे, वही ठीक है।

**गौतमी**—ठीक है, नव-वधुओं के लिए इतना ही उपदेश यथेष्ट है और यही शिक्षा उचित भी है। बेटी, इस उपदेश को सदा याद रखना, इसे मत भूलना, इससे तू सदा सुखी रहेगी अतः इसे गांठ बांध लो ।

**कण्व**—बेटी, आ, मुझसे और अपनी प्रिय सखियों से गले मिल लो ।

**विशेष**—पिता से गले मिलने की प्रथा सम्भवतः पहले होगी, पर आज कल कहीं नहीं दीख पड़ती, किन्तु विदाई के अवसर पर या आने-जाने के समय गले मिलने की प्रथा स्त्रियों में आज भी देखी जाती है और वह स्नेहाधिक्य का सूचक है ।

शकुन्तला—ताद इदो एव्व किं पिअंवदामिस्साओ सहीओ णिवत्तिस्संति।
[ तात इत एव किं प्रियंवदामिश्राः सख्यो निवर्तिष्यन्ते । ]

कण्वः—वत्से इमे अपि प्रदेये । न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम् । त्वया सह गौतमी [1]यास्यति ।

शकुन्तला—[2]( पितरमाश्लिष्य ) कहं दाणि तादस्स अंकादो परिब्भट्ठा मलअ-तडुम्मूलिआ चंदणलदा विअ देसंतरे जीविअं धारइस्सं । [ कथमिदानीं तातस्याङ्कात्परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्ये । ]

---

शकुन्तला—सखीजनं परित्यजस्वेति कण्वोक्तौ शकुन्तला कण्वं पृच्छति–तात !–पितः ! किं = कथम् इत एव = अस्मात् प्रदेशादेव प्रियम्वदामिश्राः = प्रियम्वदादयः सख्यः = आल्यः = निवर्तिष्यन्ते = मां विहाय पुनः तपोवनं गमिष्यन्ति ?

कण्वः—शकुन्तलायाः प्रश्ने पुनर्मुनिराह–वत्से–जाते शकुन्तले इमे = एते प्रियम्वदा-ऽनसूये अपि त्वमिव प्रदेये = विवाहकाले योग्याय वराय दातव्ये । अतः अनयोः = एतयोः तत्र = तव पतिगृहे दुष्यन्तप्रासादे गन्तुं = गमनं न युक्तम् = न समुचितम् । त्वया सह = भवत्या साकम् गौतमी व्यवहारकुशला मम विश्वस्ता धर्मभगिनी यास्यति = गमिष्यति ।

शकुन्तला—( पितरं = तातं कण्वम् आश्लिष्य = आलिङ्ग्य ) आसन्नपितृवियोगेन शकुन्तला वदति—कथं = केन प्रकारेण तातस्य = पितुः अङ्कात्–क्रोडात् परिभ्रष्टा–च्युता मलयात् = मलयाचलोत्पन्नात् तरोः–वृक्षात् यद्वा मलयस्य–मलयाचलस्य तरोः–वृक्षात् उन्मूलिता = उत्पाटिता चन्दनलतेव = चन्दनवल्लरीव अन्यो देशो देशान्तरस्तस्मिन् देशान्तरे = अन्यस्मिन् स्थाने जीवितं = प्राणान् धारयिष्ये = दधे ।

---

शकुन्तला पिता जी, क्या, यहीं से दोनों मेरी सखियाँ मुझे छोड़कर लौट जायेंगी ?

कण्व—बेटी, इन दोनों का भी विवाह करना है। अतः इन दोनों का तो तेरे साथ वहां जाना ठीक नहीं है, तेरे साथ यह गौतमी जायेगी।

विशेष—अविवाहिता वयस्क कन्याओं को अपने पिता के ही घर रहना चाहिए, इन्हें अपनी सखी या बहन के पति के घर जाना उचित नहीं। अतः उन्हें सखी या बहन के साथ न भेजने की प्रथा पुरानी है। हाँ, छोटी कन्या या वृद्ध नाइन, नौकरानी आदि को भेजने का चलन सम्भ्रान्त परिवारों में अवश्य है। इसी के अनुसार अनसूया और प्रियम्वदा को शकुन्तला के साथ उसके पतिगृह में महर्षि ने नहीं भेजा, किन्तु वृद्धा तपस्विनी गौतमी को भेजा है।

शकुन्तला—( महर्षि कण्व के गले में लगाकर ) अब मैं अपने पिताजी की गोद से हटाई जाकर=दूर होकर मलय पर्वत से उखाड़ी हुई चन्दन की लता की तरह दूसरी जगह कैसे जीवित रहूँगी।

विशेष—यहाँ पर तात से तरु और शकुन्तला से चन्दनलता की उपमा उचित है। चन्दन की उत्पत्ति मलयाचल पर ही होती है और वहीं वह हरा-भरा और सुगन्धित रहता है। चन्दन का पौधा मलयागिरि से उखाड़ कर अन्यत्र ले जाकर लगाये जाने पर सूख जाता है। इसी भाव को व्यक्त करती हुई शकुन्तला ने कहा है कि पिताजी की गोद से दूर होकर मैं कैसे जीवित रह सकूँगी ?

---

पाठा०—१. गमिष्यति । २. ( पितुरङ्कमाश्लिष्य )।

कण्वः—वत्से किमेवं कातरासि ।

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः [1]कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला ।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ॥ १८ ॥

कण्वः—स्वजनवियोगेन कातरीभूतां धर्मदुहितरं शकुन्तलां महर्षिः = कण्व आश्वासयति—वत्से ! = जाते ! किमेवं कातराऽसि = कथमेवं विह्वला भवसि क्लैव्यमिदानीं नोचितम् धैर्यं धारय ।

अन्वयः—वत्से ! त्वम् अभिजनवतः भर्तुः श्लाघ्ये गृहिणीपदे स्थिता (सती) विभवगुरुभिः तस्य कृत्यैः प्रतिक्षणं आकुला (सती) प्राची अर्कमिव पावनं तनयं अचिराद् प्रसूय मम विरहजं शुचं न गणयिष्यसि ।

आत्मनोऽङ्कात् परिभ्रश्य जीवनधारणे सन्दिहानां धर्मसुतां शकुन्तलामतिकातरामालोक्य भर्तृगेहवैभवप्रदर्शनप्रलोभनैः समाश्वासयन् महर्षिः कण्वः कथयति—अभिजनवत इति । वत्से ! त्वं अभिजनवतः—प्रसिद्धकुलसम्भूतस्य महाकुलीनस्य प्रशस्तबहुजनवतः भर्तुः = पत्युः दुष्यन्तस्य श्लाघ्ये = सर्वोत्कृष्टे प्रशंसनीये प्रधाने गृहिणीपदे = महादेवीपदे गृहस्वामिनीस्थाने स्थिता=वर्तमाना लब्धप्रतिष्ठा सती विभवगुरुभिः-विभवैः सकलापेक्षितद्रव्यादि-समृद्धिभिः गुरूणि महानि-कृत्यानि तैः विभवगुरुभिः = सम्पत्तिमहनीयैः तस्य = भर्तुः कृत्यैः = यज्ञदान–होमादिभिः कर्मभिः प्रतिक्षणम् = प्रतिपलम् अहर्निशम् आकुला = व्याकुला, स्वगृहकार्यप्रत्यवेक्षणविह्वला सती अचिरात् = शीघ्रमेव समर्थत्वात् प्राची = पूर्वादिक् अर्कं = सूर्यमिव पावयतीति पावनः तं पावनं = पवित्रकीर्तिं चक्रवर्तिनं तनयं = पुत्रं प्रसूय = जनयित्वा, उत्पाद्य मम = पितुः विरहजां = मद्विरहोत्थाम् शुचं = शोकव्यथाम् त्वं न गणयिष्यसि = न ज्ञास्यसि मम वियोगः शोकस्तेन भविष्यति ।

अयं भावः—वत्से ! शकुन्तले ! अलं, कातरा मा भव त्वं महाकुलीनस्य स्वामिनो दुष्यन्तस्य गृहस्वामिनीपदे स्थिता प्रत्यहं प्रतिफलं यज्ञदानहवनादिभिः शुभकृत्यैः व्यस्त-

---

कण्व—बेटी शकुन्तले ! तू इस प्रकार कातर क्यों होती है ? घबड़ाने की बात नहीं, देख, तू ऊंचे कुल में उत्पन्न अपने पति से सम्मानित गृहस्वामिनी पद पर आरूढ होकर धन-सम्पत्ति और राजवैभव के अनुकूल अपने पति के नानाविध गृहकार्यों में प्रतिक्षण व्यग्र रहती हुई जैसे पूर्व दिशा पवित्र भगवान् भास्कर = सूर्य को जन्म देती है वैसे ही तेजस्वी सर्वगुणसम्पन्न पुत्ररत्न को प्रसव करके मेरे विरह से उत्पन्न हुए शोक को तू बिलकुल भूल जायेगी ॥ १८ ॥

**विशेष**—महर्षि कण्व ने अपने वियोग दुःख से विह्वल शकुन्तला को सान्त्वना देते हुए आशीर्वाद दिया कि तू तेजस्वी चक्रवर्ती पुत्र को शीघ्र उत्पन्न करेगी । कुलीन व्यक्ति स्वजनों से अच्छा व्यवहार करता है, सताता नहीं, क्योंकि उसे अपने उत्तम कुल का ध्यान रहता है । देख, तुम्हारे पति राजा दुष्यन्त महाकुलीन हैं, तुम्हें गृहिणी का पद मिलेगा, अधिक ऐश्वर्य प्राप्त होगा, सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र को पाकर उसके लालन-पालन में व्यस्त रहने से तुम्हें पितृ-वियोग का दुःख नहीं सतावेगा । यह स्वाभाविक है कि धनियों के यहाँ कार्य की अधिकता होती है । धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय महायज्ञ के अवसर पर याज्ञसेनी द्रौपदी की व्यस्तता का वर्णन महाभारत में दर्शनीय है ।

---

पाठा०—१. कृत्यैरहस्य ।

**शकुन्तला**—( पितुः पादयोः पतित्वा ) तात ! वन्दामि । [ **पितस्त्वां वन्दे !** ]

**कण्वः**—यदिच्छामि ते तदस्तु ।

**शकुन्तला**—( सख्यावुपेत्य ) हला दुवे वि मं समं एव्व परिस्सजह । [ **हला द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम् ।** ]

**सख्यौ**—( तथा कृत्वा ) सहि जइ णाम सो राआ पच्चहिण्णाणमंथरो भवे तदो से इमं अत्तणामहेअअंकिअं अंगुलीअअं दंसेहि । [ **सखि यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्ततस्तस्येदमात्मनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शय ।** ]

---

तया मां सखीजनं च स्मर्तुमवसरमेव न लप्स्यसे । पूर्वादिक् जगत्पावनमादित्यमिव त्वमपि जगद्विलक्षणतेजस्विनं पवित्रयशस्कं चक्रवर्तिनं सम्राजं तनयं जनयित्वाऽस्माकं मोद-मुत्पादय मा च गणयाश्रमवासिनां विरहजं किञ्चिदपि दुःखम् । अत्रोपमा-समुच्चय-काव्यलिङ्गालङ्कारा हरिणी छन्दश्च ॥ १८ ॥

**शकुन्तला**—( पितुः = तातस्य महर्षेः कण्वस्य पादयोः = चरणयोः पतति नमति )

**कण्वः**— भगिनि ! श्रेयसः प्रलोभनेन शकुन्तलाया विरहजन्यां व्यथां शिथिलीकृत्य पतिगृहगमनमनुजानन् कथयति—ते = तव कृते यत् = अभिमतफललाभादिकमिच्छामि = वाञ्छामि तत् सर्वम् अस्तु = फलतु ।

**शकुन्तला**—( सख्यौ अनसूयां प्रियम्वदां च उपेत्य = तयोः समीपमुपस्थाय ) हे सख्यौ ! द्वे = उभे अपि सममेव = युगपदेव मां परिष्वजेथाम् = आलिङ्गतम् ।

**सख्यौ**—अथावसरं प्राप्य—महर्षेः दुर्वाससः शापमाशङ्क्य तन्मोक्षोपायमुपदिशतः प्रियम्वदानसूया च ( तथा = शकुन्तलावचनानुसारेण कृत्वा = विधाय युगपदेन आलि-ङ्ग्य ) यदि = चेत् नाम सः = राजर्षिः दुष्यन्तः प्रत्यभिज्ञानमन्थरः = प्रत्यभिज्ञाने = तव परिचये त्वद्दर्शने सा इयं शकुन्तलेति ज्ञाने मन्थरः = शिथिलः इति प्रत्यभिज्ञानमन्थरः-झटिति एतादृशज्ञानरहितो भवेत् = स्यात् ततः = तदा तस्य = तं प्रति इदं = दर्शितम् आत्मनः = तस्य दुष्यन्तस्य नामधेयाङ्कितं = उत्कीर्णाभिधानम् अङ्गुलीयकम् दर्शय । यदि स राजा त्वां ममेयं भार्येति न परिचिनुयात्तदा त्वया एतदङ्गुलीयकं तस्मै प्रदर्शनीय-मित्याशयः ।

सखिभ्यामनेन वाक्येन गूढो दुर्वाससः शापरूपोर्थः तत्परिणामात्मनाऽवबोधितः तन्ना-

---

अतः महर्षि कण्व का कहना है कि शकुन्तले ! तेरे को घर के बड़े-बड़े कार्यों से, पति की सेवा से, पुत्र के लालन-पालन आदि से क्षणभर की छुट्टी नहीं मिलेगी, तू मुझे शीघ्र भूल जायेगी । अतः तू मत घबड़ा ।

**शकुन्तला—( पिता महर्षि कण्व के पैरों पर गिरकर प्रणाम करके )** हे पिताजी, मैं आपको प्रणाम करती हूँ ।

**कण्व**—पुत्रि ! तेरे लिए जो मैं चाहता हूँ, वह हो । अर्थात् तू सम्राट् की महिषी हो और चक्र-वर्ती पुत्र की माता बनो ।

**शकुन्तला—( दोनों सखियों के पास जाकर )** सखियों ! आओ, तुम दोनों एक ही साथ मेरी छाती से लग जाओ ।

**दोनों सखियाँ—( एक साथ शकुन्तला की छाती से लिपटकर )** हे सखी ! यदि वह

**शकुन्तला**—इमिणा संदेहेण वो आकंपिदम्हि [**अनेन संदेहेन वामाकम्पितास्मि ।**]

**सख्यौ**—मा भाआहि सिणेहो पावसंकी । [**मा भैषीः स्नेहः पापशङ्की ।**]

**शार्ङ्गरवः**—युगान्तरमारूढः सविता । त्वरतामत्रभवती ।

**शकुन्तला**—[1](आश्रमाभिमुखी स्थित्वा) ताद कदा णु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं । [**तात कदा नु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये ।**]

**कण्वः**—श्रूयताम् ।

---

मधेयाङ्कितेऽङ्गुलीयके दर्शिते प्रत्यभिज्ञा भवेदिति गूढ-प्रकाशोभयार्थं साधारणं रहस्यमवबोधितम् ।

**शकुन्तला**—अनेन = अमुना भवतीभ्यामुक्तेन वां = युवयोः सन्देहेन = वाचिकेनोपदेशेन शङ्कया आकम्पिता = भीता अस्मि ।

**सख्यौ**—प्रियम्वदा अनसूया च समाश्वासयतः—मा भैषीः = भयभीता भव, स्नेहः = अनुरागः, पापम् = अमङ्गलं आशङ्कते तच्छील इति पापशङ्की = अनिष्टसन्देहवान् भवति । भयं मा कुरु आवाभ्यां स्नेहदयाय माशङ्कय एवमुक्तत्वत्याविल्यर्थः ।

**शार्ङ्गरवः**—कालातिक्रममाशङ्कय प्रस्थानाय प्रेरयत् ब्रवीति—सविता = भगवान् सूर्यः युगं = युगपरिमाणम् अन्तरम् इति युगान्तरम् = अवकाशम् हस्तचतुष्कविषगगनप्रदेशम् अधिरूढः, प्राच्या दिश अग्रमागतः । 'युगं हस्तचतुष्केऽपि' इति विश्वकोशप्रामाण्यात् सूर्यः उदयादेर्हस्तचतुष्कप्रमाणं यावत् उन्नतमण्डलो जातः । अतः दिनस्यैकः प्रहरोऽभूदित्याशयः । अत्र भवती = पूज्या त्वरताम् = शीघ्रताम् करोतु । गमने त्वरा विधेया ।

**शकुन्तला**—अथ तपोवनस्नेहपरवशा सती शकुन्तला कण्वं परिपृच्छति तात ! = पितः ! कदा = कस्मिन् काले नु भूयः = पुनः तपोवनम् = आश्रमं प्रेक्षिष्ये = द्रक्ष्यामि । कदा नु पुनरत्र प्रत्यागमनं मे भवेदित्यर्थः ।

**कण्वः**—पुत्रि ! श्रूयताम् = त्वया आकर्ण्यताम् वार्धके पत्या सह भूयः त्वमत्र भूय समेष्यसीत्याह—भूत्वेति ।

---

राजर्षि दुष्यन्त तेरे को पहचानने में कुछ आना-कानी करें तो उनके नाम से अङ्कित यह अँगूठी तू परिचय के लिए उन्हें दिखला देना ।

**शकुन्तला**—अरी सखियों ! तुम्हारे इस सन्देह से तो मेरा हृदय अनिष्ट की आशंका से काँप उठा है ।

**दोनों सखियाँ**—हे सखि ! डरो मत, स्नेह सदा पाप की आशंका किया करता है । अतः हमने आशङ्कावश यों ही तुमसे कह दिया । इसमें भय की कोई बात नहीं ।

**शार्ङ्गरव**—भगवान् सूर्य चार हाथ ऊँचे चढ आये हैं । अर्थात् एक पहर दिन निकल गया है । अतः आप जल्दी करें ।

**शकुन्तला**—**( आश्रम की ओर देखकर )** पिताजी, अब मैं इस तपोवन को पुनः कब देखूँगी । अर्थात् आप यहाँ मुझे कब बुलायेंगे ?

**कण्व**—हे पुत्री ! सुनो—

---

पाठा०—१. ( भूयः पितुरङ्कमाश्लिष्य ) ।

**भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।**
**भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥१९॥**

**गौतमी**--जादे परिहीअदि गमणवेला। णिवत्तेहि पिदरं। अहवा चिरेण वि पुणो पुणो एसा एव्वं मंतइस्सदि। णिवत्तदु भवं। [ **जाते परिहीयते गमनवेला। निवर्तय पितरम्। अथवा चिरेणापि पुनः पुनरेषैवं मन्त्रयिष्यते। निवर्ततां भवान्।** ]

---

**अन्वयः**—चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी भूत्वा अप्रतिरथं दौष्यन्तिं तनयं निवेश्य तदर्पितकुटुम्बभरेण भर्त्रा साद्धं अस्मिन् शान्ते आश्रमे पुनः पदं करिष्यसि।

आश्रमविरहकातरां धर्मसुतां शकुन्तलां पुनराश्रमानयनायावसरं कथयितुं महर्षिः कण्वः कथयति--भूत्वेति। चिराय-चिरकालम्, चत्वारः=समुद्रा अन्तः=सीमा अवधयो यस्याः सा चतुरन्ता तस्या मह्याः=पृथिव्याः सपत्नी=समानभर्तृका इति चतुरन्तमहीसपत्नी भूत्वा न विद्यते प्रति=संमुखः रथं=स्यन्दनं यस्य स तमप्रतिरथम्=अप्रतियोगिनं जगदेकवीरं तनोति कुशलमिति तनयः तम् कुलविस्तारकं पुत्रं दौष्यन्तिं=दुष्यन्तस्यापत्यं पुमान् दौष्यन्तिः तं दौष्यन्तिं=दुष्यन्तात्मजं निवेश्य=महीभाररक्षणे नियोज्य यद्वा विवाहं कारयित्वा यस्मिन् पुत्रे अर्पितः=विन्यस्तः कुटुम्बस्य=पोष्यवर्गस्य राज्यं वा भरः=भारः येन स तेन तदर्पितकुटुम्बभरेण भर्त्रा=पत्या साद्धं=साकम् अस्मिन्=अत्र शान्ते=मनसः शान्त्योत्पादके आश्रमे=धर्मारण्ये, तपोवने पुनः=भूयः पदं=स्थानं करिष्यसि=विधास्यसि पुनराश्रमे त्वं वानप्रस्थयोग्ये काले समागत्य निवासं करिष्यतीत्यर्थः।

**अयं भावः**—वत्से! इतः परं पतिगृहं गत्वा बहुदिनं चक्रवर्तिनो राजर्षेः दुष्यन्तस्य प्रधानमहिषीपदे स्थिता तत्र दिव्यान् राजभोगानुपभुञ्जाना यशस्विनमेकच्छत्रं पुत्रं प्रसूय तत्र राज्यभारं निवेश्य निश्चिन्तेन भर्त्रा दुष्यन्तेन सह चरमे वयसि विषयवासनासु विरतासु पुनः शान्त्येकनिकेतन तपोवने समागत्य वानप्रस्थं व्रतं पालयन्ती निवासं करिष्यसि।

अत्र मालादीपक-काव्यलिङ्गालङ्कारः वृत्तं च वसन्ततिलका ॥ १९ ॥

**गौतमी**—अनयोः ताततनयोः पुनः पुनः सलापेन गमनवेलातिक्रममाशङ्कमाना गौतमी महर्षिं कण्वं शकुन्तलां च प्रतिवदति--जाते!=पुत्रि! गमनवेला=यात्रामुहूर्तः प्रयाणसमयः परिहीयते=अतिक्रामति गच्छति, पितरं=तातं महर्षिं कण्वं निवर्तय=परावर्तय। अथवा=यद्वा एष एव विकल्पो वरीयान् चिरेणापि=चिरकालमपि पुनः

---

अधिक समय तक चारों समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी की सपत्नी=सौत होकर तथा असमान योद्धा अपने अजेय पुत्र दौष्यन्ति भरत को जन्म देकर उसके ऊपर राज्य का भार समर्पित कर अपने पति के साथ वृद्धावस्था में इस शान्त तपोवन में पुनः आवेगी ॥ १९ ॥

**विशेष**—प्राचीन काल के राजा लोग विषय सुख भोग लेने के बाद वृद्धावस्था में अपने योग्य पुत्र को राज्य का भार देकर स्त्री के साथ वन में निवास कर वानप्रस्थी का जीवन बिताते थे। इस नियम के अनुसार महर्षि कण्व ने शकुन्तला को अपने पति के साथ पुनः तपोवन में जाने का संकेत किया है।

**गौतमी**—हे बेटी, देख तेरी यात्रा का मुहूर्त बीत रहा है। अतः अब तो अपने पिताजी को छुट्टी दो **( कण्व के प्रति )** अथवा यह तो बहुत काल तक आपको जाने नहीं देगी, ऐसी ही कुछ न कुछ कहती ही रहेगी। अतः अब आप आश्रम को पधारिये।

कण्वः--वत्से ! उपरुध्यते [1]तपोऽनुष्ठानम् ।

शकुन्तला--( भूयः पितरमाश्लिष्य ) तवच्चरणपीडिदं तादसरीरं । ता मा अदिमेत्तं मम किदे उक्कंठिदुं [ तपश्चरणपीडितं तातशरीरम् । तन्मातिमात्रं मम कृत उत्कण्ठितुम् । ]

कण्वः--( सनिःश्वासम् ) ।

**शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम् ।**
**उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः ॥ २० ॥**

---

पुनः = भूयो भूय एषा = इयं शकुन्तला एवं—इत्थं पूर्वोक्तवत् मन्त्रयिष्यते = तपोवन-विरहस्य भवद्विरहस्य असह्यत्वं वक्ष्यति । भवान् = भवानेव संलापमोहं परित्यज्य इतः स्थानात् निवर्तताम् = परावर्तताम् ।

कण्वः—गौतमीवचनमनुमन्यमानो महर्षिः प्राह—वत्से !=पुत्रि ! तपसः = तपस्यायाः अनुष्ठानम् = आचरणमिति तपोऽनुष्ठानम् उपलक्ष्यते = बाधितं भवति । एवं भूयो भूयः संल्लापप्रवर्तनेन मम तपोऽनुष्ठानस्य कालातिपातो भवेत् । अतः परावर्ते इति भावः ।

शकुन्तला—तपोऽनुष्ठानशब्दमाकर्ण्य तपःकृशं कण्वस्य कलेवरं सस्नेहं निरीक्षमाणा शकुन्तला महर्षि संश्लिष्य कथयति—तपश्चरणपीडितम् = तपश्चरणेन नित्यानुष्ठानेन, मदर्थं सोमतीर्थे यात्राया वा पीडितं = कृशं, दुर्बलम् तत् अतिमात्रं = अत्यन्तं मम कृते = मन्निमित्तम् उत्कण्ठितुं मा = न योग्यम् । कृशशरीरस्य तातस्य मदर्थं पुनः प्रयासप्रसङ्गो दुःसहो भवेदिति भावः ।

कण्वः—शकुन्तलोक्तौ कण्वः = काश्यपः ( सनिःश्वासं = निःश्वासपूर्वकं सशोकम् ) कथयति—शममेष्यतीति ।

अन्वयः—वत्से ! त्वया रचितपूर्वम् उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः मम शोकः कथं नु शमम् एष्यति ।

शकुन्तलाविरहदुःखस्य निरन्तरमविस्मरणीयत्वं कथयन् महर्षिः कण्वो ब्रवीति—शममेष्यतीति । वत्से ! = हे धर्मतनये शकुन्तले ! त्वया = भवत्या रचितपूर्वं = पूर्वं रचितं रचितपूर्वं तादृशं—प्राक्प्रकीर्णम् उटजस्य = पर्णशालायाः द्वारे = प्रतिहारे प्रवेशमुखे विरूढं = संजातमिति उटजद्वारविरूढं=पर्णशालाप्रवेशमार्गेऽङ्कुरितम् नीवारः बलिं नीवार-बलिम् = पर्णशालायाः प्रवेशद्वारे त्वया भूतबलिरूपेण प्रकीर्णानां नीवाराणां जलसम्पर्केण उद्भूताङ्कुरानित्यर्थः । विलोकयतः = गमनागमनावसरे भूयो भूयोऽवलोकयतः मम कण्वस्य शोकः = त्वद्विरहजन्या पीडाविशेषः कथं नु = केन प्रकारेण शममेष्यति = शान्ति गमिष्यति ।

---

**कण्व**—बेटी, तप-कार्य में बाधा हो रही है।

**शकुन्तला ( पुनः पिता के गले से लिपटकर )** पिता जी, आपका शरीर तप अनुष्ठान से अधिक पीड़ित है। अतः मेरे लिए अधिक उत्कण्ठा मत कीजिएगा।

**कण्व—( दीर्घ निःश्वास लेकर )** बेटी, तेरे द्वारा बलि के रूप में दिए गये नीवार, जो कुटी के द्वार के आगे उग आये हैं, उन्हें देख तुझे स्मरण करके मेरा शोक तो बढ़ता ही जायेगा ॥ २० ॥

---

पाठा०—[1]तपोवनानुष्ठानम् ।

गच्छ शिवास्ते पन्थानः सन्तु । ( निष्क्रान्ता शकुन्तला सहयायिनश्च ) ।

**सख्यौ**--( शकुन्तलां विलोक्य ) हद्धी हद्धी । अन्तलिहिदा सउंदला वणराइए [ हा धिक् । हा धिक् । अन्तर्हिता शकुन्तला वनराज्या । ]

**कण्वः**--( सनिःश्वासम् ) अनसूये गतवती वां सहधर्मचारिणो । निगृह्य शोकमनुगच्छतं मां प्रस्थितम् ।

**उभे**--ताद सउंदलाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं कहं पविसावो । [ तात शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं प्रविशावः । ]

**कण्वः**--स्नेहप्रवृत्तिरेवंदर्शिनी । ( सविमर्शं परिक्रम्य ) हन्त भोः ! शकुन्तलां पतिकुलं, विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम् । कुतः—

---

अर्थात्--त्वया प्रत्यहं पर्णशालायाः प्रवेशप्रतिहारे भूतबलिरूपेण विकीर्णानां नीवाराणां जलसम्पर्के संजातानङ्कुरितान् अवलोकयतो मम त्वद्विरहजन्या शोकः कथं शान्तिमेष्यति । अत्रानुप्रास काव्यलिङ्ग-परिकरा अलङ्कारा आर्याछन्दश्च ॥ २० ॥

ततः शकुन्तलाया गमनमनुमन्यमानो महर्षिः कण्व आशिषं प्रयुङ्क्ते गच्छ = व्रज, पतिकुलं व्रज = याहि, ते=तव पन्थानः=मार्गाः शिवाः=मङ्गलमयाः कल्याणप्रदाः, सन्तु= भवन्तु । ( शकुन्तला सहयायिनः = अनुगन्तारश्च निष्क्रान्ताः रङ्गभूमितः बहिर्निर्गताः )

**सख्यौ**—शकुन्तलाया अदर्शने विरहवेदनापीडिते प्रियम्वदानसूये सनिर्वेदमाहतुः-- हा धिक् ! हा धिक् ! प्रियसखी शकुन्तला वनराज्या = वनपङ्क्त्या अन्तर्हिता = गोपायिता व्यवहिता चक्षुगोचरमतिक्रान्ता ।

**कण्वः**—शकुन्तला स्नेहपरवशतया महर्षिः कण्वोऽपि सखेदं तदेवानुवदति— ( सनिःश्वासम् = निश्वासपूर्वकम् ) हे अनसूये ! वां = युवयोः तव प्रियम्वदायाश्च सहधर्मचारिणी सखी मदनुशासनेन युवाभ्यां सह चरितधर्मा । गतवती = गता, शोकं = विरहवेदनाम् निगृह्य = अवरुध्य वशीकृत्य प्रस्थितं = प्रयातं मां = तातम् अनुगच्छतम् = अनुसरतम् मत्पृष्ठे भूत्वा आश्रमं प्रति मया सहैव युवाभ्यां समागच्छतमित्यर्थः ।

**उभे**—ते शकुन्तलाविरहितयोरात्मनोः तपोवनप्रवेशस्याशक्यतां प्रतिपादयन्त्यां आहतुः—तात ! = हे पितः ! शकुन्तलया विरहितं शकुन्तलाविरहितं = शकुन्तलाशून्यं प्रियसख्या शकुन्तलाया अभावेन शोभारहितं शून्यमुदासीनं तपोवनम् = आश्रमम् कथं = केन प्रकारेण प्रविशावः = अन्तर्गच्छावः ।

---

अच्छा, हे पुत्रि ! अब तू जा, तेरे ये मार्ग कल्याणकारी व सुखप्रद हों । **( शकुन्तला के साथ गौतमी, शार्ङ्गरव एवं शारद्वत जाते हैं )**

**दोनों सखियाँ**--**( शकुन्तला को देखकर )** हाय, हाय, अरण्य-पंक्ति से शकुन्तला ओट में हो गई । अब वह हमारा आँखों से ओझल हो गई ।

**कण्व—( निःश्वास लेकर )** हे अनसूये ! हे प्रियम्वदे ! साथ धर्म का आचरण करने वाली तुम दोनों की सखी तो अब पतिगृह को चली गई । अब शोक रोककर तुम दोनों मेरे पीछे आओ, आश्रम को चलें ।

**दोनों सखियाँ—हे तात ! शकुन्तला के बिना यह तपोवन तो अब शून्य-सा मालूम हो रहा है, हम लोग कैसे प्रवेश करें ।**

अर्थो हि कन्या परकीय एव [1]तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ २१ ॥

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति चतुर्थोऽङ्कः।

---

कण्वः—सख्योरुक्तौ शून्यत्वप्रतिपत्तिहेतुं प्रदर्शयन् महर्षिः कण्व अवरहितस्नेहस्य = प्रेम्णः प्रवृत्तिः = प्रवाहः इति स्नेहप्रवृत्तिः = स्नेहानुबन्धः, एवं द्रष्टुं शीलं यस्याः सा एवं दर्शिनी = इत्थं विचारा तपोवनस्य शून्यत्वमासिका शकुन्तलायां युवयोः स्नेहातिशयात् तद्विरहे तपोवनमिदं शून्यमिव भासते इति भावः। ( सविमर्श-विमर्शेन = चिन्तया सह सविमर्शं परिक्रम्य = मण्डलाकारमुटजाङ्गणे परिभ्रम्य सविमर्शमभिनीय ) आबाल्यात् पालितायाः शकुन्तलायाः पतिगृहे प्रेषणेनात्मनः कृतकृत्यतामनुभवन् महर्षिः ससन्तोषं वदति–हन्त भोः ! अहो ! शकुन्तलां = स्वधर्मपुत्रीम् पतिकुलं = दुष्यन्तसमीपं, विसृज्य = संप्रेष्य इदानीम् = अधुना स्वारथ्यं = निश्चिन्तत्वेन प्रकृतिस्थत्वं प्रकृतावस्थानम् मनोनिवृत्तिः सुखम् लब्धं = प्राप्तम्। तदेव विवृणन्नाह—अर्थो हि—

अन्वयः—हि कन्या परकीय एवार्थः ताम् अद्य परिग्रहीतुः संप्रेष्य अयं मम अन्तरात्मा प्रत्यर्पितन्यास इव प्रकामं विशदः जातः।

अथ केनापि विश्वस्तेन पुंसा स्वान्तिके न्यासीकृतं धनं भूयः स्थापकाय प्रत्यर्पणे हृदये वैशद्यमिवाद्यात्मीयमपि कस्यारत्नरूपं धनमुद्वोढुः समीपे संप्रेष्य ममान्तरात्मा नितरां प्रसन्नो जात इति कथयति महर्षिः कण्व कन्येति। हि = निश्चये कन्या = स्वकीयापि दुहिता परकीया एव, परस्यायं परकीयः परसम्बन्धी एव अर्थः = धनम् उत्पत्त्यनन्तरमेव कन्यारूपोऽर्थः परकीयत्वेनैव ज्ञातः। अतः तां = कन्याम् अद्य = इदानीम् परिग्रहीतुः—परिणेतुर्वरस्य राजर्षेः दुष्यन्तस्य पार्श्वे संप्रेष्य = प्रस्थाय अयम् = एषः मम = मुनेः अन्तरात्मा = आभ्यन्तर मनः प्रत्यर्पितः = स्थापकाय प्रदत्तः न्यासः = पूर्वविश्वासेन स्थापितः द्रव्यादिरूपः निक्षेपः येन स प्रत्यर्पितन्यास इव = यथा प्रकामं = अत्यधिकम् विशदः = चिन्ताद्यागमनेन निर्मलः जातः = अभूत्। अत्रोपमा-काव्यलिङ्गोत्प्रेक्षालङ्काराः छन्दश्चोपजातिरस्ति ॥ २१ ॥

---

**कण्व**—स्नेह के कारण से ही तुम्हें ऐसा मालूम पड़ता है **( विचार करते हुए चल कर )** अहा, शकुन्तला को अपने पति के घर भेजकर मैंने आज स्वास्थ्य प्राप्त किया। अर्थात् मुझे चित्त को शान्ति मिली, क्योंकि—

कन्यारूपी धन तो दूसरे ( पति ) का ही है। आज उसको उसके पाणिग्रहीता पति के पास भेजकर मैं उसी प्रकार प्रसन्नचित्त तथा चिन्तामुक्त ( निश्चिन्त ) हो गया हूँ जिस प्रकार बहुत दिनों से अपने पास रखे हुए दूसरे को धरोहर को उसके स्वामी को वापस सौंपकर मनुष्य प्रसन्न तथा चिन्ता मुक्त हो जाता है ॥ २१ ॥

**( सभी रंगमंच से बाहर चले जाते हैं )**

**॥ चतुर्थ अङ्क समाप्त ॥**

---

पाठा०—१. तामेव।

## पञ्चमोऽङ्कः

( ततः प्रविशत्यासनस्थो राजा विदूषकश्च )

**विदूषकः**—( कण्णं दत्त्वा ) भो वअस्स संगीदसालंतरे अवधाणं देहि। कल-विसुद्धाए गोदीये सरसजोओ सुणीअदि। जाणे तत्तहोदी हंसवदिआ वण्ण-परिअअं करेदि त्ति। [ **भो वयस्य संगीतशालान्तरेऽवधानं देहि। कलविशुद्धायागीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते। जाने तत्रभवती हंसपदिका वर्णपरिचयं करोतीति।** ]

---

पूर्वस्मिन् चतुर्थेऽङ्के शकुन्तलायाः पतिगृहप्रयाणस्य प्रकारः प्रदर्शितः। अत्र पञ्च-मेऽङ्के च शेषभूतमिति वृत्तं वर्णयिष्यते।

( चतुर्थस्याङ्कस्यान्ते दुष्यन्तस्य तन्नर्मसचिवस्य विदूषकस्य चावसरोचितं प्रवेशमाह—

ततः = तदनन्तरम् आसनस्थः = सिंहासनस्थः राजा = दुष्यन्तः

विदूषकः = माधव्यश्च प्रविशति = रङ्गभूमा आविर्भवति। )

महर्षेर्दुर्वाससः शापेन विस्मृतशकुन्तलाविषयः राजधान्यां हस्तिनापुरे यथावत् राजकार्याणि कुर्वाणो विश्रान्त्यवसरे राजा दुष्यन्तः सङ्गीतशालायां प्रवृत्तं गीतमाकर्ण्य सहोपपविष्टेन माधव्येन तथाविधं गीतमाकर्णयितुमनुरुध्यते—भो वयस्य !

**विदूषकः**—अये माधव्य ! 'नृत्यं गीतं च वाद्यं च त्रयं सङ्गीतमुच्यते।' तदर्था शाला सङ्गीतशाला तस्या अभ्यन्तरे मध्ये संगीतशालाभ्यन्तरे = गानवाद्यादिगृहाभ्यन्तरे अव-धानं = ध्यानं देहि = मनोयोगपूर्वकं सावधानमाकर्णय। कला = मधुरास्फुटध्वनियुक्ता विशुद्धा = शङ्कितभीतादिदोषरहिता, ग्रामरागजनिका चेति कलविशुद्धा तस्याः कल-विशुद्धायाः निर्दोषाया गीतेः = गानस्य स्वराणां = षड्जादीनां संयोगः = यथालक्षणं सम्बन्धः = गीतिसम्बन्धीस्वरालापः श्रूयते = आकर्ण्यते। सङ्गीतभेदो यथा—

'गीतयः पञ्च शुद्धाख्या भिन्ना गौडा निवेसरा।
साधारणी विशुद्धा स्यादवक्रैर्ललितैः स्वरैः॥'

जाने = प्रतीयते तत्रभवती आदरणीया हंसपदिका = काचित्प्रधाननर्तिका देवीष्वेका वा वर्णपरिचयं करोति = स्थाय्यारोह्यवरोह्यात्मकगानक्रियाभ्यासं कुरुते। तथा हि भरतः।

'या देवविषया गीतिर्देववाणिस्तु सा भवेत्।
मनुष्यविषया सैव वर्णनाम्ना प्रकाशते॥
गानक्रियोच्यते वर्णः सः चतुर्धा निरूपितः।
स्थाय्यारोह्यवरोही च सञ्चारी·········॥'

---

**( इसके बाद सिंहासन पर विराजमान राजा और विदूषक का प्रवेश )**

**विदूषक**—( कान लगाकर ) हे मित्र ! संगीतशाला = संगीतभवन की ओर जरा ध्यान दो मधुर और अस्फुट ध्वनिवाले शुद्ध संगीत का स्वरसंयोग = स्वरालाप सुनाई पड़ता है। मालूम पड़ता है कि आदरणीया महारानी हंसपदिका गाना = सरगम सीख रही हैं।

राजा—तूष्णीं भव । यावदाकर्णयामि । ( आकाशे गीयते )

**अहिणवमहुलोलुवो भवं तह परिचुंबिअ चूअमंजरिं ।**
**कमलवसइमेत्तणिव्वुदो महुअर विम्हरिओ सि णं कहं ॥ १ ॥**

[ अभिनवमधुलोलुपो भवांस्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।
कमलवसतिमात्रनिर्वृत्तो मधुकर ! विस्मृतोऽस्येनां कथम् ॥ १ ॥ ]

---

राजा—गीताकर्णनेऽहमवहितोऽस्मि तावत्तूष्णीं भवेत्याह—तूष्णीम् = मौनी भव यावत् अहम् आकर्णयामि = शृणोमि ( आकाशे गीयते )।

अथ हंसपदिका राज्ञो दुष्यन्तस्य स्वमहादेव्या उपेक्षाया भ्रमरस्योपालम्भनव्याजेन गीतिकां गायति—**अभिनवेति** ।

**अन्वयः**—हे मधुकर ! अभिनवमधुलोलुपः भवान् तथा चूतमञ्जरीं परिचुम्ब्य कमलवसतिमात्रनिर्वृत्तः ( सन् ) एनां कथं विस्मृतः असि ।

सङ्गीतशालाभ्यन्तरे राज्ञा दुष्यन्तेन कृतां महादेव्या वसुमत्या उपेक्षामाधारीकृत्य मधुकरोपालम्भपूर्वकं हंसपदिकया गीयमानां गीतिकामाकर्णयति—**अभिनवेति** । हे मधुकर ! = मधुरसास्वादलम्पटतयान्वर्थनामधेय, पक्षान्तरे नित्यनवाङ्गनोपभोगकामुक राजन् ! अभिनवे = नूतने मधुनि पुष्परसविशेषे लोलुपः = सतृष्णः इति अभिनवमधुलोलुपः तथा = तेन प्रकारेण यथानुभूतं चूतमञ्जरीं = अभिनवरसाम् आम्रमञ्जरीम् परिचुम्ब्य = परितः समन्तात् चुम्बित्वा सर्वाङ्गीणं रसमास्वाद्येत्यर्थः । कमलं = पद्ममेव वसतिः = वासः सा एव कमलवसतिमात्रम् तेन निर्वृत्तः सुखितः इति कमलवसतिनिर्वृत्तः पक्षान्तरे कवलवसतिः = पद्मिनी, कामशास्त्रोक्तगुणविशिष्टा वराङ्गना तन्मात्रेण = तदा स्वादनमात्रेण निर्वृतः सुखाभिमानी तथाभूतः सन् एनां = चूतमञ्जरीं कथं = केन प्रकारेण विस्मृतः असि = विस्मर्तुं न योग्यम् । विस्मरणे किञ्चित्कारणं न पश्यामीत्युपालम्भः ।

**अयं भावः**—प्रत्यहमभिनवनायिकोपभोगकामुक ! आम्रमञ्जर्याः रसमास्वाद्य मधु-

---

**राजा**—अच्छा, थोड़ा तुम चुप रहो, तो मैं भी जरा सुनूँ **( आकाश में = नेपथ्य से पृथक् किसी स्थान में गीत गाया जा रहा है )।**

हे मधुकर = भंवर ! आप तो मधु = नये-नये पुष्पों के रस के ही लोभी हो, आपने आम की नई मञ्जरी का ( मेरा ) प्रेम से रस का उपभोग करके अब कमल को पाकर ( कमला नामक दूसरी नई नवेली नायिका को पाकर ) उसके आनन्द में विभोर होकर इस सुरस आम्र की मञ्जरी को (मुझको) अब कैसे भूल गये हो ? हे भ्रमर ! कभी तो इसकी भी ( मेरी भी ) कुछ सुध लिया करो ॥ १ ॥

**विशेष**—यहाँ हंसपदिका का तात्पर्य है—जिसका पैर या पद = शब्द हंस के समान हो। हंसपदिका एक नर्तकी है या दुष्यन्त की रानियों में से एक है, जिसे कभी प्यार करके दुष्यन्त अब उससे विरत हो गये हैं, उस व्यवहार से खिन्न होकर वह नवोढा इस पद्य में वह भाव व्यक्त कर रही है—जिस प्रकार भ्रमर नई आम्रमञ्जरी का उपभोग कर कमल पर जाकर मग्न हो जाता है उसी प्रकार आपने मेरी नई जवानी का उपभोग कर अन्य नारियों में विभोर हैं। वस्तुतः इस पद्य से शकुन्तला का स्मरण दिलाया गया है। यहाँ राजा दुष्यन्त भ्रमर कहे गये हैं, शकुन्तला आम्र की मञ्जरी कही गई है, अन्तःपुर की रानियाँ कमल के समान मानी गई है। राजा दुष्यन्त ने कण्व के आश्रम पर शकुन्तला से प्रेम कर राजधानी आकर उसे भूल गये थे। राजा को शकुन्तला का भूल जाना यह सूचित करता है कि महर्षि दुर्वासा जी का शाप राजा पर पूर्णरूप से प्रभावकारी है। उसी की स्मृति में यह पद्य निर्मित है।

राजा—अहो रागपरिवाहिनी गीतिः ।

विदूषकः—किं दाव गीदीए अवगओ अक्खरत्थो । [ किं तावद् गीतेः अवगतो-ऽक्षरार्थः ]।

राजा—( स्मितं कृत्वा ) सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः । तस्या देवीवसुमतीमन्तरेण मदुपालम्भमवगतोऽस्मि । सखे माढव्य ! मद्वचनादुच्यतां हंसपदिकानिपुणमुपालब्धोऽस्मीति ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । ( उत्थाय ) भो वअस्स गहीदस्स ताए परकीएहिं हत्थेहिं सिहंडए ताडीअमाणस्स अच्छराए वीदराअस्स विअ णत्थि दाणिं

---

कर इव स्नेहातिशयां महादेवीं वसुमतीं गाढं परिचुम्ब्य कथमेनां विस्मृतवानसि । सद्य एवैनां सम्भावय । मधुव्रते मधुकरः कामुकेऽपि प्रकीर्तितः ।' इति विश्वः । पताकास्थानकम् इदमाक्षेपनामकम् अङ्गं च । तदुक्तं धनञ्जयेन दशरूपके—

'गर्भबीजसमुद्भेदादाक्षेपः परिकीर्तितः ।'

अत्राप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः, अपरवक्त्रं च छन्दः ॥ १ ॥

**राजा**—हंसपदिकया गीयमानस्य गानस्य प्रशंसां कुर्वन् राजा = ब्रवीति—अहो ! = आश्चर्यम् । रागपरिवाहिनी–रञ्जनं रागः तस्य परिवाहः = निष्पन्दः सोऽस्ति यस्यां सा रागपरिवाहिनी गीतिः = गानम् ।

**विदूषकः**—पृच्छति राजानम् ? किं तावत् = साकल्येन गीतेः = गानस्य अथ रागाणां = स्वरावष्टम्भनभूतानामर्थः = निगूढोऽभिसन्धिरित्यक्षरार्थः, बाह्यार्थस्तु मादृशेनाप्यवगन्तुं सुशकः गूढाऽर्थः किं भवता ज्ञातः इति प्रश्नः ।

**राजा**—( स्मितं कृत्वा = ईषद्विहस्य ) मया ज्ञातं रहस्यार्थं त्वन्निर्बन्धेन कथयामीति मन्दहासः । रहस्यार्थं कथयति—सकृत् = एकवारं कृतः = विहितः प्रणयः = रतिक्रीडापरिचयः यस्मिन् स सकृत्कृतप्रणयः अयं जनः = अहमित्यक्षरार्थः । तस्याः हंसपदिकयाः देवीवसुमतीं = महादेवीं वसुमतीं = अन्तरेण = प्रति मदुपालम्भम् = मत्सम्बन्धमुपालम्भम् अवगतः = ज्ञातवान् अस्मि = अहम् । सखे माधव्य ! = वयस्य माधव्य ! मद्वचनात् = मम सन्देशात् हंसपदिका उच्यताम् = कथ्यताम् निपुणं = सुष्ठु मधुकरव्याजेन कृतत्वात् शत्रुर्यम् उपालब्धः = उपालम्भनगोचरीकृतः अस्मि ।

**विदूषकः**—यद् भवान् आज्ञापयति ( उत्थाय ) भो वयस्य ! = हे मित्र ! भवदाज्ञया तथा करणे औचित्यानौचित्यचिन्ता मम नास्ति यथाज्ञप्तामहमनुतिष्ठामि । तया =

---

**राजा**—रागिनियों से युक्त या अनुराग से भरा हुआ यह गान बड़ा ही मधुर है । अर्थात् यह गान मधुर अनुराग प्रवाहित कर रहा है ।

**विदूषक**—हे वयस्य ! क्या, आपने इस गान के अर्थ पर भी ध्यान दिया है ?

**राजा**—( **हँसकर** ) हमने कभी इससे अनुराग किया था, जिसे हम अब भूल गये हैं ? यही इन अक्षरों का अर्थ है । अब हम इस हंसपदिका से दूर रहते हैं । इसीलिए भ्रमर के व्याज से हमको उलाहना दिया गया है । अतः हे मित्र माधव्य ! ( मधुपुरी = मथुरा के चौबे जी ) तुम मेरी ओर से जाकर रानी हंसपदिका से कहो कि वाह, तुमने तो हमें खूब उलाहना दिया ?

**विदूषक**—आपकी जैसी आज्ञा ( **उठाकर** ) परन्तु हे मित्र ! जैसे अप्सरा के द्वारा पकड़े गये

मे मोक्खो । [ यद्भुवानाज्ञापर्यात । भो वयस्य गृहीतस्य तया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके ताड्यमानस्याप्सरसा वीतरागस्येव नास्तीदानीं मे मोक्षः ]

राजा—गच्छ नागरिकवृत्त्या [1]संज्ञापयैनाम् ।

विदूषकः—का गई । [ का गतिः । ] ( इति निष्क्रान्तः ) ।

---

हंसपदिकया परिकीयैर्हस्तैः दासीहस्तैः शिखण्डके = शिखायां काकपक्षे गृहीत्वा स्वस्थानीकृतस्य ताड्यमानस्य मम अप्सरसा = देवाङ्गनया गृहीतस्य वीतरागस्य निस्पृहस्य तपस्विनः इव यथा मे = मम विदूषकस्य तदानीमधुना मोक्षः = मुक्तिः नास्ति ।

अयं भावः—यथा इन्द्रनिर्देशेन देवकार्यं सम्पादयितुं कयाचिदप्सरसा हावभावनृत्यगीतादि-द्वारा स्ववशीकृतस्य कस्यचित् निस्पृहस्य तपस्विनः स्वस्थानच्युतेः पुनः मोक्षः = अपवर्गो न भवति तथैव नवदर्शनं सम्पादयितुं हंसपदिकया शिखां गृहीत्वा दासीद्वारा ताड्यमानस्य मम तत्सकाशात् मुक्तिः=मोचनं न भवेत् । अतस्तत्र भवदागमनमावश्यकम् । यदि भवान् नागच्छेत् तदा मदुपरि महत् सङ्कटं समापतेदिति भावः ।

राजा—तत्रोपायमुपदिशति—नागरिकवृत्त्या = नागरिकस्य = अग्राम्यस्य विदग्धस्य वृत्त्या = व्यवहारेण, वैदग्ध्येन एनां = हंसपदिकां संज्ञापय = सूचय, कथय यथा सा अन्यापदेशेन मामुपलभते तथा त्वमपि सहजां ग्रामीणवृत्तिं परित्यज्य मत्साचिव्यसमुचितां नागरिकवैदग्धीमाश्रित्य सापदेशं भङ्ग्या तामुपालभस्व । एवं कृते त्वं तया परिभूतो न भविष्यसीत्यर्थः ।

विदूषकः—का गतिः ? = कः उपायः ? त्वदादेशोल्लङ्घने त्वदेकावलम्बस्य मम न कोऽप्यवलम्बः स्यात् । अतो गमिष्यामि यद्वा नागरिकवैदग्धीमजानतो बुद्धिहीनस्य मम अस्मिन् कर्मणि कोऽभ्युपायस्तथापि केवलं भवदादेशानुसारमेव गच्छामीत्यर्थः ( इति = एवं कथयित्वा निष्क्रान्तः = रङ्गभूमितो बहिर्गतः ) ।

---

वीतराग तपस्वी की मुक्ति नहीं होती उसी प्रकार दासियों के हाथों पकड़े गये केशपाश वाले मेरी मुक्ति नहीं है। अर्थात् हंसपदिका मेरी खूब खबर लेगी, अपनी यह विपत्ति आपने मेरे शिर पर डाल दी।

**विशेष**—यहाँ माधव्य नामक विदूषक का कहना है कि जिस प्रकार रागरहित तपस्वी को अप्सरा नहीं छोड़ती, उसको वह तपोभ्रष्ट कर देती है, उसी प्रकार यह हंसपदिका भी मुझे नहीं छोड़ेगी, अपनी दासियों से मेरे शिर के बाल पकड़वा कर मेरी खूब दुर्गति बनायेगी, यह सोचकर कि इसी ने मुझसे राजा को विरक्त कर दिया है। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियों को अप्सरायें तपोभ्रष्ट कर ही देती हैं। जैसे वीतराग, त्यक्तगृह वनवासी मुनि के पीछे कोई अप्सरा = दिव्य स्त्री लग जाय तो उसकी समाधि को भंगकर उसके मोक्षमार्ग में बाधा उपस्थित कर ही देती है—अर्थात्—जब कोई दिव्य अप्सरा किसी वीतराग तपस्वी को किसी प्रकार फँसा लेती है तब उस बेचारे तपस्वी की मुक्ति दुर्लभ हो जाती है, वह भ्रष्ट होकर अपने वास्तविक लक्ष्य से च्युत हो जाता है। हे राजन् ! प्रेमरस से शून्य मेरे पीछे भी आपने हंसपदिका रूपी चुड़ैल की आफ़त लगा दी है, जिससे मेरा बचना कठिन है।

**राजा**—जाओ, नागरिक वृत्ति = अपनी चतुराई से शिष्टतापूर्वक उसे सन्देश सुनाना, ग्रामीण की तरह नहीं।

**विदूषक**—तो क्या उपाय है, जाना ही पड़ेगा ( जाता है )।

---

पाठा०—१. शान्तयैनाम् ।

**राजा**—( आत्मगतम् ) किं नु खलु गीतार्थमाकर्ण्येष्टजनविरहादृतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि । अथवा—

> **रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्**
> **पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः ।**
> **तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं**
> **भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥ २ ॥**

( इति पर्याकुलस्तिष्ठति )

---

**राजा**—दुर्वाससः शापेनागतशकुन्तलास्मीति जन्मान्तरानुभूतमिवात्यन्तस्फुटं तद्रागम् आत्मगतं भावयन् राजा उत्कण्ठाहेतुं विमृशति—किन्नु खलु गीतार्थमाकर्ण्य = गानाशयं निशम्य इष्टजनविरहात् = प्रियव्यक्तिवियोगात् ऋते = विनापि बलवत् = अत्यधिकम् उत्कण्ठितः = व्यग्रः अस्मि । अथवा = यद्वा—अयमेव वा हेतुर्भवितुं शक्य इत्याह—रम्याणीति ।

**अन्वयः**—जन्तुः सुखितोऽपि रम्याणि वीक्ष्य मधुरान् शब्दान् निशम्य न पर्युत्सुकीभवति ( इति ) यत् तत् भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि चेतसा अबोधपूर्वं नूनं स्मरति ।

राज्ञा हंसपदिकया नीयमानं सोपालम्भं गीतमाकर्ण्य तदर्थभावनया समुत्कण्ठितो राजा दुष्यन्तः स्वमनसि विचारयति—रम्याणीति । जन्तुः=सर्वोऽपि प्राणी सुखितोऽपि = प्रियजनसान्निध्येन सन्तोषमनुभवन्नपि रम्याणि = मनोहराणि चन्द्र-चन्दन प्रमदादीनि वस्तूनि वीक्ष्य = प्रसङ्गादवलोक्य मधुरान् = श्रवणसुभगान् शब्दान् = भ्रमरझङ्कारकोकिलालापगीतादिशब्दान् निशम्य = श्रवणविषयीकृत्य च पर्युत्सुकीभवति = उत्कण्ठते, इति यत् = सुखितस्यापि जन्तोः सुन्दररूपदर्शनं-मधुरशब्दश्रवणमात्रेण पर्युत्सुकीभवनं तत् = तस्मात् कारणात् पर्युत्सुकीभवनात् भावस्थिराणि = भावनात्मकतया मनसि लीनानि जननान्तरसौहृदानि पूर्वेषु जन्मसु अनुभूतानि प्रियजनसम्बन्धिविशेषान् चेतसा = चित्तेन अबोधः = ईषद्बोधः = तत्पूर्वः तत्पूर्वकम् = विशेषज्ञानाभावपूर्वं नूनं = ध्रुवं निश्चयेन स्मरति = मनसि भावयति ।

अर्थात् प्रियजनसमीपे सुखेन निवसन्नपि प्राणी चन्द्रचन्दनोद्यानानि निरीक्ष्य श्रवणसुभगं गीतध्वनिं च निशम्य यत् सद्यः समुत्कण्ठितो भवति तत्र वासनारूपेण जन्मान्तरानुभूतं सौहार्दमेव कारणं भवति नान्यत् । अत्राप्रस्तुतप्रशंसानुमानविभावनाकाव्यलिङ्गालङ्कारा वसन्ततिलकाछन्दश्च ॥ २ ॥

( इति = एवम् उक्त्वा पर्याकुलः = व्यग्रः सन् तिष्ठति = स्थितः )

---

**राजा**—( **मन ही मन** ) इस प्रकार हंसपदिका के विरहसूचक गीत को सुनकर किसी अपने इष्ट जन के वियोग के बिना भी मैं क्यों अत्यन्त उत्कण्ठित-सा हो रहा हूँ अथवा रमणीय वस्तुओं को देखकर श्रवण मधुर शब्दों को सुनकर सुखीजन भी कभी-कभी उत्कण्ठित-सा हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि वह मनुष्य विना जाने हुए भी वासना रूप से [illegible] सुदृढ़ जन्मान्तरीय सौहार्द का ही स्मरण करता है ॥ २ ॥

( **यह कहकर आकुल हो बैठ जाते हैं** )

( ततः प्रविशति कञ्चुकी )

**कञ्चुकी**—अहो नु खल्वीदृशीमवस्थां प्रतिपन्नोऽस्मि ।

**आचार इत्यवहितेन मया गृहीता या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः ।**
**काले गते बहुतिथे मम सैव जाता प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था ॥ ३ ॥**

---

( अथागमिष्यत्पात्रप्रवेशसूचनावसरं सम्पादयितुं कञ्चुकीप्रवेशमाह—ततः = तदनन्तरं कञ्चुकिः कञ्चुकः = वारवाणोऽस्यास्तीति कञ्चुकिः = सौविदल्लः प्रविशति = रङ्गभूमावाविर्भवति )

'कञ्चुको वारवाणः स्यात्' इत्यमरसिंहः । कञ्चुकिलक्षणं चाह भ्रातृगुप्तः—

'ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविर्जिताः ।
ज्ञान विज्ञानकुशलाः कञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥'

अपि च—

'अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकामार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥'

जरावैक्लव्ययुक्तेन शरीरेण सम्पन्नः कञ्चुकी रङ्गभूमौ प्रविश्य संस्कृतभाषयैवाभिधत्ते । तद्यथा—-

'जरावैक्लव्ययुक्तेन विशेद् गात्रेण कञ्चुकी ।
विदुषां संस्कृतभाषा मन्त्रिकञ्चुकिनामपि ॥'

**कञ्चुकी**—महर्षेः कण्वस्यादेशेन शकुन्तलामादाय हस्तिनापुरमुपस्थाय च राजमन्दिरं प्रविष्टानां शार्ङ्गरवादीनां सन्देशं राज्ञो दुष्यन्तस्यान्तिके प्रापयिष्यन् कञ्चुकी वार्द्धक्यक्लिष्टमात्मानमनुशोचति—अहो नु खलु = हा, ईदृशीं एतादृशीम् वयःकृतां विसदृशीं अवस्थां = दशाम् प्रतिपन्नः = आपन्नः, अहं प्राप्तः अस्मि । वार्द्धक्यातिशयेन विसदृशीं जरावस्थां विवृणोति—**आचार इति** ।

**अन्वयः**—राज्ञः अवरोधगृहेषु अवहितेन मया आचार इति वा वेत्रयष्टिः गृहीता सैव बहुतिथे काले गते प्रस्थानविक्लवगतेः मम अवलम्बनार्था जाता ।

वार्द्धक्याद् वेपमानकलेवरः कञ्चुकी नैजीवस्था विमृशन् हस्तेन धृतां यष्टिकां विलोक्य ब्रूते—**आचार इतीति** । राज्ञः=महाराजस्य दुष्यन्तस्य अवरोधगृहेषु = अन्तःपुरेषु अवहितेन = अप्रमत्तेन सावधानेन सता मया = कञ्चुकिना आचार इति = परम्परागता राजभृत्यमर्यादियमिति हेतोः अन्तःपुराधिकृतेन रक्षाधिकारिणा पुरुषेण हस्ते सदा वेत्रयष्टिः गृहीतव्या इत्याचारदित्यर्थः । या वेत्रयष्टिः = वेतसदण्डं गृहीता = हस्ते सदा

---

**( इसके बाद रंगमंच पर कञ्चुकी का प्रवेश )**

**कञ्चुकी**—हाय, ऐसी हालत में पहुँच गया हूँ ।

**मैंने** राज के महलों में सावधान होकर जिस छड़ी को केवल नियम पालन करने के लिए धारण किया था, वही छड़ी अधिक दिन बीत जाने पर अब तो सहारा देने वाली एक आवश्यक वस्तु हो गई है ॥ ३ ॥

**विशेष**—लम्बा चोंगा पहने हुए राजा के रनिवास के वृद्ध दर्बारी व्यक्ति को कञ्चुकी कहते हैं जो नियमानुसार हाथ में छड़ी लिए रहता है । कञ्चुकी सोचता है कि पहले जब शरीर में कुछ शक्ति थी तब छड़ी की जरूरत नहीं थी, केवल नियमानुसार कायदे का पालन करने के लिए लिया

भो: कामं धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य। तथापीदानीमेव धर्मासनादुत्थिताय पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे निवेदितुम्। अथवाऽविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकार: ! कुत:—

**भानु:सकृद्युक्ततुरङ्ग एव रात्रिन्दिवं गन्धवह: प्रयाति।**
**शेष: सदैवाहितभूमिभार: षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एष:॥ ४॥**

---

धारिता सैव तदानीं केवलमाचार इत्येव, न तु तस्या: कश्चनोपयोग इति गृहीता वेत्रयष्टिरेव, बहुतिथे = बहुसंख्ये काले = समये गते = अतीते सति प्रस्थानविप्लवगते प्रस्थाने = गमनारम्भे विक्लवा: = विवक्षा गति: = पादविन्यासो यस्य स तस्य तथाविधस्य मम-अवलम्बनं = अवष्टम्भ एवार्थ: = प्रयोजनं यस्या: सा अवलम्बनार्था = शरीरावलम्बनप्रयोजना जाता = सम्पन्ना। साम्प्रतं वेत्रयष्टिसाहाय्यमन्तरा नाहं पदात्पदमपि चलितुं शक्नोमि। पूर्वं तारुण्यावस्थायां महाराजस्यान्त:पुरे कञ्चुकिनोऽयमाचार इत्येवं मत्वा गृहीता इदानीं तु आचार: शरीरावष्टम्भनं चेत्युभयथा मया यष्टिर्गृह्यते इति तात्पर्यम्। अत्राप्रस्तुतप्रशंसा-विभावना छेक-वृत्ति-श्रुत्यनुप्रासालङ्कारा: वसन्ततिलकं वृत्तं च॥ ३॥

एवं स्वकीयामवस्थां परामृशन् कञ्चुकी आत्मना कर्तव्यमनुसन्दधान आह—भो: = अहो, कामं = मन्ये देवस्य धर्मकार्यं = कर्तव्यकर्म, धर्म्यारण्यात्समागतानां महर्षि: कण्वस्य शिष्याणामभ्यर्थनादिकम्, अनतिपात्यम् = अनतिक्रमणीयम्, कालक्षेपानर्हम्, सद्यो निवेदयितुं योग्यमिति यावत्, तथापि इदानीमेव धर्मासनात्—व्यवहारासनात् उत्थिताय = उत्थाय विश्रान्ताय पुन: = भूय: उपरोधकारि = विघ्नजनकम् कण्वशिष्यागमनं = कण्वान्तेवासिनामुपस्थितिं अस्मै = अमुस्मै राज्ञे दुष्यन्ताय निवेदितुं = कथयितुं नोत्सहे = न कामये। पुनर्विमृश्याह अथवा = अयं विकल्प:, यतो हि अयं = एष: लोकतन्त्राधिकार: लोकस्य = प्रजाजनस्य तन्त्रं = योगक्षेमं तस्याधिकार: = अनुष्ठानम् यद्वा लोके = भुवने तन्त्राधिकार: = प्रधानाधिकार:, अथवा लोकतन्त्र: = लोकाधीन:, पराधीन: अधिकार: प्रजापालनाधिकार: प्रजानुरोधेनैव सम्पादयितुं शक्य: इति लोकतन्त्राधिकार: अविश्रम:- न विद्यते विश्रमो यस्मिन् स अविश्रम: = विश्रान्तिरहित:। तस्मात् कण्वशिष्यागमनमिदानीमेवं निवेदनीयमिति भाव:। कुत: यतो हि—उक्तमर्थं साधयति—भानुरिति।

**अन्वय:**—भानु: सकृद् युक्ततुरङ्ग एव, गन्धवह: रात्रिदिवं प्रयाति, शेष: सर्वंवाहितभूमिभार: षष्ठांशवृत्तेरपि एष धर्म:।

---

था, किन्तु अब शक्तिहीन होने से वह मुझे सहारा देता हैं। कञ्चुकी का छड़ी लेना अनिवार्य काय है। यह धार्मिक सत्यवक्ता, शुद्धचरित्र एवं विद्वान् होता है। वृद्धावस्था में लड़खड़ाने के कारण तो हाथ में छड़ी रखना अत्यावश्यक है, फिर भी अन्त:पुर की रक्षा में नियुक्त कञ्चुकी को नियमानुसार छड़ी लेना पड़ता है।

यद्यपि यह बात सत्य है कि धर्म-कार्यों में महाराज को कभी विलम्ब नहीं करना चाहिए, फिर भी मुझे शङ्का हो रही है कि महाराज अभी धर्मासन से उठकर विश्राम के लिए आये हुए है उनसे महर्षि कण्व के आने का सूचना दे देने से उनके विश्राम में विघ्न ही पड़ेगा। अथवा भुवन के इस प्रधान अधिकार में राजाओं को अराम नहीं हैं, क्योंकि देखो—

भगवान् भास्कर के रथ में उनके घोड़े सदा जुते ही रहते हैं, एक बार जब वे रथ में जुते तब से बराबर चक्कर ही काटते रहे हैं। वायु भी दिन-रात बहता ही रहता है, वह भी कभी विश्रमा

PANKAJ KUMAR



प्रजापालनमात्मनो धर्ममनुतिष्ठतां नृपतीनां क्षणमपि विश्रामस्यावकाशो न जायते इति वास्तविकीं स्थितिम् उदाहरणद्वारा समर्थयति कञ्चुकी:—भानुरिति। भानु: = सूर्य: सकृत् = एकवारं युक्ता: = योजिता: बद्धा: तुरङ्गा: = वाजिनो येन स सकृद्युक्त-तुरङ्ग: एव। एकवारमेव स्वरथे तुरङ्गमानां योजनं कृत्वा भानु: सर्वदा प्रतिदिनं पर्यट-त्येव, तस्य पुनस्तुरङ्गमयोजनयापि अवकाशो न भवति। गन्धवह: = आवहप्रवहात्मको-वायु: रात्रि दिवं = अहोरात्रम् प्रयाति = गच्छति प्रचलति। शेष: = शेषनाग:, अनन्त: सदैवाहितभूमिभाग:—सदैव सर्वदा आहित: = धृत: भूमे: = वसुन्धराया: भारो गुरुत्वं येन स सदैवाहितभूमिभार: षष्ठांशवृत्ते:—षष्ठांश: = न्यायेन प्रजा: परिपालयता नृपेण प्रजाभ्य: ग्राह्य: षष्ठो भाग: एष एव राज्ञामाजीवनं वृत्ति: = वर्तनं यस्य स तस्य षष्ठांशवृत्ते:, एष: = पूर्ववाक्यत्रयोपेत: अविश्रान्तिलक्षण: धर्म: प्रजापरिपालनात्मक अस्ति = विद्यते।

अर्थात्—लोकरक्षायै भगवान् भास्कर: युगादावेकवारमेव स्वरथे नियुक्ततुरङ्गमोऽद्य यावत् भ्रमत्येव। न तदश्वा: कदापि रथाद् वियुज्यन्ते, न कदापि विश्राम्यन्तीति भाव:। विश्वप्राणधारको वायु: अहोरात्रं प्रवहत्येव, न कदापि विश्राम्यति, एवं शेषनागोऽपि सर्वदैव शिरो धृतधरित्रीमण्डल: तिष्ठति न कदापि स्वाधिकारात् क्षणमपि विरमति। प्रजोपार्जितधनादित: षष्ठभागाधिकारिणो राज्ञोऽपि प्रजापालनेऽविश्राम: आवश्यक-कर्तव्यो विद्यते। राजा हि प्रजाभ्यस्तदुपार्जितधनादे: षष्ठं भागं कररूपेण गृह्णाति। एवं च राज्ञां प्रजापालनात्मकं स्वीयं कर्तव्यमनुतिष्ठतां क्षणमात्रमपि विश्रामस्यावसरोऽपि न भवतीति युक्तमेव। महाराजो दुष्यन्त:, धर्मासनादुत्थिताय विश्रामं करोति। अत: तस्मै इदानीमेव महर्षिकण्वशिष्यस्यागमनं नूनं निवेदयितुमुत्सहे इत्यर्थ:। अत्र-मालाप्रति-वस्तूपमा-अप्रस्तुतप्रशंसा-श्रुत्यनुप्रासपरिसंख्यालङ्कारा इन्द्रवज्राछन्दश्च ॥ ४ ॥

---

नहीं लेता और शेषनाग भी हमेशा भूमि के भार को अपने शिर पर धारण किये ही रहते हैं, वे भी उससे कभी विश्राम नहीं पाते। इसी प्रकार प्रजा से छठे भाग के लेने के अधिकारी राजा को भी प्रजापालन में सदा उद्यत रहना ही धर्म है ॥ ४॥

**विशेष**—अनतिपात्यम्—शब्द के द्वारा कञ्चुकी यह कहना चाहता है कि धार्मिक कार्यों के सम्पादन में राजा को विलम्ब नहीं करना चाहिए। तपस्वी, ऋषि, मुनि और विद्वानों का समादर एवं सत्कार भी धार्मिक कार्य है। अत: महर्षि कण्व के शिष्यों की बात सुनना अत्यावश्यक धर्म-कार्य है। उनसे न मिलना धर्म की हानि है। राजा को विश्राम करना भी आवश्यक है। फिर भी कर्तव्य भावना से ऊँचा है। इसलिए कञ्चुकी निर्णय करता है कि राजा के विश्राम में बाधा डालना ही उचित है। क्योंकि लोकप्रधान शासन में विश्राम कहाँ? धर्म शब्द न्याय के लिए आता है। धर्मासन का अर्थ है न्याय करने का आसन। अत: धर्मासन या न्यायासन एक ही चीज है।

सृष्टि के आरम्भ में भगवान् सूर्य के सात रंग के सात घोड़े उनके रथ में एक बार जोते गये, जो निरन्तर लगे हुये हैं। अब तक न तो सूर्य को ही विश्राम करने का एक क्षण भी मिला, न उनके घोड़े ही खोले गये। राजा को षष्ठांशवृत्ति इसलिए कहा जाता है कि वह प्रजा को रक्षा करने के बदले उसके अनाज का छठा भाग कर के रूप में लेता है।

यावन्नियोगमनुतिष्ठामि। ( परिक्रम्यावलोक्य च ) एष देवः।
**प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवतेऽशान्तमना विविक्तम्।**
**यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः॥ ५॥**

---

यावत् = प्रथमं नियोगं = कर्तव्यं कण्वशिष्यागमननियोगम् अनुतिष्ठामि = करोमि ( परिक्रम्य = मण्डलाकारं भ्रमित्वा, अवलोक्य = दृष्ट्वा च ) एषः = समक्षम् देवः = महाराजा दुष्यन्तः।

अथ राजानमवलोक्य तस्य तात्कालिकोमवस्थां वर्णयन् कञ्चुकी कथयति—एष देवः **प्रजाः प्रजाः स्वा इवेति।**

अन्वयः—एष देवः स्वाः प्रजाः इव प्रजा तन्त्रयित्वा अशान्तमना द्विपेन्द्रः दिवा यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः सन् शीतं स्थानमिव विविक्तं निषेवते।

महर्षेः कण्वस्य शिष्यादीनामागमनं निवेदयितमुपस्थितः कञ्चुकी धर्मासनादुत्थाय रहसि विश्रामं कुर्वतो राज्ञो दुष्यन्तस्य तात्कालिकीमवस्थां वर्णयति—**प्रजाः प्रजा इति।** एष देवः = अयमस्माकं महाराजो दुष्यन्तः स्वाः = स्वकीयाः प्रजाः = अपत्यानि इव प्रजाः = स्वीयप्रजाजनान् तन्त्रयित्वा = संव्यवहार्य, स्वं स्वं कार्यं कारयित्वा यद्वा विवादशमनादिभिः संरम्य अत एव। शान्तमनाः शान्तं=अनुद्विग्नं मनः = चित्तं यस्य स शान्तमना न शान्तमना अशान्तमनाः = धर्मेण प्रजापालनरूपकर्तव्यसम्पादनात् अव्यग्रचित्तः द्विपेन्द्रः = गजयूथाधिपः दिवा = दिवसे, मध्याह्ने यूथानि = गजसमूहान् संचार्य = चारयित्वा, आहारविहारादिषु व्यापार्य अत एव रविप्रतप्तः = सूर्यकिरणसन्तापातिपीडितः शीतं = प्रच्छायशीतलं स्थानमिव विविक्तं = विजनं स्थानमिव निषेवते = भजते, विश्रामयोग्ये विजने स्वैरमुपविशतीत्यर्थः।

अर्थात् एष महाराजो दुष्यन्तो न्यायासनादुत्थाय एकान्ते स्वैरमुपविष्टोऽस्ति। यथा गजराजः आहाराद्यन्वेषणार्थं गजवृन्दं संचार्य मध्याह्ने सूर्यतापम् असहिष्णुः सन् प्रच्छाय शीतले प्रदेशे किञ्चित्कालं विश्रम्य पुनः स्वकीयं यूथं सञ्चारयति तथैवायमपि महाराजो दुष्यन्तः प्रजाकार्यकरणपरिश्रान्तः सन् विश्रमार्थं क्षण तिष्ठति विश्रान्तश्च भूयोऽपि

---

पहले अपने कर्तव्य का पालन करूँ **( घूम कर और सामने देख कर )** ये महाराज विराज रहे हैं—

अपने पुत्र की तरह प्रजाओं का पालन और नियमन करके शान्त मन हो अब उसी प्रकार एकान्त का सेवन कर रहे हैं जैसे गजयूथों का यथावत् सञ्चालन कर सूर्य के सन्ताप से सन्तप्त हो यूथपति गजराज शीतल गिरिगुफा का सेवन करता है। अर्थात् राजदरबार से आकर अब एकान्त में आराम कर रहे हैं॥ ५॥

**विशेष**—इस पद्य के द्वारा राजा और प्रजा के मधुर सम्बन्ध को व्यक्त किया गया है। प्राचीन काल में भारतीय राजा अपनी सन्तति की तरह प्रजा का पालन करते थे। राजा का व्यवहार प्रजा के प्रति आत्मीयतापूर्ण था। जिससे वे उनके सुख-दुःख मे सदा तत्पर रहते थे।

'द्वाभ्यां मुखशुण्डाभ्यां पिबतीति द्विपः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार हाथी पहले सूँड़ से पानी उठाता है फिर मुँह से पीता है। इसलिए उसे द्विप कहा गया है। द्विपों के राजा को द्विपेन्द्र कहते हैं। इस पद्य में राजा को गजराज की तरह, प्रजा को गजसमूह की भाँति और राज्य-सञ्चालन गजसमूह के सञ्चालन की भाँति बतलाया गया है।

( उपगम्य ) जयतु जयतु देवः। एते खलु हिमगिरेरुपत्यकारण्यवासिनः कण्वस्य संदेशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विनः संप्राप्ताः श्रुत्वा देवः प्रमाणम् ।

**राजा**—( सादरम् ) किं काश्यपसंदेशहारिणः !

**कञ्चुकी**—अथ किम् ।

**राजा**—तेन हि मद्वचनाद्विज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव [1]प्रवेशयितुमर्हति इति । [2]अहमप्यत्र तपस्विदर्शनोचिते प्रदेशे स्थितः प्रतिपालयामि ।

---

स्वधर्मं प्रजापालनकार्यं करिष्यतीति भावः । अत्रोपमानुप्रासयोः संसृष्टिरलङ्कारः वृत्तञ्चोपेन्द्रवज्रा ॥ ५ ॥

( उपगम्य = राजान्तिकमुपसृत्य ) जयतु = सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व, जयतु सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व देवः = महाराजः । एते=इमे खलु हिमप्रधानो गिरिः हिमगिरिः तस्य हिमगिरेः= हिमालयस्य = उपत्यकारण्यवासिनः उपत्यकारण्यं = पर्वतासन्नभूमिमवनम् तत्र वसितुं शीलं येषां ते उपत्यकारण्यवासिनः = सस्त्रीकाः = गौतमी–शकुन्तलासहिताः तपस्विनः = तापसाः कण्वसन्देशं = काश्यपवचनम् आदाय = गृहीत्वा संप्राप्ताः = आगताः सन्ति । श्रुत्वा = आकर्ण्य देवः महाराजः प्रमाणम् = प्रमाता यथोचितं विधातुं शक्तः । सन्देशश्रावणमात्रं ममाधिकारः भविष्यत्कर्तव्यनिर्णये भवानेव प्रभुः, न मम किञ्चित्तत्रानुरोध इति भावः ।

**राजा**—( सादरं = आदरेण सह ) किं कण्वसन्देशहारिणः ? कश्यपस्य वार्तावाहकाः ?

**कञ्चुकी**—अथ किम् = आम् ।

**राजा**—दुष्यन्तः स्वकर्तव्यमादिशति तेन = तस्मात् कारणात् हि मम वचनम् = मत्सन्देशात् सोमरातः उपाध्यायः = सोमरातोपाध्यायः तन्नामकः कुलपुरोहितः विज्ञाप्यतां = सूच्यताम् श्रौतेन = वैदिकेन विधिना = रीत्या अमून्=तान् स्वयं स्वयमेव-आत्मन्येव सत्कृत्य = पूजयित्वा प्रवेशयितुं=मत्समीपे समुपस्थापयितुमर्हति भवान् इति । अहमपि = स्वयमपि तपस्विदर्शनोचिते तपस्विनां = तापसानां दर्शनस्य = मिलनाय उचिते = समी-

---

**( पास में जाकर )** महाराज की जय हो। हिमालय की तराई के जंगल में निवास करने वाले महर्षि कण्व के सन्देश को लेकर स्त्रियों के साथ लिए हुए तापस लोग आये हुए हैं। आपकी जैसी आज्ञा हो वैसा किया जाय।

**विशेष**—संस्कृत में पर्वत की निचली भूमि को उपत्यका और हिन्दी में पर्वत की तराई कहते हैं। वैसे ही संस्कृत में पर्वत के ऊपरी भाग को अधित्यका एवं हिन्दी में पठार भी कहते हैं। यहाँ कञ्चुकी का कहना है कि महाराज ! मैंने आपके आराम में बाधा नहीं डाली है, बल्कि विवश होकर आपके धर्म की रक्षा के लिए तापसों के आने की सूचना दे दी है।

**राजा**—( सम्मान के साथ ) क्या महर्षि कण्व का सन्देश लाने वाले हैं ?

**कञ्चुकी**—जी, हाँ !

**राजा**—तो उपाध्याय सोमरात से मेरा सन्देश कहना कि इन तपोवनवासियों का सत्कार

---

पाठा०—१. प्रवेशयितुमर्हसीति । २. अहमप्येतांस्तपस्विदर्शनोचिते ।

**कञ्चुकी**—यदाज्ञापयति देवः। ( इति निष्क्रान्तः )।

**राजा**—( उत्थाय ) वेत्रवति ! अग्निशरणमार्गमादेशय।

**प्रतिहारी**—इदो इदो देवो। [ इत इतो देवः। ]

**राजा**—( परिक्रामति। अधिकारखेदं निरूप्य ) सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तुः। राज्ञा तु चरितार्थता दुःखान्तरैव।

---

चीने प्रदेशे = स्थाने, यज्ञशालायां स्थितः = वर्तमानः सन् प्रतिपालयामि = प्रतीक्षे। तथा चोक्तम्।

'अग्न्यागारगतः कार्यं पश्येद्वैद्यतपस्विनाम्।
पुरोहिताचार्यसखः प्रत्युद्गम्याभिवाद्य च ॥'

**कञ्चुकी**—यत्=यथा आज्ञापयति=आदिशति देवः = महाराजः ( इति=एवमुक्त्वा= कथयित्वा निष्क्रान्तः = रङ्गभूमितो बहिर्गतः )

**राजा**—( उत्थाय ) वेत्रवति = यष्टिधारिणि ! प्रतिहारि ! अग्निशरणमार्गं=अग्न्यागारमार्गं यज्ञशालापन्थानम् आदेशय = प्रदर्शय।

**प्रतिहारी**—इत इतो देवः = अनेन पथा श्रीमान् आगच्छतु। प्रतिहारी लक्षणं यथा—

'सन्धिविग्रहसंबद्धं नानाकार्यसमुत्थितम्।
निवेदयन्ति याः कार्यं प्रतिहार्यस्तु ताः स्मृताः ॥'

**राजा**—( दुष्यन्तः परिक्रामति—मण्डलाकारं गच्छति, अधिकारस्य = नियोगस्य

---

वैदिक रीति से करके स्वयं अन्दर लायें। मैं भी तपस्वियों से मुलाकात करने योग्य इस स्थान में रह कर प्रतीक्षा करता हूँ।

**विशेष**—यहाँ कण्वाश्रमवासी तपस्वियों के वैदिक-रीति से सत्कार करने के निमित्त उपाध्याय सोमरात को कहने का तात्पर्य है कि जो जिस स्थिति का हो, उसे उसी स्थिति वालों के द्वारा सत्कार होना उचित है। मनुस्मृति के अनुसार जो वेद का एक भाग या वेद के अङ्ग को जीविका के लिए पढ़ाता है, उसे उपाध्याय कहते हैं—

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥ २।१४१

हिन्दू-धर्म के अनुसार वैदिक ब्राह्मण एक यज्ञशाला बनाकर यज्ञशाला का विधिवत् संस्कार करके गार्हपत्य, दाक्षिणात्य और आहवनीय इन तीन अग्नियों की स्थापना कर उनमें प्रतिदिन हवन-कर्म किया करते हैं। इसी प्रकार राजा भी राज्यकार्य की व्यग्रता से समय न पाकर इसके निमित्त पुरोहित की नियुक्ति कर देता है। समय-समय पर तपस्वी आदि पवित्र चरित्रवाले व्यक्तियों से राजा अपने पुरोहित या आचार्य के साथ-साथ अग्निशाला में ही मिलता है, जैसा कि शास्त्रों में निर्देश है—

अग्न्यागारगतः कार्यं पश्येद् वैद्यतपस्विनः।
पुरोहिताचार्यसखः प्रत्युद्गम्याभिवाद्य च ॥

**कञ्चुकी**—महाराज की जैसी आज्ञा ( **चला जाता है** )।

**राजा**—( **उठकर** ) द्वारपालिके ! यज्ञशाला का रास्ता दिखाना।

**प्रतिहारी**—महाराज ! इधर से चलें, इधर से चलें।

**राजा**—( **घूमता है, कर्तव्य की खिन्नता का अभिनय कर** ) सभी प्राणी अपनी

V.P. औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेनम् ।
नातिश्रमापनयनाय [1]न च श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् ॥ ६॥

खेदं = कष्टम् अधिकारनियोगं = राज्यकार्यंकारणात् परिश्रमम्, निरूप्य अभिनीय, नाटयित्वा ) सर्वः = सकलः, जन्तुः = जीवः प्रार्थितम् = अभीष्टं स्वामिलषितम्, अर्थं = वस्तु अधिगम्य = लब्ध्वा, ईप्सितं पदार्थं प्राप्य सुखी = सन्तुष्टः सम्पद्यते = भवति । सर्वेषामेव स्वेष्टसिद्धौ सुखसम्पत्तिर्जायते इत्यर्थः । राज्ञां = प्रजापालनाधिकृतानां नृपाणां तु चरितार्थता = अभीष्टसिद्धिः इष्टलाभः, राज्यप्राप्तिः, दुःखमुत्तरं यस्याः सा दुःखान्तरता = दुःखमात्रसारैव । न्यूनसुखा = अधिकदुःखा च । अथवा चरितार्थता = अभीष्टार्थलाभजनितं सुखं दुःखान्तरा = दुःखान्तरावकाशसंपादिका । राज्ञां सुखमपि दुःखबहुलमेव भवतीति भावः । उक्तमर्थमुपपादयति—औत्सुक्यमात्रेति ।

अन्वयः—प्रतिष्ठा औत्सुक्यमात्रम् अवसादयति, लब्धपरिपालनवृत्तिः एनं क्लिश्नाति, स्वहस्तधृतदण्डम्, आतपत्रमिव राज्यम्, अतिश्रमापनयनाय न, श्रमाय च न ( भवति ) ।

उक्तमर्थमेवोपपादयति राजा दुष्यन्तः—औत्सुक्यमात्रमिति । प्रजापालनाधिकृतानां मादृशानां नृपाणां तु प्रतिष्ठा—सर्वोत्कृष्टं गौरवम्, औत्सुक्यमात्रम्=औत्सुक्यमेव औत्सुक्यमात्रम्–अशेषमुत्कृष्टाम् अवसादयति = समापयति, समाप्तिं नयति लब्धस्य = प्राप्तस्य फलस्य यत् परितः सर्वतोभावेन पालनं=रक्षणम् तत्र या वृत्तिः = व्यापारश्चेति लब्धपरिपालनवृत्तिः, एनं = नृपम्–क्लिश्नाति = पीडयति, क्लेशं जनयत्येव । राज्यप्रतिष्ठाजन्य सुखं राज्यपरिपालने दुःखं निवारयितुं न शक्नोति । राज्यस्य फलम् इच्छाविनोदमात्रम्, परं तद्रक्षणवर्द्धनादौ भूयान् प्रपञ्चः महानायासोऽपि भवति । यावत् सुखं राज्ये नास्ति, तावत्तत्र राज्यरक्षणे दुःखमेवेति भावः । स्वहस्ते = निजकरकमले धृतः = स्थापितः दण्डः = अवष्टम्भयष्टिविशेषः यस्य तत् स्वहस्तधृतदण्डम्—स्वकरतलकलितदण्डम् आतपात् त्रायते इत्यातपत्रम् = छत्रमिव राज्यम् अतिश्रमापनयनाय = श्रमाणामत्यपनयनाय, सर्वथा श्रमनिवारणाय न, श्रमाय च न = अतिश्रमाय च न । राज्ये यथा श्रमः तथा न सुखम्, नैव विश्रान्तिश्चेत्यर्थः ।

अभीष्ट वस्तु को पाकर सुखी हो जाते हैं, किन्तु राजाओं को तो अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति भी दुःखप्रद ही होती है । क्योंकि—

राज्य की प्राप्ति से जो प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, वह तो केवल मनुष्य की उच्च आकाङ्क्षा मात्र को ही शान्त करती है, किन्तु राज्य की रक्षा करना तो बड़ा ही कठिन एवं कष्टप्रद है । जैसे मनुष्य को छतरी से जितना सुख नहीं होता, उससे अधिक कष्ट उसकी डण्डो हाथ में पकड़े रहने से होता है । उसी प्रकार राज्य भी जितना सुख नहीं देता उससे अधिक परिश्रम और कष्ट ही देता है ॥६॥

**विशेष**—राज्यग्रहण करने वालों को जहाँ अधिकार मिलता है वहाँ कर्तव्य के कारण कष्ट भी उठाना पड़ता है । जैसे छाते के दण्ड को पकड़े रहने से परिश्रम ही ज्यादा होता है, उसकी अपेक्षा छाते से मनुष्य को सुख कम मिलता है, वैसे ही राज्य की प्राप्ति से जितना सुख नहीं मिलता उससे अधिक चिन्ता, कष्ट और परिश्रम ही होता है । इस प्रकार छाता जहाँ धूप आदि कष्ट से बचाता है

पाठा—१. यथा श्रमाय ।

( नेपथ्ये )

**वैतालिकौ**—विजयतां देवः ।

**प्रथमः**—

**स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः**
**प्रतिदिनमथवा ते [1]वृत्तिरेवंविधैव ।**
**अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं**
**शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ॥ ७ ॥**

**अयं भावः**—यथा पथिकैः स्वहस्ते ध्रियमाणं छत्रं तेषां केवलमातपदुःखं दूरीकरोति न च सर्वथा श्रमापनयनं विद्यते तथैव धृतदण्डेन राज्ञा परिपालितं राज्यं क्लेशसंमिश्रं सुखं जनयति । तस्मादुत्कण्ठानिवृत्त्यवसानमेव राज्यतन्त्रम्, नातिसुखम्, नातिदुःखमिति तत्त्वम् । अत्राऽप्रस्तुतप्रशसा-काव्यलिङ्ग विरोधाभासोपमालङ्कारा: वसन्तलिकाछन्दश्च ॥ ६ ॥

अथावसरप्राप्तं वैतालिकवचनं दिदर्शयिषुराह—नेपथ्ये = जवनिकायाम् वैतालिकौ द्वौ चारणौ वन्दिनौ आहतुः—विजयतां देवः = महाराजः उत्कर्षं लभतां सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व । वैतालिकलक्षणं भावप्रकाशे—

'तत्तत्प्रहरकयोग्यैः रागैः तत्कालवाचिभिः श्लोकैः ।
सरमसमेव वितालं गायन् वैतालिको भवति ॥'

नृपतेर्दौर्मनस्यं दूरीकर्तुमधिकृतयोरवसरज्ञयोः वैतालिकयोः राजानमेवं स्तौति—**स्वसुखेति ।**

**अन्वयः**—स्वसुखनिरभिलाषः ( त्वं ) प्रतिदिनं लोकहेतोः 'खिद्यते' अथवा ते वृत्तिः एवंविधैव ( अस्ति ) हि पादपः मूर्ध्ना तीव्रम् उष्णम् अनुभवति छायया आश्रितानां परितापं शमयति ।

अथावसरज्ञयोः राज्ञो दुष्यन्तस्य दौर्मनस्यं दूरीकर्तुमधिकृतयोर्वैतालिकयोरेको राज्ञः सामान्यजनाद व्यतिरेकं वर्णयति—**स्वसुखेति ।** हे राजन् स्वस्य स्वस्मिन् वा यत् सुखे = आनन्दे निरभिलाषनिस्पृहः इति स्वसुखनिरभिलाषः = स्वसुखेच्छारहितः त्वं प्रतिदिनं = प्रत्यहं, सर्वदा, लोकहेतोः = जनकल्याणाय खिद्यसे = क्लेशमनुभवसि । सर्वोऽपि जनः पर-

---

वहाँ दण्डा पकड़े रहने मे तकलीफ भी होती है। उसी प्रकार राज्य भी सुख से दुःखदायी है। राज्य की रक्षा में अधिक कष्ट उठाना पड़ता है। राज्य में सुख ही सुख है, यह सोचकर उसमें सर्वदा आसक्त नहीं होना चाहिए ।

यहाँ दण्ड का दो अर्थ है—एक दण्ड=न्याय की व्यवस्था है और दूसरा दण्ड छाते का डण्डा । उच्चपद पर पहुँचने की उत्सुकता सभी को होती है, पर पद की प्राप्ति के बाद उत्सुकता शान्त हो जाती है, क्योंकि कर्तव्य पालन में कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं तथा सुख दुर्लभ हो जाता है।

**( नेपथ्य में )**

**दोनों वैतालिक**—महाराज की जय हो ।

**प्रथम**—पहला चारण कहता है—

**महाराज !** आप तो अपने सुख की इच्छा किए विना केवल लोकोपकार के लिए ही प्रतिदिन परिश्रम एवं कष्ट उठाते हैं । अथवा आपका जन्म ही इस कार्य के लिए है, क्योंकि वृक्ष अपने शिर-

---

पाठा०—१. सृष्टिरेवंविधैव ।

द्वितीयः—नियमयसि [1]कुमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय ।

सुखदुःखनिरपेक्षः केवलमात्मसुखसम्पादनायैव विद्यते, प्रत्युत भवांस्तु स्वसुखमनपेक्षमाणः सर्वदा प्रजाजनकल्याणार्थमेव परिश्राम्यसीति भावः । अथवा यद्वा त्वमिच्छापूर्वमेवं करोषीति न ते=तव राज्ञः वृत्तिः=वर्तनं, व्यापारः एवंविधा=ईदृशी परोपकारार्थमेव स्वधर्मानुष्ठाने का प्रशंसेति भावः । तत्र दृष्टान्तमाह—हि=यतः पादपः=पादपैः चरणैः पिबतीति पादपः=वृक्षः यद्वा । पक्षान्तरे-पादान्=चरणशरणागतान् पाति रक्षतीति पादपो भवान् मूर्ध्ना=मस्तकेन, अग्रभागेन तीव्रं=प्रचण्डं उष्णं=मध्याह्नसंभवमातपं घर्मं अनुभवन्ति सहते संश्रितानां=शरणागतानां तापं=आतपादिसमुत्थं क्लेशं छायया-अनातपेन शमयति=हरति लंघयति, दूरीकरोति वा ।

अर्थात्—पादपस्य पार्थकानां छायादानेनातपसन्तापदूरीकरणमिव स्वसुखनिरपेक्षपरसुखसम्पादकस्य निरन्तरप्रजापरिपालनक्लेशमनुभवतो भवतोऽपि स्वराज्ये निवसतां प्रजाजनानां सर्वाङ्गीणसुखसम्पादनमेव धर्मं इति भावः ।

अत्र समासोक्ति-स्वभावोक्ति-काव्यलिङ्ग-दृष्टान्तआक्षेपानुप्रासा अलंकाराः मालिनीवृत्तं च ॥ ७ ॥

द्वितीयः—द्वितीयो वैतालिकः राज्ञो लोकोत्तरं कर्तव्यं तत्फलं वर्णयन्नाह—नियमयसीति ।

अन्वयः—आत्तदण्डः (सन्) कुमार्गप्रस्थितान् नियमयसि, विवादं प्रशमयसि,

पर सूर्य के प्रखर प्रताप=सन्ताप को सहन कर के भी अपने आश्रितों का सदा अपनी छाया से सन्ताप दूर करता रहता है ॥ ७ ॥

**विशेष**—उचित समय की सूचना देने के साथ-साथ वैतालिक, राजाओं की स्तुति करने वाले बन्दी, चारण या भाट को कहते हैं । वैतालिक का लक्षण भावप्रकाश में इस प्रकार किया गया है—

तत्तत्प्रहरकयोग्यै रागैस्तत्कालवाचिभिश्श्लोकैः ।
सरसममेव वितालं गायन् वैतालिको भवति ॥

वैतालिक शब्द की व्युत्पत्ति दो तरह से की जाती है—'विविधः तालः वितालः वितालः प्रयोजनं यस्य स वैतालिकः या, वितालं=वितालगानं शिल्पमस्येति वैतालिकः ।

वैतालिक राजा की मनःस्थिति भाँपकर उससे मेल खाने वाली ही बात इस पद्य में बताते हुए कहता हैं कि जैसे वृक्ष की उत्पत्ति ही परोपकार के लिए है वैसे ही राजा=आपका भी जन्म प्रजा-पालन रूपी परोपकार के लिए ही है । अतः इस कार्य में खेद नहीं करना चाहिए, क्योंकि ईश्वर ने राजाओं की यही स्वाभाविक वृत्ति बनाई है । यहाँ वृक्ष की तुलना उस राजा से की गई है, जो हमेशा अपने आश्रित व्यक्तियों को अपनी सन्तान के समान पोष्य समझ कर उसकी रक्षा में तत्पर रहता है । जैसे छाते के डण्डे को पकड़े रहने में परिश्रम अधिक होता है, उसकी अपेक्षा मनुष्य को सुख कम ही मिलता है वैसे राज्य की प्राप्ति से जितना उससे सुख नहीं मिलता उससे अधिक चिन्ता मिलती है ।

**दूसरा वैतालक—**

महाराज ! आप अपने हाथ में राजदण्ड धारण कर कु-मार्ग पर चलने वाले दुष्टों का नियमन=

पाठा०—१, विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः ।

अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् ॥ ८ ॥

---

रक्षणाय कल्पसे, विभवेषु अतनुषु ( सत्सु ) ज्ञातयः नाम सन्तु प्रजानां बन्धुकृत्यं तु त्वयि परिसमाप्तम् ।

राज्ञो लोकोत्तरं कर्तव्यं तथाविधं च तत्फलं वर्णयन्नाह—द्वितीयो वैतालिकः—**नियमयसीति** । आत्तः = गृहीतो दण्डः = दुष्टमनाधिकारः शासनं येन स आत्तदण्डः यथापराधदण्डेनेत्यर्थः, कुमार्गे प्रस्थितान् कुमार्गे = धर्मशास्त्रादिविरुद्धे मार्गे प्रस्थितान् = प्रस्थातुमुद्यतान् नियमयसि = निरुध्य पुनः सुमार्गे स्थापयसि । यथा गोपालने परक्षेत्रेषु सस्यादिभक्षणप्रवृत्तानां गवां वारणं क्रियते तथैव गृहीतदण्डेन भवतापि दुर्वृत्ते प्रवृत्तान् वारयसीति भावः । तथा चोक्तं राज्ञा दण्डविषये—

'तदर्थं सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत् परमेश्वरः ॥
स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तिः स्यादुग्रदण्डश्च शत्रुषु ।
सुहृत्सु तिलस्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ॥'

विवादं = परस्परकलहं प्रशमयसि = वारयसि ये भूयो भूमिदाराद्रव्यादिषु विषयेषु विवादं विदधते तेषां विवादं धर्मज्ञैः सह व्यवहारदर्शनात् प्रशमयसीति भावः । **रक्षणाय** = प्रजानां परिपालनाय कल्पसे प्रभवसि, दैवीः मानुषीर्वाऽपदो निवारयन् प्रजानां परिपालनं कुरुषे । विभवेषु = धनादिषु अतनुषु = बहुलेषु ज्ञातयः = बान्धवाः सन्तु = भवन्तु नाम तु = परन्तु प्रजानां = जनानां बन्धुकृत्यं = बान्धवकर्तव्यम् त्वयि = भवति परिसमाप्तं = निष्पन्नं भवति । प्रजासु धनिनां धनस्य बान्धवा धनाधिकारिणी भवन्तु नाम तासां प्रजानां बन्धुकृत्यं = पालनावेक्षणादिकं तु भवानेव करोतीत्यहो ! भवतो निष्कारणोपकारप्रवणता ।

**अयं भावः**—विभवे सत्येव ज्ञातयो बन्धुभावं दर्शयन्ति स्ववैभवमुपभुञ्जते च परं भवांस्तु प्रजानां वैभवमनपेक्ष्य तासां विनेतृत्वात् पिता, कलहशमनात् सुहृत्, रक्षणात् पुत्रश्चासीति सत्यमेव प्रजानां वास्तविको बन्धुरसीति भावः ।

अत्र—काव्यलिङ्ग-कारकदीपक व्यतिरेकालङ्काराः मालिनी वृत्तं च ॥ ८ ॥

---

शासन करते हैं, उनका झगड़ा शान्त करते हैं और प्रजा की रक्षा के लिए सदा सन्नद्ध ही रहते हैं। जिनके पास अधिक धन है, ऐसे लोगों के लिए उनके बन्धु-बान्धव भले ही काम आते हों, किन्तु साधारण जनता के बन्धु-बान्धवों का कर्तव्य = रक्षा आदि तो केवल आप ही से होता है ॥ ८ ॥

**विशेष**—हिन्दू धर्मशास्त्रों में राज-व्यवस्था के अनुसार कुमार्गगामी व्यक्ति राष्ट्र का शत्रु माना गया है । उसके प्रति राजा का उग्रदण्ड से उसका नियमन करना राजधर्म बतलाया गया है—'उग्रदण्डश्च शत्रुषु' । अधिक धन रहने पर पराये भी अपना बन जाते हैं और निर्धन होने पर अपने भी पराये बन जाते हैं, किन्तु राजा प्रजा का सच्चा बन्धु हैं, वह हमेशा कारणनिरपेक्ष होकर प्रजा का पालन-पोषण करता है । बन्धु का कार्य है विपत्ति में सहायता पहुँचाना, आपस में उत्पन्न कलह को निपटाना तथा असन्मार्ग पर जाने से रोकना आदि । द्वितीय चारण का कहना है कि महाराज ! आपके द्वारा प्रजाओं के बन्धुओं के समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं । भाई-बन्धु तो पैसे वालों के साथी होते हैं, किन्तु आप तो जनता के सच्चे भाई-बन्धु हैं ।

राजा—एते क्लान्तमनसः पुनर्नवीकृताः स्मः। ( इति परिक्रामति )

प्रतीहारी—एसो अहिणवसम्मज्जणसस्सिरीओ सण्णिहिदहोमधेणू अग्गिसरणालिंदो। आरुहदु देवो। [ एषोऽभिनवसंमार्जनसश्रीकः संनिहितहोमधेनुरग्निशरणालिन्दः। आरोहतु देवः ! ]

राजा—( आरुह्य परिजनांसावलम्बी तिष्ठति ) वेत्रवति किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशमृषयः प्रेषिताः स्युः।

---

राजा—वैतालिकयोः वचनाभ्यां स्वक्लेशस्य धर्म्यत्वं साफल्यं चाकलयन् ब्रवीति—एते = वयं क्लान्तानि = श्रान्तानि मनांसि = चित्तानि येषां ते क्लान्तमनसः = क्लान्तिमनुभवन्तः नवीकृताः = उत्साहिताः, व्यपगतखेदाश्च कृताः पुनरपि स्वकार्यंकरणस्य पर्युत्सुकाः स्म इति भावः ( इति = एवमुक्त्वा परिक्रामति = मण्डलाकारं गच्छति )।

प्रतिहारी—अभिनवं = नूतनं यत् संमार्जनं = स्वच्छता तेन सश्रीकः = सशोभः इति अभिनव सम्मार्जसश्रीकः सन्निहिता—आसन्ना होमधेनुः। हवनार्था = धेनुः सकृत् प्रसूता गौः यत्र स सन्निहितहोमधेनुः। अग्निशरणस्य यज्ञशालाया आलिन्दः=बहिः द्वारि प्रकोष्ठः इति अग्निशरणालिन्दः, देवः = महाराजः आरोहतु = आरुह्योपविशतु।

राजा—( आरुह्य = आलिन्दस्योपरि आगत्य परिजनस्य = भृत्यस्य, द्वारपालिकाया अंसावलम्बी = स्कन्धाश्रित इति परिजनांसावलम्बी तिष्ठति = उपविशति ) किं निमित्तमेषां मुनीनामागमनमिति विकल्पयन् राजा पृच्छति—वेत्रवति = हे यष्टिधारिणि द्वारपालिके किं कार्यमुद्दिश्य = लक्ष्यीकृत्य भगवता = श्रीमता काश्यपेन = काश्यपगोत्रोत्पन्नेन महर्षिणा कण्वेन मत्सकाशं = मम समीपे ऋषयः = मुनयः प्रेषिताः = प्रहिताः स्युः = सम्भाव्यन्ते ?

---

राजा—इनकी इस प्रकार प्रोत्साहन देने वाली उक्ति सुनकर तो राज्यकार्य से परिश्रान्त होते हुए भी मैं पुनः उत्साहित हो गया हूँ ( **घूमते हैं।** )

**प्रतिहारी**—महाराज ! अभी-अभी तत्काल झाड़ू देने से साफ, सुपरिष्कृत और बँधी हुई होमधेनु से सुशोभित यज्ञशाला का यह अलिन्द = द्वार के बाहर का चबूतरा है, महाराज इस पर विराजमान हों।

**विशेष**—हवन के लिए दूध देने वाली गाय को कामधेनु कहते हैं। उसका दूध अत्यन्त पवित्र माना जाता है और सोम में मिलाकर देवताओं को अर्पित किया जाता है। कामधेनु का घी हवनीय द्रव्य में डालकर होम किया जाता है और उपयोगिता की दृष्टि से गौ रुद्रों की माता और प्रजापति ब्रह्मा की पुत्री मानी जाती है—'माता रुद्राणां'। अग्नि का शरण = आधार होने के कारण यज्ञशाला को अग्निशरण भी कहते हैं। अग्निशाला के बाहरी दरवाजे के चबूतरा या बरामदा को अलिन्द कहा जाता है।

**राजा—( चबूतरे पर चढ़कर किसी राज-पुरुष के कन्धे पर हाथ रखकर खड़े होकर )** हे द्वारपालिके ! बता तो सही, पूज्यपाद महर्षि कण्व मुनि ने इन तपस्वियों को मेरे पास किस लिए भेजा होगा ?

किं तावद्व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम् ।
आहोस्वित्प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा-
मित्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः ॥ ९ ॥

महर्षिकण्वद्वारात्मनः समीपे मुनीनां प्रेषणं कारणं सम्भावय राजा-विचारयति—**किं तावदिति ।**

**अन्वयः**—उपोढतपसां व्रतिनां तपः विघ्नैः दूषितं किं तावत् ! उत धर्मारण्यचरेषु प्राणिषु केनचित् असत् चेष्टितम्, आहोस्वित् वीरुधां प्रसवः मम अपचरितैः विष्टम्भितः ? इति आरूढबहुप्रतर्कं मे मनः अपरिच्छेदाकुलम् ( अस्ति ) ।

कुलपतेः कण्वस्य सन्देशमादाय समागतानां सस्त्रीकानां मुनीनामागमनं निशम्य किमर्थमेते ऋषयः समागता—इति निश्चेतुमपारयन् राजर्षिः दुष्यन्तो विकल्पयति—**किं तावदिति ।** उपोढानि = अधिकानि तपांसि = तपस्याः ये ते तेषाम् उपोढतपसां = अतिप्रवृद्धतपोऽनुष्ठानानां यज्ञादिषु दीक्षितानां व्रतिनां = यमनियमवतां मुनीनाम् तपः = तपोव्रतादिकमं विघ्नैः = विघ्नकर्तृभिः राक्षसादिभिः दूषितं = विघ्नितम्, किं तावत् = किमु ? उत = अथवा धर्म्याणि = धर्मार्थानि धर्मकर्मसम्पादनार्थानि अरण्यानि = वनानि तत्र चरन्ति वर्तन्ते इति धर्मारण्यचरेषु = तपोवनविहारिषु प्राणिषु जीवेषु, मृगादिषु श्वापदेषु केनचित् = पामरेण असत् = अनुचितम्, चेष्टितम् = आचरितम् किम् ? आहोस्वित् = किंस्वित् अथवा यद्वा मम = अयाचितैः = ममाज्ञातैः कुकृत्यैः वीरुधां = लतादीनां प्रसवः = प्रजननसम्पत्, फलोत्पादनशक्तिः पत्रपुष्पफलादिसमुत्पत्तिश्च विष्टम्भितः = अवरुद्धः किम् ? आरुढाः = आकलिताः बहवः = अनेके प्रतर्काः = आशङ्काः यस्मिन् तत् आरुढबहुप्रतर्का = नानातर्काकुलितं मे = मम मनः = मानसं वर्तते । राज्ञामनाचारेण तद्राज्येऽनेका उपद्रवा जायन्त इत्यत्र शास्त्रमेव परमं प्रमाणमस्ति । तथा चोक्तम्—

'राज्ञोपचारात् पृथिवी स्वल्पसस्या भवेत् किल ।
अल्पायुषः प्रजाः सर्वाः दरिद्रा व्याधिपीडिताः ॥'

अर्थात्—पूर्वोक्तैर्बहुभिर्विकल्पैः व्याकुलो राजा दुष्यन्तः चिन्तयति यन्न जाने

---

क्या तपस्या में निरन्तर संलग्न इन ऋषियों की तपस्या किसी प्रकार के विघ्नों से दूषित हो गई है ? धर्मारण्य = आश्रमवासी ऋषि, मुनि, हरिण, मयूर आदि किन्हीं प्राणियों के प्रति किसी दुष्ट ने कोई अनुचित आचरण किया है ? अथवा मेरे किसी अज्ञात कारण से वनस्पति लता एवं गुल्मों की फसल ही खराब हो गई है ? इस प्रकार मन में उठने वाले तर्क-वितर्कों से और शङ्काओं से तथा अनिश्चय से मेरा मन व्याकुल हो रहा है ॥ ९ ॥

**विशेष**—यहाँ विघ्न शब्द का तात्पर्य विघ्न करने वाले राक्षस हैं । धर्म-कार्य होने के कारण तपस्वियों के तपोवन को धर्मारण्य कहते हैं । उसकी रक्षा करना राजा का उत्तरदायित्व माना गया है । हिन्दू-शास्त्रों का निर्देश है कि राजा के कुकृत्य = अधर्म से प्रजा को कष्ट होता है—एवं उन पर विविध प्रकार की विपत्तियाँ आती हैं । इसलिए प्रजा की विपत्तियों का कारण राजा का पाप है । राजा के पापों से प्रजा अल्पायु, दरिद्र और रोगी होती हैं तथा उपज की कमी हो जाती है । जैसे—

राज्ञोपचारात् पृथिवी स्वल्पसस्या भवेत् किल ।
अल्पायुषः प्रजाः सर्वाः दरिद्रा व्याधिपीडिताः ॥

**प्रतीहारी**—सुचरिदणंदिणो इसीओ देवं समाजइदुं आअदेत्ति तक्केमि।
[ सुचरितनन्दिनो ऋषयो देवं सभाजयितुमागता इति तर्कयामि। ]
(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः। पुरश्चैषां कञ्चुकी पुरोहितश्च)
**कञ्चुकी**—इत इतो भवन्तः।
**शार्ङ्गरवः**—सखे शारद्वत !

**महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरहो**
**न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।**
**तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा**
**जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव॥ १०॥**

---

किन्निमित्तमेतेषां मुनीनामागमनं ममान्ते जातमिति अत्र छेक वृत्ति-श्रुत्यनुप्रासकाव्यलिङ्गा-लङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं च छन्दः॥ ९॥

**प्रतिहारी**—राज्ञ आकुलत्वं परिहर्तुं प्रतिहारी चाटुभाषणमारभते सुचरितनन्दिनी-सुचरितमभिनन्दन्ति तच्छीलाः सुचरिताभिनन्दिनः = धर्माचरणशीलसद्वृत्तभवादृशनृपानु-रागिणः, धर्मप्रवणजनप्रियाः, ऋषयः = मुनयः देवं = महाराजं सभाजयितुं = वर्धापयितुम् आगताः = प्राप्ता इति = एवं तर्कयामि = जाने। भवतः सुचरितमाशीभिरभिनन्दयितु-मेते मुनयः समागता इत्यत्र न विकल्पः।

( ततः = तत्पश्चात् गौतमीसहिताः = गौतम्या युक्ताः मुनयः = ऋषयः शकुन्तलां पुरस्कृत्य = अग्रे उपस्थाय प्रविशन्ति = रङ्गभूमावाविर्भवन्ति एषां = गौतमी-शार्ङ्गरव-शारद्वतानां पुरः—समक्षमग्रे कञ्चुकी = कञ्चुकीयः पुरोहितः = पुरोधाः सोमरातश्च गच्छन्तौ प्रविष्टौ )

**कञ्चुकी**—इत इतो भवन्तः = अनेन मार्गेण, अनेन मार्गेण भवन्तः = यूयं प्रविशत।

**अन्वयः**—अभिन्नस्थितिः असौ नरपतिः कामं महाभागः वर्णानामपकृष्टोऽपि कश्चित् अपथं न भजते तथापि जनाकीर्णम् इदं शश्वत् परिचितविविक्तेन मनसा हुतवहपरीतं गृहमिव मन्ये।

अथ शार्ङ्गरवो नगरप्रवेशेन मनसि किञ्चिद् विकारमिव सम्भावयन् शारद्वतं इति स्वानुभवं व्यनक्ति—**महाभाग इति**। न भिन्ना = त्यक्ता स्थितिः = मर्यादा येन स

---

**प्रतिहारी**—महाराज ! ऐसा मालूम पड़ता है कि आपके अच्छे जीवन = आचरण से प्रसन्न ऋषि लोग आपको धन्यवाद देने के निमित्त आये हुए हैं।

**( इसके बाद तापसी गौतमी के साथ शकुन्तला को आगे कर ऋषि रंगमंच पर प्रवेश करते हैं, उनके आगे कञ्चुकी और पुरोहित हैं। )**

**कञ्चुकी**—आप लोग इधर से आइए।

**शार्ङ्गरव**—हे सखे शारद्वत !

यद्यपि ये महानुभाव राजा दुष्यन्त बड़ी तत्परता से धर्म की मर्यादा का पालन करने वाले हैं तथा प्रजा की पिता की तरह रक्षा करते हैं। यहाँ का कोई अपकृष्ट वर्ण भी कुमार्ग सेवन करने वाला नहीं है। तथापि हमेशा एकान्त सेवन करने का ही अभ्यास रहने से जनाकीर्ण यह स्थान भी अग्नि से जलते हुए घर की तरह मुझे अप्रिय तथा कष्ट कर प्रतीत होता है॥ १०॥

**विशेष**—शार्ङ्गरव राजा दुष्यन्त को श्रेष्ठ एवं मर्यादापालक समझता हुआ भी एकान्तसेवी

**शारद्वतः**—जाने भवान् पुरप्रवेशादित्थंभूतः संवृत्तः । अहमपि—

**अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम् ।**
**बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसङ्गिनमवैमि ॥ ११ ॥**

---

अभिन्नस्थितिः = स्थितेरभेत्ता असौ = पुरोवर्ती नरपतिः = राजा दुष्यन्तः कामं=अतिशयेन महाभागः = श्रेष्ठः महाभागलक्षणं यथा—

'आरभ्योत्पत्तिमामृत्योः कलङ्को यस्य नो भवेत् ।
स्याच्चैवानुपमा कीर्तिः महाभागः स उच्यते ॥'

वर्णानां = चतुर्णां ब्राह्मणादीनां मध्ये अपकृष्टोऽपि = अन्त्यवर्णोऽपि नीचोऽपि कश्चित् मनुष्य. अपथम् = कुमार्गम्, अधर्मम् न भजते = न गच्छति तथापि जनाकीर्णं = जनव्याप्तं लोकसङ्कुलम् इदम् = एतत् शश्वत् = निरन्तरम् परिचितं = अभ्यस्तं विविक्तं = निरन्तरै-कान्तप्रवणेन तपोवनात्मकं विजनं = स्थानम् यस्य तत्तेन परिचितविविक्तेन मनसा = चेतसा उपलक्षितोऽहं हुतवहपरीतं हुतवहेन परीतं हुतवहपरीतम् = पावकज्वालावलीढम् अग्निव्याप्तं गृहमिव = आलय इव सद्यस्त्याज्यं मन्ये = तर्कयामि, तस्मादुद्वेगमनुभवामि । अग्निपरीतं गृहमिव दूरतः परिहर्तव्यमेवेदं राजगृहमिति सम्भावये । इदं तात्पर्यम् यथा अग्निज्वालावलीढे गृहे क्षणमपि निवासं कर्तुं न शक्यते तथैव बाल्यात् तपोवनात्मकविजन-स्थानस्य परिचयात् परितो जनसङ्कुलेऽत्र नगरेऽपि स्थातुं न योग्यमिति भावः ॥ १० ॥

शारद्वतः— महर्षेः कण्वस्य द्वितीयः शिष्यः प्रथमशिष्यस्योक्तिमनुवदन्नाह—जाने = अनुभवामि भवान् त्व पुरप्रवेशात्=नगरागमनात् प्रभृति एवं इत्थंभूतः = जनानुकूलं नगरं हुतवहपरीतं नगरमिव सम्भावयन् एवं रूपः सम्वृत्तः = जातः । अहमपि--अहमपीत्थमेव तर्कयामि--**अभ्यक्तमिवेति** ।

**अन्वयः**—अहमपि इह सुखसङ्गिनं जनम्, स्नातः अभ्यक्तमिव शुचिः, अशुचिमिव प्रबुद्धः सुप्तमिव स्वैरगतिः बद्धमिव अवैमि ।

शारद्वतोऽपि एवानुभव वर्णयन्नाह—**अभ्यक्तमिवेति** । अहमपि = भवानिवाहं शारद्वतोऽपि इह = नगरे सुखसङ्गिनं=विषयभोगासक्तं जनं = लोकम् स्नातः = कृतस्नानः अभ्यक्तं = तैलमर्दनेन सम्पादितदेहमलम्, तैलाभ्यक्तमशुचिमिव अस्नातमिव, शुद्धिः =

---

होने के कारण जनसङ्कुल नगर के वातावरण से वह उसी प्रकार खिन्नता का अनुभव कर रहा है । जिस प्रकार आग की लपटों से घिरा हुआ राजमहल भी अप्रिय और कष्टकारक प्रतीत होता है । आश्रम में उसे जो शान्ति मिलती है वह तो वहाँ बिलकुल ही नहीं है । ऋषियों का मन हमेशा एकान्तवासी होता है, उसे चारों ओर भीड़ से भरा हुआ राजमहल अच्छा नहीं लगता ।

**शारद्वत**—हे सखे शार्ङ्गरव ! शान्त आश्रम के निवासी होने के कारण इस चहल-पहल वाले नगर में आने से तुम्हारे मन में उद्वेग आना सर्वथा उचित ही है और मैं भी—

विषय-सुखों में फँसे हुए यहाँ के नगरवासी लोगों को मैं उसी प्रकार समझता हूँ जैसे स्नान किया हुआ पुरुष तैल आदि लगाये हुए अशुचि व्यक्ति को समझता है । प्रबुद्ध = ज्ञानी पुरुष अज्ञानी को जैसे देखता है तथा स्वतन्त्र व्यक्ति जैसे जेल में बँधे हुए पुरुष को देखता है ॥ ११ ॥

**विशेष**—धर्मशास्त्रों में लिखा हुआ है कि शरीर में तेल लगाया हुआ व्यक्ति तबतक चाण्डाल = अशुचि, अस्पृश्य माना जाता हैं जब तक स्नान कर वह निर्मल नहीं हो जाता । स्नान किया हुआ व्यक्ति उसे अपवित्र तथा अस्पृश्य समझता है । जैसे—

**शकुन्तला**—( निमित्तं सूचयित्वा ) अम्महे किं मे वामेदरं णअणं विप्फुरदि [ अहो किं वामेतरन्नयनं विस्फुरति । ]

**गौतमी**—जादे पडिहदं अमंगलं। सुहाइं दे भत्तुकुलदेअदाओ वितरंदु। [ जाते प्रतिहतममङ्गलम्। सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु ] ( इति परिक्रामति )

---

अन्तःशुद्धः, पवित्रः अशुचिम् = कलुषात्मानं पापिनमिव, प्रबुद्धः = जाततत्त्वावबोधः, मोहनिद्राप्राप्तमिव जागरितः सुप्तमिव=निद्रितमिव, स्वैरगतिः=स्वेच्छाचारी बद्धं=निगडित यन्त्रितम् अवैमि = प्रतीये ।

**अयं भावः**—सखे शाङ्गंरव ! भवान् जनाकुलमिदं नगरं पावकव्याप्तं गृहमिव जानासि, अहमप्यस्मिन्नगरे विषयासक्तं जनं यथा कृताभिषेको नरः कृततैलमर्दनं पुरुषं स्वापेक्षया मलिनं सम्भावयति, अन्तःशुद्धो जनः पापिनमिव एतन्नगरमिव दूरनिवास-योग्यम् मन्यते । तस्मादेतादृशं नगरमस्मादृशां सर्वथा निवासानर्हम् ।

अत्र मालोपमालङ्कारश्छन्दश्चास्ति शिखरिणी ।। ११ ।।

**शकुन्तला**—( निमित्तमपशकुनं सूचयित्वा = अभिनीय ) अहो, हन्त ! किं = किन्निमित्तं मे=मम, वामात् इतरत् वामेतरं=सव्येतरं, दक्षिणं नयनं=नेत्रम् परिस्फुरति= स्पन्दते । गर्गाचार्यानुसारं स्त्रीणां दक्षिणाक्षिस्पन्दनमनिष्टावाप्तिसूचकमुक्तमस्ति ।

'दक्षिणचक्षुः स्पन्दनं बन्धुदर्शनमर्थलाभं वा ।
वामचक्षुः स्पन्दनं बन्धुविच्छेदं धनहानिर्वा ।
स्त्रीणामेतत्फलमाविकलं दक्षिणे वैपरीत्यम् ।।'

**गौतमी**—शकुन्तलामाश्वासयन्ती गौतमी कथयति- —जाते ! = पुत्रि ! अमङ्गलं = अनिष्टम्, प्रतिहतम् = नष्टं जातम् । ते = तव भर्तुः = पत्युः कुलस्य = वंशस्य देवताः = देवा इति भर्तृकुलदेवताः = दुष्यन्तकुलाधिष्ठात्र्यो देवता हरिहराद्याः ते=तुभ्यं सुखानि= आनन्दान् वितरन्तु = प्रयच्छन्तु ( इति = एवमुक्त्वा परिक्रामति = मण्डलाकारं परि-भ्राम्यति ) अमङ्गलनिरासेन कल्याणानि कुर्वन्तु ।

---

तैलाभ्यङ्गे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि ।
तावद्भवति चाण्डालः यावत् स्नानं न चाचरेत् ।।

इसलिए हे शार्ङ्गरव ! विषय-सुख में निरन्तर लीन व्यक्तियों को मैं भी वैसा ही समझ रहा हूँ, जैसे स्नान किये हुए व्यक्ति अस्नान किए हुए को समझता है एवं स्वतन्त्र व्यक्ति कारागार में बँधे हुए पुरुष को देखता है ।

**शकुन्तला—( अपशकुन का अभिनय करती हुई )** अरी मैया री, मैया, मेरी यह दाहिनी आँख आज क्यों फड़क रही है ?

**विशेष**—निमित्त कहते हैं शकुन को । शकुन दो प्रकार का होता है—शुभ शकुन और अशुभ शकुन । पुरुष की दाहिनी और स्त्रियों की बायीं आँख का फड़कना शुभ = शुभशकुन माना जाता है । इसके विपरीत पुरुष का बाँया तथा स्त्रियों का दाहिना नेत्र फड़कना अशुभ = अपशकुन माना जाता है । यहाँ राजा दुष्यन्त के मिलन में बाधा पड़ जाना, फल है जिसका वर्णन आगे आयेगा ।

**गौतमी**—पुत्रि ! यह अमङ्गल दूर हो, तुझे सुख प्राप्त हो, तुम्हारे पतिदेव के कुलदेवता तुम्हारा मङ्गल करें । **( घूमती है । )**

**पुरोहितः**—(राजानं निर्दिश्य) भो भोस्तपस्विनः। असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो प्रतिपालयति। पश्यतैनम्।

**शार्ङ्गरवः**—भो महाब्राह्मण! काममेतदभिनन्दनीयं तथापि वयमत्र मध्यस्था, कुतः—

**भवन्ति नम्रास्तरवः [1]फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।**
**अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥ १२॥**

---

**पुरोहितः**—पुरोधाः=सोमरातः राजानं=नृपं दुष्यन्तम् निर्दिश्य=दर्शयित्वा वदति=भो! भोः तपस्विनः=हे हे तापसाः! असौ=अयम् अत्रभवान्=श्रीमान् वर्णानां=ब्राह्मणादीनां आश्रमाणं=ब्रह्मचर्यादीनां रक्षिता=प्रागेव=भवद्दर्शनात् पूर्वमेव भवत्यतिशयात्=आदराधिक्याच्च मुक्तासनः=त्यक्तराजपीठः सन् वः=युष्मान् प्रतिपालयति=प्रतीक्षते। एनं=महाराजं-पश्यत=अवलोकयत। ईदृग्विधस्यास्य एवंविधं दर्शनमाश्चर्यंकरमिति भावः।

**शार्ङ्गरवः**—भो महाब्राह्मण!=हे विप्रवर्य! कामम्=अतिशयेन एतत्=इदम् अस्य एवंविधं विनीतत्वम् अभिनन्दनीयम्=प्रशंसनीयम्, स्तुत्यम् तदापि=तदपि अत्र विषये विनीतत्वे मध्यस्था=निस्पृहाः, न वयं राजप्रशंसावाचमुच्चारयामः। कुत इत्यत्राह—भवन्तीति।

**अन्वयः**—तरवः फलागमैः नम्रा भवन्ति, घना नवाम्बुभिः दूरविलम्बिनः (भवन्ति) सत्पुरुषाः समृद्धिभिः अनुद्धता ( भवन्ति ) परोपकारिणामेष स्वभाव एव।

राज्ञो दुष्यन्तस्य विनीतत्वे न तत्र मम कोऽपि विस्मयो भवति। यदि अचेतनानां तरुघनादीनां विनम्रत्वं स्वभावसिद्धं तर्हि सद्वंशजस्य सज्जनस्य विनम्रत्वे किमाश्चर्यमित्याह—भवन्ति नम्रा इति। तरवः=वृक्षाः फलागमैः फलानाम् आसन्नात् गमा=उत्पत्तयः तैः फलोद्गमैः=फलोद्भवैः नम्राः=अधोमुखा विनीताश्च भवन्ति। घनाः=मेघाः नवाम्बुभिः वर्षाकालारम्भे अभिनवजलैः दूरं विलम्बन्ते तच्छीला प्रवर्षणशीला भवन्ति।

---

**पुरोहित—( राजा की ओर इशारा करके )** हे तपस्वियों! यह देखिए, परम माननीय, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमों को यथावत् रक्षा करने वाले ये महाराज दुष्यन्त पहले ही से राजसिंहासन से उठकर आपलोगों की प्रतीक्षा में यहाँ खड़े हैं, इनका दर्शन कीजिए।

**शार्ङ्गरव**—हे महात्मन्=पुरोहित जी! राजा का ऋषियों का आदर करना यद्यपि प्रशंसनीय हैं तथापि हम तो इस विषय में मध्यस्थ ही हैं अर्थात् हम इसके लिए राजा की प्रशंसा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि—

जिसप्रकार फल आने पर वृक्ष स्वभाव से ही नम्र हो जाते हैं=झुक जाते हैं, जल से भरे रहने पर नये मेघ भी स्वतः नीचे लटक जाते हैं। इसी प्रकार समृद्धि प्राप्त कर सज्जन लोग भी विनीत हो जाते हैं। यह तो उनका स्वाभाविक गुण ही है॥ १२॥

**विशेष**—राजा की नम्रता के लिए इनकी प्रशंसा करना व्यर्थ ही है। हमारे लिए यह आनन्ददायक नहीं है, क्योंकि ऐसे महान् राजा के लिए तो यह स्वाभाविक ही है। यह तो इनके लिए छोटी बात है। हाँ, तपस्वियों से मिलते समय सिंहासन छोड़ देना, उनकी राह देखना, उनके

---

१. फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो।

**प्रतिहारी**—देव पसन्नमुहवण्णा दीसंति । जाणामि विसद्धकज्जा इसीओ ।
[ देव प्रसन्नमुखवर्णा दृश्यन्ते । जानामि विश्रब्धकार्या ऋषयः । ]

**राजा**—( शकुन्तलां दृष्ट्वा ) अथ अत्रभवती ।

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या ।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम् ॥ १३ ॥

---

दूरविलम्बिनः = अत्यर्थं लम्बमानाः, अतिशयवर्षुकाः, सत्पुरुषाः = सज्जनाः = समृद्धिभिः धनविद्याधिकारादिसम्पत्तिभिः अनुद्धताः = विनीता एव औद्धत्यविरोधिनः भवन्ति । एषः नम्रत्वानुद्धत्वादिरूपः परोपकारिणाम् = परोपकारपरायणानां दुष्यन्तसदृशानाम् स्वभाव एव = निसर्ग एव किं तत्रास्माकं प्रशंसापरम्पराभिरिति भावः ।

अतो हि सत्कुलोत्पन्नानां परोपकारनियतानां महापुरुषाणां विनम्रत्वं स्वभावसिद्ध एवास्ति । एष महाराजो दुष्यन्तोऽपि तथाविध एवास्ति । अतोऽस्य नम्रत्वे विस्मयस्य नास्त्यवकाशः । अत्राप्रस्तुतप्रशंसा प्रतिवस्तूपमा-अर्थान्तरन्यासातिशयोक्ति-काव्यलिङ्गा-लङ्काराः वृत्तं च वंशस्थम् ॥ १२ ॥

**प्रतिहारी**—प्रसन्नमुखान् मुनीन् वीक्ष्य राजानमूचे-देव ! महाराज ! प्रसन्नमुख-वर्णाः = प्रसन्नाननाकृतयः ऋषयः = मुनयो दृश्यन्ते प्रतीयन्ते अतो जानामि = मन्ये विश्रब्धकार्याः विश्रब्धं = शान्तं कार्यं कृत्यं येषां ते विश्रब्धकार्याः = अनुद्भूटप्रशान्त-कार्याः ऋषयः सन्ति । नैते विघ्नप्रतिकारादि-कार्यार्थिनः अपितु भवद्दर्शनादि-सामान्य-कार्यार्थिन एवेति मन्ये, इति भावः ।

**राजा**—( शकुन्तलां दृष्ट्वा = अवलोक्य ) शापतिरोहितविस्मृतिः शकुन्तलामजा-नन् राजा पृच्छति–अथ = अहो, अत्र भवती = महोदया काऽस्ति ? विकल्पमान आह— का स्विदिति ।

**अन्वयः**—पाण्डुपत्राणां मध्ये किसलयमिव तपोधनानां ( मध्ये ) अवगुण्ठनवती नाति-परिस्फुटशरीरलावण्या ( अत्र भवती ) का स्वित् ।

मुनिकुमाराणां मध्येऽवगुण्ठनवतीमति कलेवरसंगतानुमीयानातिसौन्दर्यां केयमिति विकल्पयन् ब्रवीति राजा दुष्यन्तः—का स्विदिति । पाण्डुपत्राणां = पाण्डूनि च तानि

---

प्रति विशेष आदर व्यक्त करता है । यदि वृक्ष तथा बादल अचेतन होकर भी परोपकार में सदा निरत हैं, तो चेतन राजा का क्या कहना है ? परोपकार तो जड़ चेतन में समान ही अभिनन्दनीय है ।

कविवर कालिदास के समय में ब्राह्मण शब्द के पूर्व में लगाया हुआ महा शब्द प्रशंसार्थ था निन्दार्थक नहीं । आजकल ब्राह्मण, ज्योतिषी, वैद्य, मांस, यात्रा= मार्ग, निद्रा, तेल तथा शंख के पूर्व में जोड़ा गया महा शब्द निन्दा अर्थ को सूचित करता है । जैसे—

शंखे तैले तथा मांसे वैद्ये ज्योतिषके द्विजे ।
यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो न दीयते ॥

**प्रतिहारी**—महाराज ये ऋषि तो प्रसन्नमुख मालूम पड़ते हैं । अतः किसी प्रकार की आशंका की बात नहीं मालूम पड़ती है । अर्थात् ये अपने किसी कष्ट को कहने के लिए नहीं आये हुए प्रतीत हो रहे हैं ।

**राजा**—( **शकुन्तला का ओर देखकर** ) यहां इन ऋषियों के साथ अपरिस्फुट कान्तिवाली

पत्राणि च पाण्डुपत्राणि तेषां पाण्डुपत्राणां—परिणामपाण्डुराणां पत्राणां मध्ये किसलय-मिव = कोमलपल्लवमिव तपोधनानां = तापसानां मध्ये अवगुण्ठनवती = आवरणयुक्तापट-प्रावृतसर्वावयवा शरीरं च लावण्यं च शरीरलावण्यं = देहकान्ती नातिस्फुटे = अपूर्णव्यक्ते अनतिप्रकटे शरीरलावण्ये यस्याः सा स्फुटशरीरलावण्या = अनतिविभाव्यमानाङ्गसौन्दर्य-विभवा अत्रभवती – एषा प्रशस्ता ललना का स्वित् = का वा भवेत् ?

अर्थात् यथा जीर्णपाण्डुरपर्णस्याभिनवपल्लवस्य शोभां स्पष्टमविभाव्य द्रष्टुं चित्तं न चमत्कृतं भवति तथैव लम्बकूर्चानां मुनीनां मध्ये भाना केयमवगुण्ठनवतीति भावः। अत्रोपमा काव्यलिङ्गौ अलङ्कारौ आर्यावृत्तं च ॥ १३ ॥

उभड़ते हुए शरीर और यौवन वाली घूँघट, निकाले हुए ऋषियों के बीच में खड़ी हुई, पीले-पुराने पत्तों के बीच में कोमल अभिनव पल्लवों की भाँति शोभायमान यह सुन्दरी युवती कौन है ? ।'१३॥

**विशेष**—यहाँ अवगुण्ठन शब्द का प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। इससे प्रतीत होता है कि अतिप्राचीन काल में अवगुण्ठन प्रथा का प्रचलन था। राजपरिवार तथा बड़े घरानों की स्त्रियाँ प्राचीन काल में भी घूँघट किया करती थीं। घूँघट तथा पर्दा प्रथा में अन्तर है। साड़ी के अञ्चल भाग से मुख का ढँकना घूँघट है और साड़ी के अतिरिक्त दूसरे वस्त्र उत्तरीय आदि से शरीर का ढँकना पर्दा प्रथा है, जिसका विकास यवनकाल से विशेष माना जाता है।

घूँघट की प्रथा इस देश की पुरानी प्रथा है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि रामायण से लेकर कविवर कालिदास आदि की रचनाओं तक इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। कुछ विशेष अवसरों को छोड़कर स्त्रियाँ अवगुण्ठन करती थीं। जैसे—अतिसङ्कट, युद्ध स्वयम्वर, व्रत, यज्ञ एवं विवाद के अवसर पर अवगुण्ठन के अभाव में स्त्रियों का दूसरों की दृष्टि में आना दोष नहीं माना जाता।

व्यसनेषु च कृच्छ्रेषु न युद्धे न स्वयम्वरे।
न व्रतौ न विवाहे च दर्शनं दूष्यते स्त्रियः ।। वा० रा० ११४।२८

और यह सीता इस समय विपत्ति में है, मानसिक कष्ट से भी युक्त है, विशेषकर मेरे पास है। इसलिए इस समय अवगुण्ठन के बिना सबके सामने आना दोष की बात नहीं है।

सैषा विपद्गता चैव कृच्छ्रेण च समन्विता।
दर्शने नास्ति दोषोऽस्या मत्समीपे विशेषतः ॥ ११४।२९

महाभारत में शल्यपर्व में कहा गया है—

अदृष्टपूर्वा वा नार्यो भास्करेणापि वेश्मसु।
ददृशुस्ता महाराज ! जना याता पुरं प्रति ॥

प्रतिमानाटक में भास ने लिखा है कि 'निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे, विवाहे, व्यसने च (१।२०)। इसी प्रकार महावैयाकरण महर्षि पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी के 'असूर्यललाटयोः दृशितपोः (३।२।३६) सूत्र का उदाहरण दिया है कि सूर्यं न पश्यन्तीति असूर्यंपश्या। अर्थात जिन पर सूर्य तक की नजर न गई हो वे राजदाराएँ राजमहलों से बाहर नहीं निकलती थीं। जिन्हें सूर्य तक न देख पाये उस असूर्यम्पश्या शब्द से स्पष्ट है कि स्त्रियाँ केवल पुरुषों की दृष्टि से ही नहीं बचाई जाती थीं, किन्तु धूप से भी बचाई जाती थीं। इस प्रकार स्त्रियों के प्रति पुरुषों का आकर्षण तथा स्त्रियों को सुन्दरता का विषय बनाने के लक्ष्य से घूँघट प्रथा का प्रचलन था क्योंकि स्वच्छन्दता से धूप में बाहर घूमने पर शरीर का रंग साँवला पड़ जाता है, और शरीर का लावण्य निकल जाता है। अद्भुत सुन्दरता के लिए लावण्य शब्द का प्रयोग होता है। मोती के ऊपर जो चमक दिखाई पड़ती है उसे लावण्य कहते हैं—

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमुच्यते ॥

**प्रतीहारी**—देव कुदूहलगब्भोपहिदो ण मे तक्को पसरदि। णं दंसणीआ उण से आकिदी लक्खीअदि। [ **देव कुतूहलगर्भोपहितो न मे तर्कः प्रसरति। ननु दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते।** ]

**राजा**—भवतु अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्।

**शकुन्तला**—( हस्तमुरसि कृत्वा आत्मगतम् ) हिअअ किं एव्वं वेवसि! अज्जउत्तस्स भावं ओहारिअ धीरं दाव होहि। [ **हृदय किमेवं वेपसे। आर्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीरं तावद्भव।** ]

---

**प्रतिहारी**—देव! = महाराज! कुतूहलेन = कौतुकेन औत्सुक्येन गर्भे = मध्ये उपहितः युक्त इति कुतूहलगर्भोपहितः आश्चर्यभराक्रान्तः तर्कः = ऊहः मे = मम अनुमानं न प्रसरति = न विकसितो भवति, केयमिति निश्चेतुमसमर्थोऽहमित्यर्थः। ननु दर्शनीया = द्रष्टुं योग्या अस्या आकृतिः = शरीराद्यवस्थानम् लक्ष्यते = अनुमीयते। भव्याकृतिरियमवश्यं भवता दृश्यतामिति भावः।

**राजा**—प्रतिहार्युक्तं तद्दर्शनं निषेधति—भवतु = अस्तु तावत् या वा, काचेयं भवतु, परकलत्रं = अन्यस्य दाराः अनिवर्णनीयम् = निवर्णनं = निपुणं विलोकनं तत् कर्तुमनुचितम्। अद्रष्टव्यमित्यर्थः। अनालोचनीयः खलु परपरिग्रहो भवतीति भावः।

**शकुन्तला**—दुर्निमित्तैर्दूयमानं मानसं शकुन्तला प्रत्याह ( हस्तं = करम् उरसि =

---

**प्रतिहारी**—प्रभो, इसके विषय में मुझे भी कौतूहल हो रहा है आधार के बिना मेरा तर्क यहाँ काम नहीं दे रहा है। हाँ, इसकी आकृति तो अवश्य सुन्दर, दर्शनीय तथा आकर्षक मालूम होती है।

**राजा**—अच्छा, जाने दो, दूसरे की स्त्री को इस प्रकार ध्यान से देखना भी ठीक नहीं है।

**विशेष**—पराई स्त्री को घूर-घूर कर देखना भारतीय सदाचार के विरुद्ध है। दूसरे की स्त्री पर बुरी दृष्टि न देने की परम्परा भारत का प्राचीन आदर्श है और राष्ट्र की पवित्रता का द्योतक है। प्रसन्नराघव में भादो मास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि को चन्द्रमा के दर्शन की तरह पराई स्त्री को देखने का निषेध करते हुए कहा गया है कि—भाद्रपदचतुर्थी चन्द्रदर्शनमिव।

उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते।
चतुर्थी चन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका॥

इसी का अनुवाद गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस में यों किया है—

जो पर नारि ललाट गोसाँई। तजहु चौथ चन्दा की नाईं।

मृच्छकटिक नाटक में भी पराई स्त्री का दर्शन निषेध किया गया है—

न युक्तं परकलत्रदर्शनम्।

अविवाहिता कन्याओं के देखने का वैसा निषेध नहीं है जैसा कि विवाहित स्त्रियों का। इसलिए भास कवि ने अपने प्रतिज्ञायौगन्धरायण में कुमारी कन्याओं को देखना दोषरहित बताया है—'कन्यादर्शनं हि निर्दोषम्' यही भाव नागानन्द में भी निर्दिष्ट है—'कन्यका हि निर्दोषदर्शना भवन्ति'।

**शकुन्तला**—( **छाती पर हाथ रखकर, मन ही मन** ) हृदय! क्यों इस प्रकार धड़क रहे हो। पतिदेव के पूर्व प्रदर्शित प्रेम को समझकर जरा धैर्य तो धारण करो।

**विशेष**—शकुनशास्त्र के अनुसार हृदय का धड़कना भावी अमङ्गल का सूचक है।

**पुरोहितः**—( पुरो गत्वा ) एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः। कश्चिदेषामुपाध्याय-संदेशः। तं देवः श्रोतुमर्हति।

**राजा**—अवहितोऽस्मि।

**ऋषयः**—( हस्तानुद्यम्य ) विजयस्व राजन्।

**राजा**—सर्वानभिवादये।

**ऋषयः**—इष्टेन युज्यस्व।

**राजा**—अपि निर्विघ्नतपसो मुनयः ?

---

वक्षसि कृत्वा = विधाय आत्मगतं = स्वगतम् विचारयति—हे हृदय ! = हे अन्तःकरण! किं = कथं, एवं = अनेन प्रकारेण वेपसे = कम्पसे अनिष्टाशङ्कयाऽवधीरणाभयाद्वा हृदयस्य कम्पः। आर्यपुत्रस्य = स्वामिनः भावं = प्रेम अवधार्य = विचार्य धीरं = धैर्ययुतं तावत् भव = एधि। तादृशी प्रीतिर्न विकल्पते। अतश्चिन्ता न कार्येत्यर्थः।

**पुरोहितः**—पुरोधाः सोमरातः ( पुरो गत्वा=अग्रे राज्ञः समीपे उपस्थाय ) ब्रवीति-एते पुरोवर्तिनः तपस्विनः = तापसाः विधिवत् = यथाशास्त्रम्, अर्चिताः = पूजिताः सत्कृताश्च, कश्चित् = कोऽपि एषाम् = अमीषाम् उपाध्यायस्य सन्देशः उपाध्यायसन्देशः आचार्यमहर्षिकण्वस्य सन्दिष्टम् विद्यते तं = वाचनिकं देवः—महाराजः अर्हति श्रोतुम् = आकर्णयितुम्।

**राजा**—अवहितोऽस्मि = पूज्यस्य महर्षेः कण्वस्य सन्देशं भवन्मुखेभ्यः श्रोतुं सावधानोऽस्मि।

**ऋषयः**—( हस्तान् = करान्, उद्यम्य = उत्थाय ) अब्रुवन्—राजन् = महाराज! विजयस्व, विजयं लभताम् सर्वोत्कर्षेण वर्तस्वेति भावः।

**राजा**—सर्वान् = शार्ङ्गरवं शारद्वतं पुरोहितं गौतमी च सकलान् अभिवादये= प्रणमामि।

**ऋषयः**—ते ऊचुः = इष्टेन = अभिलषितेन फलेन युज्यस्व = युक्तो भव।

**राजा**—अपि = किम्, निर्विघ्नतपसः-निर्विघ्नानि तपांसि तपस्या येषां ते निर्विघ्न-तपसः = तपश्चरणेषु विघ्नरहिताः मुनयः = ऋषयः सन्ति वा न वा ?

---

**पुरोहित—( आगे आकर )** महाराज का कल्याण हो। हे महाराज! इन तपस्वियों को शास्त्रोक्त विधि से पूजा कर दी गई है, और इनके पास इनके गुरु जी महर्षि कण्व का कुछ सन्देश है, उसको आप सावधान होकर सुनें।

**राजा—मैं** सुनने के लिए सावधान हूँ, कहिए।

**ऋषिगण—( हाथ उठाकर )** हे राजन! आपकी हमेशा विजय हो, आप विजयी बनें।

**राजा—मैं** आप सबको प्रणाम करता हूँ, और आशीर्वाद की याचना करता हूँ

**ऋषिगण**—महाराज का कल्याण हो।

**राजा**—आपलोगों की तपस्या में किसी प्रकार का कोई विघ्न तो नहीं **है**, न ?

ऋषयः—

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि ।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ॥ १४ ॥

राजा—( आत्मगतम् ) अर्थवान् खलु मे राजशब्दः । ( प्रकाशम् ) अथ भगवाँल्लोकानुग्रहाय कुशली काश्यपः ।

---

ऋषयः—मुनयो निर्विघ्नतां वर्णयन्ति—कुत इति ।

अन्वयः—त्वयि रक्षितरि ( सति ) सतां धर्मक्रियाविघ्नः कुतः ? घर्मांशौ तपति ( सति ) तमः कथमाविर्भविष्यति ।

अथ मुनय आत्मतपसो निर्विघ्नतां वर्णयितुमुपक्रमन्ते—कुत इति । त्वयि भवति महाराजे दुष्यन्ते रक्षितरि = पालयितरि प्रजापालके, रक्षाकर्मकुर्वति सति सतां = सज्जनानां धार्मिकाणां धर्मक्रियाविघ्नः धर्मक्रियासु = धर्माचरणेषु विघ्नः = अन्तरायः धर्मानुष्ठानविघ्नः कुतः = कस्माद्वा स्यात् संभवेत् । भवति रक्षके विद्यमाने सतां क्रियामात्रविघ्नोऽपि न सम्भाव्यते इति सुतरां धर्मक्रियाविघ्न इति भावः । तत्र दृष्टान्तमाह—घर्मांशौ = सूर्ये तपति सति, पूर्णबलेन प्रकाशमाने सति तमः = अन्धकारः कथं = केन प्रकारेण आविर्भवति = प्रकाशमागमिष्यति । अतश्च हे राजन् ! त्वयि रक्षके । जागरूके सति कथं धर्मक्रियानुष्ठाने विघ्नस्य शङ्कापि सम्भवतीति भावः । अर्थात्—राजन् ! सावधानेन मनसा प्रजापालनकर्म कुर्वति भवति जागरूके समेषां सामान्यक्रियामात्रेऽपि न कश्चनान्तरायः सम्भवति, धर्मानुष्ठानविघ्नस्योपस्थितः कथैव का ? अतो वयं निश्चिन्ता सन्तः स्वेषु स्वेषु कर्मसु प्रवर्तामहे । यथा दिवाकरे उदीयमाने तमः स्वयमेव दूरीभवति । तथैव सूर्यसदृशस्य तेजस्विनोर्भवतो व्यवस्थयाऽस्माकं सर्वं यज्ञानुष्ठानादिकं सम्यक् सततं प्रचलति न तत्रास्ति कोऽप्यन्तराय इति भावः ।

अत्र दृष्टान्तः प्रतिवस्तूपमा वालङ्कारः, अनुष्टुप् छन्दश्च ॥ १४ ॥

राजा—अर्थवान् = सार्थकः खलु = निश्चयेन मे = मम राजशब्दः = राजा इति पदम् । सुष्ठु प्रजापरिपालनेन जनानुरञ्जनादन्वर्थः राजशब्दः—राजते दीयते, रञ्जयतीति च राजशब्दव्युत्पत्तिः ।

'ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम् ।
वैश्यं क्षेमं समागत्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥ २ । १२७ ॥

---

**ऋषिगण—**हे राजन ! सज्जनों के रक्षक आपके रहते हमारी तपस्या में विघ्न हो ही कैसे सकता है ! क्योंकि प्रचण्ड किरण वाले भास्कर के रहते अन्धकार का आविर्भाव ही कैसे हो सकता है ? ॥ १४ ॥

**राजा—( मन ही मन )** मेरा राजा कहलाना आज सर्वथा सार्थक हुआ जबकि ये तपस्वी लोग इस प्रकार विघ्न बाधाओं से रहित होकर तपश्चर्या कर रहे हैं। **( प्रकट में )** महातपस्वी महर्षि कण्व जी प्रसन्न एवं कुशल पूर्वक हैं, न !

**विशेष—**राजकुल में उत्पन्न होने से तो सभी राजा कहे जाते हैं, किन्तु वस्तुतः वही राजा है जो लोकरञ्जन करे, मानो निरन्तर प्रजाओं का कल्याण करें। जो प्रजा की शुभाशंसा में निरत रहता हैं और हमेशा प्रजाओं का कल्याण करता रहता है, सच्चे अर्थ में वही राजा है। 'लोकान् रञ्जयतीति राजा' यह व्युत्पत्ति लोकरञ्जक राजा में ही घटती है।

**ऋषय:**—स्वाधीनकुशला: सिद्धिमन्त:। स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वकमिदमाह।

**राजा**—किमाज्ञापयति भगवान्।

**शार्ङ्गरव:**—[1]यन्मिथ: समयादिमां मदीयां दुहितरं [2]भवानुपायंस्त तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम्। कुत:—

**त्वमर्हतां प्राग्रसर: स्मृतोऽसि न: शकुन्तला [3]मूर्तिमती च सत्क्रिया।**
**समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गत: प्रजापति:॥ १५॥**

---

मनुवचनानुसारं राजा महर्षे: कुशलं पृच्छति–अथ = किम् भगवान् = श्रीमान् लोकानुग्रहाय = जनकृपायै कुशली = सकुशल: काश्यप: = महर्षि: कण्व: त्रिभुवनानुग्राहकत्वेन महर्षे: लोकोत्तरा: तप:सिद्धि:, परोपकारनियतत्वं च ध्वन्यते।

**ऋषय:**—स्वाधीनकुशला:–स्वाधीनं = आत्मायत्तं कुशलं = कुशलता येषां ते स्वाधीनकुशला: = स्वतन्त्रसुखा आत्मारामा वा सिद्धिमन्तो = अलौकिकशक्तियुक्ताश्च महर्षयो भवन्ति। तत्र महर्षि कण्व:, सिद्धिमान्, अत: स्वाधीनकुशल इत्यर्थ:। स महर्षि: कण्व: भवन्तं – त्वाम्, अनामयप्रश्नपूर्वकम् = अनामयस्य प्रश्न: पूर्वं यस्मिन् कर्मणि तत् अनामयप्रश्नपूर्वकम् = आरोग्यप्रश्नपुर:सरम् अपि अनामय: असि इति प्रथमं पृष्ट्वेत्यर्थ:। इदं = वक्ष्यमाणम् आह = उक्तवान्।

**राजा**—भगवान् = श्रीमान् कण्व: किम् अज्ञापयति = किं वदति ?

**शार्ङ्गरव:**—उक्तवान्–यत् भवान् = त्वम् मिथ: समयात् = परस्परसङ्केतात्, अन्योन्यानुरागेण 'गान्धर्व: समयान्मिथ' इति याज्ञवल्क्योक्ते गान्धर्वेण विवाहेनेत्यर्थ:, इमां = पुरो निधीयमानां मदीयां = मामकीनां दुहितरम् उपायंस्त = परणीतवान् तत् = इदमनुचितमपि स्वेच्छाचरितमुपयमनरूपं तव कार्यम् प्रीतिमता = प्रसन्नेन मया कण्वेन युवयो: = वाम् उभयो: अनुज्ञातं = अनुमतं, स्वीकृतम्, कुतो = मयानुज्ञातमित्यत आह—त्वमर्हतामिति।

**अन्वय:**—त्वं न: अर्हतां प्राग्रसर: स्मृतोऽसि, शकुन्तला च मूर्तिमती सत्क्रिया। तुल्यगुणं बन्धुवरं समानयन् प्रजापति: चिरस्य वाच्यं न गत:।

अथ कुलपते: कण्वस्य सन्देशं निवेदयन् तदीयशिष्य: शार्ङ्गरवो नृपतिं दुष्यन्तमाह—त्वमर्हतामिति। त्वं = भवान् न: = अस्माकम्, अर्हतां = पूज्यानां प्राग्रसर: प्रकर्षेण

---

**ऋषिगण**—हे राजन् कण्व सदृश योगसिद्धिशाली महात्मा लोग तो हमेशा ही सकुशल रहते हैं। तपस्या के प्रभाव से उनकी तो कुशलता सर्वथा सिद्ध है। हाँ हमारे गुरुजी ने पहले आपकी आरोग्यता का प्रश्न करके पुन: यह सन्देश आपसे कहा है। मिलने पर ब्राह्मणों से कुशलता और क्षत्रियों से निरोगता पूछना चाहिए। 'ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम्'

**राजा**—कहिए, महर्षि कण्व ने मुझको क्या आज्ञा दी है ?

**शार्ङ्गरव**—भगवान् कण्ठ ने आपसे कहा है कि हे राजन्! आपने परस्पर की अभिलाषा से ही गान्धर्व विधि से ही स्वेच्छापूर्वक मेरी अनुमति के बिना ही इस कन्या शकुन्तला के साथ जो विवाह कर लिया है, तुम दोनों की स्वेच्छा से किये हुये उस गान्धर्व विवाह को मैंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया है, क्योंकि—

आप राजा होने के कारण हम आदरणोयों में श्रेष्ठ समझे जाते हैं और यह शकुन्तला भी

---

पाठा०—१. यन्मिथ:समवायादिमां। २. भवानुपयेमे। ३. मूर्तिमतीव सत्क्रिया।

तदिदानीमापन्नसत्त्वा प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति ।

---

अग्रसरः पुरोगामी मुख्यः स्मृतोऽसि=मतोऽसि, वयं त्वां सत्क्रियार्हाणाम् अग्रणी मन्यामहे । शकुन्तला च मूर्तिमती शरीरधारिणी, धृतशरीरा सत्क्रिया = शोभना क्रियेव, सत्कारस्य साक्षान्मूर्तिरिव, सकलजनाभिनन्दनीयास्तीति यावत् । तुल्याः = समानाः गुणाः यस्य तत् तुल्यगुणं = समानगुणम्, वधूश्च वरश्चानयो समाहारः वधूवरं = वधूं च वरं च इमां च त्वां च वरवध्वौ समानयन् = संयोजयन् प्रजापतिः विधाता चिरस्य = बहोः कालात् वाच्यम् = असमानवधूवरयोजनरूपम् अपवादम् ।

वाच्यं वक्तव्यमित्येतौ प्रवर्तेते प्रपादने ।
वचो हे कुत्सितें हीने दूषणेऽभिधयोदिते ।। इति धरणी

न गतः = न प्राप्तः । अर्थात् राजन् ! परस्परानुरागेण त्वमिमां गान्धर्वविवाहविधिना परिणीतवान् । तत्रानन्दमेवानुभवामि, यतो हि त्वं कुलीनानामग्रणी इयं च शकुन्तला साक्षात् शरीरधारिणी सत्क्रियैवास्ति । अतस्त्वमस्या अनुरूपः, इयं च त्वदनुरूपा, युवयोः परस्परं प्रेम महता सौभाग्येन सम्पन्नम् । बहोः कालात् लोके प्रवृत्तम् असमानदम्पति संयोजनात्मकम् अपवादमसहमानो विधाता शकुन्तलामिमां त्वां दुष्यन्तं च समानगुणौ निर्माय्यात्मनःकलङ्कं मार्जितवानिति मन्ये ।

अत्रोत्प्रेक्षानुप्रासकाव्यलिङ्गालङ्कारा सन्ति, छन्दश्चास्ति वंशस्थम् ॥ १५ ॥

तत् = तस्मात् कारणात् त्वया शकुन्तलापरिणयस्य कृतत्वात् मया तदनुमतत्वाच्च इदानीं = अधुना एषा सत्त्वमापन्ना = आपन्नसत्वा यद्वा आपन्नं = प्राप्तं सत्त्वं = जीवं यामिति आपन्नसत्त्वा = गर्भिणीति सहधर्मचरणाय सह = सहैव धर्मस्य = यज्ञादेः चरणाय

---

साक्षात् शरीरधारिणी सत्क्रिया ही है । अतः अधिक समय के बाद ऐसे तुल्य गुण वधू वर का जोड़ा मिलाने से ब्रह्मा जी संसार की प्रशंसा के पात्र हुए हैं ॥ १५ ॥

**विशेष**—विधाता वधू-वर के जोड़े को कम मिलाते हैं, यदि कहीं कन्या सुन्दर होती है तो वर उसके अनुरूप नहीं रहता, यदि कहीं वर गुणी युवा एवं सुन्दर है तो कन्या कुरूपा एवं निर्गुणी होती है । इसलिए लोग ब्रह्माजी की निन्दा किया करते हैं, परन्तु तुम दोनों समान गुण एवं रूप वालों का यह जोड़ा बड़े सौभाग्य से विधाता ने बनाकर सदा की तरह निन्दा के पात्र न होकर प्रशंसा के ही पात्र हुए हैं । अर्थात् तुम दोनों का किया हुआ यह विवाह मुझे स्वीकार है ।

अष्ट दिक्पालों के अंश से उत्पन्न धार्मिक प्रवृत्ति वाला राजा संसार के समस्त आदरणीय व्यक्तियों में श्रेष्ठतम माना जाता है । श्रेष्ठ व्यक्तियों का सत्कार श्रेष्ठ वस्तुओं से ही करना समुचित है । आप सत्कार्य हैं तो शकुन्तला सत्कारस्वरूप है । अतः इससे आपका सम्मान समुचित ही है । पतिपत्नी का मेल विधाता गलत करते हैं । इसलिए कहा गया है—'या सुन्दरी सा पतिना विहीना' बेमेल व्यक्तियों का विवाह करने की जो ब्रह्मा जी के मस्तक पर कलङ्क की टीका लगी हुई थी उसको तुम दोनों शकुन्तला दुष्यन्त की जोड़ी बनाकर उन्होंने अब धो दिया है । ऐसी सुन्दर जोड़ी विधाता ने इससे पहले नहीं बनाई थी, जिससे वह निन्दा का पात्र था, अब बना दी, जिससे अब वैसा नहीं रहा क्योंकि शकुन्तला तथा दुष्यन्त अपने समय के बेजोड़ स्त्री पुरुष हैं ।

और अब आपकी धर्मपत्नी शकुन्तला गर्भिणी हैं । अतः इसको धर्माचरण के लिए अपने पास रखिए ।

**विशेष**—आपन्नसत्त्वा का अर्थ गर्भवती हैं । विवाहित व्यक्ति जो धर्म का आचरण अकेला करता है तो वह निष्फल हो जाता है । इसलिए विवाहित को अपनी पत्नी अपने पास रखकर

**गौतमी**—अज्ज किंपि वत्तुकामम्हि। ण मे वअणावसरो अस्ति। कहंति।
[ आर्य किमपि वक्तुकामास्मि। न मे वचनावसरोऽस्ति। कथमिति ]।

णापेक्खिओ गुरुअणो इमाइ ण हु पुच्छिदो अ बंधुअणो।
एक्कक्कमेव्व चरिए भणामि किं एक्कमेक्कस्स॥ १६॥
[ नापेक्षितो गुरुजनोऽनया न खलु पृष्टश्च बन्धुजनः।
एकैकमेव चरिते भणामि किमेकमेकस्य॥ ]

---

=गृहस्थाश्रमधर्मपरिपालनाय दम्पत्योः सहाधिकारादिति नियमेन सपत्नीकस्यैव पुंसो धर्माचरणेऽधिकारस्य शास्त्रबोधितत्वादितिभावः।

**गौतमी**—आर्य ! = श्रीमन् ! किमपि = किञ्चित् वक्तुकामा = कथयितुकामा अस्मि, किन्तु मे = मम वचनावसरः = कथनावकाशः न अस्ति = न विद्यते कथमिव = केन प्रकारेण—कुतो न वचनावकाशः इति चेदुच्यते। तदेवाह—

**अन्वयः**—अनया गुरुजनः नापेक्षितः (त्वयापि) बन्धुजनः न पृष्टः खलु एकैकम् एव चरिते एकस्य एकं किं भणामि।

अथ गौतमी शकुन्तला पतिग्रहविषये किमपि वक्तुमनावश्यकं मत्वा ब्रवीति—**नापेक्षित इति**। अनया = शकुन्तलया गुरुजनः = मान्यजनो महर्षिः कण्वः अहं च न अपेक्षितः=न गणितः गुरुजनापेक्षा न कृता वयमेव कर्तव्यं निर्णीतमित्यर्थः त्वयापि बन्धुजनः = एतद्बन्धुवर्गः कन्याबन्धुः न पृष्टः = शकुन्तलार्थं न याचितः इत्थमितरनिरपेक्षम् एकैकमेव चरिते = एकेन एकेनैव परस्परावाचारेणानुष्ठिते गन्धर्वलक्षणे विवाहे लक्षण कर्मणि एकस्य युवयोरेकस्य तव एकं=किमपि किं भणामि न भणामीत्यर्थः। शकुन्तलायाः तव च तुल्यदोषात् त्वयाऽनुचितं कृतमिति शकुन्तला पक्षपातेन त्वामहं न वच्मि। अतो नोचितं त्वं कृतवानिति ध्वन्यते।

राजन् ! पूर्वं विवाहकाले त्वमियं च द्वावपि अन्योन्यरागान्धतया न किमपि समुदाचारं स्मृतवन्तौ, अतोऽधुनापि अस्याः प्रतिग्रहविषये नारमणीयं किञ्चिवक्तुमुचितम्। तथाविधं स्वैच्छिकं परस्परानुरागं विचार्य त्वमिमां कण्वस्य प्रियदुहितरं शकुन्तलामनुगृहाणेतिभावः अत्रार्थापत्तिरलङ्कारो गाथा छन्दश्च॥ १६॥

---

धर्माचरण करना चाहिए। क्योंकि शास्त्रों में सपत्नीक होकर धर्माचरण करना उचित माना गया है—'सपत्नीको धर्ममाचरेत्'। पत्नी के साथ-साथ धर्माचरण का आदेश देकर धर्माचार्यों ने पत्नियों को अत्यन्त ऊँचा स्थान दिया है। गान्धर्व विधि से किया गया विवाह भी धर्मविवाह माना जाता है। इसलिए शकुन्तला के साथ रहकर धर्माचरण का आदेश दिया गया है।

**गौतमी**—श्रीमन् ! मैं भी कुछ कहना चाहती हूँ, पर, मेरे लिए कहने का मौका ही नहीं रह गया है, क्योंकि—

हे राजन् ! इस गान्धर्व विवाह के सम्बन्ध में न तो इस शकुन्तला ने अपने गुरुजनों का कुछ ख्याल किया, न आपने ही अपने बन्धु-बान्धवों से कुछ पूछा। अतः तुम दोनों एक प्रकार के दोषी हो। अतः किसको दोष दिया जाय ? एक अपराधी हो तो उसे कुछ कहा सुना जाय, पर जब दोनों ही दोषी हैं। तब किसके लिए दोष दिया जाय ?॥ १६॥

**विशेष**—गौतमी लोकव्यवहार में अति कुशल है। जिस समय शार्ङ्गरव महर्षि कण्व का सन्देश सुना रहे थे उस समय राजा की मुखाकृति पर अस्वीकृति अनभिज्ञता तथा घृणा के भाव उमड़

**शकुन्तला**—( आत्मगतम् ) किं णु खु अज्जउत्तो भणादि [ किं नु खल्वार्यपुत्रो भणति । ]

**राजा**—किमिदमुपन्यस्तम् ।

**शकुन्तला**—( आत्मगतम् ) पावओ खु वअणोवण्णासो । [ पावकः खलु वचनोपन्यासः । ]

**शार्ङ्गरवः**—कथमिदं नाम । भवन्त एव सुतरां लोकवृत्तान्तनिष्णाताः ।

---

**शकुन्तला**—( आत्मगतं स्वगतम् ) वदति आर्यपुत्र !=श्रेष्ठः स्वामी किं नु खलु भणति=किमुत्तरं दद्यात् ।

**राजा**—महर्षेः दुर्वाससः शापबलेन विस्मृतविवाहवृत्तान्ते राजा पृच्छति—किमिदं किमुपर्युक्तं स्वेच्छापरिणयादिकम् उपन्यस्तम्=कथितम्, किमिदमनारब्धमित्यर्थः । अस्योपन्यासस्यासम्बद्धत्वान् तदर्थो मया नावबुध्यत इति भावः ।

**शकुन्तला**—दुर्वाससा दत्तस्य शापस्य वृत्तान्तमजानन्ती शकुन्तला राज्ञो वचनमाकर्ण्य आत्मगतं विचारयति—पावकः=अनलः खलु एव साक्षात् अग्निसमो वचनोपन्यासः=वाग्विन्यासः स्वामिनो वचनोपन्यासस्य हृदयदाहकत्वादग्निसमत्वमुक्तम् ।

**शार्ङ्गरवः**—अथ राज्ञः दुर्वाससः शापहेतुकं शकुन्तलाविस्मरणमजानन् शार्ङ्गरवो राजोक्तेरनौचित्यं बोधयितुमुपक्रमते—कथमिदं नाम=कथं=केन प्रकारेण इदम् उपर्युक्तं संभाव्यते, किमिदमुपन्यस्तमिति राजोक्तौ इदं पदं कुतः प्रयुज्यते । अस्मदुदीरितं वृत्तान्तमजानन्निव किमिति पृच्छतीति भावः । भवन्तः=यूयम् एव सुतराम्=सुष्ठु लोकस्य=जगतः वृत्तान्ते=व्यवहारे निष्णाताः=दक्षा इति लोकवृत्तान्तनिष्णाताः=लोकव्यवहारपटवः, वर्णाश्रमधर्मस्य पालकत्वाद् भवन्तो राजान एव अस्मदपेक्षया सुतरां लोकव्यवहारस्य वृत्तज्ञाः, वयन्तु तपोवनवासित्वान्नलोकवृत्तान्तभिज्ञाः । तथापि यावदवगतं लोकवृत्तं वदाम इति भावः ।

---

रहे थे, गौतमी ने उन भावों को ताड़ लिया और वात्सल्यपूर्ण सुझाव देना आरम्भ किया । वस्तुतः शकुन्तला को इसमें अपने गुरुजनों तथा बन्धुजनों की अनुमति ले लेनी चाहिए थी तथा आपको भी अपने बन्धुओं एवं शकुन्तला के बन्धुओं से बातचीत कर लेनी चाहिए थी, जिससे इस प्रकार के गुप्त रूप से गान्धर्व विवाह करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती । अतः इस विषय में आप दोनों समान ही दोषी हैं । जब दोनों का समान ही दोष है, तो एक दूसरे को दोष न देकर अपना ही दोष स्वीकार करना चाहिए, और दूसरे पर आश्चर्य या क्रोध करना उचित नहीं है ।

**शकुन्तला**—( **मन ही मन** ) देखें, अब आर्यपुत्र इस विषय में क्या कह रहे हैं ?

**राजा**—हैं ! हैं ! यह क्या कहा जारहा है, आप लोग यह कैसी बात कह रहे हैं ?

**शकुन्तला**—( **मन ही मन** ) हा धिक् ! हा धिक् ! इनका यह वचन तो आग की तरह जलाने वाला है ।

**शार्ङ्गरव**—आप यह क्या कह रहे हैं कि यह क्या बात है ? हे राजन् आप तो स्वयं लोक व्यवहार को अच्छी तरह जानने वाले हैं । देखिए—

**सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।**
**अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥ १७॥**

**राजा**—किं चात्रभवती मया परिणीतपूर्वा ?

---

**अन्वयः**—ज्ञातकुलैकसंश्रयां भर्तृमतीं सतीमपि जनः अन्यथा विशङ्कते। अत स्व-बन्धुभिः प्रिया अप्रिया वा प्रमदा परिणेतुः समीपे इष्यते।

तमेव लोकव्यवहारं निर्दिशति—**सतीमपीति**। ज्ञातिकुलैकसंश्रयां भर्तृमतीं सती-मपि जनः अन्यथा विशङ्कते। अतः स्वबन्धुभिः प्रिया अप्रिया वा प्रमदा परिणेतुः समीपे **इष्यते** ज्ञातिकुलं = पितृकुलं बान्धवगोत्रमेव एकः = केवलः संश्रयो यस्याः सा ज्ञातिकुलैक **संश्रयां** = पितृगृहमात्रवासशीलां, बान्धवगृहवासिनीं वा भर्तृमतीं = सभर्तृकां, विद्यमान धवां, सधवां सुवासिनीम् सतीमपि पतिव्रतां साध्वीमपि जनः = लोकः अन्यथा = अन्य-**प्रकारेण** असतीमिति विशङ्कते = सम्भावयति। अतः = अस्मादेव खलु कारणात् लोका-**पवादभयात्** स्वबन्धुभिः = वधूबन्धुभिः प्रिया = भर्तुरभिमता अप्रिया भर्तुरनभिमता वा **प्रकृष्टो मदः** = तारुण्यमदो यस्यां सा प्रमदा=स्त्रीमात्रम् परिणेतुः = वोढुः, पत्युः समीपे= निकटे, **सन्निधौ इष्यते** = वाञ्छ्यते प्रार्थ्यते। यत एवमतो लोकापवादभीरुणा गुरुणा त्वयोपेक्षिता साध्वी तव धर्मपत्नीयं शकुन्तला त्वत्समीपं प्रापिता तदिदानीं धर्माचरणाय **प्रतिगृह्यताम्**।

अर्थात् तपोवननिवासिनो वयं न सम्यक् लोकवृत्तमवगच्छामः। राजन्! युवतीनां **चारित्र्यं सर्वदा** भवति संशयास्पदम्। यदि काचिदपि सधवा सती स्त्री पितृगेहं तिष्ठेत्तदा **साधारणोऽपि** जनः तत्र सन्दिहानोऽसती तां सम्भावयति। अतो लोकापवादभिया वयं **तव सन्निधौ** इमामानीतवन्तः। यदीयं तव परिणीता प्रिया पत्नी चेत्तदा मां गृहिणीं मत्वा **गृहाण**, अन्यथा दासीवत् परिपालनीया। यतो हि भवन्तमन्तरा अस्या नान्या कापि गति-रिति तात्पर्यम् अत्राप्रस्तुतप्रशंसा काव्यलिङ्गानुप्रासालङ्कारा वंशस्थवृत्तञ्च ॥ १७॥

**राजा**—कण्वान्तेवासिनः शार्ङ्गरवस्योक्त्या तदर्थमवगच्छन् राजा पृच्छति–मया = **दुष्यन्तेन** अत्रभवती = मान्येयं तापसदुहिता पूर्वं परिणीता = परिणीतपूर्वा = प्राक्कृतो-

---

जिसका पति मौजूद है, ऐसी युवती स्त्री यदि हमेशा पिता या बन्धु-बान्धवों के ही घर पर रहे तो, चाहे वह कितनी सती क्यों न हो, परन्तु लोग तो उसके विषय में अनेक प्रकार की विपरीत शङ्काएँ करने लगते ही हैं। अतः युवती स्त्री को चाहे वह पतिप्रिया हो या न हो, तो भी बन्धु-बान्धव उसे पति के घर ही छोड़ना चाहते हैं ॥ १७॥

**विशेष**—यदि कोई विवाहिता स्त्री अपने पिता के यहाँ रह जाती है तो लोग उसके सम्बन्ध में अनेक शङ्काएँ उठाते रहते हैं। कोई कहता है कि यह अमुक युवक से फँसी हुई है अतः पति के घर रहना नहीं चाहती है; तो कोई कहता है कि यह दुश्चरित्रा है अतः इसका पति इसे अपने यहाँ नहीं रखता है परन्तु वास्तविक बात कोई नहीं जानता। अतः भारतीय शास्त्रों में पति के जीवित रहते स्त्रियों का अपने पति के घर रहना उचित है, पिता के घर रहना अनुचित बतलाया गया है। देखिए पद्मपुराण का भी कहना है—

कन्या पितृगृहे नैव सुचिरं वासमर्हति।
लोकापवादः सुमहान् जायते पितृवेश्मनि ॥

**राजा**—तो, क्या मैंने इस श्रीमती से कभी विवाह किया है ?

**शकुन्तला**—( सविषादम् । आत्मगतम् ) हिअअ संपदं दे आसंका । [ **हृदय सांप्रतं त आशङ्का ।** ]

**शार्ङ्गरवः—किं कृतकार्यद्वेषो धर्मं प्रति विमुखता कृतावज्ञा ।**

---

द्वाहा अस्ति किम् = किमु ? किमियं स्त्री मया पूर्वं परिणीता न मया तथा स्मर्यते इति भावः ।

**शकुन्तला**—सा सविषादमात्मगतं वदति—हे हृदय ! साम्प्रतं = आर्यपुत्रे एवं वदति सति ते = तव आशङ्का = युक्ता, यदाशङ्कितममङ्गलं मया तदिदमुपस्थितम् । अतो ते शङ्का सत्या जातेति भावः ।

**शार्ङ्गरवः**—किञ्चेति पूर्वोक्तं राज्ञो वचनेन शकुन्तला विषये वैमुख्यमाशङ्क्य शार्ङ्गरवः सामर्षमाह—**किं कृतकार्येति** पद्यार्द्धम्—

**अन्वयः**—कृतकार्यद्वेषः किम् ? धर्मं प्रति विमुखता किम् ? कृतावज्ञा किम् !

तव राज्ञः कृतं = विहितं यत् कार्यं शकुन्तलाया गान्धर्वपरिणयात्मकं तत्र = परिणीतायामस्यां द्वेषः अप्रीतिरिति कृतकार्यद्वेषः = स्वेच्छया निष्पादिते गान्धर्वविवाहे तवारुचि किम्, धर्मं = धर्माचरणं प्रति विमुखता वैमुख्यं पराङ्मुखता किम् ? पूर्वं धर्मसम्पादनार्थमिमां परिणीयेदानीं धर्मार्जनवैमुख्यं जात किमित्याशयः । कृतस्य = सम्पादितस्य कर्मणः अवज्ञा = अनादरः, एते आरण्यका दरिद्रा मुनयः न तु मया सह सम्बन्धयोग्या इत्यनादरः किम् ? एषु उक्तेषु निमित्तेषु अन्यतमं तवास्यां वैमुख्यस्य निमित्तं किमिति प्रश्नस्याशयः ।

---

**शकुन्तला—( बड़े खेद के साथ मन ही मन )** हे हृदय ! मेरी अमङ्गल की आशङ्का आज सच्ची सिद्ध हो गई ।

**शार्ङ्गरव**—हे राजन् ! क्या आप स्वयं अपने मन से किये हुए इस गान्धर्व विवाह से द्वेष करते हैं या धर्म से विमुख होना चाहते हैं या अपने किये हुए कार्य का तिरस्कार करना चाहते हैं या हमारा तिरस्कार करना चाहते हैं ?

**विशेष**—भले ही अपना किया हुआ काम गलत हो, पर उसे स्वीकार कर लेना चाहिए धर्म से मुँह नहीं मोड़ना चाहिए । जान बूझकर अवज्ञा करना ठीक नहीं । दुष्यन्त ने जो शकुन्तला से गान्धर्व विवाह किया है उसे स्वीकार नहीं करते, अतः धर्म से पीछे हट रहे हैं, सारा वृत्तान्त जानते हुए भी इनकार करना उचित नहीं । शकुन्तला आश्रम में पली है वह झूठ नहीं बोल सकती, राजा भले ही झूठ बोल जाय यह समझाकर शार्ङ्गरव का भर्त्सनापूर्ण वचन है । वस्तुतः शार्ङ्गरव को यह ज्ञान नहीं है कि महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण राजा दुष्यन्त को शकुन्तला के विवाह का स्मरण नहीं है ।

यहाँ दोनों पक्ष सही दिखाए गये हैं ! राजा दुष्यन्त को याद नहीं है । इसलिए इनकार कर रहे हैं शार्ङ्गरव का भी सोचना ठीक ही है । शार्ङ्गरव सोचता है कि यह धर्मतः राजा खासकर मेरा अपमान कर रहा है जो उचित नहीं ।

पर प्रसंग को देखने से प्रतोत होता है कि राजा दुष्यन्त का उज्वल चरित्र धीरता, गम्भीरता सहिष्णुता तथा धार्मिकता के साथ उभर आया हैं ? इस प्रकार के कटु वाक्यों पर वह धैर्य नहीं छोड़ता उत्तेजित नहीं होता और धर्म छोड़ने का साहस नहीं करता । इस प्रकार यहाँ राजा का आदर्शमय चरित्र सामने आ गया है ।

महाभारत में जहाँ से यह कथा ली गई है वहाँ दुष्यन्त जानते हुए भी इनकार करते दिखाए

**राजा**—कुतोऽयमसत्कल्पनाप्रश्नः ।

**शार्ङ्गरवः**—

**मूर्च्छन्त्यमी विकाराः [1]प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु ॥ १८ ॥**

**राजा**—विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि ।

**गौतमी**—जादे मुहुत्तअं मा लज्ज । अवणइस्सं दाव दे ओउंठणं । तदो तुम भट्टा अहिजाणिस्सदि । [ **जाते मुहूर्तं मा लज्जस्व । अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनम् । ततस्त्वां भर्ताभिज्ञास्यति ।** ] ( इति यथोक्तं करोति । )

---

**राजा**—शार्ङ्गरवोक्तिमसहमानो राजा मध्ये एव सामर्षं पृच्छति—**कुतोऽयमिति ।**

कुतः = कथम् आपद्यते अयं = पूर्वोक्तः असत् कल्पना प्रश्नः = असताम् = अविद्यमानानां कृतकार्यंद्वेषादीनां कल्पनया प्रश्नः, कृतकार्यंद्वेषादीन् मयि आरोप्य कुत एवं पृच्छयते ? भवादृशानामिदमनुचितम् तस्माद् भवतां कथमयमुपालम्भः ?

**शार्ङ्गरवः**—राजोक्तमसत्कल्पनामुत्तरार्द्धेन शार्ङ्गरवो निरस्यति—**मूर्च्छन्त्यमीति ।**

**अन्वयः**—ऐश्वर्यमत्तेषु प्रायेण अमी विकारा मूर्च्छन्ति ॥ १८ ॥

**ऐश्वर्येण** = प्रभुत्वेन मत्तानां = उन्मत्तानां प्रभुत्वमदोन्मत्तानाम् सदसद्विवेकहीनानां प्रायेण = बाहुल्येन अमी विकाराः = उक्ता विकृतयः, कृतकार्यंद्वेषावज्ञादयो दोषा मूर्छन्ति = समुद्भवन्ति वर्द्धन्ते । ऐश्वर्येण मत्त एव भवान् कृतकार्यंद्वेषं कृतावज्ञादिकं वाऽस्माकमवज्ञां वा किं करोतीत्याशयः । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कार आर्या छन्दश्च ।

**राजा**—शार्ङ्गरवोक्तिमाकर्ण्य नृपो वदति-विशेषेण=अत्यर्थं सुतराम् अतिक्षिप्तोऽस्मि= तिरस्कृतोऽस्मि । = भर्त्सितोऽस्मि, लाञ्छितोऽस्मि ऐश्वर्यमदमत्त्वकथनात् ।

**गौतमी**—राजानं दुष्यन्तं प्रत्याययितुमारभमाण गौतमी शकुन्तलामाह—**जाते ! पुत्रि !** मा लज्जस्व = लज्जां न कुरु तावत्ते = तव अवगुण्ठनं=मुखावरणम् अपनेष्यामि= दूरीकरिष्यामि ततः = तत्पश्चात् भर्ता = स्वामी त्वां भवतीं अभिज्ञास्यति = परिचेष्यति ( इति = एवमुक्तम = नातिक्रम्य यथोक्तं = अवगुण्ठनापनयनं करोति = विदधाति ) ।

---

गये हैं, वहाँ उनका चरित्र निकृष्ट कोटि का माना गया है । पर यहाँ कविवर कालिदास ने दुर्वासा के शाप की कल्पना कर दुष्यन्त के चरित्र को अत्यन्त ऊँचा उठा दिया है, जो एक आदर्श चरित्रवान् राजा में होना चाहिए । यही भारतीय राजाओं का उज्वल आदर्शमय चरित्र है इसी के कारण कोई पराई स्त्री पर नजर नहीं उठाता ।

**राजा**—इन मिथ्या कल्पनाओं का अवसर ही क्या है ? अर्थात् मैंने इससे विवाह ही नहीं किया है ।

**शार्ङ्गरव**—प्रायः इस प्रकार के विकार ऐश्वर्य आदि से उन्मत्त लोगों में होते हुए प्रायः देखे जाते हैं ॥ १८ ॥

**राजा**—यह तो मेरे ऊपर कलङ्क और मिथ्या दोषों का स्पष्ट ही आरोप है ।

**गौतमी**—**( शकुन्तला के प्रति )** हे पुत्रि ! थोड़ी देर के लिए लाज छोड़, मैं तेरा घूंघट हटाती हूँ, तब तुम्हारा पति तुझे अवश्य पहचान लेगा । **( यह कह गौतमी शकुन्तला का घूँघट हटाती है ) ।**

---

पाठा०—१. प्रायेणैश्वर्यमत्तानाम् ।

राजा—( शकुन्तलां निर्वर्ण्य आत्मगतम् )।

**इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति**
**प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न [1]वेति व्यवस्यन्।**
**भ्रमर इव [2]विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं**
**न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि [3]हातुम्॥ १९॥**

---

**राजा**—( शकुन्तलां = कण्वदुहितरं निर्वर्ण्य = निपुणं विलोक्य, सावधानम् अङ्ग-प्रत्यङ्गानि विलोक्येत्यर्थः। आत्मगतं = स्वगतम् )

शकुन्तलाया एवंविधावलोकनेन झटिति संजातमनोविक्रिये, राजा विमृशति—इदमिति।

अन्वयः—एवम् उपनतम् अक्लिष्टकान्तिम् इदं रूपं प्रथमपरिगृहीतं स्यान्नवा इति अध्यवस्यन् ( अहम् ) विभाते भ्रमरः अन्तस्तुषारं कुन्दमिव सपदि नैव हातुं न च परिभोक्तुं शक्नोमि।

अथ मुनिकुमाराभ्यां सह कुलपतिना कण्वेन प्रेषितां स्वसमीपे समागतां शकुन्तलामवलोक्यापि दुर्वाससः शापकारणेन तिरोहितस्मृती राजा दुष्यन्तः संजातमनोविकारो विमृशति—**इदमुपनतमिति**। एवं = इत्थम्, उपनतं = अप्रयत्नप्राप्तम् अक्लिष्टकान्ति—न क्लिष्टा = म्लाना कान्तिः लावण्यं यस्य तत् अक्लिष्टकान्ति = परिपूर्णलावण्यम्, निर्दोषसौन्दर्यम्, इदं = पुरोवर्ति रूपं = आकृतिः प्रथमं = पूर्वं परिगृहीतं गान्धर्वविवाहविधिना पत्नीत्वेन स्वीकृतमिति प्रथमपरिगृहीतम् स्यात् = भवेत्, न वा = अथवा न परिगृहीतं वा स्यात् इति = इत्थं अध्यवस्यन् = वितर्कयन् अन्यतरपक्षत्वेन निश्चयम् भजमान इत्यर्थः। अहं विभाते = प्रभाते भ्रमरः मधुपः अन्तस्तुषारं अन्तः = अभ्यन्तरे तुषारः = हिमं यस्य तत् अन्तस्तुषारं = नीहारगर्भम् कुन्दमिव = निशिविकाशि कुन्दाख्यपुष्पमिव सपदि = सहसा नैव हातुं = नैव परिहातुं न च भोक्तुं = नच स्वीकारपूर्वकमुपभोगं कर्तुं शक्नोमि = समर्थोऽस्मि खलु निश्चयेन। पूर्वमियं ललना कदाचित् मया उपभुक्ता न वेति विचारयन् तुषारजडं कुन्दपुष्पम् भ्रमर इवाहं परिभोक्तुं त्यक्तुं वा न शक्नोमि।

अर्थात् अनवद्याङ्गी परमसुन्दरीयं ललना प्राक् मया पत्नीत्वेन स्वीकृता न वेति संशयानोऽहं निश्चेतुमशक्तः। यथा रजन्यां पतितं तुषारपरिपूर्णं विकसितं कुन्दपुष्पं

---

**राजा—( शकुन्तला को अच्छी तरह नीचे ऊपर देखकर मन ही मन )**—इस उज्ज्वल कान्ति और लावण्य एवं सौन्दर्य से सम्पन्न स्वयमुपस्थित ऐसी मनोमोहक सुकुमार अङ्गों वाली हृदयग्राहिणी कान्ता को यह मुझसे कभी विवाहित हुई है या नहीं ऐसा सन्देह करना मैं इसे उसी प्रकार न तो मैं शीघ्रता से छोड़ ही सकता हूँ, न सहसा इसका उपभोग ही कर सकता हूँ जिस प्रकार माघ के महीने में होने वाले ओस कण से भरे हुए कुन्द पुष्प को प्रातःकाल में भ्रमर न तो छोड़ ही देता है, न उसके मकरन्द रस का पान ही कर सकता है॥ १९॥

**विशेष**—शकुन्तला के अद्वितीय सौन्दर्य पर मुग्ध होते हुए राजा दुष्यन्त धर्म बन्धन में पड़कर उसके स्वीकार करते हिचक रहे हैं। जैसे ओस से भींगे और ठण्डे रहने के कारण भौंरा प्रातःकाल में कुन्दपुष्परसों का न तो आस्वाद ही कर पाता है, और न उसके मधुर रस के लोभ से

---

पाठा०—१. वेत्यध्यवस्यन्। २. निशान्ते। ३. न खलु सपदि भोक्तुं। ४. भोक्तुम्।

( इति विचारयन् स्थितः । )

**प्रतीहारी**—अहो धम्मावेक्खिआ भट्टिणो । ईदिसं णाम सुहोवणदं रूपं देखिअ को अण्णो विआरेदि । [ **अहो धर्मविक्षिता भर्तुः । ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति ।** ]

**शार्ङ्गरवः**—भो राजन् किमिति जोषमास्यते ।

---

प्रभाते भ्रमरः शिशिरत्वान्नाघ्रातुं शक्नोति न वा तत्सौरभेनाकृष्टः मुक्त्वा दूरं व्रजति तथैवाहमपि स्वमुपस्थितां परमसुन्दरीमिमां ललनां धर्मभयेन न स्वीकर्तुं नापि लावण्याकृष्टः परित्यक्तुं शक्नोमीति तात्पर्यम् । अत्रोपमासन्देहकाव्यलिङ्गालङ्काराः मालिनी छन्दश्च ॥ १९ ॥

( इति = एवं पूर्वोक्तप्रकारं विचारयन् = चिन्तयन् राजा स्थितः )

**प्रतिहारी**—तथावस्थितं राजानमवलोक्य प्रतिहारी साश्चर्यं श्लाघते—अहो ! = साधु धर्मविक्षिता = धर्मस्य अवेक्षिता = दृष्टिः धर्मविक्षिता यद्वा धर्मं = मर्यादामपेक्षते पालनीयत्वेनानुनसरतीति धर्मविक्षी तस्य भावः तत्ता धर्मविक्षिता = धर्मत्वम् भर्तुः = स्वामिनः । ईदृशं = लोकोत्तरं सुखेन = अनायासेन उपनतं = प्राप्तमिति सुखापनतं अनायासलब्धं = प्रयत्नमन्तरोपगतं रूपं = सौन्दर्यं दृष्ट्वा = विलोक्य अन्यः = एतदपेक्षयाऽपरः कः विचारयति = विमृशेत् । अन्यश्चेन्नैव विचारयेत्, अयमेव विचारयतीतीदमेवास्य धर्मविक्षितत्वमिति भावः

**शार्ङ्गरवः**—राज्ञस्तथा तूष्णीं मावस्थितिमवलोक्य शार्ङ्गरवः पृच्छति— भो राजन् ! हे महाराज ! किम् इति कथमेवं जोषं = तूष्णीम् आस्यते = स्थीयते ?

---

छोड़कर अन्यत्र ही जा सकता है । वैसे ही धर्मभय के कारण राजा दुष्यन्त शकुन्तला को स्वीकार और उपभोग हो नहीं कर पाता है और न तो स्वयं उपस्थित वैसी सुन्दरी युवती नारी को छोड़ना ही चाहता है । इसका अभिप्राय यह है कि कुन्द का पुष्प माघ मास की कड़कती रात में विकसित होता है और उसमें ओस के कण भर जाते हैं । सुबह में उसकी मादक गन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमर बैठना चाहता है, पर पास में पहुँचते ही उसका अंग सुकड़ने लगता है । अतः ऊपर उड़ जाता है तथा उसके सुगन्ध से आकृष्ट हो दूर भी नहीं जा पाता, पास में ही मड़राता रहता है । बर्फ की ठण्ढक से भ्रमर कुन्द का रस नहीं ले पाता है । ठीक यही दशा राजा दुष्यन्त की भी है, कण्वदुहिता शकुन्तला गर्भवती है, यह गर्भ किसका है ? इसको स्वीकार करना धर्मविरुद्ध कार्य है । इसलिए राजा दुष्यन्त शकुन्तला को अङ्गीकार करने में असमर्थ है, किन्तु उसकी देह पर मनोमुग्धकारी छलकता हुआ अद्भुत लावण्य एवं सौन्दर्य को छोड़ना भी नहीं चाहता है । दुष्यन्त की मनोगति 'भई गति सांप छुछुन्दर केरो' सी हो गई है । यहाँ कुन्द पद से इसका संकेत मिलता है कि जिस प्रकार दिन में वर्फ गल जाने पर भ्रमरः पुनः पूर्ववत् कुन्द पुष्प का रसास्वाद भलीभाँति करता है उसी प्रकार धर्मबाधा शाप के प्रभाव को नष्ट हो जाने पर दुष्यन्त का शकुन्तला से पुनः मन चाहे मिलन हो सकता है और वह पुनः पूर्ववत् उसके सौन्दर्य का उपभोग कर सकता है ।

**( ऐसा विचार करता हुआ राजा चुप-चाप बैठ जाता है )**

**प्रतिहारी—( मन ही मन )** धर्म पर हमारे महाराज की कैसी दृढ आस्था है ? नहीं तो इस प्रकार स्वयं उपस्थित ऐसे सुन्दर स्त्रीरत्न को देखकर भला कौन दूसरा पुरुष इस प्रकार धर्म-अधर्म का विचार कर सकता है ?

**शार्ङ्गरव—हे राजन् !** आप चुपचाप क्यों रह गये हैं ।

**राजा**—[1]भोस्तपोधनाः ! चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि । तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां प्रत्यात्मानं [2]क्षेत्रिणमाशङ्कमानः प्रतिपत्स्ये ।

**शकुन्तला**—( अपवार्य ) अज्जस्स परिणए एव्व संदेहो । कुदो दाणि मे दूराहिरोहिणी आसा ? [ आर्यस्य परिणय एव संदेहः । कुत इदानीं मे दूराधिरोहिण्याशा ? ]

---

**राजा**—शार्ङ्गरवेण पृष्टो राजा उत्तरयति-भोः तपोधनाः = हे तपस्विनः ! चिन्तयन् = विचारयन् अपि अत्रभवत्याः = श्रीमत्याः पुरः स्थितायाः वनितायाः स्वीकरणम् = गान्धर्वविधिना परिणयनम् न अङ्गीकारम् स्मरामि = स्मर्तुं न प्रभवामि । तत् तर्हि कथं = केन प्रकारेण अभिव्यक्तं = स्फुटं प्रतीयमानं सत्वस्य गर्भस्य लक्षणं कपोलपाण्डिमजघन गौरवादिरूपं चिन्हं यस्याः सा ताम् अभिव्यक्तसत्वलक्षणाम् = स्फुटगर्भचिन्हाम्, इमां प्रति = विषये आत्मानं स्वं क्षेत्रिणं क्षेत्रं = पत्नी यस्यासौ क्षेत्री तं क्षेत्रिणं गर्भिण्या अस्या अद्य स्वीकारेऽस्यामुत्पन्नः पुत्रो मे क्षेत्रजः स्यान्नत्वौरसः । यस्य पत्न्यामन्यो जनो गर्भं धत्ते स क्षेत्रीत्युच्यते । आशङ्कमानः = विचारयन् कथमिमां प्रतिपत्स्ये—स्वीकरिष्ये । अङ्गीकरिष्यामि ।

**शकुन्तला**—राजोक्तिमाकर्ण्य शकुन्तला ( अपवार्य ) चिन्तयति—आर्यस्य = स्वामिनः परिणये = विवाहविषये एव सन्देहः = शङ्का, अविश्वासः, कुतः = क्व इदानीम् = अधुना दूरं = अत्यर्थं पतिगृहे गत्वा महिषोपदं प्राप्स्यामीत्यद्यधिरोढुं शीलं यस्याः सा

---

**राजा**—हे तपस्वियों ? बहुत विचार करने पर भी इस श्रीमती के साथ गान्धर्व-विधि से अपने विवाह करने की बात तो मुझे स्मरण नहीं आरही है । अतः मैं इस स्पष्ट गर्भवती स्त्री को अपनी स्त्री कैसे बना सकता हूँ, क्योंकि इसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा—वह मेरा औरस पुत्र न होकर क्षेत्रज ( अपनी स्त्री में दूसरे पुरुष से उत्पादित ) पुत्र ही होगा । अतः मैं ऐसी स्त्री को कैसे ग्रहण कर सकता हूँ । और दूसरे की सन्तान को मैं अपनी सन्तान कैसे बना सकता हूँ ।

**विशेष**—कोश के अनुसार क्षेत्र शब्द, शरीर, खेत, तीर्थ तथा स्त्री का वाचक है—क्षेत्रं शरीरे केदारे सिद्धस्थानकलत्रयोः ( मेदिनीकोशः ) क्षेत्रं पत्नीशरीरयोः ( अमरकोशः ) क्षेत्रवाला क्षेत्री कहा जाता है । इस पारिभाषिक शब्द का अर्थ वह पति माना जाता है, जो नाम मात्र का पति है । उसकी पत्नी की वह सन्तान दूसरे की है । इसे यों समझा जा सकता है यदि किसी के खेत में कोई व्यक्ति बीज छोड़ दे तो, खेत वाला उससे उत्पन्न फसल का असली मालिक होता है । केवल बो देने वाला व्यक्ति बीजवपन मात्र का अधिकारी है, न कि फसल का उसी प्रकार यदि किसी की स्त्री में किसी दूसरे व्यक्ति ने दैवात् या बलात्कार से गर्भाधान कर दिया तो उससे उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहलाता है, उसे औरस पुत्र नहीं कह सकते हैं । अतः इस शकुन्तला में परपुरुष के द्वारा गर्भाधान से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज ही कहलायेगा, औरस नहीं । इसलिए दुष्यन्त का कहना है कि अन्य पुरुष से गर्भिणी हुई इसे मैं अपनी अर्द्धाङ्गिनी नहीं बना सकता, इससे मुझे अधार्मिक हो जाना पड़ेगा । शकुन्तला के गालों का पीलापन देखकर राजा ने उसे पूर्णतः गर्भवती होना समझ लिया । अभिराम ने बताया है कि गर्भवती स्त्रियों का कपोल पीला पड़ जाता है और स्तनों का अग्रभाग काला हो जाता है—'कपोलपाण्डिमस्तनचुचुकनीलिमादि' ।

**शकुन्तला**—( **मन ही मन** ) हा धिक् ! हा धिक् ! यहाँ तो विवाह ही में सन्देह है, तब दूर बढ़ी हुई मेरी सब आशायें तो अब टूट ही गईं समझनी चाहिए ।

**विशेष**—शकुन्तला ने सोच रखा था कि मैं चक्रवर्ती राजा की दुलारी पटरानी बनूँगी तथा

---

पाठा०—१. भोस्तपस्विन । २. क्षेत्रियमिव मन्यमानः ।

**शार्ङ्गरवः**—मा तावत् ।

[1]कृताभिमर्शामनुमन्यमानः सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः ।
[2]मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन ॥ २० ॥

---

दुरधिरोहिणी व्यापिनी, आशा=कामना 'क्षेत्रं पत्नी शरीरयोः' इत्यमरसिंहः । क्षेत्रं शरीरे केदारे सिद्धस्थानकलत्रयोः । ( मेदिनी कोशः )

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ।

**शार्ङ्गरवः**--राज्ञो वचनमाकर्ण्य क्रुद्धः शार्ङ्गरवः आह--मा तावत्=भवदुक्तमिदं विपरीतम् । किं तदित्याह--**कृताभिमर्शामीति** ।

**अन्वयः**—कृताभिमर्शां सुतां अनुमन्यमानः मुनिः त्वया विमान्यो नाम मुष्टं स्वमर्थं प्रतिग्राहयता येन ( त्वं ) दस्युरिव पात्रीकृतोऽसि

महर्षेः कण्वस्य दुहितरं शकुन्तलामस्वीकृतवतो दुष्यन्तस्योक्तिं निशम्य क्रुद्धः शार्ङ्गरवो ब्रवीति—**कृताभिमर्शामीति** । कृतः=विहितः अभिमर्शः बलात् स्पर्शः, बलाद्धरणं यस्याः सा ताम् कृताभिमर्शां त्वया कृतबलात्कारां सुतां=शकुन्तलाम् अनुमन्यमानः=अनुमोदमान इयं महिषीत्वेन प्रतिगृह्यतामिति त्वत्समीपं प्रापयन्निव अत एव मुनिः=महर्षिः कण्वः त्वया=भवता विमान्यः किम् । अवज्ञेयः, किं विमाननीयः न विमाननीय अपितु माननीय एव दस्युः=चोर इव स्वं=निजं मुष्टं=चोरितम् अर्थं=धनम् शकुन्तलारूपम् प्रतिग्राहयता=तुभ्यं प्रत्यर्पता=दानरूपेण मन्यमानेन येन कण्वेन अपात्रम्=अयोग्यपालम् पात्रं=योग्यः कृतः विहितः सम्पद्यमानः पात्रीकृतः=पात्रत्वं प्रापितोऽसीत्यर्थः ।

**अयं भावः**—स्वस्वानुपस्थितौ स्वानुमतिमन्तरा सरलां स्वां दुहितरं शकुन्तलां स्वेच्छया परिणीय तस्याः शीलं खण्डयितुः ते दस्योरिव अशिष्टव्यवहारमगणयित्वा चोरायैव चोरितं वस्तु प्रयच्छन्निव दस्युभूताय तुभ्यमेव तां समर्थयन् मुनिः त्वया न तिरस्करणीयः यतो हि तेन मुनिना त्वमपात्रभूतोऽपि कन्यादानेन पालीकृतोऽसि । तस्मादेनां त्वया तत्तनयां स्वीकृत्य स मुनिः नूनं संमाननीयः । अन्यथा क्रुद्धः काल इव त्वां स विलयं नेष्यतीति भावः । अत्रोपमा विषयानुप्रासालङ्काराः उपजातिश्छन्दश्च ॥ २० ॥

---

मेरा पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् होगा, किन्तु यहाँ तो पासा ही उलट गया । ये तो न मुझे पहचानते हैं न मुझे स्वीकार ही करना चाहते हैं । मेरी आशा निराशा के रूप में परिणत हो गयी ।

**शार्ङ्गरव**—राजन् ! आपके द्वारा अनेक लोभ-लालच देकर आप में आसक्त हुई अपनी भोली भाली कन्या को गान्धर्व विधि से विवाह कर लेने पर भी उसे स्वीकार करने वाले महर्षि कण्व का आप इस प्रकार अपमान न करें । जिस महर्षि ने आपको उसी प्रकार अपनी कन्या का पति स्वीकार कर लिया है जिस प्रकार चोरी किये हुए अपने धन का चोरी करने वाले चोर को ही दानपात्र मानकर उसे ही दान दे दिया जाय ॥ २० ॥

**विशेष**—इस पद्य में शार्ङ्गरव दुष्यन्त को स्पष्ट रूप से डाकू बनाते हुए महर्षि कण्व की असीम अनुकम्पा व्यक्त की है । जैसे कोई व्यक्ति चोरी करने वाले को चुराया हुआ अपना धन दे दे वैसे हो चोरी से तुम्हारे द्वारा अपनी कन्या का गान्धर्व-विवाह कर लेने पर भी तुझ चोर को ही पात्र समझकर अपनी कन्या को सौंप देने वाला दयालु महर्षि कण्व को तुम इस प्रकार अपमानित

---

पाठा०—१. कृताव्मर्शामनुमन्यमान । २. दुष्टं ।

**शारद्वतः**—शार्ङ्गरव ! विरम त्वमिदानीम् । शकुन्तले वक्तव्यमुक्तमस्माभिः । सोऽयमत्रभवानेवमाह । दीयतामस्मै [1]प्रत्ययप्रतिवचनम् ।

**शकुन्तला**—( अपवार्य ) इमं अवत्थंतरं गदे तारिसे अणुराए किं वा सुमराविदेण ? अत्ता दाणि मे सोअणीओ वि ववसिदं एदं । ( प्रकाशम् ) अज्जउत्त ( इत्यर्धोक्ते )संसइदे दाणि परिणए ण एसो समुदाहारो । पोरव ! ण जुत्तं णाम दे तह पुरा अस्समपदे सहावुत्ताण हिअअं इमं जणं समअपुव्वं प्पतारिअ ईदिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं । [ **इदमवस्थान्तरं गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन ?**

---

**शारद्वतः**—त्वमिदानीं विरम = इतः परं त्वया न वक्तव्यम् शकुन्तले वक्तव्यमुक्तमस्माभिः = अस्माभिः यावद्वक्तुं शक्यं तावदुक्तम् । सोऽयं = स एव येन त्वं परिणीता अत्रभवान् श्रीमान् एवं इत्थं पूर्वोक्तमाह = वदति । अर्थात् अस्मदुक्तो मान्यो राजा विप्रतिपन्नः सन् तव परिणयमेव अपलपतीति भावः अतः अस्मै = सन्दिहानाय राज्ञे प्रत्ययजनकं प्रतिवचनमिति प्रत्ययप्रतिवचनम् = विश्वासोत्पादकम्, प्रतिवचनम् । उत्तरं दीयतां = उपस्थाप्यतां त्वयेति शेषः ।

**शकुन्तला**—( अपवार्य ) शोच्यास्मीति स्वयं विचारयति शकुन्तला— तादृशे — तत्प्रकारके अतिशयिते तादृशीं पराकाष्ठागते अनुरागे=प्रेम्णि स्नेहं इदं=एतत् अवस्थान्तरं = अन्यामवस्थां अभिज्ञानगम्यमवस्थाविशेषम् गते=प्राप्ते सति स्मारितेन=स्मरणोत्पादनायासेन किम्वा = किन्नु फलम् ? न किञ्चिदपि फलं पश्यामि । इदानीं = साम्प्रतं मे = मम आत्मा = स्वरूपं शोचनीयः = सचेतोभिः शोच्यतां गतः, अतः शोधनीयः कलङ्कान्मोचनीय इति हेतोः एतद् व्यवसितं = मयैष उद्यम आरब्धः, प्रतिवचनप्रदाने मे प्रवृत्ति-

---

मत करो । महर्षिने उस महामानवके समान तुम पर महान् अनुग्रह किया है जो चोरोंको दण्ड देने के बजाय उसे चुराया धन सौंप दे । तुमने उनकी प्यारी धर्मपुत्री का स्पर्श भी किया, फिर उनका अपमान भी कर रहे हो, इसका फल अच्छा न होगा । इस प्रकार उस ऋषिकुमार का क्रोध चरम सीमा पर पहुँच गया है, वह खरी-खरी बातें सुना देता है, यह धर्मपालन का बल है कि वह राजा से स्पष्ट कह देने में नहीं डरता ।

**शारद्वत**—शार्ङ्गरव ? अब तुम चुप रहो । शकुन्तले ! हमने राजा से जो कुछ कहना था कह दिया, पर ये राजा ऐसी बात कह रहे हैं कि इन्होंने तुम्हारे साथ विवाह ही नहीं किया है । अतः अब तू ही इनको विश्वास दिलाने वाली कोई ऐसी बात कहो जिससे इनको तुम्हारे साथ विवाह का विश्वास हो सके ।

**विशेष**—शारद्वत बड़ा ही गम्भीर है, उसे शीघ्र क्रोध नहीं आता । क्रोध से काम न देखकर वह अपने सखा शार्ङ्गरव को शान्त करता हुआ शकुन्तला से कहता है कि तू ही कोई गुप्त विश्वसनीय बात बता जिससे राजा को विश्वास हो जाय कि इन्होंने तुम्हारे साथ विवाह किया है । और इनके मन से परदा हट जाय । यहां शारद्वत किसी ऐसी घटना का याद दिलाना चाहता है जो प्रेमी और प्रेमिका के जीवन में किसी क्षण में घटती है और आजीवन याद रहती है ।

**शकुन्तला—( मन ही मन )** जब उस प्रकार का इनका अनुराग भी आज इस दशा में पहुँच गया है तब पिछली बातों का इन्हें स्मरण दिलाने से क्या लाभ है ? तो भी अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए ही मैं कुछ कहती हूँ ( प्रगट में ) हे आर्यपुत्र ( इतना आधा ही वाक्य कह कर बीच में ही रुक कर ) अथवा यहां जब विवाह में ही सन्देह हो रहा है, तब इन्हें आयपुत्र यह

---

पाठा—१. प्रतिविचनम् ।

**आत्मेदानीं मे शोचनीय इति व्यवसितमेतत्। आर्यपुत्र !–संशयित इदानीं परिणये नैष समुदाचारः। पौरव ! न युक्तं नाम ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जनं समय पूर्वं प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम्। ]**

---

र्जायते। राज्ञः स्मरणं हि प्रत्ययप्रतिवचनस्य फलं तस्यानुरागाभावे निष्फलत्वमत आत्मनः शोच्यता निश्चितेति भावः।

अथापि शारद्वतस्य वचनगौरवाद् वच्मि—आर्यपुत्र ! श्रेष्ठ स्वामिन् ! इति=एवम् अर्धं=अपूर्णं यथा स्यात्तथा उक्ते कथिते सति आर्यपुत्रेति संबोधनमात्रमुक्त्वा स्वयमेव पुनः शकुन्तला मनसि विमृशति आर्यपुत्रेति सम्बोधनं हि पत्यौ एव प्रयुज्यते, परमयं राजा सम्प्रति स्वभार्यात्वेनापि नाङ्गीकरोति। अतः संशयिते=संशयापन्ने सन्दिग्धे परिणये=विवाहे एषः=आर्यपुत्रेति सम्बोधनपदप्रयोगः न समुदाचारः न समीचीनः, न शिष्टानुमतः लोकरीतिवदनुमोदितो नैव भवति। परणीतैव प्रमदा स्वपतिम् आर्यपुत्रेति-भाषते। तद् यदि परिणयेऽपि सन्देहस्तदैवं संबोधनपदप्रयोगो न कथमपि मम युज्यते इति भावः।

आर्यपुत्रेति चाभ्यासवशादुक्त्वाऽर्द्धे एव तन्निरुध्य राज्ञः पुरुषवंशप्रभवत्वसूचकेन पौरवेति सम्बोधनेन पुनर्वक्तुमारभते पौरव ! हे पुरुवंशोत्पन्न राजन् ! ते=तव कृते तथा तेन प्रकारेण पुरा=पूर्वम् आश्रमपदे=तपोवने स्वभावेन=निसर्गतः उत्तानम्=आर्जवयुक्तं कपटरहितं हृदयं=अन्तरं यस्य तत् स्वभावोत्तानहृदयं=प्रणयातिशयपेशलविमलमनसम् निसर्गसरलाशयं—स्वप्नेप्यकल्पितभवद्वञ्चनम् इमं जनं=मां दीनां तपस्विनीं समयपूर्वम् 'प्रतिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य नः।' इति प्रतिज्ञापूर्वकम् **'एकैकमत्रदिवसे दिवसे मदीयं नामाक्षरं गणय गच्छति यावदन्तम्'** इति सङ्केतपुरःसरम् प्रतार्य=वञ्चयित्वा ईदृशैः अक्षरैः=अतिक्रूरैः परकलत्रप्रतिपादकैः हृदयविदारकैः वर्णैः प्रत्याख्यातुं=निराकर्तुं ते=पुरुवंशोद्भवस्य तत्र भवतः मादृशं जनप्रतारणं न युक्तं न योग्यं नाम। पुरुवंशे समुत्पन्नस्य धर्मपालकस्य भवतः इदम् अनार्यमार्गानुसरणमत्यनुचितम्। तस्मान्मां न निराकुरुष्व गृहाणेवेति भावः।

---

सम्बोधन देना भी उचित नहीं, क्योंकि आर्यपुत्र यह सम्बोधन तो विवाहकर्ता पति के लिए हो सकता है। हे पौरव ! आश्रम में सच्चे अनुराग से उत्तान एवं स्निग्ध हृयय वाले इस जन (मुझ) को अनेक प्रकार की आशायें दिलाकर गन्धर्व रीति मेरे साथ विवाह, रतिक्रीड़ा, विहार आदि करके अब इस प्रकार रूखे वचनों से मेरा प्रत्याख्यान करना यह कार्य आपको कथमपि उचित नहीं है।

**विशेष**—यहाँ शकुन्तला के वचन बड़े करुणाजनक और संयत है वह सोचती है कि उत्तर प्रत्युत्तर देना व्यर्थ है, ये महाराज तो अब बात करने के भी पात्र नहीं हैं, किन्तु मुझे अपने ऊपर लगे हुए कलङ्क का मार्जन करना आवश्यक है अतः कुछ कह रही हूँ। पौरव सम्बोधन बड़े महत्त्व का है। पुरुवंश में अनेक धर्मात्मा राजा हो चुके हैं जो छल छिद्र से परे थे, ऐसे धार्मिक कुल में उत्पन्न होकर आपको छल करना उचित नहीं ? तीन चार दिनों में बुला लेने की शर्त करके अब आपको इस प्रकार करना शोभा नहीं देता। यहाँ आर्यपुत्र न कहकर शकुन्तला ने पौरव कहा है। आर्यपुत्र यह सम्बोधन विवाहकर्ता पति के लिए होता है जिसका तात्पर्य है आर्य=मेरे श्वसुर जी के पुत्र अर्थात् मेरे स्वामी=पतिदेव।

**राजा**—( कर्णौ पिधाय ) शान्तं पापम् ।

**व्यपदेशमाविलयितुं [1]किमीहसे जनमिमं च पातयितुम् ।**
**कूलङ्कषेव सिन्धुः [2]प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च ॥ २१ ॥**

---

**राजा**—( कर्णौ पिधाय=पापश्रवणनिवारणाय हस्ताभ्यां श्रोत्रे आवृत्य ) शकुन्तला-वचनमसहमानो राजा कथयति—शान्तं पापम्=दुष्कृतं निवृतं भवतु मैवं पुनः वद, त्वया विरम्यमतामिति भावः ।

**अन्वयः**—( यथा ) कूलङ्कषा सिन्धुः प्रसन्नम् अम्भः तटतरुं च ( तथात्वं ) व्यपदेशम् आविलयितुम् इमं जनं पातयितुं च किम् ? ईहसे ।

तदेव समर्थयति—**व्यपदेशमिति** । यथा कूलं=तटं कषति=भिनत्ति या सा कूलङ्कषा=तटसंघर्षिणी तीरोत्पाटनप्रवणा सिन्धुः=नदी प्रसन्नं=स्वच्छं, निर्मलम्, अम्भः=जलं तटतरुं=तीरस्थं वृक्षम् च इव यथा तथा तेनैव प्रकारेण त्वमपि व्यपदिश्यते=कीर्त्यतेऽनेनेति व्यपदेशः कुलं तत् आविलयितुं दूषयितुं मलिनीकर्तुं तथा इमं जनं=अमुं जनं मां दुष्यन्तम् च पातयितुं=पतितं कर्तुं किं=कथम् ईहसे=चेष्टसे ?

**अयं भावः**—यथा वर्षतौ वर्षाम्भः प्रवाहमदगर्विता कूलसंघर्षणप्रवणा कापि नदी तटपातेन निर्मलमपि जलप्रवाहं कलुषयति तटाश्रयं तरुलताविरुदादिकमपि पातयति तथैव पूर्वं मयाऽपरिणीतापि त्वं मां स्वपतिं मन्यमाना स्वपितृकुलं मम पौरवकुलं च दूषयितुं, माञ्च स्वधर्माच्च च्यावयितुं किमर्थं समीहसे ? अतो मैवं वद, नाहं पापं कर्तुमुत्सहे परमं पवित्रं नः कुलम्, चरित्रं च मे समुज्वलमस्ति, त्वं तु इहागमनेनैव पतिता जातेति भावः ।

अत्र मदगर्विता नदी स्थानीया शकुन्तला, स्वच्छाम्भः स्थानीयं जलं, तटस्थानीयो राजा दुष्यन्तः । यथा कूलङ्कषा नदी प्रसन्नमम्भः तटं तरुं च पातयति तद्वत् शकुन्तला पौरवकुल-दुष्यन्तानामुपमाव्यपदेशादत्रोपमा-समुच्चयालङ्कारो आर्या छन्दश्च ॥ २१ ॥

---

**राजा—( कान पर हाथ रखकर = दोनों कान बन्द करके )** इन पापमय झूठे वाक्य सुनने में जो पाप मुझे हुआ है, वह शान्त हो, शान्त हो, अर्थात् अब अधिक मत कहो ।

अपने तट को ही काटने वाली नदी जैसे अपने स्वच्छ जल को मलिन कर देती है और तट के वृक्षों को गिरा देती है उसी प्रकार तूं भी मेरे वंश को और मेरे कुल की प्रतिष्ठा को क्या मलिन करना चाहती है और मुझे गिराना चाहती हो ? ॥ २१ ॥

**विशेष**—कान बन्द करने का तात्पर्य है कि अब ऐसा अनुचित आरोप न लगे ।

यहां शकुन्तला को नदी, दुष्यन्त के कुल को निर्मल जल तथा दुष्यन्त को तटवृक्ष के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसका तात्पर्य है कि जिस प्रकार तट संघर्षिणी नदी तट को गिराकर स्वच्छ जल को मलिन कर देती हैं उसी प्रकार शकुन्तला भी दुष्यन्त को पथभ्रष्ट कर उनके निर्मल कुल को दूषित न करे ।

---

पाठा०—१. समीहसे मां च पातयितुं । २. प्रसन्नमोघं तटतरुं च ।

**शकुन्तला**—होदु जइ परमत्थदो परपरिग्गहसंकिणा तुए एव्वं वत्तुं पउत्तं ता अहिण्णाणेण इमिणा तुह आसंकं अवणइस्सं। [ **भवतु यदि परमार्थतः परपरिग्रहशङ्किना त्वयैवं वक्तुं प्रवृत्तं तदभिज्ञानेनानेन तवाशङ्कामपनेष्यामि।** ]

**राजा**—°उदारः कल्पः।

**शकुन्तला**—( मुद्रास्थानं परामृश्य ) हद्धी अंगुलीअअसुण्णा मे अंगुली। [ **हा धिक अङ्गुलीयकशून्या मेऽङ्गुलिः।** ] ( इति सविषादं गौतमीमवेक्षते। )

---

**शकुन्तला**—कण्वाश्रमात् प्रस्थानकाले सखीसन्दिष्टं स्मृत्वाऽभिज्ञानाङ्गुलीयकदर्शनेन राज्ञः शङ्कामपनेतुं शकुन्तला ब्रवीति—भवतु = अस्तु आस्तां तावदियं कथा यदि = चेत् परमार्थतः = वस्तुतः परस्य—अन्यस्य परिग्रहः = कलत्रं पत्नीयमिति शङ्कते = आशङ्कते इति परपरिग्रहशङ्की तेन परपरिग्रहशङ्किना = परस्य पत्नीयमिति शङ्काकुलेन त्वया एवं वक्तुं प्रवृत्तं = इत्थमभिहितम् तत् = तर्हि अनेन = अमुना = अभिज्ञायतेऽनेनेति अभिज्ञानं तेन अभिज्ञानेन = परिचायकचिन्हेन मुद्रिकया तव = भवतः आशङ्कां सन्देहं अपनेस्यामि = दूरीकरिष्यामि। पुरस्क्रियमाणेन प्रस्थानकाले त्वद्दत्तेन मम करतलगतत्वात् साम्प्रतं मदधीनेन।

**राजा**—उदारः कल्पः = मुख्यो न्यायः, यद्वा उदारो महान् कल्पः सङ्कल्पः, महान् विश्वासो वा उदारः विदग्धो वा कल्पः। साधुरेव प्रस्तावो यदभिज्ञानेन शङ्कामपनेष्यसीतिभावः। 'कल्पः स्यात् प्रत्यये न्याये' इति विश्वकोशः 'उदारो महति ख्याते दानशौण्डविदग्धयोः' इति च वैजयन्ती।

**शकुन्तला**—( मुद्रास्थानं = मुद्र्यतेऽनयेति मुद्रा = उत्कीर्णवर्णमङ्गुलीयकं तस्याः स्थानं = अङ्गुलिमूलं परामृश्य = स्पृष्ट्वा) शकुन्तला ब्रवीति—हा धिक्! हन्त दैवं धिक्! अहो मे दैववैपरीत्यमित्यर्थः अङ्गुलीयकेन = मुद्रया शून्या = रहिता मे = मम अङ्गुलिः = करशाखा। इति = एवमुक्त्वा विषादेन सहितं सविषादं सखेदम् गौतमीम् अवेक्षते = अवलोकयति। कथमेतदभूदितितदभिप्रायः।

---

**शकुन्तला**—अच्छा, यदि सचमुच मुझे दूसरे की स्त्री समझकर ही यह सब कह रहे हो, तो किसी चिह्न को दिखाकर मैं तुम्हारी शङ्का को दूर कर देती हूँ।

**विशेष**—शकुन्तला को यह विश्वास नहीं था कि महाराज दुष्यन्त आश्रम में परस्पर अनुराग से सम्पन्न गान्धर्व विवाह जैसे स्मरणीय वस्तु को भूल गये हैं। इसलिए अपनी बात की पुष्टि करने के निमित्त प्रमाण देने को प्रस्तुत हो गई।

**राजा**—हाँ; यह उपाय सबसे उत्तम है। कोई ऐसा चिह्न दिखाओ, जिसमें मेरा तुमसे विवाह होना सिद्ध हो सके।

**शकुन्तला**—( **अंगूठी पहनने की जगह को टटोल कर** ) हाय, हाय, मेरी अंगुली में तो अंगूठी नहीं है? ( **विषाद एवं शोक के साथ गौतमी का मुख देखती है** )।

**विशेष**—विषाद के साथ गौतमी को देखने का तात्पर्य यह है कि देवी, अनर्थ हो गया, अब क्या करूँ?

---

पाठा०—प्रथमः कल्पः।

**गौतमी**—णूणं दे सक्कावदारब्भंतरे सचीतित्थसलिलं वंदमाणाए पब्भट्टं अंगुलीअअं। [ नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टम-ङ्गुलीयकम् । ]

**राजा**—( सस्मितम् ) इदं तत्प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते ।

**शकुन्तला**—एत्थ दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं। अवरं दे कहिस्सं। [ अत्र ता-वद्विधिना दर्शितं प्रभुत्वम् । अपरं ते कथयिष्यामि । ]

**राजा**—श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम् ।

---

**गौतमी**—तदङ्गुलीयकादर्शनस्य सङ्गतिं सम्भावयन्ती गौतमी स्मारयति नूनं-निश्चयेन अवतरणम् अवतार: शक्रस्यावतार: शक्रावतार लक्षणया तदुपलक्षितो देश: शक्रावतार: तस्याभ्यन्तरे=शक्रावताराभ्यन्तरे=शक्रावतारतीर्थप्रदेशे शक्रतीर्थस्य सलिलं जलं वन्दमानाया: =नमयन्त्या: ते=तव अङ्गुलीयकं=मुद्रिका प्रभ्रष्टं=करात् च्युतम्, गलितम् ।

**राजा**—मिथ्यावचनोपन्यासचातुर्यात् तयो: आत्मवञ्चनोद्यमं संभाव्य स्मितं तेन सहितं सस्मितम्=ईषद्धास्येन सहितम् ।

**राजा कथयति**—इदं=तापसतरुण्या अलीकस्य अङ्गुलीयकस्य अदर्शने कथिते तापसवृद्धया तस्य सङ्गतिकथनम्, तत्=जगति प्रसिद्धम् प्रत्युत्पन्ना=तात्कालिकी गति:= वृद्धिर्यस्य तत् प्रत्युत्पन्नमति:=तात्कालिक प्रतिभाशालि। प्रत्युत्पन्नमतित्वलक्षणं यथा सुधाकरे—तात्कालिकी तु प्रतिभा प्रत्युत्पन्नमति: स्मृता। स्त्रीणां समूह: स्त्रैणम्, स्त्री-जाति, इति=एवं यदुच्यते=लोके जनै: कथ्यते। तत् प्रत्यक्षं ज्ञायतेऽस्माभिरित्यर्थ: ।

**शकुन्तला**—अत्र=अस्मिन् अभिज्ञानाङ्गुलीयकदर्शनविषये विधिना=विधात्रा अदृष्टेन वा प्रभुत्वं=स्वातन्त्र्यं दर्शितम्=अनुभावितम्, विधिवैपरीत्यमेवात्र हेतु: । अपरं= अभिज्ञानान्तरं ते=तुभ्यं कथयिष्यामि ।

**राजा**—श्रोतव्यं—श्रवणयोग्यम्, वचनं इदानीं=अधुना संवृत्तं=समाप्तम् । युष्मा-

---

**गौतमी**—मालूम होता है—शक्रावतार तीर्थ में शचीतीर्थ के जल की वन्दना करते समय ही तेरा अंगुली से निकल कर वह अंगूठी कहीं गिर गई है ।

**राजा**—( **मुस्कराकर** ) स्त्रियां प्रत्युत्पन्नमति = हाजिर जवाब, बात बनाने में पटु हुआ करती हैं, यह जो कहावत लोक में प्रसिद्ध है, वही बात यह है। अर्थात् यह सब तुम्हारा त्रिया-चरित्रमात्र है, और कुछ भी इस में सार नहीं है ।

**विशेष**—शचीतीर्थ में जलवन्दना के समय पानी के फिसलन से अंगूठी गिर जाने की सूझ गौतमी की हाजिर जबाबी व्यक्त करती है। जिसके निमित्त राजा दुष्यन्त का व्यङ्ग्य भी उसे सुनना पड़ता है। किसी कार्य के लिए तत्काल समाधान उपस्थित कर देने वाली प्रतिभा को प्रत्युत्पन्नमति, हाजिर जवाब कहते हैं ।

**शकुन्तला**—अच्छा, यहाँ तो = अंगूठी के विषय में दैव = दुर्भाग्य ने अपना प्रभुत्व दिखा दिया—मुझसे अंगूठी छीन ली, परन्तु मैं अब दूसरी बात कहती हूँ ।

**राजा**—अच्छा कहो, उसे भी मुझे सुनना ही पड़ेगा ।

**विशेष**—इस कथन से शकुन्तला के विषय में महाराज दुष्यन्त का उपेक्षाभाव व्यक्त होता है। प्रमाण के रूप में कोई चिह्न न प्रस्तुत कर शकुन्तला केवल मौखिक प्रमाणों से राजा को तुष्ट

**शकुन्तला**—णं एक्कस्सिं दिअहे णोमालिआमंडवे णलिणीपत्तभाणगअं उअअं तुह हत्थे संणिहिदं आसि [ नन्वेकस्मिन् दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगत-मुदकं तव हस्ते संनिहितमासीत् । ]

**राजा**—श्रृणुमस्तावत् ।

**शकुन्तला**—तक्खणं सो मे पुत्तकिदओ दीहापंगो णाम मिअपोदओ उपट्ठिओ। तुए अअं दाव पढमं पिअउ त्ति अणुअंपिणा उवच्छंदिदो उअएण। ण उण दे अपरिचआदो हत्थब्भासं उवगदो। पच्छा तस्सिं एव्व मए गहिधे सलिले णेण किदो पणओ। तदा तुमं पहसिदो सि एत्थं सव्वो सगंधेसु विस्ससिदि। दुवेवि एत्थ आरण्णआ त्ति । [ तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः। त्वयायं तावत्प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छन्दित उदकेन । न पुनस्तेऽपरिचयाद्धस्ताभ्याश-

---

मिः कल्पनासहस्रं कृत्वा मिथ्यावचनोपन्यासः कार्यः स चेन्मया न श्रूयेत तर्हि ममा-श्रवणापराध एव स्यादिति प्रयोजनाभावेन श्रोतुमनिच्छन्नपि श्रोष्याम्येव गत्यन्तराभावा-दिति तात्पर्यम् ।

**शकुन्तला**—अभिज्ञानान्तरमाह—ननु = स्मरामि—एकस्मिन् दिवसे = कस्मिंश्चिद्दिने नवमालिका लतामण्डपे = वासन्तीलतागृहे—नलिनीपात्रभाजनगतं = कमलिनीदलपात्रप्राप्त-मुदकं = जलम् तव = भवतः हस्ते = करे सन्निहितं = उपस्थितम् आसीत् अर्थात् आतिथ्यक्रियासमारम्भे मया समानीतमुदकं पादप्रक्षालाद्यर्थं भवत्करे समर्पितमभू-दित्यर्थः ।

**राजा**—श्रृणुमः = आकर्णयामः तावत् विवक्षितं सर्वमुच्यताम् सकलं श्रोतुं सन्नद्धा स्म एवेति भावः ।

**शकुन्तला**—सा वक्तव्यं ब्रूते—तत्क्षणं=तस्मिन् समये स मे दीर्घौ—आयतौ अपाङ्गौ= नेत्रप्रान्तौ यस्य स दीर्घापाङ्गोनाम पुत्रकृतकः = कृत्रिमः पुत्रः, पुत्रबुद्धया पालितः मृग पोतकः = हरिणशिशुः उपस्थितः = तत्रागतः । त्वया = भवता अयं = एष मृगपोतकः तावत् प्रथमं पिबतु पादप्रक्षालनादिकं पश्चात् सम्पाद्यम् इति = अनेन प्रकारेण अनु-कम्पिता = दयमानेन उदकेन = जलेन उपच्छन्दितः = अभ्यर्थितः, जलाभिलाषानुरूपं

---

करना चाहती है, किन्तु महर्षि दुर्वासा के शाप के प्रभाव से राजा की विस्मृति हो गई है। इसलिए शकुन्तला की सारी बातें उसे मनगढ़न्त मालूम पड़ती है । राजा कहता है अब केवल सुनना ही भर बाकी रह गया है, पहले अंगूठी दिखाने की बात रही, अब तो सुनना ही है बातें गढ़ गढ़ कर सुनाती चलो । पहले याद न रहने से अविश्वास था पहचान प्रस्तुत न कर सकने से झूठ की पुष्टि हो गई वह मानकर राजा शकुन्तला पर व्यङ्ग्य कस रहा है ।

**शकुन्तला**—आश्रम में एक दिन की बात है । केतकी लताओं के मण्डप में तुम्हारे हाथ में पानी से भरा हुआ कमल के पत्ते का एक दोना था ।

**राजा**—हाँ, हाँ, मैं सुन रहा हूँ, तुम कहती चलो ।

**शकुन्तला**—उसी समय मेरे द्वारा पुत्र की भाँति पाला-पोसा गया हुआ दीर्घापाङ्ग नामक मृग का बच्चा वहां आ गया । तब आपने दयापूर्वक यहीं पहले पानी पीये, इस विचार से पानी पीने के लिए बुलाया, किन्तु वह अपरिचित हाथ से पानी पीने को आपके पास नहीं गया । उसी

मुपगतः । पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन कृतः प्रणयः । तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति । द्वावप्यत्रारण्यकौ इति । ]

राजा—एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्तिनीनामनृतमयवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः ।

गौतमी—महाभाअ ! ण अरुहसि एव्वं मंतिदुं । तवोवणसंवड्ढिदो अण्णभिण्णो अअं जणो कइदवस्स । [ महाभाग ! नार्हस्येवं मन्त्रयितुम् । तपोवनसंवर्धितोऽनभिज्ञोऽयं जनः कैतवस्य । ]

---

जलं दर्शयित्वा पातुमाहूतः प्रार्थितः । सलिलार्थमागतः, त्वं च जलमेव अदाः । अपरिचयात् = परिचयाभावात्-अज्ञातत्वात् हस्ताभ्यासं = हस्तसमीपं, न उपगतः = न प्राप्तः पश्चात् = अनन्तरम् तस्मिन्नेव सलिले मया गृहीते = धृते अनेन तेन हरिणशिशुना प्रणयः कृतः = ग्रहणरूपा प्रीतिः कृता जलं पीतमित्यर्थः । तदा = तस्मिन् अवसरे त्वं = भवान् इत्थं = अनेन प्रकारेण प्रहसितोऽसि = प्रहासं कृतवानसि तदा त्वं ममेत्थं परिहासमकार्षीः यत् सर्वः खलुः सकलोऽपि प्राणी सगन्धेषु समानः तुल्यः गन्ध सम्बन्धो येषां ते सगन्धाः तेषु सगन्धेषु = स्ववर्ग्येषु विश्वसीति विश्वासं करोति । द्वावपि = उभावपि अत्र = अस्मिन् स्थाने आरण्यकौ अरण्ये भवौ आरण्यकौ वनवासिनौ अरण्य सम्बन्धेन युवां बन्धू ।

राजा—शकुन्तलोक्तिमाकर्ण्य राजा वदति—एवमादिभिः = उक्तसदृशैः वाक्यैः आत्मकार्यनिर्वर्तिनीनां-आत्मकार्यं = स्वकार्यम् अवश्यं निर्वर्तयन्ति साधयन्ति या स्तास्तासाम् आत्मकार्यनिर्वर्तिनीनां ललनानां अनृतमयवाङ्मधुभिः = मिथ्यावचनात्मकपुष्परस विशेषैः विषयिणः = इन्द्रियपरायणाः कामुका जनाः आकृष्यन्ते = विमार्गं नीयन्ते वशीक्रियन्ते आवध्यन्ते अत्र नाहं विषयी, अतस्तवानृत वाङ्मधुधाराभिः नाकृष्ये इति भावः ।

गौतमी—राजोक्तिमाकर्ण्य गौतमी वदति—हे महाभाग = महोदय ! एवं इत्थम् पूर्वोक्तप्रकारेण मन्त्रयितुं = वक्तुं नार्हसि—तपोवनसंवर्धितः = आश्रमपालितः अयम् = एष जनः शकुन्तला लक्षणः कैतवस्य = छलस्य, कपटाचारस्य अनभिज्ञः = अपरिचितः = सत्यमेवेयं भणति तपोवनवर्धितत्वात् कैतवं न जानातीति भावः ।

---

पानी से भरे दोने को जब मैंने अपने हाथ में ले लिया, तब उसने पानी पी लिया। तब इस प्रसंग में आपने उस समय हँसकर कहा था कि सभी अपने ही गण में विश्वास करते हैं, क्योंकि तुम दोनों ही वन के रहने वाले हो। इसलिए यह मृग के बच्चों ने तुम्हारे हाथ से पानी पीया मेरे हाथ से नहीं पीया।

**राजा**—स्त्रियों द्वारा अपने मतलब के लिए गढ़ी गई उसी प्रकार की मीठी मीठी बातों से ही विषयी कामी लोग अपनी ओर आकृष्ट किये जाते हैं।

**गौतमी**—महाराज ! आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए। तपोवन में पाला-पोसा हुआ यह जन = शकुन्तला किसी प्रकार के भी छल-प्रपञ्चों से बिलकुल ही अनभिज्ञ = अपरिचित है।

**विशेष**—गौतमी के कहने का अभिप्राय यह है कि प्रायः तपोवन में ही पवित्र चरित्र ऋषि मुनि निवास करते हैं। और वे वहाँ अपना सात्विक जीवन व्यतीत करते हैं। उनके संसर्ग में पलने वाले प्राणी छल छिद्र से रहित होते हैं। यह शकुन्तला भी तपोवन में ही पाली पोशी गई है वातावरण का प्रभाव व्यक्तित्व के निर्माण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

राजा—तापसवृद्धे ।

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात-
[1]मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥ २२ ॥

राजा—गौतमी वचो निशम्य राजा दुष्यन्तः सोपहासमाह— तापसवृद्धे ! तापसी चासौ वृद्धा तापसवृद्धा तत्सम्बुद्धौ हे तापसवृद्धे ! हे वृद्धतापसि । स्त्रीस्वभावं विवृणोति-स्त्रीणामिति ।

अन्वयः—स्त्रीणां ( मध्ये ) अमानुषीषु ( अपि ) अशिक्षितपटुत्वं संदृश्यते यः प्रतिबोधवत्यः किमुत परभृताः स्वमपत्यजातम् अन्तरिक्षगमनात् प्राक् अन्यैः द्विजैः परिपोषयन्ती खलु ।

महर्षेः कण्वस्य पुनीते आश्रमे संवर्द्धिता न किमपि कैतवाचारं जानातीति गौतमी-वचनं निशम्य राजा दुष्यन्तः सोपहासं स्त्रीस्वभावं विवृणोति—स्त्रीणामिति । स्त्रीणां = नारीणां स्त्रीजातिसमुत्पन्नानां अमानुषीषु = मनुष्यव्यतिरिक्तासु वागादिव्यवहाररहितास्वपि तासु अशिक्षितं च पटुत्वं चेति अशिक्षितपटुत्वम् उपदेशमन्तरापि नैसर्गिकवञ्चना-चातुर्यं संदृश्यते = विलोक्यते प्रतिबोधवत्यः प्रतिबोधोऽस्ति आसामिति प्रतिबोधवत्यः = हस्तपादवागादिव्यवहारकुशलाः शिक्षाशालिन्यश्च मनुष्यः किमुत = तासां कौसले तु पुनः किं वक्तव्यम् । परभृताः-परैः अन्यैः पक्षिभिः भ्रियन्ते इति परभृताः = कोकिलाः स्वं = स्वकीयम् अपत्यजातम् = सन्ततिसमूहम् अन्तरिक्षगमनात् = आकाशगमनात्, उड्डयन-शक्त्युत्पत्तेः पूर्वम् अन्यैः = अपरैः द्विजैः पक्षिभिः काकैः परिपोषयन्ति = परितः सर्वं प्रकारेण पालयन्ति-खलु = प्रसिद्धिः । कोकिला हि समुत्पन्नानि स्वानि अपत्यानि कुलायेषु निक्षिपन्ति काकाश्च तानि स्वापत्यबुद्धया तानि परिपालयन्तीति कविप्रसिद्धिः ।

राजा—हे वृद्ध तापसी बुद्धिमती स्त्रियों की तो बात ही क्या है, पशु-पक्षी जाति की अज्ञान स्त्रियाँ भी सिखाये बिना स्वभाव से ही चतुर एवं चालाक,देखी जाती है । देखो कोकिलाएँ, जब तक उनका बच्चा आकाश में उड़ने लायक नहीं हो जाता तब तक उसका पालन-पोषण अन्य पक्षियों से ही कराती हैं ॥ २२ ॥

विशेष—यह बात प्रसिद्ध है कि कोयल का बच्चा जब अण्डे से बाहर निकलता है। तब कोयल उस बच्चे को ले जाकर कौए के घोसले में रख आती है । मूर्ख कौवी उसे अपना बच्चा समझ कर पालती पोसती है, उड़ने की शक्ति हो जाने पर वह कोयल का बच्चा वहां से उड़कर चला जाता है और कोयल के झुण्ड में मिल जाता है कौवी कांव कांव करती ही रह जाती है। और सन्तान की लालसा से कोयल की सन्तान को अपनी सन्तान मान लेने वाली कौवी का भ्रम दूर हो जाता है । कौवी के द्वारा पालित-पोषित होने के कारण कोयल का दूसरा नाम परभृत परपुष्ट आदि है । इस उदाहरण को दृष्टि में रखकर राजा कहते हैं कि स्त्रियां बहुत चालाक होती है, उन्हें सिखाना नहीं पड़ता है और दूसरों को ठगने में भी चालाक होती हैं ? यह भी प्रसिद्धि है कि कौवी एक बार ही जन्म देती है। इसलिए एक बार जन्म देने वाली माताएँ काकवन्ध्या कहीं जाती हैं ।

पाठा०—१. मन्यद्विजै परभृतः ।

**शकुन्तला**—( सरोषम् ) अणज्ज अत्तणो हिअआणुमाणेण पेक्खसि। को दाणि अण्णो धम्मकंचुअप्पवेसिणो तिणच्छण्णकूवोवमस्स तव अणुकिदिं पडिवदस्सदि। [ **अनार्य ! आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि क इदानीमन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते।** ]

---

**अयं भावः**—अशिक्षिता अपि स्त्रीजातिस्वभावत एव व्यवहारकुशला भवन्ति दाक्ष्यशिक्षाशालिन्यः वाग्व्यवहारनिपुणाः तासां कौशले किं वक्तव्यम्। कोकिलाङ्गनाः किल वर्णेन सदृशानि स्वकीयानि अपत्यानि उड्डयनाशक्त्युत्पत्तिपर्यन्तं काकपक्षिद्वारा परिपोषयन्ति। अतस्ताः परभृताः प्रोच्यन्ते। तदेवं तिर्यग्जातिष्वपि वाग्बुद्धिव्यवहारशून्या स्त्रियः कपटपटवः स्युस्तर्हि किमु वक्तव्यं शिक्षितानां वाग्व्यवहारप्रवीणानां बुद्धिमतां मानुषीणां नारीणां कपटपाटवविषये। तस्मात्तपोवने वर्द्धितेयं तत्र भवती स्त्रीसुलभं वञ्चनकौशलं न जानातीति भवत्याः कथनं सर्वथालीकमेव मे प्रतिभातीति भावः। परभृतादि दृष्टान्तेन स्त्रीत्वेन हेतुना नारीमात्रस्य मृषाभाषणत्वं प्रसिद्धम् परभृतेव शकुन्तला माता मेनकापि एनां समुत्पाद्य वने विसृज्यान्यैः पक्षिभिः पालितवतीति सूच्यते।

अत्राप्रस्तुतप्रशंसाऽर्थान्तरन्यासव्यतिरेकालङ्काराः वसन्ततिलका वृत्तं च ॥ २२ ॥

**शकुन्तला**—राज्ञोऽधिक्षेपमसहमाना शकुन्तला सरोषं तमुपालभते अनार्य ! = हे आचारविचारविवर्जित ! 'पापबुद्धे ! आत्मनः = स्वस्य हृदयानुमानेन = अन्तःकरणस्य प्रमाणेन ( अनुमानप्रकारश्च-सर्वस्यान्तः करणं मलिनं हृदयत्वात्, मम हृदयवत् ) सर्वं = सकलमपि लोकं वञ्चकमेव प्रेक्षसे = पश्यसि। आत्महृदयमिव परहृदयमपि इति कल्पनेन आत्मवदस्मानपि जानासीत्यर्थः। कथयन्ति हि लोकाः—'स्वयं पापी परान् पापिनः शङ्कत इति। तस्मात् सर्वोऽपि कुटिलाशयः सर्वमपि जनं कुटिलमेव पश्यतीतिभावः। क इदानीमन्यः = कः = जनः इदानीम् = अधुना अन्यः = त्वद्भिन्नः धर्मस्य कञ्चुकं = प्रावरणं प्रवेष्टुं शीलमस्येति धर्मकञ्चुकप्रवेशी तस्य धर्मकञ्चुकप्रवेशिनः = बहिः सर्वप्रकारेण व्याजेन धर्मपरस्य, धर्मछद्मव्यवहारपरस्य दाम्भिकस्य बहिर्धार्मिकस्य तृणैः =

---

इस पद्य में कवि ने वक्रोक्ति की कुशलता से अमानुषी, अन्तरिक्षगमन, परभृत तथा द्विज शब्दों से मेनका = अप्सरा महर्षि कण्व के साथ शकुन्तला की उत्पत्ति की ओर भी संकेत किया है। अमानुषी तथा परभृता शब्द से मेनका का संकेत है। मेनका अप्सरा है अतः अमानुषी है। वह एक स्वर्वेश्या है अतः दूसरों के द्वारा पालित होने से परभृता भी है। प्रागन्तरिक्षगमन से शकुन्तला को उत्पन्न कर मेनका के स्वर्ग चले जाने का संकेत है। स्वमपत्यजातम् से शकुन्तला का निर्देश है। अन्यैर्द्विजैः से महर्षि कण्व का संकेत है। इस प्रकार राजा ने शकुन्तला को मां मेनका को कोयल बना दी है।

**शकुन्तला—( क्रोधपूर्वक )** हे अनार्य ! तेरा अपना हृदय जैसे छल प्रपञ्च से भरा हुआ है उसी प्रकार तूँ सबको समझता है। इस संसार में धर्म का ढोंग रचकर न्याय का जामा पहन ढोंग बनाए हुए तृण से ढँके कूप के समान दूसरों को फंसा कर गड्ढे में गिराने वाला तेरे समान और कौन दुष्ट और पापबुद्धि मनुष्य संसार में होगा।

**विशेष**-राजा दुष्यन्त ने जब तपस्विनी गौतमी का अपमान करते हुए शकुन्तला की मां स्वर्गीय अप्सरा मेनका को कोयल बना दिया तथा शकुन्तला के चरित्र को सन्दिग्ध बताने का प्रयास किया तब शकुन्तला का धैर्य छूट गया और व्याकुल होकर उसने दुष्यन्त को अनार्य तक कह डाला। और भी जिस प्रकार कुछ असामाजिक तत्त्व धर्म का ढोंग बनाकर समाज को धोखा देते हैं उसी तरह

**राजा**—( आत्मगतम् ) संदिग्धबुद्धिं मां कुर्वन्नकैतव इवास्याः कोपो लक्ष्यते। तथा ह्यनया—

**मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ**
**वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने।**
**भेदाद्भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या**
**भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य॥ २३॥**

---

घासैः छन्नेन आवृतेन कूपेन उपमा उपमानं यस्य स तस्य तृणप्रच्छन्नकूपोपमस्य = तृणाच्छादितमुखकूपसदृशस्य यथा तृणाच्छन्नः कूपः स्थलबुद्ध्या जनान् पातयति तथैव त्वयि विश्वासं विदधतो जनान् वञ्चयति यद्वा यथा घासैरावृतो गभीरः कूपो भूतलमिव दृश्यते तथैव पापात्मात्वं धर्मावृतो धार्मिक एव प्रतीयते, परं नाहमीदृशी। तव = भवतः अनुकृतिं = अनुकरणं प्रतिपत्स्यते = अङ्गीकरिष्यति। त्वमेव वञ्चको नाहं त्वदनुकारिणीति तात्पर्यम्।

**राजा**—दुष्यन्तः कुपितायाः शकुन्तलाया भावभङ्ग्या ऊढायाः परित्यागे एवंविधः कोपः संभवति, तया साकं परिणयस्य कृतत्वं सम्भावयन्नपि महर्षेः दुर्वाससः शापमहिम्ना अनिश्चिन्वन् मनसि विमृशति—सन्दिग्धबुद्धिम् सन्दिग्धा = इयं मया परिणीता न वेति सन्देहमापन्ना बुद्धिः मतिः यस्य स तं सन्दिग्धबुद्धिम् मां=दुष्यन्तं कुर्वन्=विदधत् अविद्यमानं कैतवं यत्रेति अकैतव अकृत्रिम वास्तव इव अस्याः पुरोवर्तिन्या नायिकाया कोपः = क्रोधः लक्ष्यते = लक्षणैः ज्ञायते। तथाहि यथा अनया = ललनया।

**अन्वयः**—विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ रहोवृत्तं प्रणयम् अप्रतिपद्यमाने मयि एव अतिरुषा अतिलोहिताक्ष्या अनया कुटिलयोः भ्रुवोः भेदात् स्मरस्य शरासनं भग्नम्।

तिरस्कृतया शकुन्तलया सरोषमधिक्षिप्तो राजा दुष्यन्तः तस्याः स्वाभाविकं कोप वीक्ष्य मया कदाचिदियं गन्धर्वविवाहविधिना विवाहिता संशयमापन्नो मनसि स्यादिति विचारयति—**मय्येवेति**। विगतं = अपगतं स्मरणं = स्मृतिः यस्य तत् विस्मरणात्तेन अतएव दारुणं चित्तं ते वृत्तिर्यस्य स तस्मिन् विस्मरणेन = स्मृतिलोपात् दारुणा =

---

शकुन्तला भी दुष्यन्त को धर्म का चोंगा पहने हुए समझती है। शिकारी लोग जंगली मृग, सूअर, हाथी आदि जानवरों के आने जाने वाले मार्ग में कुंआ खोदकर इस प्रकार घास से ढंक देते हैं कि उन्हें पता नहीं लगता कि यहाँ कोई गड्ढा भी है। जब वे उस पर जाने लगते हैं तो गिरकर नीचे चले जाते हैं, बाद शिकारी उन्हें पकड़ लेते हैं और अभीष्ट सिद्ध करते रहते हैं। यही यहाँ धर्मकञ्चुकप्रवेशी तथा तृणछन्नकूप शब्द का तात्पर्य है।

**राजा—( मन ही मन )** सन्दिग्ध बुद्धि मेरे प्रति इसका क्रोध वनवासी होने के कारण अत्यन्त निर्भय विनावट का सच्चा सा प्रतीत हो रहा है, क्योंकि—

**इसने** मुझे अपने विवाह की बात याद नहीं आने से इस प्रकार मेरे कठोरचित्त हो जाने पर और एकान्त में की हुई प्रणय की बातों को स्वीकार न करने पर इसने लाल-लाल नेत्र करके अतिकुटिल दोनों भौंहों को टेढ़ा करके, मानो क्रोध से कामदेव का धनुष ही तोड़ दिया है॥ २३॥

**विशेष**—शकुन्तला के बनावट रहित कोप को देख राजा मन ही मन सोचते हैं कि मेरे द्वारा विस्मृति के कारण एकान्त में घटित और विवाह आदि की बातों को अस्वीकार करने पर अत्यन्त क्रोध से इसकी आँखें लाल-लाल हो गई हैं और इसकी भ्रुकुटी टेढ़ी हो गयी हैं अतः प्रतीत होता

( प्रकाशम् ) भद्रे ! प्रथितं दुष्यन्तस्य चरितम् । [1]तथापीदं न लक्षये ।

**शकुन्तला**—सुट्ठु दाव अत्त सच्छंदचारिणी किदम्हि । जा अहं इमस्स पुरुवंसप्पच्चएण मुहमहुणो हिअअट्ठिअविसस्स हत्थब्भासं उवगदा । [ **सुष्ठु तावदत्र स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि । याहमस्य पुरुवंशप्रत्ययेन मुखमधोर्हृदयस्थितविषस्य हस्ताभ्याशमुपगता** ] ( इति पटान्तेन मुखमावृत्य रोदिति । )

---

निरनुक्रोशा चित्तवृत्तिः = मनोव्यापारः यस्य स तस्मिन् विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ = विवाहवार्ताविस्मरणदारुणमनसि अत एव रहः = एकान्ते, विजने वृत्तं = सम्पन्नं, प्रणयं = स्नेहं परिणयं विवाहं वा अप्रतिपद्यमाने = अस्वीकुर्वाणे सति मयि = ममविषये एव अति = अत्यन्तं रुट् = क्रोधो यस्याः सा तया अतिरुषा = अधिकक्रोधया यद्वा अतिरुषा = अतिक्रोधेन, अतिलोहिते अक्षिणी यस्या सा अतिलोहिताक्षी तया अतिलोहिताक्ष्या = अत्यारक्तनयनया आरक्तलोचनया अनया मुनिकन्यया वनितया कुटिलयोः = स्वभावादतिवक्रयोः भ्रुवोः = भ्रुकुटयोः भेदात् = भङ्गात् भ्रूभङ्गमपनीय स्मरस्य = कामस्य शरासनं = त्रिलोकविजये साधनभूतं धनुः भग्नं = छिन्नं खण्डितम् इव = यथा कोऽस्य मदनस्य धनुर्भञ्जनादपरः पराभव इति भावः ।

**अयं भावः**—मुनिकन्ययाऽनया कुटिलयोः भ्रुवोः भङ्गात् = वक्रकरणात् प्रतीयते तत् कामस्य धनुर्भङ्गं जातम् । अत्रोत्प्रेक्षाकाव्यलिङ्गानुप्रासा अलङ्कारा वसन्ततिलका छन्दश्च ॥ २३ ॥

दुर्वाससः शापेनापगतस्मृतिः नृपो दुष्यन्तः प्रकाशं ब्रूते—भद्रे ! = कल्याणि ! दुष्यन्तस्य चरितं प्रथितम् = सर्वदा सुहृज्जनपरिवृतत्वात् प्रख्यातम् तथापि = एवमपि इदं = त्वेतत्परिणयनम् न लक्षये = मृगयाप्रसङ्गेन मुनिजनसत्रसंरक्षणधर्मारण्य निवासादयः सर्वेऽपि व्यवहारा मे स्मृतिपथमवतरन्ति, परं केवलमेकं त्वत्परिणायनमेव न स्मरामि । तस्मात्त्वं मयि वृथा मा कुप्य, मया सत्यमेव भणितम् नत्वलीकम् कृतेऽपि सूक्ष्मे विचारे नाहं स्वचरिते ईदृशं चरितविधानं स्मरामि । मम साधारणप्रजास्वपि वञ्चकत्वं न संभाव्यते; कथं पुनर्मयि तत् समभवेदित्यर्थः ।

**शकुन्तला**—राजोक्तं श्रुत्वा शकुन्तला शोचति–सुष्ठु = उचितम् तावत् अत्र अस्मिन्

---

है कि इसने टेढ़ा करके कामदेव का धनुष तोड़ दिया है । सुन्दरी नवयुवतियों की टेढ़ी भौहें कामदेव का धनुष है । जब कोई कामिनी स्वभावतः अपनी टेढ़ी भौंहो को वक्र कर देती है तो प्रतीत होता है कि कामदेव का धनुष ही टूट गया । शकुन्तला के क्रोध की तेजी और स्वाभाविकता ने दुष्यन्त की बुद्धि को डाँवाडोल = सन्दिग्ध कर दिया । जिससे उनको शकुन्तला का स्वाभाविक क्रोध सच्चा-सा प्रतीत होने लगता है । शकुन्तला की भौंहे काम की धनुष कही गयी हैं उनका फैलकर अलग होना ही धनुष का टूटना है ।

**राजा—( प्रगट में )** सुभगे ! दुष्यन्त का विशुद्ध चरित्र तो जगत् प्रसिद्ध है । मेरी तो बात ही क्या है, मेरी साधारण प्रजा में भी ऐसा, छल, कपट और अन्याय देखने को नहीं मिलेगा ।

**शकुन्तला**—क्या आपने मुझे अपने मन से चलने वाली स्वेच्छाचारिणी समझ लिया है जो ऐसी बातें कर रहे हैं । हाय, मैं पुरुवंश के धोखे में ऊपर से मीठे, पर हृदय में हलाहल विष से भरे हुए इस वञ्चक के हाथ में पड़ गई हूँ । **( कपड़े से मुख को ढक कर रोती है )** ।

---

पाठा०—१. नापीदं दृश्यते ।

**शार्ङ्गरवः**—[1]इत्थमात्मकृतं प्रतिहतं चापलं दहति ।

**अतः [2]परीक्ष्य कर्त्तव्यं विशेषात् संगतं रहः ।**
**अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ॥ २४ ॥**

---

विषये स्थाने वा स्वच्छन्दं = स्वतन्त्रं चरति = भ्रमति तच्छीला स्वच्छन्दचारिणी = आत्मच्छन्दविहारिणी व्यभिचारिणी, पुंश्चली वा कृताऽस्मि अनेन विहितास्मि, घोषिताऽस्मि । या अहम् पुरुवंशप्रत्ययेन पुरुवंशे = पुरुकुले प्रत्ययेन विश्वासेन पुरुवंशोत्पन्नः अभिजातोऽयमिति विश्वस्य मुखे = आनने मधु = मधुरं वचनम् यस्यासौ तस्य मुखमधोः = मधुरभाषिणः, हृदये = अभ्यन्तरे स्थितं = भरितं विषं = गरल यस्यासौ तस्य हृदयस्थितविषस्य = हृदयनिहितकालकूटस्य अस्य दुष्यन्तस्य हस्ताभ्यासं = करसमीपम् उपगता = प्राप्ता, वशंवदा अभूवम् ।

( इति = एवमुक्त्वा पटस्य = वस्त्रस्य अन्तेन = प्रान्तेन अञ्चलेन मुखं वदनम् आवृत्य = आच्छाद्य रोदिति )

**शार्ङ्गरवः**—रुदतीं शकुन्तलां समीक्ष्य सञ्जातविषदः शार्ङ्गरवः 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' इति न्यायमनुसंदधानो ब्रवीति—**इत्थमिति** । आत्मकृतं = आत्मना = स्वयमेव कृतं = विहितमित्यात्मकृतम् – गुरुजनं बन्धुजनं च अनवेक्ष्य स्वयमेवानुष्ठितम्, प्रतिहतं = निषिद्धं चापलं = अविमृश्य कारित्वरूपं चाञ्चल्यम् इत्थं = एवमेव आत्मानं बन्धुजनं च दहति = तापयति, ज्वलयति परिणामे संतापयतीति शकुन्तलां प्रत्युपालम्भः ।

तत्र किं कर्तव्यमित्याह—**अत इति** ।

**अन्वयः**—अतः रहः संगतं विशेषात् परीक्ष्य कर्तव्यम् । अज्ञातहृदयेषु सौहृदम् एवं वैरी भवति ।

शकुन्तलयाऽनया बन्धुवर्गमनापृच्छ्य राज्ञाऽनेन साकं कृतस्य गान्धर्वविवाहस्य निराकरणरूपं फलं विलोक्य कुपितः शार्ङ्गरवः नीतिं कथयति—**अत इति** । अतः = अस्मात कारणात् यस्माच्चापलं दहति तस्मादित्यर्थः, रहः = संगतम् = दृढमैत्री एकान्ते समागमः, गन्धर्वविवाहात्मकं सख्यम्, विशेषात् परीक्ष्य-येन संगतं कुर्यात् तस्य मनो

---

**विशेष**—यहां शकुन्तला के कहने का तात्पर्य है कि आप ही एक प्रामाणिक और सच्चे हैं तथा आपही तो धर्म मर्यादा के जानकार हैं । लज्जा से परवश, स्वभाव से ही दयालु हमारी जैसी प्रकृति वाली बेचारी स्त्रियाँ धर्म की स्थिति और उचित-अनुचित को थोड़े ही जानती हैं । मैं लज्जापरायणा महिला तो झूठी हो गई, और वञ्चक शिरोमणि आप सच्चे बन गये । अपने मन में बड़ा कौन बनता ? अपने मन में सभी बड़े हैं तात्पर्य यह है कि आप नितान्त झूठे हो और अन्याय करने पर उतारु हो रहे हो जो इस प्रकार मुझ लज्जावती स्त्री की प्रतिष्ठा भंग कर रहे हो ।

**शार्ङ्गरव**—अधिक बढ़ी हुई चपलता और स्वतन्त्रता इसी प्रकार अन्त में कष्ट देती हैं ।

इसलिए गुप्त = विवाह आदि सम्बन्ध तो बहुत सोच समझकर करना चाहिए, क्योंकि अपरिचित हृदय वाले व्यक्ति के साथ किया हुआ सम्बन्ध अन्त में वैर के रूप से ही परिणत हो जाता है ॥ २४ ॥

**विशेष**—शार्ङ्गरव के कहने का तात्पर्य है कि शकुन्तला ने चञ्चलतावश अपने मन से इस

---

पाठा०—१. इत्थमप्रतिहतं । २. समीक्ष्य ।

**राजा**—अयि भोः! किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान्संयुतदोषाक्षरैः क्षिणुथ ?

**शार्ङ्गरवः**—( सासूयम् ) श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम्।

---

विशेषरूपेण परीक्ष्य कर्तव्यम् = अनुष्ठेयम्, अज्ञातं = व्यवहारादिना अविदितं हृदयं चित्तं येषां ते तेषु अज्ञातहृदयेषु = पूर्वव्यवहारादिना अज्ञातचित्तवृत्तिषु अपरिज्ञातशीलेषु कृतं सौहृदं = मैत्री एव वैरी भवति = परिणामे वैरायते पीडाकरं जायते। यद्वा अतः = अस्मात् कारणात् कर्तव्यं करणीयं कार्यं परीक्ष्य इष्टैः सह सम्यग् आलोच्य कर्तव्यम्, एकान्तसख्यं तु विशेषतः परीक्ष्य कर्तव्यम्।

**अयं भावः**—शकुन्तले! अवलोकय कीदृग्भूतं चापलस्य फलम् अतः विवाहात्मकमेकान्तसम्मेलनम् अपरिचितेन पुंसा न कदापि विधेयम् यस्य पुंसः व्यवहारादिना हृदयं सम्यक् परीक्षितं स्यात् तेन सह तथाविधः सम्बन्धो विधेयः। अज्ञाते कृता मैत्री पर्यवसाने सन्तापकारी दुःखदायिनी च भवति। अत्राप्रस्तुतप्रशंसाऽर्थान्तरन्यासकाव्यलिङ्गालङ्कारा अनुष्टुप् छन्दश्च ॥ २४ ॥

**राजा**—शार्ङ्गरवस्य वचनमाकर्ण्य तस्य विषयेऽविश्वासं संभावयन् राजा ब्रूते अत्रभवतीप्रत्ययादेव = अत्रभवत्यां = मुनिकन्यायां यः प्रत्ययः = विश्वासः तस्मादेव शकुन्तला वचनमात्रे विश्वासात् तन्मात्रमवलम्ब्य अस्मान् = पुरुवंशोत्पन्नान् स्वधर्मनिष्ठान् संयुक्त दोषाक्षरैः = संयुक्तः सम्पृक्तः दोषः प्रमादः येषु ते तैः अक्षरैः वर्णैः दोषाधायकैः क्रूराक्षरैः वचोभिः क्षिणुथ यूयं हिंस्थ अधिक्षिपथेत्यर्थः।

**शार्ङ्गरवः**—राजोक्तमसहमानः शार्ङ्गरवः सासूयं स्वसहचरान् प्रति ब्रूते—भवद्भिः = युष्माभिः श्रुतं = ज्ञातम्, अधरोत्तरं = अधर अधरं = हीनं च तदुत्तरं = प्रत्युत्तरं चेति अधरोत्तरम् = स्वदोषाज्ञानात् दूषितं प्रत्युत्तरं क्षुद्रमुत्तरं = उत्तरप्रत्युत्तरम् वेति भावः। 'अधरो दन्तवसनेऽमूर्ध्वे हीनेऽधरोऽन्यवत् इति विश्वः। अथवा अधरोत्तरं = विपर्ययः। तदुक्त महाभारते—

---

दुष्यन्त के साथ गुप्तरूप से जो गान्धर्व विवाह कर लिया है, उसका ही फल यह कष्ट रूप में इसको मिल रहा है। इसलिए खुब सोच समझकर विवाह आदि सम्बन्ध करना चाहिए।

यहां ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कविवर कालिदास ने शार्ङ्गरव के कथन के व्याज से कामुकों को शिक्षा दे रहे हैं कि भावुकता मात्र से प्रेम विवाह करने में धोखा हो जाता है। इसलिए चरित्र आदि की भलीभांति परीक्षा कर सम्बन्ध करना चाहिए। माता-पिता के द्वारा अच्छी तरह जांच परताल कर लेने के अनन्तर विवाह करने पर कोई विशेष कष्ट नहीं होता। इसीलिए नीतिशास्त्र में कहा गया है—'अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कर्हचित्' इस प्रकार बिना सोचे समझे किया हुआ कार्य लड़कपन है, जो हमेशा दग्ध करता रहता है। शकुन्तला ने बिना सोचे समझे राजा दुष्यन्त का विश्वास कर उनके साथ गान्धर्व विवाह करने का लड़कपन किया था, जिसका फल प्रस्तुत दुःख है।

**राजा**—हे तपस्वियों, क्या इस शकुन्तला के कहने मात्र पर विश्वास करके हो आप लोग असम्भावित दोषों से यों लाञ्छित कर रहे हैं।

**विशेष**—अत्रभवती=शकुन्तला पर व्यङ्ग्य कसते हुए राजा ने शार्ङ्गरव आदि से कहा—क्या आप लोग इस भ्रष्टचरित्रा स्त्री के कहने से ही मुझे दोषी ठहरा रहे हैं ? यह उचित नहीं है।

**शार्ङ्गरव—( असूया पूर्वक = राजा को हेय दृष्टि से देखता हुआ )** आप लोगों ने इस राजा की धूर्तता भरी चलती-फिरती बातें सुनीं, देखिए।

**विशेष**—अधर का अर्थ है नीच = गलत और उत्तर का अर्थ है प्रत्युत्तर।

आजन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य ।
परातिसंधानमधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः ॥ २५ ॥

**राजा**—भोः सत्यवादिन् ! अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम् । किं पुमरिमामति-संधाय लभ्यते ।

---

अधर्मेण जितो धर्मः प्रवृत्तमधरोत्तरम् ।
शर्मिष्ठयाऽतिवृत्तास्मि दुहित्रा वृषपर्वणः ॥

**अन्वयः**—यः आजन्मनः शाठ्यमशिक्षितः तस्य जनस्य वचनम् अप्रमाणम् यैः परातिसन्धानं विद्येति अधीयते ते आप्तवाचः सन्तु किल ।

अथ दुष्यन्तोक्तं निशम्य तस्यासत्यवाद्विवं निश्चिन्वन् शार्ङ्गरव राज्ञे किमप्यनुक्त्वा शारद्वतादीन् प्रति कथयति—**आजन्मन इति** । यः = मुनिजनः शकुन्तला वा आजन्मनः = जन्मनः जनुषः आरभ्य जन्मप्रभृति शाठ्यं = खलतां परवञ्चना चातुर्यं परातिसन्धान-रूपम् धैर्यम् अशिक्षितः = स्वेन अन्येन शिक्षां न ग्राहितः अबोधितः अनध्यापितः तस्य जनस्य मुनिकन्यारूपस्य वचनं = कथनम् वाणी अप्रमाणं विश्वासानर्हम्, यैः=राजनीति-कोविदैः सर्वथा मृषा व्यवहारतत्परैः त्वादृशैः राजादिभिः परातिसन्धानं = परवञ्चनं तत्प्रतिपादकं कौटिल्याद्यर्थशास्त्रमेव विद्येति ज्ञानमिति अधीयते = इयं नः कुलविद्येति मत्वा विद्यारूपेण अधीयते पठ्यते न शिक्ष्यते ते तथा तादृशाः राजलोकाः आप्ता श्रामणिका वाक् वचनं येषां ते आप्तवाचः = प्रमाणभूताः सन्तु = भवन्तु किल = संभावनायाम् खलु किल शब्दस्तु वार्तायां सम्भाव्यानुनयार्थयोः' इति विश्वः । अत्र अदृष्टकैतव शकुन्तला वचोऽप्रमाणं दुष्यन्तोक्तं तु प्रमाणमिति अहो प्रमाणप्रमेयभावव्यवस्थेति राज्ञः असूया प्रकटिता । या हि शकुन्तला जन्मत एव धूर्त्यं न जानाति तस्याः कथनमविश्वसनीयम्, यस्तु त्वं स्वकुलीवधामिव परवञ्चनमेव नियमपूर्वकमधीषे तस्य ते मृषाव्यवहारिणो वचनं प्रामाणिकं विश्वसनीयं च तस्मात् परवञ्चका राजानो न प्रामाण्यवचना भवितुमर्हन्तीति भावः । अज्ञातप्रस्तुतप्रशंसा-वक्रोक्ति-रूपानुप्रासा अलङ्कारा छन्दश्चोपजातिः ॥ २५ ॥

**राजा**—शार्ङ्गरवेणाधिक्षिप्तो राजा सरोषमाह=भो सत्यवादिन् ! तथ्यभाषिन् ! अभ्यु-

---

जो लोग जन्म से ही छल-कपट से बिलकुल अपरिचित हैं, उनकी बात तो अप्रामाणिक झूठी है । और जो दूसरों को ठगने को एक कला समझ कर रात दिन उसका ही अभ्यास किया करते हैं वे ही लोग आप्त वाक्य = सच्चे प्रामाणिक बन रहे हैं । वाह ! क्या अच्छा न्याय है ॥ २५ ॥

**विशेष**—पद्य का पूर्वार्द्ध शकुन्तला के लिये और उत्तरार्द्ध दुष्यन्त के लिए आया है । तपोवनों के आश्रमों में जन्म से लेकर अन्त तक शठता की शिक्षा नहीं दी जाती जब कि राजनीति में दूसरे को धोखा देने की शिक्षा भरी पड़ी है । जब शठता की शिक्षा से रहित व्यक्ति को झूठा कहा जाय तथा पर-वञ्चकता की कला में प्रवीण को सत्यवादी माना जाय तब तो कहना ही क्या है । इसलिए कपट-वञ्चना से रहित मुनिकुमारी शकुन्तला का ही वचन प्रामाणिक और दूसरों को ठगना एवं झूठा बोलने वाले राजनीति आपका का कहना अप्रामाणिक है ।

**राजा**—हे सत्य बोलने वाले महात्माओं ! हम यह मान लेते हैं कि हम ऐसे ही झूठ, ठग,

---

पाठा०—१. मभिसंधाय ।

**शार्ङ्गरवः**—विनिपातः।

**राजा**—विनिपातः पौरवैः प्रार्थ्यत इति न श्रद्धेयम्।

**शारद्वतः**—शार्ङ्गरव! किमुत्तरेण? अनुष्ठितो गुरोः सन्देशः। प्रतिनिवर्तामहे वयम्। ( राजानं प्रति )—

**तदेषा [1]भवतः कान्ता त्यज वैनां गृहाण वा।**
**[2]उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ॥ २६ ॥**

---

पगतं = स्वीकृतं तावत् = प्रथमम् अस्माभिः मया एवम् = इत्थं मयोक्तं प्रतारणम्। 'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' इति न्यायेन अतिसन्धाय = वञ्चयित्वा, प्रतार्य किंपुनर्लभ्यते, किं प्राप्यते, न किमपीत्यर्थः।

**शार्ङ्गरवः**—कुपितः शार्ङ्गरव आह— विनिपातः = अधमः, नरके निपतनं वा त्वया लभ्यते इति भावः।

**राजा**—पौरवैः = पुरुवंशोत्पन्नः राजभिः ( न केवलं मया ) विनिपातः = नरके पतनं प्रार्थ्यते। इति इदम् न श्रद्धेयं श्रद्धास्पदं विश्वासानर्हम्, 'असत्यमप्यश्रद्धेयं न वदेदिति नीतिः।

**शारद्वतः**—नृपसहचरयोः वाक्कलहं निरोद्धुकामः शारद्वतः कथयति—शार्ङ्गरव! किमुत्तरेण = प्रतिवचनेन किम्! अनेन धर्मध्वजिना नृपेण सह वादप्रतिवादेनालं कोऽपि लाभो नास्ति तद्विरम। गुरोः महर्षेः कण्वस्य सन्देशः = वाचिकम् अनुष्ठितः = संपादितः गुर्वाज्ञानुसारं शकुन्तला राजसकाशं प्रापिता, राज्ञा सह वादाय नादिष्टा वयम् प्रतिनिवर्तामहे = आश्रमं प्रतिगच्छामः ( राजानं = नृपं दुष्यन्तं प्रति उद्दिश्य ) प्रसङ्गमुपसंहरन् शारद्वतो ब्रूते = तदेषेति।

**अन्वयः**—तत् एषा भवतः कान्ता, एनां त्यज वा गृहाण वा हि दारेषु सर्वतोमुखी प्रभुता उपपन्ना।

---

वञ्चक ही है, किन्तु यह तो बताइये कि इस बेचारी भोली-भाली सीधी-साधी महिला को ठगने से हमें लाभ ही क्या होगा?

**विशेष**—यहाँ राजा का ऋषियों के लिए कहा गया सत्यवादिन् सम्बोधन उपहास गर्भित है।

**शार्ङ्गरव**—लाभ! तुम्हारा अधः पतन ही लाभ है।

**विशेष**—यहाँ शार्ङ्गरव के कहने का अभिप्राय है कि एक भोली-भाली मुनिकुमारी को धोखा देने का पाप आपको भोगना पड़ेगा। यदि महर्षि कण्व अपनी कन्या शकुन्तला के दुःख से दुःखी होकर अत्यन्त क्षुब्ध हो जायेंगे तो उनके शापाग्नि से तुम्हारा कुल भस्मसात हो जायेगा। इससे बढ़कर अधःपात क्या हो सकता है।

**राजा**—हम पुरुवंशी राजा अपना अधःपात अपने आप चाहेंगे—यह बात तो किसी के भी विश्वास में नहीं आ सकती है।

**शारद्वत**—शार्ङ्गरव! अब ज्यादा कहने सुनने से क्या लाभ है। हम लोगों ने गुरु जी की आज्ञा का पालन कर दिया, अब हम लोग आश्रम को चलें **( राजा के प्रति )**—

आपकी पत्नी को आपके पास पहुँचा दिया गया। आप इसे छोड़ दें या स्वीकार करें, क्योंकि विवाह करने वाले का अपनी पत्नी पर पूरा पूरा अधिकार होता है ॥ २६ ॥

---

पाठा०—[1] भवतः पत्नी। [2] उपयन्तुर्हि।

गौतमी ! गच्छाग्रतः । ( इति प्रस्थिताः )

शकुन्तला—कहं इमिणा किदवेण विप्पलद्ध म्हि । तुम्हे वि मं परिच्चअह । [ कथमनेन कितवेन विप्रलब्धास्मि । यूयमपि मां परित्यजथ । ] ( इत्यनुप्रतिष्ठते )

---

शारद्वतो हि राज्ञा साकं विवादोऽनुचित इति मत्वा ततो विवादात् शार्ङ्गरवं विरमय्य निजकर्त्तव्यमुपदिशन्नाह—तदेषेति तत् = यस्माद् वयमनुष्ठितगुरुसन्देशाः आश्रमगमनोत्सुकाः स्मः तस्मात् एषा = इयं पुरोवर्तिनी भवतः तव दुष्यन्तकान्ता = धर्मपत्नी, अस्यां परिग्रहशङ्का न कार्या किञ्चैषा त्वत्करे समर्पिता । अत एनां त्यज = निष्कासय गृहाण वा धर्मपत्नीत्वेन स्वीकुरुष्व वा । हि = यतः सरेषु कललविषये सर्वतोमुखीं सर्वासु दिक्षु मुखं प्रवृत्तिर्यस्याः सा तादृशी सर्वतोमुखी = सर्वप्रकारा = त्यागे ताडने स्वीकारे दानादौ च प्रभुता = स्वतन्त्रता उपपन्ना युक्ता । भर्तृतन्त्रं पत्न्याः ग्रहणमग्रहणं च तेन यथेच्छमस्यां वर्तस्वेति भावः । अर्थात् हे राजन् ! वादविवादेन किमपि प्रयोजनं न सेत्स्यति निःसंशयमियं भवतो दारा अस्माक गुरुणा भगवता कण्वेन तव समीपे प्रहिता यद्येनां त्यक्तुमिच्छसि तर्हि त्यज्यताम् धर्मपत्नीत्वेन ग्रहणमनुमन्यसे चेद् गृहाण धर्मपत्नीषु सर्वथा भर्तुरेव स्वान्त्र्यमस्तीति प्रसिद्धमेव । तस्मात् यथेच्छम् कार्यम् । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारोऽनुष्टुप् छन्दश्च ॥ २६ ॥

गौतमि ! अग्रतः = अग्रे गच्छ = चल ( इति = एवमुक्त्वा प्रस्थिताः = प्रचलिताः सर्वे ) ।

शकुन्तला—सर्वान् प्रस्थितानवलोक्य शकुन्तला कथयति—कथं = केन प्रकारेण अशोभनेन अनेन = पुरतः स्थितेन कितवेन = धूर्तेन छलिना दुष्यन्तेन विप्रलब्धा = वञ्चिता प्रतारिता अस्मि ! यूयमपि = भवन्तोऽपि मां = शकुन्तलां परित्यजथ = विसर्जयथ, इति = एवमुक्त्वा अनुप्रतिष्ठते = अनुगन्तुमारभते । शार्ङ्गरवादिकम् नु यातुं प्रवृता ।

---

**विशेष**—गान्धर्व विवाह विधि से स्वीकृत होने से जो प्रिय रही है वह कान्ता है । इस प्रकार कान्ता का अर्थ है = प्रेम की गई प्रेयसी क्योंकि गान्धर्व विवाह प्रेम में अन्धा होकर किया जाता है । उस अवस्था की प्रेमिका को कान्ता ही कहा जाता है अग्निदेव को साक्षी बनाकर देव आर्ष ब्राह्म-प्राजापत्य विधि से परिणीता स्त्री को पत्नी कहते हैं । शारद्वत को मालूम था कि दुष्यन्त ने शकुन्तला से प्रेम विवाह = गान्धर्व विवाह किया है । अतः वर कान्तापद से सिद्ध करना चाहता है कि यह तुम्हारी प्रेमिका पत्नी है तुम इसे अवश्य स्वीकार करोगे ।

हे गौतमी ! आगे आगे चल **( सब जाते हैं )** ।

**शकुन्तला**—अब क्या करूँ ? इस धूर्त के द्वारा ठगी गई हूँ । आपलोग भी अब मुझे छोड़ रहे हैं **( ऐसा कहकर उनलोगों के पीछे-पीछे चल देती है )** ।

**विशेष**—जब शकुन्तला को दुष्यन्त के समक्ष ही छोड़कर शार्ङ्गरव आदि आश्रम की ओर चलने लगे, उसके सामने कोई रास्ता न था वह व्याकुल होकर उनलोगों के पीछे-पीछे चल पड़ी वहाँ शकुन्तला का भोलापन दिखाया गया है । उस आकस्मिक विपत्ति से वह इतना घबड़ा गई राजा से घृणा कर अपने बन्धुजनों का आश्रय चाहती थी ।

**गौतमी**—( स्थित्वा ) वच्छ संगरव ! अणुगच्छदि इअं खु णो करुणपरिदेविणी सउंदला पच्चादेसपरुसे भत्तुणि किं वा मे पुत्तिआ करेदु। [ **वत्स शार्ङ्गरव ! अनुगच्छतीयं खलु नः करुणपरिदेविनी शकुन्तला। प्रत्यादेशपरुषे भर्तरि किं वा मे पुत्रिका करोतु।** ]

**शार्ङ्गरवः**—( सरोषं निवृत्य ) किं पुरोभागे ! स्वातन्त्र्यमवलम्बसे। ( शकुन्तला भीता वेपते )

**शार्ङ्गरवः**—शकुन्तले !

**यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया।**
**अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः [1]पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्॥ २७॥**

---

**गौतमी**—अनुप्रतिष्ठमानां शकुन्तलां वीक्ष्य स्थित्वा गौतमी ब्रूते—वत्स ! शार्ङ्गरवो करुणं = आर्तं परिदेवयते = विलपति या सा करुणपरिदेविनी करुणं विलपन्ती विलापः परिदेवनम्, इत्यमरसिंहः, इयम् = एषा शकुन्तला नः = अस्मान् अनुगच्छति खलु निश्चयेन प्रत्यादेशपरुषे = प्रत्यादेशेन = प्रत्याख्यानेन निराकृत्य परुषैः = कठोरैः स्वभार्यात्वेन तामस्वीक्रियमाणे सति भर्तरि = पत्यौ मे मम पुत्रिकावात्सल्यभाजन पुत्री किंवा करोतु अनुगमनादन्यत् किं विदधातु ममानुकम्पनीया या अस्याः कन्यकाया अनन्यशरणत्वेनानुगमनादन्यः कश्चनोपायो नास्तीति भावः।

**शार्ङ्गरवः**—गौतमीवचनं श्रुत्वा शार्ङ्गरवः सरोषं निवृत्य शकुन्तलामाह पुरोभागे-पुरः-अग्रे भजते = हठात् सेवते या सा पुरोभागा तत्सम्बुद्धौ हे पुरोभागे = दोषदर्शिनि ! दुष्टे किं = किमर्थं स्वातन्त्र्यं = स्वच्छन्दतां अवलम्बसे = आश्रयसि अस्मदाज्ञां विनैवास्माननुगच्छसि, मास्माननुगच्छेतिभावः। शास्त्रेषु स्त्रीणां स्वातन्त्र्यं निषिद्धमस्ति। तथाहि—पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। ( शकुन्तला भीता वेपते कम्पते )।

**शार्ङ्गरवः**—शकुन्तले ! शार्ङ्गरवः शकुन्तलाया पतिगृहवासमेव समर्थयति—**यदीति**।

**अन्वयः**—क्षितिपः यथा वदति यदि त्वं तथा असि, उत्कुलया त्वया पितुः किमु ? अथ तु आत्मनो व्रतं शुचि वेत्सि पतिकुले दास्यमपि तव क्षमम्॥ २७॥

---

**गौतमी**—( **रुककर** ) बेटा, शार्ङ्गरव ! हृदय पिघलाने वाला विलाप करती हुई यह शकुन्तला हम लोगों के पीछे-पीछे आरही है। पति के निष्ठुरतापूर्वक परित्याग कर देने पर बेचारी मेरी प्यारी बिटिया अब क्या करें ?

**शार्ङ्गरव**—( **मुड़कर क्रोध के साथ** ) अरी ढीठ, क्या स्वातन्त्र्य का अवलम्बन कर रही हो, ( **शकुन्तला भय के मारे काँपती हैं** )।

**विशेष**—प्राचीन भारतीय सिद्धान्त के अनुसार स्त्रियों को स्वतन्त्रता नहीं हैं। वे अविवाहिता की स्थिति में पिता के, जवानी की स्थिति में अपने पति के तथा वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहती है—

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

**शार्ङ्गरव**—शकुन्तले ! राजा जैसा कह रहे हैं, यदि तुम वैसी ही हो तब तुझ कुलटा से पिता

---

पाठा०—१. पतिगृहे।

तिष्ठ साधयामो वयम् ।

राजा—भोस्तपस्विन् किमत्रभवतीं विप्रलभसे ।

---

पश्चात्प्रस्थितां तां शकुन्तलामवलोक्य शार्ङ्गरवः सकोपमाह—**यदीति** । क्षितिपः भूपालो राजा दुष्यन्तो यथा वदति = यादृशं भाषते न ममेयं परिणीतेति कथयति चेत् = यदि त्वं भवती तादृशी असि यदि त्वं तत्त्वत एवानूढा सगर्भा चासि तदा उत् = उत्क्रान्ता कुलात् = कुलमर्यादाया इत्युत्कुला तया उत्कुलया कुलमुत्क्रान्तया, अतिक्रान्तकुलमर्यादया तथाभूतया त्वया पितुः = कण्वस्य किम् ? न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः । अथ तु=पक्षान्तरे एतद्विपरीतं = स्वस्य आत्मनः व्रतपातिव्रत्यरूपशुचिपवित्रं वेत्सि = अयमेव दुष्यन्तो मे भर्तेति मनसा जानासि तदा पतिकुले = भर्तृगेहे दास्यभावे पत्युः सविधे नावस्थानं दासीभावोऽपि तव क्षमं योग्यम्, समीचीनमुचितम् । अतः आश्रमे तव पुनर्गमनं सर्वथा प्रतिकूलम् इहैव ते वास उचितः । अर्थात् शकुन्तले ! यदि त्वं वस्तुतः दुष्यन्तेनानूढैव सगर्भा जाता तर्हि अतिक्रान्तकुलमर्यादायाः तव कुलगुरुः त्वन्मुखं द्रक्ष्यसि यदि त्वं स्वपातिव्रत्यं युक्तं मन्यसे तर्हि ते पतिगृहे सेवाकर्म समुचितम् । अतोऽस्माकमनुगमनं न कार्यम् । अत्र हेतुकाव्यलिङ्गालङ्कारौ द्रुतविलम्बितं छन्दश्च ॥ २७ ॥

एवं पक्षद्वयेऽपि प्रतिप्रमाणेऽयुक्ते सति अत्रैव तिष्ठ = विरम, साधयामः = त्वां विहाय वयं गच्छामः ।

**राजा**—भो तपस्विन् = हे तापस ! अत्र भवतीं = मान्यां शकुन्तलां किं विप्रलम्भसे= वाक्चातुर्येण कथं वञ्चयसि । एनां प्रतार्य इहैव कुतः परित्यजसि । इत्थं भवदुपायप्रयोगेण अत्रासीनामपि एनां न स्वीकरिष्यामीति सदृष्टान्तमाह—**कुमुदान्येवेति** ।

---

कण्व का क्या प्रयोजन ? और यदि आचरण को तुम पवित्र समझती हो तो पतिगृह में ही तुम्हारी दासता भी उचित है । अतः यहीं रुको ॥ २७ ॥

**विशेष**—दोनों स्थितियों में शकुन्तला के लिए पिता का संरक्षण सम्भव नहीं था यदि विवाहिता लड़की ससुराल में अपने को नहीं निभा सकती है तो पतिगृह में उसका स्थान नहीं । यदि वह अपने को चरित्रवती समझती है तो अत्याचार होने पर भी पति के साथ रहकर उसकी सेविका को रहना उचित है । यदि व्यभिचारिणी है तो उसे पिता के घर में जाना कथमपि उचित नहीं, क्योंकि कोई भी पिता व्यभिचारिणी पुत्री को अपने घर में बनाये रखना नहीं चाहता ।

राजा का कहना कि मैंने इससे विवाह ही नहीं किया है, न यह मेरी स्त्री ही है, न यह गर्भ ही मेरा है, यदि वैसी ही कुलकलङ्किनी भ्रष्टा हैं तो कुलमर्यादा को भंग करने वाली तुम स्वैरिणी से अब हमारा सम्बन्ध हो क्या है ? यदि अपने पातिव्रत्य धर्म को परिशुद्ध समझती हैं और तेरा यही पति है तो फिर जाती कहाँ हो, पति के घर में दासी बनकर रहना भी तेरे लिए उचित है। अर्थात् यदि तू इस राजा की स्त्री नहीं है, तैने और ही किसी दूसरे पुरुष से सम्बन्ध कर यह गर्भ धारण किया है, तो तेरी ऐसी कुलटा को हम साथ ले जाकर अब कर भी क्या सकते हैं ? यदि तू सच्ची सती साध्वी है तेरा पति यही है तो फिर उनके यहाँ रहकर किसी प्रकार तुम्हें अपना समय बिताना चाहिए ।

अतः तू यहीं रह हमलोग जाते हैं ।

**राजा**—हे तपस्विन् ! इस बेचारी को आप क्यों धोखा दे रहे हैं और यहाँ इसे छोड़कर जा रहे हैं क्योंकि—

कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव।
वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ॥ २८ ॥

---

अन्वयः—शशाङ्कः कुमुदानि एव, सविता पङ्कजानि एव बोधयति। हि वशिनां वृत्तिः परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी ( भवति )।

शकुन्तलामुपदिश्य तां पतिगृह एव बलान्निवासयितुमुद्यतं शार्ङ्गरवं ब्रूते नृपतिर्दुष्यन्तः कुमुदानीति। शशाङ्कः चन्द्रः कुमुदान्येव=कैरवकुलान्येव बोधयति=विकासयति न पुनः पंकजानि सविता=सूर्यस्तु पङ्कजान्येव बोधयति, न कुमुदानि। हि=यतः, निश्चितं वशिनां=इन्द्रियसंयमिनाम् वृत्तिः=चित्तवृत्तिः व्यापारो वा परेषां परिग्रहाणां संश्लेषे पराङ्मुखीति परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी=अन्यकलत्रसम्पर्ककलङ्कविमुखी परकलत्र-स्वीकृतिर्निवर्तनशीला भवति, जितेन्द्रिया हि परकलत्रं मनसापि न स्वीकुर्वन्ति। 'परिग्रहः परिजने पत्न्यामिति विश्वः।

अयं भावः—अयि तापस! कथमेनां कण्वकन्यां प्रतारयसि मम गेहे निवासेऽपि नाहमेनामङ्गीकरिष्यामि। पश्य, यथा चन्द्रमाः कुवलयान्येव विकासयति, न कमलानि, सूर्यश्च पङ्कजान्येव विकासयति, न कुमुदानि। तथैव जितेन्द्रियाः पुरुषपुङ्गवाः परकल-त्राणि मनसाऽपि न कामयन्ते। तस्मादेनामत्र निवासयितुं भवतामुद्यमो व्यर्थ एव भविष्यति। अतो नैनां परस्त्रियमहं स्वान्तःपुरे स्थापयिष्यामीति भावः। अत्राप्रस्तुत-प्रशंसादृष्टान्तार्थान्तरन्यासा अलङ्कारा आर्या छन्दश्च ॥ २८ ॥

---

चन्द्रमा कुमुद को ही विकसित करता है, कमलों को नहीं और सूर्य कमलों को ही खिलाता है कुमुदों को नहीं। हमारे जैसे इन्द्रियनिग्रही धर्मभीरु लोगों की वृत्तियाँ हमेशा ही परिग्रह से पराङ्मुखी ही रहती है ॥ २८ ॥

इस प्रकार कुमुद चन्द्रमा का ही परिग्रह है तथा कमल सूर्य का परिग्रह है। इसलिए चन्द्रमा कमल से और सूर्य कुमुद से प्रेम नहीं करता। इसी प्रकार मैं भी पराई स्त्री से पराङ्मुख ही हूँ। राजा जोर देकर कह रहे हैं कि ऋषियों! यह न समझना कि इसे यहाँ छोड़ जाओगे तो मैं दया या कामुकता के कारण इसे स्वीकार कर लूँगा। परस्त्री मेरे लिए उसी प्रकार हेय है जिस प्रकार चन्द्रमा के लिए कमल तथा सूर्य के लिए कुमुद। राजा के कहने का अभिप्राय यही है कि आप समझते हो कि आप लोगों के यहाँ छोड़कर चले जाने के बाद मैं इस परम सुन्दरी ललना पर मुग्ध होकर आसक्त हो जाऊँगा और इसे अपने पास रख लूँगा। यह तो आप लोगों का भ्रममात्र ही है। मैं हमेशा दूसरे की स्त्री से दूर रहने वाला व्यक्ति हूँ। इसलिए इस बेचारी को यहाँ छोड़कर आप लोग इसे धोखा न दें।

**विशेष**—इस पद्य में शकुन्तला एवं दुष्यन्त के स्थान पर कुमुद एवं शशाङ्क तथा सूर्य एवं कमल का उल्लेख होने का तात्पर्य है जिससे जिसका सम्बन्ध होता है वही उसको प्रसन्न करता है दूसरों को नहीं। चन्द्रमा की चाँदनी छिटकने पर ही कुमुदिनी विकसित होती है तथा सूर्य की प्रभा फैलने पर केवल कमलिनी विकसित होती है, कुमुदिनी नहीं। यहाँ तो राजा दुष्यन्त सुलभ कोप महर्षि दुर्वासा जी के शाप से शकुन्तला से अपना सम्बन्ध ही नहीं समझ रहे हैं तो उससे प्रसन्न होने की बात ही क्या है?

**शार्ङ्गरवः**—यदा तु पूर्ववृत्तमन्यसङ्गाद्विस्मृतो भवांस्तदा कथमधर्मभीरोर्दारपरित्यागः ?

**राजा**—( पुरोहितं प्रति ) भवन्तमेवात्र गुरुलाघवं पृच्छामि ।

मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये ।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः ॥ २९ ॥

---

**शार्ङ्गरवः**—राजोक्तिमसहमानः शार्ङ्गरवो ब्रवीति—यदा तु पूर्ववृत्तम्–पूर्वं = प्राक् घटितं च तत् वृत्तं = घटना चेति पूर्ववृत्तम् = अतीतं रहोवृत्तं पूर्वघटितां घटनां वा अन्यसङ्गात् = अन्यस्य परस्य सङ्गात् = सम्पर्कात्, अन्तःपुरस्त्रीजनसङ्गात्, कार्यान्तरव्यासङ्गात्, राजतन्त्रप्रसङ्गात् शापाद्वा भवान् विस्मृतः = विस्मृतवानस्ति तर्हि, अधर्मभीरोः पापाद् भीतस्य तव दारपरित्यागः = स्वपरिणीतापत्नीपरित्यागः कथमुचितो भवेत् न सर्वथा समुचितः । एवंविधस्य भवतो नास्त्येव अधर्माद्भयम् । अधर्मभीरोस्तवाधर्मानुष्ठानमेतदनुचितमिति भावः ।

**राजा**—अथ तदानीं धर्मसङ्कटे पतितो राजा पुरोहितं प्रति पृच्छति–भवन्तं = पुरोधसमेव अत्र = अस्मिन् विषये, ग्रहणे त्यागे वा गुरुलाघवं = गौरवलाघवं, उच्चतां तुच्छतां दोषस्य बलाबलम् उचितमनुचितं च पृच्छामि = जिज्ञासे ।

**अन्वयः**—अहं मूढः स्याम्, एषा वा मिथ्या वदेत् इति संशये दारत्यागी भवामि अहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः भवामि ।

ततः शकुन्तलाङ्गीकारविषये राजा दुष्यन्तः पुरोधसं पृच्छति—मूढ इति । अहं = तव यजमानो दुष्यन्तः मूढः = विवेकहीनः, पूर्ववृत्तविस्मरणशीलः स्याम् = भवेयम्, वा = पक्षान्तरे अथवा एषा = इयं मुनिकन्यका मिथ्या = मृषा असत्यं वदेत् = कथयेत् इति = इत्थं संशये = सन्देहे 'अहं वा मूढ, सैषा वा मिथ्या भाषते' इति सन्देहे सति दारत्यागी = स्वस्त्रीत्यागपातकी भवामि अहो यद्वा परस्य स्त्रियाः स्पर्शेन पांसुल इति परस्त्रीस्पर्शपांसुलः = परदारसंसर्गदूषितः पातकयुक्तः कलङ्की भवामि । यद्यहं मूढः तदा अस्याः त्यागात् पापी स्याम्, यदीयं मिथ्या भाषते तर्हि परकलत्रसंग्रहाच्चाहं

---

**शार्ङ्गरव**—जब पहले की घटना स्वयं किया हुआ गान्धर्व विवाह आप अन्य स्त्री में आसक्त हो जाने से भूल गये हैं तो अधर्म से डरने वाले कैसे कहे जा सकते हैं ? पराई स्त्री की आशङ्का से अपनी स्त्री को छोड़ना क्या उचित होगा ।

**विशेष**—यहां अन्य विद्वानों ने कई प्रकार से उद्भावनायें की है—किसी अन्य सुन्दरी स्त्री में आसक्त होने के कारण, किसी राज-कार्य में व्यस्त होने के कारण या किसी शाप आदि के कारण विस्मृत हो जाने से ।

**राजा**—( पुरोहित के प्रति ) मैं आप से ही इस विषय में उचित अनुचित पूछ रहा हूँ कि इस विषय में मुझे क्या करना चाहिए, मैं ही विवेकहीन हो रहा हूँ या यह स्त्री झूठ बोल रही है । इस प्रकार के सन्देह में मैं स्त्री परित्यागी बनूँ या पराई स्त्री के स्पर्श से दूषित बनूँ ॥ २९ ॥

**विशेष**—यहां राजा का पुरोहित जी से कहने का तात्पर्य है कि इस धर्म सङ्कट में मुझे मार्ग नहीं सूझ रहा है कि मैं क्या करूँ ? क्या नहीं । आप धर्मशास्त्रों के ज्ञाता हैं । अतः निर्णय कर मुझे आदेश दीजिए कि क्या करना चाहिए ? क्योंकि संभव है कि प्रमादवश मैं ही भूल गया हूँ । ऐसी स्थिति में इसके साथ किये गये विवाह का स्मरण न रहने से मैं इसे ग्रहण नहीं कर सकता,

**पुरोहितः**—( विचार्य ) यदि तावदेवं क्रियताम् ।

**राजा**—अनुशास्तु मां भवान् ।

**पुरोहितः**—अत्रभवती तावदाप्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु। कुत इदमुच्यते इति चेत्। त्वं साधुभिरुद्दिष्टः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति । स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, [1]अभिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्यये तु पितुरस्याः [2]समीपनयनमवस्थितमेव ।

---

पापीयान् । स्वधर्मपत्नीं परित्यज्य दारत्यागदोषभाग् भवेयं उत परस्त्रीभूतामेनां स्वीकृत्य परस्त्रीस्पर्शकलङ्कितो भवेयमित्युभयथा दोषप्रसक्तिः। तस्मादत्र किं कर्तव्यमिति भवानेव मामुपदिशतु इति भावः। अत्र वितर्कादयो भावा अनुष्टुप्छन्दश्च ॥ २९ ॥

पुरोहितः—पुरोधा हि विचार्य कर्तव्यमाह—यदि = संशयश्चेत् तावत् = प्रथमं एवं क्रियताम् = इत्थं विधीयताम् ।

राजा—भवान् पुरोहितः मां = राजानम् अनुशास्तु = कर्तव्यम् आदिशतु ।

पुरोहितः—पुरोधाः कर्तव्यमुपदिशति—अत्रभवती = मान्या मुनिकन्यका तावत् आप्रसवात् = प्रसवपर्यन्तं सन्तानोत्पत्ति पुत्रजन्मनो यावत् अस्मद्गृहे = मम गेहे तिष्ठतु = वसतु। कुतः = कस्मात् कारणात् इदं = उपर्युक्तं उच्यते = मया कथ्यते । चेत् = यदि, एवं वितर्कस्तर्हि श्रृणु–त्वं = भवान् साधुभिः = सज्जनैः आप्तैः सारङ्गानुधावनप्रसङ्गे वैखानसैः प्रथमं = प्रथमत एव उद्दिष्टः = उक्त एव चक्रवर्तिनं = सम्राज पुत्रं सूतं = जनयिष्यसि = उत्पादयिष्यसि इति सः = अस्यां जनिष्यमाणः भावी मुनिदौहित्रः = मुनेः दुहितुः शकुन्तलायाः पुत्रः चेत् = यदि तल्लक्षणोपपन्नः तस्य = चक्रवर्तिनः लक्षणैः = चिन्हैः उपपन्नः = युक्तः भविष्यति तर्हि अभिनन्द्य = स्वागतं व्याहृत्य सादरं सत्कृत्य

---

तो पत्नी के परित्याग का पातक लगेगा। यदि विवाह न किया हो तो और पत्नी बनाकर रख लूँ तो मुझे पर-स्त्री संग का पाप लगेगा। अतः आप ही बतलाइए कि शास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार मैं क्या करूँ।

**पुरोहित**—( विचार कर ) यदि यह बात है तो ऐसा कीजिए ।

**राजा**—हाँ मुझे आप उचित आदेश दें ।

**पुरोहित**—यह श्रीमती शकुन्तला प्रसव होने तक मेरे घर में ठहरे। यदि यह पूछा जाय कि क्यों ! तो इस पर मेरा उत्तर है—बड़े-बड़े विश्वासी भविष्य वेत्ताओं ने पहले ही आपको आदेश दे रखा है कि आपको प्रथम चक्रवर्ती पुत्र पैदा होगा। अब यदि महर्षि कण्व का दौहित्र इस शकुन्तला का पुत्र चक्रवर्ती के लक्षणों से सम्पन्न होगा, तब तो यह सिद्ध हो जायेगा कि यह आपकी स्त्री है। अनन्तर अभिनन्दन के साथ इसको अपने राजमहल में प्रवेश कराएगा। यदि ऐसा नहीं होगा तो इसका अपने पिता कण्व के पास उनके आश्रम में जाना निश्चित ही है ।

**विशेष**—यहाँ पुरोहित जी ने अपने नाम को सार्थक कर दिया, क्योंकि पुरोहित का अर्थ ही है कि अपने यजमान का कल्याण प्रथम करना। पुरोधा जी ने बहुत ही उत्तम मार्ग निकाला, जिससे उनके यजमान राजा दुष्यन्त का भविष्य समुज्वल रहे तथा वे किसी प्रकार के दोष से कलङ्की न हो सकें। पुरोहित जी सज्जन धार्मिक ईमानदार और वृद्ध प्रतीत होते हैं जिससे उनके यहाँ शकुन्तला के रहने पर समाज में किसी प्रकार निन्दा का प्रश्न ही नहीं उठता। पुरोहित जी

---

पाठा०—१. ततः प्रतिनन्द्य । २. समीपगमनमस्थितमेव ।

**राजा**—यथा गुरुभ्यो रोचते ।

**पुरोहितः**—( उत्थाय ) वत्से, अनुगच्छ माम् ।

**शकुन्तला**—भअवदि वसुहे, देहि मे विवरं [ भगवति वसुधे देहि मे विवरम् ]

( इति रुदतो प्रस्थिता निष्क्रान्ता सह पुरोधसा तपस्विभिश्च )

( राजा शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलागतमेव चिन्तयति । )

---

शुद्धान्तं = अन्तःपुरम् एनां = इमां मुनिदुहितरम् प्रवेशयिष्यसि । विपर्यये तु = अन्यथा पुनः यदेषा पुत्रं न जनयिष्यति जनितमपि चक्रवर्तिलक्षणहीनं स्यात् तदा अस्याः पितुः मुनेः कण्वस्य समीपनयनं = निकटप्रापणम् अवस्थितमेव = निर्धारितमेव निश्चितमेव ।

**राजा**—पुरोहितोक्तिमनुमन्यमानः प्राह—यथा गुरुभ्यः = आदरणीयाय उपाध्यायाय भवते रोचते—तथा भवतु ।

**पुरोहितः**—पुरोधाः शकुन्तलामाह—वत्से = पुत्रि ! माम् अनुगच्छ = अनुसर ।

**शकुन्तला**—अथ पुरोहितमनुप्रस्थिता उभयलोकभ्रंशमसहमाना शकुन्तला सनिर्वेदं शरीरत्यागाय भगवती जानकीव वसुधामाशंकते—भगवति वसुधे = वसुन्धरे ! मे = मह्यं शकुन्तलायै विवरं स्वोदरे अवकाशं देहि वितर ( इति = एवमुक्त्वा रुदती = विलपन्ती पुरोधसा = पुरोहितेन तपस्विभिः = कण्वाश्रमवासिभिः तापसैश्च सह = साकं निष्क्रान्ता प्रस्थिता = चलिता, रङ्गभूमितो निर्गता )

( राजा = नृपो दुष्यन्तः शापेन = दुर्वाससः शापेन व्यवहिता स्मृतिः यस्य स शापव्यवहितस्मृतिः = शापमूढमतिः शकुन्तलागतं = शकुन्तला विषयं वृत्तान्तमेव निमित्तीकृत्य चिन्तयति = शोचति )

---

उस समस्या का समाधान ईमानदारी से करना चाहते हैं यदि उनके माध्यम से सिद्ध हो गया कि शकुन्तला दुष्यन्त की परिणीता पत्नी है तो पुरोहित जी की प्रतिष्ठा अमिट रहेगी ।

प्राचीन काल में दैवज्ञों की भविष्यवाणी पर धार्मिक जनता का पूर्ण विश्वास था । दुष्यन्त की जन्मकुण्डली एवं हस्तरेखाओं को देखकर ज्योतिष के विद्वानों ने पहले ही बता दिया था कि इनका प्रथम पुत्र चक्रवर्ती होगा । हस्तरेखा के अनुसार चक्रवर्ती के पैर और हाथों में शंख, चक्र, कमल, अंकुश, वज्र आदि के चिह्न होते हैं । मुनि दौहित्र पद से व्यक्त होता है कि राजकुमार होना अभी विवादास्पद है । शकुन्तला की बात झूठी होने पर वह अपने पिता के पास भेज दी जायेगी ।

**राजा**—जैसा आपको अभीष्ट हो वैसा करें ।

**पुरोहित**—( उठकर ) बेटी ! मेरे पीछे-पीछे आओ ।

**शकुन्तला**—भगवति वसुन्धरे ! मुझे अपने अन्दर स्थान दो, फट जाओ मैं समा जाऊँ ।

**( यह कह कर शकुन्तला रोती हुई पुरोहित तपस्वियों तथा गौतमी के साथ-साथ रंगमंच से बाहर जाती है )**

**विशेष**—तपोवन निवासिनी मुनिकन्या शकुन्तला इतनी सौम्य थी कि वह इस तरह अपमानित होने पर भी रोती हुई पुरोहित जी के पीछे चली जाती है, न तो हठ करती है, न झूठे पति को कुवाच्य कहकर अपमानित करती है । धन्य है यह भारतीय नारियों का आदर्श ।

**( इधर राजा, जिनकी स्मृति महर्षि दुर्वासा के शाप से ढक गई है शकुन्तला के विषय में ही सोचते हैं )**

( नेपथ्ये ) आश्चर्यम् ।

राजा—( आकर्ण्य ) किन्नु खलु स्यात् ।

( प्रविश्य )

पुरोहितः—( सविस्मयम् ) देव अद्‌भुतं खलु [1]संवृत्तम् ।

राजा—किमिव

पुरोहितः—देव परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु—

**सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता ।**

राजा—किं च

---

( नेपथ्ये = सज्जागृहे ) आश्चर्यम् = विस्मयः अरे अद्भुतं वृत्तम् ।

राजा—( आकर्ण्य = कर्णं दत्वा, निशम्य ) किन्नु खलु स्यात् = किमेतत् स्यात् किमिदं जातमित्याशयः ।

पुरोहितः—( सविस्मयं = साश्चर्यम् ) देव !=महाराज-अद्भुतं=आश्चर्यजनकं संवृत्तं= सञ्जातम्, घटितम् ।

राजा—किमिव = विघटितम् ।

पुरोहितः—देव=महाराज ! कण्वशिष्येषु=कण्वान्तेवासिषु परावृत्तेषु=आश्रमाभिमुखं प्रयातेषु सत्सु ।

अन्वयः—सा बाला स्वानि भाग्यानि निन्दन्ती ( सती ) बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं प्रवृत्ता अभूत् ।

दुष्यन्तपुरोहितो ब्रूते—सेति । सा = त्वया साक्षात्कृता बाला=षोडशवार्षिकी मुनि-कन्यका शकुन्तला स्वानि भाग्यानि निन्दन्ती = निजानि प्रतिकूलानि भागधेयानि संशन्ती अधिक्षिपन्ती बाहूत्क्षेपं = बाहू उत्क्षिप्य ऊर्ध्वं क्षिप्त्वा दुःखातिशयवशात् बाहूद्वयमूर्ध्वं क्षिप्त्वेत्यर्थः क्रन्दितुं = उच्चैर्विलपितुं प्रवृता = प्रवृत्तमात्रा च अभूत् । सोरस्ताडं रोदितु-मारेभे ।

राजा—किञ्च = ततः ।

---

( नेपथ्य में ) बड़े ही आश्चर्य की बात है, बड़े हो आश्चर्य की बात है ।

राजा—( कान देकर सुनता हुआ ) हैं आश्चर्य की क्या बात हो सकती है ?

( प्रवेश कर )

पुरोहित—( विस्मय के साथ ) महाराज ! बड़ी ही अद्‌भुत घटना हुई ।

राजा—वह क्या ?

पुरोहित—महाराज ! जब महर्षि कण्वजी के शिष्य वापस चले तब अपने भाग्य कोसती हुई वह बाला हाथ उठाकर = छाती-पीट कर रोने लगी ।

राजा—तब फिर क्या हुआ ?

---

पाठा०—१. वृत्तम् ।

पुरोहितः—
**स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारादुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम ॥ ३० ॥**
( सर्वे विस्मयं रूपयन्ति )

**राजा**—भगवन् प्रागपि सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्ट एव। किं वृथा तर्केणान्विष्यते। विश्राम्यतु भवान् ।

---

पुरोहितः—

**अन्वयः**—स्त्रीसंस्थानम् एवं ज्योतिः आरात् एनाम् उत्क्षिप्य अप्सरस्तीर्थं जगाम।

तत्क्षणमेव 'स्त्रियाः = नार्या संस्थानं = आकृतिरिवाकृतिर्यस्य तत् स्त्रीसंस्थानम् एकम् = अनिर्वचनीयं ज्योतिः = तैजसं शरीरम् आरात् = समीपादेव एनां मामनुगच्छन्तीं मुनिकन्यकाम् उत्क्षिप्य = उत्तोल्य उत्थाय अप्सरस्तीर्थं तन्नामकं समीपवर्तितीर्थविशेषं शचीतीर्थं जगाम = तदभिमुखं प्रतस्थे ।

**अयं भावः**—आत्मना साकं प्रस्थितां शकुन्तलां स्वसद्मनि नयन् मध्येमार्गं किमप्याश्चर्यवृत्तमवलोक्य पुरोधाः प्रतिनिवृत्य राजानं दुष्यन्तमवोचत् महाराज ! तापसेषु तपोवनाभिमुखं प्रयातेषु स्वानि दुर्भाग्यानि अधिक्षिपन्ती त्वया त्यक्ता सा मुनिकन्यका यदा सोरस्ताडं रोदितुमारेभे तदा तत्कालं स्त्री शरीरधारि एकं तेजः सहसा समागत्य एनामादाय अप्सरस्तीर्थामिमुखमगच्छत् अत्र क्रियासमुच्चयालङ्कारः शालिनीवृत्तञ्च ।३०॥

( सर्वे = सकलाः जना विस्मयम् = आश्चर्यं रूपयन्ति = अभिनयन्ति नाटयन्ति )

**राजा**—तस्यास्तिरोधानं नभे दुःखावहमिति पुरोधसमाह-भगवन् ! = सोमरात ! प्रागपि = इत प्रस्थानात्पूर्वमपि सोऽर्थः = मुनिकन्यकारूपः प्रसङ्गः, अस्माभिः = मया प्रत्यादिष्टः = परपरिग्रहरूपत्वात् प्रत्यादिष्ट एव। अतस्तिरोधानेन न मे कापि क्षतिरिति भावः। किं वृथा = व्यर्थं काकदन्तपरीक्षणवत् तर्केण = उपपत्त्या, युक्त्या ऊहेन वा अन्विष्यते गवेष्यते, अनुगम्यते। सा परपरिग्रहेण वा, सा कुलगता, केन नीता इत्यादि विचारणा न कार्येति भावः। भवान् = श्रीमान् विश्राम्यतु = मुनिकन्याविषयिणीं वार्तां विहाय स्वस्थो भवतु इत्यर्थः।

---

**पुरोहित**—उस समय अप्सरातीर्थ = शचीतीर्थ के पास स्त्री के आकार प्रकार की प्रचण्ड ज्योति बिजली सी चमक कर निकली और उसे गोदी में लेकर अन्तर्धान हो गई।

**विशेष**—इस पद्य में उपात्त आरात् शब्द से दूर और समीप दोनों ही अर्थ अभिप्रेत हैं। अतः एक विद्वान् ने यह भी अर्थ किया है कि वह तेजोमयी मूर्ति दूर से ही शकुन्तला को उठाकर शचीतीर्थ को चली गयी। संस्थान पद से प्रतीत होता है कि वह स्वरूप स्पष्ट दिखाई दिया, किन्तु वस्त्र एवं अलङ्करणों से इतना ही आभास हुआ कि यह कोई स्त्री है। स्त्री ज्योति कहने का तात्पर्य है कि अभीतक शकुन्तला को किसी पुरुष का स्पर्श नहीं हो पाया है। आगे स्पष्ट होगा कि वह ज्योति शकुन्तला की मां मेनका थी, जो अपनी पुत्री को उस प्रकार विह्वल देखकर उठा ले गई। अप्सरातीर्थ में अप्सराओं के रहने और जलक्रीडा करने का संकेत मिलता है।

**( सभी आश्चर्य का अभिनय करते हैं। )**

**राजा**—मैंने इस बात का पहले ही खण्डन कर दिया है कि वह स्त्री मेरी भार्या नहीं है। अतः अब आप उसके विषय में व्यर्थ तर्क लगाकर चिन्ता न करें। शान्ति से बैठिए, जाइए विश्राम कीजिए।

**पुरोहितः**—( विलोक्य ) विजयस्व । ( इति निष्क्रान्तः )
**राजा**—वेत्रवति पर्याकुलोऽस्मि । शयनभूमिमार्गमादेशय ।
**प्रतीहारी**—इदो इदो देवो । [ इत इतो देवः ] ( इति प्रस्थिता )
**राजा**—

**कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम् ।**
**बलवत्तु दूयमानं प्रत्याययतीव [१]मे हृदयम् ॥ ३१ ॥**

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

( पञ्चमोऽङ्कः । )

---

पुरोहितः—( विलोक्य = दृष्ट्वा ) पुरोधाः विजयस्व = जयं लभतां महाराजः ।
( इति = एवमुक्त्वा निष्क्रान्तः = निर्गतः )

**राजा**—मनसि कमपि सन्तापमनुभवन् प्रतिहारीमादिशति—वेत्रवति ! यष्टिधारिणि द्वारपालिके ! ऋषिकुमार-मुनिकन्यादिविषयकवचःप्रतिवचो दुरुत्तरक्लेशेन पर्याकुलः = श्रान्तः, व्यग्रः अस्मि । शयनभूमिमार्गं शयनस्य = शय्यायाः भूमेः = स्थलस्य मार्गं = पन्थानं आदेशय निर्दिश कथय सूचय ।

**प्रतिहारी**—इत इतो देवः = अनेन मार्गेण चलतु, अनेन मार्गेण चलतु देवः = महाराजः । ( इति = एवमुक्त्वा प्रस्थिता = प्रचलिता )

**राजा**—नृपो दुष्यन्तः आत्मनः पर्याकुलता वर्णयति—काममिति ।

**अन्वयः**—कामं प्रत्यादिष्टां मुनेः तनयां परिग्रहं न स्मरामि तु बलवत् दूयमानं मे हृदयम् प्रत्यायतीव ।

पुरोहितादिकं विसृज्य वेत्रवत्या निर्दिष्टं शयनागरं गत्वा आकुलितेन्द्रियो राजा दुष्यन्तः तामेव शकुन्तलां विमृशन्नाह—काममिति । काम = यद्यपि अतिशयेन वा प्रत्यादिष्टां = निराकृतां, भार्यात्वेनाङ्गीकृताम्, दूरनिरस्तत्वादर्शनं गताम्, मुनेः = महर्षेः कण्वस्य तनयां, कन्यां दुहितरं शकुन्तलाम् परिग्रहं = पत्नीं न स्मरामि = पूर्वस्त्रीत्वेनाङ्गीकृतवानस्मीति न स्मरामि न विभावयामि । तु = तथापि पुनर्वा बलवत्—अत्यर्थम् चित्तम् प्रत्याययतीव = विश्वासमुत्पादयतीव बलवद्दूयमानत्वान्मम हृदयं तु मुनिकन्या मत्परिग्रहभूतेति मां प्रत्याख्यातारं दुष्यन्तं विश्वासं जनयतीत्यर्थः ।

---

**पुरोहित**—( देखकर ) महाराज की विजय हो ( चला जाता है ) ।

**विशेष**—राजा खिन्न है, शकुन्तला के प्रसंग को सुनना नहीं चाहता है । इसलिए झिझककर उसने पुरोहित से कहा कि मैं इस समय कुछ भी सुनना नहीं चाहता हूँ आप तर्क वितर्क छोड़कर आराम कीजिए ।

**राजा**—द्वारपालिके ! मैं अधिक व्याकुल तथा श्रान्त हो गया हूँ । अतः मुझे शयन-कक्ष का मार्ग दिखलाओ ।

**प्रतिहारी**—महाराज इधर से आइए इधर से आइए । ( यह कहकर जाती है ) ।

**राजा**—यद्यपि उस मुनि कन्या शकुन्तला का मैंने प्रत्याख्यान तथा त्याग कर दिया है ।

---

पाठा०—१. मां ।

# षष्ठोऽङ्कः

( ततः प्रविशति नागरिकः श्यालः पश्चाद्बद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च । )

अर्थात् कण्वशिष्याभ्याम् ऋषिकुमाराभ्यां वृद्धया तापस्या च सह मम समीपे समागता महर्षेः कण्वस्य दुहिता नेयं मम परिग्रह इति मयातिरुषा निराकृताऽपरमिदानीं मदीयान्तःकरणं तां कण्वदुहितरमुद्दिश्य नितरां परिपीड्यते । अतो ममान्तःकरणस्याधिरेव मम मनसि क्षणिकं विश्वासं जनयति यन्मया पूर्वं नूनं परिणीता सेति नितरां पर्याकुलोऽस्मीति भावः ।

अत्रोत्प्रेक्षाऽनुमानविभावनालङ्काराः आर्या छन्दः, प्रसङ्गनामकं विमर्शं सन्ध्यङ्गश्चोपक्षिप्तम् मुनेः तनयेति गुरुकीर्तनात् । तल्लक्षणं यथा—

'प्रसङ्गश्चैव विज्ञेयो, गुरूणां कीर्तनं हि यत्' ॥३१॥

( इति—पश्चात् सर्वे = सकला अभिनेतारः निष्क्रान्ताः रङ्गमञ्चाद् बहिर्गताः )

अस्याङ्कस्यान्तिमेन कामं प्रत्यादिष्टामिति पद्येन अग्रिमस्य षष्ठस्याङ्कस्य कृते बिन्दोरुपक्षेपः कृतः । अस्मिन् पञ्चमेऽङ्के दुष्यन्तस्य शकुन्तलायाश्च वर्णितेन प्रतिकूलवचनचातुर्येण षष्ठेऽङ्के वर्णयिष्यमाणो विप्रलम्भश्रृङ्गारः परिपोषमेति ।

इति कविवरकालिदासेन प्रणीतस्याभिज्ञानशाकुन्तलनामकना[illegible]कस्य
पञ्चमेऽङ्के पं० श्रीकृष्णमणित्रिपाठिना संस्कृते कृता
विमलाख्या व्याख्या समाप्ता ।

अथास्मिन् षष्ठेऽङ्के नाटकनायकस्य नृपतेः दुष्यन्तस्य शकुन्तलायाः परित्यागात् जायमानेनानुतापेन परिपोषितो विप्रलम्भश्रृङ्गारो वर्णयिष्यते । तत्रादौ पूर्वरङ्गभूतां शापनिर्वृतिं प्रदर्शयितुं प्रवेशकमारमते—तत इति ।

( ततः = तदनन्तरं प्रविशति = रङ्गे दृश्यते नगरं रक्षति तत्र नियुक्तो वा
नागरिकः=नगरनिवासिनां रक्षणार्थं राज्ञाधिकृतः=नगररक्षकः श्यालः=
पृष्ठभागबद्धभुजयुगलं पश्चाद्बद्धपुरुषं = बाहुपृष्ठतः संगमय्य
तयोर्बद्धं, पुरुषं आदाय = गृहीत्वा रक्षिणौ =
रक्षापुरुषौ = प्रहरिणौ च )

अपने विवाह की बात का मुझे स्मरण नहीं हो रहा है, किन्तु अत्यन्त खिन्न एवं व्याकुल मेरा मन तो इस बात को सिद्ध करता है कि यह अवश्य मेरी स्त्री होनी चाहिए ॥ ३१ ॥

**विशेष**—शकुन्तला के साथ दैवी घटना के बाद दुष्यन्त को विश्वास हो गया कि मैंने किसी दिव्य आत्मा का अपमान किया है मेरी स्मृति ने मुझे धोखा दिया है राजा को स्मरण न रहने के कारण उनका मन रह रहकर उन्हें धिक्कार रहा है कि राजन् तुमने अपनी परणीता पत्नी का त्याग कर बहुत बड़ी गलती कर दी है।

**( इसके सभी पात्र रंगमंच से बाहर निकल जाते हैं )**
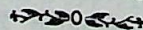
**( नगर की रक्षा में नियुक्त राजा के साले कोतवाल का तथा उनके पीछे दोनों हाथ बँधे हुए एक पुरुष धीवर को पकड़े हुए दो सिपाहियों का प्रवेश )**

**रक्षिणौ**—( ताडयित्वा ) अले कुम्भीलआ। कहेहि कहिं तुए एशे मणिबंध-णुक्किण्णणामहेए लाअकीए अंगुलीअए शमाशादिए। [ अरे कुम्भीलक कथय कुत्र त्वयैतन्मणिबन्धनोत्कीर्णनामधेयं राजकीयमङ्गुलीयकं समासादितम् ]

**पुरुषः**—( भीतिनाटितकेन ) पशीदंतु भावमिश्शे। हगे ण ईदिशकम्मकाली। [ प्रसीदन्तु भावमिश्राः। अहं नेदृशकर्मकारी। ]

---

**रक्षिणौ**—(रक्षाधिकृतपुरुषौ पुरुषं ताडयित्वा=आहत्य) अरे=रे कुम्भीलक! चोर! 'कुम्भरीको गण्डपदः तस्करश्च मलिम्लुचः' इति नाममाला। 'कुम्भिलः शालमीने च चौरश्लोकार्थचौरयोः' इति मेदिनीकोशश्च। कथय=वद कुत्र=क्व त्वया एतत् इदं पुरो निहितम, मणिबन्धनं=मणिजटितं च उत्कीर्णं=उल्लिखितं नामधेयं=अभिधानं नामाक्षराणि यस्मिन् तत् मणिबन्धनोत्कीर्णनामधेयम्=उट्टङ्कितराजनामाक्षरम् राजकीयं-राजसम्बन्धि अङ्गुलीयकं=मुद्रा समासादितं प्राप्तम्।

**पुरुषः**—(बद्धो जनः भीत्या=भयेन नाटकितेन=भयं नाटयित्वा अभिनयेन वदति) यत् प्रसीदन्तु सकृपाः भवन्तु भावमिश्राः=मान्यवराः अहं न ईदृशं कर्म कर्तुं शीलं

---

**दोनों सिपाही**—( **पुरुष को मारते हुए** ) अरे चोर, बता जड़ी हुई मणि पर खुदे हुए नाम से युक्त यह राजा की अंगूठी तुमने कहाँ पाई।

**विशेष**—नागरिक शब्द का वास्तविक अर्थ नगरनिवासी, चतुर, चालाक, प्रवीण, कुशल आदि होता है। प्राचीनकाल में नगर-रक्षा का भार राजा के साले पर होता था। साला राजा का निकटतम सम्बन्धी है, अतः उस पर पूर्ण विश्वास रहता था। सगे सम्बन्धियों से धोखे की संभावना कम रहती है। इसलिए नगररक्षक को संस्कृत भाषा में श्याल और राष्ट्रिय भी कहा जाता है—**राजश्यालस्तु राष्ट्रियः**। इस प्रकार प्राचीनकाल में बहुविवाह के अनुसार राजाओं की कई स्त्रियां हुआ करती थीं, उनके भाई आदि को भी प्रधान राजकीय पदों पर रखा जाता था। उनके भी साले आदि उनके अन्दर कार्य किया करते थे। ये सभी राजा के प्रधान अधिकारी को आवुत्त=जीजाजी कहा करते थे। आवुत्त शब्द का वास्तविक अर्थ जीजाजी = बहन के पति अर्थात् बहनोई होता है किन्तु प्राचीनकाल में कुछ लोग अपने बड़े अधिकारी को भी आवुत्त कहा करते थे।

वास्तविक स्थिति का पता लगाने के निमित्त पुलिस द्वारा पीटने की प्रथा अतिप्राचीन है। आजकल की तरह ही जिस व्यक्ति पर शक होता था उसे अपराधी समझकर पीटा जाता था, जिससे वह भयभीत होकर सच्ची बात बता देता था। आजकल भी पुलिस अधीक्षक, नगर कोतवाल या जिलाधीश के सामने सिपाही अपनी कारगुजारी बढ़चढ़कर दिखाते हुए अपराधी को अपमानित करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार नगर को रक्षा करने में नियुक्त अधिकारी को कोष्टपाल कोट्टपाल तथा श्याल भी कहा गया है।

कुम्भीरक शब्द निपात से निष्पन्न होता है—कु = पृथ्वी दीवार को भेदन = सेंध देने वाले को कुम्भीरक कहते हैं तथा मगर के समान चोरी से प्राणियों को पकड़ने के कारण ही समान आचरण करने वाले चोर को भी कुम्भीरक कहा जाता है।

पहले सोने की अंगूठी में बहुमूल्य मणि जड़ी रहती थी, जिसके ऊपर राजा के नाम खुदे रहते थे, जिससे समय समय पर अत्यावश्यक कागज पत्रों पर मुहर भी लगाई जाती थी। महाराज दुष्यन्त की अँगूठी भी इसी प्रकार की थी।

**पुरुष**—( **भय का अभिनय करता हुआ** ) हे मालिक! मुझ पर दया कीजिए। मैं ऐसा अनुचित कार्य-चोरी करने वाला नहीं हूँ।

**प्रथमः**—किं सोहणे वम्हणोत्ति कलिअ रज्जा पडिग्गहे दिण्णे। [ **किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः । ]**

**पुरुषः**—सुणध दाणि। हगे शक्कावदालब्भंतरालवाशी धीवले। ] **श्रृणुतेदानीम् । अहं शक्रावताराभ्यन्तरालवासी धीवरः । ]**

**द्वितीयः**—पाइच्चल किं अम्हेहिं जादो पुच्छिदा। [ **पाटच्चर किमस्माभिर्जातिः पृष्टा । ]**

**श्यालः**—सूअअ कहेदु शव्वं अणुक्कमेण मां णं अंतरा पडिबंधह। [ **सूचक कथयतु सर्वमनुक्रमेण । मैनमन्तरे प्रतिबन्धय ।**

**उभौ**—जं आवुत्ते आणवेदि। कहेहि। [ **यदावुत्त आज्ञापयति । कथय । ]**

---

यस्य स ईदृशकर्मकारी = ईदृशस्य = स्तेयरूपस्य कर्मणः कर्ता नाहमस्मि । अर्थान्निदमङ्गुलीयकं मया चौर्येणासादितम् ।

**प्रथमः**—अन्यतरो रक्षी, राजपुरुषो मनसा तं चौरमवधार्य छलेनोपहसति—किं शोभनः = श्रेष्ठः विद्यातपोनिष्ठः ब्राह्मणः = पवित्रविप्रः इति = एवं कलयित्वा = मत्वा राज्ञा = नृपेण प्रतिग्रहः—प्रतिगृह्यते इति प्रतिग्रहः = देवद्रव्यं, दानम् दत्तः = अर्पितः। इति सोपहासं वचः।

**पुरुषः**—श्रृणुत = आकर्णयत यूयम् इदानीं = अधुना अहं शक्रावतारस्य—तन्नामकस्य स्थानस्य शचीतीर्थस्य अभ्यन्तराले मध्ये वसितुं शीलमस्येति शक्रावताराभ्यन्तरालवासी धीवरः कैवर्तः मत्स्यजीवी पाटयन् = विदारयन् चरति भ्रमतीति पाटच्चरः तत्सम्बुद्धौ हे पाटच्चर।

**द्वितीयः**—तं पुरुषं भीषयन् अपरः रक्षापुरुषः वदति—रे पाटच्चर ! अरे चौर ! किम् अस्माभिः जातिः पृष्टा ? इदमङ्गुलीयकं, कुतो लब्धमिति पृष्टं न तु जातिः पृष्टेत्यर्थः। 'दस्युः पाटच्चरः स्तेनः' इति हैमः।

**श्यालः**—राष्ट्रियः कोष्टपालः कथयति—हे सूचक ! सर्वं = सकलं घटितम् अनुक्रमेण क्रमशः कथयतु = वदतु विवृणोतु चोरः, मा एनं नैनमिमं, अन्तराले = मध्ये प्रतिबन्धय= बाधां देहि। तर्जनेन विघ्नं मा कुरु।

**उभौ**—द्वौ रक्षकौ कथयतः आवुत्तः = भगिनीपतिः यत् आज्ञापयति = आदिशति 'भगिनीपतिरावुत्तः' इत्यमरः तत् कथय = वद।

---

**पहला सिपाही**—यदि तूने चोरी नहीं की है तो क्या तुझे सत्यपालक ब्राह्मण समझकर महाराज ने तुझे यह अपनी अंगूठी दी है।

**पुरुष**—नहीं, नहीं सुनिए तो सही—शक्रावतार तीर्थ का रहने वाला धीवर = मत्स्यजीवी मल्लाह हूँ।

**दूसरा सिपाही**—अरे चोर ! हम क्या तुमसे तेरी जात पूछ रहे हैं ?

**श्याल**—कोतवालजी ने कहा—सूचक ! क्रमशः इसे सब बातें कहने दो, बीच में मत टोको।

**दोनों सिपाही**—सरकार का हुक्म ! अच्छा, तो, कह रे, कह।

पुरुषः—अहके जालुग्गालादिहिं मच्छबंधणोवाएहिं कुटुंबभलणं कलेमि। [ अहं जालोद्गालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि। ]

श्यालः—( विहस्य ) विशुद्धो दाणि आजीवो। [ विशुद्ध इदानीमाजीवः। ]

पुरुषः—

शहजे किल जे विणिदिए ण हु दे कम्म विवज्जणीअए।
पशुमालणकम्मदालुणे अणुकंपामिदु जेव्व शोत्तिये॥ १॥ Imp

[ सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः॥ ]

---

पुरुषः—अहं = अयं जनः जालं = आनायः उद्गालो नाम शरादिरचितो मत्स्यग्रहणसाधनविशेषो वडिशः जालानि = च उद्गालानि च जालोद्गालं तत् आदिः येषां तैः जालोद्गालादिभिः = जालवडिशप्रभृतिभिः मत्स्यबन्धनोपायैः मत्स्यानां = मीनानां बन्धनेन = ग्रहणेन उपायैः = साधनैः कुटुम्बस्य = परिवारस्य = भरणं = पालनमिति कुटुम्बभरणम्, परिवारपालनपोषणं करोमि = विदधामि।

श्यालः—( विहस्य = हसित्वा ), विशुद्धः = सुपवित्रः आजीवः = जीविकासाधनम्।

पुरुषः—हे भर्तः! हे स्वामिन् मैवं=एवं = मा भण मम आजीवं मा निन्देतिभावः।

अन्वयः—यत् किलं विनिन्दितं कर्मं सहजं तत् खलु न विवर्जनीयम् अनुकम्पामृदुः श्रोत्रिय एव पशुमारण कर्मदारुणः ( भवति )'

राज्ञो दुष्यन्तस्य श्यालकपरिहासपरिहर्तुंकामो धीवरो निकृष्टमपि स्वजातीयमाजीवं न त्याज्यमित्यभिसन्धत्ते—सहजमिति। यत् किल यद्धि खलु विनिन्दितं = गर्ह्यं कर्मं सहजं जन्मना सह जातम्, कुलक्रमागतम् तत्तस्य धर्मतया विहितं जातिनिश्चितमितिभावः। अत एव तत् = कर्मं न खलु = निश्चयेन विवर्जनीयं नैव त्याज्यं यस्य यत्कर्मं निन्दितमपि सहजं तस्य तत्कर्मं न खलु विवर्जनीयमपितु अनुष्ठेयमेव शास्त्रवचनादि भावः यथोक्तं—

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न दुष्यति॥

अनुकम्पामृदुः = अनुकम्पया = करुणया मृदुः = कोमलः अनुकम्पामृदुः = दयामृदुः श्रोत्रिय एव वेदोक्तकर्मंनिरतो वैदिक ब्राह्मण एव पशुमारणकर्मदारुणः पशूनाम् = अजमेषादीनां मारणं = घातः = यज्ञे वधः तेन कर्मणा = तदनुष्ठानेन दारुणः=घोरः भवति।

---

धीवर—मैं जाल, काँटी आदि मछली पकड़ने के साधनों से अपने कुटुम्बों = बालबच्चों का पालन पोषण किया करता हूँ।

श्याल—(हँसकर) वाह! इसकी जीविका तो बहुत बढ़िया है। अर्थात् यहाँ अफसर ने मजाक उड़ाते हुए कहा है इसकी जीविका बहुत बुरी है।

धीवर—हे मालिक! ऐसा मत कहिए। अपने स्वाभाविक कर्म-धर्म को यदि बुरा भी प्रतीत हो तो, उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिए। देखिए दया से कोमल हृदयवाला श्रोत्रिय = वैदिक विद्वान् भी यज्ञों में पशुओं को मारने का क्रूर कार्य करते ही हैं।

विशेष—इस पद्य से प्रतीत होता है कि कविवर कालिदास के समय पशुबलि की प्रथा प्रचलित थी और समाज में इस कार्य को आदर की दृष्टि से देखा जाता था, इसको स्पष्ट करते हुए एक साधारण मत्स्यजीवी भी कहता है कि लोकनिन्दित को भी अपनी जाति का पेशा नहीं छोड़ना चाहिए,

**श्यालः**—तदो तदो। [ ततस्ततः। ]

**पुरुषः**—एक्कश्शिं दिअशे खंडशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे जाव तश्श उदलब्भंतले एदं लदणभाशुलं अंगुलीअअं देक्खिअ पच्छा अहके शे विक्कआअ दंशअंते गहिदे भावमिश्शेहिं। मालेह वा मुचेह वा। अअं शे आअमवुत्तंते। [ एकस्मिन् दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितः। यावत्तस्योदराभ्यन्तर इदं रत्नभासुरमङ्गुलीयकं दृष्ट्वा पश्चादहं तस्य विक्रयाय दर्शयन् गृहीतो भावमिश्रैः। मारयत वा मुञ्चत वा। अयमस्यागमवृत्तान्तः। ]

---

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।
सहजं कर्म कौन्तयः सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृतः॥

**अयं भावः**—इत्यादि भगवद्गीता वचनस्मरणात् नैसर्गिको दयासागरोऽपि वैदिको ब्राह्मणः यज्ञाङ्गतया विहिते यज्ञादौ पशुना हिंसने स्वाभाविके स्वकीये कर्मणि त्यक्तदयः सन् प्रवृत्तः पशुमारणं दारुणं कर्म समचरति। एवमेव ममापि धीवरस्य जालोद्गालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैर्मत्स्यान् व्यापाद्य तद्द्वारा कुटुम्बभरणपोषणात्मको जीविकोपायो नोपहसितुं योग्य इति भावः। अत्र विरोधभासोऽलङ्कार आर्या छन्दश्च॥ १॥

**श्यालः**—ततः ततः = अग्रिमं वृत्तान्तं कथय।

**पुरुषः**—बद्धपुरुषः एकस्मिन् दिवसे = कस्मिंश्चिद्दिने मया रोहितमत्स्यः रोहितनामको मीनः खण्डशः = खण्डं खण्डं कल्पितः = खण्डितः 'कल्पनं कर्तनं क्लृप्ती' इति विश्वः, तावत् खण्ड्यमानस्य तस्य रोहितमत्स्यस्य उदराभ्यन्तरे = जठरमध्ये, रत्नेन = मणिना-भासुरं = देदीप्यमानं = रत्नभासुरं = प्रत्युप्तरत्नप्रभासमानम्, अङ्गुलीयकम् = मुद्रां दृष्ट्वा = अवलोक्य पश्चात् = तदनन्तरं अहं तस्य अङ्गुलीयकस्य विक्रयार्थं = विक्रयं कर्तुं = दर्शयन् = रत्नापाणिकेभ्यो मूल्यनिर्धारणाय प्रदर्शयन्नेव भावमिश्रैः भवद्भिः

---

क्योंकि बौद्ध आदि के द्वारा जीव हिंसा निन्दित होने पर भी जीवों पर अनुकम्पा करने वाले परम दयालु ब्राह्मण भी यज्ञ-कार्य में यज्ञाङ्ग पशुबलि को करते ही हैं। अतः मैं मछलियों के मारने का जातीय पेशा करता रहता हूँ। श्रीमद्भगवद्गीता आदि धार्मिक ग्रन्थों में भी अपने सहज=स्वाभाविक कर्म को करते रहने का आदेश दिया गया है—"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।" ब्राह्मण जाति में जन्मग्रहण करने से मनुष्य ब्राह्मण कहा जाता है ब्राह्मणोचित संस्कार सम्पन्न होने पर द्विज तथा विद्या अध्येता की विप्र संज्ञा है। श्रोत्रिय उस ब्राह्मण को कहते हैं, जो जन्म से तो ब्राह्मण हो ही ब्राह्मणोचित संस्कार और विद्या अध्ययन कर कर्मणा भी ब्राह्मण हो। इस प्रकार जन्म विद्या और संस्कार इन तीनों से सम्पन्न द्विज होता है—

"जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्काराद्द्विज उच्यते। विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय एव च।"
अतः कृपया मेरा इस कार्य के लिए उपहास न करें।

**श्यालः**—हाँ, हाँ, आगे कह तब आगे क्या हुआ ?

**धीवर**—एक दिन मैंने रोहू मछली पकड़ी और उसको काट काटकर टुकड़े करने पर जब मैंने उसके पेट के अन्दर देखा, तो महारत्न से चमकती हुई यह अंगूठी दिखाई दी, फिर इसे बाजार में बेंचने के लिए मैंने ज्योंही दिखाई त्यों ही आपलोगों ने मुझे पकड़ लिया। बस, यहीं अंगूठी मिलने की वास्तविक बात है। अब आप चाहें तो मुझे मारें या पीटें या छोड़ दें।

**श्यालः**—जाणुअ, विस्सगंधी गोहादी मच्छबंधो एव्व णिस्संसअं अंगुलीअ-अदंसण शे विमरिसिदव्वं। राअउलं एव्वं गच्छामो। [ ( अङ्गुलीयकमाघ्राय ) **जानुक विस्रगन्धो गोधादी मत्स्यबन्ध एव निःसंशयम्। अङ्गुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। राजकुलमेव गच्छामः।** ]

**रक्षिणौ**—तह। गच्छ अले गंडभेदअ। [ **तथा। गच्छ अरे गण्डभेदक।** ] ( सर्वे परिक्रामन्ति )

**श्यालः**—सूअअ इमं गोपुरदुआरे अप्पमत्ता पडिबालह जाव इमं अङ्गुलीअअं जहागमणं भट्टिणो णिवेदिअ तदो सासणं पडिच्छिअ णिक्कमामि। [ **सूचक इमं गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं यावदिदमङ्गुलीकं यथागमनं भर्तुर्निवेद्य ततः शासनं प्रतीक्ष्य निष्क्रमामि।** ]

---

गृहीतः = बद्धः संयतः। मारयत वा मुञ्चत वा = सापराधं मां दण्डयत निर्दोषं वा मत्वा मुञ्चत वा। अयं = मदुक्तः अस्य = अङ्गुलीयकस्य = आगमवृत्तान्तः = प्राप्तिकथा।

**श्यालः**—(अङ्गुलीयकमाघ्राय) जानुक! विस्रस्य = आमगन्धस्य गन्धोऽस्ति अस्येति विस्रगन्धी, गोधामत्तुशीलमस्येति गोधादी = गोधाभक्षकः मत्स्यान् = मीनान् बध्नातीति मत्स्यबन्धः = धीवरः एव निसंशयं = निःसन्देहम्। एतच्छरीरस्य अपक्वमांसं गन्धयुक्तत्वात् गोधाशनो धीवर एवायमिति निश्चितम्। अथाप्यस्याङ्गुलीयलाभो विचारणीय इत्याह—अङ्गुलीयकमिति। अङ्गुलीयकदर्शनम् अङ्गुलीयकस्य = मुद्रायाः दर्शनं = वीक्षणम् अस्य = धीवरस्य विमर्शयितव्यम् = विचारयितव्यम्—अङ्गुलीयकागमवृत्तान्तो योऽनेनोक्तः सोऽपि सत्यो न वेत्यप्यालोचनीयमिति भावः अत एव राजकुलं = राजभवनं, नृपसभामेव गच्छामः = व्रजामः, तत्र स्वामिने निवेदयामः स एव विमृशतु सत्यं न वेति भावः।

**रक्षिणौ**—तथा = आम् गच्छ = व्रज अरे रे ग्रन्थभेदक! ग्रन्थिच्छेदक चोर!

( सर्वे समस्ताः परिक्रामन्ति = गमनं नाटयन्ति )

**श्यालः**—सूचक! इमं—बद्धं धीवरं गोपुरद्वारे = नगरद्वारे पुरद्वारप्रवेशमार्गे अप्रमत्तौ = सावधानौ प्रतिपालयतम् = रक्षतम् यावत् = यावदवधि इदं = प्रस्तुतम् अङ्गुलीयकम् = मुद्राम्, आगमनमतिक्रम्य यथागमनम् = आगमनवृत्तान्तकथनपूर्वकम् भर्तुः =

---

**श्याल—( अँगूठी को सूँघकर )** अरे जानुक! यह अंगूठी मछली के पेट से ही निकली हुई प्रतीत हो रही है, क्योंकि इसमें मछली की गन्ध आ रही है। और यह भी मछुआ ही मालूम पड़ता है, क्योंकि इसके शरीर से भी मछली की बुरी गन्ध आ रही है। अब विचारना यही है कि यह अंगूठी मछली की पेट में पहुँची कैसे? इसलिए आवो अब हम लोग दरबार में ही चलें, वहाँ इसका पता चलेगा।

**विशेष**—गम्भीर पानी में रहने वाले गोहनामक जलजन्तु को संस्कृत में गोधा कहते हैं। प्रसिद्धि है कि रस्सी में बांधकर चोर इसे दीवार पर फेंक देते हैं, वह वहां चिपक जाती है, जिसके सहारे चढ़कर चोरी करने वालों को सुविधा हो जाती है। जड़ी-बूटी में मिलकर ताकत के लिए इसे कुछ शौकीन खाते भी हैं। मछुये मछली, गोधा आदि को पकड़ते खाते और बेचते रहते हैं। इससे उनके शरीर से भी इसकी बदबू आती रहती है।

**दोनों सिपाही**—जी, अच्छा ( धीवर से ) चल रे गिरहकट! चल, **( सभी जाते हैं )**

**श्याल**—अरे सूचक! तुमलोग यहीं दरबार के गेट पर सावधानी से ठहरो और मेरी प्रतीक्षा

**उभौ**—पविसदु आबुत्त शामिपशादश्श । [ **प्रविशत्वावुत्तः स्वामिप्रसादाय ।** ]

( इति निष्क्रान्तः श्यालः )

**प्रथमः**—जाणुअ, चिलाअदि खु आवुत्ते । [ **जानुक चिरायते खल्वावुत्तः ।** ]

**द्वितीयः**—णं अवशलोवशप्पणीआ लाआणो । [ **नन्ववसरोपसर्पणीया राजानः ।** ]

**प्रथमः**—जाणुअ, फुल्लंति मे हत्था इमश्श वज्झस्स शुमणो पिणद्धुं । [ **जानुक, प्रस्फुरतो मम हस्तावस्य सुमनस पिनद्धुम् ।** ] ( इति पुरुषं निर्दिशति । )

---

भर्त्रे स्वामिने निवेद्य = कथयित्वा ततः = भर्तुः शासनम् = आदेशं प्रतीक्ष्य = गृहीत्वा, निष्क्रमामि = निर्गच्छामि-यावन्निर्गच्छामि तावत् प्रतिपालयतमिति भावः ।

**उभौ**—आवुत्तः = भगिनीपतिः स्वामिप्रसादस्य स्वामिनः = महाराजस्य प्रसादाय = प्रसन्नतायै अनुग्रहं लब्धुं प्रविशतु = अन्तः गच्छतु । अङ्गुलीयकस्य लाभाद्राजा नूनं त्वयि प्रसीदेदिति भावः ।

( इति = एवमुक्त्वा श्यालः = नगररक्षकाधिकारी निष्क्रान्तः = निर्गतः )

**प्रथमः**—यत् हे जानुक । आवुत्तः = भगिनीपतिः चिरायते = विलम्बते खलु = निश्चयेन ।

**द्वितीयः**—यत् ननु = न जानासि राजानः = नृपाः अवसरोऽयं रूपणीयाः अवसरे = उचिते काले एव उपसर्पणीया उपगन्तव्याः दर्शनीयाः प्राप्तव्या भवन्ति । आज्ञां लब्ध्वैव राजानं द्रष्टुं शक्नोति जनः, न यथारुचि, नहि राज्ञो दर्शनं भृत्यैः सर्वदा लब्धुं शक्यम् अतो विलम्ब इति भावः ।

**प्रथमः**—जानुक ! मम = मे हस्तौ = करौ अस्य=बद्धधीवरस्य वधार्थं वधाय, घाताय सुमनसः = पुष्पाणि वध्यचिह्नभूतां पुष्पमालां पिनद्धं = परिधापयितुं बन्धुं प्रस्फुरतः = स्पन्देते । अस्य कण्ठे बध्यचिह्नभूतां रक्तपुष्पमालां निक्षिप्य राजाज्ञया एनं हन्तुमहमुत्सुकोऽहमिति भावः ( इति = एवमुक्त्वा पुरुषं निर्दिशति = संकेतयति )

---

करो । तब तक मैं महाराज के समक्ष इस अंगूठी को उपस्थित कर इसके पाने का पूरा-पूरा समाचार कहकर उनकी आज्ञा लेकर शीघ्र ही आता हूँ ।

**दोनों सिपाही**—जाइए महाराज से इनाम और तरक्की पाने को जाइए ।

**( यह कहकर नगर रक्षाधिकारी चले जाते हैं )**

**पहला सिपाही—( सूचक )** अरे जानुक ! कोतवाल साहब को गये बहुत देर हो रही है-क्या बात है ?

**दूसरा सिपाही**—अरे भाई राजा लोगों का मिलना तो मौके से ही होता है । इसमें देर लगना तो साधारण बात हैं ।

**प्रथम सिपाही**—हे जानुक इसको लाल फूल की माला पहना कर फांसी के तख्ते पर चढ़ाने के लिए मेरे हाथ फड़फड़ा रहे हैं । यह कहकर पुरुष ( धीवर ) की ओर संकेत करता है ।

**विशेष—यह** पुरानी प्रथा थी कि जिसको फांसी से प्राण दण्ड दिया जाता था, उसको लाल फूलों की माला पहनाई जाती थी लाल करवीरमाला वध का सूचक होती थी, सिपाही को यह आशा थी नगररक्षाधिकारी को लौटने पर राजा के आदेश से मछुये को मार दिया जायेगा, क्योंकि मनुस्मृति में लिखा है कि रत्नग्रहण करने वाले चोर का वध कर देना चाहिए । सुवर्ण भी नवरत्नों में गिना जाता है और राजा की अंगूठी में भी रत्न जड़ा हुआ था—**मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ।**

पुरुषः—ण अलुहदि भावे अकालणमालणं भाविदुं। [ नार्हति भावोऽकारण-मारणं भावयितुम् ]

द्वितीयः—( विलोक्य ) एशे अम्हाणं शामी पत्तहत्थे लाअशाशणं पडिच्छिअ इदोमुहे देक्खीअदि। गिद्धबली भविश्शशि शुणो मुहं वा देक्खिश्शशि। [ एष नौ स्वामी पत्रहस्तो राजशासनं प्रतीक्ष्येतोमुखो दृश्यते। गृध्रबलिर्भविष्यसि शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि। ]

( प्रविश्य )

श्यालः—सुअअ मुंचेदु एसो जालोअजीवी। उववण्णो खु अंगुलीअस्स आआमो। [ सूचक मुच्यतामेष जालोपजीवी। उपपन्नः खल्वङ्गुलीयकस्यागमः। ]

---

पुरुषः—भावः = श्रीमान् अकारणमारणं कारणं विनैव वधं भावयितुं = प्रापयितुं विचारयितुं वा न अर्हति यतोऽहं निरपराध इति भावः।

द्वितीयः—एषः = अयं नौ आवयोः स्वामी = नगरपालः।

श्यालः—पत्रं हस्ते यस्य स पत्रहस्तः = हस्ते गृहीतपत्रः राजशासनं = राजाज्ञां प्रतीक्ष्य गृहीत्वा इतो मुखः—इतः एनां दिशं मुखमाननं यस्य स इतोमुखः = अस्यां दिशि मुखं कृत्वा दृश्यते = अवलोक्यते मन्ये त्वं गृध्रबलिः = गृध्रस्योपहारः भविष्यसि = गृध्रास्ते मांसं भक्षयिष्यन्तीति भावः अथवा शुनः = कुक्कुरस्य मुखं = दर्शनार्थं व्यात्तमाननं द्रक्ष्यसि = राजाज्ञया शूलस्थं मृतं त्वां गृध्राः, आकण्ठं भुविनिखातं जीवितं वा कुक्कुराः = खादि-ष्यन्तीति भावः।

श्यालः—ततः श्यालः प्रविश्य वदति-सूचक ! एषः = अयं जालोपजीवी = जालेन उपजीवति = जीविकां वर्तयति तथाविधो धीवरः = कैवर्तः मुच्यताम् = बन्धनमुक्तः क्रियताम् उपपन्नः = प्रमाणितः खलु = निश्चयेन अङ्गुलीयकस्य आगमः = आगमनम्। मुद्राप्राप्तिवृत्तान्तोऽवगत इति भावः। अतो नायं चौरः।

---

धीवर—सरकार, बिना अपराध हो मुझे मारने की बात आपको नहीं करनी चाहिए।

दूसरा सिपाही—( सामने देखकर ) यह देखो, हमारे मालिक ( कोतवाल साहब ) हाथ में सरकारी हुक्म लेकर इधर ही आ रहे हैं। मालूम होता है या तो इसे बूटी-बूटी काटकर गीधं कौआ और चीलों को खिलाने का हुक्म हुआ हो या कुत्तों से नोचवाकर मारने का आदेश हुआ हो।

विशेष—प्राचीनं काल में यह प्रथा थी कि नगर के बाहर बध्यस्थान बनाए जाते थे जहाँ अपराधियों को फांसी दी जाती थी तथा मरने के अनन्तर उसे फेंक दिया जाता था, उसे गीध, चील कौवे आदि नोचकर खा जाते थे। या कभी कभी अपराधी को जमीन में गढ्ढा खोदकर खड़ा गाड़ दिया जाता था। उसकी गर्दन मात्र दिखाई पड़ती थी। शिर पर दही आदि रख कर कुत्तों को लल-कार दिया जाता था, वे उसे तत्काल नोच नोचकर मार देते थे। मल्लाह लोग जाल से मछलियों को पकड़कर स्वयं खाते थे और बाजार में बेचकर पैसों से अपने परिवार का खर्च चलाते थे। जिसके पास जाल न होती थी उसका परिवार दुःख भोगता रहता था।

श्याल—( प्रवेश कर ) सूचक ! इस मछुए को छोड़ दो, अँगूठी के आने का कारण निश्चित रूप से मिल गया।

विशेष—महर्षि दुर्वासा ने शकुन्तला को शाप दिया था किसके चिन्तन में निमग्न होकर तुम भिक्षा न देकर मेरा अपमान कर रही हो, वह तुझे प्रमादी के समान भूल जायेगा, किन्तु प्रियम्वदा की प्रार्थना पर उन्होंने कुछ अनुग्रह कर पुनः कहा था निशानी के निमित्त दिये गये

सूचकः—जह आवुत्ते भणादि। [ यथावुत्तो भणति। ]

द्वितीयः—एसे जमशदणं पविशिअ पडिणिवुत्ते। [ एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः। ] ( इति पुरुषं परिमुक्तबन्धनं करोति )

पुरुषः—( श्यालं प्रणम्य ) भट्टा अह कीलिशे मे आजीवे। [ भर्तः अथ कीदृशो मे आजीवः। ]

श्यालः—एसो भट्टिणा अंगुलीअअमुल्लसम्मिदो पसादो वि दाविदो। [ एष भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसम्मितः प्रसादोऽपि दापितः। ] ( इति पुरुषाय स्वं प्रयच्छति )

पुरुषः—( सप्रणामं प्रतिगृह्य ) भट्टा अणुग्गहीदम्हि। [ भर्तः अनुगृहीतोऽस्मि। ]

---

सूचकः—आवुत्तः=भगिनीपतिः यथा भणति=आदिशति, आज्ञापयति तथा क्रियते।

द्वितीयः—एषः = अयं धीवरः यमसदनं = मृत्योर्गृहम् कालमुखं प्रविश्य = अन्तः गत्वा प्रतिनिवृत्तः = पुनरागतः मृतः पुनर्जीवतीवायं धीवर इति भावः इति एवमुक्त्वा, ततो वा पुरुषं = बद्धं जनम् परिमुक्तं = बन्धनं यस्य स तम् परिमुक्तबन्धनं करोति = विदधाति।

पुरुषः—( श्यालं = नगररक्षाधिकारिणं प्रणम्य = नमस्कृत्य वदति—हे भर्तः ! = अयि स्वामिन् ! अथ = इदानीं, पृच्छामि, मे = मम आजीवः = जीविका—कीदृशः = किंविधः, किंप्रकारकः ? गतो मत्स्यः, गतं चाङ्गुलीयकम् तदत्र केनोपायेन जीविकां करोमीति भावः।

श्यालः—एषः=अयं अङ्गुलीयकस्य=मुद्राया मूल्येन संमितं तुल्यमिति अङ्गुलीयकसंमितः प्रसादोऽपि = पुरस्कारः पारितोषिकमपि दापितः = अर्पितः ( इति = एवमुक्त्वा पुरुषाय बद्धाय धीवराय स्वं–धनम् कटकं प्रयच्छति = ददाति = मोचनं च करोति )।

पुरुषः—( सप्रमाणं = सनमस्कारं प्रतिगृह्य=गृहीत्वा ) भर्तः ! = स्वामिन् ! अनुगृहीतोऽस्मि = अनुकम्पितोऽस्मि कृपापात्री कृतोऽस्मि।

---

किसी आभूषण के दिखाने पर मेरा यह शाप समाप्त हो जायेगा। तदनुसार ही राजा दुष्यन्त को अंगूठी के देखते ही सारा वृत्तान्त चलचित्र के समान दिखाई पड़ने लगा। दुर्वासा का शाप छूट गया और राजा की बुद्धि पूर्ववत् निर्मल हो गयी, उसे सभी स्मरण हो आया।

**सूचक**—सरकार का जो हुक्म।

**दूसरा सिपाही**—यह यमराज के घर में घुसकर लौट आया। **( यह कहते हुये उसे छोड़ देता है )।**

**विशेष**—सिपाही के कहने का तात्पर्य है कि अंगूठी की चोरी के अपराध में इसे प्राणदण्ड की सजा मिलेगी, यह मरकर यमपुरी जायेगा, क्योंकि पापी लोग मरने के बाद यातना सहने के निमित्त यमपुरी ही जाते हैं, किन्तु यह तो छूट गया। अतः मानो यह मरकर पुनः जी गया।

**पुरुष—(नगर रक्षाधिकारी को प्रणाम कर)** सरकार, अब कहें कैसी है मरी आजीविका!

**श्याल**—महाराज ने प्रसन्न होकर अंगूठी के मूल्य के बराबर यह सोने का कड़ा भी तुझको इनाम के रूप में दिया है। **( यह कहकर उसे सोने का कड़ा देता है )।**

**पुरुष—( प्रणामपूर्वक उसे लेकर )** मालिक ! मेरा भाग्य धन्य है, मैं बड़ा अनुगृहीत हुआ।

सूचकः—एशे णाम अणुग्गहे जे शूलादो अवदालिअ हत्थिक्कंधे पडिट्ठाविदे। [ एष नामानुग्रहो यच्छूलादवतार्यं हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः। ]

जानुकः—आवुत्त पलिदोशं कहेहि। तेण अंगुलीअएण भट्टिणो शम्मदेण होदव्वं। [ आवृत्त परितोषं कथय। तेनाङ्गुलीयकेन भर्त्तुः सम्मतेन भवितव्यम्। ]

श्यालः—ण तस्सिं महारुहं रदणं भट्टिणो बहुमदं त्ति तक्केमि। तस्स दंसणेण भट्टिणो अभिमदो जणो सुमराविदो। मुहुत्तअं पकिदिगंभीरो वि पज्जुस्सुअणअणो आसि। [ न तस्मिन्महार्हं रत्नं भर्तुर्बहुमतमिति तर्कयामि। तस्य दर्शनेन भर्तुरभिमतो जनः स्मारितः। मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकनयन आसीत्। ]

सूचकः—शेविदं णाम आवुत्तेण। [ सेवितं नामावुत्तेन। ]

---

सूचकः—एष अयम् नाम निश्चयेन अनुग्रहः=कृपा यत्, शूलात् अवतार्य—शूलाख्यमारण-साधनात् लोहदण्डात् वधकीलकात् अवतार्य=नीचैः आनीय हस्तिस्कन्धे=गजपीठे प्रतिष्ठापितः=स्थापितः शूलेन वध्यो राजसंमितं सत्कारं प्रापित इति भावः। अस्य मरणं ध्रुवमासीत् किन्तु राजानुग्रहेण न केवलं प्राणैरवियुक्तः, अपितु अर्थेनापि पूजितः, शूलाग्रं गन्ता जनः हस्तिस्कन्धे समारोपित इत्यर्थः।

जानुकः—परितोषं=प्रसादं कथय=ब्रूहि तेन=पूर्वोक्तेन अङ्गुलीयकेन मुद्रिकया सम्मतेन अभीष्टेन प्रियेण भवितव्यम्=भूयात्।

श्यालः—तस्मिन्=अङ्गुलीयके स्थितं महार्हं=बहुमूल्यं रत्नं=मणिः भर्तुः=स्वामिनः बहुमतम्-समादरपात्रम् न=न केवलमिति तर्कयामि संभावयामि आशङ्के तस्य=अङ्गुलीयकस्य दर्शनेन=अवलोकनेन भर्तुः=स्वामिनः अभिमतः=प्रियः जनः=व्यक्तिः स्मारितः=स्मृतिपथमानीतः मुहूर्तं=क्षणं यावत् प्रकृत्या=स्वभावतः गम्भीरः=धीरः सन् अपि पर्युत्सुके=उत्कण्ठिते नयने=लोचने यस्य स पर्युत्सुकनयनः उत्कण्ठाव्यञ्जित-नेत्रव्यापार आसीत् अभवत्। चेतसोत्कण्ठितेन क्षणं प्रणयपेशलं कञ्चित् जनं स्मरन्निव राजा खिन्नो बभूवेति भावः।

सूचकः—आवुत्तेन=भगिनीपतिना नाम=निश्चयेन सेवितं=नृपस्य सेवा दर्शिता। मान्येन भवता यथार्थमेव राजसेवा कृतेत्यर्थः।

---

सूचक—इसे कहते हैं कृपा, कि शूली से उतारकर हाथी के कन्धेपर बैठा दिया। अर्थात् फाँसी से तख्ते से उतार कर इसे हाथी के हौदे में बैठा दिया गया, कहाँ तो चोरी के अपराध में शूली से वध होने वाला था और कहाँ उलटे इसे रत्नजटित बहुमूल्य सुवर्ण का कड़ा इनाम मिल रहा है।

जानुक—सरकार! इसको महाराज ने जो इनाम दिया है, इससे मैं तो यही समझता हूँ कि बहुमूल्य रत्न से जड़ी हुई यह अंगूठी महाराज को अधिक प्यारी है।

श्याल—उस अंगूठी में बहुमूल्य रत्न जड़े हुए हैं। इसलिए वह अंगूठी महाराज को अधिक प्यारी है, यह बात नहीं है, पर मैं तो ऐसा समझता हूँ कि उस अंगूठी को देखकर महाराज को किसी भूले हुए अपने प्यारे बन्धु का स्मरण हो आया है क्योंकि उस अंगूठी को देखते ही महाराज स्वभाव से ही गम्भीर प्रकृति वाले होने पर भी क्षणभर के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये थे।

सूचक—जीजा जी ने सच्ची सेवा की।

**जानुकः**—णं भणाहि। इमश्श कार मच्छिआभत्तुणोत्ति। [ ननु भण। अस्य कृते मात्स्यिकभर्तुरिति। ] ( इति पुरुषमसूयया पश्यति )

**पुरुषः**—भट्टालक। इदो अद्धं तुम्हाणं शुमणोमुल्लं होदु। [ भट्टारक इतोऽर्धं युष्माकं सुमनो मूल्यं भवतु। ]

**जानुकः**—एत्तके जुज्जइ। [ एतावद् युज्यते। ]

**श्यालः**—धीवर महत्तरो तुमं पिअवस्सओ दाणिं मे संवुत्तो। कादंबरी सक्खिअं अम्हाणं पढमसोहिदमं इच्छीअदि। ता सांडिआपणं एव्व गच्छामो।

---

**जानुकः**—ननु = अथवा भण = वद मत्स्यिकभर्तुः मत्स्येन जीवन्तीति मात्स्यिकाः धीवराः तेषां भर्तुः=स्वामिनः अस्य = एतस्य धीवरस्य कृते = लाभाय सेवा दर्शिता अनेनाङ्गुलीयकनिवेदनेन धीवरस्यैव लाभो जातः नास्माकमिति वृथैव महाराजः सेवितः इति एवमुक्त्वा पुरुषं = धीवरम् असूयया = ईर्ष्यया पश्यति = अवलोकयति। उत्कोचसूचकस्य तस्य सासूयं निरीक्षणमर्थकामुकत्वात्।

**पुरुषः**—इत्थं राजपुरुषाणां भावमवगम्य धीवरोऽर्द्धंभागं तस्मात् पारितोषिकात् दातुं प्रवर्तते—धीवरो वदति—हे भट्टारक! हे स्वामिन् इतः = अस्मात् पारितोषिकात् कटकात् अर्द्धं = द्वितीयो भागः युष्माकं = भवतः सुमनोमूल्यम् = पुष्पमूल्यम् पूर्वोक्तवध्यचिह्नभूतमालापमूल्यं भवतु = अस्तु।

**जानुकः**—एतावत्=एतन्मात्रं धनम् युज्यते = उचितमस्ति। इत्युत्कोचप्रियस्य जानुकस्याभिप्रायः।

**श्यालः**—धीवर! हे कैवर्त! त्वमिदानीं = अधुना मे = मम अतिशयेन महान् महत्तरः=इतरापेक्षयातिशयः प्रियः=हृद्यः प्रियवयस्यकः सखा च संवृत्तः=जातः। कादम्बरी=

---

**जानुक**—यों कहो कि इन मल्लाहों के मालिक = मछुओं के मुखिया धीवर के लाभ के लिए जीजा जी ने राज सेवा की। **( यह कहकर उसे, डाह से देखता है। )**

**विशेष**—जीजा जी को राजा के पास जाने से ही इसे पुरस्कार मिला। इसलिए यह कहना होगा इस मछुये के लिए ही इन्होंने राजा की सेवा की है।

तात्पर्य यह है कि लाभ तो मछली मारने वाले इस धीवर को हुआ, जो इसे इनाम के रूप में राजा का रत्नाभरण मिला, और कष्ट हम लोगों ने उठाया।

**पुरुष**—मालिक! इसमें से आधा हिस्सा आप लोगों का भी फूल-माला, ( पान-पत्ती, चाय-पानी, शराब आदि ) के खर्च के लिए रहेगा।

**विशेष**—पुरस्कार का आधा देने का प्रस्ताव करते हुए मछुओं का मुखिया धीवर कह रहा है कि यह आप लोगों के लिए पुष्प का मूल्य है। आज कल भी अफसरों को घूस देने वाले यही कहते हैं कि यह तुच्छ भेंट आपको पान-खाने के लिए प्रस्तुत है। अतः कृपया इसे स्वीकार करें। आपने मुझे छोड़ देने की कृपा की इसके अभिनन्दन में से फूल माला से स्वागत करता पर तत्काल वे चीजें उपलब्ध नहीं हैं। अतः उनके बदले इसमें आधा हिस्सा ही देता हूँ आप लोग अपने मन से चीजें ले लें। या सिपाही ने पहले ही से शूली के लिए फूल माला की चर्चा की थी उसका व्यंग पूर्ण उत्तर भी हो सकता है।

**जानुक**—यह बात तो तुमने बहुत ही उचित कही, इतना ही ठीक है।

**श्याल**—अरे धीवर! अब तो तू हमारा बड़ा मित्र हो गया। हम लोगों की नई मित्रता तो

[ धीवर महत्तरस्त्वं प्रियवयस्यक इदानीं मे संवृत्तः । कादम्बरीसाक्षिकमस्माकं प्रथमशोऽभिमतमिष्यते । तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः । ]

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

प्रवेशकः ।

---

कुत्सितमम्बरं यस्य स कादम्बरो बलरामः तस्येयं कादम्बरी मदिरा साक्षिणी साक्षिदर्शिका यस्मिन् तत् कादम्बरी साक्षिकं = सुरासाक्षिकम् अस्माकं = आवयोः प्रथमशः = प्रथमवारम् अभिमतं = प्रियम् इष्यते = अपेक्ष्यते । पद्यमाना एकत्रपानेन जातं सौहृदं भवति सुरासाक्षिकं तथापि चास्माभिः सह तथैव सुरासाक्षिका मद्यमैत्री भवतु इति भावः तत् = अतः शौण्डिकस्य मद्यविक्रेतुः आपणमेव पण्यशालामेव गच्छामः = व्रजामः ।

( इति = एवं निश्चित्य ततो निष्क्रान्ताः = रङ्गमञ्चाद् बहिर्गताः )

॥ इति प्रवेशकः ॥

प्रवेशयतीति प्रवेशकः = नीचपात्रप्रयुक्तो भाविभूतार्थसूचकः अङ्कसन्धिविशेषः । प्रवेशकलक्षणं यथा—

यन्नीचैः केवलं पात्रैः भाविभूतार्थसूचनम् । अङ्कयोरुभयोर्मध्ये स विज्ञेयः प्रवेशकः ॥

एवं विष्कम्भक समान एव प्रवेशकोऽपि भूताया भाविन्याश्च घटनायाः सूचको भवति । पात्रं चास्य निम्नश्रेणिकं भवति । अस्य भाषा प्राकृतं प्रयुज्यते । विश्वनाथेन साहित्यदर्पणेऽस्य लक्षणमेवं कृतमस्ति—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥ ६।५७

केचन प्राचीना आचार्या इमं पुनः प्रवेशकमङ्कावतारनामकं षष्ठाङ्कभागमेव मत्वा षष्ठाङ्के एवान्तर्भावयन्ति । तदनुसारिभिरस्माभिरपि तथैवोद्धृत्य प्रस्तूयते ।

कतिपये विद्वांसश्च षष्ठाङ्कावतारार्थम् अङ्कावतारनामानं पञ्चमाङ्कावयवभूतमर्थोपक्षेपकमिमं प्रवेशकं स्वीकुर्वन्ति तन्मतेऽङ्कावतार द्वारा प्रारब्धस्याङ्कस्यान्ते तदङ्कपात्रद्वाराऽग्रिमाङ्कस्य सूचना प्रदीयते । तथाहि साहित्यदर्पणस्य षष्ठे परिच्छेदे विश्वनाथः—

अङ्कान्ते सूचितः पात्रैः तदङ्कस्याविभागतः ।
यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः ॥ ६।५८

वस्तुतः प्रवेशके विष्कम्भके च भाषा भेद एव दृश्यते प्रवेशकस्य भाषा भवति प्राकृतं विष्कम्भकस्य च संस्कृतप्राकृतश्चोभयम् । प्रवेशकस्य कार्यमस्ति सामाजिकानां हृदयेषु अप्रत्यक्षाणामर्थानां प्रवेश एव-अप्रत्यक्षान् अर्थान् सामाजिकहृदयेषु प्रवेशयतीति प्रवेशकः । अत्र राज्ञा दुष्यन्तस्य अङ्गुलीयकदर्शनम्, तेन तत्कालमेव दुर्वाससः शापं निवृत्या कण्वाश्रमे गान्धर्वविवाहं विना परिणीतायाः शकुन्तलाया स्मरणं प्रतिपादितम् । तस्यानन्तरावस्था अङ्कमुखपात्रैः प्रदर्शयिष्यते ।

---

मदिरा के साक्षी में ही हुआ करती है । अतः आओ, मद्य पीने के लिए मद्य बनाने वाले कलवार की दूकान पर ही चलें । **( इसके बाद सब बाहर जाते हैं )**

**प्रवेशक**—यह प्रवेशक ( भूत और भावी बात को नीच पात्रों द्वारा सूचना ) समाप्त हुआ । सुधाकर में नीच पात्रों के द्वारा दो अङ्कों के मध्य भूतभावी समाचार देना प्रवेशक कहा गया है ।

( ततः प्रविशत्याकाशयानेन सानुमती नामाप्सराः )

**सानुमती**—णिव्वट्टिदं मए पज्जाअणिव्वत्तणिज्जं अच्छरातित्थसण्णिज्झं जाव साहुजणस्स अभिसेअकालो त्ति ।-संपदं इमस्स राएसिणो उदंतं पच्चक्खीकरिस्सं। मेणआसम्बन्धेण सरीरभूदा मे सउंदला । ताए अ दुहिदुणिमित्तं आदिठ्ठपुव्वम्हि। ( समन्तादवलोक्य ) किं णु खु उदुच्छवे वि णिरुच्छवारंभं विअ राअउलं दीसई। अत्थि मे विहवो पणिधाणेण सव्वं परिण्णादुं । किं दु सहीए आदरो मए माण- इदव्वो। होदु इमाणं एव्व उज्जाणपालिआणं तिरक्खरिणीपडिच्छण्णा पस्स- वत्तिणी भविअ उवलहिस्सं । [ **निर्वर्तितं मया पर्यायनिर्वर्तनीयमप्सरस्तोर्थसांनिध्यं यावत्साधुजनस्याभिषेककाल इति । सांप्रतमस्य राजर्षेरुदन्तं प्रत्यक्षीकरिष्यामि । मेनका- संबन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला । तया च दुहितृनिमित्तमादिष्टपूर्वास्मि । किं नु खलु ऋतूत्सवेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते । अस्ति मे विभवः प्रणिधानेन सर्वं**

---

अथ शकुन्तलायाः वृत्तान्तस्य विच्छेदाभावाय अप्सरः पदेन पूर्वं सूचितायाः सानु- मत्याः प्रवेशमाह कविकुलकलाधरः कालिदासः—**तत इति**।

( ततः = तदनन्तरम् सानुमतीनामाप्सराः = एतन्नामिका स्वर्गस्त्रीः आकाश- यानेन व्योममार्गेण प्रविशति रङ्गमञ्चे दृश्यते )

**सानुमती**—अथ मारीचाश्रमे मात्र्या मेनकया सह निवसन्त्याः शकुन्तलायाः प्रेयो- वृत्तान्तसाक्षात्करणाय अप्सरस्तीर्थगमनकाले सन्दिष्टा सखी सानुमती स्वकार्यं सम्पाद्य सुहृत्कार्यं कर्तुमभिलषन्ती स्वमनसि विचारयति यावत्—यावत्कालम् साधुजनस्य = सज्जनस्य अभिषेककालः = स्नानसमयः तावत्कालपर्यन्तम् पर्यायेण = क्रमेण अप्सरोभिः वारक्रमेण निर्वर्तनीयं = अनुष्ठेयम् = पर्यायनिर्वर्तनीयं कर्म मया = सानुमत्यां निर्वर्तितं = सम्पादितम् । धार्मिकाणां सज्जनानां स्नानसमये एकैकस्मिन् दिने प्रभातकाले एकैकयाऽ- प्सरसाऽप्सरस्तीर्थे सन्निधातव्यमिति नियमः। तत्राद्य मम पर्याय आसीत् स मयाऽनुष्ठितः। इदानीं ततो लब्धावकाशः ।

साम्प्रतं = इदानीम् अस्य राजर्षेः=दुष्यन्तस्य उदन्तं = वृतान्तं प्रत्यक्षीकरिष्यामि= अनुभविष्यामि । मेनका सम्बन्धेन = मेनकापत्यतया मे = मम शकुन्तला शरीरभूता= शरीरवत् प्रेमास्पदभूता नितरां प्रिया तया = मेनकया च दुहितृनिमित्तं दुहिता = पुत्री शकुन्तलानिमित्तं = प्रयोजनं यस्मिन्कर्मणि ततः स्वतनयार्थं, शकुन्तलार्थं पूर्वं सन्दिष्टा सन्दिष्टपूर्वा = दत्तसन्देशाऽस्मि । शकुन्तला मनोविनोदार्थं राज्ञो दुष्यन्तस्य वृत्तान्तः त्वया विलोक्य तस्मै कथनीयमिति मेनकया निजपुत्रीप्रेम्णा निवेदितास्मीतिभावः।

---

**( इसके बाद आकाशमार्ग से आई हुई सानुमती नामक अप्सरा का प्रवेश )**

**सानुमती**—जब तक सज्जनों के स्नान करने का समय है तब तक के लिए बारी-बारी से की जानेवाली अप्सरातीर्थ की देखभाल मैंने कर ली, अब मैं उससे खाली हो गई । अब इस राजर्षि दुष्यन्त का समाचार अपनी आँखों से देखूँगी, क्योंकि मेनका के सम्बन्ध से मेनका की पुत्री शकुन्तला मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्यारी है । मेनका ने भी बेटी के निमित्त मुझे पहले ही सहेज रखा है । इसलिए तो मेनका यहाँ से दुःखी शकुन्तला को उठाकर ले गई थी । **( चारों ओर देखकर )** इस समय वसन्तोत्सव के उपस्थित होने पर भी यह राजकुल उत्सव के आरम्भ से

परिज्ञातुम् । किं तु सख्या आदरो मया मानयितव्यः । भवतु अनयोरेवोद्यानपालिकयोस्तिरस्करिणीप्रतिच्छन्ना पार्श्ववर्तिनी भूत्वोपलप्स्ये । ] ( इति नाट्येनावतीर्य स्थिता )

( ततः प्रविशति चूताङ्कुरमवलोकयन्ती चेटी अपरा च पृष्ठतस्तस्याः )

**प्रथमा—**

आतम्महरिअपंडुर जीअसव्वस्स वसंतमासस्स ।
दिट्ठो सि चूदकोरअ उदुमंगल तुमं पसाएमि ॥ २ ॥

---

( समन्तात् = सर्वतः अवलोक्य = दृष्ट्वा ) किन्तु खलु = कथं हि ऋतूत्सवेऽपि — ऋतूत्सवोचितकालेऽपि सन्निहितवसन्तमहोत्सवेऽपि उत्सवान्निर्गतः निरुत्सवः निरूत्सव आरम्भो यस्य तत् निरुत्सवारम्भं = उत्सवारम्भशून्यम्, निर्व्यापारं राजकुलं = राजगृहम्, दृश्यते = अवलोक्यते । यद्यपि प्रणिधानेन = समाधिना देव्या योगशक्त्या सर्वं = सकलं ज्ञातुं = परिज्ञातुं मे = मम, विभवः = सामर्थ्यम् अस्ति = विद्यते । दिविवर्तमानयैव मया दिव्यदृष्ट्या सर्वमपि ज्ञातुं शक्यते । किन्तु = तथापि सख्याः = मेनकायाः शकुन्तलाया वा आदरः = आग्रहः—स्वचक्षुषैव सर्वं राजकुलवृत्तं विलोक्य प्रत्यहमत्रागत्य तत्रत्यो वृत्तान्तस्त्वया वर्णनीय इति तन्निर्बन्धो, मया मानयितव्यः = पालयितव्यः । अतो न दिव्यदृष्ट्या विभावयामि किन्तु लोचनाभ्यामेव सर्वं पश्यामीति भावः । भवतु = अस्तु अनयोः = एतयोः पुरः स्थितयोः उद्यानपालिकयोः = उपवनरक्षिकयोः तिरस्कारिणी नाम = अदृश्यकारिणी कापि विद्या तया = अन्तर्धानविद्यया प्रतिच्छन्ना = अलक्षिता गूढविग्रहा सती पार्श्ववर्तिनी = समीपचारिणी भूत्वा उपलप्स्ये = ज्ञास्यामि । इति = एवं निश्चित्य नाट्येन = अभिनयेन अवतीर्य गगनतलादवतीर्य स्थिता = भूतलावतरणं नाटयित्वा उद्यानपालिकयोः निकटे निगूढं स्थितेत्यर्थः । भूतलावतरणं तु गङ्गावतरणेन । तल्लक्षणं यथा—

अङ्घ्रेरुत्क्षेपनिक्षेपावनुप्रोन्नतसन्नतौ ।
भजेतां विपताकौ चेदेवमेव शिरस्तथा ।
गङ्गावतरणम्.........................।

( ततः = तदनन्तरम् चूताङ्कुरम् = आम्राङ्कुरमवलोकयन्ती = नवोद्गतत्वात् सप्रेमं पश्यन्ती चेटी = परिचारिका, तस्याः पृष्ठतः अपरा = द्वितीया च चेटी प्रविशति )

**अन्वयः**—हे आताम्र हरितपाण्डुर ! वसन्तमासस्य जीवितसर्वस्व ! ऋतुमङ्गल ! चूतकोरक ! दृष्टोऽसि त्वां प्रसादयामि ।

---

विमुख है । मुझमें योगध्यान के द्वारा सब जान लेने की सामर्थ्य है, परन्तु मेरी प्रियसखी मेनका का 'सब हाल अपनी आँखों से देखकर तुम यहां आकर मुझसे कहना' यह आग्रह भी मुझे मानना आवश्यक है । अच्छा, इन दोनों उद्यान पालिकाओं के बीच में ही तिरस्करिणी विद्या के बल से छिपी रहकर मैं गुप्त रूप से इनकी बातें सुनूंगी। **( आकाश से उतरने का अभिनय करती हुई दोनों उद्यान पालिकाओं के बीच उपस्थित हो छिपकर खड़ी हो जाती है )।**

**( इसके बाद आम की बौर देखती हुई दासी और उसके पीछे दूसरी दासी दिखाई पड़ती है )**

**पहली दासी**—कुछ-कुछ लाल रंग लिए हरे और पीले रंग से सुशोभित बसन्त मास के

[ आताम्रहरितपाण्डुर जीवितसर्वस्व वसन्तमासस्य ।
दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमङ्गल त्वां प्रसादयामि ॥ ]

**द्वितीया**—परहुदिए किं एआइणी मंतेसि ? । [ परभृतिके किमेकाकिनी मन्त्रयसे ? । ]

**प्रथमा**—महुअरिए चूदकलिअं देक्खिअ उम्मत्तिआ परिहुदिआ होदि । [ मधुकरिके ! चूतकलिकां दृष्ट्वोन्मत्ता परभृतिका भवति । ]

---

नवोद्गतताम्रकोरकमवलोक्य प्रथमा चेटी = तत्पारिका हृष्टमना चेटी तमवलोकयन्ती वदति—**आताम्रेति** । ईषत्ताम्रः आताम्रः आताम्रश्च हरितश्च पाण्डुरश्चेति आताम्रहरितपाण्डुरः तत्सम्बुद्धौ हे आताम्रहरितपाण्डुर ! ताम्र श्यामल-शुभ्रेति-वर्णत्रयमिश्रित ! वसन्तमासस्य = मधुमासस्य चैत्रस्य जीवितसर्वस्व = जीवनसारतमः ! ऋतुमङ्गल ! = ऋतोः वसन्तस्य मङ्गल ! प्रशंसा ! वसन्तश्रेयस्कर । चूतकोरक ! = आम्रमुकुल ! दृष्टोऽसि त्वमद्य दैवात् अवलोकितोऽस्ति त्वां भवन्तं प्रसादयामि = स्वागतं व्याहरामि त्वं तथा प्रसन्नो भव यथाऽस्मिन् वसन्तेऽहं सुखं वसेयमित्यर्थः ।

अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कार आर्याछन्दश्च ॥ २ ॥

**द्वितीया**—हे परभृतिके ! एकाकिनी = स्वयमेव, केवला किमेतत् मन्त्रयसे = किमिदमालपसि ? उन्मत्तेव एकाकिनी किमिति जल्पसीत्यर्थः ।

**प्रथमा**—अथ सा परभृतिकानाम्नी प्रथमाचेटी मधुकरिका नामधेयां द्वितीयां चेटीं श्लेषवक्रोक्त्या प्रतिवदति—मधुकरिके ! चूतकलिकां=आम्रकोरकं, रसालमञ्जरीं दृष्ट्वा=विलोक्य उन्मत्ता=वातुला परभृतिकां=कोकिला भवति । अहम् परभृतिका नाम चेटो च यथा कोकिला चूताङ्कुरं दृष्ट्वा हृष्यति तथाहमपि परभृतिका नाम चेटी नामसाम्यात्

---

सच्चे जीवन स्वरूप वसन्त ऋतु के मङ्गलमय आगमन की सूचना देने वाले हे आम्रकोरक = आम्रमञ्जरी ? आपका दर्शन कर आपका अभिनन्दन करती हूँ ॥ २ ॥

**विशेष**—आकाशं याति अनेनेति आकाशयानं तेन आकाशयानेन इसका अर्थ वायुयान भी हो सकता है, या आकाशमार्ग से भी हो सकता है । इन्द्रलोक की अप्सराओं में आकाशमार्ग से आने जाने की अद्भुत शक्ति होती है । अप्सरातीर्थ में दिव्य अप्सराओं की बारी-बारी से यह देखने की ड्यूटी होती थी कि स्नान के समय कहीं कोई दुर्घटना न हो जाय ।

तिरस्करिणी विद्या के द्वारा दैवी शक्ति प्राप्त व्यक्ति मन्त्र पढ़कर अदृश्य हो जाता है । दूसरे लोग उसे नहीं देख सकते हैं, किन्तु वह दूसरों को भली-भाँति देख सकता है । देवयोनि में तिरस्करिणी विद्या का प्रभाव रहता है । अतः सानुमती अप्सरा ने तिरस्करिणी विद्या के प्रभाव से छिपकर दोनों उद्यानपालिकाओं के अगल-बगल रहकर राजा दुष्यन्त का कृत्य देखने का प्रयास किया था ।

**दूसरी दासी**—अरी परभृतिके ! तू अकेली, अकेली क्या बड़बड़ा रही है ?

**पहली दासी**—मधुकरिके ! चूतकलिका = आम्रमञ्जरी को देखकर परभृतिका उन्मत्त-सी हो रही है ( परभृतिका कोयल को कहते हैं तथा पहली चेटी का भी यही नाम है ) अर्थात् मैं आम की कली को देखकर कोयल की तरह मस्त होकर स्वयं ही चहचहा रही हूँ ।

**विशेष**—दूसरी दासी का नाम मधुकरिका है जिसका अर्थ नन्हीं भ्रमरी है, परभृतिका का अर्थ कोयल होने से पहली चेटी अपने नाम का कौशल पूर्ण प्रयोग कर रही है ।

**द्वितीया**—( सहर्षं सत्वरयोपगम्य ) कहं उवट्ठिदो महुमासो । [ **कथमुपस्थितो मधुमासः ।** ]

**प्रथमा**—महुअरिए । तव दाणिं कालो एसो मदविब्भमगीदाणं । [ **मधुकरिके ! तवेदानीं काल एष मदविभ्रमगीतानाम् ।** ]

**द्वितीया**—सहि अवलंबस्स मं जाव अग्गपादट्ठिआ भविअ चूदकलिअं गेण्हिअ कामदेवच्चणं करेमि । [ **सखि, अवलम्बस्व मां यावदग्रपादस्थिता भूत्वा चूतकलिकां गृहीत्वा कामदेवार्चनं करोमि ।** ]

---

कोकिलेव आम्रमञ्जरीं दृष्ट्वा हृष्यति । अहं किल परभृतिका = कोकिला, त्वञ्च मधुकरिका = भृङ्गी ।

**द्वितीया**—चूतकलिकोद्गमं निशम्य मधुमासावतारसंभावनया प्रहृष्टा द्वितीया चेटी त्वरया प्रथमायाः चेट्याः समीपमुपगम्य सहर्षं ब्रवीति—कथं = किं मधुमासः = वसन्तः उपस्थितः = प्राप्तः, वसन्तकालः समुपस्थितः किमिति प्रश्नः ।

**प्रथमा**—मधुकरिके = भ्रमरि ! तव कृते, इदानीं = अधुना मदः = उन्मादः, विभ्रमः = विलासश्च गीतानि = गानानि चेति तानि तेषां मदविभ्रमगीतानां = उन्मद-सविलासविभ्रम—तारतम्यगीतानाम्, एषः = अयं कालः = उचितः समयः आगतः । वसन्तसमये कुसुमितासु वनराजीसु भ्रमरकामिन्यास्तव गायनं स्वाभाविकं भवति इदानीं स समयस्ते प्राप्तः । अर्थात्-भ्रमरी किल वसन्ते सहकारकोरकेषु मञ्जरीषु च भ्राम्यन्ती सविभ्रमं कलं गायति त्वमपि च गीतविनोदप्रिया भ्रमरीव गीतं प्रारभस्वेति तात्पर्यम् ।

**द्वितीया**—सखि ! हे आलि ! मां = मधुकरिकाम्, अवलम्बस्व = करेण आलम्बनं मह्यं देहि यावत्=यावत्कालं पादयोः = चरणयोः अग्रमित्यग्रपादं तत्र स्थितेति अग्रपाद-स्थिता पादाङ्गुलिसमाश्रयणेन स्थिता सती चूतमञ्जरीं–चूतस्य = आम्रस्य, मञ्जरीं = कलिकां गृहीत्वा = आदाय कामदेवार्चनं = मदनपूजनम् करोमि = विदधामि । प्रांशु-लभ्यां चूतकलिकां गृहीत्वा यावत् कामार्चनं करोमि तावत् मामवलम्बस्व । प्रांशुलभ्य-त्वाद्बालायास्तल्लाभायाग्रपादावस्थितिरुचितैवेति भावः । अभिनवचूतमञ्जरीभिः समर्चनं मदनोत्सवे भवतीति लोकसमयः ।

---

**दूसरी—( सहर्ष, जल्दी से पास में जाकर )** क्या कहा—मधुमास = वसन्त ऋतु का महीना चैत्रमास आ गया ?

**विशेष**—वस्तुतः चैत्र और वैशाख को वसन्तमास अथवा वसन्त ऋतु कहते हैं, परन्तु यहां वसन्तमास का अर्थ है चैत्रमास, क्योंकि वही वसन्तऋतु का प्रथम मास है—मधुश्च माधवश्चैव वासन्तिकावृतू ( य० वे० १३।२५ ) ।

**पहली**—हे मधुकरिके ! = भ्रमरिके तेरे मदभरे गीतों का भी तो यही समय है । भ्रमरी भी वसन्त में मस्त होकर आमकी मञ्जरियों पर एवं फूलों पर गूंजती फिरती रहती है और तेरा भी नाम मधुकरिका = भ्रमरी है हीं । अतः तू भी आनन्द विभोर हो मस्ती से गाना गा ।

**दूसरी**—हे सखी, मुझे जरा-सा सहारा दो तो मैं अपने पैरों के अग्रभाग पर पञ्जे के सहारे खड़ी होकर आम्र की कली को तोड़कर उससे भगवान् कामदेव की पूजा करूँ ।

**प्रथमा**—जइ मम वि खु अद्धं अच्चणफलस्स। [ यदि ममापि खल्वर्धमर्चनफलस्य। ]

**द्वितीया**—अकहिदे वि एदं संपज्जइ। जदो एक्कं एव्व णो जीविदं दुधा ठिदं सरीरं ( सखीमवलम्ब्य स्थिता चूतांकुरं गृह्णाति )। अए अप्पडिबुद्धो वि चूदप्पसवो एत्थ बंधणभंगसुरभी होदि। [ अकथितेऽप्येतत्संपद्यते। यत एकमेव नौ जीवितं द्विधा स्थित शरीरम्। अये अप्रतिबुद्धोऽपि चूतप्रसवोऽत्र बन्धनभङ्गसुरभिर्भवति। ]

( इति कपोतहस्तकं कृत्वा ) नमो भगवते मकरध्वजाय—

---

**प्रथमा**—यदि = चेत् खलु = निश्चितं ममापि अर्चनफलस्य = कामदेवपूजाफलस्य अर्द्धं = द्वितीयो भागः स्यात्तदावलम्बनं दास्यामि नान्यथा।

अयं भावः—मधुकरिके! त्वं यदि चूतप्रसवं कामार्चनायावचिनोषि तर्हि तदर्चनफलस्यार्द्धं फलं त्वं मह्यं देहि, तदा तव साहाय्यं विधास्यामीति भावः।

**द्वितीया**—अकथितेऽपि = अनाख्यातेऽपि, त्वदनुक्तावपि एतत् = इदं कामपूजायाः फलार्द्धं संपद्यते = प्रतिपद्यते। यतः = यस्मात् कारणात् एकमेव स्नेहेन एकीभूतं नौ = आवयोः जीवितं = जीवनम्, प्राणाः, शरीरं = देहः तु द्विधा = द्विप्रकारकं स्थितं = अस्ति, आवयोः स्नेहातिशयादेवाभेदो जायते इति भावः। ( सखीं = आलिम् अवलम्ब्य = आलम्बनं गृहीत्वा स्थिता = उत्थिता सती चूताङ्कुरं = आम्रमञ्जरीं गृह्णाति = उत्पाटयति ) कपोतहस्तकं कृत्वा अये! = भोः! अप्रतिबुद्धः = अविकसितोऽपि चूतप्रसवः = आम्रमञ्जरी अत्र = इह उपवने बन्धनभङ्गसुरभिः बन्धनात् = वृन्तात् भङ्गेन उत्पाटनेन सुरभिः = सुगन्धिः भवति = जायते प्रसवबन्धनभङ्गस्थानम् सौरभमुद्वमन्निव शोभते अविकसितस्यापि चूतप्रसवस्य ईदृक् सौरभं विकासे पुनः कीदृक् स्यादिति भावः।

इति कपोतहस्तकं—कपोतः = कपोताकारः हस्तः करः कपोतहस्त स एव कपोत-

---

**पहली**—अगर कामदेव की पूजा के फल में से आधा फल मेरा भी हिस्सा रहे, तभी मैं तेरी सहायता कर सकूँगी।

**दूसरी**—हे सखी! यह बात तो तेरे कहे बिना भी हो ही जायेगी, क्योंकि हम दोनों का जीवन तो एक ही है, किन्तु शरीर दो रूपों में स्थित है, विधाता ने भूल से ही इसके दो भाग बना दिये हैं ( **सखी का सहारा लेकर आम्रमञ्जरी को तोड़कर** ) यहां यह आम की कलिका अभी खिली नहीं है, तो भी इसके तोड़ने से इसके वृन्त भाग से सुगन्धि निकल रही है।

**विशेष**—परभृतिका और मधुकरिका ये दोनों दो सखियों के नाम हैं कवि ने किसी खास अभिप्राय से इन दोनों नामों का प्रयोग किया है। इन दोनों के दो-दो अर्थ हैं। पहले तो ये दोनों दो सखियों के नाम हैं दूसरा परभृतिका अर्थ है कोयल तथा मधुरिका अर्थ है भ्रमरी। वसन्त = चैत्रमास में कोयल तथा भ्रमरियाँ मतवाली होकर फुदकती फिरती हैं। यहाँ दोनों नामों का प्रयोग श्लिष्ट अर्थ में किया गया है अर्थात् द्व्यर्थक हैं। **द्विधा स्थितं शरीरं** का तात्पर्य यह है कि परभृतिका और मधुकरिका दोनों घनिष्ठ सखियाँ हैं। एक के बिना दूसरी न तो प्रसन्न रह सकती है, न जीवित ही रह सकती है। वस्तुतः उनके पारस्परिक व्यवहार को देखकर यह कहा जा सकता है कि केवल उनके शरीर मात्र दो हैं, प्राण तो एक ही है।

**( कपोतहस्तक अञ्जलि बनाकर कामदेव को आम्रमञ्जरी चढ़ाती हुई )** भगवान कामदेव को हमारा नमस्कार है।

तुम्मं सि मए चूदंकुर दिण्णो कामस्स सहीदधणुअस्स।
पहिअजणजुवइलक्खो पंचब्महिओ सरो होहि॥ ३॥
[ त्वमसि मया चूताङ्कुर दत्तः कामाय गृहीतधनुषे।
पथिकजनयुवतिलक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरो भव॥ ]
( इति चूताङ्कुरं क्षिपति )

---

हृस्तकः तं कपोतहस्तकम् कपोतहस्तकशब्दः पारिभाषिकशब्दः करतलयोः सर्वाङ्गश्लेषे वर्तते कपोतहस्तकं यथासङ्गीतरत्नाकरे—

कपोतोऽसौ करो यत्र श्लिष्टमूलाग्रपार्श्वकः।
प्रणामे गुरुसंभाषे.................................॥

नाट्यशास्त्रे च भरतमुनिः—

उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामन्योऽन्यं पार्श्वसङ्ग्रहात्।
हस्तः कपोतको नाम.................................॥

एष विनयाभ्युपगमे, प्रणामकरणे, गुरोश्च सम्भाषे प्रयुज्यते। कपोतहस्तकं कृत्वा = प्रणामाञ्जलिं बद्ध्वा नमो भगवते मकरध्वजाय इत्युक्त्वा च—त्वमसीति।

अन्वयः—हे चूताङ्कुर गृहीतधनुषे कामाय त्वं मया दत्तः असि। पथिकजनयुवति-लक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरो भव।

अभिनवे वसन्तावतारसमये परभृतिका नाम चेटी मदनमुद्दिश्य आम्रमञ्जरीं समर्पयन्ती कामदेवार्चनमन्त्रगाथां पठति—त्वमसि मयेति। हे चूताङ्कुर ! = हे सहकारप्रसव ! आम्रमञ्जरि ! गृहीतं = आत्तं धनुः = शरासनं येनासौ तस्मै गृहीतधनुषे = धनुर्धराय मानिनीमानभञ्जनसन्नाहशालिने कामाय = मदनाय त्वं मया = चेट्या दत्तः = समर्पितः असि। पथिकजनानां = विरहिणां या युवतयः = तरुण्यो भार्याः ता एव लक्ष्यं = शरव्यम् यस्य सः पथिकजनयुवतिलक्ष्यः—पान्थस्त्रीहृदयकर्तनः पञ्चभ्यः अरविन्दादिभ्यः पञ्चभ्यः

---

**कपोतहस्तक** = कबूतर की तरह बनाया गया हाथ। हाथ जोड़ने की यह कला है। दोनों हाथों की पांचों अंगुलियों के छोर एक दूसरे से मिले हों, हथेली का मध्य भाग दूर रखकर मूल मिला दिया जाता है, यह है हाथों का कपोताकार बनाना। संगीतरत्नाकर के अनुसार करकपोत तब होता है जब आगे और पीछे के करभाग जुड़े हों, यह प्रणाम और गुरु-संभाषण के समय करना चाहिए।

हे आम्रमञ्जरी ! मैंने तुम्हें धनुर्धारी कामदेव को अर्पित कर दिया है। पथिक परदेश गये हुए व्यक्तियों की युवती स्त्रियों के हृदयों को तथा कुपित मानिनी नायिकाओं के हृदयों को बेधने वाले काम के पांचों बाणों में सब से श्रेष्ठ बाण बन जाओ॥ ३॥

**( इसके बाद आम्र की बौर फेंक देती है। )**

**विशेष**—गृहीतधनुषे इस विशेषण से प्रतीत होता है कि वसन्त ऋतु में कामदेव धनुष धारण किये रहता है। वनिता से वियोगी व्यक्ति को वसन्त ऋतु में अपनी प्रियतमा का स्मरण विशेषरूप से होता रहता है और काम के बाण उसे पीडित करते रहते हैं उनका लक्ष्य उस समय केवल बिरहणी स्त्रियाँ रहती हैं। आम का अंकुर देखकर कामिनियों का मान भंग हो जाता है। कवियों ने कामदेव को पञ्चसायक कहा है, क्योंकि उसके पांच ही बाण हैं वे सभी बाण पुष्प के हैं।

( प्रविश्यापटीक्षेपेण कुपितः )

**कञ्चुकी**—मा तावत् अनात्मज्ञे, देवेन प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वमाम्र-कलिकाभङ्गं किमारभसे ?।

---

शरेभ्यः अभ्यधिकः = अतिरिक्तो विशिष्टः इति पञ्चाभ्यधिकः = षष्ठः शरः = वाणो भव = एधि ।

**अयं भावः**—अरविन्दमशोकं च शिरीषं चूतमुत्पलम् ।
पञ्चैतानि प्रकीर्त्यन्ते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥

इत्यनुसारमिमेऽरविन्दादयः पञ्च कामस्य शराः सन्त्येव । हे सहकारप्रसव ! त्वं तु सदा सज्जधनुषे मनोभवाय मदनाय मया समर्पितः पथिकजनान् तद्भार्याश्च विद्ध्वा चूताङ्कुरो हि सर्वेषामुद्दीपकानामग्रणीति प्रसिद्धया पञ्चभ्यः शरेभ्यः सारवत्तया श्रेष्ठः षष्ठः शरो भवेति ।

कामस्य सर्वेषां शराणां मानिनीमानभङ्गकर्मणि कुण्ठिततया अमोघं वाणं त्वां प्रतीक्षमाणः स्मरस्तिष्ठति । तस्मात् कुरु मानिनीमानभङ्गाय स्मरस्य साहाय्यम् । आम्र-मञ्जरीमालोक्य मानिन्यो मानं रक्षितुं न प्रभवन्तीति वसन्तसमयस्य कामोद्दीपकम-तिशयम् इति भावः । अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कार आर्या छन्दश्च ।

( इति = एवमुक्त्वा ततः चूतस्य = आम्रस्य अङ्कुरं = मञ्जरीं क्षिपति = पूजार्थम् अस्यति )

( तेन कुपितः = क्रुद्धः कञ्चुकी अपटीक्षेपेण = तिरस्करिणीतिरस्कारेण यवनिकामपसार्य प्रविश्य = रङ्गे आगत्य च ब्रवीति 'नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेशो निर्गमोऽपि च ।' इत्युक्तेः कञ्चुकिनः सूचना-भावादेव अपटीक्षेपेण = यवनिकामपसार्य प्रवेशः । )

**कञ्चुकी**—( प्रविश्य क्रुद्धः ) अनात्मज्ञे ! आत्मानं = स्वं न जानाति = नाव-गच्छतीति अनात्मज्ञा तत्सम्बुद्धौ हे स्वभावानभिज्ञे ! अविमृश्यकारिणि ! मा तावत् सांप्रतमेवं मा कुरुत = चूताङ्कुरं न गृहाण देवेन = महाराजेन वसन्तोत्सवे = मधुमास पर्वणि त्वम् आम्रकलिकाभङ्गम् आम्रस्य सहकारस्य कलिकायाः = मञ्जर्या भङ्गं = त्रोटनं किं = किमर्थम् आरभसे = कर्तुं प्रवर्तसे ।

---

इसलिए काम को पुष्पसायक भी कहते हैं । इन पुष्पों का नाम इस प्रकार ( १ ) अरविन्द = लाल कमल ( २ ) अशोक ( ३ ) आम्रमञ्जरी ( ४ ) नवमल्लिका = नेवारी ( ५ ) नीला कमल—
अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका । नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥

**( पर्दा न हटाकर सहसा प्रवेश कर क्रोध से )**

**कञ्चुकी**—अरी नासमझ ? यह क्या कर रही हो, महाराज द्वारा वसन्तोत्सव को रोक दिये जाने पर भी तुम आम की कली को क्यों तोड़ रही हो ।

**विशेष**—नाट्यशास्त्र का नियम है कि सूचना के बिना किसी पात्र का प्रवेश नहीं होता। जब सूचना के बाद पर्दा उठता है तब स्टेज पर पूर्वसूचित पात्र प्रवेश करता है । किन्तु कभी-कभी कोई पात्र पूर्वसूचना के बिना ही अपने ही हाथ से बगल में पर्दा हटाकर स्टेज पर आ जाता है । इसी को नाटकों मे अपटीक्षेप कहते हैं ।

**उभे**—( भीते ) पसीददु अज्जो । अग्गहीदत्थाअ वअं [ **प्रसीदत्वार्यः । अगृहीतार्थे आवाम् ।** ]

**कञ्चुकी**—न किल श्रुतं युवाभ्यां यद्वासन्तिकैस्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिः पतत्रिभिश्च । तथा हि—

> **चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः**
> **संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया ।**
> **कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं**
> **शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम् ॥ ४ ॥**

---

**उभे**—( भीते = भयतरले भूत्वा ) न गृहीतो न ज्ञातः अर्थः राजशासनं याभ्यां ते अगृहीतार्थे = अज्ञातराजशासने आवां = द्वौ चेट्यौ स्वः । अवाभ्यामज्ञानादेवाम्रञ्जरी त्रोटनं कृतम्, अर्थात् देवेन कृतो वसन्तोत्सवप्रतिषेधोऽऽवाभ्यां न जातः, तदज्ञानात् कृतमपराधं भवान् मर्षयतु—इति भावः ।

**कञ्चुकी**—राजकृतवसन्तोत्सवप्रतिषेधाज्ञानस्य संभाव्यत्वमाकलयन् कञ्चुकी प्राह—युवाभ्यां देवस्य शासनं न श्रुतमित्येतदसंभाव्यमेव । वासन्तिकैः-वसन्तकाले पुष्यद्भिः तरुभिः=अचेतनैः वृक्षैः तदाश्रयिभिः=वृक्षाश्रयिभिः पतत्रिभिः=पक्षिभिः कोकिलादिभिरपि देवस्य = महाराजस्य शासनं = आज्ञामुत्सवप्रतिषेधरूपां प्रमाणीकृतम् = स्वीकृतं, पालितम् । तथाहि = तरुभिः यथा राज्ञः शासनं स्वीकृतं तथा उदाह्रियते—**चूतानामपि** ।

**अन्वयः**—चूतानां कलिका चिरनिर्गताऽपि स्वं रजः न बध्नाति, कुरबकं यदपि सन्नद्धं तत् कोरकावस्थया स्थितम्, पुंस्कोकिलानां रुतं शिशिरे गतेऽपि कण्ठेषु स्खलितम्, स्मरोऽपि चकितः सन् तूणार्द्धकृष्टं शर संहरति ( इति ) शङ्के ॥ ४ ॥

राज्ञो दुष्यन्तस्योद्याने चेटीभ्यां मन्मथमुद्दिश्य चूताङ्कुरक्षेपं वीक्ष्य क्रुद्धः कञ्चुकी ब्रूते—**चूतानामपि** । चूतानां = आम्रवृक्षाणाम् कलिका = मञ्जरी चिरनिर्गताऽपि = बहोः कालात् निष्क्रान्ता, प्रकटिता शिशिरान्तोद्भिन्ना अपि स्वं = आत्मीयम् रजः = परागं न बध्नाति = न धत्ते न विकसति, यथा काचन बाला प्रौढावस्थां गतापि रजोदर्शनं न धत्ते तद्वदाम्रञ्जरीयं बहोः कालादपि स्वं रजः न प्रकटयतीत्यर्थः । कुरबकं = कुरबककुसुमं यदपि = यद्यपि सन्नद्धं = वृन्तादबहिर्गतम्, तत् = तदपि कोरकवल्लयः स्थितम् = कलिकावस्थयैव स्थितम् । पुंस्कोकिलानां = पिकानाम् यूनां

---

**दोनों दासियाँ**—( **भयभीत होकर** ) श्रीमान् क्षमा करें । हमदोनों को उक्त बातों का पता न था ।

**कञ्चुकी**—क्या, यह बात तुम दोनों ने नहीं सुनी है कि महाराज की इस उत्सव निषेध की आज्ञा को वसन्त ऋतु में फलने-फूलने वाले वृक्षों ने तथा इन वृक्षों पर बैठनेवाले पक्षियों तक ने भी मान लिया है । देखो तो—

बहुत पहले से ही निकली हुई आम की कलियां अपने पराग को धारण नहीं कर रही हैं । कुरबक पुष्प भी अपने वृन्त से निकलकर अभी तक कली की अवस्था में ही है । पर फूल नहीं रहा है । शिशिर ऋतु के बीत जाने पर भी कोयलों की आवाज अभी गले में ही रुकी है । प्रतीत होता है कि कामदेव भी भयभीत होकर तरकस से आधे निकले हुए बाण को रोक ले रहा है ।

**उभे**—णत्थि एत्थ संदेहो। महाप्पहाओ राएसी। [ **नास्ति अत्र संदेहो महाप्रभावो राजर्षिः।** ]

**प्रथमा**—अज्ज कदि दिअहाइं अम्हाणं मित्तावसुणा रट्ठिएण भट्टिणीपाअमूलं पेसिदाणं। इत्थं अ णो पमदवणस्स पालणकम्म समप्पिदं। ता आअंतुअदाए असुदपुव्वो अम्हेहि सो वुत्तंतो। [ **आर्य! कति दिवसान्यावयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण भट्टिनीपादमूलं प्रेषितयोः। इत्थं च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितं। तदागन्तुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तान्तः** ]

---

रुतं = शब्दितम् शिशिरे = शिशिरतौ गतेऽपि = हिमावसाने जातेऽपि, वसन्ताविर्भावे सत्यपि, कण्ठेषु स्खलितं = गलेषु अवरुद्धम्। रुद्धप्रसरं स तिष्ठति अत एव स्मरोपि = कामोऽपि सर्वविजयी मन्मथोऽपि चकितः = राजाज्ञया भीतः सन् तूणार्द्धं = तूणीरादर्द्ध-निष्कासितं निषङ्गादर्द्धमाकृष्टम् शरं = बाणं संहरति = निवर्तयति पुनस्तूणीरे एव प्रवेशयतीत्यर्थः। इति = एवं शङ्के = मन्ये।

अर्थात् शिशिरकालापगते समुपस्थिते च वसन्तसमये चिरकालोद्गता अपि आम्रमञ्जर्यं आवश्यकमपि परागयोगं न दधते, कुरबकः कलिकावस्थयैव तिष्ठति, अनुरक्ता अपि कोकिलयुवानः कण्ठाद्बहिः स्वकाकलीं न प्रकटयन्ति, एवमेव जगद्-विजयी मदनोऽपि तूणीरादर्द्धनिष्कासितं स्वकीयं शरं पुनः तूणीरे एव स्थापयति।

इत्थमचेतनैः सचेतनैरपि यदि महाराजस्यानुशासनं स्वीकृतं तर्हि कथं युवाभ्या-मुपेक्ष्यते। एवम् अनेन श्लोकेन राजशासनस्य सार्वत्रिकी व्याप्तिरुक्ता। अत्रोत्प्रेक्षा, काव्यलिङ्ग, विशेषोक्तिश्चालङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं छन्दश्च॥ ४॥

अथ उभे कञ्चुकीवचो निशम्य वदतः—अत्राचेतनैरपि राजाज्ञायाः परिपालने खलु = निश्चयेन सन्देहः संशयो न, महान् प्रभावो यस्यासौ महाप्रभावः = दिव्यशक्तिः राजर्षिः = महाराजो दुष्यन्तः अस्ति = विद्यते। क्वचन उभे स्थाने सानुमतीति पाठभेदः तदनुसारं सानुमत्या इयमुक्तिरस्ति। नात्र विस्मयस्यावकाशः, अस्य राजर्षे महाप्रभाव-त्वात्सर्वमुपपद्यते इत्यर्थः।

**प्रथमा**—उभयोश्चेट्योरन्यतरा उत्सवप्रतिषेधस्याश्रवणे संगतिं योजयति—आर्य! कति = कतिपयानि दिवसानि = दिनानि कियन्त्येवाहानि आवयोः दास्योः मित्रावसुना राष्ट्रियेन = नृपश्यालकेन भट्टिनीपादमूले = राज्ञीचरणतले, महाराज्ञीवसुमती समीपे प्रेषितयोः = प्रहितयोः (आवयोः) इत्थं = एवं च नौ = आवाभ्याम् प्रमदवनस्य =

---

तात्पर्य यह है कि जब, महाराज की आज्ञा शिरोधार्य कर वृक्षों ने, पक्षियों ने तथा कामदेव ने भी वसन्तोत्सव मनाना रोक दिया है तब मनुष्यों की क्या बात है? फिर तुम इस प्रकार वसन्तोत्सव मना रही हो यह तो बड़ा ही अनुचित है॥ ४॥

**दोनों दासियाँ**—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि ये राजर्षि दुष्यन्त बड़े ही प्रतापी एवं प्रभावशाली राजा है।

**पहली दासी**—महोदय, कई दिन हुए हम दोनों को महाराज के साले मित्रावसु ने महारानी के चरणों के पास भेजा था। इस प्रकार यहाँ हमें इस प्रमदवन की सुरक्षा का कार्य सौंपा गया है। इसलिए अजनवी होने के कारण हमलोगों को यह समाचार पहले नहीं सुनाई दिया था।

**कञ्चुकी**—भवतु। न पुनरेवं प्रवर्तितव्यम्।

**उभे**—अज्ज कोदूहलं णो। जदि इमिणा जणेण सोदव्वं कहेदु अअं किंणिमित्तं भट्टिणा। वसंतुस्सवो पडिसिद्धो। [ आर्य कौतूहलं नौ। यद्यनेन जनेन श्रोतव्यं कथयत्वयं किंनिमित्तं भर्त्रा वसन्तोत्सवः प्रतिषिद्धः। ]

**सानुमती**—उस्सवप्पिआ खु मणुस्सा। गुरुणा कारणेण होदव्वं। [ उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः। गुरुणा कारणेन भवितव्यम्। ]

**कञ्चुकी**—बहुलीभूतमेतत्किं न कथ्यते। किमत्रभवत्योः कर्णपथं नायातं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम्।

---

अन्तःपुरोद्यानस्य पालनकर्म = तरूणां रक्षणकार्यम्, समर्पितं = दत्तम्। तत् = तस्मात् आगन्तुकतया = सद्य एव इह संप्राप्ततया अचिरागमेन न श्रुतपूर्वमिति अश्रुतपूर्वः = इतः पूर्वमश्रुतः, आवाभ्यां = दासीभ्याम् एषः = मधूत्सवनिषेधानुबन्धो वृत्तान्तः = कथाप्रसङ्गः।

**कञ्चुकी**—तदुक्तमभ्युपगच्छन् वदति—भवतु = यद् जातं तद् जातं, न पुनः = न भूयः एवं = इत्थम् आज्ञाविपरीतं प्रवर्तितव्यं = करणीयम्। चूतकलिकाभङ्गादिभिरुत्सवारम्भो न कर्तव्य इति भावः।

**उभे**—आर्य! नौ = आवयोः कौतूहलमस्ति, यदि = चेत् अनेन जनेन = नीचेन चेटीजनेन मया श्रोतव्यं = श्रवणार्हम्। न गोपनीयं स्यात्तर्हि। कथयतु = वदतु—अयं = एषः उत्सवः किन्निमित्तम् = किं हेतुकम्, केन कारणेन भर्त्रा = स्वामिना = दुष्यन्तेन वसन्तोत्सवः = मधुमासपर्वं प्रतिषिद्धः = निषिद्धः।

**सानुमती**—मनुष्याः = मानवाः खलु = निश्चयेन उत्सवप्रियाः—प्रिया उत्सवा येषां ते उत्सवप्रियाः प्रियोत्सवाः आमोदप्रियाः भवन्ति तथाप्युत्सवः प्रतिषिद्धः तन्मन्ये गुरुणा महता कारणेन = हेतुना भवितव्यम् = भूयात्।

**कञ्चुकी**—न बहुलमबहुलमबहुलं बहुलं भूतमिति बहुलीभूतम् = सर्वजनविदितं, नेदानीं गोपनीयमस्ति, एतत् = वृत्तम् किन्न कथ्यते = कथं न कथ्येत, कथने दोषं न पश्यामीति भावः। किमत्रभवत्योः = भवत्योः कर्णपथं = श्रुतिगोचरं न आयातं = नागतम् भवतीभ्यां न श्रुतम् किमित्यर्थः शकुन्तला प्रत्यादेशकौलीनम् = शकुन्तलायाः = कण्वदुहितुः प्रत्यादेशात् = निराकरणात् अस्वीकारात् कौलीनं निन्दा, शकुन्तलाप्रत्याख्यानादुत्थितो राज्ञो लोकापवादः। स्यात् कौलीनं लोकवादे इत्यमरः।

---

**कञ्चुकी**—ठीक है। पुनः ऐसा मत करना।

**दोनों दासियाँ**—महोदय, हमें एक उत्सुकता है, यदि मेरे सुनने लायक हो, गोपनीय न हो तो बताएँ कि किसलिए महाराज ने वसन्तोत्सव की मनाही कर दी है?

**सानुमती**—मनुष्य लोग तो उत्सवप्रिय हुआ करते हैं। इस राजा ने वसन्तोत्सव रोक रक्खा है। अतः इसमें कोई बड़ा कारण अवश्य होना चाहिए।

**कञ्चुकी**—(**मन ही मन**) यह शकुन्तला वाली बात तो बहुत लोगों को मालूम हो जाने से अब प्रसिद्ध हो चुकी है। अतः अब इससे इस बात को कहने में कोई हानि नहीं मालूम होती। (**प्रकट में**) तुम दोनों ने महाराज के द्वारा शकुन्तला के परित्याग का निन्दनीय प्रसंग तो सुना ही होगा?

**उभे**—सुदं रट्ठिअमुहादो जाव अंगुलीअदंसणं। [ श्रुतं राष्ट्रियमुखाद्यावदङ्गुलीयकदर्शनम् । ]

**कञ्चुकी**—( आत्मगतम् ) तेन ह्यल्पं कथयितव्यम् । ( प्रकाशम् ) यदैव खलु स्वाङ्गुलीयकदर्शनादनुस्मृतं देवेन सत्यमूढपूर्वा मे तत्रभवती रहसि शकुन्तला मोहात्प्रत्यादिष्टेति तदाप्रभृत्येव पश्चात्तापमुपगतो देवः । तथा हि—

**रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते**
**शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमयत्युनिद्र एव क्षपाः ।**
**दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा**
**गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम् ॥ ५ ॥**

---

**उभे**—अङ्गुलीयकदर्शनं यावत् = मुद्रिकाप्राप्तिपर्यन्तम्, सर्वं राष्ट्रियमुखात् = राजश्यालकमुखात् श्रुतम् = आकर्णितम् ।

**कञ्चुकी**—( आत्मगतं वदति ) तेन = अतः हि = निश्चयेन अल्पम् = अल्पमात्रं कथयितव्यम् = कथनीयं वक्तव्यं स्यात् पुनः प्रकाशं ब्रूते—यदैव = यस्मिन् क्षणे एव खलु = निश्चयेन स्वाङ्गुलीयकदर्शनात् = निजमुद्रिकावलोकनात् देवेन = महाराजेन अनुस्मृतम् = सत्यम् । वस्तुतः रहसि = एकान्ते ऊढपूर्वा—पूर्वमूढा इत्यूढपूर्वा = पूर्वं विवाहिता तत्रभवती = माननीया या मोहात् = अज्ञानात् मतिभ्रमात् । न मे त्वं पत्नीति मया प्रत्यादिष्टा = प्रत्याख्याता, अनङ्गीकृता इति तदाप्रभृत्येव = तत् आरभ्यैव देवः = महाराजः पश्चात्ताप = अनुशयं परितापम् उपगतः = प्राप्तः ।

**अन्वयः**—रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिः प्रत्यहं न सेव्यते, उद्विग्न एव शय्याप्रान्तविवर्तनैः क्षपा विगमयति, यदा दाक्षिण्येन अन्तःपुरेभ्यः उचितां वाचं ददाति तदा गोत्रेषु स्खलितः ( सन् ) चिरं व्रीडाविलक्षो भवति ॥ ५ ॥

अङ्गुलीयकदर्शनात् शकुन्तला गान्धर्वविवाहं स्मृत्वा अनुतप्यमानस्य नृपतेः दुष्यन्तस्य तात्कालिकीमवस्थां वर्णयति कञ्चुकी—**रम्यमिति** । स राजा रम्यं = स्रक् चन्दनचन्द्रचन्द्रिकागीतवाद्यादिकं लोके यद्यदाह्लादकरं भोग्यं वस्तु तत्तत् द्वेष्टि =

---

**दोनों दासियाँ—हाँ**, राजश्यालक मित्रावसु के मुख से ही अंगूठी के मिलने तक की बात तो हमलोग सुन चुकी हैं ।

**कञ्चुकी—( मन ही मन )** तब तो थोड़ा ही कहना होगा । **( प्रकट में )** जब से उस अंगूठी को देखकर महाराज को यह बात याद आई कि मैंने आश्रम में गुप्तरूप से संभावनीया शकुन्तला के साथ सचमुच ही गान्धर्व विवाह किया था और अज्ञानवश उसका परित्याग कर दिया तब से ही शकुन्तला के परित्याग के लिये महाराज बहुत ही पश्चाताप कर रहे हैं ।

वे मनोहर वस्तुओं को देखना भी पसन्द नहीं करते । पहले की तरह अब प्रजाजनों को प्रतिदिन दर्शन नहीं देते । जागते हुए भी पलंग के किनारों पर करवटें बदल कर रातों को बिताते हैं । जब शिष्टता के कारण अन्तःपुर की स्त्रियों को उचित उत्तर देते हैं तब नामोच्चारण में गलती कर देने पर बहुत देर तक लज्जावश व्याकुल हो जाते हैं ॥ ५ ॥

**विशेष**—प्राचीन समय में कुछ समय तक राजा लोग सभा में बैठते थे, साहित्यिक परिचर्चाएँ, विद्वानों का शास्त्रार्थ आदि चलते रहते थे, प्रजावर्ग राजा का दर्शन करता था । अपनी

सानुमती—पिअं मे। [ प्रियं मे। ]

---

उद्वेजकत्वात चक्षुषापि न पश्यति यथा पुरा=पूर्ववत् प्रकृत्यादिभिः=अमात्य-पुरोहितादिभिः प्रत्यहं=प्रतिदिनम् न सेव्यते=नान्वास्यते, चित्तस्य पारवश्यात् प्रकृति-भिर्मन्त्र्यादिकं राजकार्यं राजा न यथावदनुतिष्ठतीति भावः।

किञ्च उन्निद्रः=उत्क्रान्ता निद्रा यस्य स उन्निद्रः=गतनिद्रः, जाग्रदेव शय्याप्रान्त-विवर्तनैः शय्यायाः तल्पस्य प्रान्तेषु विवर्तनैः=परिलुण्ठनैः=शयनीयपर्यन्तभागपरि-वर्तनादिभिः क्षपाः=रात्रीः विगमयति=अतिवाहयति, न तु अन्तःपुरविदग्धकामिनी सुरतसेवनं कुरुते इत्यर्थः। एवं विवर्तनपरो भट्टिभिः यदा=यस्मिन् काले दाक्षिण्येन=उदारतया अत्यन्तानुरोधेन न तु रागाभिनिवेशेन अन्तःपुरेभ्यः=अन्तःपुरस्थललनाभ्यः उचितां=तत्कालयोग्याम्, अभ्यस्तां, प्रार्थनानुरूपां वा वाचं ददाति=प्रश्नानुरूपं प्रत्युत्तरं ददाति शकुन्तलासक्तमना अपि दाक्षिण्येन स्वाकारं निह्नुवानोऽन्तःपुर-कान्ताभ्यो वाचमुच्चारयतीत्यर्थः परं यदा गोत्रेषु=नामसु—'गोत्रं च नाम्नि च' इत्यमरः स्खलितः=विपर्यस्तः अन्यनामग्रहणावसरे अन्यनामग्रहणं कुर्वन् सन् यदा वसुमती नामोच्चारणावसरे शकुन्तलानामोच्चारयति तदा चिरं=चिरकालाय व्रीडाविलक्षः=व्रीडया=लज्जया विलक्षः=विस्मयान्वितो भवति—'विलक्षो विस्मयान्वितः' इत्यमरः। गूढस्य स्वाशयस्य शकुन्तलागतस्य प्रकाशनादपत्रपान्वितो भवतीत्याशयः। चित्तव्याक्षेप-निमित्तको मुखभावभेदो वैलक्ष्यम्। तथा चोक्तम्—

आत्मनः स्खलिते सम्यग्ज्ञातेऽन्यैर्यस्य जायते।
अपत्रपाति महति स विलक्ष इति स्मृतः॥

अयं भावः—अङ्गुलीयकदर्शनात् शकुन्तला परिणयं स्मृतवतः प्राङ्मतिभ्रमात् कृतं तन्निराकरणं विचिन्त्य वाढमनुतप्यमानस्य परित्यक्तसर्वसुखोपभोगस्य राज्ञो दुष्यन्तस्य दुरवस्थां वर्णयितुं न शक्यते। इति भावः। अत्र पर्यायोक्ति-काव्यलिङ्ग-समुच्चया-लङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं च वृत्तम्॥ ५॥

सानुमती—राज्ञो दुष्यन्तस्य तादृशीमवस्थामवधार्य सानुमती सहर्षं स्वगतं विमृशति—प्रियं मे=अत्यन्तं अभीष्टं मम सम्पन्नम्। एतावता दृढं शकुन्तलायामनु-रागवानित्याशयः।

---

फरियाद सुनाता था, पर राजा का मानसिक धरातल उलझा हुआ था उसे कुछ अच्छा नहीं लगता था। अतः सभा में बैठना, प्रजा को दर्शन देना अच्छा नहीं लगता था। उस समय शकुन्तला राजा के सिर पर नाच रही थी। दिलदिमाग सब कुल शकुन्तलामय हो गया था। रानियों के साथ बातचीत के प्रसंग में उनके नामों को ले लेकर उत्तर देते समय शकुन्तला का नाम ले लेनेपर रानियाँ अवाक् होकर उसके मुख को देखने लगती थीं तब अपनी गलतियों का भान हो जानेपर वह लज्जित हो जाता था और अन्त में कुछ देर के लिए झेंप जाता था। इस प्रकार उस समय उसकी अवस्था प्रमादभरी-सी हो जाती थी।

**सानुमती**—मेरी प्रिय बातें हुई। अर्थात् शकुन्तला के प्रति उत्कट अनुराग के सूचक ये बातें मुझे बहुत ही प्रिय लग रही हैं।

**कञ्चुकी**—अस्मात्प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः।
**उभे**—जुज्जइ। [ **युज्यते।** ]
( नेपथ्ये ) एदु एदु भवं। [ **एतु एतु भवान्** ]
**कञ्चुकी**—( कर्णं दत्त्वा ) अये इत एवाभिवर्तते देवः। स्वकर्मानुष्ठीयताम्।
**उभे**—तह। ( इति निष्क्रान्ते ) [ **तथा।** ]
( ततः प्रविशति पश्चात्तापसदृशवेषो राजा, विदूषकः प्रतीहारी च )
**कंचुकी**—( राजानमवलोक्य ) अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्। एवमुत्सुकोऽपि प्रिय-दर्शनो देवः। तथा हि—

---

**कञ्चुकी**—स्ववचनक्रमे दासीद्वयमाह—अस्मात् = शकुन्तलाविरहकारणात्—प्रभवतः = प्रबलात् प्रवर्द्धमानात् वैमनस्यात् = मनस्तापात्, विषादात् उत्सवः = वसन्तोत्सवः प्रत्याख्यातः = राज्ञा निराकृतः, निषिद्धः।

**उभे**—युज्यते = ईदृशे मनस्तापे देवस्य वसन्तोत्सव प्रत्याख्यानं समुचितमित्यर्थः।
( नेपथ्ये = जवनिकाभ्यन्तरे ) एतु एतु भवान् = आगच्छतु आगच्छतु महाराजः।

**कञ्चुकी**—नेपथ्ये राजागमनं सम्भावयन् कर्णं दत्त्वा = श्रुत्वा सज्जीकृत्याह—अये = अहो, देवः = महाराजः इत एव = अस्यां दिशि, अमुमेव वनोद्देशम् अभिवर्तते = आगच्छति स्वकर्म = आत्मकार्यम् उद्यानरक्षाकर्म अनुष्ठीयताम् = क्रियताम् स्वस्वोचितकार्यं सम्पाद्यताम्।

**उभे**—तथा = आम्, इति उक्त्वा ततो निष्क्रान्ते = निर्गच्छतः।
( ततः = तत्पश्चात् पश्चात्तापस्य = परितापस्य सदृशः = अनुकूलः वेशः = रूपं यस्य स पश्चात्तापसदृशवेशः = पश्चात्तापानुरूपवेषधारी राजा = नृपतिर्दुष्यन्तः, विदूषकः = माधव्यः, प्रतिहारी = द्वारपालिका च प्रविशति = रङ्गमञ्चे दृश्यते )

**कञ्चुकी**—राजानमुपस्थितमवलोक्य कञ्चुकी स्वगतं विमृशति—अहो, सर्वासु = सकलासु अवस्थासु सुखदुःखादिशालिषु अवस्थान्तरेष्वपि विशेषतो दुःखावस्थायाम्

---

**कञ्चुकी**—इस प्रकार शकुन्तला के विरह से बढ़ते हुए उद्वेग और दुःख से ही महाराज ने वसन्तोत्सव मनाने की मनाही कर दी है।

**दोनों दासियाँ**—ठीक बात है। ऐसे दुःख तथा उद्वेग के समय में भला वसन्तोत्सव कैसे संभव हो सकता है।

**( नेपथ्य में )** महाराज ! इधर से पधारिए, इधर से।

**कञ्चुकी—( कान देकर )** महाराज इधर ही आ रहे हैं। तुमलोग अपना-अपना काम करो अर्थात् यहाँ से जल्दी हटो।

**दोनों दासियाँ**—ठीक है **( दोनों रंगमंच से निकल जाती हैं )**
**( तदनन्तर पश्चात्ताप के योग्य वेष धारण किये हुए राजा, विदूषक तथा प्रतिहारी प्रवेश करते हैं )**

**कञ्चुकी—( राजा को देखकर )** वाह, सुन्दर आकृति वालों की सभी अवस्थाओं में मनोहरता विद्यमान रहती है। इस तरह उत्कण्ठित होते हुए भी महाराज देखने में सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। जैसा कि—

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठार्पितं[1]
विभ्रत्काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः।
चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणादात्मनः[2]
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते।। ६ ।।

---

आकृतिविशेषाणाम् = आकृतिविशेषशालिनाम् विशिष्टाकृतीनाम् महात्मनाम्, सुन्दराणाम् रामणीयकं सुन्दरत्वम् भवति। एवं = इत्थम्, उत्सुकः = विरहोत्कण्ठितोऽपि उद्वेगाकुलः खिन्नोऽपि प्रियदर्शनः प्रियं = आकर्षकम् दर्शनं = रूपं यस्यासौ प्रियदर्शनः = नयनलोभनीयाकृतिः, मनोहराकृतिः दर्शनीयो देवः–महाराजः। तथाहि–उदाह्रियते–प्रत्यादिष्टेति।

अन्वयः––प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिः वामप्रकोष्ठार्पितम् एकमेव काञ्चनं वलयं विभ्रत् श्वासोपरक्ताधरः चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनः ( देवः ) क्षीणोऽपि संस्कारोल्लिखितः महामणिरिव आत्मनः तेजो गुणात् न आलक्ष्यते ॥ ६ ॥

पूर्वोक्तमेवार्थमुपपादयति—प्रत्यादिष्टैरिति। प्रत्यादिष्टः = कृशतया निराकृतः विशेषमण्डनानां-हार-केयूर-कुण्डलादीनामलङ्काराणां विधिः = धारणविधिर्येन स प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिः = निरस्तविशेषप्रसाधनविधिः, त्यक्तालङ्कारविशेषो वा। राजरूपलक्षणं यथा—

> अङ्गान्यभूषितान्येव प्रक्षेपाद्यैर्विभूषणैः।
> येन भूषितवद्भान्ति तद्रूपमिति कथ्यते ॥

वामप्रकोष्ठार्पितम्–वामश्चासौ प्रकोष्ठः वामप्रकोष्ठः वामप्रकोष्ठे = सव्यकूर्परमणिबन्धमध्ये अर्पितं = दत्तम् कार्श्यात् श्लथं एकमेव केवलं काञ्चनं = कनकमयं वलयं = हस्तकटकम् विभ्रत् = धारयन् श्वासोपरक्ताधरः—श्वासेन उपरक्तः अधरो यस्य स श्वासोपरक्ताधरः = उष्णदीर्घश्वासपाटलिताधरोष्ठः चिन्तया = शकुन्तलागतया यज्जागरणं रात्रौ अनिद्रा तेन प्रतान्ते = म्लाने नयने = नेत्रे यस्य स चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनः शकुन्तलाविषयकचिन्ताकृतजागरणरक्तलोचनः, देवः = महाराजो दुष्यन्तः क्षीणोऽपि = रात्रिजागरणादिना कृशोऽपि संस्कारोल्लिखितः, संस्कारार्थमुल्लिखितः = उद्घृष्टः = शाणकर्षणकृशः महामणिरिव = मणिराज इव आत्मनः स्वस्य तेजो गुणात् = तेजोबाहुल्यात् नालक्ष्यते = क्षीणो न परिज्ञायते। यथा शाणोल्लिखितो महामणिः पूर्वापेक्षया कृशोऽपि दीप्तिबाहुल्यात् कृश इति न प्रतीयते तथैव महाराजः क्षीणोऽपि स्वतेजो विशेषात् क्षीणो न प्रतीयते।

**अयं भावः**—प्रभाविद्योतितदिगन्तरालस्य महामणेरिव कृशाङ्गयष्टेः महाराजस्य वपुः कार्श्यं तेजोमण्डलाच्छादितं सहसा न केनापि लक्ष्यते। मण्डनविशेषरहितो निशा-

---

विशिष्ट अलंकारों से अपने को सजाने के विधि का परित्याग किए हुए बाई कलाई में पहने जाने वाले एक ही सुवर्णनिर्मित कंकण को धारण किए हुए उच्छ्वासों से अधिक लाल पड़ गये ओठ चिन्ता के कारण रातभर जागते रहने से अत्यन्त लाल नेत्रोंवाले महाराज शाण पर खरादे गये बहुमूल्य रत्न की तरह कृश होने पर भी अपने तेज की महत्ता से दुर्बल नहीं दिखलाई पड़ रहे हैं ॥ ६ ॥

---

पाठा०—१. °र्वामप्रकोष्ठे श्लथं। २. °प्रताम्रनयनस्तेजोगुणैरात्मनः।

**सानुमती**—( राजानं दृष्ट्वा ) ठाणे खु पच्चादेसविमाणिदा वि इमस्स किदे सउंदला किलम्मदि त्ति। [ स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यतीति । ]

**राजा**—( ध्यानमन्दं परिक्रम्य )

**प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम् ।**
**अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं सम्प्रति विबुद्धम् ॥ ७ ॥**

---

जागरणकृशोऽपि देवः पूर्वापेक्षयाऽस्माकं प्रियदर्शन एवं प्रतिभातीति तात्पर्यम् । अत्रो-पमा स्वभावोक्ति-परिकरालङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं च ॥ ६ ॥

**सानुमती**—प्रच्छन्नविग्रहा दुष्यन्तं पश्यन्ती सानुमती तदाकृते लोकोत्तरत्व-मवेक्ष्य तं श्लाघते—प्रत्यादेशविमानितापि = प्रत्याख्यानेनापमानितापि शकुन्तला अस्य = राजर्षेः दुष्यन्तस्य कृते,–दुष्यन्तार्थं क्लाम्यति = विषादमनुभवति तप्यंत इति स्थाने खलु = अतिसुन्दरत्वात्, अस्यापि तद्विरहे विधुरत्वाच्च युक्ततरमेवेतदिति भावः। 'युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' इत्यमरः ।

**राजा**—( ध्यानमन्दं = ध्यानेन मन्दं ध्यानमन्दम्, शकुन्तला चिन्तया मन्दं मन्दम्, शनैः शनैः परिक्रम्य = किञ्चिच्चलित्वा ) प्रतिबुद्धप्रियावृत्तान्तो राजा दुष्यन्तः तन्निरा-करणपश्चात्तापेन तप्यमानः निजहृदयमधिक्षिपति—**प्रथममिति** ।

**अन्वयः**—प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तमिदं हतहृदयं—सम्प्रति अनुशयदुःखाय विबुद्धम् ॥ ७ ॥

अङ्गुलीयकदर्शनेन व्यपगतशापप्रभावः प्रबुद्धशकुन्तलावृत्तान्तो राजा तदानीं स्वं हृदयमधिक्षिपति—**प्रथममिति** । सारङ्गस्य ईक्षणे इवेक्षणे यस्याः सा तया सारङ्गेक्ष्या

---

**सानुमती**—( **राजा को देखकर** ) तिरस्कार के द्वारा अपमानित की गई भी शकुन्तला जो इस राजा के लिए दुःखित रहती है, वह उचित ही है ।

**विशेष**—विशेष मण्डनों का तात्पर्य उन प्रसाधनों से है. जिन्हें मंगल के लिए धारण करना आवश्यक नहीं है । राजा के लिए बाँयी कलाई में कंगन पहनना अनिवार्य है । अतः उसे पहन कर अन्य आभूषणों का परित्याग कर दिया है । विशेष मण्डन के विना भी जिसकी शोभा नहीं घटती वह गुण रूप कहलाता है—

अङ्गान्यभूषितान्येव प्रक्षेपाद्यैर्विभूषणैः । येन भूषितवद्भान्ति तद्रूपमिह कथ्यते ॥

विरही होने पर साँसें गर्म हो जाती हैं जिससे निचले होठ की ललाई कम हो जाती है, फिर भी उससे शोभा कम नही होती । जागने से आँखे थक जाती हैं जिससे किनारे में वह लाल हो जाती हैं उससे भी शोभा बढ़ जाती है ।

हीरा आदि रत्न सान पर घिस जाने पर छोटे हो जाते हैं, पर उनकी सुन्दरता तथा मूल्यवत्ता बढ़ जाती है, क्षीणता छिप जाती है । अतः राजा के क्षीण होनेपर भी उनकी सुन्दरता बढ़ गई है । शरीर से निकले हुए तेज के कारण शारीरिक दुर्बलता प्रतीत नहीं होती ।

यहाँ चिन्ता, जागरण, क्षीण तथा प्रत्यादिष्ट आदि शब्दों से काम की दशाएँ सूचित होती हैं । माधुर्यगुण के कारण आकर्षण रहता है—'तन्माधुर्यं यत्र गात्रदृष्ट्याद्येः स्पृहणीयता ।'

**राजा**—( **ध्यान में मग्न शनैः शनैः चारों ओर घूमकर** ) पहले मृगलोचनी प्रिया के द्वारा जगाया जाता हुआ भी सुप्त यह अभागा हृदय अब पश्चात्ताप के दुःख के लिए जागा है ॥ ७ ॥

**विशेष**—पहले बहुत कहने पर भी महर्षि दुर्वासा के शाप के वशीभूत राजा दुष्यन्त ने

**सानुमती**—णं ईदिसाणि तवस्सिणीए भाअहेआणि। [ **नन्वीदृशानि तपस्विन्या भागधेयानि ।** ]

**विदूषकः**—( अपवार्य ) लंघिदो एसो भूओ वि सउंदलावाहिणा। ण आणे कहं चिकिच्छिदव्वो भविस्सदि त्ति। [ **लङ्घित एष भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिना। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति ।** ]

**कञ्चुकी**—( उपगम्य ) जयतु जयतु देवः। महाराज ! प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवन-भूमयः। यथाकाममध्यास्तां विनोदस्थानानि महाराजः।

---

मृगलोचनया अत्यन्तहृद्यया प्रियया = शकुन्तलया प्रतिबोध्यमानमपि = बहुशो ज्ञाप्य-मानमपि प्रथमं सुप्तमिव = मोहमुपगतमिव, जडमिव, इदं = मदीयं हतहृदयं = दग्धहृदयम् अस्पृष्टसुप्तगन्धं दुष्टहृदयम् सम्प्रति = अधुना प्रियायामसुलभदर्शनायामपि प्रियावियोगे जाते तु अनुशयदुःखाय = पश्चात्तापमनुभवितुं मह्यं क्लेशदातुमेव विबुद्धं = जागरित इव।

**अयं भावः**—हे हृदयहतक ! यदा मुनिकुमारकाभ्यां तापस्या च सह मे प्राण-प्रिया शकुन्तला स्वयमुपस्थिताऽऽसीत् तदा मोहान्धेन त्वया तां मिथ्यावादिनीं निश्चित्य प्रत्यादेशपारुष्यं निराकरणं कृतम् प्रदर्शितम्। तदानीं त्वया सुप्तं संप्रति केवलं मह्यं दुःखमेव दातुं जागर्षीति भावः। अत्र विभावना-विशेषोक्ति-अनुप्रासोपमा अलङ्कारा, आर्या वृत्तञ्च ॥ ७ ॥

**सानुमती**—राजोक्तिमाकर्ण्य सानुमती स्वगतं विचारयति—ननु = निश्चयेन ईदृशानि = अलौकिकानि तपस्विन्याः = वराकायाः, अनुकम्पार्हायाः, शकुन्तलायाः भाग्यधेयानि = भाग्यानि 'तपस्वी चानुकम्पार्हः' इत्यमरः। तस्याः भाग्यविपर्ययादेवास्य राज्ञः स्मृतिभ्रंशः तदानीं जात इत्याशयः।

**विदूषकः**—शकुन्तलाविषयेऽनुतप्यमानं राजानं दृष्ट्वा माधव्यो ब्रवीति—एषः = अयं दुष्यन्तः पुनः = भूयः अपि शाकुन्तलव्याधिना=शाकुन्तला एव व्याधिः उद्वेजकत्वात् स्मृतिभ्रंशकत्वाच्च रोगः तेन लङ्घितः = आक्रान्तः ग्रस्तः कथं = केन प्रकारेण चिकित्सि-तव्यः=उपचारणीय, प्रतिकार्यः, साध्यरोगः नीरोगः भविष्यति इति न जाने शकुन्तलाया अलभ्यत्वात्।

**कञ्चुकी**—उपसृत्य = समीपमागत्य जयतु जयतु देवः=सर्वोत्कर्षेण वर्ततां महाराजः हे महाराज ! प्रत्यवेक्षिताः = सम्यगवलोकिताः संशोधिताः प्रमदवनस्य भूमयः = अन्तः-

---

शकुन्तला की एक भी बात न मानी, उसे वापस कर दिया। किन्तु अंगूठी देखकर स्मरण होने पर मोह भंग हो जाने से अब दुष्यन्त का कलेजा शकुन्तला के निमित्त तड़प रहा है। याद आने से अपने किये हुए अपकर्म पर पछतावा होता है।

**सानुमती**—सचमुच बेचारी शकुन्तला का भाग्य ही ऐसा है।

**विदूषक—( हाथ की आँड़ में मुँह करके )** यह पुनः शकुन्तला के ज्वर से आक्रान्त हो गये, न जाने अब इनकी दवा कैसे होगी।

**कञ्चुकी—( पास में जाकर )** महाराज विजयी बनें, विजयी बनें, महाराज ! प्रमदवन की भूमियाँ सावधानी से देख ली गयी हैं। अब महाराज अपनी इच्छा के अनुसार आमोद-प्रमोद के स्थानों पर चल सकते हैं।

**राजा**—वेत्रवति ! मद्वचनाद[1]मात्यमार्यपिशुनं ब्रूहि । [2]चिरप्रबोधनान्न संभावितमस्माभिरद्य धर्मासनमध्यासितुम् । यत्प्रत्यवेक्षितं पौरकार्यमार्येण तत्पत्रमारोप्य [3]दीयतामिति ।

**प्रतिहारी**—जं देवो आणवेदि । [ यद्देव आज्ञापयति । ] ( इति निष्क्रान्ता । )

**राजा**—[4]वातायन त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु ।

---

पुरविहारारामभूमयः ते ते प्रदेशाः तदेव 'प्रमदवनमन्तःपुरोचितम्' इत्यमरः । देवः = महाराजः यथाकामं—यथेच्छम् विनोदस्थानानि = क्रीडास्थलीः अध्यास्ताम् = अधितिष्ठतु । 'विज्ञेयं प्रमदवनं नृपस्तु यस्मिन् शुद्धान्तैः सह रमते पुरोपकण्ठम्' इति हलायुधः । कारयेद् वनशोधनमादौ ।

**राजा**—नृपः कथयति—वेत्रवति ! = द्वारपालिके ! मम वचनात् = मद्वाक्यात् अमात्यं = मन्त्रिणम् आर्यपिशुनं पिशुनाख्यं महामंत्रिणं ब्रूहि = कथय चिरप्रबोधात् = चिरेण जागरणात् धर्मासनं = सिंहासनं विचारासनम्, अध्यासितुं = अधिष्ठातुं न सम्भावितमस्माभिः = न सम्भाव्यतेऽलङ्कर्तुमस्माभिः यत् = यत्तु पौराणां नागरिकाणां कार्यं आर्येण भवता प्रत्यवेक्षितं = दृष्टम् तत् सर्वं कार्यं, पत्रमारोप्य = पत्रारूढं कृत्वा पत्रे लिखित्वा दीयताम् = प्रेष्यताम् ।

**प्रतिहारी**—यद्देवः = यथा महाराजः आज्ञापयति तथा क्रियते । इति = एवम् उक्त्वा ततः निष्क्रान्ता = रङ्गान्निर्गता ।

**राजा**—नृपो वदति—वातायन ! त्वमपि स्वं = स्वकीयं नियोगं = कृत्यम्, कार्यम्, अशून्यं = पूर्णं कुरु = विधेहि ।

---

**विशेष**—प्राचीनकाल में भी आज के ही समान जब राजा किसी स्थान पर पधारने की अभिलाषा करते थे तो पहले सावधानी से उस स्थान की निगरानी कर ली जाती थी । इस पूर्व निरीक्षण के कारण किसी प्रकार शत्रुओं को अवसर न मिल पाता था ।

**प्रमदवन**—यह उद्यान रनिवास के पास ही हुआ करता था । इसमें सर्वसाधारण को जाने की अनुमति न थी । केवल अन्तःपुर की सुन्दरियाँ इसमें विहार किया करती थीं । राजा भी जब कभी भी इसमें आकर आनन्द लेता रहता था । यह सर्वथा सुरक्षित स्थान था ।

**राजा**—हे द्वारपालिके ! मेरी तरफ से अमात्य पिशुन से कहो—अर्थात् यह मेरा सन्देश कहना कि रात में देरतक जागते रहने के कारण आज धर्मासन पर बैठना मेरे लिए संभव नहीं है । आपने जो पुरवासियों का कार्य देख लिया हो, उसे पत्र पर चढ़ाकर मेरे पास भेज दें ।

**विशेष**—राजा की अनुपस्थिति में मन्त्री राजकार्य देखते थे और उसकी रिपोर्ट सूचनार्थ राजा के पास भेज देते थे, पर देखने के पहले राजा की आज्ञा आवश्यक थी । रात में देर तक जागते रहने के कारण कोई भी दिमागी कार्य करना संभव नहीं होता । अतः राजा ने यह सन्देश भेजा था । मन्त्री प्रजाजनों के विवाद को सुनकर लिखता था और उस पर राजा की सहायता से निर्णय देता था । कभी-कभी राजा अकेले भी यह निर्णय-कार्य करता था ।

**प्रतिहारी**—महाराज की जैसी आज्ञा ( **ऐसा कहकर बाहर जाता है** )

**राजा**—वातायन ! तुम भी जाकर अपना कार्य करो ।

---

पाठा०—१. 'दमात्यपिशुनं । २. अद्य चिरप्रबोधनान्न ।
३. प्रस्थाप्यतामिति । ४. पार्वतायन् ।

कञ्चुकी—[1]यदाज्ञापयति देवः ! ( इति निष्क्रान्तः )।

विदूषकः—किदं भवदा णिम्मच्छिअं। संपदं सिसिरातवच्छेअरमणीए इमस्सि पमदवणुद्देसे अत्ताणं रमइस्ससि। [ कृतं भवता निर्मक्षिकम्। सांप्रतं शिशिरातपच्छेदरमणीयेऽस्मिन्प्रमदवनोद्देश आत्मानं रमयिष्यसि। ]

राजा—वयस्य ! रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था इति यदुच्यते [2]तदव्यभिचारि वचः। कुतः ?

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः॥ ८॥

---

कञ्चुकी—देवः = महाराजः यत् आज्ञापयति = आदिशति तथा क्रियते इति = एवमुक्त्वा निष्क्रान्तः = रङ्गमञ्चाद्बहिर्गतः।

विदूषकः—प्रतिहारिकञ्चुकिनोर्निष्क्रमणे विदूषको वदति–भवता = त्वया निर्मक्षिकं = मक्षिकाणामभावो, निर्जनम् एकान्तः, इतरे जना भवता अपसारिताः सम्प्रति = इदानीम् अस्मिन् शिशिरातपच्छेदरमणीये—शिशिरः शीतः आतपः = ग्रीष्म इति शिशिरातपौ तयोः छेदाः = अन्तरालमिति शिशिरातपच्छेदः तस्मिन् रमणीये = पुण्यपल्लवोद्गममनोहरे प्रमदवनोदेशे = आनन्दोद्यानस्थले रमयिष्यसि = विनोदयिष्यसि, पुष्पाणि पल्लवानि च वीक्ष्य सुखितो भविष्यसीति भावः।

राजा—नृपो वसन्तस्याविर्भावेन प्रबुद्धमदनतापो वदति—रन्ध्रोपनिपातिनः रन्ध्रे = छिद्रे उपनिपतन्ति तच्छीला रन्ध्रोपनिपातिनः = छिद्रोपसर्पिणः अनर्थाः = उपद्रवा इति = इदं यत् उच्यते=कथ्यते वचः=वचनम् अव्यभिचारि = सत्यमेव, छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति। इति नीतिः। कुतः = यतः।

अन्वयः—( सखे ! पश्य ) मुनिसुता प्रणयस्मृतिरोधिना तमसा मम इदं मनः मुक्तं च प्रहरिष्यता मनसिजेन धनुषि चूतशरः निवेशितश्च॥ ८॥

'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ती'ति स्ववृत्तान्तेन सत्यतां समर्थयन् राजा प्राह—मुनिसुतेति। हे सखे माधव्य ! पश्य मुनिसुतायां = शकुन्तलायां यः प्रणयः = अभिलाषः तस्य या स्मृतिः स्मरणं तां रुणद्धि तच्छीलं तेन मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना = शकुन्तलास्नेह-

---

कन्चुकी—महाराज की जैसी आज्ञा। ( यह कहकर बाहर निकल जाता है )

विदूषक—आपने इस समय पूर्ण एकान्त कर दिया। अब शीत-ठण्ड एवं गर्मी के अभाव के कारण इस मनोहर प्रमदवन में अपने को रमाइए।

राजा—मित्र ! 'क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम्, छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति' 'रन्ध्रोयानिपातितोऽनर्थाः' अर्थात् विपत्तियाँ विपत्तियों में आती हैं। यह जो कहावत है वह सर्वथा सत्य है। क्योंकि—

मुनि की पुत्री शकुन्तला के प्रति प्रणय की याद के अवरोधक = बाधक मोह ने = अज्ञान ने मेरे मन को अब छोड़ दिया है तथा प्रहार करने वाले कामदेव ने अपने धनुष पर आम्रमञ्जरी रूप वाण को भी चढ़ा लिया है॥ ८॥

विशेष—राजा ने दरबार में अपने पास आने पर अपनी परिणीता पत्नी के रूप में न मान कर मुनि की कन्या-मात्र माना था। उस तरफ सङ्केत के लिए यहाँ मुनिसुता पद है। स्मरण आने और कामदेव के बाण चढ़ाने की घटनाएँ एक साथ हुई हैं यह बताने के लिए दोष प्रयुक्त है।

---

पाठा०—१. तथा। २. तदव्यभिन्नारि। पश्य-।

**विदूषकः**—चिट्ठ दाव। इमिण दंडकट्ठेण कंदप्पवाहिं णासइस्सं। [ तिष्ठ तावत्। अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधिं नाशयिष्यामि। ] ( इति दण्डकाष्ठमुद्यम्य चूताङ्कुरं पातयितुमिच्छति )।

**राजा**—( सस्मितम् ) भवतु दृष्टं ब्रह्मवर्चसम्। सखे! क्वोपविष्टः प्रियायाः किंचिदनुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि।

---

स्मृतिविलोपिना तमसा = अज्ञानेन यदेव ममेदं मनः चित्तं मुक्तं त्यक्तम् च पुनः तदेव प्रहरिष्यता = प्रहर्तुमुद्यतेन मनसिजेन = कामेन धनुषि = स्वकार्मुके चूतशरः = आम्रमञ्जरी पञ्चाभ्यधिकः बाणः निवेशितः = नियोजितश्च, मम प्रियावियोगानुस्मरणं वसन्तकालश्च सममेव प्रादुरभूत्।

**अयम्भावः**—सखे माधव्य! यावदहं शकुन्तला विवादवृत्तान्तं नास्मार्षं तावत् सुखित एवासम्। परमङ्गुलीयकदर्शनानन्तरं तत्प्रतिरोधेन मोहेन मुक्तं मामकीनं मनः तां स्मारं स्मारं समुत्कण्ठते। अपि च अकारणवैरिणा कन्दर्पेण स्वकीयपञ्चबाणाभ्यधिकः षष्ठ आम्रमञ्जरी रूपात्मको बाणः संयोजित अतः वसन्ताविर्भावात् प्रबुद्धमदनसन्तापोऽहं, पूर्वापेक्षया सविशेषं क्लेशमनुभवामि अत्राप्रस्तुतप्रशंसा-समुच्चय-काव्यलिङ्गालङ्काराः, द्रुतविलम्बितं वृत्तं च॥ ९॥

**विदूषकः**—अथ माधव्यो प्रौढिमालम्ब्याह—तिष्ठ तावत् = सन्तापं मा कृथाः दण्डकाष्ठेन = अनेन लगुडेन कन्दर्पं एव = काम एव व्याधिः रोगः यस्मात् तं कन्दर्पव्याधिं = कामपीडाम्, आम्रमञ्जरीमेव नाशयिष्यामि = पातयिष्यामि ( इति = एवमुक्त्वा, ततः दण्डकाष्ठं = लगुडम् उद्यम्य = उत्थाप्य चूताङ्कुरं = आम्रपल्लवम् पातयितुमिच्छति = कामयते।

**राजा**—( सस्मितं = इषद्धास्ययुक्तम् ) भवतु = अस्तु कन्दर्पव्याधिनाशनकथया दृष्टं = अवलोकितम्, ब्रह्मवर्चसं = ब्राह्मं तेजः सर्वानर्थपरिहारसामर्थ्यं तवास्त्येवेति भावः। सन्तापशान्त्युपायं पृच्छति—सखे = मित्र! क्व = कुत्र उपविष्टः = स्थितः सन् प्रियायाः = दयितायाः शकुन्तलाया किञ्चित् = ईषत् अनुकारिणीषु = सादृश्यशालिनीषु लतासु = वल्लरीषु दृष्टिः = लोचनं चक्षुःविलोभयामि = नन्दयामि विरहिणां हि प्रियजनसदृश्यानुभवादयो विनोदा भवन्ति।

---

वियोग तथा वसन्त दोनों विपत्तियाँ हैं—वियोग विपत्ति के रहते वसन्तविपत्ति आ पहुँची। यहाँ शकुन्तला आलम्बन विभाव और वसन्त उद्दीपन विभाव हैं। अंगूठी देखते ही दुष्यन्त का मोह दूर हो गया। उसे शकुन्तला के साथ की गई एक-एक बातें याद आने लगीं। अतः उसका मन वियोगाग्नि में झुलसने लगा। इसी समय वसन्त ऋतु का आगमन हो आया। आम्रमञ्जरी लोगों के मन को उत्कठित करने लगी। यही है काम का दुष्यन्त के ऊपर धनुप चढ़ाना।

**विदूषक**—जरा ठहरिए, इस दण्डे से काम के बाण = आम्रमञ्जरी को विनष्ट कर देता हूँ **( ऐसा कहकर डण्डे से आम्रमञ्जरी को गिरा देना चाहता है )**

**राजा**—**( मुस्कराकर )** जाने दो, बस करो, देख लिया आपका ब्रह्मतेज। मित्र! कहाँ बैठकर प्रिया का कुछ अनुकरण करनेवाली लताओं पर आँख को लगाकर आनन्दित करूँ?

**विदूषकः**—णं आसण्णपरिआरिआ चदुरिआ भवदा संदिट्ठा। माहवीमंडवे इमं वेलं अदिवाहिस्सं। तहि मे चित्तफलअगदं सहत्थलिहिदं तत्तहोदीए सउंदलाये पडिकिदिं आणेहि त्ति। [ **नन्वासन्नपरिचारिका चतुरिका भवता संदिष्टा। माधवीमण्डप इमां वेलामतिवाहयिष्ये। तत्र मे चित्रफलकगतां स्वहस्तलिखितां तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिमानयेति।** ]

**राजा**—ईदृशं हृदयविनोदनस्थानम्। तत्तमेव मार्गमादेशय।

**विदूषकः**—इदो इदो भवं। [ **इत इतो भवान्।** ] ( **उभौ परिक्रामतः। सानुमत्यनुगच्छति।** )

**विदूषकः**—एसो मणिसिलापट्टअसणाहो माहवीमंडवो उवहाररमणिज्जदाए णिस्संसअं साअदेण विअ णो पडिच्छदि। ता पविसिअ णिसोददु भवं। [ **एष**

---

**विदूषकः**—ननु = विस्मृतं किम् ? आसन्नपरिचारिका— आसन्ना = अन्तपुरकार्येष्व भ्यन्तरा परिचारिका = चेटी चतुरिका = चतुरिकानाम्नी भवता = त्वया सन्दिष्टा = आज्ञप्ता माधवीलतामण्डपे = वासन्तीलतामण्डपे इमां वेलां = मध्याह्नसमयं अतिवाहयिष्यामि = गमयिष्ये, नेष्यामि। तत्र = तस्मिन् स्थाने मे = मह्यम्, चित्रफलकगतां = चित्रलेखनपटे वर्तमानां स्वहस्तलिखितां = निजकरकमलाङ्किताम् तत्रभवत्या = पूज्यायाः शकुन्तलाया प्रतिकृतिं = चित्रम् आनयेति चतुरिकां भवता आदिष्टा, अतः तत्रैव भवता गन्तव्यमितिभावः। मातृगुप्ताचार्यैरुक्तं परिचारिकालक्षणं यथा—

> संवाहने च गान्धे च तथा चैव प्रसाधने।
> तथाभरणसंयोगमाल्यसंग्रथनेषु च ॥
> विज्ञेया नामतः सा तु नृपतेः परिचारिकाः।

**राजा**—ईदृशं = एतादृशं रमणीयं सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनोमयसम्पादकं हृदयविनोदस्थानम् = मनोविनोददायकं प्रदेशं मम भविष्यतीति भावः तत्तदा तमेव मार्गं = तमेव पन्थानम् ( यो माधवीलतामण्डपं याति ) आदेशय = वद।

**विदूषकः**—इत इतो भवान् = अनेन पथा, भवान् = त्वं आगच्छतु। ( उभौ = द्वौ अपि परिक्रामतः = मण्डलाकृति गच्छतः। सानुमती = अप्सरा, अनुगच्छति = अनुसरति )।

**विदूषकः**—एषः = अयं मणेः = रत्नस्य शिलायाः = प्रस्तरस्य पट्टकेन = खण्डकेन सनाथः युक्त इति मणिशिलापट्टकसनाथः = मणिशिलाफलकशोभितः उपहारेण = पुष्पोपायनेन रमणीयतया=कमनीयतया इति पुष्पोपायनरमणीयता = पुष्पाद्युपहाररमणीयतया

---

**विदूषक**—अरे, भूल गये समीपवर्तिनी सेविका चतुरिका को आपने आदेश दिया है कि माधवी लता के मण्डप में इस बेला को बिताऊँगा। वहीं मेरे द्वारा अपने हाथ से चित्रपट पर अङ्कित आदरणीया शकुन्तला का चित्र लाओ।

**राजा**—मन बहलाने की ऐसी जगह है तो उसी का मार्ग बताओ।

**विदूषक**—महाराज ! आप इधर आवें, इधर से आवें। ( **दोनों घूमते हैं। सानुमती प्रच्छन्नरूप से उनके पीछे-पीछे** जाती है )

**विदूषक**—यह मणिमय शिलापट्ट से अलंकृत माधवीलता का मण्डप फूलों के **उपहार से**

मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डप उपहाररमणीयतया निःसंशयं स्वागतेनेव नौ प्रतीच्छति। तत्प्रविश्य निषीदतु भवान्। ] ( उभौ प्रवेशं कृत्वोपविष्टौ। )

सानुमती—लतासंस्सिदा देक्खिस्सं दाव सहीए पडिकिदिं। तदो से भत्तुणो बहुमुहं अणुराअं णिवेदइस्सं। [ लतासंश्रिता द्रक्ष्यामि तावत्सख्याः प्रतिकृतिम्। ततोऽस्या भर्तुर्बहुमुखमनुराग निवेदयिष्यामि। ( इति तथा कृत्वा स्थिता। )

राजा—सखे, सर्वमिदानी स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमवृत्तान्तम्। कथितवानस्मि भवते च। स भवान् [२]प्रत्यादेशवेलायां[३]मत्समीपगतो नासीत्। पूर्वमपि न त्वया कदाचित्संकीर्तितं तत्रभवत्या नाम। कच्चिदहमिव विस्मृतवानसि त्वम्?

---

निसर्गमारुतेन=सहजेन मन्दमन्दमारुतेन च निःसंशयं=ध्रुवं स्वागतेन इव=शुभागमनमसौ समुच्चरन्निव प्रतीच्छति=सत्कारमाचरन् त्वां=भवन्तं नौ=आवां वा प्रतीच्छति=प्रत्युद्गमनेन सम्भावयतीव। तत्=तस्मात् प्रविश्य=अन्तर्गत्वा भवान्=त्वं निषीदतु=उपविशतु। ( उभौ=द्वावपि प्रवेशं कृत्वा=अन्तः प्रविश्य उपविष्टौ=निषण्णौ )।

सानुमती—लतां=वल्लरीं संश्रिता=आश्रिताऽपि लताश्रिता, लतालीना भूत्वा तावत् सख्याः=आल्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिं=चित्रम् द्रक्ष्यामि=विलोकयिष्यामि ततः=तदनन्तरम् सख्याः=शकुन्तलायाः भर्तुः=पत्युः बहुमुखं=बहूनि मुखानि यस्य तत् बहुमुखं=अनेकप्रकारकम् अनुरागं=प्रेमाणं निवेदयिष्यामि=वदिष्यामि ( इति=एवं विचार्य ततो वा तथा=पूर्वोक्तप्रकारेण कृत्वा=विधाय लतामाश्रित्य स्थिता=स्थिरीभूता )।

राजा—तत्रा मनोविनोदायोपविष्टो राजा शकुन्तलावृत्तान्तं स्मरन्नाह—सखे=मित्र माधव्य! इदानीं=साम्प्रतं शकुन्तलायाः=मुनिदुहितुः प्रथमवृत्तान्तं=आश्रमे परिचयादिकं प्रारम्भिकप्रेमवृत्तम्, स्मरामि=स्मृतिपथमानयामि। भवते=तुभ्यमपि मित्राय च कथितवानस्मि। स भवान्=कथनेन ज्ञातवृत्तान्तः त्वं प्रत्यादेशवेलायां=निराकृत्यवसरे मत्समीपं गतः मम समीपे न आसीत् मया हंसपदिका समीपे प्रेषित आसीत्। पूर्वमपि =प्रागपि त्वया=मित्रेण कदाचित्=कदापि तत्रभवत्याः=मान्यायाः शकुन्तलाया नाम नामधेयादिकं न संकीर्तितम्=नहि वर्णितम्। क्वचित्=किम् अहमिव=यथा अहं तथैव त्वमपि विस्मृतवानसि? यदि भवान् प्रत्यादेशवेलायां मत्समोपेऽभविष्यत् तर्हि मामवश्यं प्रबोधयिष्यत्। ततः प्रत्यादेशोऽपि नाभविष्यत्। इति भावः।

---

मनोहर होने के कारण मानो स्वागत करता हुआ हमलोगों को बुला रहा है तो इसमें प्रवेश कर आप बैठें ( दोनों प्रवेश करके बैठ गये )

सानुमती—सम्प्रति लता में तिरोहित होकर सखी शकुन्तला के चित्र को देखूँगी, पुनः उसके पति के अनेक प्रकार से प्रगट हुए अनुराग को उसे बतलाऊँगी। ( ऐसा कहकर लता में तिरोहित होकर खड़ी होती है )

राजा—मित्र! अब शकुन्तला के विषय की समूची पहली घटनाएँ याद हो रहीं हैं और आप से तो उसी समय कहा भी था। उसके परित्याग के समय आप मेरे पास नहीं थे, किन्तु इसके पहले भी कभी आपने उन आदरणीया शकुन्तला का नाम नहीं लिया। शायद हमारी तरह आप भी भूल गये थे?

---

पाठा०—१. प्रथमदर्शनम्। २. प्रत्याख्यानकाले। ३. मत्समीपगत एव नासीद्।

**विदूषकः**—ण विसुमरामि । किं तु सव्वं कहिअ अवसाणे उण तुए परिहास-विअप्पओ एसो ण भूदत्थो त्ति आचक्खिदं । मए वि मिप्पिडबुद्धिणा तह एव्व गहीदं । अहवा भविदव्वदा खु बलवदी । [ न विस्मरामि । किंतु सर्वं कथयित्वाऽवसाने पुनस्त्वया परिहासविजल्प एष न भूतार्थं इत्याख्यातम् । मयापि मृत्पिण्डबुद्धिना तथैव गृहीतम् । अथवा भवितव्यता खलु बलवती । ]

**सानुमती**—एव्वं एदं । [ एवमेवैतत् । ]

**राजा**—( ध्यात्वा ) सखे [1]त्रायस्व माम् ।

**विदूषकः**—भोः किं एदं ? अणुववण्णं खु ईदिसं तुइ । कदा वि सप्पुरिसा सोअवत्तव्वा ण होंति । णं पवादे वि णिक्कंपा गिरीओ । [ भोः किमेतत् ? अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि । कदापि सत्पुरुषाः शोकवक्तव्या न भवन्ति । ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः । ]

---

**विदूषकः**—न विस्मरामि, किन्तु सर्वं = सकलं कथयित्वा अवसाने वाक्यशेषे, अन्ये पुनः त्वया परिहासविजल्पितं एषः न भूतार्थं इत्याख्यातम् = परिहासविजल्पितं सखे ! परमार्थेन न गृह्यतां वचः—इत्यादिनोक्तम् । मृत्पिण्डबुद्धिना = मृत्पिण्डमिव बुद्धिर्यस्य स तेन मृत्पिण्डबुद्धिना = मृत्पिण्डमतिना मयापि जडबुद्धित्वात् = कपटानभिज्ञेन यथोक्त-ग्राहिणा ब्राह्मणेन तथैव = तद्रूपमेव, सत्यमेव, गृहीतं = स्वीकृतम्, ज्ञातम् । अथवा = यद्वा किमनया पर्यालोचनया भवितव्यता = भावानामवश्यं भाविता बलवती = प्रबला खलु भवति । अतोऽत्र भवितव्यतैव हेतुरित्यर्थः ।

**सानुमती**—एवं = सत्यमेव एतत् पूर्वोक्तं भवितव्यता निबन्धनमेवेति भावः ।

**राजा**—शकुन्तलां चिन्तयन् कामसन्तापमसहमानो माधव्यमाह—सखे = मित्र ! मां त्रायस्व = रक्ष—भवानेव दुःखपथस्य मे शरणमित्यर्थः ।

**विदूषकः**—राजानमाश्वासयन् माधव्यो ब्रूते—भोः = अहो । किम् = अनौचित्यमेतत् पूर्वोक्ता प्रलापावस्था अनुपपन्नं = अयुक्तम् खलु त्वयि = भवति धैर्यादिगुणशालिनि राजनि ईदृशं = एतत् प्रकारकम् । कदापि = कस्मिन्नपि काले सत्पुरुषाः = श्रेष्ठा जनाः शोकेन वक्तव्या शोकवक्तव्या = परोपदेशयोग्याः निन्द्याः न भवन्ति = न जायन्ते । ननु = निश्चयेन प्रवाते = अतिवाते झंझावातेऽपि अपि गिरयः = पर्वताः निष्कम्पाः = अचलाः एव तिष्ठन्ति । अतो विरहदशायामपि त्वं निश्चलो भवेतिभावः ।

---

**विदूषक**—मैं भूला नहीं हूँ, किन्तु सब कुछ कहकर अन्त में पुनः आपने कहा था कि ये सब बातें हंसी की हैं, सत्य नहीं हैं । अत्यन्त मोटी बुद्धिवाले मैंने भी वैसा ही समझ लिया था । अथवा यों कहिए कि होनी अवश्य होकर ही रहती है । अतः जो होना था, वह हो गया ।

**सानुमती**—यह ऐसा ही है ।

**राजा**—( ध्यानकर ) मित्र ! मुझे बचाओ ।

**विदूषक**—अभी यह क्या ? तुम्हारे विषय में यह सब निश्चय ही अनुचित है । सत्पात्र कभी कभी भी शोकसन्तप्त नहीं होते । पर्वत भी आंधी में निश्चय ही अडिग रहते हैं ?

---

पाठा०—१. परित्रायस्व ।

राजा—वयस्य निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि । सा हि—

इतः [1]प्रत्यादेशात् स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
मुहुस्तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे ।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत्सविषमिव शल्यं दहति माम् ॥ ९ ॥

---

**राजा**—नृपो दुष्यन्तः माधव्यं स्वस्य शोकस्य प्राबल्यमाह—**वयस्य !**=हे मित्र ! निराकरणेन विक्लवा निराकरणविक्लवास्तस्या निराकरणविक्लवायाः= प्रत्याख्यानव्याकुलायाः प्रियायाः=दयितायाः शकुन्तलाया समवस्थां=दशाम् अनुस्मृत्य=ध्यात्वा बलवत्=अत्यर्थम् अशरणोऽस्मि=परवशोऽस्मि । उक्तमर्थं वा वृणोति-सा हि=यतः ।

**अन्वयः**—इतः प्रत्यादेशात् ( हि सा ) स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता गुरुसमे गुरुशिष्ये तिष्ठ इत्युच्चैः वदति स्थिता वाष्पप्रसरकलुषां दृष्टिं पुनः क्रूरे मयि अर्पितवती इति ; यत् तत् सविषं शल्यमिव मां दहति ॥ ९ ॥

प्रमदवने माधव्येन सह समुपविष्टो राजा मोहान्निराकृतायाः शकुन्तलायाः दशां संस्मृत्य शोकसन्तप्तः तात्कालिकीं निजां मनोव्यथां माधव्यं प्रति प्रकाशते—**इत** इति। इतः=अस्मात् जनात् मत्सकाशात्, अस्मात् प्रवेशात् राजभवनाद्वा प्रत्यादेशात्= निराकरणात् ( हि सा ) स्वजनं=स्वकीयं बन्धुजनं शार्ङ्गरवादिकम् अनुगन्तुं=अनुयातुं व्यवसिता=उद्युक्ता भर्तृपरित्यागे स्वजनगमनानुव्यवसायो युक्त एव । गुरुणा=पित्रा कण्वेन समे गुरुसमे=गुरुतुल्ये-गुरुशिष्ये=गुरोरन्तेवासिनि शार्ङ्गरवे तिष्ठ विरम अनुगमनात् इत्युच्चैः=गम्भीरं वदति=कथयति सति स्थिता=अनुगमनाद्विरता पुनः=भूयः वाष्पप्रसरकलुषां वाष्पाणाम्=अश्रूणां प्रसरेण=प्रवृत्या कलुषामाविलाम् दृष्टिं=चक्षुः क्रूरे=निर्दये मयि=निर्घृणहृदये दुष्यन्ते अर्पितवती=निहितवती इति सर्वं यत् यत् विषेण=गरलेन सह वर्तमानं सविषं=विषदिग्धं शल्यं=शङ्कुरिव मां दहति=ज्वलयति सन्तापयति । मयाऽनङ्गीकृतायाः शार्ङ्गरवभर्त्सितायाश्च तस्याः मयि अर्पितां कातरां तां दृष्टिं स्मृत्वा नितरां खलु व्यथते मे मनः । इत्थं तथाविधस्य तस्या दृष्टिक्षेपस्य यदा यदाहं स्मरामि तदा तदा च खिद्यते मामकीनं मनः । अत्रोपमालङ्कारः, शिखरिणी वृत्तञ्च ॥९॥

---

**राजा**—मित्र, परित्याग के कारण विह्वल प्रियतमा शकुन्तला की तात्कालिक अवस्था का स्मरणकर अत्यन्त असहाय हो गया हूँ, क्योंकि वह —

यहाँ से अस्वीकार कर देने के कारण अपने साथ आये हुए व्यक्तियों के अनुसरण में प्रवृत्त हुई, किन्तु गुरु के समान गुरुशिष्य शार्ङ्गरव के 'रुको' ऐसा डाँट कर कहने पर रुक गई। उस समय उसने आँसुओं के प्रवाह से मलिन दृष्टि को फिर एक बार मुझ क्रूर पर जो डाला वह विष से बुझे हुए तीर के नोक के समान मुझे जला रहा है ॥ ९ ॥

पाठा०—१. प्रत्यादिष्टा ।

**सानुमती**—अम्महे ईदिसी स्वकज्जपरदा। इमस्स संदावेण अहं रमामि। [ अहो ईदृशी स्वकार्यपरता। अस्य संतापेनाहं रमे। ]

**विदूषकः**—भो अत्थि मे तक्को केण वि तत्तहोदी आआससंचारिणा णीदेत्ति। [ भोः अस्ति मे तर्कः केनापि तत्रभवत्याकाशसंचारिणा नीतेति। ]

**राजा**—कः पतिदेवतामन्यः परामर्ष्टुमुत्सहेत। मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति श्रुतवानस्मि। तत्सहचारिणीभिः सखी ते हृतेति मे हृदयमाशङ्कते।

**सानुमती**—संमोहो खु विम्हअणिज्जो ण पडिबोहो। [ संमोहः खलु विस्मयनीयो न प्रतिबोधः। ]

**विदूषकः**—जह एव्वं अत्थि खु समाअमो कालेण तत्तहोदीये। [ यद्येवमस्ति खलु समागमः कालेन तत्रभवत्या। ]

---

**सानुमती**—दुष्यन्तोक्तं श्रुत्वा सानुमती स्वगतमाह-अहो! ईदृशी = एतादृशी स्वकार्यंपरता = स्वार्थनिष्ठता सर्वेषाम् अस्य = राज्ञः सन्तापेन अहं रमे = हृष्यामि। अस्य सन्तापेन मम सन्तोषः। यथा यथाऽस्य तापः तथा तथा शकुन्तलानयनोपायं प्रति यत्नवान् भविष्यतीत्याशयः।

**विदूषकः**—किञ्चित्सन्तापशमनाय माधव्यो राजानं रसान्तरे प्रवेशयन्नाह भोः! शृणु अस्ति मे = मम तर्कः = अनुमानम्, अत्रभवती = आदरणीया शकुन्तला केनचित् आकाशसञ्चारिणा = व्योमविहारिणा नीता = अपहृतेति। अतस्तत्प्रतीकाराय प्रयत्नः कार्यं इति भावः।

**राजा**—पतिः = भर्ता देवता इष्टदेवः यस्याः सा तां पतिदेवतां = पतिव्रतां परामष्टुं = स्प्रष्टुम् कः अन्यः = परकीयः उत्सहेत = क्षमेत। ते = तव सख्या = आल्याः, शकुन्तलाया जन्मप्रतिष्ठा = उत्पत्तिस्थानम्, मेनका अप्सरा इति = इदं श्रुतवान् = आकर्णितवानस्मि। तस्याः = मेनकाया सहचारिणीभिः = सहचरीभिः अप्सरोभिः ते = तव सखी = आली शकुन्तला हृता = नीता इति = इयं मे = मम हृदयं = आन्तरम् आशङ्कते = मन्यते।

**सानुमती**—सम्मोहः = अज्ञानं, विस्मृतिः खलु एव विस्मयनीयः = आश्चर्यंजनकः, न प्रतिबोधः = ज्ञानं, स्मृतिः आश्चर्यजनकः।

**विदूषकः**—यदि = चेत् एवं = पूर्वोक्तं अस्ति = तर्हि तत्र भवत्या माननीयायाः शकुन्तलाया कालेन = कियतापि समयेन समागमः = मिलनम् भविष्यति खलु = निश्चयेन।

---

**सानुमती**—अहो ऐसी ही स्वार्थरता होती है कि मैं इनके सन्ताप से प्रसन्न हो रही हूँ।

**विदूषक**—अजी, मेरा तो ऐसा अनुमान है कि उन आदरणीया शकुन्तला को कोई आकाशचारी ले गया है।

**राजा**—पतिव्रता स्त्री को कौन छू सकता है, मेनका तुम्हारी सखी की जन्मदात्री है, ऐसा मैंने सुना है। उसी की सखियों के द्वारा तुम्हारी सखी ले जाई गई होगी, ऐसी मेरे हृदय की आशङ्का है।

**सानुमती**—राजा को शकुन्तला को भूलाना ही आश्चर्यजनक है। स्मरण करना आश्चर्यजनक नहीं है।

**विदूषक**—यदि ऐसी बात है तो उस आदरणीया शकुन्तला से यथासमय आपका मिलन होगा।

राजा—कथमिव ?

विदूषकः—ण खु मादापिदरा भत्तुविओअदुक्खिअं दुहिदरं पेक्खिदुं पारेंति। [ न खलु मातापितरौ भर्तृवियोगदुःखितां दुहितरं द्रष्टुं पारयतः । ]

राजा—वयस्य !

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु क्लिष्टं नु तावत्फलमेव पुण्यम् ।
असंनिवृत्त्यै तदतीतमेते मनोरथा नाम तटप्रपाताः ॥ १० ॥

---

यदि मेनकाज्ञया तत्सहकारिणीभिरेव सा हृता तर्हि किञ्चित्कालानन्तरं तया सह समागमो भविष्यतीत्यर्थः ।

राजा---कथं=केन प्रकारेण इव ।

विदूषकः---न खलु=निश्चयेन मातापितरौ=जननीजनकौ भर्तृवियोगदुःखितां=भर्तुः=पत्युः वियोगेन=विरहेण दुःखिताम्=आकुलां दुहितरं=तनयाम् द्रष्टुं=अवलोकयितुम् न पारयतः=न शक्नुतः। अतो मेनका त्वया सह तां शकुन्तलां संयोजयिष्यतीत्यर्थः ।

राजा---वयस्य=मित्र !

अन्वयः—असन्निवृत्त्यै अतीतं तत् स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु तावत्फलमेव क्लिष्टं पुण्यं नु (हे वयस्य) मनोरथानाम् अतटप्रपातः यद्वा एते मनोरथाः तटप्रपातैः नाम ॥१०॥

भूयोऽपि शकुन्तलायाः समागमो भावीत्युक्त्वाऽऽत्मान आश्वासनं दातारं विदूषकं प्रति राजा दुष्यन्तः तस्याः सम्भोगमसंभाव्यं मन्वानो ब्रवीति—**स्वप्न इति**। असन्निवृत्त्यै=न सन्निवृत्तिः असन्निवृत्तिः तस्यै असन्निवृत्त्यै पुनर्निवर्तनाभावाय, पुनरागमनाय, पुनरलाभाय अतीतं=गतं तम्=पूर्वानुभूतं शकुन्तलासमागमरूपवस्तु, तत्संगमनं, तद्वस्तु वा स्वप्नो नु निद्रावस्थायां विषयानुभवः किम् स्वप्नश्चेत् जाग्रदवस्थायाम् नानुभूयेत ) माया नु=ऐन्द्रिजालिकादिनिर्मितं वस्तु मतिभ्रमो नु बुद्धिभ्रान्तिः नु=

---

राजा---कैसे ?

**विदूषक**—माता-पिता पुत्री को अधिक दिनों तक पति के वियोग से दुःखित नहीं देख सकते हैं ।

**विशेष**—विदूषक के कहने का आशय यह है कि शकुन्तला की मां मेनका अधिक समय तक अपने पास उसे नहीं रख पायेगी, क्योंकि मां होकर उसकी दुर्दशा न देख सकेगी, विवश होकर वह उसे आपके पास पहुँचाने का प्रयत्न करेगी ।

**राजा**—मित्र ! वह शकुन्तला का प्रथम मिलन स्वप्न था क्या ? वह इन्द्रजाल=माया थी क्या, क्या वह मेरा मतिभ्रम था ? वह उतना ही फलवाला नष्टप्राय मेरा पुण्य था क्या ? वह पुनः वापस न आने के लिए चला गया । ये मेरे मिथ्या मनोरथ बरसाती नदी के किनारे पतन के समान हैं ।

**विशेष**—अंगूठी मिल जानेपर दुर्वासा के शाप का प्रभाव समाप्त हो गया । राजा को पहले की सारी बातें एक-एक कर के याद आने लगीं । शकुन्तला के मिलने की घटना इसके सामने नाचने लगी । तब वह चार विकल्प करता है तथा पहले विकल्प से दूसरे विकल्प को काटता जाता है । प्रथम विकल्प ( १ ) क्या शकुन्तला का वह प्रथम मिलन स्वप्न था, नहीं वह स्वप्न

**विदूषकः**—मा एव्वं णं अंगुलीअअं एव्व णिदंसणं अवस्संभावी अचिंतणिज्जो समाअमो होदि त्ति । [ **मैवम् नन्वङ्गुलीयकमेव निदर्शनमवश्यंभाव्यचिन्तनीयः समागमो भवतीति ।** ]

---

तावत् किम् एव फलं=परिणामः यस्य तत् तावत् फलं=अल्पदिन संभाषणादिक-फलकं क्लिष्टं=अत्यल्पं पुण्यं सुकृतं नु=किंपूर्वजन्मनि अत्यल्पमेव पुण्यमाचरितम् एव चतुर्ष्वपि पक्षेषु तया प्रियया पुनः समागमः असम्भवः अत आह हे वयस्यः=हे मित्र माधव्य ! एते स्वप्नादयः चत्वारः पक्षा मनोरथानां=अभिलाषाणां पुनः समागमा-भिलाषाणाम् अतटप्रपाता अतटरूपा, तुङ्गशैलाग्रहरूपाः प्रपाताः=अधः पतनस्थानानि स्वप्नमायामतिभ्रमैः कृतानां मिथ्यात्वात् तेषां पुनः प्राप्तिरसंभवा, पुण्यस्य च क्लिष्ट-त्वात्तथैव तद्यथा शैलाग्रात् प्रयातो न पुनः प्रत्यावर्तते तथैव ममाप्ययं पुनः समागमा-भिलाषो मे सम्पत्स्यते इत्यर्थः । यद्वा एते त्वया उच्यमाना मया वा आशास्यमाना मनोरथाः=मनोरथविषयाः ते तटप्रपाताः=नदीकूलस्य प्रपात इव प्रपातो येषां ते तटप्रपाताः । अयं भावः मित्र ! यथा वर्षाकाले गङ्गादि नदी तटा ओघेन संघट्टमाना निपतन्ति तथैव विलोकन्ते च इत्थं सर्वथा ते अलीका एव तथैव मनोरथाः प्रतिक्षण-मुत्पद्यन्ते, विलीयन्ते च यथा वा शैलाग्रात्पतितो ग्रावा न पुनः प्रत्यावर्तते तथैव स्वप्नादि सुखवत् मम पुनः शकुन्तला समागमाभिलाषः लब्धुं न शक्य इति भावः । अत्रार्थान्तर-न्याससन्देहकाव्यलिङ्गालङ्कारा, उपजातिः वृत्तञ्च ॥ १० ॥

**विदूषकः**—अथ माधव्य राज्ञो नैराश्यं निरस्यन् प्रतिसमाधत्ते—मैवं नेत्थं भण । अङ्गुलीयकमेव=मुद्रिकैव निदर्शनम्=उदाहरणम् दृष्टान्तः यर्थार्थत्वे प्रमाणम् अवश्यं भावी=अनिवारणीयः अचिन्तनीयः=अतर्कितः समागमः=शकुन्तलामिलनम्, भवति= जायते इति । अयं भावः यथा भवितव्यताबलेन शचीतीर्थजले पतितस्य मत्स्येन निगलित-

---

कैसे हो सकता है ? क्योंकि उस समय तो मैं सोया हुआ नहीं था, जाग रहा था ( २ ) तो क्या वह कोई जादू था, यह भी संभव नहीं, क्योंकि मेरे ऊपर कोई जादू कामयाब नहीं हो सकता। ( ३ ) तो क्या यह मेरी बुद्धि का भ्रम था ? नहीं उस समय के सारे व्यवहार मुझे ठीक-ठीक याद हैं। अतः इसे बुद्धि का विभ्रम नहीं कहा जा सकता है । ( ४ ) तो क्या वह मेरा कोई अत्यल्प पुण्य था ? जिसका सहवास मुझे स्वल्पकाल के भोग के लिए था। इस प्रकार राजा निष्कर्ष निकालता है कि मेरा पुण्य अल्प था । अतः थोड़े कालतक ही उसका सहवास मुझे मिल सका। अर्थात् शकुन्तला के साथ आनन्द से बिताया समय अवर्णनीय होने के साथ क्षणिक था, जिससे स्वप्न, माया, मतिभ्रम, तथा अल्पपुण्य का फल कहा है ।

वर्षाऋतु में जब नदियाँ उमड़कर बहती हैं तब उनके ऊँचे नीचे तट ढहते हैं वे पुनः लौटकर अपने स्थान पर नहीं आते, नदी धारा में विलीन हो जाते हैं। ठीक इसी प्रकार शकुन्तला के मिलन के मेरे मनोरथ अब पुनः सत्य नहीं होंगे। वह शकुन्तला के समागम का मधुर, स्पृहणीय सुख अब पुनः मिलना तो असंभव ही है, अब उसका पुनः प्राप्त होना सर्वथा दुर्लभ ही है ।

**विदूषक—नहीं, नहीं** मित्र ऐसा मत कहो, देखो वह अंगूठी ही इस बात का उदाहरण है कि अवश्यंभावी बात अकस्मात् होकर ही रहती है। अर्थात् जैसे अनिश्चित स्थान पर गिरी हुई यह अंगूठी स्वयं ही दैवात् आपके पास पहुँच गई वैसे ही वह शकुन्तला भी आपको पुनः मिल जायेगी।

**राजा**—( अङ्गुलीयकं विलोक्य ) अये इदं तावदसुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम् ।

**तव सुचरितमङ्गुलीय नूनं प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन ।**
**अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषु ॥ ११ ॥**

---

स्याङ्गुलीयकस्य पुनः समागमो जातः तथैव भवतः प्रियतमायाः शकुन्तलाया अपि समागमः संभवमिति । अवश्यम्भावी हि यथाऽकस्मादेव भवति तथा तस्या अपि समागम सहसैव भवतीति भवता न शोचनीयः ।

**राजा**—माधव्येन अङ्गुलीयकनिदेशेनोद्बोधितो राजा अङ्गुलीयकविलोकनपूर्वक तदचेतनवदनुशोचति —अये । अहो ! इदम् = एतत् असुलभं = न प्राप्यं च सत् स्थानं = आधारश्च तटभ्रंशि = तस्मात् च्युतम् इति असुलभस्थानभ्रंशि = दुर्लभस्थानाद् भ्रष्टं शकुन्तलाहस्ताङ्गुलिगलितमिति यावत् । अतः शोचनीयम् शोचितुमर्हम् । इदं तावदङ्गुलीयं प्रथमं शोचनीयम् पश्चात् साशोचनीयेति तात्पर्यम् ।

**अन्वयः**—हे अङ्गुलीय ! फलेन विभाव्यते ( यत् ) तव सुचरितम् नूनं ममेव प्रतनु । यत् अरुणनखमनोहरासु तस्या अङ्गुलीषु लब्धपदं च्युतमस्ति ॥ ११ ॥

अङ्गुलीयकं दृष्ट्वा भूयो भाविसमागमसंभावनया राजा ब्रवीति तवेति—हे अङ्गुलीय ! अङ्गुलिभूषणमुद्रिके ! फलेन = अल्पकालेन सङ्गमसुखेन विभाव्यते = निश्चीयते अनुमीयते यत्तव सुचरितं पुण्यं नूनं = निश्चयेन ममेव = मत्पुण्यमिव प्रतनु अत्यल्पम् । अतीन्द्रियस्य धर्मस्य प्रतनुत्वं ज्ञातुं शक्यमित्याह यत्-यस्मात् अरुणैः = आरक्तैः नखैः = नखरैः मनोहरासु = मनोरमासु हृदयकर्षिणीषु इति अरुणनखमनोहरासु तस्याः त्रिभुवन सुन्दर्याः मयि निर्व्याजमनुरक्तायाः पुरः परिस्फुरन्त्याः इव शकुन्तलायाः अङ्गुलीषु = करशाखावत्सु लब्धपदं = प्राप्तस्थानं महता भाग्योदयेन यथा कथञ्चित् प्राप्तस्थिति अपि सत् च्युतमसि = पतितं भ्रष्टमसि । अत्रारुणेति विशेषणं नखस्येव करतलस्यापि उपलक्षकमस्ति । अङ्गुलीनां मनोहरत्वं च नातिस्थूलत्वेन, नातिह्रस्वत्वेन नातिदीर्घत्वेन, अवक्रत्वेन, सरलत्वेन च । अङ्गुलीलक्षणं च सामुद्रे स्त्रीलक्षणे प्रोक्तमस्ति । यथा हि—

नातिह्रस्वा नातिदीर्घा न स्थूला न कृशा अपि ।
अवक्रा सरला रक्तनखा रक्ततला अपि ॥
कोमला सितविन्द्वाढ्या भङ्गुरा दीप्तिमन्नखा ।
तादृगङ्गुलयो यस्या सा भवेद् राजवल्लभा ॥

अर्थात् हे अङ्गुलीयक ! यथा मम पुण्यमल्पमेवास्ति तथैव तवापि मदल्पमेवेति फलेन अनुमिनोमि । लोकोत्तरलावण्यायाः मेनकासम्भवायाः शकुन्तलायाः क्षणिकसमागमसुखमासाद्य क्षीणे पुण्ये शचीतीर्थं वन्दमानायाः तस्या अङ्गुलितः अधो

---

**राजा—( अंगूठी को देखकर )** अहो, यह अंगूठी उस दुर्लभ स्थान ( शकुन्तला की कोमल अंगुलियों ) से गिरकर शोचनीय हो गई है ।

हे अंगूठी तुम्हारा पुण्य मेरे पुण्य के समान निश्चय ही क्षीण हो गया है । यह परिणाम से ही प्रतीत हो रहा है जो कि तुम लाल नाखूनों से मनोहर शकुन्तला की अंगुलियों में स्थान प्राप्त कर पुनः गिर पड़ी हो ॥ ११ ॥

**सानुमती**—जइ अण्णहत्थगदं भवे सच्चं एव्वं सोअणिज्जं भवे। [ **यद्यन्यहस्तगतं भवेत्सत्यमेव शोचनीयं भवेत्।** ]

**विदूषकः**—भो इअं णाममुद्दा केण उग्घादेण तत्तहोदोए हत्थाब्भासं पाविदा। [ **भो इयं नाममुद्रा केनोद्घातेन तत्रभवत्या हस्ताभ्याशं प्रापिता।** ]

**सानुमती**—मम वि कोदूहलेण आआरिदो एसो। [ **ममापि कौतूहलेनाकारित एषः।** ]

**राजा**—श्रूयताम् स्वनगराय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमाह कियच्चिरेणार्यपुत्रः प्रतिपत्तिं दास्यति इति।

**विदूषकः**—तदो तदो। [ **ततस्ततः।** ]

---

निपत्य मत्स्योदरं विलीना। तन्मन्ये शकुन्तलाहस्ताद् यत् पतितमसि तन्नूनं त्वमपि अहमिवाल्पपुण्यमेव नितरां शोच्यमसि। अत्रोपमानुमानसमासोक्तिकाव्यलिङ्गालङ्कारा, पुष्पिताग्रा वृत्तं च॥ ११॥

**सानुमती**—अथाङ्गुलीयकमिदानीमत्युच्चस्थानास्थितमतो न शोच्यम्—यदि = चेत् अन्यहस्तगतं भवेत् = दुष्यन्तं विहाय अन्यस्य कस्यचित् हस्तगतं = करोपगतं भवेत्तर्हि सत्यमेव = नूनमेव वस्तुतः, अवश्यं शोचनीयं भवेत्—अर्भविष्यत्।

**विदूषकः**—भोः = शृणु, कथय इयं = एषा मुद्र्यतेऽनयेति मुद्रा नाम्नो मुद्रानाम-मुद्रा उत्कीर्णनामाक्षरं भवन्नामाङ्कितमङ्गुलीयकम् केन उद्घातेन समुपक्रमेण उद्देश्येन अभिप्रायेण 'उद्घातः कथ्यते धीरैः संवलितै समुपक्रमे' इति धरणिः। तत्रभवत्या माननीयायाः शकुन्तलायाः हस्ताभ्यासं शकुन्तलाकरसंयोगहस्तनैकट्यम् प्रापिता = भवता। त्वया तस्यै किमर्थं दत्तेति भावः।

**सानुमती**—ममापि कौतूहलेन जिज्ञासया—आकारितः = आहूतः प्रेरित अङ्कुरित इव ममापि एतच्छ्रवणे कौतूहलमासीत्, तदनेन पृष्टमिति भावः।

**राजा**—श्रूयतां = आकर्ण्यताम् स्वनगराय निजराजधान्यै प्रस्थितं = प्रचलितं मां = दुष्यन्तं प्रिया = दयिता शकुन्तला सबाष्पं साश्रु आह = पृष्टवती कियच्चिरेण = कियता विलम्बेन कतिभिः दिवसैः आर्यपुत्रः = स्वामी प्रतिपत्तिं = प्रवृत्तिं वार्ता = सन्देशम् 'प्रतिपत्तिः प्रवृत्तौ स्यात्' इति धाराभिः दास्यति = प्रेषयिष्यति इति।

**विदूषकः**—ततः तत्पश्चात् किं जातम्?

---

**सानुमती**—यदि दूसरे के हाथ में पड़ती तो वस्तुतः शोक का विषय होती, किन्तु राजा के हाथ में आ जाने से यह शोचनीय नहीं रह गई है।

**विदूषक**—हे मित्र! आपके नामाक्षरों से युक्त इस अंगूठी को आपने किस उद्देश्य से श्रीमती शकुन्तला के हाथ में पहिना दिया था।

**सानुमती**—हाँ, यही कौतूहल तो मुझे भी हो रहा था। अतः यह तो मेरे ही मन की बात मानो पूछ रहा है।

**राजा**—वयस्य! सुनो, जब मैं आश्रम से नगर को वापिस आने लगा, तब मेरी प्रिया शकुन्तला ने मुझसे कहा था कि हे प्राणनाथ! अब आप मेरा स्मरण कब तक (कितने दिनों में) करेंगे?

**विदूषक**—हाँ, तब फिर क्या हुआ?

**राजा—पश्चादिमां मुद्रां तदङ्गुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहिता—**

**एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं नामाक्षरं गणय [1]गच्छति यावदन्तम् ।**
**तावत्प्रिये [2]मदवरोधगृहप्रवेशं नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति ॥ १२ ॥**

---

**राजा**—नृपः पुनरुत्तरयति-पश्चात् = अनन्तरम् इमां मुद्रां = इदं मन्नाममुद्राङ्कितमङ्गुलीयकं निवेशयता = परिधापयता मया प्रत्यभिहिता = प्रियां प्रत्युक्ता ।

**अन्वयः**—हे प्रिये ! अत्र दिवसे दिवसे एकैकं मदीयं नमाक्षरं गणय, यावदन्तं गच्छति तावत् मदवरोधगृहप्रवेशं नेता जनः तव समीपमुपैष्यति इति ॥ १२ ॥

स्वनामाङ्कितमुद्रायाः शकुन्तलाहस्तगमने वृत्तान्तं विदूषकं प्रति प्रकाशयति राजा दुष्यन्तः = एकैकमत्रेति हे प्रिये ! अयि दयिते ! अत्र = अस्मिन् अङ्गुलीयके दिवसे दिवसे = प्रतिदिनम् एकैकं = एकम् एकम् एकमेव न द्वे त्रीणि वा मदीयं = मत्सम्बन्धि नामाक्षरं=नामात्मकमक्षरजातम् गणय = एक द्वे त्रीणि इति क्रमेण संख्यानं कुरु यावत्= यावत्कालं तद्गणनं अन्तं = मन्नामाक्षाराणामनवसानं गच्छति, यावद्गणनासमाप्तिः तावत् त्रिचतुरैर्दिनै मदवरोधगृहप्रवेशं = मम अवरोधगृहं = अन्तपुरभवनं तव प्रवेशः नेता = प्रापयिता जनः = त्वदानयनं योग्यः कश्चन मदीयो जनः 'तव = भवत्या समीपं = निकट सविधम् उपैष्यति = अभिगमिष्यति इति इत्थं ममापि प्रत्यभिहृता ।

**अयं भावः**—हे सखे माधव्य ! कण्वतपोवने गान्धर्वविवाहानन्तरं निजराजधान्यं प्रस्थितं मां प्रिया शकुन्तला अश्रूपूर्णं लोचनं विधाय मामपृच्छत् यत् कतिभिर्दिनैः आर्यपुत्रः स्वसन्देशं दास्यति । ततो मया इदमङ्गुलीयकं तदङ्गुलौ परिधापयता सा प्रोक्तं प्रिये ! अत्राङ्कितं मन्नामाक्षरं प्रत्यहमेकैकमक्षरं गणय यावदेव मन्नामक्षराणामन्त्यं दु-ष्-य-न्-न त इत्यत्र तकारं गमिष्यति तावत् कालं कश्चन मदीयः कुलीनः राजपुरुषः त्वदन्तिकमागत्य त्वां स बहुमानं ममावरोधं प्रापयिष्यसीत्येवं मया साभिहिता । तदनन्तरं राजधानीमुपेत्य हतबुद्धिना मया न कश्चनात्मीयो जन तत्समीपे प्रहितः । अत्रापि चिरं प्रतीक्ष्य तत्तातेन महर्षिणा कण्वेन सरलहृदया सा स्वयमेव मे समीपे समुपस्थापिता परं मतिभ्रमात् मया तदानीं सा प्रत्याख्याता । सांप्रतमङ्गुलीयकदर्शनेन लब्धस्मृतिः एवं विलपामि । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः वृत्तं च वसन्ततिलका ॥ १२ ॥

---

**राजा**—तब मैंने इस अंगूठी को उसकी अंगुली में पहनाते हुए कहा था कि—

हे प्रिये ! इस अंगूठी में मेरे नाम के जो अक्षर हैं उनको तुम प्रतिदिन एक-एक कर गिनती रहना जब तुम मेरे नाम के अक्षरों के अन्तिम अक्षर पर पहुँचोगी तभी मेरे अन्तःपुर के अधिकारी पुरुष मेरी आज्ञा से तुमको लेने के लिए तुम्हारे पास पहुँच जायेंगे ॥ १२ ॥

**विशेष**—दुष्यन्त का नाम अंगूठी पर खुदा था, जिसमें पाँच अक्षर थे । अतः पाँच दिन के भीतर तुम्हारे पास हस्तिनापुर से कोई न कोई प्रामाणिक व्यक्ति आ जायेगा । यहाँ सीधे-सीधे स्पष्ट रूप से पाँच दिन न कहकर अप्रत्यक्ष रूप से कहने के कारण पर्यायोक्त अलङ्कार है। गच्छति क्रिया वर्तमानकालिक है, फिर भी आसन्न भविष्य बता रहा है । इस प्रकार राजधानी में मेरे पास पहुँच जाने के बाद वहाँ से मेरे आदेश पर चल पड़े दूत को यहाँ तक पहुँचने भर की देर है ?

---

पाठा०—१. यासि न यावदन्तम् । २. मदवरोधनिदेशवर्ती ।

¹तच्च दारुणात्मना मया मोहान्नानुष्ठितम् ।

सानुमती—रमणीओ खु अवही विहिणा विसंवादिदो । [ रमणीयः खल्ववधि-विधिना विसंवादितः । ]

विदूषकः—कहं धीवलकप्पिअस्स उदलब्भंतले आसि । [ कथं धीवरकल्पितस्य रोहितमत्स्यस्योदराभ्यन्तर आसीत् । ]

राजा—²शचीतीर्थं ³वन्दमानायाः सख्यास्ते हस्ताद् गङ्गास्रोतसि परिभ्रष्टम् ।

विदूषकः—जुज्जइ । [ युज्यते । ]

सानुमती—अदो एव्व तवस्सिणीए सउंदलाए अधम्मभीरुणो इमस्स राएसिणो परिणए संदेहो आसि अहवा ईदिसो अणुराओ अहिण्णाणं अवेक्खदि । कहं विअ एदं । [ अत एव तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरस्य राजर्षे परिणये संदेह आसीत् अथवेदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षते । कथमिवैतत् ]

---

तत् दूतप्रेषणं च दारुणात्मना=कठोरहृदयेन मया मोहात्=अज्ञानात् न अनुष्ठितं=न कृतम् ।

**सानुमती**—अथ सानुमत्यप्सरा राज्ञस्तत्रानुरागातिशयं सविस्मयं पश्यन्ती वदति—रमणीयः=प्रतिदिनमिष्टजननामकीर्तने व्यापृतत्वात् कमनीयः सुन्दरः खलु=निश्चयेन अवधि=त्रिचतुरपञ्च वा दिनात्मकः विरहस्य समयः विधिना=दैवेन विसंवादितः=पर्यस्तः मिथ्याकृतः ।

**विदूषकः**—कथं=केन प्रकारेण अङ्गुलीयकं धीवरेण कल्पितस्य=कैवर्तेन खण्डशः कृतस्य रोहितमत्स्यस्य=रोहितनामकस्य मीनस्य उदराभ्यन्तरे=उदरान्तः आसीत् ।

**राजा**—शचीतीर्थं वन्दमानायाः=नमन्त्याः ते=तव सख्याः=आल्याः शकुन्तलायाः हस्तात्=करात् गङ्गायाः=सुरसरितः स्रोतसि=प्रवाहे परिभ्रष्टं=च्युतम् एतत् अङ्गुलीयकम् ।

**विदूषकः**—युज्यते=उचितमस्ति ।

**सानुमती**—अत एव=अस्मात् कारणात् एव तपस्विन्याः=अनुकम्पार्हायाः शकुन्तलायाः परिणये=पाणिग्रहे अधर्मभीरोः=पापभीतस्य अस्य राजर्षेः=दुष्यन्तस्य सन्देहः=

---

पर यही कार्य कठोर हृदय वाला मैं यहाँ आकर अज्ञानवश भूल गया ।

**सानुमती**—हाँ राजा ने तो उसे बुलाने की यह बहुत ही सुन्दर और रमणीय अवधि रखी थी, पर विधाता=दुर्भाग्य ने ही सब काम बिगाड़ दिया । अर्थात् वह उत्तम अवधि गड़बड़ा गयी ।

**विदूषक**—अच्छा तो मित्र ! शकुन्तला के हाथ में पहनाई हुई यह अंगूठी रोहित=रोहू मछली के पेट में कैसे पहुँच गई ।

**राजा**—शचीतीर्थ की वन्दना करती हुई तुम्हारी सखी शकुन्तला के हाथ से यह गङ्गा के प्रवाह में गिर गई थी ।

**विदूषक**—यह संभव है । यह बात ठीक जँचती है ।

**सानुमती**—इसीलिए अधर्म से डरने वाले इस राजर्षि को बेचारी शकुन्तला के साथ गुप्त

---

पाठा०—१. तच्च मोहाद्दारुणमनुष्ठितम् ? २. शचीतीर्थे सलिलं ।
३. वन्दमानायास्तव सख्याः परिभ्रष्टम् ।

**राजा**—[1]उपालप्स्ये तावदिदमङ्गुलीयकम् ।

**विदूषकः**—( आत्मगतम् ) गहीदो णेण पन्था उम्मत्तआणं । [ गृहीतोऽनेन पन्था उन्मत्तानाम् । ]

**राजा**—( अङ्गुलीयकं विलोक्य ) मुद्रिके !

**कथं नु तं [2]बन्धुरकोमलाङ्गुलिं करं विहायासि निमग्नमम्भसि ।**

**अथवा—**

**अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेन्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया ॥ १३ ॥**

---

शङ्का आसीत् । अथवा = यद्वा ईदृशः एतादृशः = प्रगाढः अनुरागः = प्रेम अभिज्ञायते = परिचीयते इति अभिज्ञानं = परिचयचिन्हम् अपेक्षते कथमिव = केन प्रकारेण इव, एतत् = इदं पूर्वोक्तम् ।

**राजा**—उपालप्स्ये = निन्दिष्यामि तावत् इदम् - एतत् अङ्गुलीयकं = मुद्रिकाम् ।

**विदूषकः**—( आत्मगतमेव ) अनेन = राज्ञा दुष्यन्तेन उन्मत्तानां = उन्मादपदवीमारूढानां वातुलानां पन्थाः = मार्गः गृहीतः = अङ्गीकृतः ।

**राजा**—( अङ्गुलीयकं विलोक्य वदति— ) मुद्रिके = अङ्गुलीयक !

**अन्वयः**—( हे अङ्गुलीयक ! ) बन्धुरकोमलाङ्गुलिम् तं करं विहाय कथं नु अम्भसि निमग्नमसि । अथवा अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेत् मयैव प्रिया कस्मात् अवधीरिता ॥ १३ ॥

अथ राजा दुष्यन्तो दुःखितो भूत्वा मुद्रामुपालभते—कथमिति । हे अङ्गुलीयक ! बन्धुराः = सुन्दरा उन्नतानता ( पूर्वसु नताः तन्मध्ये उदरे उन्नताः ) कोमलाः = मृदवः अङ्गुलयः—करशाखाः यस्मिन् स तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं रक्तोत्पलछविमृदुसुन्दराङ्गुलिललितम्—'बन्धुरं सुन्दरं रम्ये' इति विश्वः । शकुन्तलायाः करं = हस्तं विहाय=त्यक्त्वा अम्भसि = जले निमग्नम् कथं = ब्रुडितमसि आत्मानं मज्जयसि असि । अथवा = यद्वा अचेतनं = चेतनाहीनं जडं वस्तु नाम गुणं सौन्दर्यादिकं = प्रेमादिकमुत्कर्षं न लक्षयेत् = न पश्येत् न विचारयेत् । अचेतनं गुणान् लक्षयितुं शक्नुयादित्यसंभाव्यम् । तर्हि क्षमार्हम् । मया गुणपक्षपातिना सचेतनेन एव = अपि कस्मात् = केन कारणेन, अकारणं

---

रूप से छिप हुए अपने विवाह में सन्देह हो गया, परन्तु ऐसा बढ़ा हुआ अनुराग भी निशानी की अपेक्षा रखता है । यह कहाँ तक ठीक है ।

**राजा**—मित्र ! अब मैं अंगूठी को ही उलाहना दूँगा ।

**विदूषक—( मन ही मन )** अब इन्होंने पागलों का सा मार्ग पकड़ लिया है ।

**राजा—( अंगूठी को देखकर )** मुद्रिके !

उस शकुन्तला के कोमल कोमल अंगुलियों से सुन्दर हाथ को छोड़कर तू पानी में क्यों गिर गई ? अथवा अचेतन वस्तु यदि गुणों को न समझे जो कदाचित् ठीक भी है, परन्तु चेतन होकर भी मैंने ऐसी गुणवती प्रिया को क्यों त्याग दिया ॥ १३ ॥

**विशेष**—जब मैंने सचेतन होकर भी अपनी प्रिया का त्याग कर दिया तो तुम अचेतन होकर उसे त्याग दिया तो कौन बड़ी बात है ?

---

पाठा०—१. भवतु, उपालप्स्ये । २. कोमलबन्धुराङ्गुलिं ।

विदूषकः—( आत्मगतम् ) कहं बुभुक्खाए खादिदव्वो म्हि [ कथं बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि । ]

राजा—अकारणपरित्यागानुशयतप्तहृदयस्तावदनुकम्प्यतामयं जनः पुनर्दर्शनेन।

( प्रविश्यापटीक्षेपेण चित्रफलकहस्ता )

चतुरिका—इअं चित्तगदा भट्टिणी । [ इयं चित्रगता भट्टिनी । ] ( इति चित्रफलकं दर्शयति । )

---

प्रिया = दयिता शकुन्तला अवधीरिता = अस्वीकारेण तिरस्कृता । त्यक्तायाः पुनरुपादाने महापुरुषस्यानौचित्यात् । अतोऽहमेवोपलम्भ्ये इति भावः । जडमेतत् गुणं न वीक्षते इति युक्तमेव ।

अर्थात्—हे मम मुद्रिके मया समये सस्नेहं प्रियाङ्गुलौ परिधापितमपि त्वं रक्तोत्पलम् अतिमृदुलच्छविं प्रियायाः पाणिं परिहाय विरक्तमिव जले निमग्नं तदनुचितमेव त्वयाचरितम् । यद्वा अचेतनस्य सौन्दर्यादिकमनपेक्षमाणस्य तव को दोषः, गुणपक्षपातिनः सचेतनस्य ममैवायमपराधः । न तु तव अतोऽहमेवोपलब्धव्यः । अत्र विभावना-विशेषोक्ति-समासोक्त्यर्थान्तरन्यासा अलङ्कारा, वंशस्थवृत्तञ्च ।

विदूषकः—अथ माधव्य आत्मगतं = यथा राज्ञः श्रवणगतं न भवेत् तथा ब्रूते—कथं = किम् भोक्तुमिच्छा बुभुक्षा तयातिप्रबलतया बुभुक्षया = क्षुधया खादितव्यः = भक्षितव्यः अस्मि = भवामि बुभुक्षया अतिपीडितोऽहं यत् सा मां भक्षयिष्यतीति । राजाऽसौ उन्मत्त अतो विषयान्तरसंचाराभावात् मया भोजनार्थं गन्तुमशक्यमिति तात्पर्यम् ।

राजा—अथ राजा प्रियावियोगेन परितप्यमानहृदयः प्रियां प्रार्थते–प्रिये ! अकारणं यः परित्यागः = प्रत्याख्यानं तस्मात् य अनुशयः = पश्चात्तापः तेन तप्तं = शोकाकुलं हृदयं यस्य सः अकारणपरित्यागानुशयतप्तहृदयः = वृथात्वत्परित्यागदुःखितमनसोऽयं = एषः जनोऽहं पुनदर्शनेन भूयोदर्शनदानेन अनुकम्पताम् = अनुगृह्यताम् दयापात्रीक्रियताम् ।

( राज्ञा प्रार्थितं प्रियादर्शनं सम्पादयितुं चित्रफलकहस्तायाश्चतुरिकायाः प्रवेशं दर्शयति कविः–अपटीक्षेपेण–अपटी=जवनिका तस्याः क्षेपम् = चालनम् अपसारणमकृत्वा चित्रफलकहस्ता चित्रफलक आलेख्यपटो, हस्ते= करे यस्याः सा चित्रफलकहस्ता प्रविश्य = अन्तरागत्य )

चतुरिका—इयं = एषा चित्रे = आलेख्ये गता = अर्पिता लिखितेति चित्रगता = चित्रार्पिता भट्टिनी = अनभिषिक्ता राजदाराः, शकुन्तला 'देवी कृताभिषेकायामितरासु च भट्टिनी' इत्यमरः । ( इति = एवमुक्त्वा ततः चित्रफलकं = चित्रपटं दर्शयति ) ।

---

विदूषक—( मन ही मन ) मित्र ! तुम मुझको भूख से सचमुच ही मार डालोगे ।

राजा—प्रिये ! विना कारण के ही तुम्हारा परित्याग करने से अब पश्चात्ताप से मेरा हृदय जल रहा है । अतः अब तो मुझे अपना दर्शन देकर पुनः मुझे कृतार्थ करो ।

( हाथ में चित्रपट लिए हुई पर्दा हटाकर प्रवेश करके )

चतुरिका—यह चित्र में अङ्कित स्वामिनी है ( ऐसा कहकर चित्र दिखलाती है )

विशेष—राजा ने पुनः दर्शन चाहा और संयोगवश वह चित्र रूप में आगया ।

**विदूषकः**—साहु वअस्स । महुरावत्थाणदंसणिज्जो भावाणुप्पवेसो । क्खलदि विअ मे दिट्ठी णिण्णुण्णअप्पदेसेसु । [ **साधु वयस्य ! मधुरावस्थानदर्शनीयो भावानुप्रवेशः । स्खलतीव मे दृष्टिर्निम्नोन्नतप्रदेशेषु ।** ]

**सानुमती**—अंमो एसा राएसिणो णिउणदा । जाणे सही अग्गदो मे वट्टदि त्ति । [ **अहो ! एषा राजर्षेर्निपुणता जाने सख्यग्रतो मे वर्तत इति ।** ]

**राजा—यद्यत्साधु न चित्रे स्यात्क्रियते तत्तदन्यथा ।**
**तथापि तस्या लावण्यं रेखया किंचिदन्वितम् ॥ १४ ॥**

---

**विदूषकः**—माधव्यो राजानं विनोदयितुं चित्रं श्लाघते—हे वयस्य ! = हे मित्र ! साधु = अद्भुतं धन्योऽसि मधुरावस्थादर्शनीयः मधुरं = चेतोहरं, यत् अवस्थानं = रेखास्थानोत्पन्नस्तनजघनाद्याकृतिविशेष विन्यासः तेन दर्शनीयः = हृद्यां सुस्पष्टमालक्ष्यो भावानुप्रवेशः = प्रेमाविर्भावः । निम्नाः = अवनताश्च उन्नताः = उच्चाश्च ते प्रदेशाः = स्थानानि चेति ते तेषु निम्नोन्नतप्रदेशेषु = नाभिस्तनादिषु स्खलतीव = चलतीव उच्चेषु प्रतिहता निम्नेषु अधः पतितेव भवति मे = मम दृष्टिः = चक्षुः । यथा प्रत्यक्षदृष्टायामाकृतो निम्नोन्नतेषु दृष्टिः स्खलति तथा चित्रेऽपीति महदालेख्यकौशलमिति तात्पर्यम् ।

**सानुमती**—माधव्योक्तमेवानुसन्धायाप्सरा सानुमती ब्रवीति—अहो = आश्चर्यम् एषा = इयं चित्रे = दुष्यन्तस्य निपुणता = पटुता, चित्रनिर्माणकौशलम् जाने = प्रतीये संभावयामि, सखी = आली शकुन्तला अग्रतः = समक्षं मे = मम वर्तते = विद्यते इति । चित्रलिखितापि तादात्म्यात् साक्षात् सखी प्रत्यक्षवत् पुरोभासत इति तात्पर्यम् ।

**राजा**—नृपो हि प्रकृत्यपेक्षया चित्रार्पितप्रकृतेरपर्षमाह—**यद्यदिति ।**

**अन्वयः**—चित्रे यत् यत् साधु न स्यात् तत्तदन्यथा क्रियते तथापि रेखया तस्या लावण्यं किञ्चिदन्वितम् ॥ १४ ॥

वास्तविक प्रकृत्यपेक्षया चित्रगतप्रकृतेरपकर्षं राजा दुष्यन्तो ब्रवीति—**यद्यदिति ।** **चित्रे = मत्कृते** आलेख्ये यद्-यत् = विलिख्यमानमङ्गं यद्-यद्वस्तु साधु न स्यात् = सम्यङ् न भवेत् मया स्वदोषादेव साधु न लिखितम् तत् तदेव तत्सर्वम् = अन्यथा क्रियते = प्रवृत्यपि लिख्यते । मया चित्रे तस्या लावण्यं सर्वं सम्पादयितुं पौनःपुन्येन यत्नः कृत इत्यर्थः तथापि = कृतेऽपि महति श्रमे संमार्ज्य संमार्ज्य भूयो भूयो लिख्यमानमपि रेखया = तूलिकाविहितचित्रेण तस्याः = शकुन्तलायाः लावण्यं = कमनीयता किञ्चित् =

---

**विदूषक**—मित्र ! बहुत अच्छा, सुन्दर रीति से अवयव विन्यास के कारण भावों का सञ्चार दर्शनीय है । ऊँचे-नीचे स्थानों पर मेरी दृष्टि फिसल सी रही है ।

**सानुमती**—राजर्षि दुष्यन्त की चित्रनिर्माण की निपुणता आश्चर्यजनक है । मुझे प्रतीत हो रहा है कि मेरी सखी शकुन्तला मेरे सामने विद्यमान है ।

**राजा**—चित्र में जो कुछ अच्छा नहीं है वह सब पुनः ठीक बनाया जा रहा है । तो भी उस शकुन्तला का सौन्दर्य रेखाओं द्वारा थोड़ा ही प्रगट किया जा सका है ॥ १४ ॥

**विशेष**—दुष्यन्त चित्रनिर्माण में बड़े ही प्रवीण हैं । उनकी कलाकारिता पर विदूषक और सानुमती मुग्ध हैं, फिर भी उनका कहना है कि यद्यपि मैंने इस चित्र के बनाने में कई अंश बार-बार मिटाकर बनाये हैं किन्तु फिर भी शकुन्तला का सौन्दर्य थोड़ा ही उभर सका है ।

**सानुमती**—सरिसं एदं पच्छाद्दावगुरुणो सिनेहस्स अणवलेवस्स अ। [ **सदृशमेतत् पश्चात्तापगुरोः स्नेहस्यानवलेपस्य च।** ]

**विदूषकः**—भो दाणिं तिण्हिओ तत्तहोद्दीओ दीसंति। सव्वाओ अ दंसणोआओ। कदमा एत्थ तत्तहोदी सउंदला। [ **भोः इदानीं तिस्रस्तत्रभवत्यो दृश्यन्ते। सर्वाश्च दर्शनीयाः। कतमात्र तत्रभवती शकुन्तला।** ]

**सानुमती**—अणभिण्णो खु ईदिसस्स रूवस्स मोहदिट्ठी अअं जणो। [ **अनभिज्ञः खल्वीदृशस्य रूपस्य मोहदृष्टिरयं जनः।** ]

**राजा**—त्वं तावत्कतमां तर्कयसि ?

---

अत्यल्पम् अन्वितम् = अनुगतम्, अनुकृतं पौनःपुन्येन कृतेऽपि प्रयत्ने तस्या लावण्यं स्वल्पमेव समायातम्। अर्थात्—स्वयं विधात्रा मनसा कल्पिता सा शकुन्तलेति च मया मानुषेण कथं सम्यगालिखितुं शक्यते ? तस्मात् हे सखे माधव्य ! व्यर्थमेव ते प्रशंसा वाक्यम् संगीतरत्नाकरे रेखालक्षणं च एवमुक्तमस्ति।

शिरोरत्नकरादीनामङ्गानां मेलने सति।
कार्यस्थितिर्यतो नेत्रहरा रेखा प्रकीर्तिता॥

अत्र पद्येऽनुष्टुब्भेद एव पथ्यावक्त्रं नामकमस्ति वृत्तम्॥ १४॥

**सानुमती**—राज्ञ पश्चात्तापवचनमाकर्ण्य सानुमती स्वगतं वदति यत् सदृशमनुरूपमनुकूलमेव एतत् दुष्यन्तोक्तः पश्चात्तापवचने पश्चातापगुरोः पश्चात्तापेन = परितापेन गुरोः = अधिकस्य स्नेहस्य प्रेम्णः अनवलेपस्य = अविद्यमानः अवलेपः = दोषो यत्र तादृशस्य अनवलेपस्य = विनयस्य।

**विदूषकः**—चित्रे लिखितानां तिसृणां स्त्रीणां मध्ये कतमा शकुन्तलेत्यजानन् विदूषको राजानं पृच्छति—भो = अये ! इदानीं = अधुना तिस्रः त्रिसंख्याकाः तत्र भवत्याः = माननीया दृश्यन्ते = अवलोक्यन्ते सर्वाः = सकला दर्शनीयाः = दर्शनयोग्याः रूपवत्यः आसां मध्ये कतमा = का तत्र भवती शकुन्तला ?

**सानुमती**—विदूषकवचनेन सा तमुपहसति—अनभिज्ञः = अपरिचितः खलु = निश्चयेन ईदृशस्य = एतत्प्रकारकस्य रूपस्य = शकुन्तलासौन्दर्यस्य मोहदृष्टिः मोहः = मुग्धता दृष्टौ = चक्षुषि यस्य स मोहदृष्टिः जडबुद्धिः निष्फलनेत्रः अयं = एष जनः। एष माधव्यो विदूषकः चित्र पश्चप्रमापटलं दृष्ट्वा मूढदृष्टिरसौ सञ्जात इत्यर्थः।

**राजा**—नृपः माधव्यं पृच्छति—मित्र ! त्वं तावत् आसु कतमां = काम् तर्कयसि = मन्यसे विचारयसि ? निश्चिनोसि ?

---

**सानुमती**—पश्चात्ताप के कारण बढ़े हुए प्रेम तथा अभिमान शून्यता के अनुरूप ही यह वक्तव्य है।

**विदूषक**—अजी, इसमें तो तीन आदरणीया युवतियाँ दिखाई दे रही हैं। सभी देखने लायक हैं। इनमें श्रीमती शकुन्तला कौन हैं ?

**सानुमती**—निष्फल दृष्टिवाला यह व्यक्ति इस तरह के अनुपम रूप से अनभिज्ञ ही है।

**राजा**—अच्छा तो तुम इनमें किसको शकुन्तला समझते हो ?

**विदूषकः**—तक्केमि जा एसा सिढिलकेसबन्धणुव्वंतकुसुमेण केसंतेण उब्भिण्णस्सेअविंदुणा वअणेण विसेसदो आसरिआहिं बाहाहिं अवसेअसिणिद्धि-तरुणपल्लवस्स चूअपाअवस्स पासे इसिपरिस्संता विअ आलिहिदा सा सउंदला। इदरोओ सहीओ त्ति । [ **तर्कयामि यैषा शिथिलकेशबन्धनोद्वान्तकुसुमेन केशान्तेनोद्भि-न्नस्वेदबिन्दुना वदनेन विशेषतोऽपसृताभ्यां बाहुभ्यामवसेकस्निग्धतरुणपल्लवस्य चूतपादपस्य पार्श्वं ईषत्परिश्रान्तेवालिखिता सा शकुन्तला । इतरे सख्याविति ।** ]

**राजा**—निपुणो भवान् । अस्त्यत्र मे भावचिह्नम् ।

---

**विदूषकः**—माधव्यो वदति यत् तर्कयामि = मन्ये या एषा = इयम् शिथिलं = श्लथं केशानां = मूर्धजानां बन्धनं = बन्धः तेन उद्वान्तानि कुसुमानि = प्रसाधनपुष्पाणि यस्मात् स तेन शिथिलकेशबन्धनोद्वान्तकुसुमेन = प्रश्लथकेशकलापबन्धननिर्गलितपुष्पेण केशा-न्तेन = केशपाशहस्तेन उपलक्षिता, उद्भिन्ना = उद्गताः संजाताः स्वेदविन्दवः श्रमजल-जालानि यस्मिन् तत् तेन उद्भिन्नस्वेदविन्दुना = संजात धर्मजलाञ्चितेन वदनेन = मुखेन, विशेषतः = विशेषेण, बाहुल्येन, अपसृताभ्यां = आनतांशाभ्यां बाहुभ्यां = भुजाभ्या-मुपलक्षिता, अवसेकेन = अवसेचनेन स्निग्धाः = मसृणाः तरुणपल्लवाः=नवपत्राणि यस्मिन् स तस्य अवसेकस्निग्धाभिनवपल्लवस्य = जलसेकार्द्रीभूतनवकिसलयस्य चूतपादपस्य = आम्रवृक्षस्य पार्श्वं = निकटे ईषत्परिश्रान्तेव = पादपेसु जलस्वनात् किञ्चिद् जात-श्रमेव, आलिखिता = चित्रिता सा शकुन्तला इतरे = परिशिष्टे अन्ये द्वे सख्यौ = आल्यौ प्रियम्वदानसूये इति तर्कयामि । श्रय एव सन्ति श्रमपरिणामाः केशबन्धशैथिल्यं, स्वेदो-द्गमः, भुजापसरणञ्च, ते सर्वे तत्र दृश्यन्ते ।

**राजा**—विदूषकोक्तिमनुमोदमानो नृपस्तं श्लाघते—निपुण = पटुः, विशेषज्ञो भवान्— अस्ति रूपविशेषस्य सूक्ष्मेक्षिकयैव कुशाग्रधिषणैरेव लक्षितुं शक्यत्वादितिभावः । अत्र = शकुन्तलाचित्रे मे = मम, भावचिह्नम् = अनुरागलक्षणम् अयं भावः अस्याः प्रतिकृते-रुपरि वर्तमानं मदीयाश्रुप्रस्वेदादिपतनचिन्हैरेव परिज्ञातुं शक्यते एषा शकुन्तलेति। चित्रकारस्य मम रत्यादेः विभावानुभावादेः अश्रुबिन्दुप्रस्वेदरेखादिकं चिह्नजातमत्र

---

**विदूषक**—मेरा अनुमान है कि छिड़काव से चिकने हुए पल्लवों वाले आम के पेड़ के पास वह जो ढीले केशबन्धन से बाहर निकले फलवाले केशपाश से तथा छलछलाते हुए पसीने की बूँदों वाले मुख से तथा अधिक लटकी भुजाओं से जरा थकी सी चित्रित की गई है, यह शकुन्तला है और अन्य दो सहेलियाँ हैं ।

**विशेष**—दुष्यन्त ने आश्रम में शकुन्तला को उस समय देखा था, जब वह आश्रम के वृक्षों को सखियों के साथ सींच रही थी । उस समय वह श्रान्त-सी थी, उसकी चोटी ढीली पड़ गई थी, अतः उसमें लगाये गये पुष्प रह-रह कर गिर रहे थे, उसके मुखपर पसीने की बूंदें झलझला आई थी; उसकी कोमल बाहें थक गई थी, वह आम्र के पास खड़ी लता-सी प्रतीत हो रही थीं, उसके इसी सौन्दर्य पर भारत सम्राट् हस्तिनापुर का अधिपति दुष्यन्त अपने को न्योछावर कर बैठा था । दुर्वासा के शाप का प्रभाव समाप्त हो जाने पर दुष्यन्त ने इसी दृश्य को अपनी कला का विषय बनाया है ।

**राजा**—तुम बड़े चतुर हो, इस चित्र में मेरे सात्विक भावों की निशानी है ।

स्विन्नाङ्गुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः ।
अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात् ॥ १५ ॥

राजा—चतुरिके ! अर्धलिखितमेतद्विनोदस्थानम् । गच्छ वर्तिकाम् तावदानय।

चतुरिका—अज्ज माढव्य ! अवलंब चित्तफलअं जाव आअच्छामि [ आर्यं माधव्य ! अवलम्बस्व चित्रफलकं यावदागच्छामि । ]

---

फलके स्पष्टमवलोक्यते । अस्मिन् चित्रफलके यां प्रतिकृतिं शकुन्तलेयमिति मन्यसे तस्या मदङ्गुलिस्पर्शादिना मत्सात्विकभावचिह्नं प्रस्वेदरेखादिकं जातमित्याशयः ।

अन्वयः—रेखाप्रान्तेषु मलिनः स्विन्नाङ्गुलिविनिवेशः दृश्यते । इदं च कपोलपतितमश्रुर्वर्तिकोच्छ्वासात् दृश्यम् ।

प्रतिकृतौ लिखितासु तिसृषु ललनासु सावधानतया मुनिकन्यां शकुन्तलां परिचयन्तं विदूषकं श्लाघमानो राजा दुष्यन्तो ब्रवीति–स्विन्नाङ्गुलिरिति । रेखाप्रान्तेषु रेखायाः = प्रान्तेषु = पार्श्वदेशेषु मलिनः आविलः स्विन्नाङ्गुलिनिवेशः—स्विन्नाः भावोदयात् स्वेदयुक्ताः या अङ्गुलयः = करशाखाः तासां सन्निवेशः = संस्थापनं विन्यास इति स्विनाङ्गुलिसन्निवेशः = प्रस्वेदाविलाङ्गुलिसम्पर्कः, दृश्यते = विलोक्यते । यद्वा प्रान्तेषु = चित्रफलकपर्यंतभागेषु स्विन्नानामङ्गुलीनां विनिवेशात् = सम्पर्कात्, मलिना = श्यामा रेखा = अङ्गुल्यादिरेखा दृश्यते । चित्रलेखनावस्थायां भावोदयादङ्गुलिषु स्वेदः, स्वेदाच्च अङ्गस्य मालिन्यं अङ्गमालिन्यादेव च भावोदयानुमानम् । इदं च कपोलपतितं–कपोलयोः = चित्रस्थायाः शकुन्तलायाः गण्डयोः पतितं प्राप्तम् अश्रु = मम सात्विकभावोदयेनोत्पन्नं मदीयं नेत्रजलं वर्तिकोच्छ्वासात् वर्तिका = चित्रपटे लेपविशेषः तत्साध्या या रेखायां उच्छ्वासात् = संश्लेषशैथिल्यात् 'पटभेदे पक्षिभेदे तूलिकायां च वर्तिका' इत्यमरः दृश्यम् = लक्ष्यम् ज्ञातुं शक्यम् अर्थात् मित्र ! माधव्य ! त्वं सत्यमसि चतुरः । त्वया नूनं परिचिता मे प्रिया शकुन्तला अस्मिन् चित्रे कश्चन यः श्यामः अङ्गो दृश्यते स चित्रलेखनसमये तां त्वत्सखीं शकुन्तलामनुस्मरतीं मम भावोदयात्, स्वेदाङ्गुलिविन्यासेन संजातः । यच्च चित्रलिखितायाः तस्याः कपोलयोः पतितं मम नयनजलं तद् वर्तिकोच्छ्वासात् जातम् । अत्रानुमानालङ्कारः आर्यावृत्तञ्च ॥ १५ ॥

राजा—चतुरिके ! एतत् = इदं विनोदस्थानम्, मनोरञ्जनाधारः, मन्मनोमोदावहम् एतच्चित्रम्, अर्धलिखितं = अर्द्धाङ्कितम्, असमाप्तं वर्तते । अतः गच्छ = व्रज वर्तिकां = तुलिकाम् चित्रलेखनद्रव्याणि तावत् आनय ।

चतुरिका—आर्यमाधव्य ! एतत् = चित्रफलकम् = पटं अवलम्बस्व = धारयस्व यावत्–यावत्पर्यन्तमहमागच्छामि = परावर्ते ।

---

चित्रपठ के किनारे-किनारे धूमिल पसीने से युक्त अंगुलियों का निशान दिखाई पड़ रहा है तथा यह चित्रगत शकुन्तला के गालों पर गिरा हुआ आँसू, रंग के फूल जाने से देखा जा सकता है ॥ १५ ॥

राजा—चतुरिके ! मेरे मनोरञ्जन का यह साधन अधूरा ही चित्रित हुआ है, तो जाओ तुरा लाओ ।

चतुरिका—आदरणीय माधव्यजी, चित्रपट को तबतक पकड़िये जब तक मैं आती हूँ ।

**राजा**—अहमेवैतदवलम्बे। ( इति यथोक्तं करोति। )

( निष्क्रान्ता चेटी )।

**राजा**—( निःश्वस्य ) अहं हि—

**साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं**
**चित्रार्पितां पुनरिमां बहुमन्यमानः।**
**स्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य**
**जातः सखे! प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम् ॥ १६ ॥**

---

**राजा**—अहमेव = स्वयम् एतत् = चित्रफलकम् आत्मविनोदार्थम् अवलम्बे=धारये। ( इति = एवमुक्त्वा यथोक्तं करोति = चित्रं धारयति )

( चेटि = परिचारिका च निष्कान्ता = बहिर्गता )।

**राजा**—नृपो दुष्यन्तः निःश्वस्य = दीर्घंश्वासं गृहीत्वा आत्मनोऽविमृश्यकारित्वमनुसन्धाय पश्चात्तापमनुभवन्नाह—अहं हि—साक्षादिति।

**अन्वयः**—सखे! अहं हि पूर्वं साक्षात् उपगतां प्रियाम् अपहाय चित्रार्पिताम् इमां पुनः बहु मन्यमानो निकामजलां स्रोतोवहाम् पथि अतीत्य मृगतृष्णिकायां प्रणयवान् जातोऽस्मि ॥ १६ ॥

आत्मनोऽविमृश्यकारित्वमनुसन्धायात्यन्तमनुतप्यमानो राजा दुष्यन्तः नैजीमवस्थां वर्णयति—साक्षादिति। हे सखे माधव्य! पूर्वं = प्रथमं साक्षात् = प्रत्यक्षं स्वयमेव उपगतां = समीपे समागतां प्रियां = दयितां शकुन्तलाम् अपहाय = अवगणय्य निरस्य चित्रार्पितां = आलेख्ये लिखिताम्, इमां=पुरतोदृश्यमानां पुनः बहुमन्यमानः = प्रीतिसाधनं विभावयन् आदरेणावलोकमानः तस्यां श्रद्धधानः अहं हि पथि = मार्गे निकामजलां = निकामं जलं यस्यां सा ताम् तादृशीं पूर्णजलाम्, प्रभूतसलिलां वहतीति वहा = स्रोतसां वहा स्रोतोवहा तां स्रोतोवहां=नदीम् अतीत्य=पृष्ठत उपेक्ष्य उल्लङ्घ्य मृगाणां = हरिणानां तृष्णा = पिपासा अस्ति अस्यामिति मृगतृष्णां सैव मृगतृष्णिका तस्यां मृगतृष्णिकायां = मरुमरीचिकायां प्रणयवान् = प्रीतियुक्तः, सतृष्णः जातोऽस्मि = सम्पन्नोऽस्मि अर्थात् पूर्वं मार्गे अनायासेनोपगतां पूर्णसलिलां महानदीमुत्तीर्य गतवतः पिपासोः पुंसः पश्चात् पिपासो शान्त्यर्थं मृगतृष्णिकायां प्रणयवान् इव प्रथमं स्वयंमुपस्थितां प्रियामवधीरितवतो मम चित्रार्पितायामस्यां मनोविनोदं कुर्वन् मूढ एवाहं संजातः। तथा च वर्त्मनि स्वयं प्राप्तां स्वादूदकां निर्झरिणीं विहाय मृगमरीचिमनुसरणमिव स्वयमेवोपस्थितां प्रियां परिहाय काल्पनिकेन चित्रेण चेतोविनोदम् हास्यकरम् ॥ १६ ॥

---

**राजा**—मैं ही इसे पकड़ता हूँ ( **ऐसा कहकर चित्रपट को पकड़ता है** )

( **चेटी = चतुरिका निकल जाती है** )

**राजा**—( **श्वास लेकर** ) मित्र! पहले साक्षात् समीप आई प्रिया का तिरस्कार कर अब चित्र में बनी हुई प्रिया को अधिक मानता हुआ मैं रास्ते में पड़ी हुई प्रभूत जलवाली नदी को पीछे छोड़कर मृगतृष्णिका का अनुगामी हो गया हूँ ॥ १६ ॥

**विदूषकः**—( आत्मगतम् ) एसो अत्तभवं णदिं अदिक्कमिअ मिअतिण्हिआं संकेतो । ( प्रकाशम् ) भो ! अवरं किं एत्थ लिहिदव्वं ? [ **एषोऽत्रभवान्नदीमतिक्रम्य मृगतृष्णिकां संक्रान्तः । भो अपरं किमत्र लिखितव्यम् ?** ]

**सानुमती**—जो जो पदेसो सहीए मे अहिरूवो तं तं आलिहिदुकामो भवे । [ **यो यः प्रदेशः सख्या मेऽभिरूपस्तं तमालिखितुकामो भवेत् ।** ]

**राजा**—श्रूयताम्—

**कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी**
**पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ।**
**शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः**
**शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ॥ १७ ॥**

---

**विदूषकः**—राजोक्तं सत्यमिति समर्थयन् माधव्यः स्वगतमाह—एषः = अयम् अत्र भवान् = माननीयो राजा दुष्यन्तः नदीं = सरितम् शकुन्तलाम् अतिक्रम्य = उल्लङ्घ्य मृगतृष्णिकाम् = मृगमरीचिकाम् सङ्क्रान्तः = प्राप्तः । प्रकाशं=स्पष्टम् । भो=अये वयस्य ! अपरं = अन्यत् किम् अत्र = अस्मिन् चित्रपटे लिखितव्यम् = अङ्कितव्यम् ? अस्मिन् चित्रे भवान् किमन्यल्लिखितुमिच्छसीत्याशयः ।

**सानुमती**—सानुमती स्वगतं वदति मे = मम सख्याः = शकुन्तलायाः अभिरूपः = रम्यः, 'अभिरूपो बुधे रम्ये' इति विश्वमेदिन्यौ । प्रदेशः = स्थानम् तं तं प्रदेशम् आलिखितुं = चित्रेऽर्पितुं कामः = इच्छा यस्य स आलिखितुं कामः राजा भवेत् = स्यात् । ममाली शकुन्तला येषु येषु स्थानेषु रमते तानि तानि स्थानानि राज्ञा चित्रेऽस्मिन् लिखितुमिष्टानीत्यर्थः ।

**राजा**—अथ प्रगाढोन्मादो राजा शकुन्तलाचित्रनिर्माणशेषं पूरयितुमुपक्रममाणो विदूषकप्रश्नमुत्तरयति श्रूयताम्—**कार्येति** ।

**अन्वयः**—सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी कार्या, तामभितः निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः पादा कार्याः शाखालम्बितवल्कलस्य तरोरधः कृष्णमृगस्य शृङ्गे कण्डूयमानां च मृगीं निर्मातुमिच्छामि ॥ १७ ॥

मित्र ! चित्रं किमन्यल्लेखनीयमिति पृच्छन्तं माधव्यं ब्रवीति राजा दुष्यन्तः—**कार्येति** । सैकते = सिकतामये पुलिने = तटे लीनं = सुखासीनं हंसमिथुनं = हंसयोः मिथुन मरालयुगलं यस्याः सा सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतांसि वहतीति स्रोतोवहा = नदी मालिनी = मालिनी नाम्नी कार्या = रचयितव्या तां = मालिनीमभितः = समीपे निषण्णाः = उप-

---

**विदूषक**—( **मन ही मन** ) यह श्रीमान्जी नदी पार करके मृगतृष्णिका में प्रविष्ट हो गये हैं ( प्रगट ) अजी और क्या इसमें लिखना है ।

**सानुमती**—जो जो स्थान हमारी सखी शकुन्तला को पसन्द हैं उसको-उसको वह चित्रित करने के इच्छुक हो सकते हैं ।

**राजा**—सुनो, जिसके बालुकामय तट पर सुखपूर्वक हंस की जोड़ी बैठी हुई **है**, ऐसी मालिनी नहीं बनायी **है** । उसके दोनों ओर हिमालय के पवित्र तलहटी के प्रदेश बनाने हैं । जिनमें हरिण

**विदूषकः**—( आत्मगतम् ) जइ अहं देक्खामि पूरिदव्वं णेण चित्तफलअं लंबकुच्चाणं तावसाणं कदंबेहिं। [ **यथाहं पश्यामि पूरितव्यमनेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां कदम्बैः।** ]

**राजा**—वयस्य अन्यच्च शकुन्तलाया [1]प्रसाधनमभिप्रेतमस्माभिः।

---

विष्टाः हरिणाः = हरिण्यश्चेति हरिणा हरिणमिथुनानि मृगा यत्र सा निषण्णाः सुखोपविष्टहरिणयूथाः गौरीगुरोः गौर्याः = पार्वत्याः गुरुः = पिता तस्य हिमालयस्य पावनाः = पवित्राः तज्जनकाः वा पादाः = चरणाः निम्नभूमयः प्रत्यन्तपर्वताः कार्याः = लेखयितव्याः शाखासु = वृक्षस्कन्धेषु आलम्बितानि = अवलम्बितानि, अवसक्तानि वल्कलानि = वृक्षवल्कलवस्त्राणि यस्य स तस्य शाखालम्बितवल्कलस्य आतपशोषणाय शाखा प्रसारितवल्कलस्य तरोः = आश्रमवृक्षस्य अधः = तले कृष्णमृगस्य = कृष्णसारस्य हरिणस्य शृङ्गे = विषाणे वामं सव्यं नयनं लोचनमिति वामनयनं = वामाक्षि कण्डूयमानां = निघर्षन्तीं मृगीं = हरिणीं च निर्मातुं = चित्रे लिखितुम् इच्छामि = वाञ्छामि। कामतन्त्रकाराणां सिद्धान्तश्चायं—

रिरंसा यत्र जायेत कण्डूतिस्तत्र जायते।
मृगीणां वामनयने योषितां मदनालये॥

अर्थात् चित्रे किमपरं लिखितव्यमवशिष्टमिति विदूषकप्रश्नमुत्तरयता राज्ञा दुष्यन्तेन प्रोच्यते मित्र माधव्य! हिमालयप्रान्तवाहिन्या मालिन्याः तटे परिसरे बालुकामयप्रदेशे सुखासीनं हंसयुगलसनाथे आश्रमामोदतरुतलनिलीन कृष्णसारस्य शृङ्गकोणे स्वनाम लोचनं कण्डूयमानां मृगीं लिखितुमिच्छामि। अत्रोदात्तस्वभावोक्ती अलङ्कारौ शार्दूलविक्रीडितं छन्दश्च॥ १७॥

**विदूषकः**—माधव्यश्चित्रे राज्ञा लिखितव्येषु स्वयमूहति—आत्मगतं = स्वगतम्। यथा अहं पश्यामि = अवलोकयामि मयानुमीयते तदनुसारम् अनेन दुष्यन्तेन लम्बं = लम्बायमानं कूर्चं = कपोलचुबुककेशाः येषां ते तेषां लम्बकूर्चानां प्रलम्बश्मश्रूणां जटिलानां तापसानां = तपस्विनाम् कदम्बकैः समूहैः एतत् चित्रफलकं पूरयितव्यम्। 'कूर्चोऽस्त्री श्मश्रुपीठयोः' इति विश्वः।

**राजा**—वयस्य = मित्र! अन्यत = अपरं च शकुन्तलायाः प्रसाधनं = अलंकरणं, सज्जा अभिप्रेतम् = अभीष्टम्, अतिप्रियम्, अस्माभिः = मया उद्दिष्टम् प्रियायाः शकुन्तला अतिप्रियं प्रसाधनं यल्लिखितुं मया विस्मृतं तदत्राहं लेखिष्यामीत्याशयः।

---

बैठे हुए हैं, जिनकी डालियों में सूखने के लिए बल्कल वस्त्र लटक रहे हैं, ऐसे वृक्ष के नीचे काले हरिण की सींग में बांई आंख को खुजलाती हुई हरिणी को बनाना चाहता हूँ॥ १७॥

**विशेष**—हंस का जोड़ा, स्रोतोवहा नदी, हरिणपरिवार, मृग को सींग से अपनी बाई आंख रगड़ती हुई हरिणी ये सब उद्दीपन विभाव हैं, आलम्बनविभाव शकुन्तला साथ में थी ही।

**विदूषक**—( **मन ही मन** ) जैसा मैं समझता हूँ कि यह इस चित्र को लम्बी-लम्बी दाढ़ी वालों के समूहों से भर देंगे।

**राजा**—मित्र! और यह भी करना है। प्रिया शकुन्तला को जो आभूषण प्रिय थे, उन्हें मैं यहाँ बनाना भूल गया हूँ।

---

पाठा०—१. प्रसाधनमभिप्रेतमत्रालिखितुं विस्मृतमस्माभिः।

**विदूषकः**—किं विअ। [ किमिव ? ]

**सानुमती**—वणवासस्स सोउमारस्स अविणअस्स अ जं सरिसं भविस्सदि। [ वनवासस्य सौकुमार्यस्यविनयस्य च यत्सदृशं भविष्यति। ]

**राजा**—

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे ॥ १८ ॥

---

**विदूषकः**—किमिव = किं तत् अभिप्रेतं प्रसाधनम्।

**सानुमती**—प्रसाधनमुद्दिश्य सानुमती चिन्तयति—वनवासस्य वने = विपिने वासः = वसतिः यस्य स तस्य वनवासस्य शकुन्तलाया आरण्यावस्थितेः सौकुमार्यस्य = अत्यन्त-मृदुलत्वस्य विनयस्य नम्रताया च सदृशं = अनुरूपं कन्यकाभावस्य सौकुमार्यस्य च समुचितं पुष्पधारणम् भविष्यति = स्यात्।

**अन्वयः**—सखे ! कर्णार्पितबन्धनम्, आगण्डविलम्बिकेसरं शिरीषं न कृतम् वा स्तनान्तरे शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं न रचितम्।

भवता शकुन्तलायाः किं प्रसाधनं कर्तव्यत्वेनाभिप्रेतमिति माधव्यस्य प्रश्नमुत्तरयन् राजा दुष्यन्तः चित्रे अकृतं प्रसाधनं वर्णयितुमुपक्रमते—कृतमिति। सखे = हे मित्र ! कर्णयोः = श्रवणयोः अर्पितं = दत्तं, बन्धनभागं वृन्तं यस्य तत् कर्णार्पितबन्धनम् = कर्णन्यस्तवृन्तम्, गण्डमभिव्याप्य विलम्बितुं शीलाः लम्बायमानाः केसराः किञ्जल्काः यस्य तत् आगण्डविलम्बिकेसरं = कपोलपर्यन्तलम्बमानकिञ्जलकम् शिरीषं = शिरीषकुसु-मम् न कृतं नाऽत्रचित्रेऽर्पितं मया शकुन्तलातिप्रियत्वात्तदद्दश्यमत्रार्पणीयमितिभावः। वा = यद्वा किञ्च स्तनान्तरे = स्तनयोः मध्यावकाशस्थले, पयोधरयोरुत्सङ्गे शरच्चन्द्रस्य शशाङ्कचन्द्रस्य मरीचिवत् = ज्योत्स्नावत् कोमलं=सुकुमारं स्निग्धं = शुभ्रं मृणालसूत्रं = विसमरालिका न रचितं = मया न खचितम्, न लिखितम्।

अर्थात् हे मित्र माधव्य ! मयाऽस्मिन् चित्रे प्रियायाः कर्णयोरुपरि शिरीषकुसुमस्य वृन्तं नोपन्यस्तं, यस्य किञ्जल्काः कपोलप्रदेशपर्यन्तं विलम्बमानाः कर्णयोः कपो-लयोश्च कामप्यपूर्वां शोभां जनयन्ति तथा पीवरयोरपि स्तनयोर्मध्ये शारदशशाङ्क-धवला अतिकोमला विससूत्रमालिकाऽपि नोपन्यस्ता, या परस्परसंलग्नयोः पीवरयोः पयोधरयोः शोभां विदग्धशोभते इदमेवात्र मम प्रियायाः शकुन्तलायाः प्रसाधनमव-शिष्टमस्तीति भावः।

अत्रोपमासमुच्चयालङ्कारौ, वंशस्थं वृत्तं च ॥ १८ ॥

---

**विदूषक**—वह कैसा आभूषण ?

**सानुमती**—वनवास, सुकुमारता, तथा सुशीलता के जो अनुरूप होगा।

**राजा**—मित्र ! कान में लगा हुआ वृन्तवाला, गालों तक लटकते हुए केसरवाला शिरीष का फूल नहीं बनाया गया है और स्तनों के बीच में शरद्कालीन चन्द्रमा की किरणों की तरह कोमल नाल का हार नहीं बनाया गया है ॥ १८ ॥

**विदूषकः**—भोः ! किं णु तत्तहोदी रत्तकुवलअपल्लवसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं ओवारिअ चइदचइदा विअ ठिआ। आ एसो दासीएपुत्तो कुसुमरसपाडच्चरो तत्तहोदाए वअणं अहिलंघेदि महुअरो। (सावधानं निरूप्य दृष्ट्वा) [**भो किं नु तत्र भवती रक्तकुवलयपल्लवशोभिनाऽग्रहस्तेन मुखमपवार्य चकितचकितेव स्थिता। आः एष दास्याः पुत्रः कुसुमरसपाटच्चरस्तत्रभवत्या वदनमभिलङ्घति मधुकरः।** ]

**राजा**—ननु वार्यतामेष धृष्टः।

**विदूषकः**—भवं एव्व अविणीदाणं सासिदा इमस्स वारणे पहविस्सदि [**भवानेवाविनीतानां शासितास्य वारणे प्रभविष्यति।** ]

**राजा**—युज्यते। अयि भोः कुसुमलताप्रियातिथे किमत्र परिपतनखेदमनुभवसि।

---

**विदूषकः**—( माधव्यः सावधानं निरूप्य = ध्यानेन दृष्ट्वा पृच्छति— ) भोः = अये, तत्रभवती = मान्या शकुन्तला रक्तं च तत् कुवलयं रक्तकुवलयं तस्य पल्लवः तद्वत् शोभिना यद्वा रक्तौ यौ कुवलयपल्लवौ तद्वत् शोभिनेति रक्तकुवलयपल्लवशोभिना = रक्तोत्पलदलसदृशश्रीजुषा, अरुणकमलपलमनोहरेण हस्तस्याग्रम् अग्रहस्तः तेन अग्रहस्तेन = करपल्लवेन मुखं = वदनम् अपवार्य = पिधाय आच्छाद्य चकितचकितेव = भीतभीते किन्नु स्थिता = कस्मात् स्थिता ? आः, एषः = अयं दास्याः पुत्रः = दुर्विनीतः नीचः कुसुमपाटच्चरः = पुष्पमधुचोरः मधुकरः = दुष्टो भ्रमरः तत्रभवत्याः = पूज्यायाः वदनं = मुखम् अतिलङ्घति = मुखमभिलक्ष्य धावति।

**राजा**—चित्रगतामपि शकुन्तलां साक्षात् प्रियामेव मन्वानो नृप आह—**ननु** = एवं तर्हि एषः = अयं धृष्टः = उच्छृङ्खलो भ्रमरः वार्यताम् = प्रतिषिध्यताम्।

**विदूषकः**—चित्रगतस्य भ्रमरस्य वारयितुमशक्यत्वं विचिन्त्य राजानं सोलुण्ठनमाह—भवानेव = त्वमेव, अविनीतानां = उद्दण्डानाम् शासिता = शासकः, विनेता अतो भवानेव अस्य = एतस्य भ्रमरस्य वारणे = रोधने प्रभविष्यति = समर्थो भविष्यति।

**राजा**—नृपोऽपि तादृग्बुद्ध्यैवोत्तरयति—युज्यते = युक्तमेव अहमेवैनं वारयिष्ये। अथ भ्रमरमभिमुखीकृत्य शकुन्तलामुखाद्दूरीकर्तुमुपक्रमते–अयि भोः ! = शृणु कुसुमलता = पुष्पवल्लरी एव प्रिया = दयितेति कुसुमलताप्रियः तस्या अतिथिः तत्सम्बुद्धौ हे कुसुमलताप्रियातिथे ! = हे पुष्पलता प्रणयिन् ! अत्र वदनकमले = प्रिया शकुन्तलाकपोले परिपतनस्य = उड्डयनस्य खेदं = संचरणश्रमं आक्रमणक्लेशं किं = कथम् अनुभवसि = किमिति कुरुषे, नालं तव कमलमधुसुलभम्। कुसुमलता समुपस्थितं त्वां सत्करिष्यन्ति। अतस्तामेवाभिसरेतिभावः सेवनोचितं स्थानं निर्दिशति—**एषेति**।

---

**विदूषक**—( **सावधानी से विचार कर और देखकर** ) अजी, क्या बात है कि आदरणीया शकुन्तला लाल कमल के पत्तों की तरह शोभायमान हाथ के अगले हिस्से से मुख को ढककर अत्यन्त घबराई हुई सी खड़ी है। ओह, यह राण का बेटा, फूलों के रस का चोर भौंरा इन श्रीमती शकुन्तला के मुख कमल पर आक्रमण कर रहा है।

**राजा**—तो, इस ढीठ भौंरे को रोको।

**विदूषक**—आप ही दुष्टों के शासक हैं। अतः आप ही इसके निवारण में समर्थ होंगे।

**राजा**—ठीक है, हे पुष्पलता के प्रिय अतिथि ! तुम इस शकुन्तला के मुख-कमल के चारों ओर चक्कर काटने का कष्ट क्यों उठा रहे हो ?

**एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तमनुरक्ता।**
**प्रतिपालयति [1]मधुकरी न खलु [2]मधु विना त्वया पिबति ॥ १९ ॥**

**सानुमती**—अज्ज अभिजादं खु एसो वारिदो। [ अद्याभिजातं खल्वेष वारितः । ]

**विदूषकः**—पडिसिद्धा वि वामा एषा जादी। [ प्रतिषिद्धापि वामैषा जातिः । ]

**राजा**—एवं भोः, न मे शासने तिष्ठति। श्रूयतां तर्हि संप्रति—

---

**अन्वयः**--अनुरक्ता एषा मधुकरी तृषिता कुसुमनिषण्णा सती अपि भवन्तं प्रतिपालयति त्वया विना न खलु मधु पिबति ॥ १९ ॥

चित्रेऽङ्किता मधुकरीमुद्दिश्य राजा मधुकरं वारयितुमुपक्रममाण आह–**एषेति**। अनुरक्ता त्वयि अनुरागिणी=प्रेमवती एषा=पुरो दृश्यमाना मधुकरी=भवद्दयिता भ्रमरी तृषिता=पिपासिता, अभिलाषवती कुसुमनिषण्णा=पुष्पोपविष्टा सती विद्यमाना अपि भवन्तं त्वां प्रतिपालपति=प्रतीक्षते त्वया विना=त्वां विहाय न खलु=निश्चयेन मधु=मकरन्दं पिबति=आस्वादयति। अस्याः स्नेहः त्वया मानयितव्यः। अतोऽत्रैव गच्छ। अर्थात् हे मधुकर व्यर्थं मे प्रियाया मुखमभिकलङ्कयसे न त्वं प्रियायां मुखमधुरसमास्वादयितुं शक्नोषि अतस्त्वं कुसुमितां लतामेव गच्छ। मकरन्दरसास्वादनाम कुसुमोपरि-उपविष्टा तव प्रिया प्रौढा मधुकरी त्वया विना मधु न पिबति। अतस्तत्रैव गच्छ तामेव प्रौढां भ्रमरीमेवानुसर त्वं नात्र मम प्रियावदने ते मनोरथपूर्तिर्भविष्त्री अतः अजातकामां मुग्धामेनां बालां मम वल्लभाया क्लेशयेति भावः। अत्र समासोक्त्यलङ्कारः। आर्या छन्दश्च ॥ १९ ॥

**सानुमती**--अद्य–अधुना उन्मादावस्थायामपि अथवा प्रियापरिभवेऽपि अभिजातम्=कुलीनतानुरूपं अनुरूपम् न्यायानुमोदितेन यथा समुचितं यथा स्यात्तथा खलु=निश्चयेन एषः=अयं भ्रमरः वारितः=निषिद्धः। इतो वारणमपि भ्रमरस्यास्य सुखदमेवास्तीत्याशयः। 'अभिजातः स्मृतो न्याय्य' इति विश्वः।

**विदूषकः**--राजा वारितोऽप्येष न विरमतीत्याह—एषा=तिर्यग्जातिः, भ्रमर जातिः, प्रतिषिद्धापि=निवारितापि वामा=प्रतिकूला विपरीताचरणा विरुद्धमार्गगामिनी। निषिद्धोऽपि अयं न निवर्तते। एष त्वदाज्ञां न मनुते इति भावः।

**राजा**--प्रतिषिद्धमपि विरोधमाचरन्तं भ्रमरं प्रति क्रुद्ध आह—एवं=अनेना विधिना प्रियाभिमुखमेव धावन् मे शासने=निदेशे, आज्ञायाम् न तिष्ठसि=न वर्तसे तर्हि श्रूयतां मदाज्ञोलङ्घनस्य मया दास्यमानो दण्ड आकर्ण्यताम्। संप्रति हि=इदानीं श्रोतव्यमाह।

---

आप पर अनुरक्त यह भ्रमरी प्यासी होकर फूलपर बैठी हुई भी आपकी प्रतीक्षा कर रही । तुम्हारे बिना पुष्प-रस को नहीं ही पी रही है ॥ १९ ॥

**सानुमती**—इस समय यह भ्रमर राजा के द्वारा बहुत शिष्ट ढंग से रोका गया है।

**विदूषक**—रोकने पर भी यह भ्रमर जाति विपरीत ही काम करने वाली होती है।

**राजा**—अच्छा ऐसी बात है, तू मेरे आदेश में नहीं हो तो अब सुन लो—

---

पाठ०—१. भ्रमरी। २. मधु त्वां बिना पिबति।

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।
बिम्बाधरं [1]स्पृशसि चेद्भ्रमर प्रियायास्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम् ॥२०॥

विदूषकः—एव्वं तिक्खणदंडस्स किं ण भाइस्सदि। ( प्रहस्य आत्मगतम् ) एसो दाव उम्मत्तो। अहं वि एदस्स संगेण ईदिसवण्णो विअ संवुत्तो। ( प्रकाशम् ) भो! चित्तं खु एदं [ एवं तीक्ष्णदण्डस्य किं न भेष्यति। एष तावदुन्मत्तः। अहमप्येतस्य सङ्गेनेदृशवर्ण इव संवृत्तः। भोः! चित्रं खल्वेतत्। ]

---

अन्वयः—हे भ्रमर! अक्लिष्टबालतरुपल्लवशोभनीयं मया रतोत्सवेषु सदयं पीतं प्रियाया बिम्बाधरं स्पृशसि चेत् त्वां कमलोदरबन्धनस्थं कारयामि।

उन्मादास्थापन्नो राजा चित्रेऽङ्कितं वार्यमाणमपि भ्रमरं प्रति क्रुद्धो तस्मै दण्डं दातुं भीषयन् आह–क्लिष्टेति। हे भ्रमर! = हे मधुप! अक्लिष्टः = न केनापि मर्दितः बालः नूतनः तरोः = वृक्षस्य पल्लवः = किसलयं दलं तद्वत् लोभनीयं = सुन्दरमिति अक्लिष्ट-बालतरुपल्लवशोभनीयम् मया = तत्सौन्दर्यवशीभूतेन दुष्यन्तेन रतमेवोत्सवा रतोत्सवाः तेषु रसोत्सवेषु = सुरतमहोत्सवेष्वपि रतिक्रीडासु सदयं = सानुकम्पं स्वादं स्वादं पीतम् = आस्वादितम्, न तु निर्दयमुपभुक्तम्, प्रियायाः = मम दयितायाः शकुन्तलाया. बिम्बाधरं-बिम्बसदृशफलमधरोष्ठं स्पृशसि = दशसि चेत् त्वाम् = अपराधिनम् कमलस्य = पद्मस्य उदररूपं यद् बन्धनं कारागृहम् तत्र तिष्ठति यः स तं = कमलोदरबन्धनस्थं पद्मोदर-कुहरकागारनिबद्धं कारयामि करिष्यामि। राजाहं त्वां परदारधर्षणापराधेन निरुणध्मि। अर्थात् अये मधुकर! कामुकवृत्तिः त्वं मया सुरते सदयं स्वादं स्वादं चुम्बितं मे प्रियाया बिम्बफलसदृशं सुन्दरमधरोष्ठं स्पृशसि चेत् तर्हि त्वामहं कमलोदरे घनान्धकारे निधाय दण्ड-यिष्यामीति भावः। अत्रातिशयोक्तिः समासोक्तिश्चालङ्कारो छन्दश्चास्ति वसन्ततिलका॥२०॥

विदूषकः—एवं = इत्थं तीक्ष्णदण्डस्य तीक्ष्णो दण्डो यस्य स तस्य कठोरनिग्रहस्य, पञ्चम्यर्थे षष्ठी उग्रशासनात् त्वत्तः किं = कथं न भेष्यति = भीतो भविष्यति, भीतो भविष्यतीत्येवेत्यर्थं आक्षेपगर्भेयमुक्तिः। सुकुमारोऽयं दण्ड इति भावः। प्रहस्य = स्वाव-स्थाया अनुसन्धानात् हास्यं कृत्वा, उपहासपूर्वकम् एषः = अयं दुष्यन्तः तावत् = तु उन्मत्तः = वातुलः, विक्षिप्तः, अहमपि एतस्य = दुष्यन्तस्य सङ्गेन = सङ्गत्या ईदृशः = एवंभूतो वर्णः रूपं स्वभावो वा यस्य स ईदृशवर्णः = एवंविधः, एवंरूपः, इव = यथा संवृत्तः = संजातः संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति इति न्यायेन उन्मत्तसंसर्गादहमपि तत्स-मान एव जातोऽस्मीति भावः। भोः! = अये! चित्रम् = आलेख्यम् खलु = निश्चयेन एतत् = पुरोदृश्यमानम् चित्रस्थस्य मधुकरस्य दण्डनं भवतोऽशक्यमिति भावः।

---

हे भ्रमर! किसी के द्वारा न छुए गये नवोद्गत तरुपल्लव की तरह मनोहर तथा मेरे द्वारा संभोगानन्द के समय दयापूर्वक ही पिया गया प्रियतमा का रक्त अधरोष्ठ यदि तुम छुओगे तो कमल के मध्यभागरूपी कारागार में बन्द करवा दूँगा॥ २७॥

**विदूषक**—इस प्रकार कठोर दण्ड देनेवाले आप से यह क्यों नहीं डरेगा? **( हँसकर अपने आप )** ये अब पागल हो गये हैं। मैं भी इनके साथ के कारण इसी प्रकार का हो गया हूँ, **( प्रगट रूप में )** अजी, यह तो चित्र है, न कि वास्तविक दृश्य।

---

पाठा—१. दशसि।

राजा—कथं चित्रम् ।

सानुमती—अहं वि दाणिं अवगदत्था किं उण जहालिहिदाणुभावी एसो।
[ अहमपीदानीमवगतार्था किं पुनर्यथालिखितानुभाव्येषः । ]

राजा—वयस्य किमिदमनुष्ठितं पौरोभाग्यम् ।

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन ।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता ॥ २१ ॥
( इति बाष्पं [1]विहरति )

---

राजा—कथं = किम् एतत् चित्रम् = आलेख्यम् ?

सानुमति—अप्सरा वदति—सानुमत्या अपि राजवचनात् सत्यमियं शकुन्तलेति भ्रमः तन्मयतया चित्रे जातः स च विदूषकवचसा निरस्तः इति स्थितिः । तदाह—अहमपि इदानीम् = अधुना अवगतार्था—अवगतः = ज्ञातः अर्थः = वस्तु चित्रत्वं यथा तादृशी संजाता चित्रमिति ज्ञानं ममापि साम्प्रतमेव जातमित्यर्थः । किं पुनः यथालिखितानुभावी—लिखितं = चित्रितम् अनतिक्रम्य यथालिखितं लिखितानुरूपं तत् अनुभवति—ध्यायतीति यथालिखितानुभावी = यथाचिन्तितानुसारी, चित्रे प्रियां भावयन् एषः = राजा दुष्यन्तः किं पुनः = यदाहं स्वस्वबुद्धिरपि चित्रे सत्यं शकुन्तलैवेयमिति भ्रान्ता विदूषकवचनादेवेदानीं प्रतिबुद्धा तर्हि शकुन्तलागतमानसो चित्रस्थामिमां शकुन्तलां मन्यमानो राजा दुष्यन्तो भ्रान्तश्चेत्तत्र किमु वक्तव्यम् ? तद्रसाविष्टचेतसो राज्ञस्तु भ्रान्तिरुचितैवेत्याशयः ।

राजा—वयस्य ! = मित्र माधव्य ! किम् = किमर्थम्, व्यर्थमेव, इदं = पूर्वोक्तरीत्या अनुष्ठितं = कृतम् पौरोभाग्यम् = पुरोभागिनः दुष्कर्मनिरतस्य कार्यम् दोषदर्शित्वम्—'दोषैकदृक्' पुरोगामी इत्यमरः । अस्मिन् हि चित्रे नेयं शकुन्तलेति दोषः कथममुद्भावितः त्वयेत्युपालम्भः । नेदमुचितमाचरितं मत्सुखस्वप्नं विनाशयता त्वयेति भावः । तदेव विवृण्वन्नाह—दर्शनसुखेति ।

अन्वयः—स्मृतिकारिणा त्वया तन्मयेन हृदयेन साक्षादिव दर्शनसुखमनुभवतः मे कान्ता पुनरपि चित्रीकृता ।

शकुन्तलाचित्रं तन्मयतयाऽवलोकयन् राजा दुष्यन्तो माधव्येन प्रतिबोधितो तमपराधं मन्यमानो ब्रवीति—दर्शनसुखेति । स्मृतिकारिणा = इदं चित्रं न साक्षात् शकुन्तलेति स्मृतिं

---

राजा—क्या चित्र है ।

सानुमती—मैं भी अब यथार्थ को समझ सकी हूँ । जैसा चित्र में लिखा है उसी प्रकार अनुभव करने वाले इस राजा का तो कहना ही क्या है ?

राजा—मित्र ! तुमने यह ईर्ष्या प्रकृति का कैसा प्रदर्शन किया ?

तल्लीन चित्त से प्रत्यक्ष की तरह दर्शन सुख का अनुभव करने वाले मुझे स्मरण करा देने वाले तुम्हारे द्वारा प्रियतमा पुनः चित्रित कर दी गई है ॥ २१ ॥

**( ऐसा कहकर आँसू बहाता है )**

---

पाठा०—१. विसृजति ।

**सानुमती**—पुव्वावरविरोहो अपुव्वो एसो विरहमग्गो। [ **पूर्वापरविरोध्यपूर्वं एष विरहमार्गः। ]**

**राजा**—वयस्य ! [1]कथमेवविश्रान्तदुःखमनुभवामि।

**प्रजागरात्खिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने समागमः।**
**वाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि॥ २२॥**

---

कारितवता त्वया = माधव्येन तन्मयेन = शकुन्तलामयेन हृदयेन = चेतसा कान्तैवेयमिति दृढबुद्धया साक्षादिव = प्रत्यक्षमिव दर्शनसुखं = प्रियादर्शनानन्दम्, अनुभवतः = उपलभमानस्य मे = मम कान्ता = दयिता प्रिया शकुन्तला पुनरपि = भूयोऽपि चित्रीकृता = चित्ररूपेण परिणमिता, आश्चर्यरूपा कृता 'आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रम्' इत्यमरः। अर्थात् मित्र माधव्य ! आत्मनो विरहविनोदाय प्रियाया शकुन्तलाया प्रतिमूर्ति निर्माय तन्मयतया तां साक्षादिवोपस्थितां मत्वा तद्दर्शनसुखानि अनुभवती मम नेयं शकुन्तला, किन्तु तच्चित्रमिति कथनेन पुनस्त्वं त्वया स्मृतिपथमुपनीता। तस्माद्भवतोऽयं महानपराधोऽस्ति। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कार आर्याजातिश्च वृत्तं॥ २१॥

( इति = एवमुक्त्वा ततः बाष्पं = अश्रु विहरति = त्यजति। मम प्रिया प्राक् नष्टा पुनः प्राप्ता, भूयोऽपि नष्टेति हेतोरश्रुजलं विमुञ्चतीत्यर्थः। )

**सानुमती**—पूर्वापरविरोधी—पूर्वस्य = प्रथमावस्थायाः अपरस्य अपरावस्थायाश्च यो विरोधः = परस्परप्रतिषेधः तद्वान् पूर्वापरविरोधी, पूर्वं प्रियायाः परिग्रहः पश्चादनास्थया परित्यागः = सहसा शकुन्तलायाः प्रत्याख्यानम्, पुनरधुना तदर्थं पश्चात्तापेन शोकातिशयः इति पूर्वापरविरोधः यद्वा पूर्वं चित्रस्य चित्रत्वेन ज्ञानम् स्वयमेवलेखनात् पुनः तस्योन्मादावस्थायां सत्यत्वेन ज्ञानम्, पुनरपि चित्रत्वेन ज्ञानमिति पूर्वापरविरोधः। अत एव अपूर्वः = आश्चर्यकारी नवीनो वा विरहमार्गः—विरहस्य = इष्टजन वियोगशोकस्य मार्गः = पन्थाः रीतिरित्यर्थः।

**राजा**—आलेख्यदर्शनात्मकस्य विनोदस्य वाष्पादिना प्रतिहननात् नृपः सखेदं विदूषकमाह—वयस्य = सखे ! कथं = केन प्रकारेण एवम् = इत्थम्, अविश्रान्तदुःखम् = अपरम्, अनवरतवेदनाम् अनुभवामि = प्राप्नोमि, सहे। इदृक् निरन्तरदुःखमनुभवितुं नाहं शक्नोमीतिभावः। कुत इत्यत्राह—**प्रजागरादिति।**

**अन्वयः**—प्रजागरात् तस्याः स्वप्ने समागमः खिलीभूतः। **बाष्पस्तु चित्रगताप्येनां दष्टुं न ददाति॥ २२॥**

आत्मनो दुःखसहनाशक्तत्वं कथयन् राजा दुष्यन्तो माधव्यं ब्रूते—**प्रजागरेति।** **प्रजागारात्** = रात्रिजागरणात् तस्याः = मम प्रियायाः शकुन्तलायाः स्वप्ने = निद्रायां

---

**सानुमती**—यह विरह का मार्ग आगे तथा पीछे की बातों से तालमेल न रखने वाला है अपूर्व होता है।

**राजा**—मित्र ! मैं क्यों इस प्रकार निरन्तर वेदना का अनुभव कर रहा हूँ।

रातभर जागरण के कारण उस शकुन्तला का स्वप्न में मिलन रुक गया है और आंसू चित्र में अङ्कित इस शकुन्तला को देखने नहीं देते॥ २२॥

---

पाठा०—१. कथमविश्रामं दुःखमनुभवामि।

सानुमती—सव्वहा पमज्जिदं तुए पच्चादेसदुक्खं सउंदलाए। [सर्वथा प्रमार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं शकुन्तलायाः।]

(प्रविश्य)

चतुरिका—जेदु जेदु भट्टा। वट्टिआकरंडअं गेण्हिअ इदोमुहं पत्थिद म्हि। [जयतु जयतु भर्ता। वर्तिकाकरण्डकं गृहीत्वेतोमुखं प्रस्थितास्मि।]

राजा—किं च।

चतुरिका—सो मे हत्थादो अंतरा तरलिआदुदीआए देवीए वसुमदीए अहं एव्व अज्जउत्तस्स उवणइस्सं त्ति सबलक्कारं गहीदो। [स मे हस्तादन्तरा तरलिकाद्वितीयया देव्या वसुमत्याऽहमेवार्यपुत्रस्यापनेष्यामीति सबलात्कारं गृहीतः।]

---

समागमः = मत्समीपागमनमिति स्वप्नसमागमः दर्शनं तु खिलीभूतः = उपहतः प्रतिहतः निषिद्धः, अनिद्रया विनाशितः विघ्नितः किञ्च वाष्पः तां तां पूर्वावस्थां स्मरतो मे दुःखान्नेत्राभ्यां स्रवदश्रुजलम् तु चित्रगतामपि = आलेख्ये लिखितामपि एनां प्रियां द्रष्टुं = अवलोकयितुं न ददाति = दर्शनं प्रतिसन्धे, चित्रादिना मनोविनोदनमपि मे दैवं न सहते किं करोमि मन्दभाग्यः इति भावः। अत्र हेत्वनुप्रासौ अलङ्कारौ अनुष्टुप् छन्दश्च।

सानुमती—अथ राज्ञोऽवस्थामालोक्याप्सरा सानुमती सकरुणमाह—सर्वथा सर्वप्रकारेण वाङ्मनःकायकैर्व्यापारैः शकुन्तलायाः = सख्या प्रत्यादेशदुःखं प्रत्यादेश एव दुःखं प्रत्यादेशदुःखं अन्वादेशदुःखम् परित्यागकष्टं प्रमार्जितं = दूरीकृतम् प्रोञ्छितम्।

(प्रविश्य = अन्तरागत्य)

चतुरिका—जयतु जयतु भर्त्ता = स्वामी महाराजः सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् वर्तिका = चित्रलेखनसाधनं करण्डकं = रङ्गभाजनम्। वर्तिकायाः करण्डकमिति वर्तिकाकरण्डकम् = वर्णकमञ्जूषाम्। गृहीत्वा = आदाय इतः = इह अस्यां दिशि मुखं = वदनं यस्मिन् कर्मणि यथास्यात्तथा इतोमुखम् = भवदभिमुखम्, प्रचलिता = प्रस्थिता अस्मि।

राजा—ततः किम् = त्वं प्रस्थितासि ततः किं जातम्? तत् कथयेत्यर्थः।

चतुरिका—स तूलिकाकरण्डकः मे = मम हस्तात् = करात् अन्तरा = मध्येमार्गं तरलिकाद्वितीया=तरलिका सङ्गिनी यस्याः सा तया तरलिकाद्वितीयया देव्या राजमहिष्या वसुमत्या अहमेव आर्यपुत्रस्य = स्वामिनः उपनेष्यामि = समीपे प्रापयिष्यामि इति = इद-

---

सानुमती—वस्तुतः इस कथन से तुमने शकुन्तला के परित्याग का दुःख सब तरह से धो दिया है।

(प्रवेश करके)

चतुरिका—जय हो, जय हो स्वामी की, महाराज! मैं ब्रुश और रंग की पेटी को लेकर इधर की ओर आ रही थी।

राजा—तो फिर क्या हुआ?

चतुरिका—तरलिका के द्वारा अनुगमन की जाती हुई महारानी वसुमती ने बीच में ही 'मैं ही इसे महाराज के पास पहुँचाऊँगी' ऐसा कहकर जबर्दस्ती मेरे हाथ से छीन लिया।

**विदूषकः**—दिठ्ठिआ तुमं मुक्का। [ दिष्ट्या त्वं मुक्ता। ]

**चतुरिका**—जाव देवीए विडवलग्गं उत्तरीअं तरलिआ मोचेदि ताव मए णिव्वाहिदो अत्ता [ यावद्देव्या विटपलग्नमुत्तरीयं तरलिका मोचयति तावन्मया निर्वाहित आत्मा। ]

**राजा**—वयस्य, उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता च। भवानिमां प्रतिकृतिं रक्षतु।

**विदूषकः**—अत्ताणं ति भणाहि। जइ भवं अंतेउरकालकूडादो मुंचीअदि तदो मं मेहप्पडिच्छंदे प्यासादे सद्दावेहि। [ आत्मानमिति भण। यदि भवानन्तःपुरकालकूटान्मोक्ष्यते तदा मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दापय। ] ( इति द्रुतपदं निष्क्रान्तः )।

---

मुक्त्वा सबलात्कारं = बलात्कारेण सहितं सबलं हठात् गृहीतः। वर्तिकाकरण्डकनयनं विनोदार्थं राज्ञः शकुन्तलाप्रतिकृति लेखनोपयोगि भवेदिति मत्वा प्रणयकोपेन तद्विघटनाय देव्या वसुमत्या एवमाचरितमिति तात्पर्यम्।

**विदूषकः**—दिष्ट्या=सौभाग्येन विमुक्ता = परित्यक्ता न दण्डिता वर्तिका करण्डकवत् त्वमपि देव्या न गृहीतेति स्वं सौभाग्यं मन्यस्वेतिभावः।

**चतुरिका**—यावत् देव्याः राज्ञ्या। विटपे = वृक्षशाखायां लग्नं = संसक्तमिति विटपलग्नं = कोपेन ससंभ्रमगमनात् वृक्षशाखासंसक्तं उत्तरीयं = चेलाञ्चलं यावत् तरलिका मोचयति तावत् मया आत्मा=स्वदेहः निर्वाहितः=पलाय्य रक्षितः इमं देशं प्रापितः सुरक्षितः पलायितास्मि तेनाहं मुक्ता नहि तयाः स्वेच्छया परित्यक्तेतिभावः। 'आत्मा-देहमनोब्रह्मस्वभावधृतिबुद्धिषु' इति विश्वः।

**राजा**—वयस्य ! हे = मित्र ! उपस्थिता = आगतप्राया प्राप्ता, देवी = राज्ञी बहुः = अधिकः मानः = सम्मानः तेन गर्विता इति बहुमानगर्विता च इयद्दिनपर्यन्तं मत्कर्तृकेण बह्वादरेण गर्विता अहमेवार्यपुत्रस्य बहुमतेत्यभिमानवतीत्यर्थः। भवान् = त्वं, इमां = एताम्, दीपमानां प्रतिकृतिं = शकुन्तलाचित्रम् रक्षतु = त्वया एतच्चित्रं गोपनीयम्। यदि देवी एतदवस्थं मामवलोकयेत्तदा कुपितायाः तस्याः प्रसादनं दुःशकं स्यात्। यदि च सा मया प्रयत्नलिखितामिमां शकुन्तलाप्रतिकृतिम् पश्येत् तर्हि नूनमीर्ष्यया एनां नाशयेत्। अतो भवानिमां प्रतिकृतिं गृहीत्वा इतः शीघ्रमपयातु इति तात्पर्यम्।

**विदूषकः**—देव्यागमनश्रवणेन विदूषकः ससंभ्रममाह—आत्मानमिति भण=आत्मानमपि गोपायेति कुतो न कथ्यते, चित्रं गोपायेत्येव किमुच्यते इति शेषः। आत्मानं विदूषकं राजानं वा इति = एवं भण = वद, भवानात्मानं रक्षतु इति कथयेत्यर्थः। किं

---

**विदूषक**—सौभाग्य से तुम छूट गई।

**चतुरिका**—जबतक महारानी के वृक्ष की शाखा में फँसे दुपट्टे को तरलिका छुड़ाने लगी तबतक मैं भागकर चली आई।

**राजा**—महारानी आ रही हैं और वह इस समय अत्यधिक मानवती हैं और गर्वीली हो गई हैं। अतः आप इस चित्र की रक्षा करें।

**विदूषक**—यह कहो कि अपनी रक्षा करो ( **चित्रपट लेकर उठ जाता है** ) यदि आप अन्तःपुर के काल से मुक्त हो जाइएगा तो मुझे मेघप्रतिच्छन्द नामक महल में पुकारना। इसका

**सानुमती**—अण्णसंकंतहिअओ वि पढमसंभावणं अवेक्खदि सिढिलसोहदो दाणिं एसो। [ **अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमसंभावनामपेक्षते शिथिलसौहार्द इदानीमेषः।** ]

( प्रविश्य पत्रहस्ता )

**प्रतीहारी**—जेदु जेदु देवो। [ **जयतु जयतु देवः।** ]

**राजा**—वेत्रवति न खल्वन्तरा दृष्टा त्वया देवी।

---

मन्यसे प्रकृतिमात्रं नाशयेद्देवी ? मामपि हन्याद् यदि पश्येत् तन्न केवलं प्रतिकृतिरपि—तु मया तत्सकाशात् आत्मापि रक्षणीय इति भावः। यदि=चेत् भवान् अन्तःपुरकाल-कूटात्—अन्तःपुरम्=अवरोधनेव कालकूटं महाविषमिति अन्तःपुरकालकूटं तस्मात् अन्तःपुरकालकूटात्=अन्तःपुरदेवीकलहात् वसुमत्याः प्रपश्चात् मोक्ष्यते=मुक्तो भविष्यति तदा=तर्हि मेघप्रतिच्छन्दके=मेघप्रतिछन्दनामके प्रसादे=राजभवने शब्दापय=शब्दं कारय, आह्वाय आकारय, इतो विमुच्य मेघप्रतिछन्दके भवता आगन्तव्यं तत्रैव चाहमन्वेष्टव्य इत्याशयः। ( इति=एवमुक्त्वा ततः द्रुतपदं—द्रुतानि=आशूनि पदानि=चरणक्षेपाः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा द्रुतपदम् त्वरितपदन्यासम् निष्क्रान्तः=निर्गतः।

**सानुमती**—अथाप्सरा राजवचनं निशम्य तस्य देवी विषयेऽसाधारणं दाक्षिण्यमवगत्य च सविस्मयं श्लाघमाना वदति—अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि—अन्यस्यां शकुन्तलायां संक्रान्तं=आसक्तं हृदयं=मनो यस्य स तादृशोऽपि शकुन्तलासक्तचित्तोऽपि प्रथमा=पूर्वमहिषी तत्सम्भावनं=तद्बहुमानम्, पूर्वानुरागम् यद्वा प्रथमा=प्राक्कृता सम्भावना=सत्क्रिया पूर्वं-दर्शिता या वसुमत्यां प्रीतिः ताम् अपेक्षते=मानयति। शिथिलसौहार्दः—शिथिलं=मन्दं सौहार्दं=वसुमत्या प्रेम यस्य सः तथाविधः सर्वेश्वरोऽपि सन्नयं दुष्यन्तः देव्याः=वसुमत्या सकाशात् शकुन्तलाचित्रं निगूहति तत्र कारणं प्रथमदर्शितप्रणयगौरवम्, न तु वसुमतीभयमितिभावः।

( प्रविश्य=आगत्य पत्रहस्ता पत्रं=लेख्यं हस्ते=करे यस्याः सा तादृशी पत्रहस्ता )

**प्रतीहारी**—अथ राज्ञो विरहवेदनायाः परिपोषं प्रदर्शयितुमनपत्यतादुःखं वर्णयिष्यन् कविः प्रतीहार्याः प्रवेशमाह—जयतु जयतु देवः=सर्वोत्कर्षेण वर्ततां महाराजः।

**राजा**—वेत्रवति! हे द्वारपालिके! अन्तरा=मार्गमध्ये त्वया न खलु राज्ञी=देवी वसुमती दृष्टा=अवलोकिता।

---

अर्थ है मेघ के समान 'मेघस्य प्रतिच्छन्दः यस्य सः तस्मिन् मेघप्रतिच्छन्द'—उस महल की अधिक ऊँचाई होने के कारण यह नाम दिया जाना उचित ही है।

**( यह कहकर जल्दी जल्दी पैर बढ़ाता हुआ निकल जाता है )**

**सानुमती**—दूसरी स्त्री शकुन्तला में आसक्त भी यह राजा पूर्वप्रणय की रक्षा करता है। सम्प्रति यह वसुमती के प्रति शिथिल प्रेमवाला हो गया है। अर्थात् वसुमती के प्रति अब इसका प्रेम कम हो गया है।

**( हाथ में पत्र ली हुई प्रवेश करके )**

**प्रतीहारी**—जय हो, जय हो महाराज की!

**राजा**—वेत्रवती तुमने मार्ग में महारानी वसुमती को नहीं देखा है ?

**प्रतीहारी**—अह इं ! पत्तहत्थं मं देक्खिअ पडिणिउत्ता । [ **अथ किम् ? पत्रहस्तां मां प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता ।** ]

**राजा**—कार्यज्ञा कार्योपरोधं मे परिहरति ।

**प्रतीहारी**—देव अमच्चो विण्णवेदि-अत्थ-जादस्स गणणाबहुलदाए एक्कं एव्व पोरकज्जं अवेक्खिदं तं देवो पत्तारूढं पच्चक्खीकरेदु त्ति । [**देव अमात्यो विज्ञापयति-अर्थजातस्य गणनाबहुलतयैकमेव पौरकार्यमवेक्षितं तद्देवः पत्रारूढं प्रत्यक्षीकरोतु इति ।**]

**राजा**—इतः [1]पत्रिकां दर्शय । ( प्रतिहार्युपनयति )

**राजा**—( अनुवाच्य ) कथम् । समुद्रव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नाम नौव्यसने विपन्नः । अनपत्यश्च किल तपस्वी । 'राजगामी तस्यार्थसंचयः' इत्येतद-

---

**प्रतीहारी**—अथ किं पत्रहस्तां = आलेख्यकरां मां प्रेक्ष्य = दृष्ट्वा अवलोक्य प्रतिनिवृत्ता = स्वभवनमेव गता, अन्तःपुरमेव प्रविष्टा ।

**राजा**—आवश्यकं कार्यं = करणीयं जानाति = अवगच्छतीति कार्यज्ञा = अवसरज्ञा, कार्याकार्यविवेकिनी राजकार्यविशेषज्ञा राजनियोगगौरवाभिज्ञा सती मे = मम कार्योपरोधं राजकार्यबाधां परिहरति = त्यजति । राजकार्यस्य विघ्नजननमसमीचीनं कार्यमिति मत्वा निवर्तते देवीतिभावः ।

**प्रतीहारी**—देव != महाराज ! अमात्यः=मन्त्री विज्ञापयति=निवेदयति अर्थजातस्य= वित्तकरस्य तैस्तैरधिकरणकैः प्रेषितस्य समूहस्य गणनायाः संख्यानस्य बहुलतया= आधिक्येन एकमेव पौराणां = नगरनिवासिनां कार्यं = कृत्यं, आवेक्षितम् = आलोकितं दृष्टम् तत् = कार्यं देवः = महाराजः पत्रारूढं = आलेखबद्धम् प्रत्यक्षीकरोतु = स्वयमालोचयतु इति ।

**राजा**—इतः पत्रिकां दर्शय = पत्रिकां मत्समीपमुपनय । ( प्रतिहारी = द्वारपालिका उपनयति = राज्ञः समीपे नयति समर्पयति )

**राजा**—( अनुवाच्य = निःशब्दं पठित्वा ) कथं = अहो, समुद्रव्यवहारी = समुद्रेण सागरमार्गेण व्यवहरति = पणते क्रयविक्रयकर्म कुरुते यः स समुद्रव्यवहारी, सागरमार्गव्यापारी पोतवणिक् सार्थवाहः = सार्थान् व्यवहरति यः सः समुद्रवाणिज्यकर्तॄन् वाहयति देशान्तराणि यः सः सार्थवाहः = वणिक्पतिः धनमित्रः नौव्यसने नवां = पोतानां व्यसनं = भ्रंशः जलमज्जनं तस्मिन् 'व्यसनं विपदि

---

**प्रतीहारी**—और क्या ( अर्थात् दिखलाई पड़ी थी ), किन्तु मुझे हाथ में पत्र ली हुई देखकर वापस हो गई ।

**राजा**—कार्य को समझने वाली महारानी मेरे राजकीय कार्य में विघ्न नहीं डालती है ।

**प्रतीहारी**—मन्त्री निवेदन करते हैं कि कररूप में प्राप्त द्रव्य समूह की गणना की अधिकता के कारण आज एक ही नागरिक कार्य देखा गया है, वह इस पत्र में चढ़ा हुआ है । महाराज इसे देख लें ।

**राजा**—पत्र मुझे दिखाओ । **( प्रतीहारी पत्र देती है )**

**राजा**—**( पढ़कर )** यह क्या, समुद्र के मार्ग से व्यापार करने वाला धनमित्र नामक व्यापारियों का मुखिया नौका दुर्घटना में मर गया, वह बेचारा निःसन्तान था । अतः उसका

---

पाठा०—१. पत्रं ।

मात्येन लिखितम्। कष्टं खल्वनपत्यता। बहुधनत्वाद्बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्। विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्यासु स्यात्।

**प्रतीहारी**—देव ! दाणिं एव्व साकेदअस्स सेट्ठिणो दुहिआ णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ से सुणीअदि। [ देव, इदानीमेव साकेतस्य श्रेष्ठिनो दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जायाऽस्य श्रूयते। ]

**राजा**--ननु गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति। गच्छ एवममात्यं ब्रूहि।

---

भ्रंशे' इत्यमरः। विपन्नः=मृतः नौकादुर्घटनया अनपत्यः=सन्ततिरहितः किल =निश्चयेन स तपस्वी=अनुकम्पापात्रम् वराकः राजानं=देशशासकं गच्छति मिलतीति राजगामी=राज्यकोषगामी, राजैकलभ्यः तस्य धनमित्रस्य वणिजः अर्थसञ्चयः=धनसंग्रहः राजैव तस्याधिकारीति निश्चीयतेऽस्माभिरिति=एतत् अमात्येन=मंत्रिणा लिखितम्=अङ्कितम् यथा भवते रोचते तथानुज्ञायतां भवानिति भावः 'इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः'। इति मनुः। धनमित्रस्यावस्थां विचिन्त्य राजा सविषादमाह—कष्टं=दुःखप्रदम् दुःखोत्पादिका खलु=निश्चयेन अन-पत्यता=निःसन्तानता बहुधनं यस्यासो बहुधनः तस्य भावः तत्त्वं तस्मात् बहुधनत्वात्=आढ्यत्वात् बह्व्यः पत्न्यो यस्य सः बहुपत्नीकः तेन बहुपत्नीकेन=अनेकभार्येण, भार्या-बाहुल्यवता तत्रभवता श्रेष्ठिना=धनमित्रेण भवितव्यं=भाव्यम्। विचार्यतां=निपुणं निरीक्ष्यताम्, अन्विष्यताम् तस्य=धनमित्रस्य वणिजः भार्यासु=पत्नीषु यदि=चेत् काचित्=कापि भार्या आपन्नसत्वा—आपन्नं=प्राप्तं सत्त्वं=जीवः या सा आपन्न-सत्त्वा=गर्भिणी स्यात्=भवेत्।

**प्रतीहारी**—देव ! =महाराज ! इदानीमेव=अधुनैव साकेतस्य=अयोध्यायाः श्रेष्ठिनः=धनिकस्य वणिजः दुहिता=पुत्री निर्वृत्तपुंसवनान्निर्वृत्तं पुंसवनं=गर्भाधानो-त्तरं कर्तव्यः पुसवनाख्यसंस्कारविशेषो यस्यासौ निर्वृत्तपुंसवना, जातपुंसवनसंस्कारा अस्य=समुद्रवणिजः जाया=भार्यास्तीति, श्रूयते=आकर्ण्यते।

**राजा**--ननु=निश्चयेन गर्भः=गर्भस्थो जीवः गर्भस्थमपत्यं वा पित्र्यं पितुरागतं पैतृकं पितृसम्बन्धिरिक्थं=धनं, 'रिक्थमृक्थं धनं वसु' इत्यमरः। अर्हति=लब्धुं योग्योऽस्ति। गच्छ=याहि एवं=इत्थं पूर्वोक्तम् अमात्यं=मन्त्रिणं पिशुननामानं ब्रूहि=वद।

---

धनसंग्रह राजा को प्राप्त होना चाहिए। यह अमात्य ने लिखा है। निश्चय ही निःसन्तान होना महान् कष्टकारक है। वेत्रवती उस व्यक्ति के पास अधिक धन है। अतः उसकी अनेक स्त्रियाँ होनी चाहिए। पता लगाया जाय, शायद उसकी स्त्रियों में कोई गर्भिणी हो।

**प्रतीहारी**—महाराज ! सुनने में आ रहा है कि अयोध्या के निवासी सेठ की पुत्री जिसका पुंसवन संस्कार अभी-अभी सम्पन्न हुआ है, इसकी पत्नी है।

**विशेष**--पुंसवन संस्कार संस्कारों में दूसरा संस्कार है जो गर्भ का निश्चित पता चल जानेपर तीसरे माह में किया जाता था। इस संस्कार से पिता पुत्र की उत्पत्ति की कामना करता था। यदि तीसरे माह में पता न चले तो चतुर्थ मास में यह किया जाता है—

व्यक्ते गर्भे तृतीये तु मासे पुंसवनं भवेत्।
गर्भेऽव्यक्ते तृतीये चतुर्थे मासि वा भवेत्॥ ( शौनकसंहिता ४।२२ )

**राजा**—तो गर्भस्थ बालक पैत्रिक धन का अधिकारी है, आओ ऐसा मन्त्री से कह दो।

**प्रतीहारी**—जं देवो आणवेदि। [ **यद्देव आज्ञापयति।** ] ( **इति प्रस्थिता** )

**राजा**—एहि तावत्।

**प्रतीहारी**—इअम्हि। [ **इयमस्मि।** ]

**राजा**—किमनेन संततिरस्ति नास्तीति।

**येन तेन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।**
**स स पापादृते तासां [1]दुष्यन्त इति घुष्यताम्॥ २३॥**

---

**प्रतीहारी**—यत् = यथा देवः = महाराजः आज्ञापयति = आदिशति तथा क्रियते ( इति = एवमुक्त्वा ततः प्रस्थिता = प्रचलिता )।

**राजा**—नृपोऽपरमपि किञ्चिद्वक्तुकामः प्रस्थितामपि प्रतिहारीं निर्वतयितुमाह—एहि तावत् = प्रतिनिवर्तस्व तावत् किञ्चित् श्रुत्वा गन्तव्यम्।

**प्रतीहारी**—इयं = एषा उपस्थिता अस्मि। अज्ञापयतु महाराज इत्याशयः।

**राजा**—सन्ततिरस्ति = सन्तानो विद्यते, नास्ति = न वर्तते इति अनेन विचारेण किं = किं प्रयोजनं व्यर्थं मद्राज्ये प्रजानां सन्ततिरस्तु वा, मास्तु वेति विचारो न कर्तव्य इति तात्पर्यम्।

**अन्वयः**—प्रजाः येन येन स्निग्धेन बन्धुना वियुज्यन्ते, पापात् ऋते दुष्यन्तः तासां स स इति घुष्यताम्।

धनमित्रस्यार्थंजातं तद्बान्धवैरेवोपभुज्यतामित्यर्थं दर्शयितुं सामान्यतया निजप्रजाजनेषु घोषणीयमर्थं विवृणोति—**येन येनेति**। प्रजाः = जनाः येन येन स्निग्धेन = स्नेहयुक्तेन प्रियेण बन्धुना = बान्धवेन पितृमातृपुत्रादिना स्वजनेन आत्मीयेन वियुज्यन्ते वियुक्ता भवन्ति पापादृते = दुरितेन विना पातेकिनं विहाय यद्वा स्त्रीणां भर्तृत्वेन विना पुंसां भार्यात्वेन दुष्यन्तः = तन्नामकोऽहं राजा तासां = प्रजाजनानां स स = येन येन बन्धुना प्रजाः वियुक्ताः स स बन्धुः इति = इत्थं घुष्यतां भेरीप्रहारपूर्वकमावेधतां प्रजायां घोषयितव्यमितिभावः।

**अयं भावः**—मम राज्ये प्रजासु यः कश्चित् जनः येन येनात्मीयेन जनेन वियुक्तो-

---

**विशेष**—इससे पता चलता है कि दुष्यन्त अत्यन्त न्यायशील राजा थे मन्त्री ने सुझाव दिया कि धन खजाने में ले लिया जाय, किन्तु उन्होंने गर्भस्थ बालक को पिता के धन का उत्तराधिकारी बनाने का आदेश देकर न्यायप्रियता का प्रदर्शन किया। न्याय का कर्म मन्त्री करता था, अन्तिम निर्णय देना राजा का कार्य था। मन्त्री मुकदमे का निष्कर्ष निकाल कर निर्णय के लिए राजा के पास उपस्थित कर देता था।

**प्रतीहारी**—जैसी महाराज की आज्ञा। ( **ऐसा कहकर चल पड़ती है** )

**राजा**—जरा इधर आओ।

**प्रतीहारी**—महाराज मैं यह उपस्थित हूँ।

**राजा**—इससे क्या मतलब कि सन्तान है या नहीं?

प्रजाजन जिस-जिस स्नेही भाई बन्धुओं से नियुक्त होते हैं, पाप के कार्य के अतिरिक्त ( मैं ) दुष्यन्त उनका वह वह है, यह घोषित कर दिया जाय॥ २३॥

**विशेष**—दुष्यन्त न्याय-प्रिय राजा थे। यदि किसी का पिता मर गया तो, दुष्यन्त ने उस युवक का भरणपोषण पिता के समान किया। किसी का भाई मर गया हो तो दुष्यन्त ने भाई की

---

पाठा०—१. दुःषन्त इति घुष्यताम्।

**प्रतीहारी**—एव्वं णाम घोसइदव्वं। (निष्क्रम्य, पुनः प्रविश्य) काले पवुट्ठं विअ अहिणंदिदं देवस्स सासणं। [ **एवं नाम घोषयितव्यम्। काले प्रवृष्टमिवाभिनन्दितं देवस्य शासनम्।** ]

**राजा**—( दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य ) एवं भोः संततिच्छेदनिरवलम्बानां कुलानां मूलपुरुषावसाने संपदः परमुपतिष्ठन्ति। ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रीरकाल इवोप्तबीजा भूरेव वृत्ता।

---

भवेत् तेन तेनाहमेव स स आत्मीयो बन्धुरित्युद्घुष्यतां केवलं पापिनां जनानां बन्धुनाहं भविष्यामि। यस्य पिता मृतः तस्य दुष्यन्त एव पिता भ्रातृविगमे दुष्यन्त एव भ्राता पुत्रविरहे दुष्यन्त एव पुत्रः किन्तु यस्याः पतिः मृतः तस्यास्तु नाहं पतिः तथा सति उभयोरेव पातकित्वं प्रसज्येत। इत्येवमेव प्रजायां घोषणा क्रियताम्। तस्माद् धनमित्रस्यानपत्यत्वे तदीयमर्थजातं तद्बान्धवा एव सुखमुपभुञ्जन्तु, अत्र छेकवृत्त्यनुप्रासावलङ्कारौ अनुष्टुब् वृत्तं च॥ २३॥

**प्रतीहारी**—द्वारपालिका कथयति—एवं नाम घोषयितव्यं पूर्वोक्तप्रकारेणैव निश्चयेन घोषणा करिष्यते एवमेव घोषयिष्यामीत्यर्थः ( निष्क्रम्य = निर्गत्य पुनः = भूय प्रविश्य = अन्तरागत्य ) काले = यथासमयं अपेक्षितसमये प्रवृष्टं = प्रवर्षणं वर्षेव प्रभूतवृष्टिरिवं अभिनन्दितं = साधुप्रशंसितम् स्वागतविषयीकृतम् देवस्य = महाराजस्य शासनम् = राजघोषणा आज्ञा। उचितसमये पर्जन्यागमनमिव राजशासनं लोकैः पूजितम्।

**राजा**—नृपोऽनपत्यावस्थामेव चिन्तयन् स्वयमाह—( दीर्घम् = आयतं, उष्णं = तप्तम्, च निश्वस्य ) एवं = एवमेव, धनमित्रश्रेष्ठिवत्, भोः = अये! सन्ततेः = सन्तानस्य छेदेन = अभावेन निरवलम्बानां = निराश्रितानाम्, कुलानां = वंशानाम्, मूलपुरुषावसाने = कारणपुरुषस्यान्ते कारणपुरुषनाशे सम्पदः = वसूनि परं = अन्य जनम् उपतिष्ठन्ति = संगच्छन्ते। मम = दुष्यन्तस्यापि अन्ते = अवसाने, परलोकगमने पुरोः वंशस्य श्रीः पुरुवंशश्रीः = पुरुकुलराजलक्ष्मी। अकाले = असमये, उप्तबीजा उप्तं बीजं

---

तरह उसकी सहायता की, किन्तु यदि किसी युवती स्त्री का पति मर जाय और वह चाहे कि दुष्न्त मेरे पति हो जाय तो यह सम्भव न था, क्योंकि उसमें पाप का सम्बन्ध है। इस पापकर्म में दुष्यन्त की प्रवृत्ति न थी। ऐसा समझने में पाप है। अतः इन परिस्थितियों को अपवाद बनाया गया है। यदि कोई पापी मरे तो उसकी जगह दुष्यन्त अपने को प्रस्तुत करने को उद्यत नहीं। पापी के सम्बन्धी कष्ट उठावें उसमें राजा सहानुभूति नहीं। इससे प्रजा के प्रति राजा दुष्यन्त की आत्मीयता व्यक्त होती है। अर्थात् यदि किसी स्त्री का पति मर जायेगा तो मैं उसका पति तो नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें पाप लगेगा, किन्तु यदि किसी का पुत्र या पिता मर जाये तो मैं ही उसका पुत्र या पिता या भाई की जगह हूँ। अतः मेरी प्रजा में किसी को किसी प्रकार चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है यह घोषणा राज्य में करा दें।

**प्रतीहारी**—ठीक ही है ऐसा हो घोषित कर दिया जायेगा ( **निकलकर, पुनः प्रवेश करके** ) महाराज की घोषणा समय पर हुई वृष्टि के समान अभिनन्दित की गई है। अर्थात् आपकी घोषणा का हार्दिक अभिनन्दन प्रजा ने किया है।

**राजा**—( **लम्बी साँस लेकर** ) ओह, इस प्रकार सन्तति के अभाव में निराश्रित कुलों की सम्पतियाँ वंश के व्यक्ति के मर जाने पर दूसरे को प्राप्त हो जाती हैं। मेरे अभाव में भी पुरुवंश की लक्ष्मी की यही हालत होगी।

**प्रतीहारी**—पडिहदं अमंगलं [ **प्रतिहतममङ्गलम्** । ]

**राजा**—धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम् ।

**सानुमती**—असंसअं सहिं एव्व हिअए करिअ णिंदिदो णेण अप्पा । [ असंशयं सखीमेव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा । ]

**राजा**—संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा ।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा ॥ २४ ॥

---

यस्यां सा उप्तबीजा = आरोपितबीजा भूरिव = भूमिरिव एवं वृत्ता = ईदृशीं दशां गता । शोचनीया संवृत्तेत्यर्थः ।

**प्रतीहारी**—अमङ्गलं = अपशकुनं, भवदन्तरूपम् पौरवश्रियः पराश्रयणे च प्रतिहतं= निराकृतं नष्टं भवतु ।

**राजा**—आत्मानमेवापराधिनं मन्यमानो नृपः सनिर्वेदमाह—उपस्थितं = स्वयं प्राप्तं यच्छ्रेयः सगर्भशकुन्तलारूपं कल्याणम् तत् अवमन्यते निराकरोतीति उपस्थितश्रेयोऽवमानी तमुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम् = स्वयमुपस्थितशकुन्तलातिरस्कारिणम् मा धिक् ।

**सानुमती** = अप्सराः स्वगतमाह—असंशयं-निःसन्देहं सखीमेव=आलीमेव शकुन्तलामेव हृदये = मनसि कृत्वा = विधाय विचार्य अनेन = दुष्यन्तेन आत्मा = स्वः निन्दितः = गर्हितः ।

**अन्वयः**—काले उप्तबीजा महते फलाय कल्पिष्यमाणा वसुन्धरेव कुलप्रतिष्ठा धर्मपत्नी आत्मनि संरोपिताऽपि मया त्यक्ता नाम ।

प्रागुक्तमेवार्थं दुःखातिशयेन विशदीकुर्वन्नब्रवीत्—**समारोपितेति** । काले = बीजारोपणसमये, अपेक्षिते समये उप्तानि आहितानि बीजानि यस्यां सा उप्तबीजा कृतबीजवपना न्यस्तबीजा महते = प्रभूताय परिणामाय, फलोत्पत्तये फलाय = कल्याणलाभाय सन्तानरूपाय कल्पिष्यमाणा प्रसवित्री सम्पत्स्यमाना वसुन्धरेव रत्नमयी भूमिरिव काले = ऋतुकाले निहितवीर्या महत् = बृहते फलाय = सन्तारूपाय कल्पिष्यमाणा = प्रसवित्री कुलप्रतिष्ठा = वंशालम्बनभूता—

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।
समुद्ररशना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ॥ इति प्रागुक्तेः ॥

---

**प्रतीहारी**—अमङ्गल विनष्ट हो। अर्थात् ऐसा अमङ्गल वचन आप न कहें ।

**राजा**—प्राप्त ( उपस्थित ) कल्याण ( आपन्नसत्वा शकुन्तला ) का अपमान करने वाले मुझे धिक्कार है ।

**सानुमती**—निश्चय ही सखी शकुन्तला को ही मन में रखकर इन्होंने अपनी निन्दा की है ।

**राजा**—उचित समय पर बोया बीज, महान फल को देने में समर्थ पृथ्वी की तरह ऋतुकाल की समाप्ति पर गर्भाधान की गई, महान् पुत्ररूप परिणाम को देने में समर्थ वंश की अधारभूत अर्द्धाङ्गिनी अपने आपके समारोपित कर देने पर भी मेरे द्वारा परित्याग कर दी गई । यह अत्यन्त कुत्सित कार्य है ॥ २४ ॥

**विशेष**—भारत में धार्मिक साहित्य की मान्यता है कि पुत्र पिता के अभिन्न होता है, पिता ही पुत्र के रूप में जन्म लेता है । वह अपना ही गर्भ के रूप में आधान करता है । इस प्रकार मनुष्य

**सानुमती**—अपरिच्छिण्णा दाणिं दे संददी भविस्सदि। [ **अपरिच्छिन्नेदानीं ते संततिर्भविष्यति। ]**

**चतुरिका**—( जनान्तिकम् ) अए इमिणा सत्थवाहवुत्तंतेण द्विउणुव्वेओ भट्टा। णं अस्सासिदुं मेहप्पडिच्छंदादो अज्जं माढव्वं गेण्हिअ आअच्छामि। [ **अयि अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन द्विगुणोद्वेगो भर्त्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दादार्यं माढव्यं गृहीत्वा-गच्छामि। ]**

---

कुलस्य = पुरुवंशस्य प्रतिष्ठा = अवलम्बनरूपा स्थितिहेतुभूता धर्मपत्नी = धर्मभार्या अर्द्धांगिनी शकुन्तला आत्मनि = स्वस्मिन् संरोपिते पुनगर्भे उत्पादितेऽपि वीर्यनिषेकात् गर्भ-रूपेण आत्मनि तस्या शकुन्तलायां योजितेऽपि—

पतिः भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जाययास्तद्धि जायत्वं यदस्यां जायते पुनः॥ ( म० स्मृ० ९।८ )

'आत्मा प्रविश्य जायायां पुत्ररूपेण जायते।' इति स्मृतेः 'आत्मा वै पुत्रनामासि' (आश्वलायनगृह्यसूत्रे १।१५ ) इत्यात्मनः पुत्रत्वं श्रुतेश्च मया = दुष्यन्तेन धार्मिकेण त्यक्ता नाम = परित्यक्ता निराकृता नाम। मयैव निहितगर्भायाः आसन्नप्रसवाया तस्याः तत्काले परित्यागोऽत्यन्तमनुचित आसीदित्यहो दौर्भाग्यविलसितम्। अत्रोपमा काव्यलिङ्गं चालङ्कारौ छन्दश्चोपजातिः।

**सानुमती**—अनपत्यताविषये दुष्यन्तस्य विलापं निशम्य सानुमती दयमाना स्वगतं तस्मै शुभाशंसनं कुरुते—इदानीं = साम्प्रतं शकुन्तलायां तव पुत्रे सर्वदमने जाते सति सन्ततिः = वंशपरम्परा कुलप्रवाहः अपरिच्छिन्ना = विच्छेदरहिता, निर्बाधा भविष्यति।

**चतुरिका**—( जनान्तिकम् ) अये ! अनेन = प्रस्तुतेन सार्थवाहवृत्तान्तेन सार्थवाहस्य धनमित्रस्य वणिक्पतेः वृत्तान्तेन = वार्तया द्विगुणः = द्विगुणितः उद्वेगः=आकुलता यस्य स द्विगुणितपीडः, भर्ता = स्वामी, एनं = इमम् आश्वासयितुं = उपशान्त्वयितुं मेघप्रति-च्छन्दात् = तन्नामकात् सौधात् आर्यं = श्रीमन्तम् माधव्यं = विदूषकं गृहीत्वा = आनीय, आगच्छामि।

---

अपनी स्त्री के पेट में वीर्यद्वारा स्वयं ही गर्भ रूप में प्रविष्ट होकर उत्पन्न होता है। इसीलिए पुत्र को आत्मा कहते हैं—'आत्मा वै जायते पुत्रः' 'गर्भो भूत्वा जायां प्रविशति'। 'आत्मा वै पुत्रः नामासि'। ( आ० गृ० सू० ११५ ) इत्यादि वचन इसमें प्रमाण है। पुत्र प्रसव से कुल चलता है, नष्ट नहीं होता। अतः सपुत्रा स्त्री कुल-प्रतिष्ठा कही गई है। इस पद में सम्भावना के लिए नाम शब्द का प्रयोग है क्योंकि शकुन्तला को गर्भवती जानकर यह संभावना थी कि इसके गर्भ में पुत्र है। यहाँ आत्मा और बीज, धर्मपत्नी और वसुन्धरा, तथा प्रतिष्ठा एवं फल समारोपित तथा उस की तुलना कर जोड़ी लगाई गई है।

**सानुमती**—अब तुम्हारी वंशपरम्परा अविच्छिन्न होगी।

**विशेष**—सानुमती अप्सरा का संकेत शकुन्तला के गर्भ से है। पुत्र हो चुका है। अब वंश विच्छेद का भ्रम व्यर्थ है।

**चतुरिका**—( **मुख के बगल हाथ से आड़कर एक ओर** ) अरे, सार्थवाह के इस वृत्तान्त से स्वामी को व्याकुलता दुगनी हो गई है। इनकी सान्त्वना प्रदान करने के लिए मेघ-प्रतिच्छन्द नामक प्रासाद से माधव्य को लेकर आओ।

**प्रतीहारी**—सुट्ठु भणसि । [ सुष्ठु भणसि ] ( इति निष्क्रान्ता )

**राजा**—अहो दुष्यन्तस्य संशयमारूढाः पिण्डभाजः । कुतः—

**अस्मात्परं बत [1]यथाश्रुति संभृतानि को नः कुले निवपनानि [2]नियच्छतीति ।**
**नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं [3]धौताश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति ॥ २५ ॥**

( इति मोहमुपगतः )

---

**प्रतीहारी**—सुष्ठु भणसि = समीचीनं कथयसि ( इति = एवमुक्त्वा निष्क्रान्ता = निर्गता ) ।

**राजा**—अनपत्यतया न केवलमिह लोकस्य, अपितु परलोकस्यापि कल्याणस्य विघात उपस्थितम् उत्पन्नं शोचति—अहो = हन्त दुष्यन्तस्य मम संशयं = संकटम् अतः परमस्माकं पिण्डलोपो भविष्यतीति सन्देहम् आरुढाः = प्राप्ताः पिण्डभाजः = पिण्डभोगिनः पितरः नूनमन्नकृच्छ्रमुत्पश्यन्ति पितरः ।

**अन्वयः**—नूनं बत अस्मात् परं नः कुले यथाश्रुति संभृतानि निवपनानि कः करिष्यति ? इति पितरः प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तम् उदकम् धौताश्रुशेषं पिबन्ति ।

सन्तत्यभावादस्मात्परं पिण्डदातुरभावात् पितरः संशयारूढा जायन्ते । इति तेषां तात्कालिकीं स्थितिं संभावयन् प्रजा ब्रवीति—अस्मात्परमिति । बत = हन्त, अस्मात् इतो दुष्यन्तात् परं = पश्चात् नः = अस्माकं कुले = वंशे पुरुवंशे श्रुतिमतिक्रम्य यथाश्रुति = वेदोदितेन विधिना, वेदोक्तविधानपूर्वकम् संभृतानि सञ्चितानि, बहूपकरणयुक्तानि निवपनानि श्राद्धादीनि पितृतर्पणादीनि पिण्डदानानि 'पितृदानं निवापः स्यात्' इत्यमरः । को नियच्छति = को दास्यति, न कोऽपीत्यर्थः । इति=एवं सञ्चिन्त्य पितरः = पितृलोकं गताः मम पूर्वजाः प्रसूतिविकलेन प्रसूत्या = सन्तत्या विकलेन = रहितेन अनपत्येन मया दुष्यन्तेन प्रसिक्तम् = पितृभ्यः प्रदत्तम् उदकम् = जलम् तिलमिश्रितं जलं तिलाञ्जलिं धौताश्रुशेषं धौतानि = क्षालितानि अश्रूणि = वाष्पजलानि येन तस्मात् शेषम् = अवशिष्टं यथा स्यात्तथा धौताश्रुशेषं पिबन्ति = आचामन्ति । शोकाश्रुणाविलं मुखं प्रक्षाल्येव तर्पणजलं पिबन्ति । ( इति = एवमुक्त्वा मोहमुपगतः = मूर्छितः )

**अयं भावः**—इदानीं यावत् मया वेदविधानानुसारं श्राद्धतर्पणादिभिः संभाविताः परलोकं गता मे पितरः ममानपत्यतया मत्तः परं तेभ्यः कः श्राद्धादिकं करिष्यति । मन्ये, अग्रे कोऽपि पिण्डोदकादिदाता नास्तीति रुदन्तस्ते मयार्पितेन तर्पणोदकेन पूर्वं वाष्पं प्रमार्ज्य पश्चात्तच्छेषं जलं पिबन्तीति भावः । अत्रोत्प्रेक्षाकाव्यलिङ्गालङ्कारौ वसन्ततिलकावृत्तं च ॥ २५ ॥

---

**प्रतिहारी**—ठीक कह रही हो । **( ऐसा कहकर बाहर निकल जाती है )** ।

**राजा**—ओह, मेरे पितर संशय में पड़ गये हैं, क्योंकि—

बड़े खेद की बात है कि मेरे बाद मेरे वंश में वेदोक्तविधि से तैयार किये गये श्राद्ध तथा तर्पण को कौन प्रदान करेगा, यह सोचकर निश्चय ही हमारे पितर लोग सन्तानहीन मेरे द्वारा दिये गये जल के अश्रुमार्जन से अवशिष्ट भाग को ही पाते हैं । **( ऐसा कहकर मूर्छित हो जाता है )**

---

पाठा०—१. यथास्मृति । २. करिष्यतीति । ३. धौताश्रुसेकमुदकं ।

**चतुरिका**—( ससंभ्रममवलोक्य ) समस्ससदु भट्टा । [ **समाश्वसितु भर्त्ता ।** ]

**सानुमती**—हद्धी हद्धी । सदि खु दीवे ववधाणदोसेण एसो अंधआरदोसं अणुहोदि । अहं दाणि एव्व णिव्वुदं करेमि । अहवा सुदं मए सउंदलं समस्ससअंतीए महेंदजणणीए मुहादोजण्णभाओस्सुआ देवा एव्व तह अणुचिट्ठिस्संति जहअइरेण धम्मपदिणिं भट्टा अहिणंदिस्सदि त्ति । ता ण जुत्तं कालं पडिपालिदुं । जाव इमिणा वुत्तंतेण पिअसहिं समस्सासेमि । [ **हा धिक् ! हा धिक् ! सति खलु दीपे व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारदोषमनुभवति । अहमिदानीमेव निर्वृतं करोमि । अथवा श्रुतं मया शकुन्तलां समाश्वासयन्त्या महेन्द्रजनन्या मुखाद्यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथानुष्ठास्यन्ति यथाचिरेण धर्मपत्नीं भर्त्ताभिनन्दिष्यतीति । तन्न युक्तं कालं प्रतिपालयितुम् । यावदनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि ।** ] ( इत्युद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता )

---

**चतुरिका**—( ससंभ्रमं = संभ्रमेण सहितं ससंभ्रमं सावेगम् अवलोक्य = दृष्ट्वा ) समाश्वसितु = धैर्यं धारयतु भर्ता = स्वामी ।

**सानुमती**—अथ सानुमती अप्सरा दुष्यन्तस्य तादृशीमवस्थामालोक्य सकरुणमाह—हा धिक् हा धिक्-हा हन्त दैवं धिक् हा धिक् सति खलु = वर्तमानऽपि दीपे = वंशदीपके वंशाङ्कुरे पुत्रे सर्वदमने व्यवधानदोषेण देशान्तरावरणदोषेण अज्ञ नदोषेण वा एषः = अयं राजर्षि दुष्यन्तः अन्धकारदोषं = अन्धकारः शोक एव दोषः बाधा अन्धकारदोषः तम् अज्ञानदुःखम् अनुभवति = प्राप्नोति । अहं = सानुमती इदानीमेव = अधुनैव निर्वृत्तं = शान्तं करोमि = विदधामि पुत्रसद्भावं निवेदयामि अथवा यद्वा न विवेक्ष्यामि यद्वा श्रुतं=आकर्णितम् मया शकुन्तलां सखीम् समाश्वासयन्त्याः = उपशान्तयन्त्या महेन्द्रस्य = इन्द्रस्य मातुः = जनन्या अदितिदेव्या मुखात् = वदनात् यज्ञभागसमुत्सुका यस्य भागाय समुत्सुका इति = यागांशग्रहीतुकामाः देवा = सुरा एव तथा = तेन प्रकारेण अनुष्ठास्यन्ति = करिष्यन्ति यथा = यत् न चिरेण अविलम्बेन शीघ्रम् धर्मपत्नीं = अर्द्धाङ्गिनीं धर्मभार्यां शकुन्तलां भर्ता स्वामी दुष्यन्तः अभिनन्दिष्यति = सादरं नेष्यति इति । तत् = अतः न युक्तं नोचितम् कालं = समयं प्रतिपालयितुं अत्र प्रतीक्षितुम् विलम्बं कर्तुं यावत् अनेन वृत्तान्तेन आलेख्यविनोदनमोहोपगतादिवार्तया प्रिया = हृद्या च सा सखी = आली तां

---

**चतुरिका—( घबराहट के साथ देखकर )** आश्वस्त हो, आश्वस्त हो, स्वामी ।

**सानुमती**—हाय ! हाय ! वंश चलाने वाले पुत्र के रहते हुए भी व्यवधान दोष से ही यह राजर्षि इस प्रकार अन्धकार में पड़ा हुआ शोक का अनुभव कर रहा है । मैं अभी ही शकुन्तला का समाचार बतलाकर सुखी कर देती हूँ । अथवा मैंने शकुन्तला को धीरज बँधाती हुई इन्द्र को माता अदिति के मुख से सुना है—कि यज्ञभाग के लिए उत्सुक देवता लोग ही ऐसा उपाय करेंगे जैसे शीघ्र ही धर्मपत्नी शकुन्तला को स्वामी दुष्यन्त स्वागतपूर्वक स्वीकार करेंगे, तो इस समय की प्रतीक्षा करना ही ठीक होगा तो जबतक वृत्तान्त से प्रियसखी शकुन्तला को आश्वस्त करूँगी कि यज्ञभाग के लिए उत्सुक देवतालोग अतिशीघ्र ऐसा उपाय करेंगे जिससे तेरा पति तुझे पुनः पाकर तेरा आदर करेगा और पुत्रसहित तुझे पाकर परम प्रसन्न होगा । अतः अब मुझे यहाँ ज्यादा विलम्ब नहीं करना चाहिए । जाकर अपनी आँखों देखा वृत्तान्त बताकर शकुन्तला को धैर्य धराऊँ । **( ऐसा कहकर उद्भ्रान्त-नृत्य के साथ निकल जाती है )**

**विशेष**—यहाँ प्रयुक्त दीप पद से ध्वनित होता है कि दीपक के समान तेजस्वी पुत्र पैदा हो चुका है । पुत्र कुल का दीपक होता है । यहाँ शकुन्तला के पुत्र सर्वदमन की ओर संकेत है ।

( नेपथ्य ) अब्बम्हण्णं । [ अब्रह्मण्यम् । ]

राजा—(प्रत्यागतचेतनः कर्णं दत्वा) अये, माधव्यस्येवार्तस्वरः । कः कोऽत्र भोः ।

( प्रविश्य )

प्रतिहारी—( ससंभ्रमम् ) परित्ताअदु देवो संसअगदं वअस्सं । [ परित्रायतां देवः संशयगतं वयस्यम् । ]

राजा—केनात्तगन्धो माणवकः ।

---

प्रियसखीं शकुन्तलाम् समाश्वासयिष्यामि = उपशान्त्वयिष्यामि । ( इति = ततः उद्भ्रान्तकेन उत्पतिकरणेन निष्क्रान्ता निर्गता सानुमती )

अथ राजानं दुष्यन्तं रसान्तरे प्रवेशयितुं इन्द्रसारथेः मातलेः प्रवेशं प्रस्तौति—( नेपथ्ये = जवनिकायाम् ) ब्रह्मणि साधु ब्राह्मणस्य हितं वा ब्रह्मण्यं न ब्रह्मण्यं अब्रह्मण्यम् = नाहं वन्ध्यः, अवन्ध्योऽस्मीति भावः । 'अब्रह्मण्यमवध्योक्तौ' इत्यमरः ।

राजा—( प्रत्यागतं = निर्वृतं चेतनं = संज्ञा यस्य स प्रत्यागतचेतनः सन् कर्णं दत्त्वा = श्रवणमारोप्य ) अये ! भो ! माधव्यस्य = विदूषकस्येव आर्तस्वरः = क्लेशजनको नादः = करुण क्रन्दनम् कः कः इति सम्भ्रमे द्विरुक्तिः अत्र = इह भो ! अये ?

( प्रविश्य = अन्तरागत्य )

प्रतिहारी—( ससंभ्रममाह—) देवः = महाराजः संशय-गतं = सङ्कटप्राप्तं वयस्यं = मित्रं माधव्यम् परित्रायताम् = रक्षतु ।

राजा—केन जनेन, विधिना वा आत्तगन्धः = अभिभूतः 'आत्तगन्धोऽभिभूतः स्यात्' इत्यमरः । केनाभिभूतो माणवकः = मूर्खो मानवः । मनोरपत्यं मानवः कुत्सितो मानवः माणवः, माणव एव माणवकः तथा चोक्तं महाभाष्ये—

अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः ।
नकारस्य मूर्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः ॥ ४।१।१६१

---

दूसरी बात यह है कि राजर्षि दुष्यन्त शकुन्तला के विरह की व्यग्रता के कारण यज्ञादि शुभ कार्य नहीं कर रहे हैं, जिससे देवताओं का आप्यायन नहीं हो रहा है, वे उदासीन होकर, खिन्न हो रहे हैं। शकुन्तला के मिल जाने पर वे उसे राजमहिषी बनाकर सपत्नीक हो यज्ञों का अनुष्ठान करेंगे जिससे कर्म का संवर्द्धन होगा ।

**( नेपथ्य में )** महान् अनर्थ हो रहा है ।

**राजा—( होश में आकर कान लगाकर )** अरे ! यह तो माधव्य का आर्तनाद = करुणक्रन्दन मालूम पड़ता है । क्या बात है ? कौन है यहाँ, पहरे पर कौन है ?

**( प्रवेश कर )**

**प्रतिहारी—( घबराहट के साथ )** संकट में फँसे हुए मित्र माधव्य को बचावें ।

**राजा—**किसने माणवक=माधव्य को अभिभूत = तिरस्कृत किया है ?

**विशेष—**'आत्तगन्धोऽभिभूतः स्यात्, आत्तः = गृहीतो गन्धः गर्वो यस्य सः आत्तगन्धः ।' मानव माणव है—जब कुत्सित अर्थ में प्रयुक्त होता है तब मनोरपत्यं कुत्सितं माणव बनता है ।

राजा दुष्यन्त का अनुमान है कि माधव्य ने कोई ढिठाई की होगी । अतः उसे माणव कहता है । दूसरी बात यह है कि राजा सोचता है कि चित्र-पट ले जाते हुए बेचारे माधव्य को मार्ग में महारानी की पिंगला आदि चेटियों ने कदाचित्त पकड़ लिया है और उसे पीडित कर रही हैं ।

**प्रतीहारी**—अदिट्ठरूवेण केण वि सत्तेण अदिक्कमिअ मेहप्पडिच्छंदस्स प्पासादस्स अग्गभूमिं आरोविदो। [ अदृष्टरूपेण केनापि सत्त्वेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्य प्रासादस्याग्रभूमिमारोपितः। ]

**राजा**—( उत्थाय )—मा तावत्। ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः। अथवा—

> अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम्।
> प्रजासु कः केन पथा [1]प्रयातीत्यशेषतो वेदितुमस्ति शक्तिः॥ २६॥

---

**प्रतीहारी**—अदृष्टरूपेण न दृष्टं = नावलोकितं रूपं = आकृतिना केन अपि सत्वेन तथा विधं स्वरूपं यस्य स तेन प्रच्छन्न=जन्तुना भूतपिशाचाद्यन्यतमत्वेन अतिक्रम्य=अभिभूय मेघप्रतिच्छन्दस्य तन्नाम्नः प्रासादस्य अग्रभूमिं = शिखराग्रम् आरोपितः=प्रापितः निवेशितः।

**राजा**—( नृपतिरुत्थाय ) मा तावत् = एवं न ब्रूहि, मम सत्वाभिभाविनो दुष्यन्तस्यापि गृहाः = भवनानि सत्त्वैः = भूतादिभि अभिभूयन्ते = आक्रम्यन्ते अथवा = यद्वा।

**अन्वयः**—अहनि-अहनि आत्मनः एव प्रमादस्खलितं तावत् ज्ञातुं न शक्यम्, प्रजासु कः केन पथा प्रयाति इति अशेषतो वेदितुं शक्तिरस्ति ?

सत्त्वैरभिभूतमात्मनो गृहमनुभूय राजा दुष्यन्तः किञ्चिद्विचिन्त्य पक्षान्तरमाह—अहन्यहनीति। अहनि अहनि = प्रतिदिनम्, आत्मनः = स्वस्य एव प्रमादस्खलितं प्रमादेन = अनवधानतया स्खलितं विपरीताचरितं, धर्मप्रच्युतिः तावत् साकल्येन ज्ञातुं न शक्यं = बोद्धुं न पार्यते जनैः मया वा अन्यथा कथं मे अज्ञानाद्धर्मपत्नी परित्यागः ? यदि सन्निहिततमे आत्मन्यप्येवं भवेत् तदा अगोचरासु प्रजासु = प्रकृतिषु कः को जनः केन पथा सत्पथेन अपथेन वा प्रयाति = चरति, गच्छति व्यवहरति इति = एतत् अशेषतः = साकल्येन वेदितुं = ज्ञातुं शक्तिः = सामर्थ्यम् अस्ति = वर्तते ? नास्त्येवेति काकुः।

**अयं भावः**—यदि अनवधानोद्भूतं स्वस्यैव धर्मलङ्घनादि कार्यं कार्त्स्न्येन न कोऽपि ज्ञातुं शक्नोति तर्हि किं पुनः सकलस्य लोकस्य सन्मार्गगमनमसन्मार्गगमनं वा परिज्ञातुं शक्नोति। यस्य आत्मसम्बन्धेऽपि पूर्णं ज्ञानं नास्ति सकलं कथयितुं मे प्रजासु न कोऽपि पापं करोति कथयितुं शक्नोति तस्मात् किं निमित्तोऽयमपचार इति सर्वथाऽशक्य एव। अत्रार्थापत्तिरप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारो वृत्तश्चोपजातिः॥ २६॥

---

**प्रतीहारी**—दृष्टिगोचर न होने वाले किसी प्राणी के द्वारा जबर्दस्ती पकड़ कर मेघप्रतिच्छन्द नामक प्रसाद की ऊपरी मंजिल पर ले जाया गया है।

**राजा—( उठकर )** ऐसा मत कहो, क्या मेरे घर भी भूत-प्रेत आदि के द्वारा आक्रान्त किये जा रहे हैं। अथवा—

प्रतिदिन अपने ही प्रमादवश होने वाली त्रुटि को जाँचना संभव नहीं है तब प्रजाजनों में कौन किस मार्ग में जा रहा है, वह पूर्ण रूप से जानने में किसी की शक्ति नहीं है॥ २६॥

**विशेष**—राजा के कहने का तात्पर्य यह है कि मैं धर्मपूर्वक प्रजाशासन करता हूँ। और बड़े-बड़े यज्ञ करता हूँ। अतः मेरे घर कोई भूत-प्रेत कैसे आक्रमण कर सकता है ? किन्तु राजा तो समूचे राष्ट्र के पुण्य-पाप का भागी होता है। अतः प्रजाजनों के दोष से भी मेरे यहाँ भूत-प्रेत बाधा आ सकती है। इसलिए किसी भूत-प्रेत का आक्रमण यहाँ भी संभव है।

---

पाठा०—१. प्रयातीत्यशेषतः कस्य पुनः प्रभुत्वम्।

( नेपथ्ये ) भो वअस्स ! अविहा अविहा । [ **भो वयस्य अविहा अविहा ।** ]

राजा—( गतिभेदेन परिक्रान्त ) सखे न भेतव्यं न भेतव्यम् ।

( नेपथ्ये )

( पुनस्तदेव पठित्वा ) कहं ण भाइस्सं ? एस मं को वि पच्चवणद सिरोहरं इच्छुं विअ तिण्णभंगं करेदि । [ **कथं न भेष्यामि ? एष मां कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधरमिक्षुमिव त्रिभङ्गं करोति ।** ]

राजा—( सदृष्टिक्षेपम् ) धनुस्तावत् ।

( प्रविश्य शार्ङ्गहस्ता )

**यवनी**—भट्टा ! एदं हत्थावावसहिदं सरासणं । [ **भर्त्तः ! एतद्धस्तावापसहितं शरासनम् ।** ]

---

( नेपथ्ये = जवनिकायाम् ) भो वयस्य ! = अरे मित्र ! अविहा, अविहा अविहेति निर्वेदे 'अविहा अविहा' निर्वेदे इत्युक्तेः ।

**राजा**--( गतिभेदेन = गतिपरिवर्तनपूर्वकं, क्रोधोद्धतगत्या ) सखे ! = मित्र ! न भेतव्यं, न भेतव्यम् एव भयं नानुभवितव्यम् ।

( नेपथ्ये = जवनिकायाम् )

( पुनः तदेव पठित्वा = अविहा, अविहेति पठित्वा ) कथं न भेष्यामि = भयं कथं न करोमि एषः कोऽपि अदृश्यो जनः मां = त्वत्सखायं माधव्यं प्रत्यवनता पृष्ठतः वक्रीकृता शिरोधरा = ग्रीवा यस्य स तथाविधं प्रत्यवनतशिरोधरं = तिर्यग्ग्रीवं इक्षुमिव = इक्षुदण्डमिव त्रिभङ्गं त्रिषु स्थानेषु भङ्गः वक्रता यस्य स तथाविधं त्रिभङ्गं = त्रिखण्डम् करोति = विदधाति ।

**राजा**--( सदृष्टिक्षेपं = दृष्टिक्षेपेण सह स दृष्टिक्षेपं = सर्वतोऽवलोक्य ) धनुः = चापं तावत् आनय ।

( प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा शृङ्गस्य विकारः शार्ङ्गं = शृङ्गनिर्मितं धनुः हस्ते = करे यस्याः सा शार्ङ्गहस्ता = चापहस्ता )

**यवनी**--भर्त्तः ! = स्वामिन् ! हस्तं = करं आनूपति ज्याघाताद्रक्षतीति हस्तावापः

---

**( नेपथ्य में )** हे मित्र ! बचाओ, बचाओ ।

**राजा—( चाल बदलकर चारों ओर घूमते हुए )** मित्र ! डरो मत, डरो मत ।

**( नेपथ्य में )**

**( पुनः उसी बात को कहकर )** कैसे न डरूँ, यह कोई मेरी गर्दन को पीछे की ओर मोड़कर ईख की तरह मेरे तीन टुकड़े कर रहा है ।

**विशेष**—विदूषक राजा को उलाहना देता है कि मेरी रक्षा तो कर नहीं पा रहे हो, यहाँ जान पर बीती जा रही है, कैसे न डरूँ । गर्दन मरोड़ने की ईख का दण्डा मरोड़ने से सटीक उपमा है । भूतप्रेत इसी प्रकार आक्रमण करते हैं । आक्रान्त व्यक्ति आक्रमणकारी को तो देख नहीं पाता, आक्रमण का शिकार हो जाता है ।

**राजा—( आँखें इधर-उधर घूमाकर )** धनुष तो लाओ ।

**( धनुष हाथ में लेकर प्रवेश करती हुई )**

**यवनी**—महाराज ! हस्तकवचसहित यह धनुष है ।

( राजा सशरं धनुरादत्ते ) ( नेपथ्ये )

**एष त्वामभिनवकण्ठशोणितार्थी शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम् ।**
**आर्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा दुष्यन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम् ॥ २७ ॥**

**राजा**--( सरोषम् ) कथं मामेवोद्दिशति । तिष्ठ कुणपाशन त्वमिदानीं न भविष्यसि । ( शार्ङ्गमारोप्य ) वेत्रवति सोपानमार्गमादेशय ।

---

=वामहस्तरक्षकं चर्ममयं वस्तु यद्वा हस्तम् अवाप्नोति रक्षकत्वेन लभते इति हस्तावापः=हस्तवारकः तेन सहितं हस्तावापसहितं शरासनं=धनुः ।

( राजा=नृपतिः सशरं=वाणयुक्तं धनुः आदत्ते=यवनीहस्तात् गृह्णाति )
( नेपथ्ये=जवनिकायाम् ) ।

**अन्वयः**--अभिनवकण्ठशोषणार्थी ( अहम् ) शार्दूलः पशुमिव चेष्टमानं त्वां एष हन्मि आर्तानां भयम् अपनेतुम् आत्तधन्वा दुष्यन्तः इदानीं तव शरणं भवतु ।

नेपथ्ये विदूषकस्य करुणक्रन्दनमाकर्ण्य तद्रक्षणार्थं धनुर्बाणं च गृहीत्वा राजा दुष्यन्त यावत् परिक्रामपि तावदेव नेपथ्ये केनापि अदृश्येन पुंसा प्रोच्यमानं वचनं शुश्राव---एष इति । कण्ठस्य शोणितं कण्ठशोणितं अभिनवं=उष्णं यत् कण्ठशोणितं=गलरक्तं तत् अर्थयते=काङ्क्षति यः सः अभिनवकण्ठशोणितार्थी=उष्णोष्णकण्ठरुधिरपानाभिलाषी एषः एषोऽहम् शार्दूलः=व्याघ्रः पशुमिव=हरिणादिसाधारणं जन्तुमिव चेष्टमानं=इतस्ततो लुण्ठन्तम् प्राणरक्षणार्थं प्रयतमानं त्वां हन्मि=व्यापरयामि अर्तानां भीतानां भयं=भीतिम् अपनेतुं=दूरीकर्तुम्, आत्तधन्वा=अधिज्यधन्वा गृहीतचापः दुष्यन्तो नृपतिः तव सखा इदानीं=अस्मिन् मत्पराक्रमप्रकाशक्षणे तव वध्यमानस्य विदूषकस्य शरणं रक्षकः, सहायकः भवतु=स्यात् यदि तस्य शक्तिरस्ति ।

**अयं भावः**—नेपथ्येऽश्रूयत् यत् शार्दूलो मृगादीनां रुधिरमिव तव कवोष्णकण्ठशोणितपिपासुरहं त्वां हन्मि । आर्तानां भयनिवारणायात्तधन्वा दुष्यन्तो यदि प्रभवेत् तर्हि समागत्य त्वां रक्षतु । मन्ये, मया गृहीतस्य तव रक्षणे नास्ति तस्य शक्तिः, तस्य पश्चात् एव त्वां हन्मीति भावः । अत्रोपमानुप्रासौ अलङ्कारौ प्रहर्षिणी छन्दश्च ।

**राजा**--( सरोषं=सकोपम् ) कथं=किम् मामेव उद्दिशति=निर्दिशति कुणपाशनं

---

**( राजा बाण सहित धनुष लेता है )**
**( नेपथ्य में )**

गर्दन के ताजे खून का प्यासा मैं शेर के समान छटपटाते हुए तुझे अभी मारता हूँ आर्तत्राणार्थ धनुष धारण करने वाले दुष्यन्त अब तुम्हारी रक्षा करें ॥ २७ ॥

**विशेष**—यहाँ दुष्यन्त की शक्ति के लिए चुनौती है । यह सुन राजा को क्रोध जागेगा । इसी अभिप्राय से 'दुष्यन्तः शरणं भवतु' का प्रयोग किया गया है। चीते का स्वभाव है कि वह ताजाताजा गले का खून पीता है । ताजे खून का इच्छुक होना तथा हाथ पैर चलाते हुए को मारने की बात बीभत्स रस ध्वनित करती है ।

**राजा—( क्रोध पूर्वक )** क्या मुझे ही उद्देश्य करके यह कह रहा है ? ठहर राक्षस अब तुम नहीं बचोगे । **( धनुष उठाकर )** सीढ़ी का रास्ता बताओ ।

**विशेष**—कुणप कहते हैं शव को, कुणपाशन शब्द का तात्पर्य है—कुणपः = शव अशनं = भोजनं यस्य स कुणपाशनः = मुर्दे को खाने वाला राक्षस । राजा में अनुमान लगाया था कि मनुष्य का खून चाहने वाला होने से यह आक्रमणकारी कोई राक्षस ही होगा ।

**प्रतीहारी**--इदो इदो देवो। [ इत इतो देवः। ] ( सर्वे सत्वरमुपसर्पन्ति। )

**राजा**--( समन्ताद्विलोक्य ) शून्यं खल्विदम्।

( नेपथ्ये )

अविहा अविहा। अहं अत्तभवंतं पेक्खामि तुमं मं ण पेक्खसि। विडालगहीदो मूसओ विअ णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो। [ अविहा अविहा, अहमत्रभवन्तं पश्यामि। त्वां मां न पश्यसि। विडालगृहीतो मूषिक इव निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः। ]

**राजा**—भोस्तिरस्करिणीगर्वित मदीयं शस्त्रं त्वां द्रक्ष्यति। एष तमिषुं सदधे।

---

कुणपं = शवम् अश्नातीति कुणपाशनो यद्वा कुणपः शवं अशनं = भक्षणं यस्य स कुणपाशनः तत्सम्बुद्धौ हे कुणपाशनः = हे राक्षस ! 'कुणपः शवमस्त्रियाम्' इत्यमरः। तिष्ठ = विरम, त्वम् इदानीं = अधुना न भविष्यति = न जीविष्यति त्वामधुनैव हन्मि, त्वं त्वरितं मरिष्यसीत्यर्थं शार्ङ्गं = शृङ्गमयं धनुः आरोप्य = बाणयुतं कृत्वा वेत्रवति = द्वारपालिके ! सोपानमार्गं = आरोहणपन्थानम्, आदेशय = प्रदर्शय।

**प्रतीहारी**--इत इतो देवः = महाराजः अनेन पथा आगच्छतु। ( सर्वे = सकलाः राजा यवनीप्रतिहारी चेति सत्वरं-त्वरया = शीघ्रतया उपसर्पन्ति = समीपे गच्छन्ति। )

**राजा**--( समन्तात्=चतसृषु दिक्षु अवलोक्य=दृष्ट्वा तत्र कमप्यनवलोक्य। ) शून्यं= जनरहितं खलु = निश्चयेन इदं = एतत् स्थानम् = स्थलम्।

( नेपथ्ये = जवनिकायाम् ) अविहा, अविहा हन्त ! आश्चर्यम्। अहम्। अत्रभवन्तं = पूज्यं त्वां पश्यामि = विलोकयामि त्वं = भवान् माम् = माधव्यं न पश्यसि = न विलोकयसि विडालेन = आखुभुजा मार्जारेण गृहीतः = धृतः, वशीकृतः मूषकः = आखुः इव = यथा जीविते = जीवनविषये निराशः = निर्गता आशा संभावना यस्य स निराशः आशारहितः संवृत्तः=जातः अस्मि=भवामि। अयं भावः यथा मार्जारे गृहीतो मूषकः स्वजीवने निराशः भवति तथैवाहमपि सत्वगृहीतः साम्प्रतं स्वजीवने निराशो जातोऽस्मीतितात्पर्यम्। विडालधृतमूषक इवाहं जीवने निराशवानस्मि।

**राजा**—भोः तिरस्करिणीगर्वित ! तिरस्करिण्या = अदर्शनविद्यया गर्वितः = साहङ्कारः तत्सम्बुद्धौ तिरस्करणीगर्वित ! मदीयं = मामकीनं शस्त्रं त्वां द्रक्ष्यति=

---

**प्रतीहारी**—महाराज ! इधर से चलें, इधर से, ( सभी शीघ्रता से पास में आ जाते हैं )

**राजा**—( चारों ओर देखकर ) खाली ही है यह स्थान।

( नेपथ्य में )

बचाओ, बचाओ, मैं आपको देख रहा हूँ, क्या आप मुझे नहीं देख रहे हैं ? बिल्ली के द्वारा पकड़े गये चूहे की तरह मैं अपने जीवन के विषय में निराश हो गया हूँ।

**विशेष**—तिरस्करिणी विद्या के प्रभाव से आक्रमणकारी ने अपने को तथा विदूषक को अदृश्य कर दिया है। बिल्ली और चूहे का दृष्टान्त उपहासास्पद है। संकट में पड़कर भी विदूषक अपनी स्वाभाविक आदत से विवश है। उसके मुख से अभ्यस्त उपमाएँ निकलती रहती हैं। जो मनोविनोद की हेतु हैं।

**राजा**—हे तिरस्करिणी विद्या के कारण गर्वीले व्यक्ति ! यद्यपि मैं तुझे नहीं देख रहा हूँ तथापि मेरा अस्त्र तुझे अवश्य देख लेगा। लो, अपने बाण को धनुष पर चढ़ाता हूँ।

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं[1] रक्षति च द्विजम् ।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ॥ २८ ॥

( इत्यस्त्रं संधत्ते )

---

अवलोकयिष्यति मयाऽदृश्योऽपि त्वं ममास्त्रेण द्रक्ष्यसे तेन च हनिष्यते । तस्मादहृष्टोऽहमिति ते गर्वो माऽभूत् । एषः = दुष्यन्तोऽहं तं वक्ष्यमाणगुणमिषुं = बाणं संदधे = धनुषि योजयामि ।

ननु कदाचित्तव बाणो माधव्यमेव हन्यादित्यतः तस्येषोः कौशलं वर्णयति—यो हनिष्यतीति ।

अन्वयः—यः वध्यं त्वां हनिष्यति, रक्ष्यं द्विजं च रक्षति ( तमिषुमेव सन्दधे ) हि हंसः क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा अपः वर्जयति ।

तिरस्कारिणीविद्यागर्वितं सत्वं चक्षुषा अपश्यन् राजा दुष्यन्तः धनुषि बाणं संयोजयन् ब्रवीति—य इति । यः = य इषुः वधमर्हः वध्यस्तं वध्यं पापकरणात् वधार्हं त्वां हनिष्यति = प्रहरिष्यति मारयिष्यति रक्षितं योग्यो रक्ष्य। तं रक्ष्यं = रक्षणयोग्यं द्विजं = विप्रं माधव्यम् रक्षति = रक्षयिष्यति तमिषुं सन्दधे । हि = यस्मात् कारणात् हंसः = मरालः क्षीरं = दुग्धम् आदत्ते = गृह्णाति तन्मिश्राः = तेन मिश्राः तन्मिश्राः दुग्धसंमिश्राः अपः = जलानि वर्जयति = त्यजति । हंस इव मे बाणः, क्षीरमिव त्वम्, आप इव माधव्यो ब्राह्मणः । तस्मात्वमेव मे बाणस्य ग्राह्यः, माधव्यस्त्याज्यः ।

अयं भावः—अये ! अदर्शनविद्यया अहंकारवान् । यद्यप्यहं त्वां द्रष्टुं न पारयामि तथापि ममायुधं त्वां नूनं द्रक्ष्यति, हनिष्यति च । अहमिदानीमेवं विधं दिव्यं बाणं धनुषि संयोजयामि योऽपराधिनं त्वां हानिष्यत्येव रक्षणीयञ्च माधव्यं रक्षिष्यति । यथा पानीये मिश्रिताद् दुग्धात् हंसो दुग्धमात्रमादत्ते पानीयं च परित्यजति तथैव हंससमानो मे बाणो दुग्धतुल्यं त्वां मारयिष्यति पानीयसदृशं माधव्यं परिज्यजेदेव तस्मान्नाधुना किमप्यस्ति ते शरणमिति तात्पर्यम् । अत्र दृष्टान्तालङ्कारोऽनुष्टुब्वृत्तं च विद्यते ॥ २८ ॥

( इति = एवमुक्त्वा अस्त्रं आयुधं बाणं सन्धत्ते = धनुषि समारोपियति । धनुषा वा योजयति )

---

जो मारने योग्य तुझको मार डालेगा, और बचाने योग्य इस माधव्य ब्राह्मण को उसी प्रकार बचा लेगा जैसे हंस दूध को ले लेता है और उसमें मिले हुए पानी को छोड़ देता है ॥ २८ ॥

**( ऐसा कहकर वह धनुष पर बाण चढ़ाता है )**

**विशेष**—दुष्यन्त के बाण की यह विशेषता थी कि वह नीरक्षीरविवेकी हंस के समान वध्य को मारता है, अवध्य को नहीं । इसी विश्वास से राजा कहता है कि मेरा बाण केवल तुझे ही मारेगा मेरे मित्र ब्राह्मण माधव्य को बचा लेगा । इस प्रकार दुष्यन्त में अपने बाण की अद्भुत विशेषता बताई गयी है ।

---

पाठा०—१. रक्षिष्यति ।

( ततः प्रविशति विदूषकमुत्सृज्य मातलिः )

**मातलिः**—राजन् !

**कृताः शरव्यं हरिणा तवासुराः शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम् ।**
**प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः ॥ २९ ॥**

**राजा**—( ससंभ्रममस्त्रमुपसंहरन् ) अये मातलिः । स्वागतं [1]महेन्द्रसारथेः ।

---

( ततः = तदनन्तरं मातलिः = इन्द्रसारथिः विदूषकं = माधव्यं ब्राह्मणम् उत्सृज्य = त्यक्त्वा प्रविशति = रङ्गमञ्चे दृश्यते । )

**मातलिः**—अथेन्द्रसारथिः स्वागमनकार्यं निवेदयितुं राज्ञः कोपप्रशमनायचोपक्रमते-**कृता इति** ।

**अन्वयः**—हरिणा असुराः तव शरव्यं कृताः, तेषु इदं शरासनं विकृष्यताम् । सतां सुहृज्जने प्रसादसौम्यानि चक्षूंषि पतन्तिः दारुणाः शराः न ॥ २९ ॥

नृपतिं दुष्यन्तं क्रुद्धमवगत्य विदूषकं परित्यज्य मातलिर्ब्रूते—**कृता इति** । हरिणा = इन्द्रेण असुराः = दैत्याः तव = दुष्यन्तस्य शरव्यं = लक्ष्यं कृताः = विहिताः, दैत्याः त्वया हन्तव्या इति हरेरभिलाषेत्यर्थः । 'लक्षं लक्ष्यं शरव्यं च' इत्यमरः । अतः तेषु = लक्ष्यीभूतेषु दैत्येषु इदं = सज्जं शरासनं = सन्धितशरं धनुः विकृष्यताम् = आकृष्यताम्, तदर्थमेवाहमागतोऽस्मि, स्वयमिन्द्रेण प्रार्थितस्त्वं दैत्यान् जहि, मास्तु ते मयि शरत्यागः इति भावः । सतां = सज्जनानां भवादृशां सुहृज्जने = स्वमित्रादिबन्धुवर्गे प्रसादसौम्यानि प्रसादेन = प्रसन्नतया सौम्यानि = अनुग्राह्यापि, आह्लादकानि प्रसादमधुराणि चक्षूंषि = नेत्राणि पतन्ति, दृष्टयो निधीयन्ते न तु दारुणाः = भयङ्कराः मर्मभेदिनः शराः = बाणाः न निपतन्ति । अतस्त्वमपि मयि सुहृदि बन्धुवर्गे स्नेहमसृणे लोचने निक्षिप न खलु तव शरपातोचितोऽहम् । अहं हि बान्धवतया समागतो भवतः प्रसन्नदृष्टेरेव पात्रमस्मि न वाणपातस्येति संह्रियतां निजमायुधमिति भावः । अत्रार्थान्तरन्यास-परिसंख्या-काव्यलिङ्गमलङ्काराः वंशस्थं वृत्तञ्च ।

**राजा**—( नृपः ससंभ्रमं-संभ्रमेण = संभ्रान्त्या सह ससंभ्रमम् अस्त्रम् = आयुधम् उपसंहरन्-प्रत्यावर्तयन् ) अये = कथम् मातलिः, स्वागतं = अभिनन्दनम् महेन्द्रसारथेः = इन्द्ररथचालकस्य ।

---

**( तदनन्तर विदूषक को छोड़कर मातलि प्रवेश करता है )**

मातलि—राजन् ! इन्द्र के द्वारा राक्षस आपके वाण का लक्ष्य बनाये गये हैं, आप उनके ऊपर यह धनुष चलाइए । सज्जनों के अपने मित्रोंपर कृपावश शान्त नेत्र ही पड़ते हैं, भयङ्कर वाण नहीं।

**विशेष**—यहाँ श्लोक में पूर्वार्द्ध में मातलिने अपने आने का उद्देश्य और इन्द्र का सन्देश बताया, उत्तरार्द्ध में राजा को सज्जन कहकर उनकी प्रशंसा की और अपने को उनका मित्र बताया । मित्र ! बाण मेरे ऊपर क्यों छोड़ते हैं, शत्रुओं पर छोड़िए यह कहकर मातलि मनोरञ्जक ढंग से अपने को दुष्यन्त के समक्ष प्रस्तुत करता है । मातलि इन्द्र के सारथि का नाम है ।

**राजा—( शीघ्रता से साथ बाण को धनुष से उतारते हुए )** अरे मातलि, हे देवराज के सारथि, आपका स्वागत है । आइए, आइए !

---

पाठा०—१. देवराजसारथे ।

( प्रविश्य )

**विदूषकः**—अहं जेण इट्ठिपसुमारं मारिदो सो इमिणा साअदेण अहिणंदीअदि।
[ अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः सोऽनेन स्वागतेनाभिनन्द्यते। ]

**मातलिः**( सस्मितम् )—आयुष्मन्, श्रूयतां [1]यदस्मि हरिणा [2]भवत्सकाशं प्रेषितः।

**राजा**—अवहितोऽस्मि।

**मातलिः**—अस्ति कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः।

**राजा**—अस्ति। श्रुतपूर्वं मया नारदात्।

---

( प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा )

**विदूषकः**—राज्ञा क्रियमाणं मातलेः स्वागतं दृष्ट्वा विदूषकः सासूयं वदति–येन मातलिना अहं इष्टिपशुमारं इष्टेः यज्ञस्य पशुबलिः स इव मारति, निहतः = यज्ञपशुवन्मारितः, ग्रीवायां गृहीत्वा मुष्ट्यादिना क्रूरतरं ताडितः। यथा यज्ञे पशु मार्यंते तथैव मारितः, सः = मातलिः अनेन = एतेन नृपेण स्वागतेन स्वागत शब्दोच्चारणेन अभिनन्द्यते = समाद्रियते। विसदृशमेतद्वयस्यस्य रिपोरपि स्वागतकरणात् महत्ते औदार्यमेतदित्याशयः।

**मातलिः**—इन्द्रसारथिः विदूषकवचनेन सस्मितमाह—आयुष्मन् = चिरजीविन्! श्रूयताम् = आकर्ण्यतां यदस्मि यदर्थमहं हरिणा = महेन्द्रेण भवतः सकाशं = आयुष्मता समीपे प्रेषितः = प्रहितः।

**राजा**—अवहितोऽस्मि = सावधानोऽस्मि।

**मातलिः**—कालनेमिप्रसूतिः—कालनेमेः प्रसूतिः सन्ततिः जन्म यस्य स कलिनेमिप्रसूतिः = कालनेमिराक्षसवंशप्रभवः दुर्जयोनाम दानवगणः दैत्यसमूहः अस्ति = वर्तते।

**राजा**—अस्तीति श्रुतपूर्वं नारदाद् मया पूर्वमेव श्रुतमस्ति ( नारदात्तद्वृत्तान्तं श्रुतमानस्मीतिमावः।

---

( प्रवेशकर )

**विदूषक**—मैं जिसके द्वारा यज्ञीय पशु के समान मारा जा रहा था, वह इस राजा के द्वारा स्वागतपूर्वक सत्कृत किया जा रहा है।

**मातलि**—( **मुस्कराहट के साथ** ) चिरञ्जीविन्! सुनिए, जिसके निमित्त मैं देवराज महेन्द्र के द्वारा आपके पास भेजा गया हूँ।

**राजा**—सुनने के लिए सावधान हूँ, कहिए।

**मातलि**—कालनेमि का वंशज दुर्जय नामक दानवों = राक्षसों का एक समूह है।

**विशेष**—कालनेमि हिरण्यकश्यपु का पुत्र था, इसके सौ सिर और सौ हाथ थे, विष्णु ने इसका वध किया था। कश्यप की पत्नी दनु से उत्पन्न पुत्र दानव कहे जाते हैं। राक्षसों सा व्यवहार करने से उन्हें राक्षस भी कहा जाता है। अस्ति का प्रयोग प्रारम्भ में कथा कहने के लिए आता है और कभी-कभी भूतकाल में भी प्रयोग किया जाता है।

**राजा**—हाँ मैंने नारदजी से इसे सुन रखा है।

**विशेष**—देवर्षि नारद ब्रह्माजीके १० मानस पुत्रों में एक हैं, जो वीणा लेकर भगवन्नाम-

---

पाठा०—१. यदर्थमस्मि। २. त्वत्सकाशं।

मातलिः—सख्युस्ते स किल [1]शतक्रतोरजय्य-
स्तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता ।
उच्छेत्तु प्रभवति यन्न सप्तसप्ति-
स्तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः ॥ ३० ॥

---

मातलिः—वदति—सख्युरिति ।

**अन्वयः**—स ते सख्युः शतक्रतोः अजय्यः किल त्वं तस्य रणशिरसि निहन्ता स्मृतः । सप्तसप्तिः यत् नैशं तिमिरम् उच्छेतुं न प्रभवति तत् चन्द्रः अपाकरोति ।

दुर्जयाख्यस्य दानवगणस्य वधाय राजानं दुष्यन्तं प्रेरयन् इन्द्रसारथिर्मातलिराह सख्युस्ते इति सः=दुर्जयो नाम दानवगणः ते=तव सख्युः=मित्रस्य शतक्रतोः= शताश्वमेधकर्तुरिन्द्रस्य अजय्यः=प्रयत्नसहस्त्रैरपि जेतुमशक्यः किलेति=प्रसिद्धौ निश्चये वा । त्वं=भवान् दुष्यन्तः तस्य दुर्जयाख्यदानवगणस्य रणशिरसि संग्राममध्ये निहन्ता=घातकः स्मृतोऽसि इन्द्रेण, पूर्वं साहाय्यानुष्ठानादिदानीं दुर्जयाख्यदानवगणस्य निहननाय त्वमेव निश्चितोऽसीति तत्कार्यसम्पत्तये महेन्द्रस्त्वां स्मरतीति ज्ञेयम् । ननु शतक्रतोरप्यजय्यः सः कथं मम जय्यः स्यादित्याशङ्कां परिहर्तुं सदृष्टान्तमाह—सप्तसप्तिः सप्तसंख्याकाः सप्तयः=अश्वाः यस्य स सप्तसप्तिः=सूर्यः यत् नैशं=निशासम्बन्धिनं रात्रिजातं तिमिरं=तमः अन्धकारं उच्छेत्तुं=नाशयितुं न प्रभवति=न शक्नोति तत् तिमिरं चन्द्रः=शशी इन्दुः अपाकरोति=निरस्यति, दूरी करोति ।

**अयं भावः**—राजर्षे, यद्यपि महाप्रभावस्य ते मित्रस्य शतक्रतोरप्यजय्यः स दानवगणो वर्तते, अथापि देवैरिन्द्रेणैव तस्य भवानेव निहन्ता निश्चितोऽस्ति । अतः शतक्रतोरप्यजय्यं तं कथमहं विजेष्यमीति न शङ्कनीयम् । प्रसिद्धो हि लोके वर्तते दृष्टान्तः यथा सहस्रकरोऽपि दिवाकरो यन्नैशं तमो न दूरीकरोति तदुदीयमान एव चन्द्रः सहसा दूरीकरोति । तस्मादिदानीं निःशङ्केन भवता स्वयं शस्त्रं गृहीत्वा इन्द्ररथमारुह्य अतुलशक्तेरपि महेन्द्रस्यावध्यदुर्जयदानवविजयाय प्रस्थातव्यमिति भावः । अत्र दृष्टान्तालङ्कारः प्रहर्षिणीवृत्तञ्च ।

---

कीर्तन करते हुए हमेशा भ्रमण किया करते हैं । ये गोदोहन मात्र से अधिक कहीं नहीं ठहरते । असुर, किन्नर, गन्धर्व, राजर्षि, महर्षि एवं भगवद्भक्तों के पास आते जाते रहते हैं ।
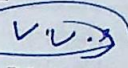
**मातलि**—वे राक्षस समूह आपके मित्र इन्द्र के लिए अजेय हैं ? आप संग्राम में उनको मारने वाले माने गये हैं । भगवान् भास्कर जिस रात के अन्धकार को विनष्ट करने में नहीं सामर्थ होते हैं उसको चन्द्रमा दूर करते हैं ॥ ३० ॥

**विशेष**—विपत्ति के समय मित्र की सहायता करना अत्यावश्यक धर्म बताया गया है । भारतीय मान्यता के अनुसार सौ अश्वमेध यज्ञ करने से चक्रवर्ती राजा इन्द्र होता है और हरे रंग के सात घोड़ों के रथ पर सवार होकर चलने के कारण सूर्य सप्तसप्ति कहलाते हैं । नैशं का अर्थ निशा सम्बन्धी है । मातलि ने राजा को चन्द्रमा बनाकर उनको प्रशंसा की साथ ही इन्द्र की असमर्थता छिपाने के लिए उन्हें सूर्य कह दिया और उनकी विवशता भाग्य के कारण बताई दोनों के औचित्य का निर्वाह करते हुए यह दिखाया गया है कि अधीन को अधिकारी के सम्मान का ध्यान सर्वदा रखना चाहिए । अतः आप शस्त्र धारण किए हुए ही इस इन्द्र रथ पर चढ़कर विजय के लिए प्रस्थान करें ।

---

पाठा०—१. शतक्रतोरवध्यस्तस्य ।

स भवानात्तशस्त्र एव इदानीं [1]तमैन्द्ररथमारुह्य विजयाय प्रतिष्ठताम् ।

राजा—अनुगृहीतोऽहमनया मघवतः संभावनया । अथ माधव्यं प्रति भवता किमेवं प्रयुक्तम् ।

मातलिः—तदपि कथ्यते । किञ्चिन्निमित्तादपि मनः संतापादायुष्मान्मया विक्लवो दृष्टः । पश्चात्कोपयितुमायुष्मन्तं तथा कृतवानस्मि । कुतः—

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।
[2]प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः ॥ ३१ ॥

---

स भवान् = दुष्यन्तः, आत्तशस्त्र एव = गृहीतशस्त्र एव, इदानीं = सम्प्रति, इन्द्ररथम् = देवराजयानम्, आरुह्य = आरोहणं कृत्वा, विजयाय = जयकरणाय, प्रतिष्ठताम् = प्रस्थितो भवतु ।

राजा—अनया = अमुया मघवतः = इन्द्रस्य सम्भावनया = सम्मानदानेन अहं = दुष्यन्तः अनुगृहीतोऽस्मि = नितरामनुकम्पितोऽस्मि । यदि देवेन्द्रोऽत्र कर्मणि मां समर्थं मन्यते तर्हि तस्य महाननुग्रह इति भावः । अथ प्रस्तुतमुपसंहृत्य माधव्यपरिभवे प्रस्तावमारभते मातलिं प्रति = मम मित्रस्यास्य विदूषकस्य विषये एवं = ईदृशमाक्रमणादिकं भवता किमर्थं प्रयुक्तं = अनुष्ठितम् ?

मातलिः—इन्द्रसारथिरुत्तरयति–तदपि = तदाक्रमणात्मककर्मणः कारणमपि कथ्यते = भण्यते, अस्ति विशिष्टः कारण इत्याशयः । श्रूयतां—किञ्चित् = किमपि अज्ञातं वस्तु निमित्तं = कारणं यस्य स तस्मात् किञ्चिन्निमित्तादपि = कुतोऽपि हेतोः समुत्थितात् मनःसन्तापात = मानसक्लेशात् आयुष्मान् = चिरञ्जीवी भवान् मया विक्लवः = आकुलः दृष्टः = वीक्षितः पश्चात् = ततः कोपयितुं = क्रुद्धं कर्तुं आयुष्मन्तं = चिरञ्जीविनं भवन्तं तथा = तादृशं पूर्वोक्तं कृतवान् = विहितवान् अस्मि भवन्नयनार्थमागतवानहं मोहंगतं च भवन्तं दृष्ट्वा भवन्मित्रं माधव्यमाक्रान्तवानस्मीतिभावः । कुतः = यतः ।

अन्वयः—अग्निः चलितेन्धनः ( सन् ) ज्वलति । पन्नगः विप्रकृतः ( सन् ) फणां कुरुते, हि जनः प्रायः क्षोभात् स्वं महिमानं प्रतिपद्यते ॥ ३१ ॥

राज्ञो दुष्यन्तस्य क्रोधोत्पत्तेः कारणं कथयन् मातरिन्द्रिसारथिः कथयति–ज्वलतीति । अग्निः = वह्निः, चलितेन्धनः चलितानि = घट्टितानि इन्धनानि एधांसि यस्य स तादृशः

---

आप हथियार लेकर ही इस इन्द्र रथपर सवार होकर विजय के लिए चल पड़ें ।

**राजा**—मैं देवराज इन्द्र के इस सम्मान से अनुग्रहीत हूँ । अच्छा आपने मेरे मित्र माधव्य के साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया ?

**मातलि**—उसे भी कह रहा हूँ, सूनिए—मैंने आपको किसी कारण वश मानसिक सन्ताप से विकल देखा । अतः आपको कुपित करने के निमित्त मैंने वैसा किया, क्योंकि अग्नि इन्धन के हिला देने से प्रज्वलित हो जाता है, सर्प अपमानित होने पर अपने फन को फैलाता है । इसी प्रकार तेजस्वी पुरुष भी किसी बात से क्षोभ दिखाए जाने पर ही प्रायः अपने तेज, पौरुष या वीरता का स्मरण करते हैं ।

**विशेष**—जब जलती लकड़ियों से ठीक-ठीक लपट न निकलने पर उसे कुछ ठोक ठाक करके ठीक कर दिया जाता है तब बीच में हवा पहुँचने से आग धधकने लगती है ।

---

पाठा०—१. देवरथमारुह्य । २. तेजस्वी संक्षोभात्प्रायः प्रतिपद्यते तेजः ।

**राजा**—( जनान्तिकम् ) वयस्य अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा । [1]तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद्वचनादमात्यपिशुनं ब्रूहि ।

**त्वन्मतिः केवला तावत्परिपालयतु प्रजाः ।**
**अधिज्यमिदमन्यस्मिन्कर्मणि व्यापृतं धनुः ॥ ३२ ॥**

---

विपर्यस्तकाष्ठः प्राप्तेन्धनः ज्वलति = निजस्वरूपं प्रकाशयति भृशं दीप्यते । पन्नगः = फणी विप्रकृतः = कोपितः तिरस्कृतो वा उद्वेजितो वा फणां कुरुते = फटाटोपं कुरुते फटामूर्ध्वं नयति 'फटायां तु फणा द्वयोः' इत्यमरः । हि = निश्चितम् जनः = सर्वोऽपि लोकः प्रायः = बाहुल्येन क्षोभात् = संक्षोभात् चित्रक्रौर्यात् अभिघातात् एव स्वं = निजं महिमानं = प्रभावं प्रतिपद्यते = गृह्णाति प्राप्नोति वा । वयस्यमाधव्यस्य निग्रहात् मया क्षोभितो भवान् प्रकृतिमापन्नः । इदमस्य तात्पर्यम्—दुष्यन्तस्य क्रोधोत्पादनकरणमुपक्रमते इन्द्रसारथिः—राजन् ! केनापि हेतुना परमं सन्तापमनुभवन्तं भवन्तमालोक्याहं विचारितवान् यत्क्रोधोत्पादनमन्तरा न भवान् पूर्ववत् प्रकृतिस्थमापादयितुं शक्य इति भवतः क्रोधोत्पादनार्थं भवन्मित्रं माधव्यमहमाक्रान्तवान् । तत्रैव दृष्टान्तः—यथा हुताशनः प्राप्तेन्धनः सन्नेव भृशं देदीप्यते, विलेशयोऽपि फणी केनापि अन्यादाहतः सन्नेव स्वां फणामूर्ध्वं कुरुते । एवमेव लोकोऽपि कथञ्चित्क्षोभमापादित एव स्वीयां प्रकृतिं प्रतिपद्यते । अत्रदृष्टान्ताप्रस्तुतप्रशंसाऽर्थान्तरन्यासा अलङ्काराः आर्या छन्दश्च ।

**राजा**—इन्द्रसारथेर्मातलेर्वचनं निशम्य राजा दुष्यन्तः जनान्तिकं माधव्यं वदति—**वयस्य** = माधव्य ! दिवस्पतेः = स्वर्गाधिपतेः महेन्द्रस्य आज्ञा = आदेशः अनतिक्रमणीया = अलङ्घनीया साम्प्रतमेव मया तत्सम्पादनाय तत्र गम्यते । तत् = तस्मात् कारणात् अत्र विषये अमात्यपिशुनं = पिशुनाख्यममात्यं परिगतार्थं = विदितसंवृत्तं विधाय मद्वचनात् = मम वचनमालम्ब्य ब्रूहि = कथय सत्वरं जिगमिषुरहं स्वयं वक्तुमसमर्थोऽस्मि त्वं मदीयगमनकारणमभिधाय वक्ष्यमाणं वचो ब्रूहि—

**अन्वयः**—केवला त्वन्मतिः तावत् प्रजाः परिपालयतु, अधीज्यं इदं धनुः अन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतम् ।

देवराजस्यादेशेन दुर्जयं दानवगणं निहन्तुं तत्कालमेव प्रस्थास्यन् नृपतिः दुष्यन्तो विदूषकद्वारा मन्त्रिणमार्यपिशुनं संदिशति—**त्वन्मतिरिति** । केवला = एकाकिनी, असहाया, त्वन्मतिः = सर्वदर्शिनी त्वदीया बुद्धिरेव तावत् = अद्यावधि मत्प्रत्यागमनपर्यन्तम्, प्रजाः = प्रकृतीः सर्वजनान् परिपालयतु = सुष्ठु रक्षतु अधिज्यं = आरोपितमौर्वीकम्, इदं = मद्धस्तवर्ति धनुः = चापम् अन्यस्मिन् कर्मणि दानवहनने दानवमारण-

---

**राजा**—( **हाथ से आड़कर विदूषक के प्रति** ) हे मित्र ! स्वर्ग के अधिपति देवराज इन्द्र की आज्ञा अनुल्लंघनीय है । अतः इस बात को पूरी तरह बतला कर मेरी ओर से मन्त्री पिशुन से कहना कि—

कुछ दिन तक तो तुम्हारी बुद्धि ही अब प्रजा की रक्षा करे, और हमारा चढ़ा हुआ यह धनुष अब दूसरे काम में = दानवों के मारने में लगने जा रहा है ॥ ३२ ॥

**विशेष**—राजा का धनुष और मन्त्री की बुद्धि दोनों मिलकर राज्य का सञ्चालन करते थे,

---

पाठा०—१. तद्गच्छ ।

**विदूषकः**—जं भवं आणवेदि [ यद्भवानाज्ञापयति । ] ( इति निष्क्रान्तः )

**मातलिः**—आयुष्मान् रथमारोहतु । ( राजा रथाधिरोहणं नाटयति । )

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

**( इति षष्ठोऽङ्कः )**

---

पर्यन्तं व्यापृतं = नियुक्तम् योजितम् । अहं दानववधाय गच्छामि, प्रजारक्षाभारः साम्प्रतं केवलं त्वयि एव निवेशितोऽस्माभिः । मम प्रत्यागमनपर्यन्तं त्वं स्वबुद्ध्यनुसारं प्रजाः परिपालनीया तव बुद्धेः सहायभूतमधिज्यं मे धनुः महेन्द्रस्याज्ञया दानवविजयाय संलग्नमितिभावः अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः अनुष्टुप्छन्दश्च ॥ ३२ ॥

**विदूषकः**—भवान् यदाज्ञापयति = तत् करिष्यामि ( इति = एवमुक्त्वा निष्क्रान्तः = रङ्गमञ्चाद् बहिर्गतः । )

**मातलिः**—आयुष्मान् = चिरञ्जीवी रथं = स्यन्दनम् अरोहतु = उपविशतु ( राजा = नृपः रथाधिरोहणं = स्यन्दनोपवेशनं नाटयति = ऊर्ध्वंजानुचर्यया अभिनयति । )

तल्लक्षणं यथा संगीतरत्नाकरे—

कुञ्चितोत्क्षिप्तपादः स्याज्जानुस्तनसमं यदा ।
न्यस्तस्याधः कृतोन्योऽङ्घ्रिरूर्ध्वजानुस्तदाभवेत् ॥

( इति = ततः सर्वे सकलाः=अभिनेतारः निष्क्रान्ता = रङ्गमञ्चाद बहिर्गताः )

( इति = एवं षष्ठः = षट्संख्याकः अङ्कः = प्रकरणं समाप्तः )

इति कविवर कालिदासप्रणीतस्याभिज्ञानशाकुन्तलनामकस्य नाटकस्य
षष्ठेऽङ्के पं० श्रीकृष्णमणित्रिपाठिना संस्कृते कृता
विमलाख्या व्याख्या समाप्ता ।

---

अब राजा का धनुष दानवों के विध्वंस के लिए जा रहा है। अतः मन्त्री की अकेली बुद्धि राज्य की देखभाल करे। इसी बात को भारवि ने भी कहा है :—

**सदानुकूलेषु हि कुर्वतेरतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ।**

यजुर्वेद में भी यही भाव व्यक्त किया गया है—'इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्' ।

**विदूषक**—जो आप आज्ञा दे रहे हैं, वही करूँगा। ( बाहर निकल जाता है। )

**मातलि**—चिरञ्जीविन् ! आप रथ पर सवार हों।

**( राजा रथ पर सवार होने का अभिनय करते हैं )**

**( इस प्रकार सभी बाहर चले जाते हैं )**

**॥ षष्ठ अङ्क समाप्त ॥**
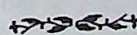
## सप्तमोऽङ्कः

( ततः प्रविशत्याकाशयानेन रथाधिरूढो राजा मातलिश्च )

**राजा**—मातले, अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवता सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये ।

---

अस्मिन् सप्तमेऽङ्केऽङ्कसमाप्तिपर्यन्तं निर्वहणसन्धिः बोद्धव्यः ।

तल्लक्षणं यथा सुधाकरे—

मुख्यसन्ध्यादयो यत्र विकीर्णा बीजसंयुताः ।
महाप्रयोजनं यान्ति तन्निर्वहणमुच्यते ॥

साहित्यदर्पणे तु—बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ।
एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ॥

केचित्तु अत्राभिज्ञानात् परं निर्वहणसन्धिः, ततः पूर्वं तु सप्तमेऽङ्के विमर्शसन्धिरेव कथयन्ति । युद्धस्य नाटके साक्षाददर्शनीयतया कृतकार्यस्य स्वर्गात् प्रतिनिवर्तमानस्य राज्ञो दुष्यन्तस्य वाक्यैरेवासुरयुद्धसूचनमत्र बोध्यम् । अत्राङ्कस्य नाम अत्रोपक्षेपकम् । तदुक्तं—'अङ्कान्तपात्रैरङ्कस्यमुत्तरार्थाङ्कसूचना' । प्रकृते हि द्वाभ्यां षष्ठाङ्कान्तपात्राभ्यां मातलिदुष्यन्ताभ्यां सप्तमाङ्के प्रवेशः कृतः । षष्ठाङ्कान्ते च 'आयुष्मन् ! श्रूयतां यदर्थमस्मि हरिणा भवत्सकाशं प्रेषितः' इत्यनेन सप्तमाङ्कार्थः सूचितः ।

अथ राज्ञो दुष्यन्तस्य इन्द्रसारथिना मातलिना सह प्रवेशमाह—तत इत्यादिना ।

( ततः = तत्पश्चात् प्रविशति = रङ्गमञ्चे दृश्यते आकाशयानेन = नभोमार्गेण गच्छन् रथाधिरूढः = इन्द्रस्यन्दनोपविष्टः राजा = दुष्यन्तः मातलिः = इन्द्रसारथिश्च । )

**राजा**—विजितदुर्जयदानववर्गः, महेन्द्रेण सबहुमानं विसृष्टः, इन्द्ररथेन भूलोकमवतरन् राजा दुष्यन्तः स्वर्गानुभूतं देवराजस्य सत्कारातिशयं विमृशन् मातलिं कथयति—मातले= हे देवेन्द्रसारथे ! अनुष्ठितः = पालितः निदेशः = शासनमादेशो महासुखरूपः येन स अनुष्ठितनिदेशः = पालितेन्द्रशासनोऽपि अहम् त्रिभुवनमहनीयस्य मघवतः = इन्द्रस्य सत्क्रियाविशेषात् सत्क्रियायाः विशेषात् = सत्कारगौरवात् संमानाधिक्यात् सत्कारातिशयं सम्पादनं विलोक्येत्यर्थः आत्मानं = स्वम् अनुपयुक्तं = अकृतोपकारम् इव = यथा समर्थये = सम्भावयामि । मन्ये न मया महेन्द्रस्य किञ्चिदपिकार्यमनुष्ठितमिति असन्तुष्टमिवात्मानं तर्कयामि मत्कार्यादप्यधिको महेन्द्रकृतः मत्सत्कारः । इन्द्रं प्रति यन्मया कार्यं कृतं तदिन्द्रसत्कारस्य सहस्रांशेनापि तुलीतुं न क्षममिति भावः । तदित्थं–मया युद्धे दानवा निपातिताः, तुष्टेनेन्द्रेण च महती मे सत्कृतिः कृतेति राज्ञा सूचितम् ।

---

**( तदनन्तर रथ पर सवार राजा दुष्यन्त और मातलि आकाश-मार्ग से प्रवेश करते हैं )**

**राजा**—मातले ! इन्द्र के आदेश का परिपालन कर देने पर भी मैं उनके विशिष्ट सत्कार की तुलता में अपने को अनुपयुक्त-सा समझ रहा हूँ ।

**विशेष**—राजा दुष्यन्त के कहने का तात्पर्य है कि मैंने कार्य तो राई जैसा छोटा किया, किन्तु उसके लिए इन्द्र ने मेरा सम्मान हिमालय जैसा बड़ा किया । अतः मैं अपने को उनके सम्मान के अनुकूल नहीं समझता । इस प्रकार राजा ने इन्द्र के प्रति विनय, गुणग्राहकता तथा कृतज्ञता दिखाई है ।

**मातलिः**—( सस्मितम् ) आयुष्मन् उभयमप्यपरितोषं समर्थये ।

**प्रथमोपकृतं मरुत्वतः प्रतिपत्त्या लघु मन्यते भवान् ।**
**गणयत्यवदानविस्मितो भवतः सोऽपि न सत्क्रियागुणान् ॥ १ ॥**

---

**मातलिः**—( सस्मितं = सहासमाह )—आयुष्मन् = चिरञ्जीविन् उभयं = द्वयम्, भवदुपकृतम्, इन्द्रसत्कृतं च न विद्यते परितोषो यत्र तत् अपरितोषम् = असन्तोषम्, समर्थये = मन्ये । इन्द्रः त्वत्कर्म अधिकं मन्यते, त्वं तु इन्द्रकृतां सत्कृतिमधिकां मन्यसे इति भावः । भवतामिव न मया राज्ञोऽनुरूपा सक्रिया खलु अकारीति हेतोरिन्द्रस्यापि असन्तोषं विद्धीति यावत् तदेव । विशदयति—**प्रथमोपकृतमिति** ।

**अन्वयः**—भवान् मरुत्वतः प्रतिपत्त्या प्रथमोपकृतं लघु मन्यते, सोऽपि भवतः अवदानविस्मितः सत्क्रियागुणान् न गणयति ॥ १ ॥

अथ शक्रस्य सत्कारातिशयादात्मानमनुपयुक्तमिव मन्यमानं नृपतिं दुष्यन्तं मातलिर्ब्रूते उभयोरुपकार्योपकारकभावं प्रदर्शयति—भवान् = त्वं मरुतः = देवा। सन्त्यस्येति मरुत्वान् तस्य मरुत्वतः = देवराजस्य इन्द्रस्य प्रतिपत्त्या = बहुमानेन, गौरवेण, सत्कारेण, प्रथमं = सत्कारात् पूर्वं उपकृतं = त्वया दानववधेन कृतः उपकारः प्रथमं च तत् उपकृतं प्रथमोपकृतं तत् प्रथमोपकृतम् लघु = स्वल्पं, तुच्छं मन्यते = सम्भावयति, जानाति, अहं तु बहुमन्ये इति भावः । सोऽपि—इन्द्रोऽपि भवतः = तव दुष्यन्तस्य अवदानेन = भवत्कृतेन दानववधात्मकशुद्धकर्मणा विस्मितः = साश्चर्यः इत्यवदानविस्मितः 'अवदानं कर्मवृत्तम्' इत्यमरः । 'अवदानं खण्डनेस्यादितिवृत्ते च कर्मणि' इति च मेदिनी । सती क्रिया सत्क्रिया तस्या सत्क्रियायाः गुणाः सत्क्रियागुणाः तान् सत्क्रियागुणान् = स्वकृतसमानस्यादरातिशयान् न गणयति = कथनयोग्यां न मन्यते = तृणवत् जनातीत्यर्थः ।

**अयं भावः**—यथा इन्द्रकृतां सत्क्रियामवेक्ष्य भवान् स्वस्य श्रमं लघु मन्यते तथैव भवत्पराक्रमादिकमवेक्ष्य महेन्द्रोऽपीमां स्वकृतां सत्क्रियामल्पीयसीमेव चिन्तयतीत्युभयोरपि तुल्यैवाकृतार्थता । तस्माद् युवामन्योन्यस्य कृतज्ञौ स्थ इति भावः । आयुष्मान् महेन्द्रश्चोभावपि उपकारे सत्कारे च न परितुष्यत इत्यहो द्वयोर्युवयोरपि सौजन्यमिति मातलेर्विस्मयो–मातलिना किञ्चित् स्मितपूर्वकहर्षकारणम् । अत एव तेनाभिधातुमारब्धम् ।

अत्र पद्ये विभावना-विशेषोक्ति सन्देहसङ्करालङ्काराः वृत्तं च वैतालीकम् ॥ १ ॥

---

**मातलि—( मुस्कराकर )** आयुष्मन् ! मैं समझता हूँ कि दोनों का ही असन्तोष है, क्योंकि-आप इन्द्र का शत्रुसंहार रूप इतना बड़ा उपकार करके भी इन्द्र द्वारा किए गये सत्कार की अपेक्षा अपने किये हुए उपकार को छोटा समझ रहे हैं ओर इन्द्र भी अपने द्वारा किये गये आपके सत्कार को आप द्वारा किये गये असुरविनाशरूप उपकार के सामने कुछ भी नहीं समझ रहे हैं। अतः आप दोनों को अपने कार्यों में समान ही सन्तोष है ॥ १ ॥

**विशेष**—मातलि से कहने का तात्पर्य यह है कि जैसा आप इन्द्र के सम्मान को महान् और अपने द्वारा किये गये दानवगण के बधकार्य को लघु समझ रहे हैं, वैसे ही इन्द्र भी आपके कार्य को गुरुतर तथा अपने द्वारा किये गये सम्मान को हल्का समझ रहे हैं। इस प्रकार आप इन्द्र के द्वारा किए गये सत्कार के कारण अपने किये हुए दानवगणबध रूप उपकार को तुच्छ मानते हैं। तथा महेन्द्र आपके सराहनीय कार्य से उपकृत हो अपने सम्मान वैभव को तृणतुल्य समझते हैं।

राजा—मातले, मा मैवम् स खलु मनोरथानामप्यभूमिर्विसर्जनावसरसत्कारः। मम हि दिवौकसां समक्षमर्धासनोपवेशितस्य—

अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।
[1]आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा ॥ २ ॥

**राजा**—इन्द्रकृतमात्मसत्कारातिशयं वर्णयन् नृपो दुष्यन्तो वदति—मातले! = हे इन्द्रसारथे! मा मैवं = इत्थं मा वद, मा वद, मम विसर्जनावसरे = राजधानीं प्रतिप्रेषणस्य समये महामहिमशालिना महेन्द्रेण यः सत्कारः-संभावना कृतः स खलु मनोरथानामपि = मनसोऽपि अभूमिः = अविषयः मनसाप्यचिन्तनीयः। सत्कारस्य मनोरथातिभूमित्वमाह—**मम हीति**। पश्य, दिवौकसां = देवानाम् समक्षं = पुरः अर्द्धं च तदासनमिति अर्द्धासनं तत्रोपवेशितस्य = स्थापितस्य इन्द्रसिंहासनस्यार्द्धभागे समासीनस्य मम = दुष्यन्तस्य, गले हरिणा मन्दारमाला पिनद्धेत्यग्रिमेण सम्बन्धः।

**अन्वयः**—अन्तिकस्थम् अन्तर्गतप्रार्थनं जयन्तम् उद्वीक्ष्य कृतस्मितेन हरिणा आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का मन्दारमाला पिनद्धा ॥ २ ॥

महेन्द्रस्य सत्कारातिशयं विमृशन् राजा दुष्यन्तो मातलिमभिधत्ते—**अन्तर्गतमिति**। अन्तिकस्थं = समीपवर्तिनं, अन्तर्गतः = हृद्गता प्रार्थना = मन्दारमालाविषयकोऽभिलाषः यस्य स तम् अन्तर्गतप्रार्थनम्, जयन्तं = जयन्तनामकं पुत्रम् उद्वीक्ष्य = निपुणं निरीक्ष्य कृतास्मितेन = विहितमन्दहास्येन ईषद्धसता जयन्तमनोगतं मालाविषयकमभिलाषं ज्ञात्वा इदानीमयं त्वत्तोऽप्यस्याः विशेषाधिकारीति बोधयितुं स्मितं कृतवता हरिणा = इन्द्रेण आमृष्टवक्षो हरिचन्दनाङ्का आमृष्टं वक्षसि = हृदये यद् हरिचन्दनस्य आलेपः सोऽङ्कः = चिह्नं यस्याः सा तादृशी = विलुप्तमहेन्द्रवक्षःस्थलचन्दनाङ्किता मन्दारमाला = मन्दाराख्यसुरद्रुमपुष्पमालिका पिनद्धा = स्वयं परिधापिता समस्तमहीमण्डलसम्राजोऽस्य दुष्यन्त किमन्यद्देयमिति विमृश्य हरिणा स्ववक्षस उन्मुच्य स्वकीया मालेव तद्गले समर्पितेत्यर्थः।

**अयं भावः**—दुर्जयान् दानवान् निहत्य स्वराजधानीं प्रति प्रस्थानवेलायां महामहिमशालिना देवाधिपतिना महेन्द्रेण सविस्मय पश्यत्स्वपि देवसमूहेषु यं बलात् स्वसिंहासनस्यार्द्धभागे समुपवेश्य समयस्थितेन प्रियपुत्रेण जयन्तेन प्राथ्यमानाऽपि मन्दार-

अतः आप दोनों ही समान असन्तुष्ट हैं। आप दोनों की कृतज्ञता एवं गुणग्राहकता व्यक्त होती है! इस पद्य के द्वारा राजा दुष्यन्त तथा इन्द्र के मानवोचित महान् गुण निरहङ्कार का दिग्दर्शन कराया गया है।

**राजा—हे** मातले! **नहीं**, ऐसा मत कहो, इन्द्र ने मुझे विदा करते समय जो मेरा सत्कार किया, वह कल्पना से भी परे की चीज है, क्योंकि उन्होंने देवताओं के समक्ष मुझे अपने सिंहासन के आधे भाग पर बैठाकर और—

मन ही मन उस माला को लेने की इच्छा रखने वाले पास में ही बैठे अपने प्रिय पुत्र जयन्त की भी उपेक्षा करके हंसते हुए अपने वक्षस्थल पर लगे हुए दिव्यचन्दन से चर्चित मन्दार पुष्पों की माला मेरे गले में पहना दी ॥ ३ ॥

**विशेष**—अर्धासन पर उपवेशित पद से यह ध्वनित होता है कि मैं मनुष्य हूँ, फिर भी

पाठा०—१. प्रमृज्य वक्षो°।

**मातलिः**—किमिव नामायुष्मानमरेश्वरान्नार्हति । पश्य—

**सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवमुद्धतदानवकण्टकम् ।**
**तव शरैरधुना नतपर्वभिः पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः ॥ ३ ॥**

---

माला स्ववक्षःस्थलादुन्मुच्य मम वक्षसि सप्रेम पिनद्धा । इत्थं निजार्द्धासनोपवेशनेन, प्रार्थ्यमानं प्रियमपि पुत्रमुपेक्ष्य स्ववक्षस उन्मुच्य मम कण्ठे मन्दारमाला समर्पणेन भगवता वाढमहं सत्कृतोऽस्मीतिभावः अत्रोदात्तानुप्रासपरिकरालङ्कारा उपजातिवृत्तञ्च ॥ २ ॥

**मातलिः**—किमिव नाम = किं तत् अमरेश्वरात् = देवेन्द्रात् आयुष्मान् = भवान् नार्हति = न प्राप्तुमर्हति ? सर्वं ततः प्राप्तुमर्हति भवानित्याशयः । पश्य = विलोकय । स्फुटयति—सुखपरस्येति ।

**अन्वयः**—अधुना नतपर्वभिः तव शरैः पुरा च पुरुषकेसरिणः नखैः उभयैः सुखपरस्य हरेः त्रिदिवम् उद्धृतदानवकण्टकं कृतम् ॥ ३ ॥

महेन्द्र द्वारा जातमात्तः सत्कारं बहुमन्यानं दुष्यन्तमिन्द्रसारथिर्मातलिरभिधत्ते—**सुखपरस्येति** । अधुना = साम्प्रतम् नतपर्वभिः नतानि = अनुन्नतानि पर्वाणि = ग्रन्थयो येषां ते तैः नतपर्वभिः = नतग्रन्थिभिः तव = भवतः शरैः = बाणैः पुरा च पूर्वं च कृतयुगे पुरुषकेसरिणः नरसिंहस्य भगवतो नारायणस्य नखैः = नखरैः उभयैः = पूर्वोक्तैः द्विप्रकारकैः उपायैः सुखपरस्य–सुखं = आनन्दः परं = सर्वोत्कृष्टं वस्तु यस्य सः

---

मेरा देवता सा सत्कार हुआ। आसपास में आसन न देकर अपनी गद्दी का आधा भाग देकर मेरे प्रति विशेष सम्मान दिखाया गया। फिर भी मैं बैठ नहीं रहा था, किन्तु जबदस्ती बैठाकर मेरा अभूतपूर्व सम्मान हुआ। पास में ही बैठा हुआ इन्द्र का परम प्यारा पुत्र जयन्त चाह रहा था कि यह दिव्य मन्दार की माला मुझे पहना दी जाय, पर इन्द्र ने उसे न पहनाकर मुझे पहना दिया।

स्वर्ग में जो चन्दन है, उसे हरिचन्दन कहते हैं, क्योंकि वह हरि = इन्द्र को अधिक प्रिय है गद्मपुराण के अनुसार हरिचन्दन एक विशेष प्रकार का लेप है, इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—

घृष्टं च तुलसी काष्टं कर्पूरागुरुयोगतः ।
अथवा केसरैयोज्यं हरिचन्दनमुच्यते ॥ १२।७

स्वर्ग के पाँच वृक्षों में मन्दार एक है, इन पांच वृक्षों के नाम हैं—मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन, जैसे–'पञ्चैते देवतरवः मन्दार परिजानकः । सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ।'

इस प्रकार इन्द्र के वक्षस्थल पर हरिचन्दन का लेप और मन्दारमाला, सर्वदा बनी रहती है। वे उनके सौभाग्य के सूचक हैं।

**मातलि**—ऐसा कौन सा सत्कार है जिसे आप अमरेश्वर इन्द्र से पाने के अधिकारी नहीं हैं ! क्योंकि देखिए—

दिव्य सुखों के उपभोग में संलग्न इन्द्र के स्वर्ग को दानव रूप कण्टकों से विहीन इन दोनों ने ही तो किया है, एक तो इस समय आपके नतपर्व गाँठ पर झूले हुए इन बाणों ने और दूसरे पूर्वकाल में पुरुषोत्तम भगवान् नृसिंह के तीखे-तीखे नखों ने ॥ ३ ॥

**विशेष**—देवराज इन्द्र हमेशा सुखोपभोगी हैं। अतः वे अपना कार्य अपने लघुभ्राता उपेन्द्र विष्णु या राजा दुष्यन्त से सिद्ध कराते रहते हैं। यहाँ मातलि ने राजा दुष्यन्त को विष्णु के समान

राजा—अत्र खलु शतक्रतोरेव महिमा स्तुत्यः।

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥ ४ ॥

---

तादृशस्य हरेः = इन्द्रस्य त्रिदिवं = स्वर्गं उद्धृताः = उद्गताः दानवाः = दनुजा एव कण्टकाः = शत्रवः यस्मात् तत् उद्धृतदानवकण्टकं = समूलोन्मूलित राक्षसरूपकण्टकम् कृतं = विहितम्। पुरा युगे भगवतो नृसिंहस्य नखैः, इदानीं तु त्वदीयशरैः स्वर्गस्य कण्टकरूपा इन्द्रशत्रवो दूरी कृताः। अत एवेन्द्रो निरन्तरं सुखमनुभवति। अत एवा-मरेन्द्रो भवतः साहाय्येनैव निष्कण्टकं राज्यमुपभुङ्क्ते। अथाप्यद्यत्वे प्रत्यग्रमुपकृतवते भवते न किमप्यदेयमस्ति मघोन इति भावः।

अत्र तुल्ययोगितोपमानुप्रासा अलङ्काराः द्रुतविलम्बितं च वृत्तम्।

**राजा**—अत्र = अस्मिन् विषये मम बाणैः कण्टकोद्धारे खलु = निश्चयेन नूनं शतक्रतोः इन्द्रस्य एव महिमा=महत्ता प्रभावः स्तुत्यः = प्रशंसनीयः मम विजयोऽपीन्द्रस्यैव प्रसादा-दित्यत्र मम का स्तुतिरितिभावः।

**अन्वयः**—महत्स्वपि कर्मसु नियोज्याः सिध्यन्ति (इति) यत् तम् ईश्वराणां संभवनानुगुणम् अवेहि। अरुणः तमसां विभेत्ता किं वाऽभविष्यत् चेत् सहस्रकिरणः तं धूरि न अकरिष्यत्।

आत्मना कृते दुर्जयदानवानामुद्धरणे न किञ्चिदात्मीयं गौरवमपितु तस्यैवेन्द्रस्यायं प्रभाव इति सविनयं कथयन् राजा दुष्यन्तो मातलिं ब्रवीति—सिध्यन्तीति। महत्स्वपि

---

तथा उनके बाण को नाखून के समान बताया, जिसका अभिप्राय है कि जिस प्रकार गड़ा काँटा नाखून से निकाल दिया जाता है, उसी प्रकार राजा के बाणों और नृसिंह के नखों से दानव उखाड़ फेंक दिये गये। इस प्रकार दानव तथा कण्टक, बाण एवं नखों के साथ समता दिखाई गयी है। सतयुग की बात है कि दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु ने इन्द्र को सिंहासनच्युत करके स्वयं स्वर्ग का राजा बन त्रिलोकी में त्राहि, त्राहि मचा दी थी। परिणाम स्वरूप भगवान् विष्णु ने नृसिंह का रूप धारण कर अपने नखों से उसके वक्षःस्थल को विदीर्ण कर उसका वध हो जानेपर स्वर्ग को निष्कण्टक कर दिया था। जिस प्रकार नृसिंह ने इन्द्रपर कृपा की थी, उसी प्रकार दुष्यन्त ने भी की है। दोनों समान रूप इन्द्र के उपकारी हैं।

**राजा**—मैंने जो दुर्जय दुर्दान्त उन असुरों का वध किया है, इसमें तो इन्द्र की ही महिमा है, क्योंकि देखिए—

बड़े-बड़े कार्यों में जो सेवक सफल हो जाते हैं, ऐसे मालिकों के प्रभाव का ही फल समझना चाहिए, क्या सूर्य के सारथी अरुण अन्धकार को दूर करने में कभी समर्थ हो सकते थे, यदि सूर्य उन्हें अपने रथ पर न आगे बैठाते ॥ ४ ॥

**विशेष**—तात्पर्य यह है कि सूर्य की कृपा के बिना अरुण कभी अन्धकार दूर करने में सफलता नहीं प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए मैंने जो असुर का वध किया है, वह इन्द्र की कृपा और प्रभाव का ही फल है। सूर्य के सारथि का नाम अरुण है, वे विनता के पुत्र और गरुड़जी के भ्राता हैं, वे पंगु=पैर रहित हैं। उनमें स्वतः अन्धकार दूर करने की क्षमता नहीं है, पर उनके पीछे अनन्त

मातलिः—सदृशमेवैतत् । ( स्तोकमन्तरमतीत्य ) आयुष्मन्, इतः पश्य नाकपृष्ठ-प्रतिष्ठितस्य सौभाग्यमात्मयशसः ।

**विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु ।**
**विचिन्त्य गीतक्षममर्थजातं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति ॥ ५ ॥**

---

कर्मसु = कष्टसाध्येष्वपि गुरुषु कार्येषु नियोज्याः = सेवकाः भृत्या सिध्यन्तिः = सिद्धिमन्तो भवन्ति कार्यनिष्पादका जायन्ते इति यत् भृत्याना या कृतार्थता ताम् ईश्वराणां = शक्तिमतां स्वामिनां संभावनानुगुणं—संभावना = नियोज्यविषयको बहुमानः तस्य गुणम् उत्कर्षम्, महिमानं वा अवेहि जानीहि । प्रभुमहत्त्वेनैव तत्कार्यसिद्धिः सेवकगुणो न कोऽपि वर्तत इति भावः । अरुणः = विनतासुतः सूर्यसारथिः तमसां = ध्वान्तानाम् अन्धकाराणां विभेत्ता = नाशकः किं वा अभविष्यत् = कथमभविष्यत् चेत् = यदि तं = अरुणं सहस्रकिरणः = सहस्रांशुः सूर्यः धुरि = अग्रे यानमुखे न अकरिष्यत् = नास्थापयिष्यत् ।

अयं भावः—हे देवराजसारथे ! नाहं प्रशंसार्हम् किन्तु महेन्द्रस्यैवायं महिमा यत्तेन मद्द्वारा तत् कार्यं सम्पादितम् । पश्य महत्सु कार्येषु नियुक्ताः सेवकाः यदि कार्याणि सम्यक् सम्पादयन्ति तत् स्वामिनामेव महिमा न तु भृत्यानाम्, चलितुमक्षमोऽपि वनितातनयोऽनूरुरुणो यदि भगवता सूर्येण स्वरथाग्रभागे न स्थापितोऽभविष्यत् तर्हि स कथं तमसां विभेत्ताऽभविष्यत् । तस्माद्दुर्जयदानवगणो महेन्द्रमहिम्नैव विनष्टो न स्वकीयात् प्रभावादित्याशयः । अत्र—दृष्टान्तानुप्रासाऽप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्काराः वसन्ततिलका वृत्तञ्च ॥ ४ ॥

मातलिः—एतत् = विनयवचनम् सदृशमेव = भवदनुरूपमेव योग्यमेव शूरा अविकत्थना भवन्तीतिभावः । ( स्तोकमन्तरमतीत्य = स्वल्पमवकाशमतिक्रम्य ) आयुष्मन् = चिरञ्जीविन् ! नाकपृष्ठप्रतिष्ठितस्य—नाकेपृष्ठे = स्वर्गतले प्रतिष्ठां प्राप्तस्य स्थिरीकृतस्य आत्मयशसः = निजकीर्तेः सौभाग्यं = अहोभाग्यं, लालनीयत्वम् लोकप्रियत्वं इतः = अत्र प्रदेशे पश्य = अवलोकय सौभाग्यमेवोपपादयति—विच्छित्तिरिति ।

अन्वयः—अमी दिवौकसः गीतक्षमम् अर्थजातम् विचिन्त्य सुरसुन्दरीणां कल्पलतांशुकेषु विच्छित्तिविशेषैः वर्णैः त्वच्चरितं लिखन्ति ॥ ५ ॥

राज्ञो दुष्यन्तस्य सुयशसः सौभाग्यं कथयन् मातलिर्वदति—विच्छित्तिरिति । अमी = दूरे दृश्यमानाः दिवौकसः = स्वर्गवासिनो देवाः गीतक्षमम् = गातुं योग्यं सुरसुन्दरीभिर्गा-

---

किरणवाले भगवान् सूर्य विराजमान रहते हैं, जिससे अन्धकार भागता है । इस प्रकार मुझमें दानवों को मारने की योग्यता नहीं है, प्रतापी इन्द्र का प्रताप मेरा पृष्टपोषक है, जिससे भयभीत हो दानवगण भग गये, मुझे यश मिल गया । इस प्रकार दुष्यन्त ने अपनी नम्रता की पराकाष्ठा कर दी है ।

**मातलि**—यह कथन आपके लिए उचित ही है ( थोड़ी दूर जाकर ) चिरजीविन् ! इधर स्वर्गतल पर प्रतिष्ठित अपने सुयश के सौभाग्य को देखिए—

ये स्वर्गवासी देवतालोग गाने के योग्य अर्थसमूह को सोचकर देवाङ्गनाओं के अंगराग के बचे हुए रंग से कल्पवृक्ष से निर्मित रेशमी वस्त्रों पर आपके चरित्र को लिख रहे हैं ॥ ५ ॥

**विशेष**—यहाँ अङ्गराग से अवशिष्ट रंग लिखने का साधन है, कल्पवृक्ष द्वारा दिया गया रेशम वस्त्र लिखने का आधार है और देवता लिखने वाले हैं । साधन, आधार तथा लेखक ये तीनों विशिष्ट हैं । समस्त जीवन गाथा लिखना संभव नहीं । अतः विशेष गेय अंश ही लिखे जा रहे हैं । अब देवता लोग कल्पवृक्ष द्वारा दिये गये वस्त्र पर देवाङ्गनाओं के अङ्गराग से आपका सुयश लिखना

**राजा**—मातले असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वेद्युर्दिवमधिरोहता मया न लक्षितः स्वर्गमार्गः तत् कतमस्मिन् मरुतां पथि वर्तामहे ।

---

नाहंम् अर्थजातं = पदार्थसमूहं, पदावलीम् विचिन्त्यं = विचार्य काव्यं विरच्य सुरसुन्दरीणां=देवाङ्गनानां अप्सरसाम् कल्पलतांशुकेषु कल्पलतानामंशुकानि कल्पलताशुकानि तेषु कल्पलतांशुकेषु = कल्पवृक्षसमुत्थितेषु निजवनिता वसनेषु विच्छित्ते। शेषा विच्छितिशेषाः तैः विच्छित्तिशेषैः = अङ्गरागावशिष्टैः वर्णैः = कुङ्कुमकस्तूरीहरिचन्दनादिनिर्मितैः वर्णकैः सितपीतादिभिर्वर्णैः वा त्वच्चरितं = दानवविजयानुरूपं तवावदानं जीवनगाथां लिखन्ति = अङ्कयति । लिपिबद्धं कुर्वन्तीत्यर्थः ।

**अयं भावः**—भूपते ! अवलोकय भवद्यशः सौभाग्यं स्वर्गमधिरोहति समुद्धृतासुरकण्टका निश्चिन्ता अमी देवा निजकरकमलैः स्वप्रियतमानामङ्गेषु हरिचन्दनादिलेपैः तिलकालङ्कारान् परिकल्प्य तदवशिष्टैर्वर्णकैः तासां वसनेषु ताभिर्गेयं-त्वदीयं चरितं सम्यग् विचार्य लिखित्वा भवदुपकृतं त्रिदशलोकोत्तरं भवदीयं चरितमेव स्वसुन्दरीभिः साकं सहर्षं गायन्ति । अत्रोदात्तपरिणामानुप्रासालङ्कारा उपजातिच्छन्दश्च ।

**राजा**—महापुरुषत्वात् राजर्षे दुष्यन्तस्यात्मप्रशंसाश्रवणं लज्जाकरमिति मातलि विषयान्तरे संचारयन्नाह--मातले ! असुराणां = दानवानां संप्रहारे = युद्धे समुत्सुकेन = उत्कण्ठितेन दिवं = स्वर्गम् अधिरोहिता = आरोहता मया = दुष्यन्तेन पूर्वेद्युः पूर्वस्मिन् दिने न लक्षितं = न दृष्टः सम्यग् न निरूपितः स्वर्गमार्गः = स्वर्गारोहणपदवी तत् तस्मात् कथय मम परिचयार्थं प्रबोधय मरुतां वायूनां कतमस्मिन् पथि = सप्तसु वायुमार्गेषु कस्मिन् वायुमार्गे वयं संप्रति वर्तामहे = गच्छामः । कस्मिन् वायुमार्गे तिष्ठाम इति न ज्ञायते इति भावः । सप्तवायुमार्गा महाभारते प्रसिद्धाः । तथाहि—

> आवहः प्रवहश्चैव ततश्चानुवहस्तथा ।
> संवहो विवहश्चैव ततश्चोर्ध्वंपरवहः ॥
> द्विजा परिवहश्चैव वायोर्वै सप्त नेमयः ॥

सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्यस्तु--

> भूवायुराहव इति प्रवहस्तदूर्ध्वं
> स्यादुद्वहस्तदनु संवहसंज्ञकश्च ।
> अन्यस्ततोऽपि सुवहः प्रतिपूर्वकोऽस्मात्
> वाह्याः परावह इमे पवनाः प्रसिद्धाः ॥

---

अपना आवश्यक कर्तव्य समझते हैं। इसमें साधारण पत्र और स्याही की आवश्यकता नहीं चरित्र और चरित्र में अन्तर है आचरण को चरित्र एवं जीवन की घटनाओं को भी चरित कहते हैं।

सुगन्धित द्रव्यों से मुख-मस्तक आदि के सजाने को विच्छित्ति कहते हैं। कल्पवृक्ष स्वर्गनिवासियों के धारण करने के योग्य सूक्ष्म रेशमवस्त्र प्रदान करते हैं।

**राजा**—मातले ! दुर्जय असुरों के साथ युद्ध करने की उत्कण्ठा में मैंने जाते समय स्वर्गमार्ग को विशेष रूप से नहीं देखा, तो बताओ सात वायुमण्डलों में से इस समय हमलोग वायु के किस मार्ग में चल रहे हैं ?

मातलिः—त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां
ज्योतींषि वर्तयति [1]च प्रविभक्तरश्मिः ।
तस्य द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्कं
वायोरिमं परिवहस्य वदन्ति मार्गम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—यः गगनप्रतिष्ठा त्रिस्रोतसं बहति, ज्योतींषि प्रविभक्तरश्मि वर्तयति च तस्य परिवहस्य वायोः द्वितीय हरिविक्रमनिस्तमस्कम् इमं मार्गं वदन्ति ॥ ६ ॥

इन्द्रसारथे । कतमस्मिन् स्वर्गमार्गे आवां वर्तावहे इति नृपतेः दुष्यन्तस्य प्रश्नमुत्तरयन् मातलिः कथयति—त्रिस्रोतसमिति । यः=यो मार्गः गगनप्रतिष्ठां गगने=आकाशमार्गे प्रतिष्ठा=स्थितिर्यस्याः सा तां गगनप्रतिष्ठाम्=गगनस्य प्रतिष्ठा=समृद्धिर्यथा सा तादृशीं त्रिस्रोतसम् त्रीणि स्रोतांसि यस्याः सा तां त्रिस्रोतसम्=त्रिमार्गगाम् स्वर्गगङ्गां मन्दाकिनीम् वहति=धारयति नयति वा गगनगामिनीम्, ज्योतींषि ध्रुवादि नक्षत्राणि, सप्तर्षिमण्डलानि च प्रविभक्ता=यथामार्गं व्यवस्थापिताः चतुर्षु दिक्षु विस्तृता रश्मयः रज्ज्वाकाराः किरणा यस्मिन् कर्मणि तत् प्रविभक्तरश्मि=असंकीर्णकिरणं यथा स्यात्तथा वर्तयति=प्रवर्तयति मण्डलशः संचारयति, इमं मार्गं=पन्थानं वदन्ति=कथयन्ति ।

तथा च विष्णुपुराणे—

सूर्यचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवैर्वद्धानि तानि वै ॥
ग्रहर्क्षताराधिपानि ध्रुवे वद्धान्यशेषतः ।
भ्रमन्त्युचितचारेण मैत्रेयानिलरश्मिभिः ॥

तस्य=परिवहस्य परिवहनायकस्य वायोः भूगतविक्रमापेक्षया अन्यः हरेः=वामनरूपिणो विष्णोः विक्रमः=पादनिक्षेपः तेन निस्तमस्कं=निर्मलं निष्पापं शोकरहितं चेति द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्कम् ।

उक्तं च वामनपुराणे—

क्रमत्रये तोयमवेक्ष्य दत्तं महासुरेन्द्रेण विभुर्यशस्वी ।
चक्रे ततो लंघयितुं त्रिलोकं त्रिविक्रमं रूपमनन्तशक्तिः ॥
कृत्वानुरूपं दितिजांश्च हत्वा प्रणम्य चर्षीन् प्रथमक्रमेण ।
महीं महीध्रैः सहितां महर्णवाब्जदार रत्नाकरपत्तनैर्युताम् ॥
भुवं सनाकं त्रिदशाधिवासं सोमार्कऋक्षैरभिनन्दितं नभः ।
दिवो द्वितीयेन जहार वेगात् क्रमेण देवप्रियमीप्सुरीश्वरः ॥

**मातलि**—जो आकाश में स्थित गंगा को धारण करता है तथा अपनी किरणों को फैलाकर ग्रहनक्षत्रों को ठीक-ठीक चलाता है, उस परिवह नामक वायु का विष्णु=वामन के द्वितीय चरण के विन्यास से पावन यह मार्ग कहा जाता है ॥ ६ ॥

**विशेष**—विद्वानों ने आकाश को सात भागों में विभक्त किया है। प्रत्येक भाग में एक-एक वायु मण्डल का प्राधान्य है । इन सात वायुओं के नाम ब्रह्माण्ड पुराण में इस प्रकार

पाठा०—१. चक्रविभक्तरश्मिः ।

**राजा**—मातले ! अतः खलु सबाह्यकरणो ममान्तरात्मा प्रसीदति ( रथाङ्गमवलोक्य ) मेघपदवीमवतीर्णौ स्वः ।

**मातलिः**—कथमवगम्यते ।

**राजा**—[1]अयमरविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भि-
हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः ।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां
पिशुनयति रथस्ते सीकरक्लिन्ननेमिः ॥ ७ ॥

---

**अयं भावः**—अत्र हि आवहप्रवहादिषु वायुषु षष्ठस्य परिवहस्य वायोरेवाधिकारः। स्वयं ज्योतिविभागकर्तृत्वात् अत्र तमसोऽवकाश एव नास्ति, मन्दाकिनी धारणत्वाच्च रजोऽपि निरस्तमेवाम् । इत्थं वामनद्वितीय पादपातेन पूतो रजस्तमोरहितः सत्त्वैकाश्रयः परिवहाख्यस्य वायोरयं मार्गः, यत्रावां वर्तावहे । देवकार्यसम्पादनानन्तरमिदानीं निश्चिन्तो भूत्वा भवान् स्यन्दनेनावतरन् निपुणं निरीक्षताम् ।

अत्र महापुरुष चरित्रवर्णनादुदात्तालङ्कारो वसन्ततिलका वृत्तञ्च ॥ ६ ॥

**राजा**—मातले = महेन्द्रसारथे ! अतः = उक्तगुणविशिष्टपरिवहवायुमण्डलसञ्चारात् बहिर्भवानि बाह्यानि, बाह्यानि च तानि करणानीति बाह्यकरणानि तैः सह वर्तमानः स बाह्यकरणः = वाह्येन्द्रियवर्गसहितः अन्तरात्मा = आन्तरःकरणं मनः प्रसीदति = मोदते ताम् ( रथाङ्गं = रथचक्रम् अवलोक्य = दृष्ट्वा ) मेघपदवीं = जलधरमार्गम् अवतीर्णौ स्वः = उपरिमार्गादधोमार्गमागतौ ।

**मातलिः**—कथमवगम्यते ? केनप्रकारेण ज्ञायते मेघमण्डलावतरणमनुमीयते भवता ?

**अन्वयः**—अयं ते शीकरक्लिन्ननेमिः रथः अरविवरेभ्यः निष्पतद्भिः चातकैः अचिरभासां तेजसां अनुलिप्तैः हरिभिः वारिगर्भोदराणां घनानाम् उपरि पिशूनयति ।

आवां मेघमार्गमवतीर्णौ स्व इत्युक्ति समर्थयन् राजा दुष्यन्तो मातलिं कथयन्ति—

---

अङ्कित है ( १ ) आवह ( २ ) प्रवह ( ३ ) उद्वह ( ४ ) संवह ( ५ ) सुवह ( ६ ) परिवह और ( ७ ) परावह । भास्कराचार्य ने भी इनकी चर्चा अपने सिद्धान्तशिरोमणि में की है । ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार छठा परिवह वायु का यह मण्डल है । असुरराज बलिके यज्ञमण्डल में उपस्थित हो बलि से तीन पैर जमीन दान लेकर भगवान् वामन ने दूसरे पग से आकाश को नापा तो उनका पग आकाशवर्ती परिवह वायु के क्षेत्र में जा पड़ा था । इस प्रकार वामन रूपधारी भगवान् विष्णु के द्वितीय चरण विन्यास से यह परम पवित्र है ।

गंगाजी की तीन धाराएँ गायी गई हैं ( १ ) आकाश में स्थित गंगा को आकाश गंगा या मन्दाकिनी कहते हैं, पृथ्वीतल पर प्रवाहित होनेवाली गंगा को भागीरथी कहते हैं तथा पातालस्थ गंगा को भोगवती कहते हैं । परिवह वायु के क्षेत्र में ही आकाशगंगा तथा सप्तर्षिमण्डल है ।

**राजा**—मातले ! यही कारण है कि नेत्र आदि बाह्य तथा मन बुद्धि आदि आन्तर इन्द्रियों के साथ मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो रही है। **( रथ के पहिए को देखकर )** अब हमलोग बादलों के मार्ग पर उतर आये हैं ।

**मातलि**—कैसे मालूम हो रहा है ?

**राजा**—आपका यह रथ ही जिसके पहियों के बीच लगे अरों=दण्डों के मध्यभाग से चातक

---

पाठा०—१. अयमगविविरेभ्य ।

**मातलिः**—क्षणादायुष्मान् स्वाधिकारभूमौ वर्तिष्यते ।

**राजा**—( अधोऽवलोक्य ) वेगावतरणादाश्चर्यदर्शनः संलक्ष्यते मनुष्यलोकः । तथा हि—

---

अयमिति । अयं = एषः पुरोदृश्यमानः शीकरक्लिन्ननेमिभिः शीकरैः = जलकणैः क्लिन्नाः अराः नेमयः = प्रान्तभागाः चक्रधारा यस्य स शीकरक्लिन्ननेमिः = चक्रप्रान्तभागः रथः = स्यन्दनः अरविवरेभ्यः—अराणां = चक्राङ्गविशेषाणां विवरेभ्यः = अन्तरालेभ्यः 'अरं शीघ्रे च चक्राङ्गे' इति विश्वः । निष्पतद्भिः = निर्गच्छद्भिः, उड्डीय बहिर्गच्छद्भिः चातकैः = तन्नामकैः मेघप्रियैः पक्षिभिः अचिरभासां—अचिरा = क्षणिका भाः = दीप्तिर्यासां तास्तासां विद्युताम् तेजसा = प्रकाशेन दीप्त्या अनुलिप्तैः = रञ्जितैः हरिद्भिः = त्वदीयैरश्वैः वारिगर्भोदराणां—वारिगर्भं = जलपूर्णम् उदरं = अभ्यन्तरं मध्यभागं येषां ते तेषां घनानां = मेघानाम् उपरि = ऊर्ध्वं पृष्ठे गतं = गमनं पिशुनयाति = सूचयति । तस्मात् मन्ये सुरमार्गमतिक्रम्य साम्प्रतमावां मेघमण्डलस्योपरिष्टाद् वर्तावहे ।

अत्र समुच्चय-काव्यलिङ्ग-अनुमानालङ्काराः मालिनी वृत्तञ्च ॥ ७ ॥

मातलिः—आसन्नभूलोकं निर्दिशन्नाह—आयुष्मान् = भवान् क्षणात् = क्षणमतिक्रम्य स्वाधिकारभूमौ—स्वस्य = आत्मनः अधिकारः = नियोगः यस्यां सा स्वाधिकारा स्वाधिकारा चासौ भूमिश्चेति स्वाधिकारभूमिः तस्यां स्वाधिकारभूमौ = भूपृष्ठे वर्तिष्यते = स्थास्यति निजशासनं भूभागं प्राप्स्यसि ।

राजा—( अधोऽवलोक्य = नीचैर्दृष्ट्वा ) वेगावतरणात् = तीव्रगत्याऽधोगमनात्, आश्चर्यदर्शनः—आश्चर्यं = विचित्रं दर्शनं यस्य स आश्चर्यदर्शनः = अद्भुतदर्शनः, मनुष्यलोकः मानवं जगत् पृथ्वीलोकः संलक्ष्यते = भाति । तथाहि = उदाह्रियते—

---

निकल निकल कर उड़ रहे हैं, जिसके घोड़े भी चमकती हुई बिजलियों की चमक से चमक रहे हैं तथा जिसके पहियों की परिधि = पुठ्ठी भी जल से गीली हो रही है, जल से भरे हुए मेघों के ऊपर अपने चलने की सूचना दे रहा है ।

अर्थात् आपके रथ के पहियों की परिधि भीगी हुई है, रथ के पहियों के बीच लगे काष्ठदण्ड के मध्य से निकल-निकलकर चातक उड़ रहे हैं, रथ के घोड़े भी बिजली की चमक से प्रकाशित हो रहे हैं । इन सब बातों से स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि अब आपका यह रथ मेघमण्डल के ऊपर से जा रहा है ॥ ७ ॥

**विशेष**—श्लोक के पूर्वार्द्ध में इन्द्ररथ के मेघपथ पर चलने के दो कारण दिये गये हैं ( १ ) रथचक्र का भीगना और ( २ ) चातकों का रथमध्य से उड़ना । लोकभाषा में चातक को पपीहा भी कहते हैं । पपीहों की प्रसिद्धि है कि वे भूमिस्थ जल को नहीं पीते, वे आकाश जल को ही पीते हैं । इसीलिए वे मेघों के आस-पास उड़ते रहते हैं और वे मेघ से बरसते हुए पानी को आकाश में ही पी लेते हैं इसीलिये कहा गया है—**सर्वंसहा पतितमम्बु न चातकस्य ।**

**मातलि**—क्षणभर के बाद अपने अधिकार क्षेत्र पृथ्वीमण्डल पर पहुँच जायेंगे ।

**राजा—( नीचे की ओर देखकर )** वेग से नीचे उतरने के कारण यह मनुष्यलोक ( भूमण्डल ) आश्चर्यजनक ( अद्भुत ) सा प्रतीत हो रहा है । जैसे कि—

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णस्वान्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात्पादपाः।
संतानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्ति भजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते ॥ ८॥

**अन्वयः**—पश्य मेदिनी उन्मज्जतां शैलानां शिखरात् अवरोहतीव, पादपाः स्कन्धोदयात् पर्णस्वन्तलीनतां विजहति, तनुभावनष्टसलिला अपगाः सन्तानैः व्यक्ति भजन्ति, भुवनमुत्क्षिपता केनापि मत्पार्श्वमानीयते।

अधोऽवलोकयन् भूलोकस्याश्चर्यदर्शनत्वं समर्थयन् राजा देवराजसारथिं मातलिं ब्रवीति—**शैलानामिति**। पश्य = साश्चर्यमवलोकय मेदिनी=पृथ्वी उन्मज्जतां=सहसोत्प्लुत्य प्रकटी भवताम् क्रमशः स्पष्टं दृश्यमानानां शैलानां = महागिरीणां शिखरात् = अग्रभागात् शृङ्गात् अवरोहतीव = अवतरतीव, अधो गच्छतीव, नहि शैला उन्मज्जन्ति, नापि पृथ्वी अवरोहति, किन्तु वेगात् शैलानामुन्मज्जनं, मेदिन्याश्चावरोहणं द्वयमेतत् आश्चर्यं दृश्यते पूर्वं तु दूरतया पर्वतशिखरलग्नेव भूरालक्षिता, इदानीं तु सान्निध्यात् पर्वतमेदिन्योः शनैः शनैः दूरीभावो ज्ञायते इति भावः। पादपाः = वृक्षाः स्कन्धोदयात्—स्कन्धानां = प्रकाण्डानाम् उदयात् = प्राकट्यात्, आविर्भावात् पर्णस्वन्तर्लीनतां - पर्णानाम् = पत्राणां सु = अतिशयेन यदन्तरं = मध्यं तत्र लीनतां = तदाकारताम् पृथगनुपलब्धिम् विजहति = त्यजति प्रकटी भवन्तीत्यर्थः, पूर्वं पत्रपुञ्जमात्ररूपेण दृष्टास्तरवः साम्प्रतं काण्डादिमन्तो दृश्यन्ते इति तात्पर्यम् एतच्चाश्चर्यं वेगात् जातम्। तनुभावनष्टसलिलाः—तनुभावेन = क्षीणतया नष्टानि = अलक्षितानि सलिलानि = जलानि यासां ताः तनुभावनष्टसलिलाः = तनुभावेन नष्टसलिलेन च प्रतीयमाना इत्यर्थः। अपगाः = नद्यः सन्तानैः = विस्तारैः 'सन्तानो विस्तृतौ देववृक्षे चापत्तिगोत्रयोः' इति धरणिः। व्यक्तिं = प्रकटतां भजन्ति =

---

यह पृथ्वीमण्डल हिमालय आदि पर्वतों के शिखरों से नीचे उतरता हुआ सा प्रतीत हो रहा है। वृक्ष भी जो पहले पत्तों से छिपे हुए से मालूम पड़ते थे, वे अब धीरे-धीरे दिखाई देने से पत्तों से निकलते हुए से प्रतीत हो रहे हैं। ये नदियाँ भी जो पहले, जहाँ-जहाँ उनके प्रवाह में जल कुछ कम था, वहाँ बीच-बीच में खण्डित सी मालूम होती थी, वे ही अब धीरे-धीरे कम जलवाले प्रवाह भाग के स्पष्ट हो जाने से अखण्ठित एवं जुड़ी-सी मालूम हो रही हैं। देखिए यह भूलोक भी मानो किसी के द्वारा नीचे से ऊपर की ओर जोर से उछाला जाकर गेंद की तरह हमारे पास दौड़ा चला आ रहा है॥ ८॥

**विशेष**—इसका तात्पर्य यह है कि आकाश से नीचे उतरते समय पहले पर्वतों के शिखर ही दिखाई देते हैं पीछे धीरे-धीरे पृथ्वी दिखाई देती है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि मानो पृथ्वी पर्वत के शिखरों से ही धीरे-धीरे नीचे उतर रही है। इसी प्रकार पहले वृक्षों की पत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं, पुनः पेड़, शाखा-प्रशाखा आदि दिखाई देते हैं। नदियाँ भी पहले खण्डित-सी मालूम पड़ती हैं, क्योंकि जहाँ नदियों का पाट चौड़ा है, वहाँ जल ज्यादा है। अत वही भाग पहले दिखाई पड़ता है और कम जलवाला भाग पहले नहीं दीख पड़ता है। इसलिए नदियां पहले टूटी सी मालूम पड़ती हैं और पीछे पास आने से जुड़ी हुई सी मालूम होने लगती हैं। ज्यों-ज्यों रथ नीचे उतरता है त्यों त्यों भूमण्डल भी मानो ऊपर की ओर गेंद के समान उछलता हुआ पास आ रहा प्रतीत होता है।

**मातलिः**—साधु दृष्टम् ( सबहुमानमवलोक्य ) अहो [1]उदाररमणीया पृथ्वी।

**राजा**—मातले ! कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकरसनिस्यन्दः सान्ध्य इव [2]मेघपरिघः सानुमानालोक्यते।

**मातलिः**—आयुष्मन् ! एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतस्तपःसंसिद्धिक्षेत्रम्।

पश्य—

---

यान्ति। यत्र यत्र दूरात् सूक्ष्मतया जलं न दृष्टं, सहसा सजला नद्यस्तत्र दृश्यन्ते। इदमप्याश्चर्यं वेगादेव भुवनं = मनुष्यलोकः उत्क्षिपता = ऊर्ध्वं प्रेरयता केनापि = अतिसुरासुरत्वेन सत्वेन मत्पार्श्वं = मम समीपम् आनीयते इव उपस्थाप्यत इव, वस्तुतस्तु अहमेवाधः पतामि, वेगात्पुनर्भुवनमुत्पततीव भाति। यद् दूरादेकपृष्ठमेकवर्णं च भाति स्म तदेव भुवनं सहसा गिरितरुसरसादिरूपेण विभक्तपृष्ठभागमुत्पततीवेत्यहो आश्चर्यम्। तस्मादाश्चर्यदर्शनोऽयं मनुष्यलोक इति सत्यमिति भावः।

अत्रोत्प्रेक्षाकाव्यलिङ्गस्वभावोक्तिसंसृष्टालङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं च छन्दः॥ ८॥

**मातलिः**—राजोक्तिमनुमोदमानो मातलिर्वदति—साधु दृष्टम्=सम्यगवलोकितं भवता शोभनमुत्प्रेक्षितम् सबहुमानं = सादरमवलोक्य = दृष्ट्वा। अहो = आश्चर्यम्, उदाररमणीया उदारा = विशाला च रमणीया = सुन्दरी चेति उदाररमणीया = अतिदर्शनीया पृथ्वी = मेदिनी।

**राजा**—मातले ! = इन्द्रसारथे ! पूर्वापरसमुद्रावगाढः—पूर्वापरसमुद्रयोः=पूर्वपश्चिमसागरयोः अवगाढः = प्रविष्टः, सम्बद्धः पूर्वपश्चिमसमुद्रद्वयविनिविष्ट प्रान्तभागः कनकरस निष्यन्दः कनकरसस्य = सुवर्णद्रवस्य निष्यन्दः = स्रव इति कनकरसनिष्यन्दः = द्रवसुवर्णोद्गारी, कनकमयधातुरसनिस्यन्दी सान्ध्यः सन्ध्यायां भवः सान्ध्यः = सन्ध्याकालोद्भवः मेघपरिघः = परिघाकारो मेघः कतमः = कः सानुमान् = पर्वतः ? आलोक्यते दृश्यते ?

**मातलिः**—आयुष्मन् = चिरजीविन् ! एषः = पुरो दृश्यमानः समीपवर्ती खलु हेमकूटो नाम = हेमकूट इति प्रसिद्धः किंपुरुषपर्वतः = किम्पुरुषवर्षस्य मर्यादापर्वतः तपःसंसिद्धिक्षेत्रम् तपसः = तपस्यायाः संसिद्धेः = सफलतायाः क्षेत्रं = स्थानमिति तपः संसिद्धक्षेत्रम् हेमकूटः = कैलासः। तथाहि महाभारतस्य भीष्मपर्वणि—

हेमकूटस्तु महान् कैलासो नाम पर्वतः।
यत्र वैश्रवणो राजा गुह्यकैः सह मोदते॥—६।४१

किम्पुरुषवर्षस्य मर्यादापर्वतत्वमुक्तं श्रीमद्भागवतस्य पञ्चमे स्कन्धे—

---

**मातलि**—आयुष्मन् ! आपने बहुत ठीक देखा, ऐसी ही बात है ( अत्यन्त आदर के साथ देखकर ) वह यह पृथ्वी कितनी चित्ताकर्षक और विशाल है।

**राजा**—पूर्व और पश्चिम सागर में घुसा हुआ सुवर्ण के रस को बहाने वाला सायंकालीन बादलों की तरह पीला या लाल यह कौन सा पर्वत है ?

**मातलि**—आयुष्मन् ! यह किंपुरुष वर्ष का हेमकूट नामक पर्वत है, जो तपस्वियों की तपस्या का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। देखिए—

---

पाठा०—१. उदग्ररमणीया पृथ्वी। २. मेघः सानुमानवलोक्यते।

स्वायंभुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः ।
सुरासुरगुरुः सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति ॥ ९ ॥

दक्षिणेनेलावृत्तं निषधो हेमकूटो हिमालय इति त्रयो हरिवर्षकिम्पुरुषवर्षभारतवर्षाणां मर्यादा गिरयः । विष्णुपुराणे च—

हिमवान् हेमकूटश्च निषधस्तस्य दक्षिणे ।
नीलः श्वेतश्च भृङ्गी च उत्तरेवर्षपर्वताः ॥
प्रथमं भारतं वर्षं ततः किं पुरुषं स्मृतम् ।
हरिवर्षं तथैवान्यत् मेरोर्दक्षिणतो द्विज ॥

**अन्वयः**—स्वायम्भुवात् मरीचेः "यः" प्रजापतिः प्रबभूव सुरासुरगुरुः स सपत्नीकः अत्र तपस्यति ।

हेमकूटपर्वतस्य माहात्म्यातिशयं वर्णयन् देवराजसारथिः मातलिर्नृपतिं दुष्यन्तमभिधत्ते—**स्वायम्भुवादिति** । स्वयंभवतीति स्वयम्भूर्ब्रह्मा तस्य स्वयम्भुवोऽपत्यं स्वायम्भुवः ब्रह्मणोमानसपुत्रः तस्मात् स्वायम्भुवात् मरीचेः = मरीचिनाम्नो ब्रह्मणो मानसपुत्रात् यः प्रजापतिः = लोकस्रष्टा कश्यपः इति प्रबभूव जज्ञे सुरासुरगुरुः सुराणां = देवानाम् असुराणां = दानवानां च गुरुः=पिता सः = मारीचः सपत्नीकः, पत्न्या = अदित्या सह अत्र = अस्मिन् हेमकूटे तपस्यति = तपश्चरति, तपस्यां कुरुते ।

**अयं भावः**—हे राजन् । पश्य पुरो दृश्यमानं एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषवर्षवर्ती मर्यादापर्वतः तपसः सिद्धिभूमिश्च स्वयंभुवो यत्र ब्रह्मणो मानसपुत्रात् स्वायंभुवात् मरीचिः तस्मात् मारीचेः समुत्पन्नः सुरासुरजनकः सर्वलोकनमस्यो भगवान् महर्षिकश्यपः स्वभार्यया आदित्या सह तपश्चरन् सुखेन निवसति तस्मात् सकललोकातिक्रान्तो हेमकूटपर्वतस्य महिमा वर्तते । अत्र छेकवृत्यनुप्रासौ अलङ्कारो अनुष्टुप्छन्दश्च ॥ ९ ॥

स्वयम्भू ब्रह्माजी के मानस पुत्र महर्षि मरीचि से जो प्रजापति उत्पन्न हुए हैं, वे ही सुर और असुरोंके पिता कश्यप जी इस हेमकूट पर्वत पर अपनी पत्नी अदिति के साथ तपस्या करते हैं ॥९॥

**विशेष**—पौराणिक भूगोल के अनुसार दृश्यमान संसार सात द्वीपों में विभक्त माना गया है। जैसे ( १ ) जम्बूद्वीप ( २ ) प्लक्षद्वीप ( ३ ) शाल्मलिद्वीप ( ४ ) कुशद्वीप, ( ५ ) क्रौञ्चद्वीप ( ६ ) शाकद्वीप तथा ( ७ ) पुष्करद्वीप। इनमें प्रथम जम्बूद्वीप के अन्तर्गत नव वर्ष हैं, जिनके नाम हैं ( १ ) कुरु वर्ष ( २ ) हिरण्मय वर्ष ( ३ ) रम्यक वर्ष ( ४ ) इलावृत्त वर्ष ( ५ ) हरिवर्ष ( ६ ) केतुमालवर्ष ( ७ ) भद्राश्व वर्ष ( ८ ) किंपुरुषवर्ष और ( ९ ) भारतवर्ष। इन वर्षों के विभाजक हैं वर्षपर्वत, जिनके नाम हैं—हिमवान, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत और भृङ्गी। इन्हीं वर्षपर्वतों के द्वारा तत्तत् देशों के विभाजन होने के कारण उन देशों के नाम तत्तत् वर्ष हो गये हैं।

इन नव वर्षों में चतुर्थ इलावृत्त वर्ष सबके बीच में है। इलावृत्त के दक्षिण क्रमशः तीन वर्ष हैं ( १ ) हरिवर्ष ( २ ) किंपुरुषवर्ष एवं ( ३ ) भारतवर्ष। इलावृत्त से उत्तर में हैं ( १ ) रम्यक वर्ष ( २ ) हिरण्मय वर्ष तथा ( ३ ) कुरुवर्ष। इलावृत्त के पूर्व केवल केतुमाल वर्ष है तथा पश्चिम में भद्राश्व वर्ष है। इस प्रकार सभी वर्षों से उत्तर में कुरु वर्ष है और दक्षिण में भारतवर्ष। भारतवर्ष के उत्तर में स्थित किंपुरुष वर्ष है। इन दोनों वर्षों का विभाजक हिमवान् ( हिमालय ) पर्वत है। हिमालय के उत्तर किंपुरुष वर्ष है। किंपुरुष वर्ष तथा हरिवर्ष का विभाजक हेमकूट पर्वत है, जो सुवर्णमय शिखर होने के कारण यह पर्वत पीला दिखाई पड़ता है। यहीं महर्षि कश्यप की तपोभूमि है।

**राजा**—तेन ह्यनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि।

**मातलिः**—प्रथमः कल्पः। ( नाट्येनावतीर्णौ )

---

**राजा**—तेन हि निमित्तेन यतोऽत्र प्रजापतिस्तपश्चरन्नास्ते ततः अनतिक्रमणीयानि = अनुल्लङ्घनीयानि, अतिक्रम्य गन्तुमनर्हाणि श्रेयांसि शुभानि श्रीमन्तं भगवन्तं कश्यपम्। प्रदक्षिणीकृत्य = प्रदक्षिणक्रियया प्रपूज्य गन्तुमिच्छामि गृहं यातुं कामये। उक्तञ्च—

मृदङ्गं दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम्।
प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रख्यातं च तपस्विनम्॥

**मातलिः**—राजोक्तं मातलिरनुमोदते—आयुष्मन्! प्रथमः कल्प = मुख्यः पक्षः श्रेष्ठो विधिः अयमुत्तमो विधिः **'मुख्यः स्यात् प्रथमः कल्पः' इत्यमरः। नाट्येन** = अभिनयेन अवतीर्णौ = अवतरणमभिनीय स्थितौ।

---

विष्णु पुराण में मेरु दक्षिण भारतवर्ष से आरम्भ कर उत्तरोत्तर किंपुरुष वर्ष तथा हरिवर्ष कहा गया है—

प्रथमं भारतं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम्।
हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजाः॥

इसी प्रकार विष्णुपुराण में जहाँ भारतवर्ष के बाद किंपुरुष वर्ष की चर्चा की गई है, वहीं हिमालय के बाद हेमकूट तथा निषध पर्वत की भी चर्चा है—

हिमवान् हेमकूटश्च निषधस्तस्य दक्षिणे।

स्वयम्भू शब्द का अर्थ है—अपने आप उत्पन्न। यह ब्रह्माजी का पर्यायवाची है। सृष्टिरचना के आदि में ब्रह्माजी ने जिन्हें अपने मन की इच्छा से उत्पन्न किया, उन्हें मानसपुत्र कहते हैं। वे मानसपुत्र भी प्रजा ( सन्तान ) के आदि कारण होने से प्रजापति कहे जाते है। ब्रह्माजी के मानसपुत्रों में महर्षि मरीचि एक हैं, उनके पुत्र का नाम कश्यप हैं। ये सभी अग्रिम प्रजाओं की उत्पत्ति या कारण होने से प्रजापति कहलाते हैं—

अपरं प्रजानां पतयस्तान् शृणुध्वमतन्द्रिताः॥
कर्दमः कश्यपः शेषो विक्रान्तः सुश्रवास्तथा।
इत्येवमादयोऽन्येऽपि बहवश्च प्रजेश्वराः॥

**राजा**—तो कल्याणकारक वस्तुओं का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। अतः पूज्य महर्षि कश्यप की प्रदक्षिणा करके ही यहाँ से आगे बढ़ना चाहता हूँ।

**विशेष**—महर्षि कश्यप इन्द्र सूर्य, विष्णु आदि देवताओं के पिता होने के कारण देवता माने जाते हैं। मनुस्मृति में भगवान् मनु ने आदेश दिया है कि मृदङ्ग, देवता, ब्राह्मण, घी, मधु, चौराहे तथा वृक्षों की परिक्रमा करके ही आगे बढ़ना चाहिए—

मृदङ्गं दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम्।
प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन्॥

इस प्रकार कल्याणकारक मङ्गलप्रद व्यक्ति या वस्तुओं के मिलने पर, प्रणाम, प्रदक्षिणा आदि करके ही आगे बढ़ने का विधान है। इसका उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को सुख का भागी होना सम्भव नहीं है। इसीलिए धर्मात्मा राजा दुष्यन्त महर्षि कश्यप को प्रणाम करके ही आगे बढ़ना चाहते हैं।

**मातलि**—आपका यह उत्तम विचार है **( अभिनयपूर्वक दोनों उतरते हैं। )**

**राजा—( सविस्मयम् )**

**उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः ।**
**अभूतलस्पर्शतया निरुद्धस्तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते ॥ १० ॥**

---

**अन्वयः**—अभूतलस्पर्शतया रथाङ्गनेमयः उपोढशब्दा न, रजश्च प्रवर्तमानं न दृश्यते, निरुद्धः तव रथः अवतीर्णोऽपि न लक्ष्यते ।

अवतरणे विस्मयमनुभवन् राजा दुष्यन्त मातलिं वदति—**उपोढशब्दा इति** । भुवः तलं भूतलं भूतलस्य = पृथिव्याः स्पर्शः = संसर्गः इति भूतलस्पर्शः अविद्यमानः भूतलस्पर्शः = भूमिसम्पर्कः यस्य स अभूतलस्पर्शः तस्य भावः तत्ता तया अभूतलस्पर्शतया = भूमिसम्पर्कविरहात् रथाङ्गानां = चक्राणां नेमयः = प्रधयः इति रथाङ्गनेमयः उपोढशब्दाः = प्रारब्धाः शब्दाः स्वना यैस्ते उपोढशब्दाः न भवन्ति येनाहं शब्दविरामात् क्रान्तः पन्था इति वक्तुं शक्नुयाम् । रजश्च रथोद्धूतो धुलिश्च प्रवर्तमानं चक्रैरश्वखुरैश्चोत्क्षिप्तं सत् प्रसर्पत् न दृश्यते = नावलोक्यते येन रजसां प्रवृत्तिं दृष्ट्वा गगननिवृत्तिं जानीयाम् निरुन्धतः = रथवेगं स्तम्भयतः भूतलस्पर्शं विना स्तम्भितत्वात् तव = मातलेः रथः = स्यन्दनः, अवतीर्णोऽपि = स्वर्गमार्गात् हेमकूटशिखरमुपगतोऽपि न लक्ष्यते, अवतीर्णं इति न ज्ञायते ।

**अयं भावः**—राज्ञा दुष्यन्तोऽब्रवीत् मातले ! लोकोत्तरमाश्चर्यजनकं ते रथसञ्चालनस्य चातुर्यं भूतलस्पर्शाभावात् रथसंचालनचातुर्याच्च सर्वमेव विलक्षणं प्रतीयते अहो आश्चर्यम् । अत्र विशेषोक्ति-काव्यलिङ्गावलङ्कारौ वंशस्थं वृत्तञ्च ॥ १० ॥

---

**राजा—( आश्चर्यपूर्वक )** हे मातले !

आपके रथ पहियों के नीचे का हिस्सा तो बिलकुल ही शब्द नहीं करता, भूमि से धूल भी उड़ती नहीं दिखाई पड़ती है, और उबड़-खाबड़ जमीन पर हचक न लगने से आपका रथ भूतल पर उतरा हुआ भी नहीं प्रतीत होता है ॥ १० ॥

**विशेष**—तात्पर्य यह है कि जितने भी रथ हैं वे सभी जब भूमि पर चलते हैं तब उसमें खड़खड़ाहट होती है, धूलि उड़ती है ऊँची नीची जगहों में धक्के भी लगते हैं, किन्तु आपका यह दिव्य रथ इन बातों से रहित है । अतः पृथ्वी पर उतरने पर भी यह पृथ्वी में उतरा हुआ सा प्रतीत नहीं होता । देवताओं के पैर और रथों के पहिए भूमि से स्पर्श नहीं करते, किन्तु वे सदा भूमि से ऊँचे उठे रहते हैं । इस प्रकार देवराज का रथ हमेशा भूमि से एक दो फुट ऊपर ही रहता है । अतः भूतल से उसके स्पर्श का प्रश्न ही नहीं उठता । भूतल का स्पर्श न होना, रथ की नेमि की खड़खड़ाहट न होना और धूलि का न उड़ना ये तीनों इन्द्र के रथ की विशेषताएँ हैं ।

महाभारत के वनपर्व नलोपाख्यान के प्रसंग में दमयन्ती स्वयम्वर के अवसर पर बताया गया है कि देवताओं का स्पर्श पृथ्वी से नहीं होता । दमयन्ती ने देखा कि नल का रूप धारण कर बैठे हुए पाँचों देवता स्वेद-रहित हैं, उनके अङ्ग में पसीने की बूँदें नहीं हैं, उनकी आँखों की पलकें नहीं गिरतीं न तो उनकी माला मुरझाती हैं, न उन पर धूलिकण पड़ते हैं । वे सिंहासनों पर बैठे हैं, किन्तु उनके पैरों से पृथ्वी का स्पर्श नहीं है—

सापश्यत् विबुधान् सर्वानस्वेदानस्तब्धलोचनान् ।
हृषितस्रग्रजोहीनान् स्थितानस्पृशतः क्षितिम् ॥ ५७।२७

मातलिः—एतावानेव शतक्रतोरायुष्मतश्च विशेषः।
राजा—मातले ? कतमस्मिन्प्रदेशे मारीचाश्रमः।
मातलिः—( हस्तेन दर्शयन् )—

बल्मीकाग्रनिमग्नमूर्तिरुरसा संदष्टसर्पत्वचा
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडितः[1]।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः ॥ ११ ॥

---

मातलिः—स्तुतिगर्भमनुवदति—एतावानेव = रथस्य भूतलस्पर्शाभाव एव शतक्रतोः= शतमखस्य आयुष्मतः=चिरजीविनो भवतः विशेषः=अन्तरम्—भुवि संचरणे शतक्रतो रथः अस्पृष्टो गच्छति, तव तु स्पृष्टो व्रजति। अन्यथा स इव भवान् आनाकवर्त्मतिभावः।

राजा—मारीचदर्शनस्यौत्सुक्यात् पुनः पृच्छति—मातले ! कतमस्मिन् प्रदेशे = कस्मिन् स्थाने मारीचाश्रमः मारीचस्य = काश्यपस्याश्रमः = तपोवनम्।

मातलिः—( हस्ते = उत्तानितेन पताकेन दर्शयन् वदति— ) बाल्मीकाग्रेति।

अन्वयः—यत्र असौ बल्मीकाग्रनिमग्नमूर्तिः सन्दष्टसर्पत्वचा उरसा जीर्णलताप्रतान-बलयेन कण्ठे अत्यर्थं संपीडितः अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं जटामण्डलं बिभ्रत् स्थाणु-रिव अचलो मुनिः अभ्यर्कबिम्बं स्थितः।

कतमस्मिन् प्रदेशे मारीचाश्रम इति राज्ञा पृष्टो मातलिः हस्तेन तं दर्शयन् ब्रवीति—बल्मीकाग्रेति। यत्र = यस्मिन् प्रदेशे असौ = दूरे दृश्यमानः बल्मीकाग्रनिमग्नमूर्तिः बल्मीकस्य = पिपीलिकाकृतमृत्पुञ्जस्तूपविशेषस्य अग्रे यथा स्यात्तथा निमग्ना = निहिता मूर्तिः शरीरं यस्य सः यद्वा बल्मीकाग्रे निमग्ना मूर्तिर्यस्यासौ बल्मीकाग्रनिमग्नमूर्तिः वामलूरमृत्कूटसन्निविष्टः शरीराग्रः—'वामलूरश्च नाकुश्च बल्मीकं पुन्नपुंसकम्' इत्यमरः। सन्दष्टाः = संलग्ना सर्पस्य = अहेः त्वचः = निर्मोका यस्मिन् स सन्दष्टसर्पत्वचः = संसक्त-सर्पकञ्चुकेन उरसा = उरःस्थलेनोपलक्षितः जीर्णलताप्रतानवलयेन जीर्णानां शुष्कानां लताप्रतानानां=वलयाकाराणां बल्लीतन्तूनां वलयेन=वेष्टनेन पुराणलतामण्डलेन वलयित-लतातन्तुभिः कण्ठे = ग्रीवायाम् अत्यर्थसम्पीडितः—अत्यर्थम् = अत्यन्तं संपीडितः =

---

मातलि—इतना ही इन्द्र के और आपके रथ में अन्तर ( विशेषता ) है।

राजा—मातले ! भगवान् मारीच = कश्यप जी का आश्रम किस जगह है ?

मातलि—( हाथ से दिखाता हुआ ) आयुष्मन् ! इधर देखिए—

चींटी और दीमकों से निकली हुई मिट्टी के बीच में जिनका आधा शरीर दब गया है, सर्पों की केंचुलियाँ जिनके शरीर पर दूसरे जनेऊ की तरह मालूम हो रही हैं। लटकी हुई लताओं के तन्तुओं से जिनका गला कस गया है। ऐसे ये महर्षि जिनमें पक्षियों ने घोसले बना लिए हैं ऐसे जटामण्डल को धारण किये हुए स्थाणु की तरह निश्चल हो सूर्य की ओर मुख करके खड़े हो तपस्या कर रहे हैं। यही मारीच ऋषि का आश्रम है ॥ ११ ॥

**विशेष**—तपस्या करते हुए महर्षि कश्यप के बहुत दिन बीत गये थे, इसीलिए दीमकों द्वारा लाई गई मिट्टी से उनके शरीर का अधिकांश भाग ढँक गया था, इसी कारण पक्षियों ने भी उनके शरीर

---

पाठा०—१. नात्यन्तसंपीडितः।

**राजा**—नमस्ते कष्टतपसे ।

**मातलिः**—( संयतप्रग्रहं रथं कृत्वा )—महाराज ! एतावदितिपरिवर्धितमन्दार-वृक्षं प्रजापतेराश्रमं प्रविष्टौ स्वः ।

**राजा**—स्वर्गादधिकतरं निर्वृत्तिस्थानम् । अमृतह्रदमिवावगाढोऽस्मि !

**मातलिः**—( रथं स्थापयित्वा ) अवतरत्वायुष्मान् ।

---

निबन्धनेन क्लेशितः, अंसव्यापि अंसौ = स्कन्धौ व्याप्नोति तच्छीलिभिः अंसव्यापि = स्कन्धप्रसृतम् शकुन्तनीडनिचयं—शकुन्तानां = पक्षिणां नीडैः = कुलायैः निचितं व्याप्तमिति शकुन्तनीडनिचितं = पक्षिकुलव्याप्तम् जटामण्डलं = जटानां मण्डलं = समूहं जटाजूटं बिभ्रत् = धारयन् अत एव स्थाणुरिव = काण्डशेषो वृक्ष इव अचलः = निष्पन्दः स्थिरः मुनिः = मरीचिपुत्रः कश्यपः अर्कबिम्बं = सूर्यमण्डलं अभिलक्ष्यीकृत्य यत्र स्थितोऽसौ मारीचाश्रमः ।

अर्थात् राजन् ? यत्र वल्मीकनिमग्नशरीरः स्कन्धोपरि लम्बमानं जटाजूटं बिभ्राणः कश्यपमुनिः स्थाणुरिव सूर्यबिम्बं लक्ष्यीकृत्य तिष्ठति स एव मारीचाश्रमो भवताऽवगन्तव्यः । अत्र श्लेषोपमापरिकरालङ्कारा: शार्दूलविक्रीडितवृत्तञ्च ।। ११ ।।

**राजा**—तादृशं कश्यपं विलोक्य तं नमस्कुर्वन् राजा ब्रवीति—नमोऽस्मै कष्टतपसे कष्टं = कष्टकरं कृच्छ्रं तपो यस्य स तस्मै कष्टतपसे = उग्रतपसे ते=तुभ्यं नमः=नमस्कारः ।

**मातलिः**—( संयमितप्रग्रहं संयमिताः = नियमिताः प्रग्रहाः = रश्मिरज्जवः यस्य स तम् संयमितप्रग्रहं—नियमितरश्मिरज्जुम् रथं = स्यन्दनम् कृत्वा = विधाय ) महाराज । एतौ = इमौ आवाम् अदितिपरिवर्धितमन्दारवृक्षम् अदित्या = कश्यपपत्न्या परिवर्धितः पालितः मन्दारवृक्षः = कल्पवृक्षो यत्र स तमदितिपरिवर्धितमन्दारवृक्षम् प्रजापते = कश्यपस्य आश्रमं = तपोवनं प्रविष्टौ स्वः ।

**राजा**—अथ स्वभावतः सात्विको राजा सत्वोद्दीपकपुण्याश्रमसंसर्गेण प्रवृद्धसत्वगुणः प्रहृष्यन्नाह—स्वर्गादधिकतरं = स्वर्गापेक्षयाप्यधिकसौभाग्यास्पदं निर्वृत्तिस्थानं = निर्वृत्तेः = प्रसन्नतायाः स्थानम् = आस्पदम् अमृतह्रदमिव = सुधाकुण्डमिव अवगाढः = प्रविष्टः इवास्मि । नेदृशं स्वर्गेऽपि लभ्यं सुखं मयेति भावः ।

**मातलिः**—( रथं = स्यन्दनं स्थापयित्वा = सुसंयतं कृत्वा ) आयुष्मान् = भवान् अवतरतु ।

---

को सूखा समझकर उनके जटाजूट में घोंसले लगा लिये थे । बल्मीक उसे कहते हैं, जिसमें दीमक मिट्टी लगाकर ढेर कर देते हैं । स्थाणु उस वृक्ष को कहते हैं, जिसमें पत्ते, पुष्प और फल लगते हों। प्रायः दीमक सूखे वृक्ष के ठूँठ पर मिट्टी चढ़ाकर ढेर कर देते हैं । इस प्रकार दीमकों ने ऋषि को निश्चल ठूँठ समझ लिया था ।

**राजा**—इस प्रकार कठिन तपस्या करने वाले मुनि को मेरा प्रणाम है ।

**मातलि—( रथ की बागडोर खींचकर )** अदिति द्वारा बढ़ाये गये मन्दार वृक्षवाले प्रजापति कश्यप के आश्रम में हमलोग आ गये हैं ।

**राजा**—यह स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर सुखप्रद स्थान है । यहाँ पर मैं मानो अमृत के तालाब में डूबा हुआ हूँ ।

**मातलि—( रथ को रोककर )** चिरञ्जीवी ! आप उतरें ।

राजा—( अवतीर्य ) मातले ! भवान् कथमिदानीम् ।

मातलिः—संयन्त्रितो मया रथः । वयमप्यवतरामः । ( तथा कृत्वा ) इत आयुष्मन् ( परिक्रम्य ) दृश्यन्तामत्रभवतामृषीणां तपोवनभूमयः ।

राजा—ननु विस्मयादवलोकयामि ।

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे [1]धर्माभिषेकक्रिया ।

---

राजा—( रथादवतीर्य मातलिं ब्रूते ) मातले ! भवान् कथमिदानीं = सम्प्रति किं करिष्यति भवान् ?

मातलिः—संयन्त्रितः = सम्यगवस्थापितः, समवस्थापितो मया रथः = स्यन्दनः वयम् = अहमपि अवतरामः = अवतरामि ( तथा कृत्वा = पूर्वोक्तप्रकारं विधाय, अवतीर्य ) इत आयुष्मान् = अनेन मार्गेण आगच्छतु भवान् ( परिक्रम्य = मण्डलाकृतिं चलित्वा ) दृश्यन्ताम् = अवलोक्यन्ताम्, अत्रभवताम् = पूज्यानाम् ऋषीणां = मुनीनाम् तपोवन-भूमयः तपोवनसम्बन्धिनो भूभागाः अस्मदागमनपर्यन्तं त्वं समयबन्धनपूर्वकपालनमात्रेण तिष्ठेति भावः ।

मातल्युक्तमनुमोदमानो राजा आह—विस्मयात् = विस्मयमवलम्ब्य अवलोकयामि = पश्यामि ।

अन्वयः—सत्कल्पवृक्षे बने उचिता प्राणानां वृत्तिः अनिलेन ( भवति ) काञ्चन-पद्मरेणुकपिशे तोये धर्माभिषेकक्रिया ( भवति ) रत्नशिलातलेषु ध्यानं ( भवति ) विबुधस्त्रीसन्निधौ संयमः ( भवति ) अन्यमुनयः तपोभिः यत् काङ्क्षन्ति तस्मिन् अमी तपस्यन्ति ॥ १२ ॥

महर्षेः कश्यपस्याश्रमावलोकने सर्वतो विस्मयमनुभवन् राजा दुष्यन्तो मातलिं ब्रूते—प्राणानामिति । सत्कल्पवृक्षे–सत् = विद्यमानाः कल्पवृक्षाः = वाञ्छापूरका सुर-द्रुमा यस्मिन् स तस्मिन् सत्कल्पवृक्षे वने = कल्पतरुकानने उचिता तपश्चरणयोग्या अवश्यकर्तव्या च वृत्तिः = जीवनधारणम् अनिलेन = वायुना भवति । काञ्चनपद्मरेणु-कपिशे काञ्चनपद्मानां = सुवर्णकमलानां रेणुभिः परागैः कपिशे = पिङ्गलवर्णे स्वर्गकमल-किञ्जल्कपिङ्गलवर्णे तोये = जले धर्माभिषेकक्रिया धर्माय = पुण्याय अभिषेकस्य = स्नानस्य क्रिया = विधिः निर्वर्त्यते रत्नशिलातलेषु रत्नानां = मणीनां शिलातलेषु प्रस्तर-

---

राजा—( उतर कर ) मातले ! अब आप क्या करेंगे ?

मातलि—मैंने रथ में लाग ( ओट ) लगाकर इसे निश्चल बना दिया है, अब हम भी उतरते हैं ( स्वयम् भी उतरकर ) आयुष्मान् इधर चलें ( चारों ओर घूमकर ) पूज्य ऋषियों के स्थानों को देखिए ।

राजा—वस्तुतः मैं आश्चर्य से देख रहा हूँ—

जहाँ समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाले कल्प वृक्ष विराजमान हैं, वहाँ भी ये ऋषि गण केवल वायु का पानकर प्राणों को धारण कर रहे हैं । स्वर्ण कमलों के पराग से पीले रङ्ग के पानी में पुण्य-

---

पाठा०—१. पुण्याभिषेकक्रिया ।

ध्यानं [1]रत्नशिलातलेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो
[2]यत्काङ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी ॥ १२ ॥

---

पट्टेषु ध्यानं = समाधिः विधीयते विबुधस्त्रीसन्निधौ = विबुधानां स्त्रियः = अप्सरसः तासां सन्निधौ = समीपे संयमः = इन्द्रियनिग्रहः अभ्यस्यते, अन्ये = अपरे च ते मुनयः = ऋषय इति अन्यमुनयः = अपरे भूयिष्ठाः तपस्विनः तपोभिः = कृच्छ्रैः तपश्चरणैः यत् यद् वस्तु स्वर्गादिकं वा कल्पवृक्षस्वर्णपद्मादिकं काङ्क्षन्ति = इच्छन्ति तस्मिन् = तादृशे अपि अमी = इमे दृश्यमाना मुनयः = तापसा तपस्यन्ति = तपश्चरन्ति ।

**अयं भावः**—महर्षेः कश्यपस्य सकलभोगप्रगटकल्पपादपशोभिते आश्रमे सर्वतो विस्मयमनुभवन् राजर्षिर्दुष्यन्तो महेन्द्रसारथिं मातलिं कथयति—मातले अस्मिन्नाश्रमे सर्वत्रैव दृश्यं मे विस्मयजनकं प्रतीयते । अस्मिन् कल्पवृक्षकानने इच्छामात्रेणैव सर्वविधं स्वादु भोजनं लब्धुं शक्यते, परमत्र स्थिता एते तपस्विनो वायुमात्रमेव भक्षयित्वा तपश्चरन्ति । काञ्चनकमलकिञ्जल्कसदृशानि स्वच्छानि जलानि समीक्ष्य समेषां समुदेति स्नातुं विहर्तुं चाभिलाषा, किन्त्वेते नियमनिवर्तनस्नानमात्रं कुर्वते । धर्माचरणार्थमेव स्नानं कुर्वन्ति ते, न तु तत्र देवाङ्गनाभिः सह जलक्रीडादिकामोपभोगार्थं स्नान्ति । रत्नमयशिलातले उपविश्य विहर्तुं भवति समेषां वाञ्छा, परमेते तत्रोपविश्य ध्यानधारणादीन्येव योगाङ्गानि समनुतिष्ठन्ति । एते रत्नशिलाफलकेष्वपि ध्यानमाचरन्ति । किञ्चात्रेतस्ततोऽतिसुन्दर्यो देवाङ्गना विहरन्ति परमेते तासां सुरसुन्दरीणां सन्निधावपि निगृहीतेन्द्रियाः सन्तस्तपश्चरन्ति न तु तत्र सुरसुन्दरीभिः साकं सुरतक्रीडां संभोगादिकं कुर्वन्तीत्यहो तेषामिन्द्रियवशित्वम् । किंबहुना भूतलवर्तिनः तापसाः तपश्चरणफलत्वेन सुराङ्गनासंभोगाद्यर्थं यत् स्थानं स्वर्गादिभुवं प्राप्तुं प्रयतन्ते तत्रस्थिता एते तपस्यन्तीति विस्मयातिरेकजनकोऽयं कश्यपाश्रमः । अत्र व्यतिरेकविशेषोक्तिकाव्यलिङ्गालङ्काराः शार्दूलविक्रीडितं वृत्तञ्च ॥ १२ ॥

---

सन्ध्यार्थ ही वे स्नान कर रहे हैं ( रतिक्रीड़ा और जलक्रीडा आदि नहीं करते ) रत्नों की शिलाओं से विरचित भवनों में तथा कन्दराओं में बैठकर ये ध्यान करते हैं । और देवाङ्गनाओं के बीच रह कर भी ये इन्द्रिय निग्रह, ब्रह्मचर्य का ही पालन करते हैं । अन्य मुनिगण तपस्या करके जिन स्वर्ग के भोगों को प्राप्त करना चाहते हैं, वहाँ भी ये लोग तपस्या ही करते हैं ॥ ११ ॥

**विशेष**—अर्थात् अधिक तपस्वी इसी अभिलाषा से तप करते हैं कि मुझे कल्पवृक्ष का सान्निध्य मिलता तो हर इच्छाओं की पूर्ति करता, अपने पास सुवर्ण की ढेर लगा लेता, स्वर्ण कमल से पीत जल में बिहार करता, रत्नोंकी शिलाओं पर बैठकर सुख लेता, मुझे अप्सरा मिल जाती तो भोग सुख प्राप्त होता, किन्तु धन्य हैं ये मुनिजन, जो इन्हें ठुकराकर तप के सदा संलग्न हैं । प्राणों की रक्षा आवश्यक समझकर ऋषिलोग वायु पान करते हैं, अन्यथा उसकी भी कामना नहीं है, कल्पवृक्ष पास है, पर उससे भोजन नहीं माँगते और, कमलपराग सुवर्ण सा है, पर उसका उपभोग नहीं करते हेमकूट देवभूमि है, यहाँ अप्सराएँ आती जाती रहती हैं, पर ये सब इन्द्रियसंयम कर तपस्या ही करते रहते हैं । अन्य ऋषि सकाम तप करते हैं, पर ये निष्काम होकर तपस्या करते ही जाते हैं यह इनकी विशेषता है ।

पाठा०—१. रत्नशिलागृहेषु । २. यद्वाञ्छन्ति ।

**मातलिः**—उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना। ( परिक्रम्य आकाशे ) अये वृद्ध-शाकल्य किमनुतिष्ठति भगवान् मारीचः ? किं ब्रवीषि ? दाक्षायण्या पतिव्रताधर्म-मधिकृत्य पृष्टस्तस्यै महर्षिपत्नीसहितायै कथयतीति।

**राजा**—( कर्णं दत्वा )—अये प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः।

**मातलिः**—( राजानमवलोक्य )—अस्मिन्नशोकवृक्षमूले तावदास्तामायुष्मान् यावत्त्वामिन्द्रगुरवे निवेदयितुमन्तरान्वेषी भवामि।

**राजा**—यथा भवान् मन्यते। ( इति स्थितः )

---

**मातलिः**—दुष्यन्तस्योक्त्यनन्तरं विस्मयस्य नावकाश इत्याशयेन मातलिर्ब्रूते—महतां = महाजनानां प्रार्थना = इच्छा अभिलाषा उत्सर्पिणी–इत् उर्ध्वं सर्पति तच्छोला उत्सर्पिणी उर्ध्वंगामिनी भवति खलु निश्चयेन। एते इतोऽपि महत्फलं कैवल्यादिकम-भिलषन्तस्तपस्यन्तीतिभावः । ( परिक्रम्य = मण्डलाकृति गत्वा आकाके = व्योम्नि ) अये = भो वृद्ध शाकल्य = तापसविशेष। इदानीं भगवान् मारीचः = पूज्यः मरीचिपुत्रः कश्यपः किमनुतिष्ठति = किं करोति ? किं ब्रवोषि=वदसि दक्षस्यापत्यं स्त्री दक्षायणी तया दाक्षायण्या = दक्षपुत्र्या अदित्या पतिव्रताधर्मं = सतीनां कर्तव्यं पुण्यमधिकृत्य विषयी-कृत्य पृष्टः महर्षिपत्नीसहितायै = ऋषिभार्यायुक्तायै तस्यै = अदित्यै कथयति = वदति दक्षकन्यया सतीत्वमाहात्म्यविषयके प्रश्ने कृते महर्षीणां भार्याभिः सहितायै तस्यै उत्तरं ददाति ब्रवीति किम् ?

**राजा**—( कर्णं दत्वा = श्रवणमभिनीय ) अये ! = भोः प्रतिपाल्यावसरः प्रतिपाल्यः= प्रतीक्ष्यः अवसरः = उचितः कालः यस्य स प्रतिप्राल्यावसरः = प्रतीक्षणीयावसरः प्रस्तावः = प्रसङ्गः प्रस्तुतोऽर्थः। कथासमाप्तौ सत्यवसरे तस्य दर्शनं स्यादितिभावः।

**मातलिः**—( राजानवलोक्य वदति )—अस्मिन् = एतस्मिन् अशोकवृक्षमूले = अशोकपादपतले तावत् = तावत्पर्यन्तम् आयुष्मान् = भवान् आस्ताम्=उपविशताम् यावत्= यावत्कालम् इन्द्रगुरवे = सुरपतिपित्रे कश्यपाय निवेदयितुम् = सूचयितुम् अन्तरान्वेषी अन्तरं = अवसरम्, अवकाशं वा अन्विष्यति=मृगयते इति अवसरान्वेषी भवामि=स्याम्।

**राजा**—यथा भवान् मन्यते = यत् त्वं समर्थयसि, यथेच्छति भवान् तथैव स्यात्। ( इति = एवमुक्त्वा स्थितः। )

---

**मातलि**—महापुरुषों की इच्छाएँ सदा ऊँची ही ऊँची रहा करती हैं। अर्थात् इन उपलब्ध वस्तुओं से भी अधिक श्रेष्ठ ब्रह्मानन्द को प्राप्त करने के लिए ये मुनिगण यहाँ भी कठिन तपस्या कर रहे हैं। **( कुछ चलकर आकाश में स्वयं दूसरे के नाम से प्रश्नोत्तर करता हुआ )** हे वृद्ध शाकल्य ! पूज्य कश्यप जी क्या कर रहे हैं ? क्या कह रहे हो कि दाक्षायणी=दक्षकन्या अदिति ने पतिव्रताधर्म के विषय में उनसे कुछ पूछा था और वे महर्षि-पत्नियों के सहित उनसे उसके विषय में कह रहे हैं ?

**राजा—( कान देकर )** अच्छा, तब तो हम लोगों को कुछ देर प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी। पतिव्रता धर्म का प्रसंग ही ऐसा है कि उसकी समाप्ति की प्रतीक्षा करनी ही चाहिए।

**मातलि—( राजा की ओर देखकर )** आयुष्मन् ! आप तब तक इस अशोक वृक्ष के नीचे ठहरें, जबतक मैं इन्द्र के पिता महर्षि कश्यप से आपके आने की सूचना देने का अवसर ढूँढता हूँ।

**राजा**—जैसी आपकी इच्छा **( खड़े हो जाते हैं )**

मातलिः—आयुष्मन् साधयाम्यहम् । ( इति निष्क्रान्तः )

राजा—( निमित्तं सूचयित्वा )—

**मनोरथाय नाशंसे किं बाहो स्पन्दसे [1]वृथा ।**
**पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि [2]परिवर्तते ॥ १३ ॥**

( नेपथ्ये ) मा खु चावलं करेहि । कहं गदो जेव अत्तणो पकिदिं । [ मा खलु चावलं कुरु । कथं गत एवात्मनः प्रकृतिम् । ]

---

मातलिः—हे आयुष्मन् ! अहं साधयामि = गच्छामि ( एति = एवमुक्त्वा निष्क्रान्तः रङ्गमध्याद्बहिर्गतः )

राजा—( निमित्तं = शकुन सूचयित्वा = प्रकटीकृत्य ) तस्य प्रियाप्राप्तिसूचकत्वेन समुद्बुद्धप्रियार्थपरित्यागखेदो राजा सानुशयमाह—मनोरथायेति ।

अन्वयः—हे बाहो ! मुधा किं स्पन्दसे मनोरथाय न आशंसे, श्रेयः पूर्वम् अवधीरितम्, दुःखं हि परिवर्द्धते ।

कश्यपाश्रमे स्पन्दमानदक्षिणभुजो नृपतिः दुष्यन्तः तत्स्पन्दनस्य शकुन्तलोपलब्धिसूचकत्वात् तदसंभाव्यत्वात् सानुशयमाह—मनोरथायेति । हे बाहो ! = अयि मम दक्षिणहस्त ! मुषा = व्यर्थं किं स्पन्दसे = किं स्फुरसि यतः मनोरथाय = शकुन्तलाप्राप्तिरूपाय स्वामिलषिताय, न आशंसे = नहि आशां करोमि, शकुन्तलायाः प्राप्तये हृदि आशां न धारयामि, हि = यतः पूर्वविधीरितम्—पूर्वं = प्राक् अवधीरितं = पूर्वावधीरितम् श्रेयः = कल्याणम् सुखसाधनं प्रियादुःखं = कृच्छ्रेण परिवर्तते = निवर्तते, पुनरायाति यद्वा दुःखरूपेण परिवर्तते = परिणमति, यद्वा श्रेयो मया स्वयमेव तिरस्कृतं, सम्प्रति दुःखमात्रमेवावशिष्यते । अतः क्व सुखम् ? अहेतु केवलं दुःखमागस्मि । अर्थात् हे दक्षिणहस्त ? वृथा ते स्फुरणम् प्रियाप्राप्तिविषये सर्वथाऽहं निराशः । अत्रार्थान्तरन्यासातिशयोक्त्यलंकारौ छन्दश्चानुष्टुप् ॥ १३ ॥

बालप्रवेशमुपक्रमते ( नेपथ्ये ) उपमातृस्थानीये द्वे तापस्यौ केसरीकिशोरकं कर्षन्तं कमपि बालं निषेधयतः—मा खलु चापलं कुरु = चञ्चलतां अकृत्यं न विधेहि, आत्मनः

---

मातलि—आयुष्मन्, मैं जा रहा हूँ । ( निकल जाता है )

राजा—( शुभ शकुन की सूचना का अभिनय करके ) हे दक्षिण बाहु ! मैं यहाँ शकुन्तला रूप अभीष्टप्राप्ति की आशा नहीं करता हूँ । व्यर्थ क्यों फड़क रहे हो ? निश्चय ही पहले तिरस्कृत किया गया कल्याण दुःख के रूप से बदल जाता है ॥ १३ ॥

**विशेष**—पुरुष का दक्षिण तथा स्त्रियों का वाम भाग फड़कना शुभ होता है । पुरुष की दक्षिण भुजा का फड़कना और स्त्रियों के वामभाग का फड़कना अपने प्रियजन के समागम की सूचना देता है । वाल्मीकि रामायण में धनुर्भंग के प्रसङ्ग में लिखा हुआ है कि उस समय जानकी जी की और परशुरमजी की बाईं आँख फड़कने लगी थी, परिणाम स्वरूप सीताजी को शुभ राम की प्राप्ति हुई और परशुरामजी की अशुभ पराजय हुई है—

अस्पन्द लोचनं वामं जानकीजामदग्नयोः ।

( नेपथ्य में ) अरे बालक ! ऐसी चञ्चलता मत कर । जिस किसी के आगे भी तूँ अपनी चपल प्रकृति को दिखलाया ही करता है ।

---

पाठा—१. मुधा । २. परिवर्धते ।

**राजा**—( कर्णं दत्वा ) अभूमिरियमविनयस्य । को नु खल्वेष निषिध्यते । ( शब्दानुसारेणावलोक्य सविस्मयम् ) अये को नु खल्वयमनुवध्यमानस्तपस्विनीभ्यामबालसत्वो बालः ।

**अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम् ।**
**[1]प्रक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षति ॥ १४ ॥**

---

स्वस्य क्षत्रियस्य बालस्य वा प्रकृतिं = स्वभावं गतः = प्राप्त एव, स्वभावचापलं कृतवानेवेति भावः ।

**राजा**—कर्णं ददानः तच्छृण्वन् राजा स्वगतमाह—इयम् = एषा तपोवनभूमिः अविनयस्य=औद्धत्यस्य चपलतायाः अभूमिः = अस्थानम्, अत्र मारीचाश्रमे अविनयस्यावकाशो नास्तीतिभावः । दुष्यन्तः सकौतुकमाह—अये = भोः को नु = कः खलु अयम् = एषः तपस्विनीभ्यां = तापसीभ्याम् अनुबध्यमानः = अनुगम्यमानः, बालस्य = शिशोः सत्त्वं = बलमिव बलं यस्य स बालसत्त्वः न बालसत्वः अबालसत्वः अथवा अबालस्येव प्रौढस्येव सत्त्वं यस्यासौ अबालसत्त्वः युवेव महाबलः बालः=शिशुः बालकस्याबालसत्वमुपपादयति—

**अन्वयः**—प्रक्रीडितुम् आमर्दक्लिष्टकेसरम् अर्धपीतस्तनं सिंहशिशुं बलात्कारेण मातुः कर्षति ।

तथाविधं बालकं विलोक्य नृपतिर्दुष्यन्तः सकौतुकमाश्चर्यसहितं च वचोऽवोचत्—**अर्धपीतस्तनमिति** । प्रक्रीडितुं = क्रीडां कर्तुं, मनोविनोदार्थम्, आमर्दक्लिष्टकेसरम्—आमर्दन = स्वकृताकर्षणवेगेन, मातुर्जिह्वया लेहनेन, उधसो हननेन वा क्लिष्टाः = विकीर्णा केशराः = गलबालाः सटाः यस्य सः तं आमर्दक्लिष्टकेसरम् अर्धपीतस्तनं = अर्धं = असमग्रं अपूर्णं यथा स्यात्तथा पीतः = पानंकृतः स्तनो येन सः तम अर्द्धपीतस्तनम्, किञ्चिदपीतस्तन्यम् सिंहशिशुं = केसरकिशोरम् बलात्कारेण प्रसह्य मातुः = जनन्याः सिंह्याः सकाशात् सिंहीकोपमगणयित्वा कर्षति = अपनयति ।

**अयं भावः**—तथाविधं शिशुमवलोक्य सकौतुकं राजर्षिर्दुष्यन्तः स्वमनसि विचारयति–कोऽयमबालसत्वो बालः, यः किल क्रीडया मनोविनोदमात्रमेव कर्तुं सिंहीस्तनं पिबन्तं केसरकिशोरकं बलात्कारेण कर्षति । अत्रोदात्तः स्वभावोक्तिश्चालङ्कारो अनुष्टुप् छन्दश्च ॥ १४ ॥

---

**राजा—( कान लगाकर )** यह स्थान तो उद्दण्डता का नहीं है । तो यह कौन रोका जा रहा है ? **( जिधर से शब्द आया था, उधर देखकर आश्चर्यपूर्वक )** दो तपस्विनियों के द्वारा अनुगमन किया जाता हुआ प्रौढोचित्त बल से सम्पन्न यह बालक कौन है ? और किसका है ?

जो कि सिंह बच्चे को उसकी माता सिंहनी के स्तनों को पूरा-पूरा पीने के पहले ही उसके केसर के वालों को पकड़कर खेलने के लिए जबरदस्ती हाथ से ही खींच रहा है ॥ १४ ॥

**विशेष**—साधारण जीव के बच्चों को भी उसकी इच्छा के विरुद्ध खींचना कठिन हैं, फिर भी सिंह के बच्चे को उसकी मां की गोद से आधा ही स्तन पीने पर खींचना तो असंभव-सा प्रतीत होता है । भरत अभी अल्पवय का बालक था, किन्तु उसमें साहस कूट कूटकर भरा था । ऐसा साहसिक कर्म करता था कि साधारण बालकों में संभव न था । इसके लिए उसमें अबालसत्व बताया गया है ।

---

पाठा०—१. विलम्बिनं सिंहशिशुं करेणाहत्य कर्षति ।

( ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा तपस्विनीभ्यां सह बालः )

**बालः**—जिंभ सिंघ दंताइं दे गणइस्सं । [ **जृम्भस्व सिंह दन्तांस्ते गणयिष्ये ।** ]

**प्रथमा**—अविणीद किं णो अपच्चणिव्विसेसाणि सत्ताणि विप्पअरेसि। हंत वड्ढइ दे सरंभो। ठाणे खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किदणामहेओ सि। [ **अविनीत किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि। हन्त वर्धते तव संरंभः। स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि ।** ]

**राजा**—( आत्मगतम् ) किं नु खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः । नूनमनपत्यता मां वत्सलयति ।

---

( ततः = तत्पश्चात् यथानिर्दिष्टकर्मा—यथानिर्दिष्ट = निर्देशानुरुपं सिंहशावका-कर्षणरूपं कर्म = कार्यं यस्यासौ यथानिर्दिष्टकर्मा तापसीभ्यां = तपस्विनीभ्यां सह = साकं बालः = बालकः प्रविशति = रङ्गमञ्चे दृश्यते )

**बालः**—हे सिंह ! = हे शार्दूल ! जृम्भस्व = मुखं व्यादेहि ते = तव दन्तान् = रदान् गणयिष्ये यदा त्वया मुखं व्यादास्यते तदा मया ते दन्ताः गणयिष्यन्ते इति भावः ।

**प्रथमा**—अविनीत = दुःशील ! रे उच्छृङ्खल । किं = किमर्थं नः = अस्माकम्, अपत्येभ्यः = सन्तानेभ्यः निर्विशेषाणि सदृशानि पुत्रवत्पालितानि सत्त्वानि सिंह-व्यघ्रादिजीवान् विप्रकरोषि क्रोशयसि उत्पीडयसि कुपितान् करोषि । हन्त = हा तव = ते संरम्भः = धाष्टर्यं निर्बन्धः वर्द्धते = एधते । स्थाने = युक्तमेव उचितमेवास्ति यत् ऋषिजनेन = मुनिगणेन सर्वदमन सर्वान् दमयति = अभिभवतीति सर्वेषां दमनकरणा दन्वर्थनामाधेय इति = इत्थं नामधेयं = नामकृतं विहितम् असि = वर्तसे ।

**राजा**—स्वस्वरूपस्य पुत्रस्य दर्शनेन वात्सल्याकुलहृदयो विमृशेति—किन्नु खलु = निश्चयेन अस्मिन् = पुरतोदृश्यमाने बाले शिशौ औरसे उरसो हृदयाज्जायते इत्यौरसः तस्मिन् औरसे = स्वेन उत्पादिते, आत्मजे पुत्रे = तनये इव मे = मम मनः = मानसं स्निह्यति = अनुरज्यते ! नूनं = निश्चयेन अनपत्यता=सन्तानराहित्यमेव, मां वत्सलयति= स्नेहयति, स्नेहे प्रवर्तयति । अनपत्यो हि अन्यस्य बालं विलोक्य तस्मिन् स्वबालवत् स्निह्यति । अहमनपत्योऽस्मीतिहेतोरेव सुन्दराकारेऽस्मिन् बालके मम चेतः स्नेहेन समाकृष्टं भवतीति भावः ।

---

**( तत्पश्चात् दो तपस्विनियों के साथ शेर के बच्चे का केशर पकड़ कर जबरदस्ती खींचते हुए बालक का प्रवेश )**

**बालक**—अरे सिंह के बच्चे ! तू अपना मुँह खोल, मैं तेरे दातों को गिनूँगा ।

**पहली तापसी**--अरे अविनीत ! हमारे द्वारा पुत्रों की तरह पाले हुए जीवों को इस प्रकार कष्ट क्यों देता है ? हा हन्त तेरी धृष्टता तो प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है, ऋषि लोगों ने तेरा नाम सर्वदमन ठीक ही रखा है । तू किसी से भी नहीं डरता ।

**राजा—( मन ही मन )** न मालूम क्यों इस बालक के प्रति मेरे हृदय में अपने औरस पुत्र की तरह स्नेह हो रहा है ? ठीक है, मेरी सन्तानहीनता ही मुझे दूसरे के बच्चों में स्नेह पैदा कर रही है ।

**विशेष**—यहाँ विचित्र नाटकीय स्थिति का दिग्दर्शन है । अपने औरस पुत्र को भी दूसरे

द्वितीया—एषा खु केसरिणी तुमं लंघेदि जइ से पुत्तअं ण मुंचेसि। [ एषा खलु केसरिणी त्वां लङ्घयिष्यति यदि तस्या पुत्रकं न मुञ्चसि।

बालः—( सस्मितम् ) अम्हह बालअ खु भीता म्हि। [ अहो बलीयः खलु भीतोऽस्मि ] ( इत्यधरं दर्शयति। )

राजा—महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थितः॥ १५॥

---

द्वितीया—एषा = इयं पुरोदृश्यमाना। केशरिणी = सिंही लङ्घयिष्यति = अभिभविष्यति प्रहरिष्यति यदि = चेत् तस्याः सिंह्याः पुत्रकं = शिशुं न मुञ्चसि = न मोक्षसे।

बालः—( सस्मितं प्राह-- ) अहो, बलीयः=अत्यर्थम्, खलु = निश्चयेन भीतः=भययुक्त, अस्मि। ( इति = ततः, अधरं = अधरोष्ठं दर्शयति, सिंहतो न मनागपि बिभेमि, नैनं मुञ्चामि तत् दृष्ट्वाऽपीतिभावः )।

अन्वयः—महतः तेजसः बीजम् अयम् बालः स्फुलिङ्गावस्थया एधापेक्षः स्थितः वह्निः इव मे प्रतिभाति॥ १५॥

आत्मानं भीषयन्तीं तपस्विनीमधरप्रदर्शनेनावहेलनां केसरिकिशोरेण क्रीडन्तं बालकं वीक्ष्य तस्य स्वाभाविकी ओजस्विता निश्चिन्वन् राजा दुष्यन्तः कथयति--महत इति। महतः = प्रबलस्य तेजसः = प्रतापस्य बीजं = निदानम् यथा बीजमङ्कुरादिक्रमेण महातरुर्भवति तथा महातेजा भविष्यन् अयं = पुरोवर्ती सिंहशिशुमाकर्षयन् बालः स्फुलिङ्गावस्थया स्फुलिङ्गस्य = अग्निकणस्य अवस्था = रूपं तया स्फुलिङ्गावस्थया = अग्निकणावस्थया एधापेक्षः एधान् = इन्धनानि अपेक्षते इत्येधापेक्षः = काष्ठापेक्षः स्थितः वह्निः = अनल इव = यथा मे = मम प्रतिभाति = प्रकाशते।

---

का पुत्र समझते हुए राजा दुष्यन्त यह नहीं समझ पा रहे हैं कि क्यों इस बालक के प्रति मेरा हृदय आकृष्ट हो रहा है। वे इसमें अपनी अनपत्यता को ही कारण समझते हैं। वस्तुतः सन्तानहीन व्यक्ति का हृदय सन्तान के प्रति इतना लालायित रहता है कि किसी के शिशु को देखकर उनसे परम आनन्द मिलता है। इसीलिए शास्त्रों में येन केन प्रकारेण पुत्र की प्राप्ति करना आगे की पीढी को चलाने के निमित्त आवश्यक माना गया है। यदि अपना पुत्र नहीं तो दत्तक ही सही--"अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च"।

मनुस्मृति में "पुत्रान् द्वादशनाह नृणां स्वायंभुवो मनुः" के अनुसार पुत्र १२ प्रकार के वर्णित है औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम आदि। उनमें अपनी विवाहित धर्मपत्नी में अपने पति के द्वारा संसर्ग के परिणामस्वरूप जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे औरस पुत्र कहा जाता है। औरस पुत्र की महत्ता सबसे श्रेष्ठ है। "उरसा जातः औरसः"। औरस का लक्षण इस प्रकार है—

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम्।
तमौरसं विजानीयात् पुत्रं प्रथमकल्पिकम्॥ ( मनुस्मृति ९।१६६ )

**दूसरी तापसी**—देख, यदि तू इस सिंहिनी के बच्चे को नहीं छोड़ेगा तो यह सिंहनी तेरे ऊपर आक्रमण कर बैठेगी।

**बालक—( मुस्कराता हुआ व्यङ्ग्यरूप से )** अरी मैयारी मैया! तुम्हारे कहने से तो मैं बहुत ही डर गया हूँ। **( ओठ निकालकर मुँह चिढ़ाता है। )**

**राजा**—यह बालक तो मुझे किसी बड़े भारी तेजस्वी पुरुष का वीर्य-अंश ही प्रतीत होता है और जैसे स्फुलिङ्ग की दशा में स्थित अग्नि केवल काष्ठों को ही अपेक्षा करती है और इन्धन

**प्रथमा**—वच्छ एदं बालमिइंदअं मुंच। अवरं दे कीलणअं दाइस्सं। [ वत्स एनं बालमृगेन्द्रं मुञ्च। अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि। ]

**बालः**—कहिं। देहि णं। [ कुत्र। देहि तत्। ] ( इति हस्तं प्रसारयति। )

**राजा**—( बालस्य हस्तमवलोक्य ) कथं चक्रवर्तिलक्षणमप्यनेन धार्यते। तथा ह्यस्य—

**प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः।**
**अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम्॥ १६॥**

---

**अयं भावः**—अणुरप्यग्नेः स्फुलिङ्गः काष्ठसंयोगाद् यथा प्रवृद्धो महते तेजसे सम्पद्यते तथैवायं बालः अनल्पस्य महापुरुषतेजसो बीजमिव समयापेक्षो वर्द्धिष्णुर्विभाव्यते अत्रोपमानुप्रासौ अलङ्कारौ छन्दश्चानुष्टुप्॥ १५॥

**प्रथमा**—वत्सः = पुत्र! एनं = इमं बालमृगेन्द्रं सिंहशिशुं मुञ्च तदाकर्षणं परित्यज अपरं अन्यत् ते = तुभ्यं, क्रीडनकम् = क्रीडासाधनं दास्यामि = वितरामि।

**बालः**—कुत्रः = क्व, देहि = वितर तत् क्रीडनकम् ( इति = एवमुक्त्वा क्रीडनकादानार्थं हस्तं = प्रसारयति )

**राजा**—शिशोः प्रसारिते करे राजचिह्नानि पश्यन् राजा साश्चर्यं कथयति—अनेन = अमुना बालकेन चक्रवर्तिलक्षणम् चक्रे = राजमण्डले वर्तते यः स चक्रवर्ती तस्य लक्षणं = चिह्नम् इति चक्रवर्तिलक्षम् = सामुद्रिकोक्तं सम्राजश्चिह्नं ध्वजचापाङ्कुशशशाङ्कं च धार्यते तथाहि पश्य बालस्य।

**अन्वयः**—प्रलोभ्यवस्तु प्रणयप्रसारितः जालग्रथिताङ्गुलिः अस्य करः इद्धरागया नवोषसा भिन्नम् अलक्ष्यपत्रान्तरम् एकपङ्कजमिव विभाति।

क्रीडनकयाचनाय तपस्विन्याः समक्षे पाणिं प्रसारयतो बालकस्य हस्ते लौहित्यातिशयं विलोक्य चक्रवर्तिलक्षणं निर्धारयन् राजा वदति—**प्रलोभ्येति**। वस्तुतः प्रणयेन = अभिलाषेण प्रकर्षेण लोभ्यं प्रलोभ्यं, प्रलोभ्यं च तद्वस्तु प्रलोभ्यवस्तु तस्मिन् प्रणयेन प्रसारितः प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितः = लोभनीयक्रीडनकयाञ्चाप्रसारितः, जलवद्

---

मिलते ही वह स्फुलिङ्ग बढ़कर अतिप्रचण्डरूप हो जाता है, वैसे ही यह बालक समय पाकर बड़ा भारी तेजस्वी, प्रतापी तथा वीर हो जायेगा, ऐसा मुझे मालूम पड़ता है॥ १५॥

**विशेष**—जैसे आग की चिनगारी इन्धन की अपेक्षा रखती है। इसके मिलते ही वह महान लपटों को फेंकती हुई असह्य हो जाती है। ठीक इसी प्रकार तेज का बीजभूत यह बालक भी भविष्य में यौवन सहारा पाकर अत्यन्त प्रतापी होगा।

**पहली तापसी**—बेटा, इस सिंहशावक को छोड़ दो तुम्हें दूसरा खिलौना दूँगी।

**बालक**—कहाँ है दो वह मुझे। **( ऐसा कहकर हाथ पसारता है )**

**राजा**—**( बालक के हाथ को देखकर )** क्या यह चक्रवर्ती राजा के लक्षण को धारण करता है ? जैसे कि इसका—

ललचाने वाली वस्तु के लिए प्रेम के कारण फैलाया गया, जाल की तरह गुँथी अँगुलियों से युक्त इसका हाथ समृद्ध लालिमा से सम्पन्न नवगत उषा के द्वारा विकसित किये गये जिसकी पंखुड़ियों का मध्यभाग दिखाई नहीं पड़ता अपूर्व कमल की भाँति प्रतीत होता है॥ १६॥

**विशेष**—यहां हाथ की उपमा कमल से दी गई है। अंगुलियों के बीच के भागों में छिद्र नहीं

**द्वितीय**—सुव्वदे ! ण एक्को एसो वाआमेत्तेण विरमयिदुं। गच्छ तुमं। ममकेरए उडए मक्कंडेअस्स इसिकुमारअस्स वण्णचित्तिदो मत्तिआमोरओ चिट्ठदि। तं से उवहर। [ सुव्रते ! न शक्य एष वाचामात्रेण विरमयितुम्। गच्छ त्वम् मदीये उटजे मार्कण्डेयस्यर्षिकुमारकस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति। तमस्योपहर। ]

**प्रथमा**—तह। [ तथा। ] ( इति निष्कान्ता )

---

ग्रथिता अङ्गुलयो यस्यासौ जालग्रथिताङ्गुलिः = जालवत्संश्लिष्टाङ्गुलिः जालेषु = छिद्रेषु ग्रथिता अङ्गुलयो यस्येति विग्रहे अन्तरालसंश्लिष्टाङ्गुलिः उक्तं च सामुद्रिके—

अतिरिक्तः करो यस्य ग्रथिताङ्गुलिको मृदुः।
चापाङ्कुशाङ्कितः सोऽपि चक्रवर्ती भवेद् ध्रुवम् ॥

अस्य बालकस्य करः = हस्तः, पाणिः इद्धरागया इद्धः = समृद्धः रागः = लौहित्यं यस्या सा तया इद्धरागया, समृद्धलौहित्यया नवोषसा नवया = अचिरप्रदसया उषसा = प्रभातेन भिन्नं = स्फुटितं, अलक्ष्यपत्रान्तरं = अलक्ष्याणि पत्राणामन्तराणि यस्य स अलक्ष्यपत्रान्तरम् = अप्रकटितपत्रसन्धिः, एकपङ्कजम् एकं च तत् पङ्कजमित्येकपङ्कजं = श्रेष्ठकमलम् विभाति = शोभते, रक्ततलोऽस्य बालस्येत्यर्थः। मिलिताङ्गुलिः पाणिः मृदुलतरं कमलमिव भासते।

**अयं भावः**—अक्रीडनकं याचितुं तापस्या अग्रे करं प्रसारयतोऽस्य शिशोः उषः प्रारम्भे प्रस्फुटितं मृदुलतरं श्रेष्ठं कमलमिव शोभते। तस्मादनेन चक्रवर्तिना राजकुमारेण भाव्यमितिभावः। अत्रोपमाकाव्यलिङ्गावलङ्कारौ वंशस्थं वृत्तञ्च ॥ १६ ॥

**द्वितीया**—सुव्रते ! वाचामात्रेण = केवलेन वचसा कथनमात्रेण एषः = बालः विरमयितुं = निवर्तयितुं निरोद्धुं न शक्यः। यावदस्य हस्ते क्रीडनकं न दीयते तावन्नासौ संरम्भाद्विरमिष्यतीतिभावः। गच्छ = व्रज, त्वम् मदीये = मम उटजे = पर्णशालायां मार्कण्डेयस्य = मार्कण्डेयनाम्नः ऋषिकुमारस्य = ऋषिपुत्रस्य वर्णैः = रक्तपीतनीलादिनानावर्णैः चित्रितः = निवेशसुन्दरः मृत्तिकायाः मयूरः = बर्हिः तिष्ठति = वर्तते, तं = मृत्तिकामयूरं अस्य = सर्वदमनस्य उपहर = उपकल्पय। अनीयास्मै देहीतिभावः।

**प्रथमा**—तथा = आम्, आनयामि, ( इति = एवमुक्त्वा निष्क्रान्ताः = निर्गता )।

---

है, जैसे प्रातःकाल में खिले हुए कमल की पंखुड़ियों के बीच में छिद्र नहीं होते। अँगुलियों के बीच में छिद्र न होना सौभाग्य का सूचक माना गया है। सामुद्रिक शास्त्रों में इसे चक्रवर्ती राजा का चिह्न बताया गया है—

अतिरिक्तः करो यस्य ग्रथिताङ्गुलिको मृदुः।
चापाङ्कुशाङ्कितः सोऽपि चक्रवर्ती भवेद् ध्रुवम् ॥

**दूसरी तापसी**—सुव्रते ! इसे छोड़। कहने मात्र से यह बालक मानने वाला नहीं है, अतः जो मेरी कुटी में ऋषिकुमार मार्कण्डेय का मिट्टी का बना हुआ रंगीन मोर रखा हुआ है। वहीं लाकर इसको दे दी।

**पहली तापसी**—अच्छा, लाती हूँ ( यह कहकर चली जाती है )

**बालः**—इमिणा एव्व दाव कीलिस्सं। [ अनेनैव तावत्क्रीडिष्यामि। ] ( इति तापसीं विलोक्य हसति )

**राजा**—स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै—

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा [1]मलिनीभवन्ति॥ १७॥

---

बालः—अनेनैव सिंहशिशुनैव तावत् = यावन्मृगमयूरो नानीयते तावत्पर्यन्तं क्रीडिष्यामि ( इति = इदमुक्त्वा तापसीं = तपस्विनीम् विलोक्य = दृष्ट्वा हसति = विहसति )।

तथाविधं दृष्ट्वा राजा स्वगतं वदति—खलु = निश्चयेन दुर्ललिताय = दुर्दान्ताय, धृष्टाय अस्मै = बालकाय स्पृहयामि = वाञ्छामि, एनमालोक्य नितरां प्रसीदामि। धृष्टेऽस्मिन् बालके बाढमाकृष्टं मे चेत इति भावः।

अन्वयः—धन्याः अनिमित्तहासैः आलक्ष्यदन्तमुकुलान् अव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन् अङ्काश्रयप्रणयिनः तनयान् वहन्तः तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति॥ १७॥

तथाविधं बालकमवलोक्य समुद्बुद्धानपत्यताखेदो राजा दुष्यन्तः स्वगतमेवानुशोचति—आलक्ष्येति। धन्याः=सुकृतिनो जनाः अनिमित्तहासैः = निष्कारणप्रहासैः, निरभिसन्धिभिः हासैः आलक्ष्य दन्तमुकुलान् आ = ईषल्लक्ष्यं आलक्ष्यं ईषद्दृशाः दन्तमुकुलाः = दन्ताः मुकुलानीवेति दन्तमुकुला दशनाङ्कुरा अभिनवोद्गता दन्ता येषां ते तान्—आलक्ष्यदन्तमुकुलान् = ईषद्विकसितदन्तमुकुलान्, अव्यक्ताः = अपरिस्फुटाः वर्णाः = अक्षराणि यासु ता अव्यक्तवर्णा अत एव रमणीया = श्राव्या वचसां प्रवृत्तिः=वाक्यप्रसारः वाक्योच्चारणं येषां ते तान् अव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्। अङ्काश्रयप्रणयिनः—अङ्के = उत्सङ्गे यः आश्रयः = स्थितिः तत्र प्रणयः = वाञ्छा अस्ति येषां ते तान् अङ्काश्रयप्रणयिनः तनयान् = औरसान् पुत्रान् वहन्तः = क्रोडे कुर्वन्तः तदङ्गरजसा = तदङ्गपङ्कारागेण मलिनी भवन्ति = धूलिधूसरा जायन्ते।

अर्थात् ये खलु सुकृतिनः त एवेदृशान् तनयान् कोडे कुर्वन्तः तदङ्गमृणमलिना भवन्ति। अत एव ते धन्याः, अहन्तु अधन्य एवास्मि नेदृशं मे भागधेयमितिभावः। अत्रस्वभावोक्तिरप्रस्तुतप्रशंसा चालङ्कारौ वसन्ततिलकावृत्तञ्च॥ १७॥

---

**बालक**—इस सिंह के बच्चे से ही तबतक खेलूँगा। **( यह कहकर तापसी को देख हँसता है। )**

**राजा**—इस हठीले बालक को देखकर प्यार करने के लिए मेरा मन ललच रहा है।

बिना कारण हँसने से जिसके दांतों की पक्तियाँ कुछ-कुछ विकसित-सी दिखाई पड़ रही हैं। तोतली बोली से जिनका बोलना मनोहर लगता है, और जो गोद में बैठने के लिए ललच रहे हैं, ऐसे अपने पुत्रों को गोद में बैठाकर उनकी धूलि से कोई भाग्यशाली एवं पुण्यात्मा लोग ही मलिन एवं धूलिधूसरित होते हैं। अर्थात् मिट्टी में खेलते हुए बालक भाग्यवान् पुरुषों की ही गोद में आकर बैठते हैं और उनको भी धूलिधूसरित करते रहते हैं॥ १७॥

---

[1] पा० — धूसरीभवन्ति।

**तापसी**—होदु। ण मं अअं गणेदि। ( पार्श्वमवलोकयति ) को एत्थ इसि-कुमाराणं ? ( राजानमवलोक्य ) भद्दमुह एहि दाव। मोए हि इमिणा दुम्मोअहत्थ-ग्गहेण डिंभलीलाए बाहींअमाणं बालमिइंदअं। [ **भवतु। न मामयं गणयति। कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम्। भद्रमुख, एहि तावत् मोचयानेन दुर्मोकहस्तग्रहेण डिम्भलीलया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम्।** ]

**राजा**—( उपगम्य सस्मितम् ) अयि भो महर्षिपुत्र।

**एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना [1]संयमः किमिति जन्मतस्त्वया।**
**सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते कृष्णसर्पशिशुनेव [2]चन्दनम्॥ १८॥**

---

**तापसी**—भवतु = अस्तु तावत् अलं न माम् अयं बालः गणयति = किमपि मद्वाचं न शृणोति, नायं सिंहशिशुं मुञ्चति मामनादृत्य केसरिकिशोरेण क्रीडां करोति। बालकं स्वयं वारयितुमशक्ता पार्श्वमालोक्य मुनिकुमारानाह्वयति—मुनिपुत्राणां=ऋषिकुमाराणां मध्ये कोऽत्र = समीपेऽस्माकं तिष्ठति स सिंहशावकमोचनाय सर्वदमनवारणार्थं चायातु। भद्रमुख! सौम्य! **'सौम्य भद्रमुखेत्येवं वाच्यो राजसुतो भवेत्'** इत्यभियुक्तोक्तेः। दुर्मोक-हस्तग्रहेण दुर्मोकः = मोचयितुमशक्यः हस्तेन ग्रहः = ग्रहणं मुष्टिः यस्य स तेन दुर्मोकहस्त-ग्रहेण दृढतरमुष्टिबद्धशालिना अनेन बालकेन डिम्भलीलया = बालसुलभक्रीडया बाध्य-मानं = पीड्यमानं बालमृगेन्द्रं = सिंहशिशुं मोचय तावदित्यर्थः।

**राजा**—( उपगम्य सस्मितं— ) अयि = भोः महर्षिपुत्र = मुनिकुमार।

**अन्वयः**—एवम् आश्रमविरुद्धवृत्तिना त्वया जन्मतः सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि संयमः कृष्णसर्पशिशुना चन्दनं इव किमिति दूष्यते॥ १८॥

तपस्विन्या बालकरात् केसरिकिशोरकं मोचयितुं अभ्यर्थितो राजा दुष्यन्तः शिशोः समीपं गत्वा सस्मितं ब्रूते—**एवमिति**। एवं = अनेन प्रकारेण सिंहं शिशुपीडनादिना आश्रमविरुद्धवृत्तिना—आश्रमस्य = तपोवनस्य विरुद्धा = प्रतिकुला वृत्तिः = व्यापारो

---

**तापसी**—अच्छा यह मुझको कुछ भी नहीं समझ रहा है ( **अगल बगल देखकर** ) यहाँ कौन ऋषिकुमार है! ( **राजा को देखकर** ) भले मानुष! जरा आप ही इधर आ जाइए। बाल-क्रीडा के द्वारा परेशान किये जाते हुए इस सिंह शावक को इस बालक के हाथों से छुड़ा दीजिए, मुझसे यह नहीं छुड़ाया जा सकता है, क्योंकि इसने बच्चे को जोर से पकड़ रखा है।

**राजा**—( **पास में जाकर मुस्करा कर** ) हे महर्षिपुत्र!

इस आश्रम के विपरीत आचरण से तुम्हारे द्वारा जन्मकाल से ही, जीवों का आश्रय देने के कारण सुखप्रद संयम-प्रधान आश्रम को काले सांप के बच्चे द्वारा चन्दन वृक्ष की तरह क्यों दूषित किया जारहा है? अर्थात् जैसे काले नाग का छोटा बच्चा भी जन्म से ही चन्दन-वृक्ष को दूषित कर देता है, वैसे ही तू भी अपने जन्म से ही इस तपोवन के विरुद्ध वृत्ति धारण कर प्राणिमात्र को अभय देने वाली प्रशंसनीय शान्ति को क्यों दूषित कर रहा है?॥ १८॥

**विशेष**—यहां जन्मतः का अर्थ बचपन है। शेर के बच्चे को कष्ट देना हिंसा है, जो आश्रम के संयम = अहिंसा आदि के विरुद्ध है। संयम और चन्दन की तुलना है। शीतलता के कारण प्राणी चन्दन के आश्रम से सुख पाता है. पर सर्प उससे लिपटकर प्राणियों को काट लेता है।

---

पाठा०—१. संयमी। २. चन्दनः।

तापसी—भद्दमुह ण खु अअं इसिकुमारओ। [ भद्रमुख न खल्वयं ऋषिकुमारः। ]

राजा—आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति। स्थानप्रत्ययात्तु वयमेवं तर्किणः। ( यथाभ्यर्थितमनुतिष्ठन् बालस्पर्शमुपलभ्य आत्मगतम् )—

---

यस्य स तादृशेन आश्रमविपरीताचारेण त्वया = बालेन जन्मतः = जन्मन आरभ्य सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि सुखयतीतिसुखः, सत्त्वानां संश्रयेण सुखः सत्त्वसंश्रयसुखः यद्वा सत्त्वस्य संश्रयः सत्त्वसंश्रयः सत्त्वसंश्रयश्चासौ सुखश्चेति सत्त्वसंश्रयसुखः = सकलजीवाभयदानस्पृहणीयः, संयमः = अहिंसादिनियमः आत्मदमनम्, कृष्णसर्पशिशुना—कृष्णसर्पस्य शिशुना = शावकेन उद्दीप्तगरलजातीयकृष्णसर्पबालकेन चन्दनमिव तदाख्यो गन्धवृक्षमिव किमिति = कुतो नु कथं, दूष्यते = कलुषी क्रियते।

अयं भावः—अयि, भोः ऋषिकुमार! आश्रमवासिजनस्वभावविपरीतं सत्त्वपीडनं बाल्यादेव त्वयि कथमाविर्भूतम्? नहि ऋषिकुमाराणामेवंविधा वृत्तिरुचितेति सर्पशिशुना चन्दनमिव त्वया तपोवनमिदं दूष्यते। तस्मान्नेदमुचितं ब्राह्मणशिशोस्तव, मुञ्चैनं केसरिकिशोरकमिति। अत्रोपमानुप्रासावलङ्कारौ स्वागता वृत्तञ्च ॥ १८ ॥

तापसीः—भद्रमुख! भद्रं = शोभनं मुखं = वदनं यस्यासौ तत्सम्बुद्धौ हे भद्रमुख! न खलु = निश्चयेन अयं = एष बालः ऋषिकुमारः = मुनेर्बालकः तस्मान्न ब्राह्मणबालक इत्यर्थः।

राजा—अस्य = बालकस्य आकारस्य = आकृते सदृशं = तुल्यम् अनुरूपं चेष्टितं = कर्मैव कथयति = सूचयति प्रत्याययति। आकारव्यापाराभ्यां नायंमृषिकुमार इत्यवगम्यते स्थानप्रत्ययात्तु—स्थानस्य = प्रदेशविशेषस्य, प्रत्ययात् = ऋषिकुमारजुष्टमिदं स्थानं अत्र तिष्ठता बालकेन तत्कुमारेणैव भवितव्यमिति विश्वासात् तु वयं = अहम्, एवं तर्किणः = तथानुमानकारकाः ऋषिकुमारोऽयं स्यादिति तर्कितवन्तो वयमितिभावः।

( यथाभ्यर्थितं—अभ्यर्थितमनतिक्रम्य यथाभ्यर्थितं = तापसी प्रार्थितं सिंहशिशुमोषनम् अनुतिष्ठन् = कुर्वन् तापसीप्रार्थनया बालं शिशुं मोचयन् बालस्य = शिशोः स्पर्शसुखमुपलभ्य = प्राप्य आत्मगतं = स्वगतम्। )

'न वाससां न रामाणां नापां स्पर्शस्तथाविधः।' इतिमहाभारतोक्त्या बालस्पर्शनकमप्यनिर्वचनीयं मोदमनुभवन् राजा आत्मगतं विमृशति—अनेनेति।

---

तापसी—हे भद्रमुख! यह ऋषिकुमार नहीं है।

राजा—स्वरूप के सदृश इसका यह व्यवहार ही बता रहा है कि यह ऋषिकुमार नहीं है, किन्तु यहाँ केवल ऋषियों के आश्रम होने के कारण ही मैंने इस बालक को ऋषिकुमार समझा था ( **तपस्वी की प्रार्थना के अनुसार बालक के हाथों से सिंहशावक को छुड़ाता हुआ उस बालक के स्पर्श-सुख का अनुभव कर मन ही मन** )।

**विशेष**—जैसा स्थान होता है, उसी के अनुसार विश्वास होता है। आश्रम में किसी के रहने से यह विश्वास हो जाता है कि यह ऋषि या ऋषिकुमार है, यह आश्रम है अथवा यह ऋषियों का निवास स्थान है। अतः वह भी ऋषिपुत्र ही होगा। इसी विश्वास से मैंने इसे ऋषिकुमार कहा है।

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण [1]स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम् ।
कां निर्वृतिं चेतसि तस्य कुर्याद्यस्यायमङ्गात्कृतिनः [2]प्ररूढः ॥ १९ ॥

तापसी—( उभौ निर्वर्ण्य ) अच्छरिअं अच्छरिअं । [ आश्चर्यमाश्चर्यम् । ]

राजा—आर्ये किमिव ।

तापसी—इमस्स बालअस्स दे वि संवादिणी अकिदी त्ति विम्हाविदम्हि । अपरिइदस्स वि दे अप्पडिलोभो संवुत्तो त्ति । [ अस्य बालकस्य तेऽपि संवादिन्याकृतिरिति विस्मापितास्मि । अपरिचितस्यापि तेऽप्रतिलोमः संवृत्त इति । ]

अन्वयः—कस्यापि कुलाङ्कुरेण अनेन स्पृष्टस्य मम गात्रेषु एवम् सुखम् । यस्य कृतिनः अङ्गात् प्ररुढः तस्य चेतसि कां निर्वृत्तिं कुर्यात् ॥ १९ ॥

तापसीप्रार्थनया केसरिकिशोरं मोचयन् शिशुस्पर्शं चानुभवन् राजा दुष्यन्तो ब्रवीति—अनेनेति । कस्यापि अज्ञातस्य पुंसः कुलाङ्कुरेण कुलस्य = वंशस्य अङ्कुरेण = प्ररोहेण कुलदीपकेन अनेन = एतेन बालकेन गात्रेषु = शीरावयवेषु, सर्वस्मिन् शरीरे वा 'गात्रमङ्गे कलेवरे' इति विश्वः । स्पृष्टस्य = कृतस्पर्शस्य मम = दुष्यन्तस्य एवं = अनुभवैकगम्यम्, वाचा वर्णयितुमशक्यं वर्णनातीतं सुखं = आह्लादः भवति । अयं = एषः बालः कृतिनः = कृतकृत्यस्य भाग्यवतः यस्य पुरुषस्य अङ्गात् = देहात्, प्ररुढः = उत्पन्न वृद्धि प्राप्तः वर्द्धितः तस्य पुंसः चेतसि = हृदये, मनसि कां निर्वृतिं = किं प्रभूतं सुखं कुर्यात् = विदध्यात् इति न ज्ञायते ।

अयं भावः—कुलादिसम्बन्धं विनापि क्षणमात्रपरिचितोऽयं बालकः शरीरसम्पर्कमात्रादपि यदि मामेवं सुखयति तर्हि यस्याङ्के चिरात् प्रवर्द्धितः तस्य कीदृशं सुखं विदध्यादिति न शक्यते वर्णयितुम् । सर्वथा धन्याः खलु पुत्रवन्तः प्राणिनः । अत्रार्थापत्तिरूपकालङ्कारौ वृत्तञ्चोपजातिः ॥ १९ ॥

तापसी—राजानं बालकं चेत्युभौ निर्वर्ण्य वदति—आश्चर्यम्, आश्चर्यम् = विस्मयः, विस्मयः ।

राजा—आर्ये किमिव ? = किमाश्चर्यं संजातम् ?

तापसी—अस्य = अमुष्य, वालस्य = शिशोः ते = तवापि संवादिनी = सदृशी

---

किसी भी अन्य कुल के अङ्कुरस्वरूप इस बालक के स्पर्श से जब मुझे ऐसा सुख मिलता है, तो जिसका यह पुत्र है और जिसने इसको पाला-पोसा है उसके हृदय में इसका स्पर्श कैसा सुख देता होगा ॥ १९ ॥

**विशेष**—राजा दुष्यन्त सन्तानहीन है । अतः वंश लुप्त हो जाने के कारण वह अपने को अभागा समझता है । अतः उसकी दृष्टि में वे लोग परम सौभाग्यशाली हैं, जिनकी गोद में धूलधूसरित बालक खेला करते हैं ।

**तापसी**—(दोनों को देखकर) आश्चर्य की बात है ? ओह, यह तो बड़े आश्चर्य की बात है ।

**राजा**—आदरणीया, वह क्या बात है, जिससे आपको आश्चर्य हो रहा है ?

**तापसी**—इस बाल का और आपका आकार बिलकुल मिलता जुलता है । इसलिए मैं आश्चर्यचकित हो रही हूँ । और भी यह अत्यन्त हठी होने पर भी आपके अनुकूल चुपचाप शान्त हो गया । यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं ।

---

पाठा०— स्पृष्टेषु । २. प्रसृतः ।

राजा—( बालकमुपलालयन् )—न चेन्मुनिकुमारोऽयम् अथ कोऽस्य व्यपदेशः।
तापसी—पुरुवंसो। [ पुरुवंशः। ]
राजा—( आत्मगतम् ) कथमेकान्वयो मम। अतः खलु मदनुकारिणमेनमत्र-भवती मन्यते। अस्त्येतत्पौरवाणामन्त्यं कुलव्रतम्।

**भवनेषु [1]रसाधिकेषुपूर्वं क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम्।**
**[2]नियतैकपतिव्रतानि पश्चात्तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम्॥ २०॥**

---

आकृतिः = आकारः, अपरिचितस्य = अदृष्टपूर्वस्यात् अपि ते अप्रतिलोमः = अविरुद्धः अनुकुलः संवृत्तः = जातः इति = हेतोः विस्मापिता = आश्चर्ये पतिताऽस्मि।

अथ राजा बालकमुपलालयन् इच्छानुरूपं प्रवर्तमानं बालं प्रेरयन् तापसीं पृच्छति-हे आर्ये! न चेत् यदि अयं = एषः न मुनिकुमारः = ऋषिपुत्रः अथ = तदा कः अस्य = बालकस्य व्यपदेशः ? = वंशः ? यद्यसौ न मुनिकुमारः तर्हि किं कुलमस्य ?

**तापसी**—पुरुवंशः = पुरुवंशोत्पन्नोऽयम्।

**राजा**—कथं = किम् मम = दुष्यन्तस्य एकान्वयः एकः = समानः अन्वयः = वंशो यस्य स एकान्वयः = समानवंश ममापि पुरुवंशोद्भवत्वेन पौरवत्वात् अतः = अनेन कारणेन खलु = निश्चयेन मामनुकरोतीति मदनुकारी तं मदनुकारिणं, एनं बालकं अत्र-भवती = पूज्या तापसी मन्यते = संभावयति ( किन्तु ) पौरवाणां = पुरुवंशोत्पन्नानां राज्ञां एतत् अन्ते भवमन्त्यं = वानप्रस्थाश्रमकालपालनीयम् कुलस्य व्रतं कुलव्रतं = कुलाचारः, वंशपरम्पराप्राप्तो नियमः। क्षत्रियाणां वानप्रस्थाश्रम एवान्त्याश्रमः, तेषां सन्यासानधिकारात्। तथा च स्मृतिः--

मुखजानामयं धर्मः यद्विष्णोर्लिङ्गधारणम्।
बाहुजातोरुजातानामयं धर्मो न विद्यते॥

**अन्वयः**—पूर्वं ये क्षितिरक्षार्थं रसाधिकेषु भवनेषु निवासमुशन्ति पश्चात्तेषां नियतैक-यतिव्रतानि तन्मूलानि गृहीभवन्ति।

पुरुवंश समुद्भवोऽयं बाल इति तपस्विन्या उत्तरं श्रुत्वा आश्रमसद्भावसंगति

---

**राजा**—( उस बालक का लाड़ प्यार करता हुआ ) यदि वह मुनिकुमार नहीं है तो, इसका वंश क्या है ?

**तापसी**—यह पौरववंश का क्षत्रिय कुमार है।

**राजा**—( अपने आप ) क्या मेरा सगोत्र ( एक वंशवाला ) है। यही कारण है कि पूज्या तपस्विनी इसे मेरे समान आकार वाला मान रही है। पुरवंशियों का यह अन्तिम कुलव्रत भी है कि—

जो पहले युवावस्था में पृथ्वी का पालन करने के लिए भोगों में परिपूर्ण भव्य भवनों के निवास की इच्छा रखते हैं, वे ही पीछे वृद्धावस्था में नियमित रूप से यतिव्रत धारण कर वानप्रस्थ का जीवन बिताते हुए वृक्षों के नीचे अपना घर बनाकर निवास करते हैं॥ २०॥

**विशेष**—आदिकाल से ही भारतीय संस्कृति का यह उदात्त सिद्धान्त था कि युवावस्था में राजा लोग प्रजारञ्जन करते हुए अपने शासन द्वारा पृथ्वी का धर्मपूर्वक पालन करते थे। वृद्धावस्था में अपने योग्य उत्तराधिकारी पुत्र को राज्य पर अभिषिक्त करके विषयसुख से विमुख होकर

---

पाठा०—१. सुधासितेषु। २. विहितैकयतिव्रतानि।

( प्रकाशम् ) न पुनरात्मगत्या मानुषाणामेष विषयः ।

**तापसी**—जह भद्दमुहो भणादि अच्छरासंबंधेण इमस्स जणणी एत्थ देवगुरुणो तवोवणे प्पसूदा । [ **यथा भद्रमुखो भणत्यप्सरःसंबन्धेनास्य जनन्यत्र देवगुरोस्तपोवने प्रसूता ।** ]

---

वितर्कयन् दुष्यन्तो ब्रूते––भुवनेष्विति । पूर्वं वार्धकादर्वाचीने यौवने वयसि ये पुरुवंशोद्भवा राजनः क्षितिरक्षार्थं = पृथ्वीपालनार्थं, नत्विन्द्रियसुखार्थम् रसाधिकेषु रसः= रागः शृङ्गारादिः मधुरादिः आस्वादश्चैते अधिकाः पर्याप्ताः येषु यद्वा एतैरधिकानि उत्तमानि तेषु रसाधिकेषु अथवा रसैः = भोगैः अधिकेषु आढ्येषु भवनेषु = गृहेषु प्रासादेषु च निवासं = स्थितिम्, उशन्ति = वाञ्छन्ति । पश्चात् = अन्ते वयसि, वार्द्धक्ये तेषां = पुरुवंशीयानां राज्ञां नियतैकव्रतानि नियतं = नियमयुक्तं व्यवस्थितम् एकं पावनं यतिव्रतं = वानप्रस्थव्रतं येषु तानि नियतैकयतिव्रतानि, तुरुमूलानि, वृक्षतलानि । नियतैकपतिव्रतानीति पाठे तु नियता=नियमयुक्ता तपःसन्तोषादियुक्ता एका = केवला पतिव्रता = धर्मपत्नी येषु तानि नियतैकपतिव्रतानि = निरन्तरतपस्विव्रतानुष्ठानोचितानि अथवा नियता नियमचारिणी, पुत्रादिरहिता एका पतिव्रता सहचरी येषु तानि नियतैकव्रतानि तरुमूलानि = वृक्षतलानि अगृहाणि गृहाणि भवन्तीति गृहीभवन्ति = निवासाय सम्पद्यन्ते ।

**अयं भावः**—धर्मशीलाः पौरवाः धर्मरक्षार्थमेव यौवने भव्येषु राजप्रासादेषु निवसन्ति । वार्द्धक्ये तु मुनिव्रतं ग्रहीतुकामाः सुयोग्ये तनये राज्यरक्षणभारं विन्यस्य एकया पतिव्रतया प्रधानभार्यया साकं वानप्रस्थाश्रमे तपोवने निवसन्ति । तेषामेवान्यतमस्य कस्यापि राजर्षेरयं बालकः सम्भवतीति तपोवनेऽपि पुरुवंशोद्भवस्यास्य निवासो युक्त एव प्रतिभाति । अत्र रूपकानुप्रासावलङ्कारौ मालभारिणी वृत्तञ्च ॥ २० ॥

अस्त्वेतत् पौरवाणा कुलव्रतं ( प्रकाशम् ) तथापि एषः = हेमकूटः न पुनः आत्मगत्या = स्वस्यस्वरूपेण मानवगत्या मानुषाणां = मनुष्याणाम् एव विषयः = गोचरः । अयं हेमकूटो मनुष्याणामभूमिः कथमयं मानुषो बालः अत्रागत इति तावत् पृच्छामीतिभावः ।

**तापसी**—भद्रमुखः = सौम्यः यथा भणति = वदति तथैव = भवदुक्तं सत्यमेव मनुष्या अत्रागन्तुमशक्ता अप्सरःसम्बन्धेन = अप्सरोभिः देवाङ्गनाभिः सम्बन्धस्तेन अप्सरः सम्बन्धेन देवाङ्गनासम्बन्धेन अस्य बालकस्य जननी = जनयित्री माता इह देवगुरोः = देवतानां गुरोः पितुः महर्षेः कश्यपस्य तपोवने = आश्रमे मारीचाश्रमे प्रसूता = एनं बालं प्रसुषुवे ।

---

अपनी अर्द्धाङ्गिनी = धर्मपत्नी के साथ जंगल में जाकर पतिव्रत लेकर वृक्षों के नीचे तपस्या करते हुए अपने जीवन को चरितार्थ करते थे । यहाँ यतिव्रत का तात्पर्य वानप्रस्थ है । वानप्रस्थावस्था में पत्नी नियमयुक्त रहती है । अतः यहाँ पुत्रजन्म की संभावना नहीं । वह आश्रम कश्यप और अदिति आदि देवजाति का है । यहाँ मनुष्य पुरुवंशी बालक का होना असंभव है ।

**( प्रकट में )** यह स्थान मनुष्य के लिए अपनी स्वाभाविक गति का विषय नहीं है । अर्थात् मनुष्य अपनी शक्ति से यहाँ नहीं पहुँच सकता । इस बालक के माता-पिता मनुष्य होकर यहाँ कैसे पहुँच गये ?

**तापसी**—हाँ, भलेमानुष ! आप ठीक कह रहे हैं ? अप्सरा मेनका से सम्बन्ध होने के कारण इसकी मां ने यहाँ देवपिता कश्यप के आश्रम में इसको पैदा किया है ।

**राजा**—( अपवार्य ) हन्त: [1]द्वितीयमिदमाशाजननम् । ( प्रकाशम् ) अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षे: पत्नी ।

**तापसी**—को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णाम संकीतिदुं चिंतिस्सदि। [ कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तयितुं चिन्तयिष्यति । ]

**राजा**—( स्वगतम् ) इयं खलु कथा मामेव लक्ष्यीकरोति। यदि तावदस्य शिशोर्मातरं नामत: पृच्छामि । अथवाऽनार्य: परदारव्यवहार: ।

---

**राजा**—हन्त, हर्षं द्वितीयं–प्रथमं भुजस्पदनं ततोऽन्यत् इदं=अप्सर:सम्बन्ध: अथवा प्रथमं पौरववंशतया द्वितीयमप्सर:सम्बन्धतया आशाजनकमित्यर्थ: शकुन्तलाया मेनका-पत्यत्वात् आशाया:=मनोरथस्य जननं=उत्पत्तिरिति आशाजननम्=अभिलाषपूर्ति-हेतु: ( प्रकाशम् ) पृच्छति–अथ सा–तत्र भवती–अस्य बालकस्य जननी किमाख्या यस्य स तस्य किमाख्यस्य=किन्नामधेयस्य राजर्षे:=राज्ञ: पत्नी=धर्मपत्नी ?

**तापसी**—धर्मदारपरित्यागिन:–धर्मार्थदारा: धर्मदारा: धर्मदारान् परित्यजति तच्छी-ल:=धर्मदारपरित्यागी तस्य धर्मदारापरित्यागिन:=धर्मभार्यापरित्यागपरस्य अकारणं पत्नीं परित्यक्तवत: नाम=नामधेयं संकीर्तयितुं=कथयितुं उच्चारयितुमपि क: चिन्त-यिष्यति=चिन्तामपि करिष्यति । तस्मात् पापिन: तस्य नाम न कथयामीति भाव: ।

**राजा**—( स्वगतं चिन्तयन्नाह ) इदं कथा=एतद्बालविषयिषी कथा, दारपरित्याग-कथा चर्चा वा मामेव लक्ष्यी करोति=सूचयति । यदि=चेत् तावत् यद्येषा पितुर्नाम न कथयति तर्हि अस्य शिशो:=अमुष्य बालकस्य नामत:–नाम्ना मातरं=जननीं पृच्छामि, किन्नामास्य मातुरिति पृच्छामि अथवा=किन्तु परदारव्यवहार: परस्य=अन्यस्य दाराणां=पत्नीनां व्यवहार: चर्चा, अनार्य: आर्यजनविगर्हित: अनुचित: परदार-सम्बन्धिनी जिज्ञासा ।

---

**राजा**—( मुँह को दूसरी ओर फेरकर तथा हाथ से आड़कर ) वाह, यह दूसरी आशा-जनक बात है ( प्रगट रूप से ) अच्छा, आदरणीया जी, वह इस बालक की मां किस राजर्षि की अर्द्धाङ्गिनी हैं ?

**विशेष**—राजा के लिए प्रथम आशाजनक बात यह थी कि यह बालक पुरुवंश से सम्बन्ध रखने वाला है । दूसरी आशाजनक बात यह है कि इसकी मां अप्सरा से सम्बद्ध है । राजा दुष्यन्त को यह बात भली भाँति विदित थी कि शकुन्तला मेनका अप्सरा की पुत्री है । जिसकी यह उपेक्षा नहीं कर सकती है । इसलिए दुष्यन्त को इस प्रसंग से अपनी ओर दृढता होती चली जा रही है।

**तापसी**—अपनी धर्मपत्नी का त्याग करने वाले उस पापी व्यक्ति का नाम लेने का कौन विचार करेगा ।

**विशेष**—अपनी धर्मपत्नी का परित्याग धर्मशास्त्रों में अधर्म माना गया है । अत: अधार्मिक व्यक्ति का नाम लेना पापजनक होता है । इसलिए तापसी कह रही है कि अर्द्धांगिनी धर्मपत्नी के त्यागरूप पाप करने वाले उस पुरुष नाम कौन लेगा ?

**राजा**—( मन ही मन ) मालूम होता है—यह कथा तो मुझे ही लक्ष्य करती है। यह क्या बात है। अच्छा इसकी माता का नाम पूछता हूँ । ( कुछ सोचकर ) अथवा परस्त्री का नाम आदि पूछना तो भले मनुष्यों का काम नहीं है । स्त्री का नाम पूछना अशिष्टता है ।

---

**पाठा०**—१. द्वितीयमिदमाश्वासजननम् ।

( प्रविश्य मयूरहस्ता )

**तापसी**--सव्वदमण सउंदलावण्णं पेक्ख । [ सर्वदमन शकुन्तलावण्यं प्रेक्षस्व । ]

**बालः**--( सदृष्टिक्षेपम् ) कहिं वा मे अज्जू ? [ कुत्र वा मम माता ? ]

**उभे**--णामसारिस्सेण वंचिदो माउवच्छओ । [ नामसादृश्येन वञ्चितो मातृवत्सलः । ]

**द्वितीया**--वच्छ इमस्स मित्तिआमोरअस्स रम्मत्तणं देक्ख त्ति भणिदो सि । [ वत्स अस्य मृत्तिकामयूरस्य रम्यत्वं पश्येति भणितोऽसि । ]

**राजा**--( आत्मगतम् ) किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या । सन्ति पुनर्नामधेयसादृश्यानि । अपि नाम मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते ।

---

( अथ मृण्मयूरहस्ता मृदः = मृत्तिकाया मयूरः = शिखी हस्ते = करे यस्याः सा मृण्मयूरहस्ता प्रविश्य = अन्तरागत्य )

**तापसी**--हे सर्वदमन ! शकुन्तस्य पक्षिणो मृत्तिकामयूरस्य लावण्यं = सौन्दर्यं प्रेक्षस्व = पश्य ।

**बालः**--सदृष्टिक्षेपं = चतुर्दिक्षु चक्षुःपातपूर्वकं शकुन्तलावण्यमित्यस्य शकुन्तलावर्णं-मित्यर्थं कल्पयित्वा पृच्छति--मम = मे माता=जननी शकुन्तला कुत्र=क्व वा ? शकुन्तला-वर्णमित्यस्य प्राकृतच्छायाभेदेनार्थद्वयं भवति--शकुन्तलस्य पक्षिणोमयूरस्य लावण्यं सौन्दर्यं शोभां वा यद्वा शकुन्तलायाः वर्णं = रूपमिति ।

**उभे**--नामसादृश्येन नाम्नः सादृश्येन तुल्यतया वञ्चितः = भ्रान्तः मातृवत्सलः = मातुः = जनन्याः वत्सलः = प्रियतरः एष बालकः, शकुन्तलेतिमातृनामाक्षराण्याकर्ण्य तत्सादृश्येन वञ्चित इति भावः ।

**द्वितीया**--अन्यथाविप्रतिपत्तिं व्यपोहति--वत्स ! अस्य शकुन्तस्य मृत्तिकामयूरस्य लावण्यं = रम्यत्वं पश्य = विलोकयेति भणितः = कथितोऽसि, न शकुन्तलायाः स्वमातुर्वर्णं प्रेक्षस्वेति भणितोऽसीति भावः ।

**राजा**--बालकस्य तापस्याश्च व्यवहारात् अवगतमर्थमात्मगतं चिन्तयति--अस्य =

---

**( मिट्टी के बने मोर को लेकर तापसी का प्रवेश )**

**तापसी**--सर्वदमन ! इस शकुन्त ( पक्षी ) के लावण्य-सौन्दर्य को देखो, या शकुन्तला के वर्ण को देखो ।

**बालक**--( इधर उधर आँख घुमाकर देखता है ) कहाँ है मेरी मां ?

**विशेष**--यहाँ 'शकुन्त-लावण्यम्' के प्राकृत अनुवाद में वक्रोक्ति श्लेष के होने के कारण दो अर्थ होते हैं । ( १ ) शकुन्तस्य पक्षिणः लावण्यं = सौन्दर्यं प्रेक्षस्व ( २ ) शकुन्तलायाः वर्णं-रूपं पश्य । इस प्रकार इस पद के दो अर्थ होने के कारण सर्वदमन 'शकुन्तला के वर्ण रूप को देख' यह दूसरा ही अर्थ समझकर कहता है कि यहाँ है तेरी माता शकुन्तला ?

**दोनों**--नाम के सादृश्य से ही मातृभक्त यह बेचारा बालक ठगा गया और अपनी माता को देखने के लिए उत्सुक हो गया है ।

**दूसरी तापसी**--अरे, मैंने तो कहा है कि इस शकुन्त = पक्षी मोर का लावण्य = सौन्दर्य को देख ।

**राजा**--( मन ही मन ) क्या शकुन्तला इसकी मां का नाम है किन्तु नामों की समानता तो बहुत मिलती हैं । क्या मृगतृष्णा की तरह शकुन्तला नाम का आ जाना मेरे दुःख के लिये है ।

**बालः**--अज्जुए ! रोअदि मे एसो भद्दमोरओ। [ **मातः ! रोचते म एष भद्रमयूरः ।** ] ( इति क्रीडनकमादत्ते )

**प्रथमा**--( विलोक्य सोद्वेगम् ) अम्हहे रक्खाकरंडअ से मणिबंधे ण दीसदि। [ **अहो रक्षाकरण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते ।** ]

**राजा**--अलमलमावेगेन । [1]नन्विदमस्य सिंहशावविमर्दात्परिभ्रष्टम् । ( इत्यादातुमिच्छति )

---

बालकस्य मातुः = जनन्या आख्या = नाम किं वा शकुन्तलेति = अस्ति किम् ? अस्य माता शकुन्तला तदर्थं मत्पुत्र एवेति भावः । इदं तृतीयमाशाजनकं विधूय पुनरयमाशङ्कते सन्ति = भवन्ति पुनः = तु नामधेयस्य = नाम्नः सादृश्यानि = तुल्यता नाममात्रसादृश्यं बहुत्र दृश्यते इत्यर्थः नाममात्रप्रस्तावः = नामधेयमात्रप्रसङ्गः मृगतृष्णिकेव = मृगमरीचिकेव यथा मृगतृष्णिकायां जलभ्रान्ति न वस्तुतस्तत्र जलं भवति तथैवात्रशकुन्तलेति नाममात्रसादृश्यं न मे प्रिया सा स्यादिति मे = मम विषादाय = विषादं जनयितुं खेदाय अपि नाम कल्पते = किं स्विज्जायते ।

**बालः**—मात ! एषः = अयं भद्रमयूरः = सुन्दरः शिखी मे = मह्यं रोचते, प्रीतोऽहमनेन सुन्दरेण शिखिना ।

**प्रथमा**—( विलोक्य ससंभ्रमं वदति ) अहो रक्षार्थं बद्धं करण्डकं–रक्षाकरण्डकं = रक्षार्थं बद्धं औषधिग्रन्थिभेदः रक्षावीटिका 'काण्डे मधु कोशे स्याद्वीटिका खड्गकोशयोः।' अस्य = बालकस्य मणिबन्धे = प्रकोष्ठे करतलमूले बद्धो न दृश्यते = नावलोक्यये । तद्दर्शानात्तापस्या उद्वेगः ।

**राजा**—अलमाविगेन=आवेगो न कर्तव्यः अङ्गुल्या निर्दिशन् प्राह–इदं रक्षाकरण्डकम्, ननु सिंहशावकविमर्दात्=सिंहशावकेन केसरिकिशोरेण यो विमर्दः = संघर्षः तस्मात् परिभ्रष्टं च्युतं सत् भूमौ पतितम् ( इति = एवमुक्त्वा तत् आदातुमिच्छति = ग्रहीतुमुपक्रमते ।

---

**बालक**—मां ? वह सुन्दर मोर मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। **( ऐसा कहकर खिलौने को हाथ में लेता है )**

**पहली तपस्विनी—( देखकर घबड़ाहट के साथ )**। अरी मैया री मैया, इसके हाथ में तो वह रक्षा-सूत्र नहीं दिखाई दे रहा है ?

**विशेष**—देवताओं में लोग अपने कल्याण को कामना से या बच्चों के मङ्गल की इच्छा से पीले वस्त्र या सूत्र में देवी-देवता का भस्म, जड़ी-बूटी आदि बाँध देते हैं, जिसे ताबीज या रक्षासूत्र भी कहते हैं। हिन्दुशास्त्रों के अनुसार रूप से संस्कार १६ माने जाते हैं, उनमें चतुर्थ संस्कार जातकर्म संस्कार है । इस संस्कार में बालक के जन्म के अनन्तर पिता नाल काटने के पहले ही नवजात शिशु की जीभ पर सुवर्ण शलाका से ॐ लिख देता है तथा उसे घृत एवं मधु चटाता है—

प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ।
मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ म० स्मृ० २।२९

**राजा**—आर्ये, आप घबड़ाइए मत, सिंह शिशु के रगड़ से इसका रक्षा-सूत्र हाथ से यहाँ गिर पड़ा है। **( यह कहकर राजा उसे उठाना चाहता है। )**

---

पाठा०—१. नन्वयमस्य ।

**उभे**--मा खु एवं अवलंबिअ । कहं गहीवं णेण । [ **मा खल्विदमवलम्ब्य । कथं गृहीतमनेन ।** ] ( इति विस्मयादुरोनिहितहस्ते परस्परमवलोकयतः )

**राजा**--किमर्थं प्रतिसिद्धा स्मः ?

**प्रथमा**--सुणादु महाराओ । एसा अवराजिदा णाम ओसही इमस्स जातकम्मसमए भअवदा मारीएण दिण्णा । एत किल मादापिदरो अप्पाणं च वज्जिअ अवरो भूमिपडिदं ण गेण्हादि । [ **शृणोतु महाराजः ! एषाऽपराजितानामौषधिरस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता । एतां किल मातापितरावात्मानं च वर्जयित्वाऽपरो भूमिपतितां न गृह्णाति ।** ]

**राजा**--अथ गृह्णाति ।

---

**उभे**—तापस्यौ राजानं निषेधयतः-मा खलु अवलम्ब्य = आदाय, मा खलु नहि नहि एतत्त्वया आदेयम् म्रियसे इति वाक्यशेषः । राजा तदादत्ते न म्रियते ते आहतुः कथं गृहीतमनेन इति विस्मयात् = आश्चर्येण तापस्यौ ते । उरोनिहितहस्ते उरसि-वक्षसि निहितः स्थापितः हस्तः=करो याभ्यान्ते उरोनिहितहस्ते परस्परं=अन्योन्यमवलोकयतः=पश्यतः । प्रायो विस्मये स्त्रीणां हस्त उरसि निहितो भवति ।

**राजा**—किमर्थं-केन कारणेन प्रतिषिद्धाः = निवारिताः स्मः, रक्षाकरणमाददाना वयं भवतीभ्यां कस्माद्धेतोः निषिद्धयामहे इति भावः ।

**प्रथमा**—औषध्या विकाराभावादयमस्य बालकस्य जनकः सम्भवतीति निश्चिन्वाना वदति-शृणोतु = आकर्णयतु महाराजः = श्रीमान्, एषा अपराजिता नाम औषधिः अस्य-बालकस्य जातकर्मसमये = जातकर्मनामकसंस्कारावसरे भगवता = श्रीमता मारीचेन = मरीचिपुत्रेण कश्यपेन दत्ता = समर्पिता । एतामोषधिं किल = खलु मातापितरौ = जननीजनकौ आत्मानं स्वं च वर्जयित्वा = त्यक्त्वा अपरः = अन्यः भूमौ = पृथिव्यां पतितां=निहितम् नादत्ते = न गृह्णाति । भूमिपतिते मातापितृभ्यामात्मना च ग्रहीतुं शक्यते नेतरेणेति भावः । जातकर्मसंस्कारो नामिकर्तनात् पूर्वं क्रियते । तथाहि—

प्राङ्नाभिकर्तनात् पुंसो जातकर्म विधीयते ।
मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥

**राजा**—अथ गृह्णाति = यदि अन्यः कश्चन गृह्णाति तर्हि किं स्यादित्यर्थः ।

---

**दोनों तापसी**—अरे आप इसे मत छूइए, मत छुइए ( देखकर ) क्या इसे इन्होंने उठा लिया ? **( ऐसा कहकर दोनों तापसियाँ आश्चर्य से छाती पर हाथ रखकर परस्पर देखती हैं । )**

**राजा**—आप लोगों ने इस यंत्र को उठाने में मुझे क्यों रोका था ?

**पहली तापसी**—महाराज ! सुनें, यह अपराजिता नामकी महाप्रभावशाली दिव्य महौषधि है । यह इस बालक के जातकर्म के समय पूज्य कश्यपजी ने इसके हाथ में बाँध दी थी । इसको भूमि पर गिर जाने पर, या तो स्वयं बालक अथवा इस बालक के माता-पिता हो इसे उठा सकते हैं, अन्य कोई नहीं उठा सकता ।

**राजा**—यदि इसे कदाचित् कोई अन्य उठा ले, तो क्या होता है ?

प्रथमा--तदो तं सप्पो भविअ दंसइ। [ ततस्तं सर्पो भूत्वा दशति। ]

राजा--भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया ?

उभे--अणेअसो [ अनेकशः ]।

राजा--( सहर्षं आत्मगतम् ) कथमिव संपूर्णमपि मे मनोरथं नाभिनन्दामि। ( इति बालं परिष्वजते )

द्वितीया:--सुव्वदे ! एहि ! इमं वुत्तंतं णिअमव्वावुडाए सउंदलाए णिवेदेम्ह। [ सुव्रते एहि। इमं वृत्तान्तं नियमव्यापृतायै शकुन्तलायै निवेदयावः। ] ( इति निष्क्रान्ते )

बालः--मुञ्च मं। जाव अज्जाए सआसं गमिस्सं। [ मुञ्च माम्। यावन्मातुः सकाशं गमिष्यामि। ]

---

प्रथमा--ततः तं = ग्रहीतारं सर्पो भूत्वा दशति, एषा औषधिः भूमिपतिता यदि अन्येन गृह्यते तर्हि सैव सर्पो भूत्वा तं दशतीत्यर्थः।

राजा--भवतीभ्यां युवाभ्यां कदाचित् = जातुचित्, अस्याः विक्रिया = सर्पत्वे परिणतिरूपो विकारः = परिवर्तनम्, प्रत्यक्षीकृता = साक्षात् दृष्टा किम् ?

उभे--अनेकशः = बहुशः बहुषु कालेषु अस्या औषधेः = विक्रिया प्रत्यक्षीकृतेत्यर्थः।

राजा--अथौषधिविक्रियाभावदयं शिशुः ममैवौरस इति निश्चिन्वानः पौरवो राजा दुष्यन्तः सहर्षमात्मगतं विचिन्तयति--कथमिव = किमिव सम्पूर्णमपि मे मनोरथम् = समस्तमपि निजं मनोऽभिलाषम् अनुरूपपुत्रलाभरूपं नाभिनन्दामि = न सम्भावयामि न प्रशंसामि ? अनुचितमेतत् सर्वथाऽभिनन्दनीयमेव पुत्रं प्राप्तवानस्मीतिभावः ( इति एवमुक्त्वा ततो बालं = शिशुं परिष्वजते = आलिङ्गति बालपरिष्वङ्गेनानन्दमनुभवति। )

द्वितीया--सुव्रते ! एहि = आगच्छ, इमं = पूर्वोक्तं वृत्तान्तं, नियमव्यापृतायै नियमे-पूजादौ वियोगिनीव्रते च व्यापृतायै प्रसक्तायै = रतायै शकुन्तलायै प्रियसख्यै निवेदयावः = सूचयावः ( इति--एमुक्त्वा ततो निष्क्रान्ते = निर्गते )।

बालः--राज्ञा दुष्यन्तेन परिष्वक्तो बालो राजनं वदति--मुञ्च = त्यज मां यावत् मातुः = जनन्या सकाशं = समीपे गमिष्यामि = यास्यामि।

---

पहली तापसी--तो यह महौषधि सर्प होकर उसे डस लेती है।

राजा--क्या इस बात की कभी आप लोग ने मेरे सिवा कहीं अन्यत्र परीक्षा की है।

दोनों तापसी--एक बार नहीं, किन्तु अनेकों वार हम लोग इस बात की परीक्षा कर चुकी हैं। जब-जब किसी दूसरे ने उठाया है तब-तब इस महौषधि ने सर्प बनकर उसे काट लिया है।

राजा--( हर्षपूर्वक मन ही मन ) तब तो मैं अपने पूर्ण हुए मनोरथ ( = शकुन्तला और अपने पुत्र की प्राप्ति ) का अभिनन्दन = प्रशंसा क्यों न करूँ। ( बालक को उठाकर अपनी छाती से लगाता है। )

दूसरी तापसी--सुव्रते ! आओ चलें और अपराजिता महौषधि आदि के इस वृत्तान्त को नियमव्रतशीला तपस्विनी शकुन्तला को जाकर सुनायें ( ऐसा कहकर दोनों चली जाती हैं )

विशेष--यहां 'नियम व्यापृतायै' पद से व्यक्त होता है कि शकुन्तला अबतक अपने पति दुष्यन्त की प्राप्ति के लिए हमेशा प्रयास करती थीं।

बालक--मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो, मैं तो अपनी माता के पास जाऊँगा।

राजा—पुत्रक ! मया सहैव मातरमभिनन्दिष्यसि ।

बालः—मम खु तादो दुस्सदो । ण तुमं । [ मम खलु तातो दुष्यन्तः । न त्वम् ]

राजा—( सस्मितम् )—एष विवाद एव प्रत्याययति ।

( ततः प्रविशत्येकवेणीधरा शकुन्तला )

शकुन्तला—विआरकाले वि पकिदित्थं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसा आसि अत्तणो भाअहेएसु । अहा जह साणुमदीए आचक्खिदं तह संभावीअदि एदं । [ विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न मे आशासीदात्मनो भागधेयेषु । अथवा यथा सानुमत्याख्यातं तथा संभाव्यत एतत् । ]

---

राजा—पुत्रक ! आयुष्मन् ! मया सह = साकमेव मातरं स्वस्य जननीं अभिनन्दयिष्यसि = मया सहैव मातुः सकाशं गमिष्यसि, न तु एकल इत्यर्थः ।

बालः—राज्ञा पुत्रक इत्यामन्त्रितो बालः तं पुनर्वदति—मम खलु तातः = पिता दुष्यन्तः न त्वम्—अहं हि दुष्यन्तस्य पुत्रोऽस्मि स एव मां पुत्रक इति आमन्त्रयितुं शक्नोति, न त्वमित्यर्थः ।

राजा—बालकस्य वचनेन प्रहृष्टो राजा सस्मितमाह—एष विवाद एव विरुद्धो वादः विवादः-पुत्रक इत्यामन्त्रणस्य विरुद्धः प्रतिवादः प्रत्याययति = प्रत्ययं जनयति मम खलु तातो दुष्यन्त इति स्पष्टोक्तेः प्रत्यय इत्यर्थः ।

( ततः = तदनन्तरं, पश्चात् एकवेणीधरा = एकस्या वेण्याः धरा एकवेणीधरा एकामेव वेणीं धारयन्ती शकुन्तला प्रविशति = रङ्गमञ्चे दृश्यते । प्रोषितभर्तृकायाः एकवेणीधारणमाचारः, विरहचिह्नमिदम् )

शकुन्तला—अथ सानुमत्या कथितेन वृत्तान्तेन किञ्चिदाश्वस्ता पुनः तापसीभ्यां निवेदितं वृत्तान्तं निशम्य शकुन्तला चिन्तयति—विकारस्य = परिवर्तनस्य कालेऽपि समयेऽपि विकारयोग्यकालेऽपि सर्वदमनस्यौषधिं सर्वदमनस्य = शिशोः ओषधिं रक्षाकरण्डकवर्तिनीम् अपराजितां प्रकृतिस्थाम् = अविकाराम् श्रुत्वापि = आकर्ण्यापि तच्छ्रवणेन भर्त्रागमने

---

राजा—प्यारे बेटे ! मेरे साथ ही अपनी माता के पास चलकर उसे अभिनन्दित करना ।

बालक—मेरे पिता तो राजा दुष्यन्त हैं, तुम नहीं ?

राजा—( मुस्कराकर ) यह विवाद ही मुझे विश्वास दिलाता है कि मैं ही तेरा पिता दुष्यन्त हूँ ।

विशेष—इसके पहले नाम वृत्तान्त, आदि प्रमाणों में कुछ शङ्का का अवसर था, किन्तु सर्वदमन ने अब दुष्यन्त को अपना पिता बताकर उनके संदेह का सर्वथा निराकरण कर दिया । अनन्तर राजा ने उसे पुत्रक सम्बोधन कर अपना लिया ।

( तदनन्तर एक चोटी को धारण की हुई शकुन्तला प्रवेश करती है )

विशेष—भारतीय धर्मशीला नारियों की यह प्रथा है कि वे अपने पति के वियोग में एक ही चोटी धारण करती हैं । इस प्रकार शकुन्तला का एक चोटी धारण करना दुष्यंन्त के विरह का प्रतीक है ।

शकुन्तला—परिवर्तन के अवसर पर सर्वदमन की औषधि को अविकृत सुनकर भी मुझे अपने भाग्य पर ऐसी आशा न थी कि पतिदेव मुझे खोजते हुए कभी यहाँ आयेंगे अथवा जैसा सानुमती के द्वारा कहा गया था, उससे यह संभव भी है । अर्थात् माता-पिता के अतिरिक्त उठाये जाने पर सर्प हो जाने वाली सर्वदमन के हाथ में बँधी हुई अपराजिता महौषधि उठाने पर भी

**राजा**—( शकुन्तलां विलोक्य )—[1]अये [2]सेयमत्रभवती शकुन्तला यैषा—

**वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः ।**
**अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिर्भात ॥ २१ ॥**

---

निश्चितेऽपि आत्मनः=स्वस्य भागधेयेषु=भाग्येषु मे=मम आशा=सम्भावना नासीत् अथवा=पक्षान्तरे मे आशास्थानमस्ति यथा=यत् सानुमत्या=सानुमती नामकाप्सरसा आख्यातं=कथितं तथा तत् सम्भाव्यते=सम्भवम् एतत्=पुरो दृश्यमानम् भर्तृस्वीकरणम् ।

शकुन्तलामालोकयन् राजा प्राह—अये=अहो सा=पूर्वानुभूता इयं=एषा पुरोदृश्यमाना अत्रभवती=मान्या शकुन्तला या एषा=पुरतः, शकुन्तलां वर्णयति—**वसन इति ।**

**अन्वयः**—( या एषा ) परिधूसरे वसने वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणी सा इयं शुद्धशीला शकुन्तला अतिनिष्करुणस्य मम दीर्घविरहव्रतं बिर्भात ।

उपस्थितां शकुन्तलामालोक्य नृपतिर्दुष्यन्तो निजमनसि विमृशति—**वसने परिधूसरे वसानेति ।** या एषा दृश्यमाना परितः=सर्वतः धूसरे इति परिधूसरे=मलिने वसने=द्वे वस्त्रे उत्तरीयोपसंव्याने, अधरोत्तरवस्त्रे वस्त्रयुगलं वसाना=परिदधाना नियमक्षाममुखीनियमैः=व्रताङ्गैः उपवासादिभिः क्षामं मुखं=वदनं यस्याः सा नियमक्षाममुखी, व्रतनियमाचरणादिशुष्कवदना धृता एका वेणी यया सा धृतैकवेणिः। एकवेणीधारिणी जटीभूतकेशधारिणी अत्रविशेषणत्रयेण विरहव्रतस्वरूपमुक्तम् । इतोमुखमागच्छन्ती सा इयं शुद्धशीला—शुद्धं निष्कलङ्कं शीलं स्वभावो यस्याः सा शुद्धशीला=साध्वी सदाचारा शकुन्तला=मुनिदुहिता अतिनिष्करुणस्य=अतिनिर्दयस्य सुतरां क्रूरस्य मम दीर्घविरहव्रतं दीर्घं=बहुकालं विरहस्य व्रतं विरहोचितमाचारं बिर्भात=धारयति ।

**अयं भावः—**परिधूसरं युगलवस्त्रं परिदधानां व्रतनियमादिभिकृशाङ्गीं केवलामेक-

---

विकृत नहीं हुई यह बात सुनकर भी मुझे अपने भाग्य पर भरोसा नहीं था कि आर्यपुत्र मुझे लेने के निमित्त स्वयं आये हैं अथवा सानुमती ने जो मुझे उनके पश्चात्ताप तथा विरहदशा का जो वृत्तान्त सुनाया था, उससे तो यह बात सम्भव भी हो सकती है ।

**राजा—( शकुन्तला को देखकर )** हाँ, यही वह माननीया शकुन्तला है, जो मैले-कुचैले पुराने कपड़े पहने हुए नियमों के पालन से क्षीण और उदास मुखवाली एक वेणी को धारण किये हुए शुद्धशीला, करुणाशून्य, अत्यन्त, निर्दयी मेरे लिए मेरे ही कारण से इस प्रकार विरहिणी व्रत का पालन कर रही है ॥ २१ ॥

**विशेष**—प्राचीन भारत से विरहिणी स्त्रियाँ अपने पति के वियोग में न तो आकर्षक वस्त्र पहनती थीं, न शरीर का प्रसाधन ही करती थीं । वे अपने शिर के बालों को दो नहीं एक ही चोटी बनाती थीं, तप, व्रत, उपवास आदि के द्वारा अपने शरीर को कृश बना डालती थीं । इससे उनकी प्रबल पतिभक्ति को सूचना मिलती थीं । पति के स्थायी विरह में भी श्रृंगार न करना और एक चोटी ही रखना सती स्त्रियों का व्रत माना गया है । तप में लगा दुःखी व्यक्ति वस्त्र एवं सजावट से विमुख रहता है, जिससे कपड़े गन्दे हो जाते हैं ।

---

पाठा०—१. सहर्षखेदम् । २. इयमत्रभवती ।

**शकुन्तला**—( पश्चात्तापविवर्णं राजानं दृष्ट्वा )—ण खु अज्जउत्तो विअ। तदो को एसो दाणिं किदरक्खामंगलं दारअं मे गत्तसंसग्गेण दूसेदि। [ न खल्वार्यपुत्र इव। ततः क एष इदानीं कृतरक्षामङ्गलं दारकं मे गात्रसंसर्गेण दूषयति ]

**बालः**—( मातरमुपेत्य ) अज्जुए ! एसो कोवि पुरिसो मं पुत्त त्ति आलिंगदि। [ मातः ! एष कोऽपि पुरुषो मां पुत्र इत्यालिङ्गति। ]

**राजा**—प्रिये क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तमनुकूलपरिणामं संवृत्तम्, यदहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातमात्मानं पश्यामि।

---

वेणीं धारयन्ती सरलस्वभावां शकुन्तलामालोक्य राजा दुष्यन्त आत्मनोऽतिनिर्दयत्वं विचारयति। एतादृशीयमतिकठोरहृदयस्यैव मम कारणादेतादृशं विरहिणीव्रतं बिभर्तीति नूनमहं सापराध इति भावः। अत्र स्वभावोक्तिकाव्यलिङ्गालङ्कारौ मालाभारिणी वृत्तञ्च ॥२१॥

**शकुन्तला** —( पश्चात्तापेन विवर्णं राजानं दृष्ट्वा वदति-- ) न खलु निश्चयेन आर्यपुत्रः = स्वामी इव = यथा ततः = तर्हि क एषः=कोऽयं इदानीम्=अधुना कृतरक्षामङ्गलं= कृतं विहितं रक्षारूपं मङ्गलं शुभं यस्य स तम् कृतरक्षामङ्गलम् = विहितरक्षासंस्कारविशेषम् मे दारकं = मम पुत्रकं गात्रस्पर्शेन = स्वशरीरसम्पर्केण आलिङ्गनेन दूषयति = कलुषी करोति।

**बालकः**—( मातरमुपेत्य वदति ) मातः ! = जननि ! एषः = अयं मत्समीपे स्थितः कोऽपि अज्ञातः पुरुषः = नरः मां पुत्र इति=सुत इत्येवं मत्वा आलिङ्गति = परिष्वजते।

**राजा**—प्रिये ! = दयिते ! त्वयि = त्वां प्रति प्रयुक्तम्=त्वामधिकृत्य कृतम् आचरितं क्रौर्यमपि = निर्दयतापि अनुकूलपरिणामं अनुकूलः = सरसः परिणामः = विपाकः यस्य तत् अनुकूलपरिणामं = अभीष्टफलप्रदम्, संवृत्तम् = जातम् प्रत्याख्यानं पश्चात्तापतया परिणतं यत् अहं इदानीम् = अधुना त्वया = भवत्या प्रत्यभिज्ञातं=सस्मृतं परिचितम् (ननु निराकृतम् ) आत्मानं = स्वं पश्यामि = विलोकयामि। साधु ते शीलं यन्मया विमानितापि मयि न विरक्तासीदितिभावः।

---

**शकुन्तला**—( पश्चात्ताप के कारण विवर्णवदन कान्तिहीन राजा को देखकर ) यह तो आर्यपुत्र नहीं प्रतीत होते हैं, तो फिर वह कौन पुरुष है जो रक्षाविधान से रहित मेरे पुत्र को अपनी गोद में लेकर अपने शरीर सम्पर्क से अपवित्र कर रहा है ?

**बालक**—( अपनी माता के पास जाकर ) माँ यह कौन है जो मुझे पुत्र, पुत्र कहकर बड़े प्रेम से अपनी छाती से लगा रहा है ?

**राजा**—प्रिये ! मैंने तुम्हारे साथ जो क्रूरता का व्यवहार किया था, उसके अनुरूप ही यह परिणाम हुआ है अर्थात् उस समय जैसे मैंने तुझे नहीं पहचाना था उसी प्रकार अब तुम भी मुझे नहीं पहचान रही हो। अतः अब तो मुझे पहचानो, मैं वही दुष्यन्त हूँ, जिसने उस समय तुम्हारा प्रत्याख्यान किया था, अब मैं ही तुमसे स्वीकार करने की प्रार्थना करता हूँ।

**विशेष**—तात्पर्य यह है कि अब पवित्र हृदय से राजा दुष्यन्त का कहना है कि प्रिये, मैंने तेरे साथ बड़ी ही क्रूरता की थी, निर्दय बनकर तुम्हें छोड़ दिया, किन्तु इस क्रूरता का भी परिणाम उत्तम हुआ है। नियम संयम के पालन से तुम्हारा जीवन परम पवित्र हो गया, तुम पतिव्रता सिद्ध हो गई हो, महर्षि के पावन आश्रम में पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ, और उसके बालसंस्कार यहाँ पवित्र ऋषियोंके हाथों सम्पन्न हुआ ? और ऋषियों के अमोघ आशीर्वाद से बालक को अप्रतिम तेज मिला।

शकुन्तला—( आत्मगतम् )—हिअअ अस्सस अस्सस। परिच्चत्तमच्छरेण अणुअप्पिअम्हि देवेण। अज्जउत्तो खु एसो। [ हृदय आश्वसिहि आश्वसिहि। परित्यक्तमत्सरेणानुकम्पितास्मि दैवेन। आर्यपुत्रः खल्वेषः। ]

राजा—प्रिये।

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्॥ २२॥

---

शकुन्तला—हृदय ! आश्वसीहि, आश्वसीहि = धैर्यं धारय, धैर्यं धारय परित्यक्तः = परिहृतः विसृष्टः मत्सरः = मच्छुभद्वेषः असूया येन स तेन परित्यक्तमत्सरेण दैवेन = विधिना अनुकम्पितास्मि = दयापात्रीकृतास्मि। एषः = अयं खलु = नूनम् आर्यपुत्रः = स्वामी। पूर्वं यो हि विधिः वामो भूत्वा आर्यपुत्रेण सह मम संगतिं न सेहे, स एवाद्य सदयो भूत्वा तमिह समानीय मया सार्द्धं योजितवानिति भावः।

अन्वयः—हे समुखि ! दिष्ट्या स्मृतिभिन्नमोहतमसः मे प्रमुखे स्थितासि। शशिनः उपरागान्ते रोहिणी योगं समुपगता॥ २२॥

अथ राजा पूर्ववृत्तविस्मरणात् मया त्वयि क्रौर्यमाचरितमिति वदन् तामावर्जयितुं वदति—स्मृतीति = हे सुमुखि सुष्टु = शोभनं मुखं = वदनं यस्याः सा सुमुखी तत्सम्बुद्धौ हे सुमुखि ! = हे प्रसन्नवदने प्रिये ! दिष्ट्या = सौभाग्येन स्मृतिभिन्नमोहतमसः—स्मृत्या = स्मरणे भिन्नं = दूरीकृतं मोह एव तमः = अज्ञानं यस्य स तस्य स्मृतिभिन्नमोहतमसः स्मरणापगतमोहान्धकारस्य मम = दुष्यन्तस्य प्रमुखे = संमुखे स्थितासि तव योगो मम जात इति भावः। शशिनः = चन्द्रमसः उपरागः = राहुग्रसनं तस्यान्ते = निवृत्तौ उपरागान्ते = ग्रहणान्ते रोहिणीयोगं रोहिण्याः योगो रोहिणोयोगः तं रोहिणियोगम् = रोहिणीनक्षत्रसंयोगं भर्तृसान्निध्यरूपं सम्बन्धं समुगता = प्राप्ता।

अयं भावः—प्रिये पुरा मोहान्धेन मया संमुखमागतापि मम कठोरहृदयतया त्वं निराकृता। सांप्रतं सौभाग्यमहिम्ना स्मरणेन मे मोहोऽपगतः। यथा दुष्टेन राहुणा ग्रहेण ग्रस्तश्चन्द्रमाः दक्षपुत्र्या स्वप्रियया रोहिण्या वियुज्यते, मुक्तश्च पुनः तया संयुज्यते तथैवाहं निर्मलमानसोऽपि प्राक् मोहान्धकारेणाच्छन्नः सौभाग्येनाधुना मुक्तः पुनस्त्वया सह संयुक्तो जात इति ग्रहणावसाने चन्द्रमसः स्वकान्तया रोहिण्या सह सम्बन्ध इव मया सह त्वत्समागमोऽयमिति भावः। अत्र निदर्शनदृष्टान्तालङ्कारौ आर्या वृत्तञ्च॥ २२॥

---

शकुन्तला—( मन ही मन ) हृदय ! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो, भाग्य ने अब द्वेषभाव को छोड़कर मेरे ऊपर अनुकम्पा की है, ये पतिदेव ही हैं।

राजा—हे प्रिये ! शोभनवदने !

सौभाग्य से स्मरण हो आने के कारण समाप्त अज्ञान रूपी अन्धकार वाली आज मेरे समक्ष खड़ी हो, जैसे ग्रहण के पश्चात रोहिणी चन्द्रमा से मिल जाती है, वैसे मेरे अज्ञान दूर हो जाने पर तेरा समागम उचित ही है॥ २१॥

शकुन्तला—जेदु जेदु अज्जउत्तो···। [ जयतु जयत्वार्यपुत्रः··· ] ( इत्यर्द्धोक्ते बाष्पकण्ठी विरमति )।

राजा—सुन्दरि !

बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया।
यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलोष्ठपुटं मुखम् ॥ २३ ॥

---

शकुन्तला—जयतु जयतु आर्यपुत्रः = सर्वोत्कर्षेण वर्ततात्म् आर्यपुत्रः = स्वामी ( इति = इदम् अर्द्धोक्ते अर्द्धम् = अपूर्णमेव उक्ते = कथिते बाष्पकण्ठी = दुःखज उष्मा—वाष्पः कण्ठे = गले यस्याः सा बाष्पकण्ठी विरमति बाष्पोद्गमः स्मर्यमाणस्य दुःखस्य, अनुभूतमानस्यानन्दस्य चानुभावः।

राजा दुष्यन्तश्चार्द्रोक्तिं कुर्वाणः शकुन्तलामभिधत्ते—सुन्दरि ! = हे सुमुखि।

अन्वयः—जय शब्दे बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि मया जितम्। यत् असंस्कारपाटलोष्ठपुटं ते मुखं दृष्टम्।

बाष्पासन्नकण्ठीं तत्क्षणविशेषदृश्यां शकुन्तलामालोक्य नृपो दुष्यन्तः तां प्रियां चाटुभिः प्रीणयन् अभिधत्ते—बाष्पेणेति। हे सुन्दरि ! जयशब्दे = जयस्य शब्दे राज-सन्निधौ उच्चारणीये जयतु जयतु इति शब्दे बाष्पेण = दुःखजोष्मणा प्रतिषिद्धेऽपि अव-रुद्धेऽपि स्पष्टमनुच्चारितेऽपि मया जितं = मया ऋद्धिः प्राप्ता विजयो मे जातः जयशब्दे प्रतिषिद्धेऽपि तदर्थो मया लब्ध इत्यर्थः कुत इति चेत्—यत् = यस्मात् असंस्कारपाटलोष्ठ-पुटम् संस्कारः = अलंकारादिना रञ्जनं तस्याभावात् = असंस्कारात् पाटलन् ईषद्रक्तं यद्वा असंस्कारेऽपि पाटलं स्वभावाद्रक्तम् ओष्ठयोः पुटं यस्मिस्तत् असंस्कारपाटलोष्ठ-पुटम् = अकृत्रिममनोहरम्, अकृत्रिमारुणप्रभोद्भासितोष्ठपुटललितं यद्वा असंस्कारमलिन-वर्णोष्ठपुटम् ते = तव मुखं = वदनं दृष्टम् = मया आलोकितम्।

अयं भावः—हे प्राणप्रिये ! प्रवर्द्धमानेन बाष्पोद्गारेण कण्ठप्रतिरोधात् भवत्यो-च्चार्यमाणे जयशब्देऽपि मया तदर्थोऽवगतः। यस्मात् मन्निमित्तविरहधारणाद अकृत्रि-मारुणप्रभाभासितमलिनवर्णोष्ठपुटं त्वदीयं मुखमालोक्य कृतार्थोऽस्मि। धन्योऽहं यदीदृशं मां कठोरहृदयमुद्दिश्य भवती दीर्घं विरहव्रतं विभर्ति। तस्मात् त्वदाननावलोक-नात्परं को नाम मम विजयः संभवति। अत्र विरोधाभास-काव्यलिङ्ग-विभावनालङ्कारा अनुष्टुप् छन्दश्च ॥ २३ ॥

---

शकुन्तला—आर्य-पुत्र विजयी बनें। ( ऐसा आधा ही कहने पर आँसू से गला भर जाने के कारण चुप हो जाती है। )

राजा—सुन्दरि !

जय शब्द से आँसू से रोक लिए जाने पर भी मेरे द्वारा विजय हासिल कर लिया गया, क्योंकि बिना प्रसाधन के भी रक्त होठों से युक्त तुम्हारा मुख देख लिया गया ॥ २३ ॥

विशेष—दुष्यन्त के कहने का तात्पर्य है कि जब तुम हमारे लिए जय शब्द कह रही थी, तब उस समय आँसुओं से तुम्हारा गला भर आया था और तुम अपना वाक्य पूरा न कर सकी।

बालः—आज्जुए को ! एसो । [ मातः ! क एषः । ]

शकुन्तला—वच्छ ! दे भाअहेआइं पुच्छेहि । [ वत्स ! ते भागधेयानि पृच्छ । ]

राजा—( शकुन्तलायाः पादयोः प्रणिपत्य )

सुतनु ! हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत् ।
प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु प्रवृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया ॥ २४ ॥

---

निजजनन्या साकं संलपन्तं दुष्यन्तं दृष्ट्वा सर्वदमनो स्वमातरं शकुन्तलां पृच्छति—मातः = हे जननि ! एषः = अयं कः ?

शकुन्तला—वत्स ! = आयुष्मन् ! ते = तव स्वस्य भागधेयानि = भाग्यं पृच्छ—अत्र क एष इत्यस्योत्तरं ते भाग्यमेव दातुं प्रभवति, प्रत्यादिष्टाहं कथं ब्रूयां क एष इति। यदि त्वं सम्राट्सुतः चक्रवर्ती भवेरिति ते भाग्यं तदा अयं ते पिता इति वक्तुं न्याय्यम्। अथेदृशं ते भाग्यं यदिहैव वने वसन् तपश्चरिष्यसि तदा धराधिपोऽयं दुष्यन्त इत्येवास्य पर्याप्तः परिचयः । अथवा येषां फलमस्य दर्शनं लाभः तानि भाग्यानि पृच्छ यद्वा एनं पृच्छेत्यर्थः ।

राजा—( शकुन्तलायाः पादयोः प्रणिपत्य ) इदं परित्यागपरिहारार्थं प्रणिपतनम् ।

अन्वयः—हे सुतनु ! ते हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीकम् अपैतु । तदा किमपि बलवान् मे मनसः सम्मोहः अभूत् । शुभेषु प्रबलतमसां प्रवृत्तयः एवं प्रायः । हि अन्धः शिरसि क्षिप्तां स्रजमपि अहिशङ्कया धुनोति ॥ २४ ॥

शकुन्तलाहृदयात् निराकरणदुःखं दूरीकर्तुं प्रयतमानो नृपो दुष्यन्तः तां प्रियां शकुन्तलामनुनयन्नाह—सुतनु इति । सुशोभना तनुर्यस्या सा सुतनूः तत्सम्बुद्धौ हे सुतनु= हे शोभनाङ्गि ते = तव हृदयात् = मनसः प्रत्यादेशव्यलीकं प्रत्यादेशात् = प्रत्याख्यानात् जातं यत् व्यलीकं = अप्रियं तत् प्रत्याख्यानव्यलीकम् = मत्कृतप्रत्याख्यानजनिताप्रीतिः "व्यलीकं त्वप्रियेऽनृते", इत्यमरः । उपैतु = दूरीभवतु । तदा प्रत्याख्यानकाले त्वदागमनकाले किमपि = कुतोऽप्यनिर्वचनीयकारणात् बलवान् = अधिकः मे = मम मनसः = हृदयस्य सम्मोहः = आज्ञानं, विस्मृतिः अभूत् = जातः । शुभेषु = श्रेयस्साधनेषु प्रबलतमसां प्रबलं = अधिकं तमः = तमोगुणः येषां ते तेषां प्रबलतमसां बलवद-

---

बालक—माँ यह कौन है ?

शकुन्तला—बेटा, अपने भाग्य से पूछो !

राजा—( शकुन्तला के पैर पर गिरकर )

हे सुन्दरि अब तुम्हारे हृदय से मेरे द्वारा किये गये अप्रिय परित्याग का दुःख निकल जाना चाहिए । उस समय मेरे मन में अद्भुत प्रबल अज्ञान उत्पन्न हो गया था, क्योंकि मङ्गलप्रद वस्तुओं के विषय में प्रबल तमोगुणवालों की प्रवृत्तियाँ इसी तरह होती हैं । अन्धा व्यक्ति शिर में पहिनाई हुई पुष्प-माला को सर्प की आशङ्का से झटक कर दूर फेंक देता है । अतः अब तुम अपने मन से उसे बिल्कुल निकाल दो और उसे भूल जाओ ॥ २४ ॥

विशेष—इस पूरे पद्य में क्षमा की प्रार्थना है । अज्ञान के कारण ही वैसा हुआ जानबूझ कर नहीं । अब यह अज्ञान चला गया । अज्ञान में मनुष्य शुभ को भी अशुभ ही समझता है । अज्ञान

शकुन्तला—उट्ठेदु अज्जउत्तो। णूणं मे सुअरिअप्पडिबंधअं पुराकिदं तेसु दिअहेसु परिणाममुहं आसि जेण साणुक्कोसो वि अज्जवुत्तो मइ विरसो संवुत्तो। [ उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः। नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणाममुखमासीद्येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्तः। ]

( राजोत्तिष्ठति )

शकुन्तला—अह कहं अज्जउत्तेण सुमरिदो दुक्खभाई अअं जणो। [ अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतो दुःखभाग्ययं जनः। ]

---

ज्ञानावृतमनसां शुभेषु=स्वशुभप्रदेष्वपि वस्तुषु वृत्तयः=मनोवृत्तयः एवं प्रायाः= शुभत्यागरूपा भवन्ति। हि=यतः अन्धः=चक्षुर्हीनः शिरसि मस्तके क्षिप्तां=परिधापितां स्रजमपि=सुरभिपुष्पमालामपि अहिशङ्कया=सर्पभ्रान्त्या धुनोति=तिरस्करोति शिरसो व्यस्यति।

अयं भावः—हे शशाङ्कतिलके प्रिये! प्राक् मत्कृतनिराकृतिदुःखं स्वहृदयात् निष्कासनीयम्, यतो मया जानता तन्न कृतम्। तदानीं काले मम हृदये ( सुलभकोपात् महर्षें दुर्वाससः शापात् ) प्रबलः सम्मोह आसीत्। इदानीमङ्गुलीयकदर्शनेन सो व्यपगतः। यथा नेत्रहीनः पुमान् केनापि पुंसा निजगले निहितां सुरभिपुष्पमालामपि सर्पस्याशङ्कया स्वकीयाद् गलान्निस्सार्य दूरमुत्क्षिपति तथैव पूर्वं ते प्रत्याख्यानकाले स्मृतिहीनेन मया स्वयमुपस्थितापि त्वं प्रत्याख्याता। अतो मया महद्दुःखमनुभूतमत्यन्तं क्लेशिता च भवती। तदेतत्सर्वमजानता कृतं मत्वा क्षम्यतामिति तात्पर्यम्। अत्राप्रस्तुतप्रशंसा-भ्रान्तिमत्-काव्यलिङ्ग-दृष्टान्ताऽलङ्काराः हरिणीवृत्तं च॥ २४॥

शकुन्तला—आर्यपुत्र=स्वामी उत्तिष्ठतु नूनं=निश्चयेन तर्कयामि तेषु दिवसेषु पुराकृतं मे=मम सुचरितप्रतिबन्धकं सुचरितस्य=पुण्यकर्मणः तत्कार्यस्य च सुखस्य प्रतिबन्धकं प्रतिरोधकम् परिणामसुखपाकाभिमुखम् आसीत् येन सानुक्रोशोऽपि सदयोऽपि, सानुरागोऽपि विरसः=अपरक्तः, उदासीनः संवृत्तः=जातः। यदाहं भवता तिरस्कृता तदा मे सुखस्य विलोपि किमप्यदृष्टमेवासीत्; येन पुण्यफलं सुखं निरुद्धम्। इत्थं ममैव पापस्यायं परिणामः, न ते कश्चन दोषः।

( राजा उत्तिष्ठति )

शकुन्तला—अथ कथं=केन प्रकारेण आर्यपुत्रेण=स्वामिना दुखं भजति तच्छीलः दुःखभागी=दुःखभोगशीलः अयं जनः=अहं स्मृतः।

---

से मैं अन्धा हो गया था और अन्धा अच्छी वस्तु को भी शक से बुरी समझता है, जो अन्धे के लिए स्वाभाविक है। जैसे कोई अन्धा व्यक्ति किसी के द्वारा गले में पहनाई हुई माला को साँप समझकर फेंक देता है, उसी प्रकार माला-सी मोहक तुझको मैंने भी छोड़ दिया था।

शकुन्तला—आर्य पुत्र! उठें निश्चय ही पुण्यकर्म का अवरोधक पूर्वजन्म में किया हुआ मेरा पाप उन दिनों फलोन्मुख था, जिससे सहृदय होते हुए भी आर्यपुत्र मुझ पर निर्दय हो गये थे।

( राजा उठता है )

शकुन्तला—मुझ दुःखिया को आर्यपुत्र ने कैसे याद किया? अर्थात् मुझसे किये गये विवाह की बात आपको कैसे याद आ गयी?

**राजा**—उद्धृतविषादशल्यः कथयिष्यामि—

मोहान्मया सुतनु ! पूर्वमुपेक्षितस्ते
यो बाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः ।
तं तावदाकुटिलपक्ष्मविलग्नमद्य
[1]बाष्पं प्रमृज्य विगतानुशयो [2]भवेयम् ॥ २५ ॥

( इति यथोक्तमनुतिष्ठति )

---

**राजा**—उद्धृतविषादशल्यः उद्धृतं=हृदयात् दूरीकृतं उत्खातं विषादरूपं क्लेश-रूपं शल्यम् =शङ्कुर्येन स उद्धृतविषादशल्यः कथयिष्यामि=वदिष्यामि । पूर्वं त्वल्लोचन-परिमार्जनेन सुखितो भूत्वा ततः पश्चात् कथयिष्यामीत्यर्थः ।

**अन्वयः**—हे सुतनु ! यः बाष्पबिन्दुः पूर्वं ते अधरं परिबाधमानः मया मोहात् उपेक्षित आकुटिलपक्ष्मविलग्नं तं बाष्पं अद्य प्रमृज्य विगतानुशयः भवेयं तावत् ॥ २५ ॥

अथ शकुन्तलया स्वस्मरणकारणं पृष्टो नृपतिर्दुष्यन्तो ब्रवीति—**मोहान्मयेति**। हे सुतनु =हे शोभनाङ्गि ! यः =बाष्पबिन्दुः—बाष्पस्य =नेत्रजलस्य बिन्दुः=कणः पूर्वं=प्रत्याख्यानकाले ते=तव अधरं=अधरोष्ठं परिबाधमानः=सर्वतः पीडयन् नेत्रयोः निर्गत्य कपोलावतिक्रम्य अधरे स्थितः मया=परमविवेकना धर्मभीरुणा दुष्यन्तेन मोहात् =अज्ञानात् उपेक्षितः=अपरिमृष्टः आकुटिलपक्ष्मविलग्नं–आकुटिलेषु =इषद्वक्रेषु पक्ष्मसु =नेत्रलोमसु विलग्नं–सम्बद्धं तं तथाभूतं बाष्पं =नेत्रजलबिन्दुम् अद्य=इदानीम् प्रमृज्य =शोधयित्वा विगतानुशयः विगतः=अपगतः अनुशय =पश्चात्तापो यस्य स विगतानुशयः भवेयं =स्याम् ।

**अयं भावः**—प्रिये ! आवयोर्हृदगतः शोकशङ्कु यावन्नोद्ध्रियते तावत् भवत्या स्मरण-कारणं कथयितुं न शक्नोमि । प्रथमं ते अश्रु प्रमृज्य विगतविषादे भूत्वा पश्चात् सकलं वृत्तं कथयिष्यामि अतोऽनुजानीहि मां त्वां बाष्पं परिमर्जितम् । अत्र विशेषोक्ति-व्यतिरेका-नुप्रासा अलङ्कारः वसन्ततिलकावृत्तं च ॥ २५ ॥

( इति =एवमुक्त्वा यथोक्तमनुतिष्ठति =अश्रुपरिमार्जनं करोति )

---

**राजा**—पहले अपने हृदय के काँटे को उखाड़कर पुनः इस बात को तुझसे कहूँगा ।

हे सुन्दरि ! तुम्हारे अधर को पीड़ित करती हुई जो आँसू की बूँदें मेरे द्वारा अज्ञानवश पहले परित्याग के समय उपेक्षित कर दी गई थीं, कुछ तिरछी पलकों में लगी हुई उसी आँसू को पोंछकर सम्प्रति मैं पश्चात्तापविहीन हो जाऊँगा ॥ २५ ॥

**( ऐसा कहकर शकुन्तला के आँसूओं को पोंछता है । )**

**विशेष**—स्मृति क्यों आई ? इसको बताने से पहले अपने हृदयशोक रूपी कांटों को निकालना जरूरी है, तभी शान्ति से कोई बात बतलाई जा सकती है । क्षमा मांगने, आँसू पोछने आदिसे वह कांटा निकलेगा । प्रिये ! निरपराध तुझे त्यागने का मेरे हृदय में बड़ा कष्ट है । यह कष्ट मेरे हृदय में नुकीली कील की भांति गड़ रहा है । पहले तुम मुझे क्षमा कर दो, मेरा कष्ट दूर हो जाय तो, फिर मैं बतलाऊँगा कि मैंने तुझे कैसे याद किया ।

इस पद्य में बाष्प शब्द दो बार आया है । अतः यह खटकता है । यदि चतुर्थचरण के दूसरे बाष्प शब्द के स्थान पर कान्ते संबोधन कर दिया जाय तो अधिक उचित होगा ।

---

पाठा०—१. कान्ते ! प्रमृज्य । २. भवामि ।

**शकुन्तला**—( नाममुद्रां दृष्ट्वा ) अज्जउत्त ! एदं ते अंगुलीअअं [ **आर्यपुत्र ! इदं तेऽङ्गुलीयकम् ।** ]

**राजा**—[1]अस्मादङ्गुलीयोपलम्भात्खलु स्मृतिरुपलब्धा ।

**शकुन्तला**—विसमं किदं णेण जं तदा अज्जउत्तस्स पच्चअकाले दुल्लहं आसि । ( विषमं कृतमनेन यत्तदार्यपुत्रस्य प्रत्ययकाले दुर्लभमासीत् । )

**राजा**—तेन हृयृतुसमवायचिह्नं प्रतिपद्यतां लताकुसुमम् ।

**शकुन्तला**—ण से विस्ससामि । अज्जउत्तो एव्व णं धारेदि । [ **नास्य विश्वसिमि । आर्यपुत्र एवैतद्धारयतु** ]

( ततः प्रविशति मातलिः )

---

अश्रुपरिमार्जनसमये दुष्यन्तस्य हस्तेऽङ्गुलीयकं विलोक्य शकुन्तला तं पृच्छति—आर्यपुत्र !=हे स्वामिन् ! इदं तव करे विद्यमानं ते=तव अङ्गुलीयकं=मुद्रा, कथमागतम् इदन्तु मदङ्गुलौ पूर्वमार्यपुत्रेण परिधपितासीदिति प्रश्नः ।

**राजा**—अस्मात्=अङ्गुलीयोपलम्भात् . अङ्गुलीयस्य=मुद्रायाः उपलम्भात्=धीवर द्वाराऽङ्गुलीयकप्राप्तेः खलु=एव स्मृतिः=स्मरणम् उपलब्धा=प्राप्ता ।

**शकुन्तला**—उपालभते अनेनाङ्गुलीयकेन, विषमं=विसदृशं, कष्टं, कृतमुपस्थापितम्, यत्=यस्मात् प्रत्ययकाले=प्रत्यायनकाले प्रमाणोपस्थापनसमये दुर्लभं=अप्राप्यमासीत्=अभूत् ।

**राजा**—तेन हि=यद्येतेन प्रत्यायनं तर्हि लता=लतेव तन्वी त्वं ऋतुसमवायचिह्नं-ऋतुना=वसन्तेन ( मया ) यः समवायः=पुनः समागमः तस्य चिह्नं=सूचकं कुसुमं=पुष्पं ( इदमङ्गुलीयकम् ) प्रतिपद्यताम्=प्राप्नोतु तन्वीलता ऋतुसमागमचिह्नं पुष्पमिव तन्वङ्गी भवती एवं मत्समागमचिन्हमिदमङ्गुलीयकं धारयतु इत्यर्थः ।

**शकुन्तला**—अस्याङ्गुलीयकस्य तदङ्गुलीयकं न विश्वसिमि=न प्रमाणं मन्ये, पूर्वं प्रत्यायनकाले असान्निध्येन विषमाचरणादिति भावः । अत आर्यपुत्र एव=श्रीमानेव एतत्=अङ्गुलीयकं धारयतु ।

( ततः=तदनन्तरमेव मातलिः प्रविशति )

---

**शकुन्तला**—( **नामाङ्कित अंगूठी के देखकर** ) = आर्यपुत्र क्या यह वहीं अंगूठी है ? जिसे आपने मेरी अंगुली में पहनाया था, जो मेरे हाथ से जल में गिर गई थी ।

**राजा**—हाँ यह वही अंगूठी है और अकस्मात् आश्चर्यजनक रूप से इस अंगूठीकी प्राप्ति से ही वस्तुतः तुम्हारी मुझे याद आ गई ।

**शकुन्तला**—इस अंगूठी ने उस समय बहुत अनुचित किया था, जो कि आपको विश्वास दिलाने से समय मुझे दुर्लभ हो गई थी ।

**राजा**—तो ऋतु के समागम चिह्न स्वरूप लता जैसे पुष्पों को धारण करती है, उसी प्रकार मेरे समागम के फलस्वरूप तुम भी इस अंगूठी को अब पुनः धारण करो ।

**शकुन्तला**—मैं इसका विश्वास नहीं करती, आपही इसे धारण करें ।

**( तदनन्तर मातलि का प्रवेश )**

---

पाठा०—१. अस्मादद्भुतोपलम्भात्खलु ।

**मातलिः**—दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान् वर्धते।

**राजा**—[१]अभूत्संपादितस्वादुफलो मे मनोरथः। मातले! न खलु विदितोऽयमाखण्डलेन वृत्तान्तः स्यात्।

**मातलिः**—(सस्मितम्) किमीश्वराणां परोक्षम्। एत्वायुष्मान्। भगवान्मारीचस्ते [२]दर्शनं वितरित।

**राजा**—शकुन्तले अवलम्ब्यतां पुत्रः। त्वां पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि।

---

**मातलिः**—दिष्ट्या = भागधेयेन, धर्मपत्नी समागमेन = भार्यामिलनेन, पुत्रमुखदर्शनेन = सुताननावलोकनेन च आयुष्मान् = चिरञ्जीवी वर्द्धते = वृद्धि प्राप्नोति।

**राजा**—सम्पादितस्वादुफलः—सम्पादितं = युष्माभिर्दैवेन वा साधितं स्वादु = मधुरं फलं = पुत्रकलत्रञ्च यस्य स सम्पादितस्वादुफलः = सञ्जातमधुरफलः मे = मम मनोरथः = अभिलाषः, कामनाऽभूत् = जातः। मातले! = इन्द्रसारथे! अयं वृत्तान्तः मम पुत्रपत्नीसमागमरूपः आखण्डलेन = इन्द्रेण न खलु विदितः स्यात् = मम मनोरथफलावाप्तिराखण्डलेन न वेद्यते किमितिभावः।

**मातलिः**—(सस्मितमाह) ईश्वराणां = प्रभूणां परोक्षकम् = अगोचरम् किम्? विज्ञातमेवेतद् वृत्तान्तेमिन्द्रस्येतिभावः। मारीचाश्रमप्रवेशं सूचयन्नाह—एतु = आगच्छतु आयुष्मान् = चिरञ्जीवी भगवान् मारीचः—पूज्यो मरीचिपुत्रः कश्यपः ते = तुभ्यं दर्शनावसरं वितरति = ददाति।

**राजा**—मातलेर्वचनमङ्गीकुर्वन् राजा दुष्यन्तः शकुन्तलामाह—शकुन्तले! = प्रिये! पुत्रः = स्वात्मजः अवलम्ब्यतां = स्वाङ्के गृह्यताम् त्वां = भवतीम् पुरस्कृत्य = अग्रे निधाय, भगवन्तं = पूज्यं महर्षिकाश्यपं द्रष्टुम् = विलोकितुम् इच्छामि = कामये।

---

**मातलि**—बड़े हर्ष की बात है कि सौभाग्य से आप अपनी धर्मपत्नी को प्राप्तकर अपने औरसपुत्र सर्वदमन के मुख को देखकर आज हर्षान्वित हो रहे हैं। अतः आपको बधाई है।

**राजा**—मातले! मेरे मनोरथ में स्वादिष्ट फल लग गया, इन्द्रसारथे! इन्द्र को तो यह समाचार नहीं विदित होगा?

**बिशेष**—यह प्रसंग परममित्र इन्द्र को भी ज्ञात हो जाय, जिससे उन्हें मेरी खुशी होगी। उनके पास आने से ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ यह राजा दुष्यन्त का सौहार्द है।

**मातलि—(मुस्कराकर)** ऐश्वर्यशालियों के लिए कौन सी बात छिपी हुई है; चिरञ्जीवी, आप आयें पूज्य महर्षि मरीचिपुत्र कश्यपजी ने आपको दर्शन देना स्वीकार कर लिया है।

**विशेष**—मुस्कुरा कर बोलना सौहार्द का चिह्न है। मुस्कराने का दूसरा अभिप्राय है मातलि यह सब सोचकर कि यह सब इन्द्र का ही रचा नाटक है, राजा को पता ही नहीं आनन्द ले रहा है। ब्रह्मपुत्र महर्षि मरीचि की महिमा अद्भुत है, जिससे कश्यप जी के महत्व को बढ़ाने के लिए ही उन्हें मारीच कहा गया है।

**राजा**—प्रिये शकुन्तले! अपने इस पुत्र को अपनी गोद में लेकर मेरे साथ चलो, तुम्हें साथ ले करके ही मैं भगवान् कश्यप जी का दर्शन करना चाहता हूँ।

---

पाठा०—१. सुहृत्सपादितात् साधुतरफलो। २. दर्शनमिच्छति।

**शकुन्तला**—हिरिआमि अज्जउत्तेण सह गुरुसमीवं गंतुं। [ **जिह्नेम्यार्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्।** ]

**राजा**—[1]अप्याचरितव्यमभ्युदयकालेषु। एह्येहि। ( सर्वे परिक्रामन्ति )

( ततः प्रविशत्यदित्या सार्धमासनस्थो मारीचः। )

**मारीचः**—( राजानमवलोक्य ) दाक्षायणि !

**पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी**
**[2]दुष्यन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता।**
**चापेन यस्य विनिर्वर्तितकर्म जातं**
**तत्कोटिमत्कुलिशमाभरणं मघोनः॥ २६॥**

---

**शकुन्तला**—अत्र राजाज्ञानुष्ठानमङ्गीकुर्वाणा शकुन्तला सलज्जमाह—आर्यपुत्रेण = स्वामिना सह = साकम् गुरूणां = पूज्यानां समीपे = सन्निधे गन्तुं = यातुम् जिह्नेमि = लज्जे।

**राजा**—शकुन्तलाया लज्जां परिहरन् दुष्यन्तः प्राह—अभ्युदयकालेषु = मङ्गलोत्सवादिसमयेषु आचरितव्यमपि = कर्तव्यमेव। एहि = आगच्छ। आभ्युदयिककालेषु भर्त्रा सह गुरुसाक्षात्करणमाचार एवेति तत्र लज्जाकरणमनुचितमेवेति भावः ( सर्वे सकलाः जनाः परिक्रामन्ति मण्डलानि कृत्वा गच्छन्ति )।

( ततः पाश्चात् प्रविशति रङ्गमञ्चे दृश्यते अदित्या पत्न्या सार्धं सहैव आसनस्थः = आसने उपविष्टः मारीचः = मरीचिपुत्रः महर्षिः कश्यपः )।

**मारीचः**—अथ अदित्या भार्यया सहासने समासीनः महर्षिः कश्यपः राजानं दृष्ट्वा स्वपत्नीं दक्षपुत्रीमदितिं कथयति—पुत्रस्येति।

**अन्वयः**—अयं दुष्यन्तः इत्यभिहितः भुवनस्य भर्ता ते पुत्रस्य रणशिरसि अग्रयायी- ( अस्ति ) यस्य चापेन विनिर्वर्तितकर्म ( सत् ) कोटिमत् तत् कुलिशं मघोनः आभरणं जातम्।

स्वभार्यया दक्षपुत्र्या अदित्या साकमासने समासीनः परिसमाप्ताह्निककृत्यो महर्षिः कश्यपः नृपतिं दुष्यन्तं दृष्ट्वा तत्प्रभावं वर्णयन्नदितिं प्रत्याह—पुत्रस्येति। अयं = एषः पुरोदृश्यमानो जनः दुष्यन्त इत्यभिहितः—दुष्यन्त इति नाम्ना प्रसिद्धः दुष्यन्तनाम-

---

**शकुन्तला**—आर्य पुत्र, मुझे तो आपके साथ गुरुजनों के पास जाते हुए लज्जा आ रही है।

**राजा**—उत्सव और आनन्द के समय तो पति पत्नी को साथ ही गुरुजनों का दर्शन करना चाहिए, अतः तुम भी मेरे साथ चलो। ( **सभी घूमते हैं।** )

( **अदिति के साथ आसन पर विराजमान मारीच कश्यप जी का प्रवेश** )

**मारीच**—( **राजा को देखकर अपनी पत्नी से** ) दाक्षायणि ! युद्ध में तेरे पुत्र इन्द्र के साथ आगे आगे चलने वाला दुष्यन्त नाम से संसार में प्रसिद्ध पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा तेरे सामने उपस्थित है, जिसके धनुष से ही सम्पादित कृत्यवाला तीक्ष्ण जगद्विदित वज्र इन्द्रका आभूषण बन कर रह गया है॥ १६॥

**विशेष**—महर्षि कश्यप की पत्नी अदितिं प्रजापति दक्ष की पुत्री थीं, इसलिए उन्हें दाक्षायणी कहा गया है—दक्षस्यापत्यं स्त्रीदाक्षायणी तत् सम्बुद्धौ हे दाक्षयणि ! देवराज इन्द्र का वज्र देवशत्रु

---

पाठा०—१. आचरितमेतदभ्युदयकालेषु। २. दुःषन्त।

**अदितिः**—संभावणीआणुभावा से आकिदी। [ संभावनीयानुभावाऽस्याकृतिः ]।

**मातलिः**—आयुष्मन्! एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन चक्षुषा दिवौकसां पितरावायुष्मन्तमवलोकयतः। तावुपसर्प।

---

**घेयकः** भुवनस्य = भूमण्डलस्य पृथिव्याः भर्ता = पालक ते = तव पुत्रस्य = तनयस्य इन्द्रस्य रणशिरसि = समरमूर्ध्नि अग्रयायी = अग्रेसरः पुरोयायो भुवनस्य साक्षाद्भुवो-भर्ता परोक्षतः दिवोऽपीतिभावः। यस्य = दुष्यन्तस्य चापेन = धनुषा विनिर्वर्तितकर्म—विनिर्वर्तितं = असुरसंहारात् शमितं कर्म = शत्रुहननरूपं कार्यं यस्य तत् विनिर्वर्तित-कर्म = समाप्तस्वकार्यं तत् कोटिमत् = निर्व्यापारत्वेन कुण्ठितास्त्रं तत् प्रसिद्धं कुलिशं = वज्रं मघोनः = इन्द्रस्य आभरणं = शोभामात्रफलकत्वात् = भूषणमात्रम् जातं = सम्पन्नम्।

**अयं भावः**—निर्वर्तिताह्निकक्रियस्वभार्यया आदित्या सहासने सुखासीनः महर्षिः कश्यपो राजानं दुष्यन्तं वीक्ष्य तत्प्रभावातिशयं वर्णयन्नदितिं ब्रूते—देवि! दुष्यन्त इति नाम्ना विश्वस्मिन् प्रख्यातस्तव पुत्रस्येन्द्रस्य परमः सहायकः, सखा देवासुरसंग्राम-पुरोगामी एष न केवलं भूमण्डलमेव शास्ति अपितु महेन्द्रस्यापि साहाय्यकरणात् अयं स्वर्गस्यापि पालकश्चक्रवर्ती राजास्ति। अस्य धनुषा शत्रूणां संहारादिन्द्रस्य वज्रं कुण्ठि-तास्त्रं सत् हस्ताभरणमात्रं सम्पन्नम्। मघोनो हस्ते तत् कुलिशं केवलमाभरणरूपतयैव तिष्ठति, तत्कार्यमसुरविनाशस्तु सम्प्रति अस्य धनुषैव क्रियते। अतो विश्वस्य संरक्षण-कार्यमस्मिन् विन्यस्य सुखं शेते विश्वस्तो महेन्द्रः। अत्रोदात्तरूपककाव्यालिङ्गाऽलङ्काराः वसन्ततिलका वृत्तं च॥ २९॥

**अदितिः**—अस्य = राज्ञः आकृतिः = शरीरं सम्भावनीयानुभावा सभावनीयः = उह्यः अनुभावः = प्रभावः यस्याः सा सम्भावनीयानुभावा = प्रभावशालिनी **'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति'** इति न्यायात् आकृत्यैव ज्ञायतेऽयं महानुभाव अस्याकृत्या तादृशमनुभावं पश्यमीति भावः।

**मातलिः**—आयुष्मन् = चिरञ्जीविन्। एतौ दिवौकसां–दिवः = स्वर्गः ओकः = गृहं येषां ते तेषां दिवौकसां = देवानां पितरौ = जनकौ अदितिकश्यपौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन = पुत्रप्रीतिः पुत्रसहचरत्वाद्राज्ञः स्नेहः तस्याः पिशुनेन = सूचकेन पुत्रवत्स्नेहं = सूचयतः चक्षुषा = नेत्रेण आयुष्मन्तं = त्वाम् अवलोकयतः इन्द्रतुल्येन स्नेहेन त्वां पश्यतः तौ उपसर्प = तयोः समीपे गच्छ।

---

दैत्य-दानवों के वध के निमित्त बना था, किन्तु जब शत्रु राक्षसों का विनाश अब राजा दुष्यन्त का धनुष ही करता है। अतः वज्र के समस्त कार्य राजा के धनुष से ही सम्पन्न हो जाते हैं। काम न होने से अब वज्र केवल इन्द्र के हाथ की शोभामात्र बढ़ाता है। अतः आभूषण बनकर रह गया है।

**अदिति**—ठीक है। इसकी आकृति से ही प्रतीत होता है कि यह कोई प्रभावशाली व्यक्ति है।

**मातलि**—हे आयुष्मन्! देखिए पुत्र की तरह प्रीति की सूचना देने वाले अपने नेत्रों से ये देवताओं के माता-पिता = अदिति और कश्यप आपको देख रहे हैं। अतः आप इनके पास चलकर इनको प्रणाम करें।

**राजा**—मातले एतौ—

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद्यज्ञभागेश्वरम्।
[1]यस्मिन्नात्मभवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत्स्रष्टुरेकान्तरम् ॥ २७ ॥

---

**राजा**—अदितिकश्यपौ वीक्ष्य राजा दुष्यन्तो मातलिमिन्द्रसारथिं ब्रूते--मातले! एतौ=इमौ अदितिः कश्यपश्च। **प्राहुरिति।**

अन्वयः—इदं तत् दक्षमरीचिसंभवं स्रष्टुः एकान्तरं द्वन्द्वम्, यत् मुनयः द्वादशधा स्थितस्य तेजसः कारणं प्राहुः। तत् भुवनत्रयस्य भर्तारं यज्ञभागेश्वरं सुषुवे। यस्मिन् आत्मभवः परः पुरुषोऽपि भवाय आस्पदं चक्रे ॥ २७ ॥

अथेन्द्रसारथेः मातलेः वचनेनादितेः पतिम्भगवन्तं कश्यपं द्रष्टुमुपसर्पन् नृपो दुष्यन्तः तद् युगलं समक्षमवलोक्य मातलिं प्रति सादरमब्रवीत्—**प्राहुर्द्वादशधेति**। इदं पुरोदृश्यमानं तत्प्रतिद्धं दक्षमरीचिसम्भवं=दक्षश्च मरीचिश्च दक्षमरीची तयो=सम्भवः उत्पत्तिस्थानं यस्य तत् दक्षमरीचिसम्भवं=दक्षप्रजापतिमरीचिसंजातम् स्रष्टुः=ब्रह्मणः **एकान्तरम्** एकः=दक्षः मरीचिश्च अन्तरे=मध्ये यस्य तत् ब्रह्मपौत्रम् **द्वन्द्वं**—मिथुनं यत् मुनयः=ऋषयः द्वादशधा=द्वादशमूर्तिधरया, द्वादशकलात्मकतया स्थितस्य=विद्यमानस्य तेजसः=आदित्यस्य, कारणं=निदानम् प्राहुः=आमनन्ति, वदन्ति। यद्वा द्वादशधा स्थितस्य तेजसः—द्वादशसु मासेषु द्वादशमूर्तिधरस्य तेजसः सूर्यस्य **कारणं** प्राहुः=आमनन्ति मुनय इत्यर्थः। यत् भुवनानां=भूर्भुवः स्वर्लक्षणानां लोकानां त्रयं=त्रयी तस्य भर्तारं=स्वामिनं पालकं यज्ञभागेश्वरं--यज्ञे=क्रतौ भागः=अंशः येषां ते यज्ञभागाः देवाः तेषामीश्वरं=इन्द्रं सुषुवे=जनयामास। यस्मिन् द्वन्द्वे आत्मभुवः=

---

**राजा**—हे मातले! जिसको ऋषिमुनि बारह महीनों के तेजस्वी बारह सूर्यों का कारण कहते हैं, तीनों लोकों अधिपति, यज्ञों के फलभोक्ता इन्द्र को भी जिसने जन्म दिया है, संसार के कल्याण के लिए परम पुरुष भी जिसके यहां आकर वामन के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। दक्ष और मरीचि से उत्पन्न अदिति और कश्यप जो ब्रह्माजी के एक पीढ़ी के बाद उत्पन्न युगल जोड़ी प्रसिद्ध है, क्या वही जोड़ी ये दोनों हैं।। २७ ।।

अर्थात्—ब्रह्मा जी के मानस पुत्र प्रजापति दक्ष की पुत्री अदिति तथा ब्रह्माजी के मानस पुत्र महर्षि मरीचिजी के पुत्र कश्यप मुनि इन दोनों की जोड़ी जो संसार में प्रसिद्ध है, जिससे बारह रूप में स्थित बारह महीनों के सूर्य उत्पन्न हुए हैं, त्रिलोक रक्षक, यज्ञ-भाग-भोक्ता इन्द्र भी जिसके पुत्र हैं तथा परम पूज्य विष्णु भी जिनके यहां वामन रूप में अवतीर्ण हुए हैं, क्या यही स्त्री-पुरुष की जोड़ी अदिति एवं कश्यप ये दोनों हैं।

**विशेष**—ज्योतिचक्र निरुपण के अनुसार प्रत्येक मास के अलग-अलग सूर्य माने जाते हैं। वस्तुतः एक ही सूर्य बारह महीनों में बारह रूप धारण करते हैं। उनके बारह-बारह रूप मान लिये गये हैं। इस दृष्टि से सूर्य को द्वादशभागविभक्त कहा गया है। भगवान् विष्णु अपनी इच्छा के अनुसार ही जन्म ग्रहण करते हैं। अतः उन्हें आत्मभव कहा जाता है। भगवान् विष्णु देवकार्य-साधन के लिए कश्यप के द्वारा अदितिजी के गर्भ में वामनरूप से अवतीर्ण हुए थे। अतः ये दोनों

---

पाठा०—१. यस्मिन्नात्मभुवः।

मातलिः—अथ किम् ?

राजा—( उपगम्य ) उभाभ्यामपि वासवानुयोज्यो दुष्यन्तः प्रणमति ।

---

ब्रह्मणः परः = उत्कृष्टः पुरुषोऽपि = पुरुषोत्तमोऽपि भवाय जन्मने आस्पदं = प्रतिष्ठां चक्रे-कृतवान् इन्द्रावरजत्वेनावत्तीर्णः । तथाहि विष्णुपुराणे—

मन्वन्तरे च सम्पाप्ते तथा वैवस्वते द्विज ।
वामनः कश्यपद्विष्णुरदित्यां समभूदिति ॥

द्वादशादित्योत्पत्ति विष्णुः, शक्रः, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्रः, वरुणः, अंशुः भगश्चेति द्वादशानामादित्यानामुत्पत्तिरपि विष्णुपुराणे स्पष्टतया प्रोक्ता वर्तते यथा—

तत्रविष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि ।
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशुर्भगश्चादितिज आदित्या द्वादशः स्मृताः ॥

यद्वा द्वादशधा स्थितस्य द्वादशकलात्मकस्येत्यर्थो बोद्धव्यः ताश्च द्वादशकला यथा—

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वलिनी रुचि ।
सुषुम्णा भोगदा विश्वा बोधिनी धारणी क्षमा ॥

अयं भावः—मातलिवचसा अदितिकश्यपौ द्रष्टुमुपसर्पन् राजा दुष्यन्तः तौ वीक्ष्य मातलिं ब्रूते—यदद्य एतयोः = अदितिमारीचयोर्युगलं विलोक्य कृतकृत्योऽहं संजातः । मुनयः एतौ द्वादशसु मासेषु द्वादशमूर्त्तिधरस्य सूर्यस्य कारण वदन्ति, इतो यज्ञभागभुज-मिन्द्रं जनयामासतुः । भगवान् वामनोऽपि बलेर्दमनायात्रैवावतीर्णः । एतौ साक्षाद् ब्रह्मणः पौत्रौ स्तः । धन्यावेतौ, प्रभूतेन सुकृतेनैवैतयोर्दर्शनं जातम् । अत्रोदात्तकाव्य-लिङ्गालङ्कारो शार्दूलविक्रीडितं वृत्तश्च ॥ २७ ॥

मातलिः—अथ किम् = आम् त्वं यदात्थ तत्तथैवेत्यर्थः ।

राजा—( राजा सपत्नीकं कश्यपमुपगम्य प्रणयन्नाह— ) उभाभ्यामपि = द्वाभ्यां युवाभ्याम् आदितिकश्यपाभ्यां उभौ अनुकूलयितुम् वासवस्य = इन्द्रस्य नियोज्यः = किङ्करः वासवनियोज्यः इन्द्रसेवको दुष्यन्तः प्रणमति = नमस्कुरुते ।

---

अदिति तथा कश्यप विष्णु के माता-पिता कहे जाते हैं । स्वयंभू ब्रह्माजी से इनका एक पीढी का अन्तर है, जैसे ब्रह्मा जी के पुत्र महर्षि मरीचि और दक्ष प्रजापति । इन्हीं दोनों से इन दोनों का जन्म है । अर्थात् मरीचि के पुत्र कश्यप जी तथा दक्ष की पुत्री देवमाता अदिति हैं । अदिति के पुत्र आदित्य कहे जाते हैं, जो तेजस्वरूप हैं । इनका नाम विष्णुपुराण में इस प्रकार हैं—(१) विष्णु (२) शक्र-इन्द्र (३) अर्यमा (४) धाता (५) त्वष्टा (६) पूषा (७) विस्वान (८) सविता (९) मित्र (१०) वरुण (११) अंशु और (१२) भग । द्वादशधा का अर्थ द्वादश कलात्मक रूप में भी हो सकता है ।

**मातलि**—हाँ, विश्ववन्द्य देवताओं के माता पिता ये ही दोनों हैं ।

**राजा**—( **साष्टाङ्ग प्रणाम करके** ) इन्द्र का आज्ञाकारी सेवक आप दोनों को प्रणाम करता है ।

मारीचः—वत्स ! [1]चिरं जीव । पृथिवीं पालय ।

अदितिः—वच्छ ! अप्पडिरहो होहि । [ वत्स ! अप्रतिरथो भव । ]

शकुन्तला—दारअसहिदा वो पादवंदणं करेमि । [ दारकसहिता वां पादवन्दनं करोमि । ]

मारीचः—वत्से !

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः ।
आशीरन्या न ते [2]योग्या [3]पौलोमीसदृशी भव ॥ २८ ॥

---

मारीचः—कश्यपः आशिषं प्रयुङ्क्ते—वत्स ! = पुत्र ! चिरञ्जीव = बहुकालं जीव, पृथ्वीं पालय = भुवं रक्ष ।

अदितिः—वत्स ! = आयुष्मन् प्रतिकूलो रथो यस्य स प्रतिरथः न प्रतिरथो यस्य स अप्रतिरथः—भुवनैकवीरो भव ।

शकुन्तला—दारकसहिता दारकेन = बालकेन सहिता दारकसहिता = पुत्रसहिता वां = युवयोः पादवन्दनं = चरणप्रणामं करोमि = विदधामि ।

मारीचः—आशिषं प्रयुङ्क्ते—वत्से ! = हे पुत्रि !

अन्वयः—भर्ता आखण्डलसमः, सुतः जयन्तप्रतिमः, त्वं पौलोमीसदृशी भव अन्या आशीः ते योग्या न ॥ २८ ॥

पतिपुत्राभ्यां सह प्रणमन्तीं शकुन्तलां शुभाशिषा संभावयन् महर्षिः कश्यपः प्राह—आखण्डलेति । भर्ता = ते पतिर्दुष्यन्तः आखण्डलेन समः आखण्डलसमः = इन्द्रतुल्यः, सुतः = ते पुत्रः सर्वदमनः जयन्तः प्रतिमः उपमा यस्य स जयन्तप्रतिमः इन्द्रपुत्रसदृशः पुलोम्नोऽपत्यं स्त्री पौलोमी तया सदृशी = तुल्या पौलोमीसदृशी भव = जायताम् इत्याशीः अन्या = अपरा आशीः = शुभकामना ते = तव योग्या = युक्ता न = अनुरूपा नास्ति । इयमेवाशीर्युक्तेत्यर्थः ।

अयं भावः—वत्से शकुन्तले ! इन्द्रतुल्यापराक्रमः ते भर्ता दुष्यन्तः, इन्द्रपुत्रजयन्तसमानः सर्वदमनः तव सुतः इन्द्रपत्नी शचीसमा त्वमपि अखण्डसौभाग्यवती भव । एतदतिरिक्तापि विलक्षणा त्वदनुरूपा आशीर्नोपलक्ष्यते तस्मात्त्वं निरतिशयसौभाग्यशालिनी भव ।

---

मारीच—हे पुत्र ! तुम दीर्घजीवी हो तथा अधिक दिनों तक पृथ्वी का पालन करो ।

अदिति—बेटा, विश्व में तुम बेजोड़ योद्धा बनो ।

शकुन्तला—पुत्रसहित मैं आप दोनों के पैरों पर गिरकर प्रणाम करती हूँ ।

मारीच—हे पुत्री ! तुम्हारा यह पति दुष्यन्त इन्द्र के समान, यह तेरा पुत्र जयन्त के समान तथा तुम भी इन्द्र की धर्मपत्नी इन्द्राणी के समान स्थिर सौभाग्यवती बनो, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा आशीर्वाद तुम्हारे लिए योग्य नहीं ॥ २८ ॥

**विशेष**—यहाँ दुष्यन्त को इन्द्र के सदृश, सर्वदमन को जयन्त के तुल्य तथा शकुन्तला को इन्द्राणी के समान होने का आशीर्वाद दिया गया है । इसमें कुछ विद्वान् जयन्त और सर्वदमन की तुलना ठीक नहीं समझते । उनका कहना है कि जहाँ भरत ( सर्वदमन ) अनुपम योद्धा तथा उच्चकोटि के व्यक्ति के रूप में अङ्कित हैं, वहाँ जयन्त का कोई साहित्यिक मूल्य नहीं । अतः यह

---

पाठा०—१. चिरं पृथिवीं । २. योज्या । ३. पौलोमीमङ्गला भव ।

**अदितिः**—जादे भत्तुणो अभिमदा होहि। अवस्सं दीहाऊ वच्छओ उह-अकुलणंदणो होदु। उवविसह। [ **जाते भर्तुरभिमता भव। अवश्यं दीर्घायुर्वत्सकं उभयकुलनन्दनो भवतु। उपविशत।** ]

( सर्वे प्रजापतिमभित उपविशन्ति। )

**मारीचः**—( एकैकं निर्दिशन् )

**दिष्टया शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान्।**
**श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत्समागतम्॥ २९॥**

---

**अदितिः**—जाते != पुत्रि ! भर्तुः = पत्युः अभिमता = अभीष्टा भव, अवश्यं = नूनम्, दीर्घायुः = आयुष्मान् वत्सकः = प्रियपुत्रः उभयं = द्वयं च तत्कुलं वंशश्च तयोः नन्दनः = आनन्दवर्द्धकः इत्युभयकुलनन्दनः पैतृकमातृकोभयकुलदीपकः भवतु = जायताम्। उपविशत यूयं सर्वे।

( सर्वे = दुष्यन्तः, मातलिः, शकुन्तला: सर्वंदमनश्चेति सकलाः प्रजापतिः = प्रजेश्वरं कश्यपं मारीचम् अभितः = सर्वतः परिवार्य उपविशन्ति )

**मारीचः**—एकैकं निर्दिशन् = प्रत्येकमङ्गुल्या दर्शयन्।

**अन्वयः**—दिष्ट्या साध्वी शकुन्तला, इदं सत् अपत्यम्, भवान् श्रद्धा वित्तं विधिः इति त्रितयं च समागतम्॥ २९॥

महर्षिः कश्यपः सकुटुम्बं राजानं दुष्यन्तं पुरः समुपस्थितं विलोक्य संजातहर्षः तत्रैकैकं निर्दिशन् तत्समागमनमभिनन्दति—दिष्टयेति। दिष्टया=सौभाग्येन साध्वी=पतिव्रता शकुन्तला, इदं = पुरो दृश्यमानं सत् = अभ्यर्हितं अपत्यं = सर्वंदमनः भवान् = तत्तद्गुण-विशिष्टो राजोत्तमो दुष्यन्तः श्रद्धा = आस्तिक्यबुद्धिः वित्तं = द्रव्यसंचयः, विधिः = यागादिक्रिया इति = एवं रूपं तत् = तदेव प्रसिद्धं त्रितयं = त्र्यवयवं वस्तु समागतं = एकत्र मिलितम्।

**अयं भावः**—राजर्षे ! सौभाग्येन आयुष्मतः शकुन्तलायाः सर्वंदमनस्य च समागमो जातः। यथा श्रद्धया, धनेन, विधिना च मिलित्वैव यागादयो धर्मा अनुष्ठातुं शक्यन्ते

---

विचारणीय है। वाल्मीकि एवं हरिवंश पुराण के अनुसार पुलोमन नाम का एक राक्षस था। इन्द्र ने उसकी पुत्री शची के साथ विवाह कर लिया था। बाद इन्द्र ने उस पुलोमन का वध कर डाला। पुलोमन की पुत्री होने के कारण शची का नास पौलोमी है—पुलोम्नोऽपत्यं स्त्री पौलोमी।

**अदिति**—बिटिया, तुम पति की अत्यन्त प्यारी हो तथा तेरा यह बच्चा मातृकुल एवं पितृकुल दोनों को आनन्द देने वाला हो, आओ तुम सब बैठ जाओ।

**( सभी लोग प्रजापति कश्यपजी की चारों ओर बैठ जाते हैं )**

**मारीच—( महर्षि कश्यप एक-एक को निर्देश करते हुए )**

यह साध्वी शकुन्तला, यह सद्गुणसम्पन्न होनहार पुत्र तथा तुम ( दुष्यन्त ) तीनों का यह समागम श्रद्धा, धन, विधि = शास्त्रोक्त विधान का ही समागम है। अर्थात् मनुष्य विधि, श्रद्धा और शास्त्रोक्त मार्ग के आश्रय से ही यज्ञ-याग आदि पुण्य कार्य करके स्वर्ग आदि उत्तम स्थानों को प्राप्त करता है। अतः इन तीनों का एकत्र समागम होना दुर्लभ होता है, पर यहाँ तो इन तीनों का समन्वय देख रहा हूँ अतः तुम तीनों का यह योग जगत् के कल्याण के लिए ही हो॥ २९॥

**विशेष**—कर्मकाण्ड एवं धर्मशास्त्रों के अनुसार यज्ञ करने के निमित्त तीन वस्तुओं का होना आवश्यक बतलाया गया है। ( १ ) सर्वप्रथम श्रद्धा होनी चाहिए बाद में ( २ ) तदनुकूल अर्थ

**राजा**—भगवन् प्रागभिप्रेतसिद्धिः पश्चाद्दर्शनम्। अतोऽपूर्वः खलु वोऽनुग्रहः। कुतः—

**उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक्तदनन्तरं पयः।**
**निमित्तनैमित्तिकयोरयं [1]क्रमस्तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः ॥ ३० ॥**

---

ततश्चपरमं पदमवाप्यते तथैव युष्माकं पतिपुत्रपत्नीनां त्रितयं सुशीला शकुन्तला, उभयवंशदीपको बालः = बालकः सर्वदमनः, सकलगुणसम्पन्नोभवाँश्च परस्परं संगतं सत् जगदभ्युदयकारणं जायतामितिभावः ॥ २९ ॥

**राजा**—भगवान् = ऐश्वर्यादि गुणपरिपूर्ण ! भगवन्निति सम्बोधनेन तदनुग्रहस्य सर्वाभीप्सितसाधनसमर्थत्वं सूच्यते तथा चोक्तं महाभारते।

देवानामपि ये देवा महात्मानो महर्षयः।
भगवन्निति ते वाच्या यास्तेषां योषितस्तथा ॥

प्राक् = पूर्वम् अभिप्रेतसिद्धिः—अभिप्रेतस्य = अभीप्सितस्य पुत्रकलत्रसंगमस्य सिद्धिः = प्राप्तिः, पश्चात = अनन्तरम् तदनु दर्शनं = भवतां साक्षात्कारः। अतः अपूर्वः = अद्भुतः खलु = निश्चयेन वः = युष्माकम् अनुग्रहः = प्रसादः कृपा, कुतो = यतः प्राक् फलस्य पश्चाद्दर्शनस्यापूर्वत्वं साधयति—**उदेतीति**।

**अन्वयः**—पूर्वं कुसुमम् उदेति ततः फलम्। प्राक् घनोदयः तदनन्तरं पयः अयं निमित्तनैमित्तिकयोः = क्रमः तव प्रसादस्य पुरः सम्पदः ( भवन्ति ) ॥ ३० ॥

पुत्रकलत्रलाभं कश्यपानुग्रहप्राप्तं मन्यमानो राजा दुष्यन्तो महर्षिकश्यपं स्तुवन् ब्रूते—**उदेतीति**। पूर्वं = प्रथमं कुसुममुदेति पुष्पमाविर्भवति ततः = तदनन्तरं तत्कर्म फलम् उदेति। प्राक् = आदौ घनोदयः = मेघोद्गमः उदेति, तदनन्तरं = ततः परं जलं = नीरम् उदेति अयम् = एषः निमित्तनैमित्तिकयोः = कार्यकारणयोः क्रमः = नियमः। प्रथमं कारणं पश्चात्कार्यमित्येव कार्यकारणयोः क्रमेऽस्तीत्यर्थः। तव = भवतः प्रसादस्य = अनुग्रहस्य च पूर्वं संपदः तत्कार्यभूताः पुत्रकलत्रलाभरूपाः सम्पत्तयः ॥ ३० ॥

**अयं भावः**—भगवन् ! भवादृशां दर्शनं सकलमनोरथसाधकं भवतीति मन्ये।

---

धन = सम्पत्ति होनी चाहिए पुनः ( ३ ) शास्त्रीय विधि विधान। जहाँ ये तीनों वस्तुएँ होती है वहाँ सत्य परिणाम तथा कल्याण होता है। यह संसार भी एक यज्ञ ही है। अतः इसे चलाने के लिए इन तीनों की आवश्यकता है। यहाँ शकुन्तला को श्रद्धा, पुत्र को अर्थ तथा दुष्यन्त को विधि बताया गया है। यहाँ तीनों शब्दों का लिङ्गसाम्य द्रष्टव्य है।

यहाँ "श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं" कहकर पति के समान पत्नी और पुत्र को भी महत्त्व दिया गया है। यही भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

**राजा**—भगवन् ! किसी के दर्शनों के पीछे फल होता है, किन्तु आपके दर्शन की तो यह महिमा है कि पहले फल की सिद्धि और पीछे आपके दर्शन इस प्रकार आपकी कृपा अचूक है, क्योंकि—

वृक्षों में पहले पुष्प निकलता है तदनन्तर फल लगता है, मेघ का आगम भी पहले होता है बाद में वृष्टि होती है, यही कार्य-कारण भाव सर्वत्र प्रसिद्ध है, परन्तु आपकी कृपा से आपके दर्शनों के पहले ही सुख सम्पत्ति की प्राप्ति हो जाती है। यही आश्चर्य है ॥ ३० ॥

**विशेष**—दुष्यन्त के कहने का अभिप्राय है कि ऋषिमुनियों के आशीर्वाद तथा दर्शन से व्यक्ति

---

पाठा०—१. विधिस्तव।

**मातलिः**—एवं विधातारः प्रसीदन्ति।

**राजा**—भगवन् इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित् कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिशैथिल्यात्प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतो [1]युष्मत्सगोत्रस्य कण्वस्य। पश्चादङ्गुलीयकदर्शनादूढपूर्वां तद्दुहितरमवगतोऽहम्। तच्चित्रमिव मे प्रतिभाति।

---

लोके प्राक् पुष्पोद्गमः तदनु फलं जायते इत्थमेव प्राङ्मेघमण्डलाविर्भावः पश्चात् तत्कार्यं जलवर्षणं जायते परं लोकोत्तरतपःसिद्धेः भवतस्तु पूर्वमेव पुत्रकलत्रलामरूपं फलं पश्चाद्दर्शनं जातमित्यहो भवतां प्रभावातिशयः।

**मातलिः**—नात्र विस्मयस्यावकाश इत्याशयेन मातलिराह—एवम् अनेन विधिना विधातारः=ईश्वराः समर्थपुरुषा प्रसीदन्ति=अनुगृह्णन्ति। आयुष्मताऽयं क्रमो लौकिक उक्तः, अलौकिकस्तु इतो भिन्न एव। इच्छासिद्धयो महात्मानो यदेवेच्छन्ति तत्तदेव सम्पद्यते इत्यर्थः।

**राजा**—अथ शकुन्तला-विस्मरणकारणं जिज्ञासमानो राजा दुष्यन्तो महर्षि पृच्छति—भगवन्!=जगद्गुरो! वः=युष्माकम् आज्ञां करोति तच्छीला आज्ञाकरी तामाज्ञाकरीं इमां आदेशपालिनीं आज्ञाकरीं शकुन्तलां गान्धर्वेण=गन्धर्वविवाहविधिना उपयम्य=विवाह्य परिणीय कस्यचित् कालस्य पश्चात्=किञ्चित्कालानन्तरं बन्धुभिः=तापसैः शार्ङ्गरवादिभिः आनीतां=उपस्थापिताम् स्मृतेः=स्मरणस्य शैथिल्यात् दुर्बलत्वात्, स्मृतिभ्रंशात् प्रत्यादिशन्=निराकुर्वन् युष्माभिः समानं गोत्रं यस्य युष्मत्सगोत्रस्य=भवद्वंशीयस्य तत्रभवतः=पूज्यस्य कण्वस्य काश्यपेयस्य अपराद्धोऽस्मि=कृतापराधोऽस्मि। पश्चात्=तदनु, अङ्गुलीयकस्य मुद्रिकाया दर्शनात्=अवलोकनात् पूर्वं=प्राक् ऊढां=परिणीतां तद् दुहितरं=तस्यपुत्रीं शकुन्तलाम् अवगतः=ज्ञातवान् अहम् तत्=साक्षाद्दृष्टायामज्ञानम्, अङ्गुलीयकदर्शनात् ज्ञानं चित्रमिव=आश्चर्यमिव मे=मम प्रतिभाति=प्रतीयते।

---

का कल्याण पहले ही हो जाता है तथा बाद में दर्शन होते हैं। दुष्यन्त अपने पुत्र तथा पत्नी का लाभ प्राप्त कर कश्यपजी का दर्शन करते हैं। यहां कल्याण रूपी कार्य पहले हो गया और दर्शन रूपी कारण बाद में हुआ।

**मातलि**—हे आयुष्मन्! भाग्यविधाता संसार के माता पिता की प्रसन्नता इसी प्रकार सद्यः फलप्रद होती है।

**राजा**—भगवन् मैंने आपकी आज्ञाकारिणी इस शकुन्तला के साथ गान्धर्व विवाह की विधि से विवाह करके कुछ काल के बाद जब इसके बन्धु लोग मेरे यहाँ इसे पहुँचाने आये तब स्मृति की शिथिलता के कारण मैंने इसका परित्याग कर दिया है। इस प्रकार आपके सगोत्र (आपकी सन्तान) पूजनीय काश्यप कण्व मुनि (शकुन्तला के धर्म पिता) का मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है। अनन्तर अंगूठी के मिल जाने पर मुझे स्मरण हो आया है कि मैंने शकुन्तला के साथ अवश्य विवाह किया था। यह बात मुझे बड़ी विचित्र लगती है।

---

पाठा०—१. युष्मद्गोत्रस्य।

**यथा गजो नेति समक्षरूपे तस्मिन्नपक्रामति संशयः स्यात् ।**
**पदानि दृष्ट्वा तु भवेत्प्रतीतिस्तथाविधो मे मनसो विकारः ॥ ३१ ॥**

**मारीचः**—वत्स अलमात्मापराधशङ्कया । संमोहोऽपि त्वय्यनुपपन्नः । श्रूयताम् ।

**राजा**—अवहितोऽस्मि ।

---

अथ स्वप्रतीतेरसंभवदृष्टान्तेन चित्रत्वं समर्थयति—**यथेति** ।

**अन्वयः**—यथा समक्षरूपे गजो न इति अपक्रामति तस्मिन् संशयः स्यात्, पदानि-दृष्ट्वा तु प्रतीतिर्भवेत् मे मनसः विकारः तथाविधः ( अस्ति ) ॥ ३१ ॥

पूर्वं शकुन्तलाया विस्मृतिः, पश्चात्तदङ्गुलीयकदर्शनेन स्मृतिश्चेति स्वप्रतीतेरसंभव-दृष्टान्तप्रदर्शनपूर्वकमाश्चर्यजनकत्वमुपपादयति—**यथा गज इति** । यथा = येन प्रकारेण पाददर्शनविकारेण समक्षरूपे समक्षं = प्रत्यक्षं रूपं = स्वरूपं यस्य स तादृशे कस्मि-श्चित्सत्त्वे गजो न = नायं हस्तीति मिथ्या ज्ञानं ततः अपक्रामति । तिरोहिते सति तस्मिन् गजो नेति, मिथ्या ज्ञानविषयीभूते तस्मिन् सत्वे संशयः = गजो वा न वेति सन्देहः स्यात् । पदानि = भूमौ तन्न्यासप्रतिबिम्बानि दृष्ट्वा = विलोक्य प्रतीतिः = सत्यं मया दृष्टो गज एवेति सम्प्रत्ययो भवेत् मे = मम मनसः चित्तस्य विकारः = चित्तभ्रमः पूर्वस्यामुपस्थि-तायामियं न मम भार्येति पुनस्तिरोहितायां भार्या वा न वा पश्चादङ्गुलीयकदर्शनेन मम भार्यैवेति प्रतीतिः ताथाविधः तादृशः अस्ति । अङ्गुलीयकदर्शनसाध्या प्रतीतिः साक्षा-द्दर्शनेन कथन्न जातेति चित्रं मया न बुध्यते इति भावः ॥ ३१ ॥

**मारीचः**—आत्मापराधशङ्कया आत्मनः = स्वस्य अपराधः = दोषः तस्य शङ्का = सन्देहः तया आत्मापराधशङ्कया = अपराद्धोऽहं कण्वस्येति ज्ञानेन. अलं = ईदृशी शङ्का मास्तु सर्वदा प्रबुद्धस्य मम कथं तदा संमोहोऽभूदित्याशङ्कामपनयति—संमोहोऽपि = त्वयि यः तदा संमोहः = चेतोविकृतिरभूत् सोऽपि उपपन्नः युक्त एव, कारणाधीन एव श्रूयतां = आकर्ण्यताम् संमोहकारणं वर्णयामि ।

**राजा**—अवहितोऽस्मि = संमोहकारणं श्रोतुं सावधानोऽस्मि ।

---

जैसे किसी के सामने हाथी के होने पर भी 'यह हाथी नहीं है' ऐसा विश्वास हो, और उसके चले जाने पर सन्देह हो, और पुनः उसके पदचिह्नों को देखकर विश्वास किया जाय कि वह हाथी ही था, ठीक इसी प्रकार मेरे मन का विकार था । कृपया यह मेरा सन्देह दूर कीजिए ॥ ३१ ॥

**विशेष**—एक दिन कोई व्यक्ति सड़क से किनारे बैठा था, उसने सामने से ही एक विशालकाय राजा का हाथी निकल गया । उसे सन्देह हो गया कि यह हाथी है या नहीं' अन्त में निश्चय किया वह हाथी नहीं है । उसके चले जाने पर उसके पदचिह्नों को देखकर निश्चय किया कि शायद वह हाथी ही था ।

ठीक यही दशा दुष्यन्त की भी है, शकुन्तला को सामने आने पर कहा कि यह मेरी पत्नी नहीं तिरस्कृत होकर चले जाने पर उसे पश्चाताप हुआ, फिर अंगूठी मिल जाने पर तो विश्वास ही हो गया है कि यह मेरी विवाहिता पत्नी ही थीं ।

**मारीच**—बेटा शकुन्तला को भूलने में तुम अपना अपराध = दोष बिलकुल न समझो तुम्हारा वह तो सहेतुक था । उसका कारण भी सुनो—

**राजा**—भगवन् मैं सुनने के लिए सावधान हूँ, कृपया आप कहें ।

**मारीचः**——यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात्प्रत्यक्षवैक्लव्यां शकुन्तलामादाय मेनका दाक्षायणीमुपगता तदैव ध्यानादवगतोऽस्मि दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी त्वया प्रत्यादिष्टा नान्यथेति । स चायमङ्गुलीयकदर्शनावसानः ।

**राजा**——( सोच्छ्वासम् ) एष वचनीयान्मुक्तोऽस्मि ।

**शकुन्तला**——( स्वगतम् ) दिट्ठिआ अकारणपच्चादेसी ण अज्जउत्तो । ण हु सत्तं अत्ताणं सुमरेमि । अहवा पत्तो मए स हि सावो विरहसुण्णहिअआए ण विदिदो । अहो सहीहिं संदिट्ठम्हि भत्तुणो अगुलीअअं दंसइदव्वं त्ति । [ दिष्ट्याऽकारणप्रत्यादेशी नार्यपुत्रः । न खलु शप्तमात्मानं स्मरामि । अथवा प्राप्तो मया स हि शापो विरहशून्यहृदयया न विदितः । अतः सखीभ्यां संदिष्टास्मि भर्तुरङ्गुलीयकं दर्शयितव्यमिति । ]

---

**मारीचः**—यदा = यस्मिन् समये एव अप्सरस्तीर्थावतरणात् अप्सरस्तीर्थे = शक्रतीर्थे यदवतरणं = पर्यायप्राप्तं सान्निध्यं कर्तुं गमनं तस्माद्धेतोः प्रत्यक्षवैक्लवां प्रत्यक्षं = साक्षात् दृष्टं वैक्लव्यं = व्यग्रता कातरता यस्या सा तां प्रत्यक्षवैक्लवाम् शकुन्तलां = स्वतनयाम् आदाय = गृहीत्वा मेनका = मेनका नाम्नी अप्सरा दाक्षायणीं = दक्षकन्यामदितिमुपगता = आगता स्वयं कन्यायाः शोकं पश्यन्ती अनुकम्प्यमाना तां गृहीत्वाऽत्र प्राप्ता तदैव = तस्मिन्नेव क्षणे ध्यानात् = चिन्तनात् अवगतः = योगजेन प्रत्यक्षेण ज्ञातवान् अस्मि यत् दुर्वाससः = तन्नाम्नो महर्षेः शापात् अनिष्टाशीर्वचनात् तपस्विनी = दीना, अनुकम्पनीया सहधर्मचारिणी सहचरी धर्मपत्नी शकुन्तला त्वया भवता दुष्यन्तेन प्रत्यादिष्टा=प्रत्याख्याता नान्यथा=नापरोऽत्र हेतु । स च अयं शापः अङ्गुलीयकदर्शनावसानः—अङ्गुलीयकस्य = मुद्रिकाया दर्शनमेव अवसानं समाप्तिसीमा यस्य स अङ्गुलीयकदर्शनावसानः = अङ्गुलीयकदर्शनावसानमात्रोद्धारः ।

**राजा**—( सोच्छ्वासम्=गभीरश्वासेन सह आह ) एषः=अयं अहं वचनीयात्=लोकापवादात्, निन्दातः मुक्तोऽस्मि रक्षितोऽस्मि धर्मदारत्यागी अयं दुष्यन्तो नास्य नाम संग्राह्यमिति निन्दापगतेत्यर्थं ।

**शकुन्तला**—( स्वगतम् = आत्मगतम् ) आह दिष्ट्या = सौभाग्येन आर्यपुत्रः = स्वामी अकारणपरित्यागी—न कारणं यत्र तदकारणमकारणं प्रत्यादेशो यस्य स अकारणप्रत्या

---

**मारीच**—तभी अप्सरातीर्थ के घाट से अत्यन्त विकल शकुन्तला को लेकर मेनका दाक्षायणी के पास आई तभी ध्यान से मैंने जान लिया था कि दुर्वासा के शाप के कारण यह बेचारी सहधर्मचारिणी शकुन्तला तुम्हारे द्वारा तिरस्कृत हुई है, न कि अन्य कारण से और वह शाप भी अंगूठी देखते ही समाप्त हो जाने वाला है।

**राजा**—( लम्बी सांस लेकर ) अब मैं अपनी पत्नी के परित्याग होने वाले लोकापवाद = लोकनिन्दा से मुक्त हो गया।

**शकुन्तला**—( अपने मन ) यह सौभाग्य की बात है कि आर्यपुत्र बिना कारण के ही परित्याग करने वाले नहीं हैं, किन्तु मुझे दुर्वासा ने कब शाप दिया यह याद नहीं आ रहा है अथवा शाप मुझे मिला होगा, किन्तु उस समय मैं विरह के कारण शून्यहृदय थी, अतः उसे जान न पाई ( इसीलिए मेरी विदाई के अवसर पर मेरी प्रियसखियों ने मुझे बड़े ही आग्रह से सावधान कर दिया था कि यदि वह राजा तुझे न पहचाने तो उसके दिये हुए इस अङ्गुलीयक को ही परिचय स्वरूप उसे दिखा देना )।

**मारीचः**--वत्से ! [1]चरितार्थाऽसि । सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः कार्यः । पश्य--

**शापादसि प्रतिहता [3]स्मृतिरोधरूक्षे भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव ।**
**छाया न मूर्छति मलोपहतप्रसादे शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा ॥ ३२ ॥**

---

देशी = अकारणपरित्यागी न । आर्यपुत्रेण शापकारणादेवाहं प्रत्यादिष्टा न त्वकारणमिति नात्र आर्यपुत्रस्य दोषः । न खलु = निश्चयेन आत्मानं शापयुक्तं = स्वं शप्तं न स्मरामि । अथवा प्राप्तो मया स हि शापः विरहशून्यहृदयया विरहेण शून्यं = वियोगेन ज्ञानरहितं हृदयं = आन्तरं यस्याः सा तया विरहशून्यहृदयया ( मया ) न ज्ञातः = न विदितः । अतः अनेन कारणेन सखीभ्यां = आलीभ्यां ( अनुसूयाप्रियम्वदाभ्याम् ) संदिष्टा = अहमुक्ताऽस्मि भर्तुः = पत्युः अङ्गुलीयकं = मुद्रा दर्शयितव्यम्, प्रत्यभिज्ञानमन्तरार्यपुत्रायाऽङ्गुलीयकं दर्शयितव्यमिति आश्रमपरित्यागकाले सखीभ्यामहमुक्तास्मि । असति शापे ताभ्यामेवमुक्तं न भवेत् ।

**मारीचः**—अथ शकुन्तलाया संशयं समुन्मूलयितुं महर्षिः कश्यपः प्राह--वत्से ! विदितार्था = ज्ञातवस्तुतत्त्वा सहधर्मचारिणं = सहचरं पतिं प्रति न त्वया मन्युः = कोपः कार्यः = करणीय । पश्य = अवलोकय ।

**अन्वयः**---शापात् स्मृतिरोधरूक्षे भर्तरि प्रतिहता असि । अपेततमसि ( तस्मिन् ) तवैव प्रभुता ( अस्ति ) छायामलोपहतप्रसादे दर्पणतले न मूर्छति, शुद्धे तु सुलभावकाशा ( भवति ) ।

महर्षि कश्यपः शकुन्तलामुपदिशति—**शापादिति** । शापात् = दुर्वाससा दत्तादनिष्टाशीर्वचनात् स्मृतिरोधरूक्षे स्मृतेः=स्मरणस्य रोधः=स्मरणावरक तमः तेन रूक्षे=निःस्नेहकर्कशे भर्तरि = पत्यौ पत्युर्मनसि प्रतिहतासि = प्राप्तप्रतिघातासि, अलब्धप्रवेशासि भर्त्रा प्रत्याख्यातासीत्यर्थः । अत्र तस्य दोषो नास्ति । अपेततमसि अधुना अपेतं = दूरीभूतं तमः = शापलक्षणं स्मृतिरोधकमज्ञानं यस्मात् तत्तस्मिन् अङ्गुलीयकदर्शनेन शापनिवृत्या विगताज्ञाने भर्तरि तवैव = भवत्या एव प्रभुता = प्रभुत्वं सामर्थ्यमस्ति छाया = प्रतिबिम्वं, मलोपहतप्रसादे--मलेन आगन्तुकेन दोषेण रजसा श्यामिकया वा उपहतः=दूरी-

---

**मारीच**—( **शकुन्तला को देखकर** ) बेटी, अब तो तू अपने परित्याग के सच्चे करण को जान ही गई, तू कृतकृत्य हो गई । अतः अब इसके लिए शोक या अपने पति पर इसके लिए कुछ भी क्रोध मत करना कि इन्होंने मेरा परित्याग कर दिया था । देख,

दुर्वासा के शाप के कारण स्मृति लुप्त हो जाने के कारण ही दुष्यन्त द्वारा तेरा परित्याग हुआ था । अब उसका स्मृति-भ्रंश रूप अज्ञान दूर हो गया । अतः अब तेरे पतिपर तेरी प्रभुता पुनः अक्षुण्ण है । धूल पड़ जाने के कारण स्वच्छता के विनष्ट हो जाने पर शीशे में प्रतिबिम्ब स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ता, किन्तु उसके स्वच्छ हो जाने पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है ॥ ३२ ॥

**विशेष**—महर्षि कश्यप के कहने का अभिप्राय है कि बेटी शकुन्तले ! अब दुष्यन्त पर तुम्हारी प्रभुता, जादू काम करेगी, तुम इनकी पटरानी बनोगी, तुम्हारी बात इनके लिए महामन्त्र होगी

---

पाठा०—१. विदितार्थासि । २. करणीयः । ३. स्मृतिलोपरूक्षे ।

**राजा**—यथाह भगवान् ।

**मारीचः**—वत्स ! कच्चिदभिनन्दितस्त्वया विधिवदस्माभिरनुष्ठितजातकर्मा पुत्र एष शाकुन्तलेयः ।

**राजा**—भगवन् ! अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा ।

**मारीचः**—तथा भाविनमेनं चक्रवर्तिनमवगच्छतु भवान् । पश्य—

---

कृतः प्रसादः = निर्मलता यस्य स तस्मिन् दर्पणतले दर्पणस्य = आदर्शस्य तले = पृष्ठे न मूर्छति न प्रसरति शुद्धे तु निर्मले पुनः तस्मिन् सुलभावकाशः सुलभः = सुखप्राप्यः अवकाशः = स्थानं यथा तादृशी भवति अत्यन्तं व्यक्ता दृश्यते इत्यर्थः ।

**अयं भावः**-वत्से शकुन्तले ! सुलभकोपस्य महर्षेः दुर्वाससः शापप्रभावातिशयादेव पूर्वं दुष्यन्तेन त्वं निराकृतासि । तत्र तस्य नास्ति अणुरपि दोषः । तदानीं तस्य हृदयं दुर्वाससः शापप्रभावादज्ञानावृतमासीत्, परं सांप्रतमङ्गुलीयकदर्शनेन शापापगमेन अज्ञानेऽपगते तस्य विशुद्धे हृदये मृजावदाते निर्मले दर्पणे प्रतिबिम्बमिव त्वमेव लब्धावकाशा तस्य हृदयेश्वरी भूत्वा सुखमास्व त्वामन्तरा तस्य विशुद्धे हृदये नान्यस्याः कस्याश्चित् स्थानं स्थास्यतीतिभावः ।। ३२ ।।

**राजा**—यथाह भगवानिति = उचितं वदति श्रीमान् ।

**मारीचः**—वत्स != दुष्यन्त ! अस्माभिः=मया आश्रमस्थमुनिगणसाहाय्येन विधिवत्= यथाशास्त्रम् अनुष्ठितजातकर्मा अनुष्ठितं = सम्पादितं कृतं जातकर्म=जननोत्तरं सद्यः कार्यं जातकर्मसंस्कारः यस्य स अनुष्ठितजातकर्म पुत्रः = सुतः एषः = अयं शकुन्तलाया अपत्यं पुमान् शाकुन्तलेयः = शकुन्तलानन्दनः सर्वदमनः त्वया = भवता अभिनन्दितः कच्चित् ? = किम् ? उत्सङ्गादिना त्वया संभावितो भवतु इति मे कामः ।

**राजा**—वंशस्याविच्छेदमवजिगमिषुः मुनिं पृच्छति—भगवन् = महात्मन् ! अत्र खलु= शाकुन्तलेये बालके एव मे = मम वंशप्रतिष्ठा = कुलस्थितिः वंशगौरवं, पुरुवंशसन्ततेः अयं निदानम् ?

**मारीचः**—तथाभाविनं=वंशप्रतिष्ठाकरं, एनं = अमुं भविष्यन्तं चक्रवर्तिनं = सम्राजं च अवगच्छतु = जानातु भवान् = त्वम् । अयं तव वंशप्रतिष्ठाकरः चक्रवर्ती च भविष्यतीति भवता ज्ञातव्यमित्यर्थः ।

---

तुम्हारे पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् बनेगा इनका हृदय स्वच्छ हो गया । दुर्वासा के शाप से जायमान मोह के दूर हो जाने पर ये निर्मल मन से तुम्हारा सर्वविध कल्याण करेंगे । इनकी रूखाई में इनका दोष नहीं था, दुर्वासा का शाप ही कारण था ।

**राजा**—भगवन् ! आप जो कहते हैं वह सर्वथा सत्य है । ( अब इस शकुन्तला से पूर्ववत ही प्रेम करता हूँ । )

**मारीच**—वत्स दुष्यन्त ! क्या तू ने हमलोगों के द्वारा विधिपूर्वक किये गये जातकर्म संस्कार वाले इस शकुन्तला से उत्पन्न पुत्र का अभिनन्दन स्वीकार किया या नहीं ?

**राजा**—भगवन् ! इस पर ही मेरे वंश की प्रतिष्ठा निर्भर है अर्थात् यही मेरे राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा ।

**मारीच**—बेटा तुम इसी प्रकार इसे अपने वंश का प्रतिष्ठापक चक्रवर्ती समझना । देखो—

---

पाठा०—१. जातकर्मादिक्रियः ।

रथेनानुद्घातस्तिमितगतिना[1] तीर्णजलधिः
पुरा [2]सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः ।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—अयम् अप्रतिरथः अनुद्घातस्तिमितगतिना रथेन तीर्णजलधिः पुरा सप्तद्वीपां वसुधां जयति । इह सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः । पुनः लोकस्य भरणात् भरत इति आख्यां यास्यति ॥ ३३ ॥

राज्ञा दुष्यन्तेन निजतनयस्य सर्वदमनस्य वंशप्रतिष्ठाकरत्वमुद्दिश्य पृष्टो महर्षिः कश्यपः तस्य भाविफलं वर्णयन् आशंसते—रथेनेति । अयं = एषः शाकुन्तलेयः अप्रतिरथः न विद्यते प्रतिद्वन्दी रथो यस्य स अप्रतिहतरथः = अद्वितीयो महारथो निःसपत्नः, अनुद्घातस्तिमितगतिना = अस्खलितनिकम्पवेगेन रथेन = स्यन्दनेन तीर्णजलधिः तीर्णाः = लङ्घिताः जलधयः = समुद्राः येन स तीर्णजलधिः = उत्तीर्णसागरः पुरा = प्रथमं सप्तद्वीपां सप्त = सप्तसंख्याकानि जम्बूप्रभृतीनि द्वीपानि यस्यां सा तां सप्तद्वीपां वसुधां पृथिवीं जयति = जेष्यति । इह = आश्रमे सत्वानां = सिंहव्याघ्रादीनां प्राणिनां प्रसभदमनात् प्रसभं = हठेन बलात्कारेण दमनात् = अभिभवात् शासनात् सर्वदमनः = सर्वदमन इत्याख्यां प्राप्तः पुनः = भूयोऽपि लोकस्य=जनस्य भुवनस्य भरणात् = रक्षणात् पोषणाद्वा भरत इत्याख्यां = अभिधां यास्यति = गमिष्यति ।

अयं भावः—राज्ञा दुष्यन्तेन तस्य तनयस्य वंशप्रतिष्ठाकरत्वमुद्दिश्य परिपृष्टो महर्षिः कश्यपः तस्य भाविशुभफलं निर्दिशन्नाह—आयुष्मन् ! अयं शकुन्तलायां जातस्ते तनयो नूनं त्वद्वंशप्रसिष्ठापको भविष्यति । प्रथममयं वेगवता रथेन सप्तसागरां धरित्रीं विजित्यैक-

---

भविष्य में यह अद्वितीय महारथी होकर कहीं भी नहीं रुकने वाले अपने अस्खलित वेगवान् रथ से सातों समुद्रों को पार करके सातों द्वीपों से युक्त समस्त पृथ्वी के मण्डल को जीतेगा और हमारे इस आश्रम में तो सभी जीवों का बलात्कार से दमन करने के कारण इसका नाम सर्वदमन रखा गया है । आगे अपनी प्रजा का अच्छी तरह से भरण, पालन और पोषण करने के कारण यह भरत के नाम से विख्यात होगा ॥ ३३ ॥

**विशेष**—पौराणिक साहित्य के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी सात द्वीपों में विभक्त है, सातों द्वीप सात समुद्रों से घिरे हुए हैं । द्वीपों के नाम है जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप, और पुष्करद्वीप । इन द्वीपों के मध्यभाग में जम्बूद्वीप है उसमें नव वर्ष हैं, उन नव वर्षों के मध्यवर्ती इलावृत्तवर्ष के मध्य में स्वर्णमय सुमेरुगिरि है सुमेरु के ऊपरी भाग में स्वर्गपुरी की स्थिति कही गई है ।

कविवर कालिदास ने इस श्लोक के चतुर्थ चरण के अनुसार **'पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात्'** डुभृञ् धारण पोषणयोः धातु से भरत शब्द की निष्पति मानते हुए कहा है कि इन्हीं भरत के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा है और वायुपुराण भी इसी का स्पष्ट संकेत करता है कि प्रतापी राजा दुष्यन्त से शकुन्तला में उत्पन्न भरत से ही इस देश का नाम भारत हुआ है ।

चक्रवर्ती ततो यज्ञे दौष्यन्तिनृपसत्तम !
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम् । ९९।११३

---

पाठा०—१. °गतिनोत्तीर्णं । २. सप्तद्वीपामवति ।

**राजा**—भगवता कृतसंस्कारे सर्वमस्मिन् वयमाशास्महे ।

**अदितिः**—भअवं ! इमाए दुहिदुमणोरहसम्पत्तीए कण्णो वि दाव सुदवित्थारो करीअदु । दुहिदुवच्छला मेणआ इह एव्व उपचदंती चिट्ठदि । [ भगवन् ! अनया दुहितृमनोरथसंपत्त्या कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तारः क्रियताम् । दुहितृवत्सला मेनकेहैवोपचरन्ती तिष्ठति । ]

**शकुन्तला**—( आत्मगतम् ) मणोरहो खु मे भणिदो भअवदीए । [ मनोरथः खलु मे भणितो भगवत्या । ]

---

च्छत्रः सम्राट् भविष्यति । इदानीम् अस्मिन् ममाश्रमे सर्वेषां सिंहव्याघ्रादीनां सत्त्वानां दमनात् सर्वदमन इत्यभिधां गतः, अग्रे चासौ जनानां रक्षणात् भुवनस्य पालनात् भरत इति नाम्ना प्रसिद्धो भविष्यति तथा च महाप्रभावो दीर्घायुः सौभाग्यसम्पन्नोऽयं ते तनयो नूनं चक्रवर्ती राजा भविष्यति । अतो भवताऽस्य सौभाग्यविषये निश्चिन्तेन भाव्यमिति भावः । न कोऽपि संशयः कार्यः । अत्र स्वभावोक्ति-भाविककाव्यलिङ्गालङ्काराः शिखरिणी छन्दश्च ॥ ३२ ॥

**राजा**—भगवता = पूज्येन श्रीमता कृतः संस्कारो यस्य सः तस्मिन् कृतसंस्कारे = सम्पादितजातकर्मसंस्कारेऽस्मिन्नर्भके सर्वमाशास्महे = सकलं संभावयामि ।

**अदितिः**—भगवन् = स्वामिन् । अनया दुहितृमनोरथसम्पत्या दुहितुः = पुत्र्याः शकुन्तलायाः यो मनोरथः = अभिलाषः भर्त्रा प्रतिग्रहरूपः तस्य या सम्पत्तिः = सिद्धिः तया दुहितृमनोरथसम्पत्त्या = पुत्रीमनोरथसिद्धया कण्वः = शकुन्तलाधर्मपिता अपि तावत् श्रुतविस्तारः श्रुतः = आकर्णितः विस्तारः = व्यासोक्तिः, आमूलवर्णनं येन स श्रुतविस्तारः क्रियतां = विधीयताम् कण्वस्याप्येतदभ्युदयसंविभागो भवत्विति भावः । दुहितृवत्सला—दुहितरि वत्सला = स्नेहवती दुहितृवत्सला पुत्रीस्नेहवती मेनका इहैव = आश्रमे एव उपचरन्ती = अस्मान् सेवमाना श्रुतविस्तारैव तिष्ठति ।

**शकुन्तला**—( शकुन्तलाऽदित्युक्तमात्मगतमभिनन्दति ) मनोरथः खलु मे भणितो

---

[1] किन्तु श्रीमद्भागवत विष्णुपुराण आदि इस बात को नहीं मानते हैं उनका कहना है कि स्वायम्भुव मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत की वंशपरम्परा में ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र जडभरत हुए हैं, उन्हीं के नाम से इस देश का नाम भारत हुआ है—

> तेषां वै भरतः श्रेष्ठो नारायण परायण ।
> विख्यातं वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमुत्तमम् ॥ श्रीमद्भाग० ११।२१।१७

अपि च—ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ।
> भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम् ॥ वि. पु. २।१।३२

**राजा**—आपके द्वारा संस्कार किये गये इस बालक में हमलोग सब कुछ आशा करते हैं। जिसका संस्कार आपने हाथों से किया है, उससे सभी बातों की आशा है ।

**अदिति**—भगवन् ! अपनी पुत्री के पूर्ण हुए इस मनोरथ वैभव से कण्व को भी विदित करा देना चाहिए और पुत्री वत्सला मेनका तो हम लोगों की सेवा करती हुई यहीं उपस्थित है । अतः उसे तो ज्ञात हो ही जायेगी ।

**शकुन्तला**—( मन ही मन ) पूज्या अदिति ने वस्तुतः मनोरथ ही कह दिया । अर्थात् मेरे पिता महर्षि कण्व को भी इसकी सूचना अवश्य मिलनी चाहिए ।

**मारीचः**—तपःप्रभावात्प्रत्यक्षं सर्वमेव तत्रभवतः ।

**राजा**—अतः खलु मम नातिक्रुद्धो मुनिः ।

**मारीचः**—तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः । कः कोऽत्र भोः ।

( प्रविश्य )

**शिष्यः**—भगवन् अयमस्मि ।

**मारीचः**—गालव ! इदानीमेव विहायसा गत्वा मम वचनात्तत्रभवते कण्वाय प्रियमावेदय यथा—पुत्रवती शकुन्तला तच्छापनिवृत्तौ स्मृतिमता दुष्यन्तेन प्रतिगृहीता इति ।

---

भवत्या=यदहमिच्छामि तदेव भवत्या देव्या अदित्या भणितं=प्रस्तुतमित्यर्थः । मम हृदयेऽप्येवमस्ति यत्तातोऽवगच्छतु वृत्तान्तमिमम् ।

**मारीचः**—तपःप्रभावात् = तपस्यामहिम्ना तपोबलेन तत्र भवतः मान्यस्य कण्वस्य सर्वमेव = सकलमेव वृत्तम् प्रत्यक्षं=दृश्यम् । कण्वस्य महर्षेः सति ध्याने सकलमेव प्रत्यक्षमवगतं भवति । अतो न तत्र सन्देष्टव्यमित्यर्थः ।

**राजा**—अतः = अस्माद्धेतोः ध्यानबलाद्विदित सकलवृत्तान्तत्वादेव मुनिः = महर्षिः कण्वः नातिक्रुद्धः = नातिकुपित किन्तु लघुकोप एव, अत एव मां न शप्तवानित्यर्थः ।

**मारीचः**—अथ मारीचः लौकिकं विचारमनुस्मरन् ब्रवीति—तथापि कण्वे ध्यानबलात् विदितवृत्तान्तेऽपि असौ = स अस्माभिः प्रष्टव्यः = प्रियमेतद् वृत्तं विदितं किं ते इत्याभाषितव्य श्रावयितव्यो वा कः कोऽत्र भोः = क इह तिष्ठति ?

**शिष्यः**—भगवन् = श्रीमन् अयं = अहमस्मि उपस्थितोऽस्मि, आज्ञापयेत्यर्थः ।

**मारीचः**—गालव ! इदानीं = साम्प्रतम्, विहायसा = आकाशमार्गेण शीघ्रं गत्वा मम वचनात्=मम वचनमवलम्ब्य तत्र भवते मान्याय कण्वाय प्रियं=प्रियकरं वृत्तम् आवेदय= कथय यथा = यत् पुत्रवती = पुत्रसहिता शकुन्तला तच्छापनिवृत्तौ तस्याः शापः तच्छापः तस्य निवृत्तौ = समाप्तौ अवसाने स्मृतिमता = लब्धस्मृतिना दुष्यन्तेन प्रतिगृहीता = स्वीकृता इति ।

---

**मारीच**—यद्यपि अपने तप के प्रभाव से यह वृत्तान्त पूर्णरूप में भगवान् कण्व को पहले ही से विदित है ।

**राजा**—इसीलिए कण्वमुनि मेरे ऊपर अधिक क्रुद्ध नहीं हुए ।

**मारीच**—तथापि पुत्रसहित अपनी पुत्री शकुन्तला का उसके पति के द्वारा पुनः स्वीकार करलेने का शुभ समाचार हमें कण्व को सुनाना ही है । बाहर कौन है ?

**( प्रवेश करके )**

**शिष्य**—भगवन् मैं उपस्थित हूँ, क्या आज्ञा है ?

**मारीच**—गालव ! तुम अभी आकाशमार्ग से जाकर मेरी ओर से आदरणीय कण्व से यह प्रिय समाचार सुना दो कि पुत्रसहित शकुन्तला अपने शाप की समाप्ति पर स्मरण करने वाले दुष्यन्त के द्वारा प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर ली गई है ।

**शिष्यः**—यदाज्ञापयति भगवान्। ( इति निष्क्रान्तः। )

**मारीचः**—वत्स ! त्वमपि स्वापत्यदारसहितः सख्युराखण्डलस्य [1]रथमारुह्य ते राजधानीं प्रतिष्ठस्व।

**राजा**—( सप्रणामम् ) यदाज्ञापयति भगवान्।

**मारीचः**—अपि च—

तव भवतु विडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु
त्वमपि विततयज्ञो वज्रिणं प्रीणयस्व।
युगशतपरिवर्तानेवमन्योन्यकृत्यैः
नयतमुभय लोकानुग्रहश्लाघनीयैः॥ ३४॥

---

**शिष्यः**—भवान् = श्रीमान् यत् = यथा आज्ञापयति = आदिशति ( इति = इत्युक्त्वा निष्क्रान्तः = निर्गतः )

**मारीचः**—अथोपसंहर्तुमिच्छन् महर्षिः राजानं दुष्यन्तमूचे—वत्स ! = आयुष्मन्! त्वमपि = भवानपि स्वापत्यदारसहितः स्वस्य = आत्मनः अपत्येन = सन्तत्या पुत्रेण सर्वदमनेन दारैः = शकुन्तलाया च सहितः समेतः सख्युः = सुहृदः आखण्डलस्य = महेन्द्रस्य रथं = स्यन्दनमारुह्य ते = तव स्वस्य राजधानीं = प्रधाननगरीं प्रतिष्ठस्व = प्रयाहि।

**राजा**—यदाज्ञापयति भगवान् = श्रीमान् यत् = यथा आज्ञापयति = उपदिशति तथैव स्वां राजधानीं गमिष्यामीत्यर्थः।

**मारीचः**—अपि च—

**अन्वयः**—विडौजाः तव प्रजासु प्राज्यवृष्टिः भवतु, त्वमपि, विततयज्ञः ( सन् ) वज्रिणं प्रीणयस्व एवम् उभयलोकानुग्रहश्लाघनीयैः अन्योन्यकृत्यैः युगशतपरिवर्तान् नयतम्।

उभययोर्महेन्द्रदुष्यन्तयोः युवयोः पारस्परिकसहयोगेन विश्वकल्याणं भविष्यतीत्याशंसन् कश्यप आशिषं प्रयुङ्क्ते—**तवेति**। विडौजाः—वेवेष्टीति विट् = व्यापकम् ओजः = बलं तेजो वा यस्य सः यद्वा विशति भिनत्ति रिपूनिति विडम् = शत्रूभेदकम् ओजो यस्य स विडौजाः = इन्द्रः तव = भवतो दुष्यन्तस्य प्रजासु = जनेषु राष्ट्रे वा प्राज्यवृष्टिः प्राज्या = प्रभूता वृष्टिः = वर्षणं यस्य स प्राज्यवृष्टिः पर्याप्तवर्षः भवतु = काले काले प्रभूतं जलवर्ष-

---

**शिष्य**—आपकी जैसी आज्ञा। **( ऐसा कहकर निकल जाता है। )**

**मारीच**—**( राजा के प्रति )** बेटा, तुम भी अपने पुत्र और पत्नी को साथ लेकर अपने मित्र इन्द्र के रथ पर सवार होकर अपनी राजधानी हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान करो।

**राजा**—**( प्रणामपूर्वक )** भगवन् ! आपकी जैसी आज्ञा।

**मारीच**—और भी—

इस समय हमें तुमको यही आशीर्वाद देना है कि तुम्हारे राज्य में हमेशा इन्द्र यथेच्छ वर्षा करें और तुम भी बड़े-बड़े महान् यज्ञों को करके इन्द्र को सर्वदा प्रसन्न करते रहो। इस प्रकार तुम्हारा कार्य इन्द्र करें, तुम्हारे राज्य में उत्तम वृष्टि हो और तुम इन्द्र का यज्ञ आदि करते रहो।

---

पाठा०—१. रथमास्थाय।

**राजा**—भगवन् यथाशक्ति श्रेयसे यतिष्ये।

**मारीचः**—वत्स ! किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि।

**राजा**—अतः परमपि प्रियमस्ति ! यदिह भगवान् प्रियं कर्तुमिच्छति तर्हीद-मस्तु। ( भरतवाक्यम् )—

---

णेन भूमण्डलं पुष्यतु। त्वमपि = भवान् दुष्यन्तोऽपि विततयज्ञः वितताः = विस्तीर्णाः यज्ञाः = इष्टयो येन स विततयज्ञः=विस्तृतानेकयज्ञः, आहृतानेकाश्वमेधादियागः वज्रिणं= इन्द्रं प्रीणयस्व=प्रसादय उभयलोकानुग्रहश्लाघनीयैः उभयोः द्वयोः लोकयोः द्यावापृथिव्योः अनुग्रहेण = उपकारेण श्लाघनीयानि = प्रशंसनीयानीति उभयलोकानुग्रहश्लाघनीयैः = देवलोकभूलोकोपकारकप्रशंसनीयैः, अन्योन्यकृत्यैः अन्योन्यस्य परस्परस्य कृत्यैः = यज्ञादिभिः सुवर्षणादिभिश्च कार्यैः, युगशतपरिवर्तान् युगानां = कलिद्वापरत्रेतासत्य-युगानां शतानि युगशतानि तेषां परिवर्ताः = परिवृत्तयः इति युगशतपरिवर्तास्तान् युगशत-परिवर्तान् = अनेकयुगसहस्रपरिवर्तनानि नयतं = गमयतम्।

**अयं भावः**—महर्षिः कश्यपः द्वयोः लोकवीरयोः शुभाशंसनं कुर्वन्नुपदिशति—राजन् दुष्यन्त ! त्वमिन्द्रश्चोभावपि परस्परसौहार्देनोभयोः भूलोकस्वर्गलोकयोः कल्याणं कुर्वाणौ दीर्घकालमतिवाहयतम् युवयोश्च सहस्रं समाः परस्परं प्रीतिर्भवतादिति भावः। अत्र परि-वृत्तिरलङ्कारः मालिनी वृत्तञ्च॥

**राजा**—भगवान् ! = श्रीमन् ! यथाशक्ति शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति—यथासामर्थ्यम्, श्रेयसे = लोककल्याणाय यतिष्ये = भवदाज्ञानुसारं कार्यं कर्तुं प्रयतिष्ये।

**मारीचः**—एवं पत्नीपुत्रप्राप्तिप्रमुदितं मातलिना संयोजितं शक्रस्य स्यदनं समारुह्य स्वां राजधानीं हस्तिनापुरं प्रतिष्ठमानस्य राजर्षेः दुष्यन्तस्य प्रियचिकीर्षया पुनरपि पृच्छति महर्षिः कश्यपः—वत्स ! = आयुष्मन् ! ते = तव भूयः = पुनरपि पत्नीपुत्रप्राप्त्यधिकं प्रियम् = अभीष्टमुपकरोमि।

**राजा**—अतः परमपि अस्मात् मनोरथसिद्धेः आशिषश्च परं = अधिकम् प्रिय-मस्ति ? = प्रियमस्ति किम् ? नास्त्येवेति काकुः। तथापि यदि = चेत भवान् किमपि = प्रियं चिकीर्षत्येव तर्हि इदं = वक्ष्यमाणं। ( भरतवाक्यं = भरतस्य नटस्य वाक्यं = वचनं मङ्गलाशंसनात्मकम् ) अस्तु = जायताम्।

---

इस क्रम में तुम दोनों स्वर्ग एवं भूतल दोनों लोकों के उपकार के कारण अपने-अपने प्रशंसनीय कार्यों से सैकड़ों वर्ष बताओ॥ ३४॥

**विशेष**—पुराणों में कालमान की गणना के अनुसार युग चार होते हैं—सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। इन चारों युगों के बीतने को एक चौकड़ी कहते हैं। ये एक के बाद एक आते हैं। इस प्रकार यह चौकड़ी निरन्तर आती-जाती रहती है। महर्षि कश्यप के कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार तुम लोग दोनों लोकों का उपकार करते हुए सैकड़ों चौकड़ा व्यतीत करो।

**राजा**—मैं अपनी शक्ति भर लोकमङ्गल के लिए हमेशा प्रयास करता रहूँगा।

**मारीच**—वत्स ! अच्छा कहो, मैं इससे अधिक और क्या तुम्हारा प्रियकारक उपकार करूँ।

**राजा**—भगवन् ! इससे भी अधिक और क्या भला हो सकता ? यदि आप कुछ और भी उपकार करना चाहते हैं तो यह भी हो—

**प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः सरस्वती श्रुतिमहतां महीयसाम्[1]।**
**ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं [2]परिगतशक्तिरात्मभूः ॥ ३५ ॥**

---

**अन्वयः**—पार्थिवः प्रकृतिहिताय प्रवर्तताम् । श्रुतिमहतां सरस्वती महीयताम् । परिगतशक्तिः आत्मभूः नीललोहितः ममापि च पुनर्भवं क्षपयतु ॥ ३४ ॥

महर्षेः कश्यपस्य प्रभावात् सफलमनोरथोऽपि राजा दुष्यन्तो पुनरपि प्रियं प्रार्थयते-**प्रवर्ततामिति**—पार्थिवः-पृथिव्यामीश्वरः पार्थिवः = क्षितिपतिः प्रकृतिहिताय प्रकृतिः = प्रजा तस्याः हिताय=कल्याणाय श्रेयसे प्रवर्तताम्=प्रवृत्तो भवतु श्रुतिमहतां=श्रुत्या वेदज्ञानेन शास्त्रश्रवणेन वा महतां=वरिष्ठानां सरस्वती = वाणी यद्वा श्रुतिमहता = श्रोत्रेन्द्रियपूजिता, चमत्कारिणी सरस्वती = कविवाणी, महीयताम् = उत्कृष्टं गौरवं लभताम् यद्वा श्रुतिमहता = वेदवर्णिता सरस्वती = भगवती शारदा न हीयताम् = नाल्पसारा भवतु ! परिगत-शक्तिः परिगता=मिलिता, नित्यसमवायिनी शक्तिः शिवा, यस्य स परिगतशक्तिः यद्वा परितः = सर्वतः गताः = व्याप्ताः शक्तयो यस्यासौ परिगतशक्तिः = सर्वशक्तिसम्पन्नः आत्मभूः-आत्मना = स्वयं भवतीत्यात्मभूः = स्वयम्प्रकाशः नीललोहितः-वामे नीलः दक्षिणे लोहितः इति नीललोहितः = भगवान् सदाशिवः ममापि = सूत्रधारस्य कवेः कालिदासस्य च पुनर्भवं = पुनर्जन्म, जन्मान्तरं नाशयतु ।

**अयं भावः**—दयासिन्धो महर्षे ! भवदीयानुग्रहादहं सफलाभिलाष सम्पन्नः नातः परं किमपि प्रार्थनीयमस्ति । तथापि यदि भवान् प्रियं चिकीर्षति तर्हीदमस्तु—समस्ताः पृथ्वीपतयः स्वसुखनिरपेक्षाः सन्तः प्रजानामेव श्रेयसे सर्वदा प्रवर्तन्ताम्, महाकवीनां

---

राजा लोग प्रजा के हित कार्यों में हमेशा लगे रहें, चारों वेदों में गीयमान कीर्ति भगवती सरस्वती जगत् में पूजा को प्राप्त हों, या वैदिक वाङ्मय में प्रशंसित महान् कवियों की वाणी गौरव-मण्डित हो। और सर्वशक्तिमान् स्वयम्भू भगवान् सदाशिव मेरे पुनर्जन्म को = जन्मान्तर प्राप्ति को समाप्त करें। अर्थात् भगवान् शिव की कृपा से मेरा जन्म-मरणरूप भवबन्धन हमेशा के लिए छूट जाय।

**विशेष**—नाटक के आदि और अन्त में मङ्गलाचरण प्रशस्त माना गया है। तदनुसार इस नाटक के आदि में नान्दी और अन्त में भरतवाक्य मंगल के रूप में प्रयुक्त है।

नाटकों के भरतवाक्यों में प्राणिमात्र की भलाई की कामना निहित रहती है। नाटकों में अन्तिम श्लोक जो प्रशस्ति के रूप में आता है, उसे भरतवाक्य कहते हैं। भरत नट को कहते हैं, नाटक के अन्त में समस्त अभिनेता एक साथ जो मङ्गलकामना करते हैं, उसे भरतवाक्य कहते हैं या नट लोग नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के निमित्त अपने वाक्य को भरतवाक्य कहते हैं।

**इस** भरतवाक्य में श्रुतिमहती शब्द के दो अर्थ हैं—एक वेदों में प्रतिपादित महत्त्वशाली **संस्कृत विद्या** तथा दूसरा अर्थ वैदिक वाङ्मय में स्थित समृद्ध संस्कार विद्या तथा आत्मभू शब्द का तात्पर्य **है**—विना किसी तत्त्व अथवा विना किसी की सहायता के स्वयं अपनी इच्छा से जन्म धारण करने वाले। अतः आत्मभू शब्द कभी ब्रह्मा जी के लिए, कभी विष्णु के लिए और कभी शिव के लिए आवश्यकतानुसार प्रयुक्त होता रहता है। प्रकृत में आत्मभू शब्द का अर्थ है अनादिदेव भगवान् शिव जी।

---

पाठा०—१. महीयताम् । २. परिगतभक्तिरात्मभूः

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

( सप्तमोऽङ्कः )

**समाप्तमिदमभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकम् ।**
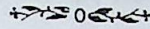
---

सरसाः कविताश्च सहृदयानां हृदयेषु चमत्कारं जनयित्वा विशिष्टसम्मानं लभन्ताम्, सर्वशक्तिशाली पार्वतीपतिः परमेश्वरश्च जन्मान्तरं निरस्य शाश्वतं पदं दिशत्विति शम् । अत्र समुच्चयालङ्कारः रुचिरा वृत्तश्चास्ति ॥ ३५ ॥

इति कविवरकालिदासप्रणीतस्याभिज्ञानशाकुन्तलनामकनाटकस्य
सप्तमेऽङ्के पं० श्रीकृष्णमणित्रिपाठिना संस्कृते कृता
विमलाख्या व्याख्या समाप्ता ।

इत्थं समाप्तमिदमभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकम् ।

---

पुराणों ने अनुसार अमृत पानकर अमर होने के निमित्त देवता एवं दानवों द्वारा किये गये समुद्रमन्थन के अवसर पर अमृत निकलने के पूर्व निर्गत विष से चराचर जगत् को उसके शमन के लिए देवता तथा दानवों की प्रार्थना पर दयालु भगवान् शङ्कर ने विषपान कर लिया था। तदनुसार शिवजी के गले में अटके हुए उस हलाहल विष से उनका कण्ठ काला पड़ गया और उनकी जटा लाल हो गई। इसलिए वे परम कृपालु शिवजी नीललोहित कहे जाते हैं।

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् ।
अभक्षयन् महादेवः कृपया भूतभावनः ॥ ( ८।७।४२ )
यस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ।
यच्चकार गले नीलं तच्च साधो विभूषणम् ॥ ( ८।७।४३ )

इस प्रकार कविवर कालिदास द्वारा प्रणीत अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नाटक में
सप्तम अङ्क पर पं० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी द्वारा की गयी राष्ट्रभाषा
हिन्दी में सुधा नामक व्याख्या समाप्त।

**अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नाटक समाप्त ।**
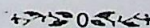
# परिशिष्टम्

## सुभाषित-वाक्यानि

अङ्गुलीयकमेवनिदर्शनमवश्यं भाव्यचिन्तनीयः समागमो भवति ।

अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेत्० ।

अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम० ।

अतिस्नेहः पापशङ्की ।

अत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा ।

अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि ।

अनतिक्रमणीयं मे सुहृद्वाक्यम ।

अनार्यः परदारव्यवहारः ।

अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम ।

अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् ।

अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि ।

अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विबुद्धम् ।

अन्यमेव भागधेयमेते तपस्विनो निर्वर्णयन्ति यो रत्नराशीनपि विहायाभिनन्द्यते ।

अपरिचितस्यापि तेऽप्रतिलोमः संवृत्तः ।

अपूर्वः खलु वो निग्रहाः ।

अरण्ये मया रुदितम् ।

अर्थो हि कन्या परकीय एव ।

अवश्यंभाव्यचिन्तनीयः समागमो भवति ।

अवसरोपसर्पणीया राजानः ।

अस्य बालस्य तेऽपि संवादिनी आकृतिरिति विस्मितास्मि ।

अस्त्येतद् अन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम् ।

अहं तु तामाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि ।

अहो कामी स्वतां पश्यति ।

अहो चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः ।

अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः ।

अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् ।

आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्तिहरेण भवितव्यम् ।

आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः ।

आशङ्कसे यदग्नि तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ।

इदं तत् प्रत्युत्पन्नमतिस्त्रैणमिति यदुच्यते ।

इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ।

उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना ।

उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः ।

उपपन्नः खल्वस्याङ्गुलीयकागमः ।

उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ।

एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते ।

एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्तिनीनामनृतमयावाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः ।

एष दास्याः पुत्रः कुसुमरसपाटच्चरः तत्र भवत्या वदनकमलमभिलंघते ।

एष नामानुग्रहो यच्छूलावतायं हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः ।

एषोऽत्रभवान् नदीमतिक्रम्य मृगतृष्णिकां संक्रान्तः ।

ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्यः ।

क इदानीं शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति ।

क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते ।

कथमिदानीं तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि ।

कदापि सत्पुरुषाः शोकवास्तव्या न भवन्ति ।

कष्टं खल्वनपत्यता ।

कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तयितुं चिन्तयति ।

कादम्बरी साक्षिकमस्माकं प्रथमसौहार्दमिष्यते ।

किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः ?

किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तते ।

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।

किमीश्वराणां परोक्षम् ।

को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति ।

कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति ।

गण्डस्योपरि पिण्डकः संवृत्तः ।

गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति ।

ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुदवतीं दिवसः ।

छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे ।

तपः षडभागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः ।

तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ।

तात ! शकुन्तला विरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशाव ।

तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्याम ।

त्रिशङ्कुरिवान्तराले तिष्ठ ।

दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ।

दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावके एवाहुतिः पतिता ।

न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम ।

ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः ।

न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ।

नरनासिका लोलुपस्य जीर्णऋक्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यसि ।

पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे ।

पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते ।

प्रतिपत्रमाधीयतां यत्नः ।

प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ।

बहुल्लभा राजानः श्रूयन्ते ।

भवानेवाविनीतानां शासिताऽस्य वारणे प्रभविष्यति ।

भवितव्या खलु बलवती ।

भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ।

भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ।

मनोरथा नाम तटप्रपाताः ।

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।

मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु ।

रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः ।

राजरक्षितव्यामि तपोवनानि नाम ।

राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव ।

लभेत प्रार्थयिता न वा श्रियं ।

लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ।

वत्से ! सुशिष्यपरिदत्ताविद्येवाशोचनीया संवृत्ता ।

वयं तत्त्वान्वेषी मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ।

वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ।

विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य ।

विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम ।

विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति ।

शिखण्डके ताडयमानस्याप्सरसा वीतरागस्येव नास्तीदानीं मे मोक्षः ।

शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा ।

श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् ।

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।

सदृशमेतत् पुरुवंशप्रदीपस्य भवतः ।

सन्ततिच्छेदनिरवलम्बानां कुलानां मूलपुरुषावसाने सम्पदः परपुरुषमुपतिष्ठन्ते ।

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम् ।

सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति ।

सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तुः ।

सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति द्वावप्यत्रारण्यकावेव ।

सर्वास्ववस्थासु रमणीयताकृतिविशेषाणाम् ।

सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति ।

सुविहित प्रयोगतयार्यस्य न किमपि परिहास्यते ।

स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति ।

स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशंकया ।

स्वयमक्ष्याकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि ?

स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः ।

# सुभाषित-श्लोकाः

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः ।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ॥ ५।२४

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम् ।
कां निर्वृतिं चेतसि तस्य कुर्यात् यस्यायमङ्कात् कृतिनः प्ररूढः ॥ ७।१९

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥ १।२

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा, यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण प्रवृत्तयः ॥ १।२५

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैरव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन् ।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ॥ ७।१७

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेतुमृषिर्व्यवस्यति ॥ १।१८

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव ।
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् ॥ ५।६

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि ।
तमस्तपति धर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ॥ ५।१४

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः ।
परिहासविजल्पितं सखे ! परमार्थेन न गृह्यतां वचः ॥ २।१८

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः ॥ ६।३१

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद्यज्ञभागेश्वरम् ।
यस्मिन्नात्मभुवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
द्वन्द्वं दक्षमरीचिसम्भवमिदं तत्स्रष्टुरेकान्तरम् ॥ ७।२७

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ ५।१२

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव रात्रिंदिवं गन्धवहः प्रयाति ।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः ॥ ५।४

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः ।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥ १।२५

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः ॥ २।५

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान् पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥ ५।२

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यजोऽभिभवाद् वमन्ति ॥ २।७

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ ४।१७

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥ ५।१७

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्मलक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ १।२०

सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम् ।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः ॥ ६।१

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥ ७।४

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥ ५।२२

# नाट्यशास्त्र के कुछ पारिभाषिक शब्द

**नान्दी**—नाटक के आरम्भ में जिस पद्य के द्वारा देवता राजा आदि का अभिनन्दन किया जाय, उसे नान्दी कहते हैं—नन्द्यन्ते = स्तूयन्ते देवतादयो यस्यामिति नान्दी। साहित्यदर्पण में विश्वनाथ भट्टाचार्य ने नान्दी की परिभाषा इस प्रकार की है—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥ ६।२४

अर्थात् ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए आशीर्वादात्मक वाक्यों से युक्त नाटक के आरम्भ में की गई देवता, ब्राह्मण, नृप आदि की माङ्गलिक प्रार्थना को नान्दी कहा जाता है। इस नान्दी के लिए अपेक्षित है कि इसके द्वारा शङ्ख, चन्द्र, पद्म, चक्रवाक, कैरव आदि मङ्गलास्पद वस्तुओं की अभिव्यञ्जना हो जाय। नान्दी चतुःपदा, अष्टपदा तथा द्वादशपदा भी होती है। जैसे—

माङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्ज कोककैरवशंसिनी।
पदैर्युक्ताद्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत॥ सा० द० ६।२५

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में कहा है कि—

देवद्विजनृपादीनामाशीर्वादपरायणा।
नन्दन्ति देवता यस्मात्तस्मान्नन्दीति संज्ञिता॥

काव्यप्रदीप में लिखा है कि—

नन्दन्ति काव्यानि कवीन्द्रवर्गाः कुशीलवाः पारिषदश्च सन्तः।
यस्मादलं सज्जन सिन्धुहंसी तस्मादियं सा कथितेव नान्दी॥

**सूत्रधारः**—नाटक का वह प्रधान नट जो नाटकीय कथा वस्तु के भिन्न-भिन्न उपकरणों के सूत्र को सभाले रहता है, उसे सूत्रधार कहते हैं—सूत्रं धारयतीति सूत्रधारः। जैसे—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते॥

अर्थात् नाट्य के विभिन्न उपकरणों को सूत्र कहते हैं और जो पात्र उन्हें सँभालना है उसे सूत्रधार कहते हैं। सूत्रधार की अन्य सरल एवं संक्षिप्त परिभाषा यह है कि प्रधान नट विशेष को सूत्रधार कहते हैं जो सर्वप्रथम रंगमञ्च पर आकर वर्णनीय कथावस्तु की सूचना देता है।

वर्णनीयं कथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रंगभूमिं समासाद्य सूत्रधारः स उच्यते॥

जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् पिशेल साहब ने कठतुतली के नाच से नाटकों की उत्पत्ति मानी है। कठपुतली के नाच में व्यवस्थापक नचानेवाला सूत्र ( डोरी ) पकड़कर पुतलियों को नचाता है। इस आधार पर उसे सूत्रधार कहते हैं। शारदातनय के अनुसार वह कथावस्तु, नायक, रस आदि का सूत्र अर्थात् संक्षेप में वर्णन करता है अतः उसे सूत्रधार कहते हैं—

सूत्रयन् काव्यनिक्षिप्तवस्तुनेतृकथारसान्।
नान्दीश्लोकेन नान्यन्ते सूत्रधार इति स्मृतः॥

इस प्रकार सूत्रधार रंगमञ्च का प्रधान अधिकारी और व्यवस्थापक ही नहीं होता है अपितु वह रंगमञ्च को सजाने की कला में भी प्रवीण होता है। वह नाटक के नायक, कवि और कथावस्तु के गुणों का संक्षेप में वर्णन करता है—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः।
रंगप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इहोदितः॥

**प्रस्तावना**—जिसमें नाटक की कथावस्तु को प्रस्तुत किया जाय, उसे प्रस्तावना या आमुख कहते हैं। जैसे—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा॥

अर्थात् नाटक का वह भाग जिसमें नाटक प्रारम्भ होने के पहले नटी विदूषक या परिपार्श्वक अपने प्रस्तुत कार्य के सम्बन्ध में सुन्दर एवं रोचक शब्दों में सूत्रधार के साथ वार्तालाप करते हैं उसे आमुख या प्रस्तावना कहते हैं। इसमें विचित्र उक्तियों के द्वारा वार्तालाप होता है तथा बड़े कौशल से नाटक आरम्भ होता है—

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम्।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्॥

**प्रयोगातिशय**—यदि किसी एक ही प्रयोग में अन्य प्रयोग आरम्भ हो जाय और उसी के द्वारा पात्र का प्रवेश कराया जाय तो उसे प्रयोगातिशय कहते हैं। जैसे—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा॥

प्रयोगातिशय प्रस्तावना का ही एक भेद है।

**विष्कम्भक**—विष्कम्भक नाटक के किसी भी अङ्क के आदि में आने वाला वह भाग है, जिसमें मध्यम श्रेणी के दो पात्रों द्वारा पारस्परिक वार्तालाप में बीती हुई या आनेवाली नाटकीय कथा वस्तु से सम्बद्ध घटनाओं की सूचना दी जाती है।

विष्कम्भक दो प्रकार का होता है, एक शुद्ध विष्कम्भक दूसरा सङ्कीर्ण विष्कम्भक शुद्ध विष्कम्भक उसे कहते हैं, जिसमें एक या दो पात्र माध्यमश्रेणी के हों और संस्कृत भाषा का ही प्रयोग करते हों। सङ्कीर्ण विष्कम्भक वह होता है जिसम

एक पात्र मध्यम श्रेणी का हो तथा दूसरा निम्न श्रेणी का। इसमें प्राकृत तथा संस्कृत दोनों भाषाओं का प्रयोग होता है—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यप्रकल्पितः॥

**प्रवेशक**—प्रवेशक भी विष्कम्भक के समान अतीत या भावी कथांशों का सूचक है। इसमें प्रयुक्त शक्ति उदात्त नहीं होती। इसकी भाषा सदा प्राकृत होती है और इसमें नीच पात्रों का प्रयोग होता है। प्रवेशक की योजना हमेशा दो अङ्कों के बीच में ही होती है यह भी शेष अर्थों का सूचक है—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥

**अङ्कावतार**—कभी-कभी पात्रों द्वारा एक अङ्क के अन्त में अगले अङ्क के अभिनय का आभास मिलता है, जिसे अङ्कावतार कहते हैं—

अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः।

जिस अङ्क में अङ्कावतार होता है, उस मे प्रवेशक तथा विष्कम्भक नहीं होते।

**स्वगत**—कभी-कभी रंगमञ्च का पात्र अपने मन की गुप्त बातों को प्रकाश में लाने के लिए दूसरी ओर मुँह फेरकर इस तरह बात करता है जिसको दर्शक तो सुन लेते हैं, पर रंगमञ्च के अन्य पात्र नहीं सुन पाते। स्वगत का प्रयोग कथा-वस्तु के उस भाग के लिए होता है जो किसी भी पात्र को नहीं सुनाया जाता। इससे पात्र विशेष के मानसिक भावों की झलक मिलती है। इस प्रकार स्वगत मन ही मन बोलना कहलाता है—

अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।

**प्रकाश**—प्रकाश सर्वश्राव्य नाटकीय कथावस्तु का वह भाग है, जिसका रंगमञ्च के सभी पात्रों को सुनाना अभीष्ट है। प्रकाश का वास्तविक अर्थ है प्रगट रूप में सुनाने के लिए जो बात कही जाय। धनञ्जय ने दशरूपक में प्रकाश और स्वगत का लक्षण इस प्रकार किया है—

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम्।

**जनान्तिक**—जनान्तिक एक नाटकीय पारिभाषिक शब्द है, जो नियत व्यक्तियों को ही सुनाने के लिए प्रयुक्त होता है। इसका प्रयोग वहाँ होता है जहाँ पर कोई पात्र रंगमञ्च पर स्थित अन्य पात्रों से किसी बात को छिपाने के लिए एक ओर होकर किसी पात्र से शनैः शनैः बात करता है। इसकी परिभाषा दशरूपक में धनञ्जय ने इस प्रकार दी है—

त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योऽन्यं मन्त्रणं यत् स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्॥

**अपवारितम्**—अन्य व्यक्तियों की ओर मुँह फेर कर किसी पात्र विशेष के प्रति जो किसी गुप्त रहस्य का प्रकाशन किया जाता है उसे अपवारित कहते हैं। इसकी परिभाषा विश्वनाथ भट्टाचार्य ने अपने साहित्यदर्पण में इस प्रकार की है—

……………………तद्भवेदपवारितम् ।
रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते ॥

और नाट्यदर्पण में लिखा है कि जो बात पात्र विशेष से छिपाकर अन्य पात्रों से कही जाती है उसे अपवारित कहते हैं—

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम् ।

**पूर्वरङ्ग**—नाटकीय कला की अवतारणा से पहले नटवृन्द रङ्गभूमि के विघ्नों को दूर करने के निमित्त जो कुछ भी करते हैं उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं। विश्वनाथ भट्टाचार्य ने साहित्यदर्पण के छठे परिच्छेद में पूर्वरङ्ग की परिभाषा इस प्रकार की है—

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥

**अङ्क**—नाटक की पूरी घटनाओं के विकास को कई भागों में विभक्त कर देने पर प्रत्येक भाग को अङ्क कहते हैं। प्रत्येक अङ्क में नायक तथा नायिका आदि पात्रों के चरित्र का प्रदर्शन होता है और प्रत्येक अङ्क में एक ही रस की प्रधानता होती है—

अङ्क इति रूढशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात्तस्माद् भवेदङ्कः ॥

**अर्थप्रकृतियाँ और सन्धियाँ**—नाटक में प्रधान कथावस्तु नायक का कोई न कोई लक्ष्य होता है उसे ही फल कहते हैं। उस फल की सिद्धि के उपाय ही अर्थप्रकृतियाँ हैं। ये पाँच हैं, बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। अर्थप्रकृतियों के साथ सम्बन्ध होने पर सन्धियों का उद्भव होता है सन्धियाँ भी पाँच होती हैं—मुखसन्धि, प्रतिमुखसन्धि, गर्भसन्धि, अवमर्ष-सन्धि तथा उपसंहार—

अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः ।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्या पञ्चसन्धयः ॥
मुख-प्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः ।

**बिन्दु**—जहाँ किसी दूसरी कथा से विच्छिन्न हो जाने पर इतिवृत्त को जोड़ने एवं आगे बढ़ाने में जो कारण होता है, वह बिन्दु कहलाता है। यह अच्छेद कारण बिन्दु वृत्त में आगे जाकर ठीक वैसे ही प्रसारित होता है जैसे तेल की बूँद पानी में फैल जाती है। इसीलिए इसे बिन्दु कहते हे—

अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ।

**बीज**—नाटक के आरम्भ में स्वल्परूप से सङ्केतित वह तत्त्व जो नाटक के फल के कारण है और इतिवृत्त में अनेक रूप से पल्लवित होता है, उसे बीज कहते हैं। अल्प रूप में निर्दिष्ट हेतु बीज वृत्त के फल का साधक है और वृक्ष के बीज के समान पल्लवित होकर अनेक शाखी वृक्ष की तरह वृक्ष के रूप में बढ़ता है—

अल्पमात्रं समुदिष्टं बहुधा यद्विसर्पति ।
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजमित्यभिधीयते ॥

**नायक**—नाटक का नायक त्यागी, यशस्वी, उच्चकुल में उत्पन्न, रूपयौवन शोभासम्पन्न उत्साही, चतुर, प्रजाओं में अनुरागपूर्ण, तेजस्वी, वाक्चतुर और शीलवान् होता है। जैसे—

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता ॥

**विदूषक**—नाटक का विदूषक कुसुम, वसन्त आदि नामवाला होता है। वह अपने कार्य, शरीर, वेश, भाषा आदि के द्वारा हास्योत्पादक, कलहप्रेमी तथा स्वकर्मज्ञ मधुर भोजन आदि का इच्छुक होता है—

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

**कञ्चुकी**—कञ्चुकी उस कार्यकुशल व्यक्ति को कहते हैं, जो जाति से ब्राह्मण वृद्ध सर्वगुणसम्पन्न एवं कार्यकुशल हो। राजा के अन्तःपुर में नियुक्त प्रबन्धक कञ्चुक पहनता है। अतः उसे कञ्चुकी कहते हैं। भरतमुनि ने अपने नाटयशास्त्र में कञ्चुकी की यह परिभाषा दी है—

अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥

विश्वनाथ कविराज ने कहा है कि कञ्चुकी रनिवास का संरक्षक वह वृद्ध व्यक्ति होता है जो सत्यवादी कामदोषरहित, व्यवहार कुशल तथा विवेकशील पुरुष हो—

ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नाः कञ्चुकीयास्तु ते मताः ॥

**कथावस्तु या इतिवृत्त**—कथावस्तु या इतिवृत्त उसे कहते हैं, जो रूपकों का भेदक हो। कथावस्तु दो प्रकार की होती है (१) आधिकारिक (२) प्रासङ्गिक। आधिकारिक कथावस्तु मुख्य होती है तथा प्रासङ्गिक गौण, कहा भी है—

इत्याद्यशेषमिह वस्तुविभेदजातं रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथाञ्च ।
आसूत्रयेत्तदनु नेतृरसानुगुण्यां चित्रां कथामुचितचारुवचः प्रपञ्चैः ॥

**भरतवाक्यम्**—भरतवाक्य संस्कृत साहित्य में नाटकों के अन्त में आने वाले इस पद्य के लिए प्रयुक्त होता है, जिसमें राष्ट्र की गौरवपूर्ण सर्वविध समृद्धि के निमित्त किसी नाटकीय पात्र के द्वारा सामाजिकों की शुभाशंसा की जाती है। नाटयशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि के प्रति सम्मान प्रदर्शनार्थ ही इस अन्तिम पद्य को भरतवाक्य कहा जाता है। अथवा नाटक के किसी नटविशेष भरत की उक्ति होने के कारण इसे भरतवाक्य कहते हैं।

# श्लोकानुक्रमणिका

# टीकाकर्तुर्वंशपरिचयः

पुराणादिषु शास्त्रेषु सङ्गीतयशसो मुदा ।
देवश्लाघ्यस्य दिव्यस्य सर्वप्राणिहितैषिणः ॥ १ ॥
भारतस्योत्तरे भागे देवरियाख्यमण्डले ।
धर्मागतछपरायां प्रसिद्धायां स्वमण्डले ॥ २ ॥
धन्यधान्यादिना पूर्णे सदाश्चारमनोरमे ।
कुवेरनाथसविधे त्रिपाठिब्राह्मणान्वये ॥ ३ ॥
रमेशमणिविदुषः प्रख्यातस्य सुकीर्तये ।
नागेश्वरमणिर्विद्वान् तनयोऽभूद् द्विजाग्रणी ॥ ४ ॥
तदात्मजाश्च चत्वारो जाता विद्याविशारदाः ।
शीलसौजन्यसम्पन्ना विनीता बुद्धिशालिनः ॥ ५ ॥
बलदेवः सुदामा च भरोसापण्डितस्तथा ।
चतुर्थोऽस्ति श्रीकृष्णमणि शास्त्री प्रसन्नधीः ॥ ६ ॥
माता फूलमती देवी श्रीमती शुभलक्षणा ।
अजीजनत् सुतानेतान् मोदनिर्भरमानसा ॥ ७ ॥
चत्वारो भ्रातरो ह्येते लोककल्याणकारिणः ।
सर्वेऽपत्यकलत्रादिसुखिनः सौम्यमूर्तयः ॥ ८ ॥
वात्सल्यस्नेहभाक् तेषु कनीयान् ग्रन्थलेखकः ।
श्री श्रीकृष्णमणिर्वाग्मी काशीवासी सुधीवरः ॥ ९ ॥
एतस्याप्यद्भुताः सन्ति तनया भाग्यशालिनः ।
विजयश्च सुरेशश्च महेशश्च दिनेशकः ॥ १० ॥
प्रासोष्ट शुभगानेतान् द्वे सुते अपि शोभने ।
चन्द्रकलां च सावित्रीं राजदेवी मुदान्विता ॥ ११ ॥
सर्वसौभाग्यसम्पन्ना गृहिणी धर्मचारिणी ।
रससन्ततिमाता सा मोदमाप्नोति सर्वदा ॥ १२ ॥
एतेषु विजयास्ति पुत्रो विनयनामकः ।
बालविद्यालयेऽधीते वयस्यैर्मोदमावहन् ॥ १३ ॥
कुवेरनाथकृपया विप्राणां च प्रसादतः ।
स्वधर्मकर्मनिरतो वंशोऽयं भ्राजते भुवि ॥ १४ ॥

# अभिज्ञानशाकुन्तलस्यातिलघूत्तरीयाणि लघूत्तरीयाणि च प्रश्नोत्तराणि

## अतिलघूत्तरीयाणि प्रश्नोत्तराणि

**(१) प्रश्नः—अभिज्ञानशाकुन्तलस्य रचयिता कः ?**
**उत्तरम्**—अभिज्ञानशाकुन्तलस्य रचयिता **महाकविः कालिदासः**।

**(२) प्रश्नः—पुरा कवीनां गणना प्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितः कः ?**
**उत्तरम्**—पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितः **कालिदासः**।

**(३) प्रश्नः—अद्यापि कथमनामिका सार्थवती बभूव ?**
**उत्तरम्**—अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव।

**(४) प्रश्नः—कालिदासस्य का प्रसिद्धा ?**
**उत्तरम्**—कालिदासस्य **उपमा** प्रसिद्धा।

**(५) प्रश्नः—अभिज्ञानशाकुन्तले कोऽङ्गी रसः ?**
**उत्तरम्**—अभिज्ञानशाकुन्तले **शृङ्गारो**ऽङ्गी रसः।

**(६) प्रश्नः—अभिज्ञानशाकुन्तले कः नायकः ?**
**उत्तरम्**—अभिज्ञानशाकुन्तले **दुष्यन्तः** नायकः।

**(७) प्रश्नः—दुष्यन्तः कीदृशः नायकः ?**
**उत्तरम्**—दुष्यन्तः **धीरोदात्तः** नायकः।

**(८) प्रश्नः—अभिज्ञानशाकुन्तलस्य नायिका का ?**
**उत्तरम्**—अभिज्ञानशाकुन्तलस्य नायिका **शकुन्तला**।

**(९) प्रश्नः—शकुन्तला कीदृशी नायिका ?**
**उत्तरम्**—शकुन्तला **स्वीया** नायिका अस्ति।

**(१०) प्रश्नः—कालिदासस्य किं सर्वस्वम् ?**
**उत्तरम्**—कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्।

**(११) प्रश्नः—काव्येषु किं रम्यम् ?**
**उत्तरम्**—काव्येषु नाटकं रम्यम्।

**(१२) प्रश्नः—नाटकेषु किं रम्यम् ?**
**उत्तरम्**—नाटकेषु रम्यं शाकुन्तलम्।

**(१३) प्रश्नः—महाकवि कालिदासेनाभिज्ञानशाकुन्तलस्य कथानकं कुतः सङ्गृहीतम् ?**

**उत्तरम्**—महाकविकालिदासेनाभिज्ञानशाकुन्तलस्य कथानकं **महाभारतस्या-दिपर्वणः शाकुन्तलोपाख्यानात्** सङ्गृहीतम्।

**(१४) प्रश्नः—अभिज्ञानशाकुन्तलं रूपकस्य कः भेदः ?**

**उत्तरम्**—अभिज्ञानशाकुन्तलं रूपकस्य **नाटक**भेदः।

**(१५) प्रश्नः—अभिज्ञानशाकुन्तले कति अङ्काः सन्ति ?**

**उत्तरम्**—अभिज्ञानशाकुन्तले सप्त अङ्काः सन्ति।

**(१६) प्रश्नः—स्रष्टुः आद्या सृष्टिः का ?**

**उत्तरम्**—स्रष्टुः आद्या सृष्टिः **जलरूपा**।

**(१७) प्रश्नः—विधिहुतं हविः कः वहति ?**

**उत्तरम्**—विधिहुतं हविः **पावकः** वहति।

**(१८) प्रश्नः—कया प्राणिनः प्राणवन्तः ?**

**उत्तरम्—वायुरूपया भगवतः मूर्त्त्या** प्राणिनः प्राणवन्तः भवन्ति।

**(१९) प्रश्नः—का सर्वबीजप्रकृतिराहुः ?**

**उत्तरम्—पृथिवीरूपा भगवतः तनुः** सर्वबीजप्रकृतिराहुः।

**(२०) प्रश्नः—अभिज्ञानशाकुन्तलस्य प्रथमे श्लोके किं छन्दः ?**

**उत्तरम्**—अभिज्ञानशाकुन्तलस्य प्रथमे श्लोके **स्रग्धराछन्दः** विज्ञेयम्।

**(२१) प्रश्नः—कस्य दिवसाः परिणामरमणीयाः ?**

**उत्तरम्**—ग्रीष्मसमयस्य दिवसा परिणामरमणीयाः।

**(२२) प्रश्नः—काः शिरीषकुसुमानि अवतंसयन्ति ?**

**उत्तरम्**—अवतंसयन्ति **दयमानाः प्रमदाः** शिरीषकुसुमानि।

**(२३) प्रश्नः—राजा दुष्यन्तः केन हृतः ?**

**उत्तरम्**—एष राजा दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा हृतः।

**(२४) प्रश्नः—सूतः राजानं दुष्यन्तं कमिव पश्यति ?**

**उत्तरम्**—सूतः राजानं दुष्यन्तं मृगानुसारिणं साक्षात् **पिनाकिनमिव** पश्यति।

**(२५) प्रश्नः—कः वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ?**

**उत्तरम्**—सारङ्गो वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्या प्रयाति।

**(२६) प्रश्नः—कस्य शराः वज्रसाराः ?**

**उत्तरम्—दुष्यन्तस्य** शराः वज्रसाराः।

**(२७) प्रश्नः—कस्याश्रमः अनुमालिनीतीरं दृश्यते ?**

**उत्तरम्**—कुलपतेः कण्वस्याश्रमः अनुमालिनीतीरं दृश्यते।

**(२८) प्रश्नः—कुलपतिः किमर्थं सोमतीर्थं गतः ?**

**उत्तरम्**—कुलपतिः कण्वः दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकुलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः।

**(२९) प्रश्नः—कथं प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम ?**
**उत्तरम्—विनीतवेषेण** प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम।

**(३०) प्रश्नः—केषां द्वाराणि सर्वत्र भवन्ति ?**
**उत्तरम्—भवितव्यतानां** द्वाराणि सर्वत्र भवन्ति।

**(३१) प्रश्नः—कथं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ?**
**उत्तरम्**—कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्।

**(३२) प्रश्नः—केषां कुत्रान्तःकरणप्रवृत्तयः प्रमाणम् ?**
**उत्तरम्—सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु** प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।

**(३३) प्रश्नः—शकुन्तलायाः कथं कण्वः पिता ?**
**उत्तरम्—शरीरसवर्द्धनादिभिस्तातकाश्यपोऽपि** (कण्वः) अस्याः शकुन्तलायाः पिता।

**(३४) प्रश्नः—देवैः मेनका कथं प्रेषिता ?**
**उत्तरम्**—जातशङ्कैः देवैः नियमविघ्नकारिणी मेनका नामाप्सराः प्रेषिता।

**(३५) प्रश्नः—शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं किमस्ति ?**
**उत्तरम्**—शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।

**(३६) प्रश्नः—नृपाणां किं ददति आरण्यकाः ?**
**उत्तरम्**—तपःषड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यकाः हि नृपाणाम्।

**(३७) प्रश्नः—आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु के ?**
**उत्तरम्**—आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु **पौरवाः**।

**(३८) प्रश्नः—कः शशाङ्कं ग्लपयति ?**
**उत्तरम्—दिवसः** शशाङ्कं ग्लपयति।

**(३९) प्रश्नः—केन विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः परिणिताः ?**
**उत्तरम्**—गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः परिणिताः।

**(४०) प्रश्नः—कीदृशी विद्या अशोचनीया भवति ?**
**उत्तरम्—सुशिष्यपरिदत्ता** विद्या अशोचनीया भवति।

**(४१) प्रश्नः—कैः गृहिणः पीड्यन्ते ?**
**उत्तरम्**—नवैः तनयाविश्लेषदुःखैः गृहिणः पीड्यन्ते।

**(४२) प्रश्नः—'वनौकषोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम्' कस्येयमुक्तिः ?**
**उत्तरम्**—वनौकषोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयमितीयमुक्तिः महर्षेः कण्वस्य।

**(४३) प्रश्नः—अर्थो हि कन्या परकीय एवेति कस्येयमुक्तिः ?**
**उत्तरम्**—अर्थो हि कन्या परकीय एवे सूक्तिरियं **कण्वस्य**।

**(४४) प्रश्नः—रात्रिन्दिवं कः प्रयाति ?**
**उत्तरम्**—रात्रिन्दिवं **गन्धवहः** प्रयाति।

**(४५) प्रश्नः—कैः तरवः नम्राः भवन्ति ?**
**उत्तरम्**—भवन्ति नम्रास्तरवः **फलागमैः**।

**(४६) प्रश्नः—धर्मांशौ तपति किं न आविर्भविष्यति ?**
**उत्तरम्**—धर्मांशौ तपति **तमः** न आविर्भविष्यति।

**(४७) प्रश्नः—केषु अमी विकाराः मूर्च्छन्ति ?**
**उत्तरम्**—मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु।

**(४८) प्रश्नः—क इव न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम् ?**
**उत्तरम्**—भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं
न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम्।

**(४९) प्रश्नः—परभृताः कमन्यैर्द्विजैः पोषयन्ति ?**
**उत्तरम्**—परभृताः स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः पोषयन्ति।

**(५०) प्रश्नः—परीक्ष्य किं कर्तव्यम् ?**
**उत्तरम्**—परीक्ष्य कर्तव्यं **विशेषात् सङ्गतं रहः**।

**(५१) प्रश्नः—अज्ञातहृदयेषु किं वैरीभवति ?**
**उत्तरम्**—अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति **सौहृदम्**।

**(५२) प्रश्नः—पतिकुले कस्य दास्यंमपि क्षमम् ?**
**उत्तरम्**—पतिकुले **स्त्रीजनस्य** दास्यमपि क्षमम्।

**(५३) प्रश्नः—वशिनां कीदृशी वृत्तिः ?**
**उत्तरम्**—वशिनां **परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी** वृत्तिः।

**(५४) प्रश्नः—मातलिः कस्य सारथिः ?**
**उत्तरम्**—मातलिः **इन्द्रस्य** सारथिः।

**(५५) प्रश्नः—कः सप्तनीकः तपस्यति ?**
**उत्तरम्**—सुरासुरगुरुः **मारीचः** सपत्नीकस्तपस्यति।

**(५६) प्रश्नः—का नामौषधिः सर्पो भूत्वा दशति ?**
**उत्तरम्**—**अपराजिता** नामौषधिः सर्पो भूत्वा दशति।

**(५७) प्रश्नः—अपराजिता नामौषधिः कदा केन दत्ता ?**
**उत्तरम्**—अपराजितानामौषधिः सर्वदमनस्य **जातकर्मसमये** भगवता **मारीचेन** दत्ता।

**(५८) प्रश्नः—शकुन्तलायाः दुष्यन्तेन पुनर्मेलनं कस्याश्रमेऽभवत् ?**
**उत्तरम्**—शकुन्तलायाः दुष्यन्तेन पुनर्मेलनं **मारीचस्याश्रमे**ऽभवत्।

**(५९) प्रश्नः—का दीर्घं विरहव्रतं विभर्ति ?**

**उत्तरम्**—शकुन्तला दीर्घं विरहव्रतं विभर्ति।

**(६०) प्रश्नः—पार्थिवः कस्मै प्रवर्तताम् ?**

**उत्तरम्**—पार्थिवः **प्रकृतिहिताय** प्रवर्तताम्।

## लघूत्तरीयाणि प्रश्नोत्तराणि

**(१) प्रश्नः—कालिदासस्य कति ग्रन्थाः सन्ति ?**

**उत्तरम्**—कालिदासस्याष्टौ ग्रन्था: सन्ति, तद्यथा—

१. कुमारसम्भवमहाकाव्यम्, २. रघुवंश-महाकाव्यम्, ३. मेघदूतखण्डकाव्यम्, ४. ऋतुसंहारः, ५. शृङ्गारतिलकम्, त्रीणि नाटकानि, ६. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ७. मालविकाग्निमित्रम्, ८. विक्रमोर्वशीयञ्च।

**(२) प्रश्नः—कालिदासस्योपमाविषये किमप्येकमुदाहरणं लिख ?**

**उत्तरम्**—कालिदासस्योपमाविषये उदाहरणमेकमवलोकयन्तु सुधयः—

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रि-
र्यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥

**(३) प्रश्नः—धीरोदात्तस्य लक्षणं किमस्ति ?**

**उत्तरम्**—धीरोदात्तनायकस्य लक्षणमुक्तं साहित्यदर्पणे—

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥

**(४) प्रश्नः—नायकः कतिविधः भवति ?**

**उत्तरम्**—नायकः चतुर्विधः भवति। यथोक्तं साहित्यदर्पणे—

धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च।
धीरप्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः ॥

**(५) प्रश्नः—नाटकस्य कि लक्षणम् ?**

**उत्तरम्**—नाटकस्य लक्षणमुक्तं साहित्यदर्पणे—

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम्।

**(६) प्रश्नः—कति रूपकाणि भवन्ति ?**

**उत्तरम्**—दशरूपकाणि सन्ति। तदुक्तं साहित्यदर्पणे—

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥

**(७) प्रश्नः—अभिज्ञानशाकुन्तलस्य व्युत्पत्तिलेख्या ?**

**उत्तरम्**—अभिज्ञायतेऽनेन यत्तद् अभिज्ञानम्, शकुन्तैर्लालिता शकुन्तला, शकुन्तलामधिकृत्य कृतं काव्यं शाकुन्तलं, अभिज्ञानं च तत् शाकुन्तलम्, अभिज्ञान-शाकुन्तलमिति।

**(८) प्रश्नः—अभिज्ञानशाकुन्तले के मुनित्रयः ?**

**उत्तरम्**—अभिज्ञान शाकुन्तले त्रयः मुनयः सन्ति—

१. कण्वः २. दुर्वासा, ३. मरीचिनन्दनः कश्यपश्च ।

**(९) प्रश्नः—शार्ङ्गरवशारद्वतौ कौ ?**

**उत्तरम्**—शार्ङ्गरवशारद्वतौ **महर्षिकण्वस्य व्यवहारज्ञौ** आज्ञाकारिणौ शिष्यौ स्तः ।

**(१०) प्रश्नः— अनसूयाप्रियंवदे के ?**

**उत्तरम्**—अनसूयाप्रियंवदे शकुन्तलायाः प्रियसख्यौ ।

**(११) प्रश्नः—गौतमी कास्ति ?**

**उत्तरम्**—गौतमी महर्षिकण्वस्य धर्मभगिनी ।

**(१२) प्रश्नः—सर्वदमनः कः ?**

**उत्तरम्**—सर्वदमनः शकुन्तलायाः पुत्रः ।

**(१३) प्रश्नः—अभिज्ञानशाकुन्तले विदूषकस्य किं नामास्ति ?**

**उत्तरम्**—अभिज्ञानशाकुन्तले विदूषकस्य नाम माधव्योऽस्ति ।

**(१४) प्रश्नः—का मिश्रकेशी ?**

**उत्तरम्**—मिश्रकेशी मेनकायाः प्रियसखी एका अप्सरास्ति ।

**(१५) प्रश्नः—अदितिः का ?**

**उत्तरम्**—अदितिः महर्षिकश्यपस्य धर्मपत्नी, देवानां माता, दक्षस्य कन्यास्ति ।

**(१६) प्रश्नः—अभिज्ञानशाकुन्तलस्य मङ्गलाचरणस्य श्लोकं लिखत ?**

**उत्तरम्**—अभिज्ञानशाकुन्तले मङ्गलाचरणश्लोकमस्ति—

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणाः या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥

**(१७) प्रश्नः—काभिः प्रत्यक्षामिः तनुभिरष्टाभिः शङ्करः पातु ?**

**उत्तरम्**—जल-वह्नि-यजमान-चन्द्र-सूर्य-गगन-धरणी-वायुरूपाभिरष्टाभिः प्रत्यक्षाभिस्तनुभिः शङ्करो वः पुनातु । यथोक्तम्—

भूमिरापोऽनलो वायुरात्मा व्योम रविशशी ।
इत्यष्टौ सर्वलोकानां प्रत्यक्षा हरमूर्त्तयः ॥

**(१८) प्रश्नः—नान्द्याः किं लक्षणम् ?**

**उत्तरम्**—नान्द्याः लक्षणमुक्तं साहित्यदर्पणे—

देवतादिनमस्कारमङ्गलारम्भपाठकैः ।
या क्रिया नन्द्यते नाट्यारम्भे नान्दीं तु सा स्मृता ॥

**(१९) प्रश्नः—सूत्रधारः कः भवति ?**

**उत्तरम्**—सूत्रं = सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति सूत्रधारः, यया नाटकीयसर्वपात्रप्रवर्तनाप्रयोजकं सर्वान्तःस्यूतं पुष्पमालामिव धारयतीति सूत्रधारः ।

तल्लक्षणमुक्तम्—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते॥

**(२०) प्रश्नः—किं नाम नेपथ्यम्?**

**उत्तरम्**— नेपथ्यं वेशविन्यासः, तदर्थं यद् गृहं तदपि नेपथ्यम्। यत्र नाटकीयपात्राणि स्ववेशविन्यासान् प्रकुर्वते तन्नेपथ्यमिति।

**(२१) प्रश्नः—प्रयोगविज्ञानं न साधु कुतः मन्यते?**

**उत्तरम्—आपरितोषाद् विदुषां** न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।

**(२२) प्रश्नः—केषां आत्मन्यप्रत्ययं चेतः भवति?**

**उत्तरम्—बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं** चेतः।

**(२३) प्रश्नः—कथं तपोवनस्याभोगः ज्ञायते?**

**उत्तरम्**—सूतः दुष्यन्तं प्रति कथयति—इह हि क्वचित् तरूणां तलेषु शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टाः मुनिधान्यकणाः विद्यन्ते। कुत्रापि इङ्गुदीफलभिदः प्रस्निग्धाः पाषाणखण्डाः सूच्यन्ते। कस्मिंश्चिद्भागे विश्वासोपगमात् अभिन्नगतयः मृगाः रथशब्दं सहन्ते। क्वचित् प्रदेशे तोयाधारपथाः वल्कलाग्रपरिश्रुतजलाधाररेखाविभूषिताः दृश्यन्ते। तस्मादेभिर्लक्षणैरयमाश्रमस्यैवाभोग एवानुमीयते।

**(२४) प्रश्नः—कथं वनलताभिरुद्यानलता दूरीकृताः?**

**उत्तरम्**—राजा दुष्यन्तः मुनिकन्यकाः अवलोक्य कथयति—

इदं पुरो दृश्यमानं अन्तःपुरे दुर्लभं वपुःलावण्यं वा वनवासिनोऽपि जनस्य मुनिबालिकालोकस्य अस्ति तर्हि निश्चयेन वनलताभिः सौन्दर्यसौकुमार्यादिभिः गुणैः उद्यानलताः निराकृताः।

**(२५) प्रश्नः—ऋषिः कण्वः कथं शमीलतां छेत्तुं व्यवस्यति?**

**उत्तरम्**—राजा दुष्यन्तः वृक्षसेचनादौ तपोवनकर्तव्ये नियुक्तां दृष्ट्वा कथयति—

यः ऋषिः कण्वः पुरो दृश्यमानमव्याजमनोहरं शरीरं तपश्चरणयोग्यं सम्पादयितुं वाञ्छति, सः ऋषिः नूनं नीलोत्पलपत्रधारया कठिनां शमीवृक्षस्य शाखां छेतुं समीहते।

**(२६ ) प्रश्नः—'किमिव हिः मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' सूक्तिरियं व्याख्येया?**

**उत्तरम्**—राजा दुष्यन्तः वल्कलभृतां शकुन्तलामवलोक्य कथयति—

शैवलेनापि अनुविद्धं सरसिजं रम्यम्, मलिनमपि चिह्नं चन्द्रस्य शोभां विस्तारयति। यतः एषा पुरोदृश्यमाना कृशाङ्गी निसर्गसुन्दरी शकुन्तला वल्कलेन कामं मनोहारिणी अस्ति, कतमत् वस्तु कमनीयानामाकृतीनां मण्डनं न भवति, अपि तु सर्वमपि वस्तु रम्याणां सुषमां वर्द्धयत्येव नीलकण्ठस्य कण्ठे विषमिव, कलङ्केन चन्द्रस्येव, शैवलेन कमलस्येव, अनेन वृक्षत्वग्वस्त्रेण अस्याः शकुन्तलायाः शोभैवेत्याशयः।

**(२७) प्रश्नः—मधुकरः कथं कृती?**

**उत्तरम्**—राजा दुष्यन्तः कथयति—

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः ।
करं व्याधुन्वन्त्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ॥

**(२८) प्रश्नः—वसुधातलात् किं न उदेति ?**

**उत्तरम्**—प्रभाभिः तरलं ज्योतिः वसुधातलात् न उदेति ।

**(२९) प्रश्नः—प्रस्तावनायाः किं लक्षणम् ?**

**उत्तरम्**—प्रस्तावनायाः लक्षणमुक्तं साहित्यदर्पणे—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण साहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥

**(३०) प्रश्नः—अकृतार्थेऽपि मनसिजे का रतिं कुरुते ?**

**उत्तरम्**—राजा दुष्यन्तो विरहेणोद्विग्नमना शकुन्तलां मनसा स्मरन् विमृशति—यथेच्छं शकुन्तला सुखप्राप्या न, तस्या प्रदानस्य गुर्वधीनत्वात्, तु मे मनः शकुन्तलायाः मय्यनुरागसूचकानां भावानां दर्शनेन आश्वासयुक्तं वर्तते । मनसिजे अचरितार्थेऽपि स्त्रीपुरुषयोः प्रार्थना रतिं प्रीतिं कुरुते सुखं जनयति । नायिका-समागमसुखालाभेऽपि तच्चेष्टादिभिरेव मनो मे मोदते ।

**(३१) प्रश्नः—सेनापतिः मृगयाया गुणान् कथं वर्णयति ?**

**उत्तरम्**—मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।
उत्कर्षः च ध्वन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदं कुतः ॥
अनेन प्रकारेण सेनापतिः मृगयायाः गुणान् वर्णयति ।

**(३२) प्रश्नः—शकुन्तलायाः लाभे सन्दिहानो राजा किं चिन्तयति ?**

**उत्तरम्**—शकुन्तलायाः लोकोत्तरं लावण्यं सञ्चिन्त्य तल्लाभे सन्दिहानो राजा दुष्यन्तो नर्मसचिवं विदुषकं प्रति कथयति—

अनाघ्रातं पुष्पं किशलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वांदितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥

**(३३) प्रश्नः—सुरयुवतयः कुत्र विजयम् आशंसन्ते ?**

**उत्तरम्**—देत्यैः बद्धवैराः सुरयुवतयः दुष्यन्तस्य अधिज्ये धनुषि पौरुहूते वज्रे च विजयं आशंसन्ते ।

**(३४) प्रश्नः—'परिहासविजल्पितं सखे' इति राजा कथं कथयति ?**

**उत्तरम्**—शकुन्तलाविषयकमनुरागं प्रच्छादयन् तस्याः स्वाभिलाषानर्हत्वं च समर्थन् राजा दुष्यन्तो विदूषकं ब्रूते—

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः ।
परिहासविजल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः ॥

**(३५) प्रश्नः—विष्कम्भकस्य किं लक्षणम् ?**

**उत्तरम्**—वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
सङ्क्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥

**(३६) प्रश्नः—राजा दुष्यन्तः कथं विघ्नानपोहति ?**

**उत्तरम्**—राजा दुष्यन्तः धनुषः हुङ्कारेणेव विघ्नानपोहति ।

**(३७) प्रश्नः—कः कुसुमवाणान् वज्रसारीकरोति ?**

**उत्तरम्**—**मदनः** कुसुमवाणान् वज्रसारीकरोति ।

**(३८) प्रश्नः—शकुन्तलायाः अस्वास्थ्यं ग्रीष्ममूलकं काममूलकं वेति कथं विचारयति राजा दुष्यन्तः ?**

**उत्तरम्**—मालिनीतीरवर्तिनि लतामण्डपे कुसुमशयने शयानां सखीभ्यां वीज्यमानामस्वस्थशरीरां शकुन्तलामवलोक्य तदस्वास्थ्यं ग्रीष्ममूलकं काममूलकं वेति विकल्पयन् राजा दुष्यन्तो विचारयति—

स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम् ।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु ॥

**(३९) प्रश्नः—'श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्' सूक्तिरियं पूरणीया ?**

**उत्तरम्**—शकुन्तलाद्वारा कृतामात्मनोऽवधीरणामाशङ्कमानो राजा दुष्यन्तः तां परिहरन्नभिधत्ते—

अयं स ते तिष्ठति सङ्गमोत्सुकः
विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम् ।
लभेत् वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् ॥

**(४०) प्रश्नः—शकुन्तला पत्रे किं लिखित्वा वाचयति ?**

**उत्तरम्**—शकुन्तला पत्रे लिखित्वा वाचयति—

तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि रात्रावपि ।
निर्घृण तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथान्यङ्गानि ॥

**(४१) प्रश्नः—दुष्यन्तस्य के द्वे प्रतिष्ठे ?**

**उत्तरम्**—राजा दुष्यन्तः कथयति—

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।
समुद्रवसना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ॥

**(४२) प्रश्नः—गान्धर्वेण विवाहेन परिणीताः काः अभिनन्दिता ?**

**उत्तरम्**—गान्धर्वेण विवाहेन बहव्यो राजर्षिकन्यकाः ।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः ।।
यतो हि क्षत्रियस्य गान्धर्वो विवाहः श्रेष्ठः उच्यते ।

**(४३) प्रश्नः—चक्रवाकवधूः आमन्त्रयस्व सहचरमित्यनेन का सूचना ?**

**उत्तरम्**—लतामण्डपदिशा गौतम्याः प्रवेशमालोक्य शकुन्तलाबोधनाय प्रकृतमर्थं सङ्गोप्य सख्योः प्रियंवदाऽनसूययोः वचनमिदं नेपथ्यात् । अमुनाऽप्राकृतेन च हे शकुन्तले ! स्वप्रियं दुष्यन्तम् आमन्त्रयस्व = आपृच्छस्वगोपाय, उपस्थिता तत्र भवती गौतमी । रात्रिर्हि चक्रवाकमिथुनस्य वियोगकारिणी राजन्यपगते चक्रवाकयोरिव गौतमीगमने पुनरपि युवयोः समागमो भविष्यति । अतोऽत्यन्तं विषादो मा विधेय इति सूच्यते ।

**(४४) प्रश्नः—कीदृश्यः बहुधा छायाः चरन्ति ?**

**उत्तरम्**—भयमादधानाः सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानां राक्षसानां छायाः बहुधाः चरन्ति ।

**(४५) प्रश्नः—'कथा प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव' इति सम्पूर्णं पद्यं लिखत ?**

**उत्तरम्**—शकुन्तलायै शापवचनं नेपथ्यात्—
विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ।।

**(४६) प्रश्नः—को नाम उष्णोदकेन नवमालिका सिञ्चति इत्यस्य भावार्थो लेख्यः ?**

**उत्तरम्**—शकुन्तलायाः शापवचननिवेदनं सर्वथानुचितमिति दृष्टान्तमुखेन प्रियंवदा कथयति—

कः जनो नाम तप्तजलेन नवमालतीलतां सिञ्चिति, यथा तप्तजलेन नवमालिका-सिञ्चनमपराद्धं तथा शकुन्तलायै शापवचनकथनं अपराधपूर्णमस्ति ।

**(४७) प्रश्नः—'लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु' इति सम्पूर्णं पद्यं लिखत?**

**उत्तरम्**—यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोधधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ।।

**(४८) प्रश्नः—केन सूचितस्तातकण्वस्य शकुन्तलावृत्तान्तः ?**

**उत्तरम्**—अग्निशरणं प्रविष्टस्य तातकण्वस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या शकुन्तलावृतान्तः सूचितः ।

**(४९) प्रश्नः—छन्दोमय्यां वाण्या शकुन्तलाविषये किं सूचितम् ?**

**उत्तरम्**—अग्निशरणं प्रविष्टस्य तातकण्वस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या

सूचितम्, यत्—

दूष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः ।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव ॥

**(५०) प्रश्नः—शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभिः कानि पदार्थानि दत्तानि ?**

**उत्तरम्**—शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभिः आभरणानि दत्तानि । अथ च—

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
दत्तान्याभरणानि तत्किशलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ॥

**(५१) प्रश्नः—यास्यत्यद्य शकुन्तलेति सम्पूर्णं पद्यं लिखत ?**

**उत्तरम्**—यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठस्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥

**(५२) प्रश्नः—वन्दमानां शकुन्तलां कण्वः कः आर्शीवादः ददाति ?**

**उत्तरम्**—वन्दमानां शकुन्तलां कण्वः तदनुरूपं स्नेहातिशयव्यञ्जकमाशीर्वचनं कथयति, यत्—

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव ।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पुरुमवाप्नुहि ॥

**(५३) प्रश्नः—कीदृशी शकुन्तला पतिगृहं याति ?**

**उत्तरम्**—पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्माष्वपितेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥

**(५४) प्रश्नः—शकुन्तलायाः पन्थाः कीदृशः भवतु ?**

**उत्तरम्**—शकुन्तलायाः पन्थाः शान्तानुकूलपवनः शिवश्च भवतु ।

**(५५) प्रश्नः—कीदृशः मृगः शकुन्तलायाः पदवीं न जहाति ?**

**उत्तरम्**—पतिगेहं प्रस्थितायाः शकुन्तलाया वसनाञ्चलं गृहीत्वाऽऽकर्षयन्तं मृगशिशुमवलोक्य महर्षिः कण्वः कथयति—

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे ।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥

**(५६) प्रश्नः—महर्षि कण्वः दुष्यन्ताय किं सन्देशं कथयति ?**

**उत्तरम्**—राज्ञे दुष्यन्ताय सन्देष्टव्यमर्थं विवृण्वन् महर्षिः कण्वः कथयति—

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्याधीनमतः परं न खलु तत्स्त्रीबन्धुभिर्याच्यते ॥

**(५७) प्रश्नः—वनौकषोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयमिति सूक्तेराशयः लेख्यः ?**

**उत्तरम्**—महर्षिकण्वः शकुन्तलायै अपि पतिगृहे प्रवर्तनप्रकारमुपदेष्टुमारभते—वत्से त्वमिदानीमनुशासनीयासि। वनवासिनोऽपि अपरिचितनागरिकलोका अपि वर्तमानाः वयं लोकव्यवहाराभिज्ञाः। गृहस्थलोकवृतज्ञाः लोकाचारपाटवाः स्मः। अतो लोकाचारं त्वां शिक्षयामः।

**(५८) प्रश्नः—कण्वः शकुन्तलां पतिगृहं प्राप्य किं कर्तुं शिक्षयति ?**

**उत्तरम्**—कण्वः शकुन्तलां पतिगृहं प्राप्य वर्तनप्रकारं शिक्षयति, यत्—

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृतिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोग्येष्वनुत्सेकिनी।
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामा कुलस्याधयः ॥

**(५९) प्रश्नः—भूत्वा चिराय सदिगन्तेति सम्पूर्णं पद्य लिखत ?**

**उत्तरम्**—भूत्वा चिराय सदिगन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं प्रसूय।
भर्त्ता तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं
शान्त्यै करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्।

**(६०) प्रश्नः—अर्थो हि कन्या परकीय एवेति श्लोकं सम्पूर्णं लिखत ?**

**उत्तरम्**—अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मा
चिरस्य निक्षेपमिवार्पयित्वा ॥

**(६१) प्रश्नः—स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु इति सम्पूर्णं पद्यं लिखत।**

**उत्तरम्**—स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत या प्रतिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजातं
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥

**(६२) प्रश्नः—उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी सूक्तिरियं साधु व्याख्येया ?**

**उत्तरम्**—शारद्वतो हि राज्ञा साकं विवादोऽनुचित इति मत्वा ततो विवादात् शार्ङ्गरवं विरमय्य निजकर्तव्यमुपदिशन् कथयति—हे राजन् वादविवादेन किमपि प्रयोजनं न सेत्स्यति, निःसंशयमियं भवतो दारा अस्माकं गुरुणा भवता कण्वेन तव समीपे प्रहिता, यद्येनां त्यक्तुमिच्छसि तर्हि त्यज्यतां धर्मपत्नीत्वेन ग्रहणमनुमन्यसे चेत् गृहाण धर्मपत्नीषु सर्वथा भर्तुरिव स्वातन्त्र्यमस्तीति प्रसिद्धमेव। तस्मात् यथेच्छं कार्यम्।

**(६३) प्रश्नः—प्रवेशकस्य किं लक्षणम् ?**

**उत्तरम्**—विश्वनाथेन साहित्यदर्पणे प्रवेशकस्य लक्षणं लिखितम्—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥

**(६४) प्रश्नः—अङ्कावतारस्य किं लक्षणम् ?**

**उत्तरम्**—अङ्कावतारस्य लक्षणमुक्तं साहित्यदर्पणे—

अङ्कान्ते सूचितः पात्रैः तदङ्कस्याविभागतः ।
यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः ॥

**(६५) प्रश्नः—शकुन्तलाया अङ्गुलीयकं कुत्र प्रभ्रष्टम् ?**

**उत्तरम्**—शकुन्तलायाः अङ्गुलीयकं **शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिले** प्रभ्रष्टम्

**(६६) प्रश्नः—कतमस्मिन् प्रदेशे मारीचाश्रमः ?**

**उत्तरम्**—मातलिहस्तेन दर्शयन् राजानं दुष्यन्तं ब्रवीति—

वल्मीकाग्रनिमग्नमूर्तिरुरसा सन्दष्टसर्पत्वचा
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलये नात्यर्थसम्पीडितः ।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः ॥

**(६७) प्रश्नः—कीदृशी शकुन्तला विरहव्रतं बिभर्ति ?**

**उत्तरम्**—वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः ।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ॥

**(६८) प्रश्नः—'स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया' सूक्तिरियं श्लोकेन पूरणीयम् ?**

**उत्तरम्**—नृपो दुष्यन्तः प्रियां शकुन्तलामनुनयन् कथयति—

सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः सम्मोहो मे तदा बलवानभूत् ।
प्रबलतमसामेवंप्राया शुभेषु प्रवृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया ॥

**(६९) प्रश्नः—मारीचः शकुन्तलां का आशीः ददाति ?**

**उत्तरम्**—पतिपुत्राभ्यां सह प्रणमन्तीं शकुन्तलां शुभाशीः प्रयच्छन् महर्षिः कश्यपः (मारीचः) कथयति—

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः ।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव ॥

**(७०) प्रश्नः—दुष्यन्तः किं त्रितयं समागतम् ?**

**उत्तरम्**—मारीचः दुष्यन्तमभिनन्दन् कथयति—

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान् ।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत्समागतम् ॥

**(७१) प्रश्नः—अभिज्ञानशाकुन्तलस्य भरतवाक्यं लिखत ?**

**उत्तरम्**—प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतिमहतां महीयताम्।
ममापि च क्षयमतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ॥

**(७२) प्रश्नः—भरतवाक्येन किं वाञ्छति कविः ?**

**उत्तरम्**—समस्ताः पृथ्वीपतयः स्वसुखनिरपेक्षाः सन्तः प्रजानामेव श्रेयसे सर्वदा प्रवर्तन्ताम्, महाकवीनां सरसाः कविताश्च सहृदयानां हृदयेषु चमत्कारं जनयित्वा विशिष्टसम्मानं लभन्ताम्, सर्वशक्तिशाली पार्वतीपतिः परमेश्वरश्च जन्मान्तरं निरस्य शाश्वतं पदं दिशत्विति शम्।

●

Vidya Sagar
9697176202
9419266702